CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सिद्धान्तशिरोमणिः

पं. सत्यदेव शर्मा

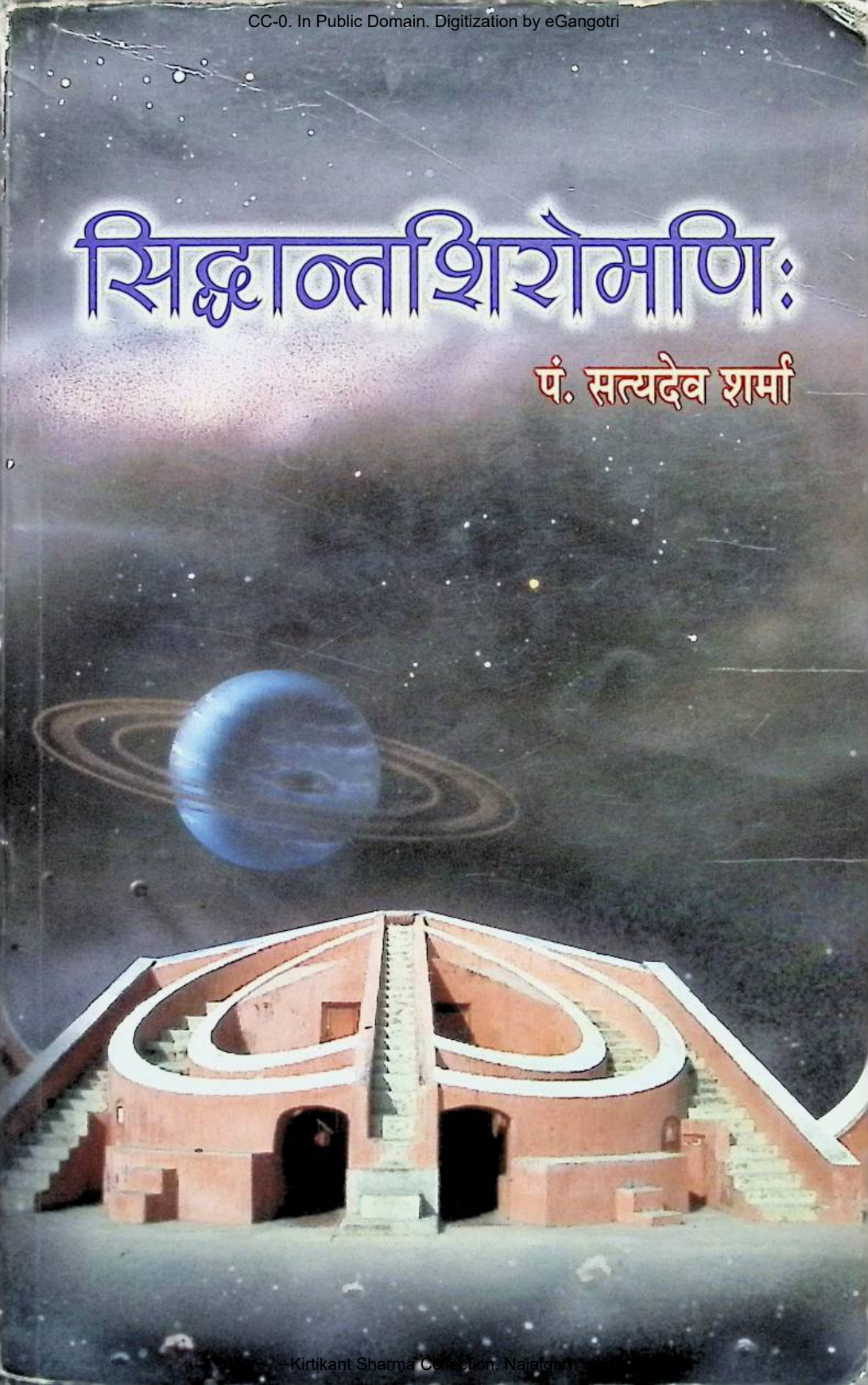

CC-0. Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीमद्भास्कराचार्यप्रणीतः

सिद्धान्तशिरोमणिः

'सूर्यप्रभा' हिन्दीटीका सहित

Chaukhamba Sanskrit Pratishthan
38-U.A., Bungalow Road, Jawahar Nagar,
DELHI-110007
Email-cspdel.sales@gmail.com
Off: 41530902, 65151594

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

।। श्रीः ।।
चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
430

श्रीमद्भास्कराचार्यप्रणीतः

सिद्धान्तशिरोमणिः

'सूर्यप्रभा' हिन्दीटीका सहित

व्याख्याकार
पं० सत्यदेव शर्मा
एम०एस०सी० (गणित-आधुनिक खगोल गणित)
सी०ए०आई०आई०बी०

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

© सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण, या किसी भी विधि (जैसे - इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉडिग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के बिना नही किया जा सकता है।

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के-37/117 गोपाल मंदिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी-221001
दूरभाष : (0542) 2335263

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

पुनर्मुद्रित संस्करण : 2011
मूल्य : 350.00

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली न. 21-ए, अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
दूरभाषः (011) 32996391, टेलीफैक्सः (011) 23286537

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38. यू. ए. बंग्लो रोड़, जवाहर नगर,
पोस्ट बॉक्स न. 2113, दिल्ली - 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069, वाराणसी-221001

मुद्रक

डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दो शब्द

भास्कराचार्य (द्वितीय) ने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ की रचना अपने सभी पूर्ववर्त्ती आचार्यों के ग्रन्थों से नई-नई तथा प्रामाणिक बातों का संकलन करके की है। यह बात मुझे इस ग्रन्थ की प्रस्तुत भाषाटीका लिखने के क्रम में प्रतीत हुई। आचार्य ने ब्रह्मगुप्त को अपने ग्रन्थ-सिद्धान्त का मूल आधार बनाया है—इस बात का तो उन्होंने उल्लेख किया है; लेकिन अन्य जिन-जिन आचार्यों के ग्रन्थों से जिन-जिन सिद्धान्तों तथा सूत्रों को अपने ग्रन्थ में समाविष्ट किया है, उसका उल्लेख उन्होंने कहीं भी अपने ग्रन्थ में नहीं किया है। इस प्रकार उन्होंने अन्य आचार्यों की बातों को अपना बताकर प्रस्तुत किया है, यह बात इस ग्रन्थ के अध्ययन से पूर्णत: स्पष्ट हो जाती है।

भास्कराचार्य ने अपने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में ब्रह्मगुप्त के अतिरिक्त वराहमिहिर, वटेश्वर, लल्लाचार्य, आर्यभट (द्वितीय), श्रीपति, सूर्यसिद्धान्त, मुञ्जालाचार्य, भास्कर (प्रथम) आदि आचार्यों के ग्रन्थों से भी बहुत-सी नई बातें अपने ग्रन्थ में समाविष्ट की हैं। इसी कारण से भास्कराचार्य का यह ग्रन्थ अधिक विख्यात हुआ तथा ग्रन्थ के साथ-साथ भास्कराचार्य को भी प्रशंसा प्राप्त हुई। आचार्य ने स्वयं ही इस ग्रन्थ पर वासना-भाष्य लिखा, जिससे अन्य ग्रन्थों के अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव कम हुआ तथा इनके पूर्व के ग्रन्थों को भी अनुपयोगी समझ लिया गया। साथ ही यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के स्थितिकाल में पूर्वलिखित ग्रन्थों की अनुपलब्धता भी रही। आज भी सम्पूर्ण वटेश्वर सिद्धान्त उपलब्ध नहीं है और शायद इस बात के प्रयास भी नहीं किये जा रहे हैं कि इस ग्रन्थ को सामने लाया जाय। एक-दो लोगों ने अपने स्तर पर प्रयास जरूर किये हैं; लेकिन फिर भी अद्यावधि सम्पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सका है। विशेष रूप से गोलाध्याय तो अपूर्ण ही है। इसके मात्र कुछ अध्याय ही प्राप्त हो सके हैं। श्रीपति का सिद्धान्तशेखर कलकत्ता विश्वविद्यालय प्रेस से एक बार प्रकाशित हुआ था, जो वर्त्तमान समय में लाइब्रेरियों में भी उपलब्ध नहीं है। सौभाग्य से भास्कराचार्य के सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ की उपलब्धता सार्वकालिक रही, जिसका उपयोग भी सदा-सर्वदा होता रहा। सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में एक हजार से अल्प संख्या में ही श्लोक हैं, अत: शायद इसकी लघुता तथा स्वकृत टीका, दोनों ही इसकी उपलब्धता के कारण रहे। ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त तथा वटेश्वर सिद्धान्त—दोनों ही बहुत विस्तृत सिद्धान्त हैं। आज भी अब तक प्राप्त सभी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतीय सिद्धान्तग्रन्थों में वटेश्वर-सिद्धान्त ही सबसे विस्तृत सिद्धान्त है। यदि सम्पूर्ण गोलाध्याय उपलब्ध हो जाता है तो निश्चित रूप से यह विशालतम सिद्धान्तग्रन्थ है, जिसमें और भी अनेकों सूत्रों का समावेश किया गया है। इनका अन्वेषण करके भारतीय गणित की अज्ञात वैभवता को उजागर किया जा सकता है। अनेकों आधुनिक गणित के सूत्र इस सिद्धान्त में समाविष्ट हैं, जिनको वर्त्तमान में उजागर करने की महती आवश्यकता है।

भारतीय सिद्धान्तगणित के सूत्रों को आधुनिक गणित के सूत्रों के रूप में परिवर्तित करने का कार्य वे ही ज्योतिर्विद कर सकते हैं, जिन्होंने आधुनिक तथा भारतीय एस्ट्रोनॉमी—दोनों का ही अच्छा अध्ययन एवं ज्ञान प्राप्त किया हो। ऐसे प्रयास कुछ विद्वानों ने किये भी हैं तथा अन्य ग्रन्थों की टीकायें भी अंग्रेजी भाषा में की गई हैं। भास्कराचार्य ने पूर्वोक्त ब्रह्मस्फुट, वटेश्वर, आर्यभट द्वितीय, श्रीपति आदि के प्रमुख ग्रन्थों में से प्रत्येक में से लगभग 70-80 प्रतिशत भाग अपने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में समाविष्ट किया है—ऐसा प्रतीत होता है। बहुत-सा भाग तो सभी ग्रन्थों में ही समान है। प्रस्तुत टीका में मैंने भास्करोक्त श्लोकों की हिन्दी व्याख्या के पश्चात् विशेष विवरण में अन्य प्रमुख-प्रमुख आचार्यों के ग्रन्थों के वे उद्धरण भी दिये हैं, जिनमें उन्होंने भास्करोक्त बात का ही प्रतिपादन किया है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ पूर्ववर्त्ती आचार्यों के ग्रन्थों के सिद्धान्तों तथा सूत्रों का ही संकलनमात्र है। भास्कराचार्य ने स्वयं का कोई विशेष सूत्र या सिद्धान्त इस ग्रन्थ में प्रतिपादित नहीं किया है। भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थ में वेध से प्राप्त गणनाओं को ही पूर्व ग्रन्थों की अपेक्षा बदला है तथा जहाँ अन्य ग्रन्थों के स्वीकार अंकमानों में थोड़ा-थोड़ा अन्तर प्रतीत हुआ है, वहाँ ब्रह्मगुप्त के कहे अङ्कमानों को स्वीकार कर लिया है; लेकिन अन्य आचार्यों के मानों को त्यागने का कोई कारण नहीं बताया है।

प्रस्तुत टीका के द्वारा पाठकों को सिद्धान्तशिरोमणि के सिद्धान्तों के साथ-साथ अन्य पूर्ववर्त्ती ग्रन्थों के सिद्धान्तों का भी अध्ययन स्वत: हो सकेगा; क्योंकि बहुश: स्थानों पर तो उन्हीं बातों को आचार्य ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में थोड़ा-बहुत घुमाकर अन्य प्रकार से तथा अनेक स्थानों पर तो लगभग यथावत् कह दिया है। इस व्याख्या के साथ ही नये अन्वेषणों के नये आयाम भी खुलेंगे, जिनमें अन्य आचार्यों द्वारा कथित अतिरिक्त सिद्धान्तों तथा सूत्रों के शुद्धता की परीक्षा भी की जा सकेगी। उनमें थोड़ा-बहुत सुधार करके नये सिद्धान्त व सूत्र भी बनाये जा सकेंगे तथा आधुनिक समय के अति सूक्ष्म तथा शुद्ध मानों से उनकी तुलना भी की जा सकेगी।

ब्रह्मगुप्त, वटेश्वर, मुञ्जाल, आर्यभट (दोनों) ने और भी सूत्र कहे हैं, जिनका भी अध्ययन कर शोध किया जा सकता है। इस प्रकार भारतीय गणित के सूत्रों का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संकलन स्पष्ट रूप से सांकेतिक रूप में करके उनकी आधुनिक समय के सूत्रों से तुलना करके यह ज्ञात किया जा सकता है कि भारतीय गणित के सूत्र आधुनिक गणित के सूत्रों के कितने आसन्न तथा समरूप हैं। ऐसा पी. सी. सेनगुप्ता, के. वी. शर्मा आदि आधुनिक ज्योतिष के मर्मज्ञों ने किया भी है। इसके लिये भारतीय ज्योतिष के विद्वानों को आधुनिक गणित के मूलभूत विषय; जैसे—सरल त्रिकोणमिति, गोलीय त्रिकोणमिति, दीर्घवृत्त आदि का भी अध्ययन करना होगा। इन विषयों के सम्बन्ध में इनकी उपयोगिता को म. म. बापूदेव शास्त्री तथा म. म. सुधाकर द्विवेदी जी ने भली-भाँति आँक लिया था; अत एव दोनों ने ही क्रमशः 'सरल त्रिकोणमिति' तथा 'दीर्घ-वृत्तलक्षणम्' आदि सरल ग्रन्थों की रचना भारतीय ज्योतिष के विद्वानों के लिये की थी; लेकिन इन ग्रन्थों का पठन-पाठन नगण्य-सा ही रहा; क्योंकि आधुनिक गणित के ज्ञाताओं से इन विषयों को समझने तथा पढ़ने में सहायता नहीं ली गई। मैंने इन दोनों ही ग्रन्थों की अतिशय महत्ता को ही अनुभव कर ही इनकी सरल हिन्दी भाषा में व्याख्या की है; साथ ही इनमें और भी अति आवश्यक तथा मूलभूत आधुनिक गणित एवं विज्ञान के सिद्धान्तों का सूक्ष्म रूप से उल्लेख करके इन ग्रन्थों की उपयोगिता तथा महत्त्व को और भी बढ़ाने का प्रयास किया है। ये (दोनों ही) ग्रन्थ हमारे भारतीय ज्योतिष के छात्रों तथा अध्यापकों के लिये अवश्यमेव ज्ञातव्य हैं। साथ ही इनका अध्ययन भारतीय विश्वविद्यालयों में भी अवश्यमेव होना चाहिये और इनमें उत्तीर्ण होना भी आवश्यक किया जाना चाहिये। इनका ज्ञान प्राप्त किये विना भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्तों के क्रम में आगे का अन्वेषण अति दुर्लभ प्रतीत होता है। इनके अध्यापन के लिये आधुनिक गणित विषय के अध्यापक भी नियुक्त किये जा सकते हैं। वास्तव में देखा जाय तो भारतीय ज्योतिष गणित में आधुनिक गणित के भी अनेक सूत्र हैं; जिन्हें अलग रूप में कहा गया है; क्योंकि उस समय (आधुनिक) त्रिकोण-मिति आदि नामनिर्देशपूर्वक गणित का अलग से कोई शाखाग्रन्थ उपलब्ध नहीं था। सभी सिद्धान्त रेखागणित पर आधारित हैं तथा आज की त्रिकोणमिति, दीर्घवृत्त आदि विषयों तथा इनके सूत्रों का आधार भी रेखागणित ही है। केतकी ग्रहगणित इसी बात का एक उदाहरण है। भारतीय ज्योतिष गणित का पाठ्यक्रम हमारे विश्वविद्यालयों में आज भी बहुत अल्प स्तर का है। आचार्य की परीक्षा तक लगभग सभी प्रमुख-प्रमुख प्राचीन सिद्धान्तग्रन्थों का अध्ययन पाठ्यक्रम में होना चाहिये। इसी दिशा में मेरे द्वारा की गई यह टीका एक कदम है। इसके द्वारा भास्कराचार्य (12वीं शताब्दी) सहित इनके पूर्ववर्त्ती प्रमुख-प्रमुख ग्रन्थों का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया जा सकेगा; साथ ही जो थोड़ा-थोड़ा विषय सबमें शेष रह जाता है, उसका अलग से शोध के रूप में अध्ययन किया जा सकता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभी भी हमारे प्राचीन ग्रन्थों में बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जिनका दोहन हम अद्यावधि नहीं कर पाये हैं। इनमें प्रमुख रूप से ब्रह्मगुप्त, वटेश्वर, लल्लाचार्य, मञ्जात, माधवाचार्य, वराहमिहिर आदि हैं। प्राचीन ग्रन्थों की अनुपलब्धता तथा उनका अध्ययन-अध्यापन नहीं हो पाने के कारण ही भास्कराचार्य-रचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ के सिद्धान्तों तथा सूत्रों को समीक्षाकारों ने उनकी स्वयं की ही मूल सोच को स्थान-स्थान पर कह दिया है; जबकि बाद में प्रकाशित ग्रन्थों के अध्ययन करके कुछ विद्वानों ने यह भ्रम कुछ सीमा तक दूर किया। मेरी इस टीका में इस ओर कुछ और कदम आगे बढ़ाने का प्रयास मैंने किया है, जो सम्भवत: सभी विद्वज्जनों को प्रसन्नता प्रदान करेगा।

प्राचीन भारतीय ज्योतिष के दुर्लभ ग्रन्थों को सर्वसुलभ कराना भारत सरकार की भी जिम्मेदारी बनती है। कतिपय प्राचीन ग्रन्थों की कुछ आधुनिक खगोलविदों ने अंग्रेजी भाषा में व्याख्यायें की हैं, लेकिन वे उन्हीं के स्तर के लोगों के समझने तथा आगे अन्वेषण के लिये अधिक सहायक हो सकती हैं। उन व्याख्यायित ग्रन्थों के अध्ययन-क्रम में भारतीय ज्योतिष गणित के विद्वानों को भाषा, गणित की विविधता तथा उच्च स्तर के कारण अत्यधिक परेशानी का अनुभव होना स्वाभाविक है। अत: यह भी आवश्यक है कि भारतीय ज्योतिष ग्रन्थों की हिन्दी में भी व्याख्यायें की जायँ, जिससे इनके अन्वेषण तथा अध्ययन करने वालों की संख्या में वृद्धि हो सके। यत: इन ग्रन्थों की संस्कृत भाषा में भी जो व्याख्यायें प्राचीन आचार्यों ने समय-समय पर की हैं, वे इतनी क्लिष्ट हैं कि उन्हें संस्कृत के ही छात्रों एवं विद्वानों द्वारा समझना मुश्किल हो जाता है; फिर सामान्य लोगों का तो कहना ही क्या है? हिन्दी एक ऐसी सर्वजन-सामान्य भाषा है, जिसको अंग्रेजी, संस्कृत तथा अन्य भाषायें जानने वाले भी जानते तथा समझते हैं। यह भारत की राष्ट्रभाषा भी है। आध्युनिक युग के लिये एक बात और भी आवश्यक है कि व्याख्याओं का प्रणयन सरल भाषा में होने के साथ-साथ पूर्ण रूप से छात्रों को समझ में आने लायक किया जाना चाहिये; लेकिन इसके लिये अध्ययन करने वालों का स्वयं का आधार भी सुदृढ़ होना आवश्यक है।

'लीलावती' को भी आज के समय के अनुरूप लिखने तथा व्याख्यायित करने की आवश्यकता है। लीलावती में कथित सिद्धान्तों तथा आधुनिक गणित के सिद्धान्तों को पढ़ने वाले छात्रों को इन दोनों में समानता या नवीनता दृष्टिगोचर होनी चाहिये। लीलावती में कहे गये तथा आधुनिक गणित के सिद्धान्त लगभग समान ही हैं, बस कहने का ढंग थोड़ा अलग है। कुछ ही बातें भिन्न हो सकती हैं, जिनको स्पष्ट रूप से व्याख्या में प्रकाशित किया जाना चाहिये। भास्कराचार्य ने अपने ग्रन्थों में सरल-सी बात को भी घुमा-फिरा कर क्लिष्ट बनाकर कहा है, जिससे उनकी बातें महान् तथा कठिन प्रतीत होती हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मगुप्त, वटेश्वर, भास्कराचार्य, लल्लाचार्य आदि आचार्यों ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का खण्डन किया है तथ कुछ ने अलग से दूषणाध्याय ही बना दिया है एवं अपने पूर्वाचार्यों के लिये अनेक प्रकार के अपमानजनक शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसा कि भास्कराचार्य ने विशेष रूप से लल्लाचार्य के लिये अपने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर किया है। अत: सिद्धान्तग्रन्थ के 'लक्षणों' में 'दूषणाध्याय' स्वत: ही जुड़ जाता है और यह भी सिद्धान्त ग्रन्थ का एक आवश्यक लक्षण कहा जा सकता है।

यह तो आवश्यक है कि परवर्ती आचार्य इस बात को स्पष्टता से प्रकाशित करें कि उनके पूर्ववर्त्ती आचार्यों के सिद्धान्तों में क्या कमियाँ तथा त्रुटियाँ थीं, जिन्हें उन्होंने किस प्रकार अपने ग्रन्थ में सही किया। लेकिन पूर्ववर्त्ती गुरुतुल्य आचार्यों के लिये अपमानजनक शब्दों का उपयोग करना विशेष रूप से भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है। गुरुतुल्य पूर्वाचार्यों के शास्त्रों का ही तो अध्ययन करके शास्त्र को जाना जाता है, फिर उन्हीं गुरुओं को अपमानित करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। भास्कराचार्य ने पहले लल्लाचार्य के शिष्यधीवृद्धि ग्रन्थ की टीका की तथा उसमें आचार्य के सिद्धान्तों की प्रशंसा की; लेकिन जब स्वयं का सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ लिखा तो सबसे ज्यादा लल्लाचार्य के प्रति ही उन्होंने अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया। यह तथ्य इस व्याख्याग्रन्थ के अध्ययनक्रम में स्थान-स्थान पर स्वष्ट हो जाती है।

भारतीय ज्योतिष के आचार्यों की एक विशिष्ट बात यह रही है कि वे जिस पूर्वाचार्य को लक्ष्य बना लेते थे, उसी की बातों के आधार पर अपने ग्रन्थ की रचना करते थे। चाहे अन्य किसी आचार्य की बातें कितनी ही सही, तर्कपूर्ण तथा ग्रहण करने योग्य क्यों नहीं हों? यह कितनी उचित तथा सही दिशा है, विद्वान् लोग स्वयं विचार करें। लगभग सभी आचार्यों ने एक आचार्य को लक्ष्य बना कर दूसरे की बातों में दूषण खोजने का कार्य ही अपने ग्रन्थ में किया है; लेकिन किसी अन्य आचार्य के मत को भी स्वीकार करके अपने ग्रन्थ में उसका समावेश करते समय किसी ने भी उस आचार्य का उल्लेख अपने ग्रन्थ में नहीं किया है। भास्कराचार्य ने भी इसी परिपाटी का अनुसरण किया है। आचार्यों ने किसी आचार्यविशेष को दूषण देते समय उसके द्वारा कही गई सही बात के लिये भी तथा नहीं की गई बात के लिये भी दूषण कह दिया है। विचित्र बात यह है कि किसी भी ग्रन्थ में किसी भी आचार्य की सराहना नहीं की गई है, न ही उस आचार्य का ग्रन्थ में कहीं उल्लेख ही किया गया है। यदि आचार्य ऐसा नहीं करते तो आज यह बात स्पष्ट रूप से सभी ग्रन्थों में लिखी हुई मिलती कि किस आचार्य का सिद्धान्त तथा सूत्र सही मान कर ग्रन्थ में स्वीकार किया गया है। इसी कारण से यह गलत धारणायें उत्पन्न होती हैं तथा हुई हैं कि कौन-सी बात किस

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्य द्वारा कही गई है? यह निर्णय व्याख्याकार को अथवा पाठक को स्वयं को ही करना पड़ता है और जब तक सारे ग्रन्थों का सूक्ष्मता से अध्ययन नहीं किया गया हो, यह पता लगाना बहुत मुश्किल होता है।

मेरी इस हिन्दी टीका में अन्य कई ग्रन्थों के उद्धरण होने से अन्य ग्रन्थों की व्याख्या भी सुगम हो सकेगी तथा उनके श्लोकों का अर्थ सुगमता से जाना जा सकेगा; साथ ही उनकी समानता-असमानता का भी सहजता से पता लग सकेगा।

आज के समय में ब्रह्मगुप्त का ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, वटेश्वराचार्य का वटेश्वर सिद्धान्त तथा श्रीपति का सिद्धान्तशेखर, इन ग्रन्थों का पुन: गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है। इनमें अभी भी भारतीय ज्योतिर्गणित के बहुत-से धरोहर सुरक्षित हैं, जिनका दोहन करना आवश्यक है। इन ग्रन्थों को सर्वसुलभ कराने की आवश्यकता है तथा इन पर टीकाओं अथवा व्याख्याओं का प्रणयन किया जाना भी बहुत आवश्यक है। इनका अध्ययन-अध्यापन आचार्य तथा उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी रखना आवश्यक है तथा इन पर अन्वेषण कार्य भी गहराई से किया जाना चाहिये, जिसमें कि आधुनिक ज्योतिर्गणित के सिद्धान्तों तथा सूत्रों से तुल्यात्मक अध्ययन भी होने चाहिये। इन ग्रन्थों की व्याख्या तथा अन्वेषण के लिये सभी प्रकार के उपयुक्त विद्वानों के समूह या बोर्ड बनाये जाने चाहिये, जो इस कार्य को उच्च स्तर पर सम्पन्न कर सकें; तभी भारतीय गणित ज्योतिष को सर्वसमृद्ध बनाया जा सकता है।

आर्यभट प्रथम (499 AD) से लेकर भास्कर द्वितीय (1150 AD) तथा इससे भी परवर्ती आचार्यों; जैसे—मुनीश्वर (1620 AD) में परस्पर ज्योतिर्गणित के विभिन्न तत्त्वों को ज्ञात करने के नियमों में अनेक स्थानों पर समानता पाई जाती है। सबसे प्राचीन विचार तथा सिद्धान्त वेदाङ्ग ज्योतिष के समय में प्रतिपादित किये गये थे। इसी प्रकार ब्रह्म, वशिष्ठ, पैतामह, रोमक तथा पौलिश सिद्धान्त भारतीय सिद्धान्तग्रन्थों में समाहित किये गये थे। यहाँ हम निम्नलिखित भारतीय सिद्धान्तग्रन्थों में परस्पर समानतायें, जो हमें प्राप्त होती हैं, उनका उल्लेख करते हैं। ये तथा इनके अतिरिक्त अन्य समानतायें इस हिन्दी टीका के अध्ययन से स्पष्ट हो जायेंगी

1. आर्य—आर्यभटीय—आर्यभट I-499 A.D.
2. ब्र.स्फु.सि.—ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त—ब्रह्मगुप्त-628 A.D.
3. खं. खा.—खण्डनखण्डखाद्य—ब्रह्मगुप्त 628 A.D.
4. क.कु.—कर्णकुतूहल—भास्कर II-1150 A.D.
5. ल.भा.—लघुभास्करीय—भास्कर I-522 A.D.
6. म.भा.—महाभास्करीय—भास्कर I-522 A.D.
7. म.सि.—महासिद्धान्त—आर्यभट II-950 A.D.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

8. पं.सि.—पञ्चसिद्धान्तिका—वराहमिहिर-505 A.D.
9. शि.धी.वृ.—शिष्यधीवृद्धि—ललचार्य-598 A.D.
10. सि.शे.—सिद्धान्तशेखर—श्रीपति-1039 A.D.
11. सू. सि.—आधुनिक सूर्यसिद्धान्त—6 या 7वीं शताब्दी
12. सि.शि.—सिद्धान्तशिरोमणि—भास्कर II-1150 A.D.
13. सि. सा.—सिद्धान्तसार्वभौम—मुनिश्वराचार्य-1620 A.D.

इन सिद्धान्तों में निम्नलिखित सिद्धान्त गणित के तत्त्व ज्ञात करने में समानतायें पाई जाती है—

1. मध्यम सूर्य, बुध तथा शुक्र ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि, म.सि., सि.शे., सि.शि., सि.सा, क.कु.

2. चन्द्रमा का पात ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. अध्याय 25 श्लोक 35, म.भा.I-33, शि.धी.वृ. I, i-57 (ii)

4. बुध का मध्यम शीघ्रोच्च ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. अध्याय 25 श्लो. 34; म. भा. I-36; शि.धी.वृ.I, i-50 (ii)

5. मध्यम शनि ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि.अ. 25 श्लो. 33, शि.धी.बृ. I, i 52 (i); म.भा. I-37

6. मध्यम मंगल ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि.अ.25 श्लो.33, शि.धी.बृ. I-i-50 (i), म.भा. I-38

7. मध्यम गुरु ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि.अ.25 श्लो.33, शि.धी.बृ. I-i-50 (i), म.भा. I-38

8. किसी स्थान की प्रधान मध्याह्न रेखा (Prime Meridian) से दूरी ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. भाग I शलेक 36; शि.धी.बृ. I-57-58 (i), ल.भा. I-25-26, सि.सा. I-143-144

9. दिग्ज्ञान करने में—

ब्र.स्फु.सि. III-1; म.भा. III-2; सू.सि. III-1-4, ल.भा. III-1; शि.धी.बृ. I-iii-1; म.सि. IV-1-2; सिशे. IV 1-3 सि.शि. I-iii 8-9 प्रकारान्तर नियम ब्र.स्फु.सि. III-2; म.भा. III-3, पं.सि.अ. 10-14-16; शि.धी.वृ. I-III-2; सि.शे. IV-4

10. सूर्य के अक्षांश और अक्ष कोटि (Colatitude) तथा नतांश एवं उन्नतांश

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्ञान करने में—

ब्र.स्फु.सि. III-10; म.भा. III-5; सू.सि. III-13-14; ल.भा. III-2-3; शि.धी.वृ. I-iii 4-5; सि.शे. IV-7; सि.शि. I-iii-18

11. क्रान्ति; अहोरात्रवृत्त त्रिज्या (Day-radius) क्षितिजज्या (Earth Sine) तथा चर ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. II-55; सू. सि. II-28; ल.भा. II-16; शि.धी.बृ. I-ii (17); सि.शे.III

12. अक्षदृक्कर्म ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. IV-4; म.भा. IV-1-2; शि.धी.बृ. I-vii 3 (ii); म.सि. VII-4; सि.शे. IV-7

13. अयन हक्कर्म ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. IV-3, X-17; सुधारा गया म.भा. VI-2 ii(3); शि.धी.बृ. I-vii 2-3 (i); सि.शे. IV 4-5; समान म. सि. VII-2-3; अधिक शुद्ध सि.शे. I VIII-4-5

14. चन्द्रोदय ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. VI-6; X-32; म.भा. VI-4-5(i): पं.सि. V-3; शि.धी.बृ. I-VII-5; सि.शे. VI 8(i)-13

15. चन्द्र की कलायें (Phases) ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. VI-11(ii)-12; म.भा. VI-5(ii)7; शि.धी.बृ. I-IX-12

16. चन्द्र बिंब केंद्र की क्रांति ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. VII-5; म.भा. VI-8; शि.धी.बृ. I VIII-2; सि.शे. X-7; अधिक शुद्ध नियम सि.शि. I-vii 3 और 13

17. मास के प्रथम चतुर्थांश में चन्द्रशृंगोन्नति का परिलेखन—

ब्र.स्फु.सि. VII-7-10; म.भा. VI-13-17; शि.धी.बृ. I-ix; सि. शि. I-ix

18. सूर्य से ग्रहों की अल्पतम दूरी जब वे दृश्य होते हैं—

ब्र.स्फु.सि. VI 6; X-32; म.भा. VI-44; शि.धी.बृ. I vii-5(ii) सि.शे. IX-8(i)-12

19. जब दो ग्रहों की युति (Conjunction) हो तब उनके स्थान (Longitude) तथा युति का समय ज्ञात करने में—

ब्र.स्फु.सि. IX-5-6; म.भा. VI 49-51; शि.धी.बृ. Ix 7-9(i) सि.शे.-XI12-12

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

20. जब दो ग्रहों की युति हो तब उनके बीच की दूरी ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. IX-11; म.भा. VI-54; शि.धी.बृ. I-x-11; सि.शे. XI-10

21. मध्याह्न शंकुछाया के द्वारा मध्यमस्पष्ट सूर्य ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. अ.14 श्लो.28; III-61-62; म.भा. VII-5; सि.शि. I ii-45

22. कोज्या ज्या मान से उसका चाप ज्ञात करने में—
ब्र.स्फु.सि. II-11; म.भा. VIII-6; सू.सि. II-33; शि.धी.बृ. I-ii-13; सि.शे. III-16; सि.शि. I-ii 11(ii)-12(i)

इनके अतिरिक्त अन्य भी समानतायें दृगोचर होती हैं।

ब्रह्मगुप्त वेधविधि को अच्छी प्रकार जानते थे तथा अपने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में अनेक विवेचनात्मक विषय तथा अनेक तरह के तात्त्विक विचार भी प्रकट किये हैं। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त की भाँति ही वटेश्वर का वटेश्वरसिद्धान्त है। ये दोनों ही महारथी आचार्य अपूर्व प्रतिभा से सम्पन्न हैं। इनके परवर्ती आचार्यों ने इन्हीं के लिखे हुये दोनों महान् ग्रन्थों में प्रतिपादित विषयों का ही प्रतिपादन अपने-अपने ग्रन्थों में किया है। यह बात इन दोनों ही महान् ग्रन्थों का आद्योपान्त अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाती है। वटेश्वराचार्य ने अहर्गण का आनयन अनेक प्रकार से किया है। इसके लिये अलग से एक सम्पूर्ण अध्याय ही लिख दिया है। श्रीपति ने भी इन्हीं के अनुसार अनेक प्रकार से अहर्गण का आनयन किया है। वटेश्वर ने लघ्वहर्गण का आनयन भी किया है तथा ब्रह्मगुप्त ने भी किया है; लेकिन सिद्धान्तशेखर में इसका उल्लेख नहीं मिलता। भास्कराचार्य ने भी लघ्वहर्गणानयन किया है। यद्यपि यह आनयन ठीक नहीं है, फिर भी एक अपूर्व विषय है। मध्यमाधिकार में बहुत ही उत्तम प्रश्नाध्याय है तथा ब्रह्मस्फुट में भी इसी तरह का है। लेकिन इनसे यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि ये प्रश्न वटेश्वराचार्य के मौलिक हैं अथवा ब्रह्मस्फुट के आधार पर कहे गये हैं।

स्पष्टाधिकार में ब्रह्मगुप्तादि आचार्यों ने वृत्त के एक पाद में 225 कला वृद्धि चापों की 24 ज्याओं के मान साधन किये हैं, जबकि वटेश्वराचार्य ने छप्पन (56) कला पन्द्रह (15) विकला की छियानबे (96) ज्यायें कही है। इष्टचाप के आनयन की विधि एक प्रकार की ही है। वटेश्वर के शेषांशज्यानयन प्रकार को देखकर भास्कराचार्य ने भोग्यखण्ड का स्पष्टीकरण वटेश्वराचार्य के सदृश ही कहा है। वटेश्वर के शेषांशज्यानयन में यदि गतैष्य ज्यान्तरार्ध के स्थान पर गतैष्यखण्ड के अन्तर के आधे तथा प्रथम चाप के स्थान पर दशांश ले लिया जाय तो वटेश्वर तथा भास्कराचार्य दोनों के प्रकार तुल्य ही होते हैं, उनमें भेद नहीं रहता। शेषांशज्या शब्द के द्वारा शेष चापसम्बन्धी ज्यावृद्धि समझनी चाहिये। यह विषय सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने नहीं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहा है। अधिकांश स्थानों पर श्रीपति ने ब्रह्मगुप्त तथा वटेश्वर के द्वारा कथित विषय को ही पुनः कहा है। भास्कराचार्य ने जो भोग्य खण्ड स्पष्टीकरण किया है, उसका मूल ब्रह्मस्फुट सिद्धान्तोक्त अथवा वटेश्वराचार्योक्त शेषांश ज्यानयन ही है। यह उनका अपना प्रकार नहीं है, इसमें कोई सन्देह नहीं होना चाहिये। भास्कराचार्य की विधि वटेश्वर से सूक्ष्म होते हुये भी स्थूल ही है।

गणितसाधित स्वगोलस्थ स्पष्टग्रह में जिस संस्कार को करने से ग्रह हमें प्रत्यक्षीभूत होते हैं, उसी संस्कार को नतकर्म कहा गया है। स्वयं भास्कराचार्य ने कहा है कि उनके द्वारा सूर्य तथा चन्द्र में किया गया नतकर्म संस्कार का आनयन ब्रह्मगुप्त-सम्मत है। यद्यपि इन आचार्यों ने अद्भुत नवीन विषय कहा है, लेकिन उनके आनयन ठीक नहीं हैं, फिर भी आदरणीय अवश्य हैं।

अभी तक यह धारणा थी कि तात्कालिक गति-सिद्धान्त का ज्ञान सर्वप्रथम भास्कराचार्य को हुआ था; लेकिन उनसे भी प्राचीन वटेश्वराचार्य को इसका ज्ञान पहले से था, यह बात भास्करकथित भोग्य खण्ड स्पष्टीकरण, मूलभूत वटेश्वरोक्त शेषांशज्यानयन देखने से स्फुट हो जाती है।

ज्या के विना इष्टज्या का चापानयन वटेश्वर का है तथा उनसे ही लेकर श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर में इसे लिखा है। लेकिन यही प्रकार भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय/लघुभास्करीय में भी दिया है।

भुजकोटिज्यादिसाधन के विना अहर्गण से ही ग्रहस्पष्ट करने की विधि वटेश्वरसिद्धान्त में 'स्वोच्चनीयपरिवर्त्तशेषकाद्.....परिस्फुट' द्वारा कही गई है। यह विषय ब्रह्मस्फुट तथा सिद्धान्तशेखर में भी उल्लिखित है; लेकिन भास्कराचार्य ने इसका उल्लेख नहीं किया है। श्रीपति ने यह विषय अपने सामने आदर्श रूप में उपस्थित वटेश्वरसिद्धान्त तथा ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त से ही ले लिया है तथा इन दोनों ही सिद्धान्तों में इस विषय में जो कुछ भी कहा गया है, उससे विशेष कुछ नहीं कहा है। वटेश्वरसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में अध्याय (1) विषवच्छायानयनविधिः, अध्याय (2) लम्बाक्षज्यानयनविधि द्वितीयः, अध्याय (3) क्रान्तिज्यानयनविधि; अध्याय (4) द्युज्यानयनविधि; अध्याय (5) कुज्यानयनविधि; अध्याय (6) अग्रानयनविधि; अध्याय (7) स्वचरार्धप्राणज्यासाधनविधिः; अध्याय (8) लग्नादिविधि; अध्याय (9) द्युदलभादिविधि; अध्याय (10) इष्टच्छायाविधि; अध्याय (11) सममण्डलप्रवेशविधि; अध्याय (12) कोणशङ्कुविधि; अध्याय (13) छायातोऽर्कानयनाद्यविधि; अध्याय (14) छायापरिलेखनविधि; अध्याय (15) प्रश्नाध्यायविधि—इतने अध्याय दिये हैं। इनमें जिस प्रकार विषयों का वर्णन किया गया है, उससे वटेश्वराचार्य के अद्भुत पाण्डित्य का परिचय मिलता है। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त तथा सिद्धान्तशेखर में कोणशङ्कु-साधन की एक ही विधि लिखित है, लेकिन वटेश्वर-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सिद्धान्त में अनेक प्रकार से कोणशङ्कु-साधन किया गया है। श्रीपति ने भी अन्य आचार्यों की अपेक्षा अधिक प्रकार से कोणशङ्कु-साधन किया है। भास्कराचार्य द्वारा किया गया शङ्कुसाधन श्रीपति तथा वटेश्वरोक्त प्रकार से ही किया गया है। भास्करोक्त कोणशङ्कुसाधन का खण्डन उत्तरगोल में म. म. सुधाकर द्विवेदी ने किया है तथा दक्षिण गोल में खण्डन म. म. बापूदेव शास्त्री ने किया है। भास्करोक्त विधि का इन दोनों आचार्यों द्वारा खण्डन हो जाने से मूलभूत वटेश्वरसिद्धान्तोक्त तथा श्रीपत्युक्त कोणशङ्कु आनयन का भी खण्डन स्वत: ही हो जाता है।

त्रिप्रश्नाधिकार में वटेश्वराचार्य ने जो अनेक प्रकार से दिग्ज्ञान कहा है, उनमें से कुछ अन्य ग्रन्थों में नहीं पाये जाते। भाभ्रम के सम्बन्ध से दिग्ज्ञान की वटेश्वराचार्य की विधि के अनुरूप ही श्रीपति ने भी विधि कही है। वटेश्वर ने सूर्यसिद्धान्त तथा लल्लाचार्य के अनुरूप विधि छायाभ्राभ्रमण मार्गज्ञान के लिये बताई है। वटेश्वराचार्य ने त्रिप्रश्नाधिकार में जो बहुत से प्रश्न कहे हैं, उनमें से बहुत से प्रश्नों के उत्तर सिद्धान्तशेखर में दिये गये हैं। चन्द्रग्रहणाधिकार में सूर्य तथा चन्द्रमा के स्फुट कलाकर्णसाधन प्रकार वटेश्वरसिद्धान्त तथा सिद्धान्तशिरोमणि में एक समान हैं। वटेश्वरसिद्धान्त का प्रकाशन होने के पश्चात् इसके लिये भास्कराचार्य को अब तक दिये जा रहे श्रेय की धारणा दूर हो जाती है। भूभा (राहु) बिम्बानयन जिस प्रकार वटेश्वराचार्य का है, उसी प्रकार श्रीपति तथा भास्कराचार्य ने भी किया है।

वटेश्वरसिद्धान्त भारतीय सिद्धान्तगणित का सबसे विशाल तथा सम्पूर्ण ग्रन्थ है। इसमें दसवीं शताब्दी तक के आचार्यों द्वारा प्रयुक्त समस्त विधियों का समावेश है तथा यह बहुत सीमा तक मूल है एवं इसमें स्वयं वटेश्वर द्वारा प्रतिपादित नवीन विधियों तथा युक्तियों का समावेश है। वटेश्वर के सिद्धान्त पर्सियन विद्वान् अलबरुनि को भी पूर्ण रूप से ज्ञात थे, क्योंकि उन्होंने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर वटेश्वर के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है।

वटेश्वरसिद्धान्त के गोलाध्याय के पाँच अध्याय ही अबतक प्राप्त हो सके हैं जिनका प्रकाशन National Commission for the compilation of History of Science in India द्वारा वटेश्वरसिद्धान्त तथा गोलाध्याय एक ही खण्ड में किया गया है।

भास्कराचार्यकृत सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में श्लोकसंख्या और भी कम हो सकती थी; लेकिन आचार्य ने गोलाध्याय में पूर्व के अनेक श्लोकों को ज्यों का त्यों दुबारा कहा है तथा कई बातों को दुबारा से थोड़ा अन्य प्रकार से कहा है। इन सबकी आवश्यकता नहीं थी। यह पिष्टपेषण दोष है, जो अन्य किसी आचार्य ने अपने ग्रन्थ में नहीं किया है। शायद आचार्य ने अपने ग्रन्थ के श्लोकों की संख्या बढाने की दृष्टि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से ही ऐसा किया है। अपने इस दोष न्यूनता प्रदान करने के लिये ही आचार्य ने प्रश्नाध्याय में कहा है कि क्योंकि लोग इस प्रश्नाध्याय को ही विशेष रूप से पढ़ेंगे; अत: उन्होंने पूर्व में कही बातों को पुन: प्रश्नाध्याय में कह दिया है। यह बात समझ में नहीं आ सकती; क्योंकि इस प्रकार तो समस्त अध्यायों को दुबारा प्रश्नरूप में कहा जा सकता है, जो उचित नहीं है। मेरा गुरु, मेरी अष्टदेवी माँ भगवती नवदुर्गा ही हैं, जिनका ध्यान करके ही मैंने भारतीय ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया है। आधुनिक एस्ट्रोनॉमी का ज्ञान प्राप्त होने के कारण ही भारतीय ज्योतिष को समझने में माँ की कृपा से मुझे कहीं भी अधिक कठिनाई का अनुभव नहीं हुआ। आधुनिक गणित एवं एस्ट्रोनॉमी के अध्यापक ही मेरे गुरु हैं।

प्रस्तुत व्याख्या हिन्दी में ही बहुत विस्तृत हो गई है; अत: इसमें आधुनिक ज्योतिष (Astronomy) के सूत्रों के साथ इस मूल ग्रन्थ के सिद्धान्तों की तुलना मैंने नहीं की है। यदि मैं ऐसा करता तो यह व्याख्या अत्यधिक विस्तृत होने के साथ-साथ सम्भवत: क्लिष्ट भी हो सकती थी तथा छात्रों के लिये भ्रमित करने वाली भी हो सकती थी। सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में कथित तथा सङ्कलित सिद्धान्तों का आधुनिक गणित से तुलनात्मक अध्ययन अलग से व्याख्या में किया जा सकता है, जिसमें उपपत्ति आधुनिक Astronmy तथा आधुनिक गणित के आधार पर करनी होगी। जो आधुनिक एस्ट्रोनॉमी जानते हैं, उन्हें केवल भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्त तथा सूत्रों को ही जानने की आवश्यकता है। उसके आधार पर वे स्वयं ही उनकी परस्पर तुलना कर सकते हैं। अत: इस व्याख्या में केवल भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्तों तथा सूत्रों की व्याख्या भारतीय गणित के आधार पर करके ही बताई गई है। इससे यह जानना सम्भव हो सकेगा कि भारतीय गणित के नियमों के अनुसार प्राप्त सूत्र आज के सूत्रों से कितने स्थूल हैं अथवा कितने तुल्य हैं। इस बात को जानकर भारतीय ज्योतिष के सूत्रों को और शुद्ध किया जा सकता है। सदियों पूर्व गणित की विधाओं का विकास नहीं था; फिर भी जिस सरलता से भारतीयों ने भी ये गणनायें की हैं, वे अचम्भित करने वाली हैं। ग्रन्थ के त्रिप्रश्नाधिकार को मैंने सरल तथा समझ में आने लायक बनाने का प्रयास किया है। इसमें तीन समीकरण (क), (ख), (ग) दिये हैं तथा दो गोल के चित्र दिये हैं, जिनसे कुज्या, द्युज्या, चरज्या, हति, इष्टहति, सूत्र, इष्टसूत्र, इष्टशङ्कु, महाशङ्कु आदि को स्पष्ट रूप से गोल में देखा जा सकता है तथा उन्हें समझा जा सकता है। इनके आधार पर ही अन्य समकोण त्रिभुज तथा अक्षक्षेत्र बना कर आचार्य ने जो अनुपात किये हैं, वे भी समझ में आ सकते हैं।

सदियों से ज्ञान का आदान-प्रदान तो होता ही रहा है। भारतीय तथा पाश्चात्य ज्ञान अपने-अपने देशों की सीमाओं का अतिक्रमण कर परस्पर समन्वय करते ही रहे हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्री कमलाकर भट्ट जी का कहना कि 'भास्कराचार्य द्वारा मात्र ज्या उत्पत्ति का सूत्र ही कहना तथा उनकी उपपत्ति नहीं कहना' इस बात की ओर इशारा करता है कि ये सूत्र आचार्य के स्वयं के नहीं थे। बाहर के अन्य आचार्यों द्वारा प्राप्त सूत्रों को जान कर उन्होंने केवल उन्हें कह भर दिया है। यह बात सत्य ही प्रतीत होती है; क्योंकि जब आचार्य ने अन्य अध्यायों के सभी श्लोकों की उपपत्ति कही है तो ज्योत्पत्ति वासना में कथित सूत्रों की उपपत्ति क्यों नहीं कही? यदि आचार्योक्त सूत्र स्वयं के होते तो वे और भी सूत्र ज्ञात कर सकते थे।

विद्वानों से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि इस व्याख्या में जहाँ-कहीं बुद्धिभ्रम के कारण अथवा अन्य किसी कारणवश कोई त्रुटि रह गई हो तो उसे स्वयं ठीक कर लें तथा इसके बारे में (तत्तत् स्थलों की स्वकृत सही व्याख्या से) व्याख्याकार या प्रकाशक को अवगत कराने की महती अनुकम्पा कर ग्रन्थ को सर्वजनोपयोगी बनाने का कष्ट करें।

भास्कराचार्य से पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के सभी ग्रन्थ प्राप्त नहीं हो पाने के कारण तथा उनका पूर्ण सूक्ष्म अध्ययन मेरे द्वारा नहीं हो पाने के कारण मैं और अधिक उद्धरण यहाँ नहीं दे सका हूँ। विद्वान् आचार्य इस कमी को स्वयं पूर्ण कर सकेंगे, मुझे ऐसा विश्वास है।

मंगलाचरण आदि के कुछ श्लोकों की व्याख्या अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं समझ कर मैंने बहुत सूक्ष्म में ही उनकी व्याख्या की है। पुस्तक के विषयसम्बन्धी महत्त्वपूर्ण श्लोकों को ही इस व्याख्या में अधिक महत्त्व दिया गया है।

पं. सत्यदेव शर्मा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयसूची

विषयाः पृष्ठाङ्काः

गणिताध्यायः

मध्यमाधिकारः

- मङ्गलाचरणम् 1
- पूर्वाचार्याणां प्रशंसनम् 1
- आत्मनः कर्तृत्वारम्भणीयस्य च सम्बन्धार्थवर्णनम् 2
- ग्रन्थस्यानारम्भकारणं विशिष्टमारम्भे कारणान्तरं पूर्वार्धेनाभिधायोत्तरार्धेन सुजनगणकप्रार्थना 2
- सुजनगणकान् प्रार्थयन् प्रयोजनकथनम् 3
- सिद्धान्तग्रन्थलक्षणम् 3
- सिद्धान्तप्रशंसनम् 3
- ज्योतिश्शास्त्रस्य वेदाङ्गत्वम् 5
- वेदाङ्गत्वादवश्यमध्येतव्यं तद्द्विजैरेव नान्यैः 5
- ज्योतिश्शास्त्रमूलभूतस्य संग्रहस्य भचक्रस्य चलनम् 8
- अनाद्यनन्तस्य कालस्य प्रवृत्तिम् 10
- कलिमानानां विभागकल्पनाम् 13
- कालविभागपरिभाषया सौरादीनि तन्मानानि 18
- ब्राह्ममानम् 19
- ब्राह्ममानेऽन्यकथनम् 25
- ब्राह्ममाने कारणान्तरम् 26
- वर्तमानदिनगतवर्णनम् 26
- बार्हस्पत्यं मानुषमानञ्च 29
- मानोपसंहारः 31

भगणाध्यायः

- ग्रहाणां मन्दोच्चानां ग्रहपातानाञ्च भगणमानम् 33

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषया:	पृष्ठाङ्का:
✦ भभ्रममानम्	39
✦ सूर्याहे चान्द्राहमानम्	40
✦ कुदिनमानम्	41
✦ अधिकमास-न्यूनाहमानम्	41
✦ प्रकारान्तरेणाधिमासेन्दुदिनावमानि	41
✦ प्रकारान्तरेण चान्द्रमासदिनक्षयवर्णनम्	42
✦ प्रकारान्तरेणाधिमासज्ञानम्	43
ग्रहानयनाध्याय:	
✦ अहर्गणानयनम्	45
✦ ग्रहानयनम्	47
✦ ज्ञातेऽर्केऽवमशेषाच्चन्द्रज्ञानम्	48
✦ अधिमासावमशेषाभ्यां चन्द्रार्कानयनम्	50
✦ प्रकारान्तरेण ग्रहानयनम्	54
✦ आनयंनप्रकाराणामुपपत्ति:	56
✦ पुन: प्रकारान्तरेण ग्रहानयनम्	59
✦ मध्यग्रहादहर्गणानयनम्	60
✦ अहर्गणादपि कल्पगतज्ञानम्	63
✦ कलिगतादपि अहर्गणादिकम्	64
✦ कलिमुखग्रहकथनम्	64
कक्षाध्याय:	
✦ खकक्षामानम्	66
✦ स्वमतप्रतिपादनम्	67
✦ ग्रहकक्षानयनम्	68
✦ रविचन्द्रनक्षत्रकक्षामानम्	69
✦ ग्रहगतियोजनानि	70
✦ ग्रहानयनम्	71
✦ कक्षानयने विशेष:	73
✦ प्रत्यब्दशुद्धौ सावनदिनाद्यम्	74
✦ प्रकारान्तरेण सावनदिनाद्यम्	77
✦ पुन: प्रकारान्तरेण	77

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ क्षयाहाद्यम्	79
✦ प्रकारान्तरेण क्षयाहाद्यानयनम्	81
✦ प्रकारान्तरेणावमानि	81
✦ गताधिमासानां शुद्धेश्चानयनम्	82
✦ प्रकारान्तरेणाधिमासानयनम्	84
✦ दिनाद्येन विनाऽप्यब्दाधिपानयनम्	85
✦ अवमैर्विनाऽप्यवमशेषघटिकानयनम्	87
✦ रव्यब्दान्तग्रहानयनम्	88
✦ प्रकारान्तरेण चन्द्रध्रुवकम्	89
✦ कलिगतादब्दाधिपानयनम्	89
✦ अहर्गणार्थं क्षेपदिनानि	90
✦ अहर्गणानयनम्	91
✦ अहर्गणानयने विशेषः	93
✦ सूर्यानयनम्	94
✦ चन्द्रानयनम्	95
✦ भौमानयनम्	97
✦ बुधचलानयनम्	99
✦ गुरोः शुक्रचलस्य चानयनम्	101-102
✦ शनेरानयनम्	105
✦ विधूच्चानयनम्	106
✦ पातानयनम्	107
✦ प्रकारान्तरेण ग्रहानयनम्	108
✦ दिनगतिसाधनम्	109
✦ अतुल्यत्वे कारणम्	109

अधिकमासादिनिर्णयाध्यायः

✦ अहर्गणादौ विशेषः	112
✦ लबुदिनौघविषये कथनम्	113
✦ अधिकमासानयने विशेषः	114
✦ शुद्धौ विशेषः	114
✦ अधिकक्षयमासयोः लक्षणम्	115
✦ गतागतक्षयमासकालवर्णनम्	116

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ अधिकमासविषये प्रश्नः	118

भूपरिध्याद्यध्यायः

✦ भूपरिधिव्यासयोर्वर्णनम्	119
✦ भूपरिधिस्फुटीकरणं मध्यरेखास्थानकथनञ्च	122
✦ देशान्तरानयनम्	123
✦ देशान्तरघटिका	125
✦ ग्रहाणां बीजकर्मप्रतिपादनम्	128
✦ अधिकारोपसंहारः	129

स्पष्टाधिकारः

✦ आरम्भप्रयोजनम्	131
✦ अर्धज्याकरणम्	131
✦ चतुर्विंशति ज्याखण्डानि	131
✦ ज्यासाधनम्	133
✦ धनुःकरणम्	135
✦ परमक्रान्तिज्याकथनम्	136
✦ लघुखण्डकैर्ज्यासाधनम्	136
✦ भोग्यखण्डस्फुटीकरणम्	137
✦ भोग्यखण्डस्य धनुःकारणाय स्फुटीकरणम्	140
✦ केन्द्रानयनं विधाय ततो धनर्णकल्पना भुजकोटिकल्पना च	141
✦ ग्रहाणां मन्दपरिधिप्रतिपादनम्	145
✦ भौमादीनां शीघ्रपरिधिकथनम्	146
✦ भुजकोट्योः फलानयनम्	149
✦ प्रकारचतुष्टयेन कर्णानयनम्	151
✦ लघुज्यया लघुप्रकारेण सूर्येन्द्वोः फलानयनम्	156
✦ सूर्यचन्द्रयोर्गतिस्पष्टीकरणम्	157
✦ भौमादीनां शीघ्रफलानयनम्	158
✦ प्रकारान्तरेण फलानयनम्	159
✦ ग्रहस्पष्टीकरणम्	161
✦ गतिस्फुटीकरणम्	164
✦ गतेः शीघ्रफलम्	168

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ लल्लोक्तगतिफलस्य दूषणम्	169
✦ वक्रतासम्भवम्	171
✦ उदयास्तसम्भवम्	172
✦ स्फुटग्रहान्मध्यग्रहानयनम्	176
✦ पलभाज्ञानम्	177
✦ पञ्चज्यासाधनम्	177
✦ प्रकारान्तरेण चरानयनम्	180
✦ दिनरात्रिमानम्	183
✦ ग्रहाणां चरकर्म	184
✦ लङ्कोदयसाधनम्	186
✦ प्रकारान्तरेण लङ्कोदयसाधनम्	187
✦ पुनः प्रकारान्तरेण तदानयनम्	188
✦ निष्पन्नासूनां कथनम्	190
✦ नैपुण्यम्	193
✦ भुजान्तरम्	194
✦ उदयान्तरम्	195
✦ येऽस्योदयान्तरस्य वासनां न बुध्यन्ति तेषां प्रतीत्यर्थमन्यदपि	198
✦ प्रकारान्तरेणौदयिककर्म	199
✦ तिथिकरणभयोगानां साधनम्	201
✦ नतकर्म	202
✦ स्फुटग्रहस्य तात्कालिकीकरणम्	205
✦ सूक्ष्मनक्षत्रानयनम्	206
✦ ग्रहाणां राशिसङ्क्रान्तिमानं भतिथिकरणयोगानां सन्धिमानञ्च	209

त्रिप्रश्नाधिकारः

✦ त्रिप्रश्नारम्भप्रयोजनम्	211
✦ लग्नसाधनम्	211
✦ लग्नात्कालानयनम्	216
✦ विलोमलग्नज्ञानम्	219
✦ दिग्ज्ञानम्	220
✦ दिक्सम्बन्धम्	222
✦ छायातः कर्ण, कर्णाच्छायाज्ञानम्	223

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ शङ्कोर्नामानि, अक्षांशलम्बांशज्ञानम्	224
✦ अक्षक्षेत्राणि	225
✦ लम्बाक्षज्याग्रादिभेदज्ञानम्	233
✦ कोणशङ्कोरानयनम्	233
✦ दिनार्धशङ्कुज्ञानम्	244
✦ शङ्कुदृग्ज्ययोर्ज्ञानम्	245
✦ प्रकारान्तरेण तदानयनम्	246
✦ अन्त्याहत्योरानयनम्	247
✦ अन्त्यातो हृतिं हृतेश्चान्त्याज्ञानम्	248
✦ अन्त्याहृतिभ्यां दिनार्धशङ्कुज्ञानम्	249
✦ दिनार्धदिग्ज्याज्ञानम्	250
✦ प्रकारान्तरेण तदानयनम्	251
✦ छायाकर्णज्ञानम्	252
✦ प्रकारान्तरेण दिनार्धकर्णस्यानयनम्	254
✦ प्रकारान्तरेण तदानयनम्	255
✦ परसंज्ञात्समवृत्तकर्णम्	255
✦ उन्मण्डलकर्णान्मध्यकर्णम्	256
✦ प्रकारान्तरेणोन्मण्डलकर्णात् स्वमवृत्तकर्णाच्च मध्यकर्णज्ञानम्	256
✦ छायाज्ञस्य महत्वम्	257
✦ दिग्ज्याज्ञानम्	258
✦ इच्छादिच्छायानयनम्	258
✦ उक्तछायानयने विशेषः	260
✦ प्रकारान्तरेणेच्छायादिच्छायानयनम्	262
✦ दिच्छायानयने मन्दानां शङ्कायाः परिहारः	265
✦ कालनियमेन छायानयनम्	266
✦ प्रकारान्तरेण कलानयनं विधाय तस्याश्चेष्टयष्टिज्ञानम्	268
✦ प्रकारान्तरेण यष्टिज्ञानम्	269
✦ इष्टान्त्यकाहत्योरानयनम्	269
✦ इष्टशङ्कोरानयनम्	270
✦ नतकालाच्छङ्कोरानयनम्	270
✦ इष्टशङ्कोरानयनम्	271

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ इष्टान्त्यकाहृतिभ्यां शङ्कुज्ञानम्	273
✦ प्रकारान्तरेणेष्टछायाकर्णानयनम्	274
✦ कर्णानयने विशेषकथनम्	274
✦ छायातः कालज्ञानम्	278
✦ प्रकारान्तरेणोन्नतकालज्ञानम्	281
✦ छायातोऽर्कानयनम्	282
✦ क्रान्तिज्ञाने सति पलभाज्ञानम्	284
✦ छायातो भुजज्ञानम्	285
✦ छायाकर्णे भुजेऽर्के च ज्ञाते वार्काज्ञाने भुजद्वये कर्णद्वये च ज्ञाते यः पलभां वेत्ति तस्योत्कर्षम्	289
✦ प्रश्नद्वयम्	290
✦ प्रथमस्योत्तरम्	290
✦ द्वितीयस्योत्तरम्	291
✦ सममण्डलप्रश्नः	294
✦ अस्योत्तरम्	294
✦ अन्यौ प्रश्नौ	295
✦ प्रथमस्योत्तरम्	296
✦ द्वितीयस्योत्तरम्	297
✦ अन्यः प्रश्नः	300
✦ अस्योत्तरम्	300
✦ इष्टप्रभाप्रश्नः	302
✦ अस्योत्तरम्	302
✦ विविधप्रश्नाः सोत्तराः	303
✦ नलकयन्त्रेण ग्रहविलोकनप्रकारः	316
✦ उपसंहारः	320

पर्वसम्भवाधिकारः

✦ पर्वसम्भवज्ञानम्	322
✦ सूर्यग्रहार्थं विशेषः	324

चन्द्रग्रहणाधिकारः

✦ आरम्भप्रयोजनम्	327

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषया:	पृष्ठाङ्का:
✦ ग्रहणोपयोगिनी इतिकर्तव्यताज्ञानम्	327
✦ सूर्यचन्द्रयो: कक्षाव्यासार्धानयनम्	328
✦ योजनात्मककर्णस्य स्फुटीकरणार्थं कलाकर्णज्ञानम्	329
✦ योजनात्मककर्णस्य स्फुटीकरणम्	330
✦ रविचन्द्रबिम्बयोजनानि तथा भूभाविस्तृति:	330
✦ योजनानां कलाकरणम्	333
✦ प्रकारान्तरेण बिम्बकलानयनम्	333
✦ राहो: प्रकारान्तरेण कलाबिम्बम्	336
✦ चन्द्रविक्षेपानयनम्	337
✦ ग्रहणे ग्रासप्रमाणम्	339
✦ स्थितिमर्दार्धयोरानयनम्	341
✦ तयो: स्पष्टीकरणम्	347
✦ इष्टकाले भुजानयनम्	349
✦ इष्टकाले ग्रासप्रमाणम्	349
✦ ग्रासात् तत्कालज्ञानम्	351
✦ स्पर्शादिव्यवस्थिति:	353
✦ वलनानयनम्	354
✦ आयनवलनानयनम्	356
✦ स्पष्टवलनानयनम्	357
✦ अङ्गुललिप्तानयनम्	358
✦ वलनादीनामङ्गुलीकरणम्	360
✦ परिलेख:	361
✦ निमीलनोन्मीलनेष्टग्रासपरिलेख:	363
✦ सम्मीलनादिपरिलेख:	365
✦ इष्टग्रासानयनम्	367
✦ परिलेखेन ग्रासात् कालानयनम्	368
✦ ग्रहणे वर्णज्ञानम्	370
✦ आदेश्यानादेश्यकथनम्	371
✦ उत्क्रमज्यया वलनानयने दोषकथनम्	372

सूर्यग्रहणाधिकार:

✦ आरम्भप्रयोजनम्	374

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ लम्बनस्य भावाभावं धनर्णत्वं च कथयितुमितिकर्तव्यताया: प्रतिपादनम्	374
✦ लम्बनानयनम्	378
✦ प्रकारान्तरेण लम्बनस्फुटीकरणम्	380
✦ लम्बनप्रयोजनम्	385
✦ सकृत्प्रकारेण लम्बनज्ञानम्	387
✦ नत्यर्थमर्केन्द्वोर्दृक्क्षेपौ	391
✦ दृक्क्षेपान्नतिसाधनम्	392
✦ स्फुटनतेरानयनम्	395
✦ सुखार्थं स्थूले लम्बनावनती	396
✦ नते: प्रयोजनम्	397
✦ स्पर्शमोक्षकालज्ञानम्	399
✦ तत्र विशेष:	401

ग्रहच्छायाधिकार:

✦ ग्रहमध्यमविक्षेपा:	406
✦ ग्रहविक्षेपानयनम्	407
✦ विक्षेपस्य क्रान्तिसंस्कारयोग्यतालक्षणमन्यत् स्फुटीकरणम्	408
✦ आयनदृक्कर्मसाधनम्	410
✦ आक्षजदृक्कर्मसाधनम्	412
✦ उदयास्तलग्नयो: स्वरूपं प्रयोजनञ्च	417
✦ ग्रहस्य दृश्यत्वलक्षणम्	417
✦ ग्रहस्य छायार्थं द्युगतम्	418
✦ क्रान्ते: स्फुटत्वं कृत्वा छाया साधनातिदेशम्	419
✦ अत्रापि विशेष:	420
✦ तेषां दूषणस्य निराकरणम्	422

ग्रहोदयास्ताधिकार:

✦ नित्योदयास्तयोर्गतगम्यलक्षणम्	423
✦ तदन्तरघटिकाज्ञानम्	424
✦ अर्कासन्नभावेन उदयास्तौ	424
✦ बुधशुक्रयोर्विशेष:	426

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषया:	पृष्ठाङ्का:
✦ ग्रहाणां कालांशा:	426
✦ इष्टकालांशानयनम्	429
✦ तैरुदयास्तयोर्गतैष्यता प्रतिपादनम्	429
✦ अत्र विशेष:	432

शृङ्गोन्नत्यधिकार:

✦ चन्द्रशङ्क्वर्थकथनम्	433
✦ अर्कशंक्वर्थशङ्कुतलार्थकथनम्	435
✦ भुजज्ञानम्	436
✦ कोटिज्ञानम्	437
✦ दिग्वलनसाधनम्	439
✦ चन्द्रस्य परिलेखसूत्रानयनयोग्यतां कर्तुं संस्कारविशेष:	439
✦ परिलेखसूत्रम्	443
✦ परिलेख:	445
✦ ब्रह्मगुप्तकथने दूषणम्	448

ग्रहयुत्यधिकार:

✦ ग्रहाणां मध्यमबिम्बानि	450
✦ आसां स्फुटीकरणम्	451
✦ युतिकालज्ञानम्	453
✦ स्थूलकालमानीय सूक्ष्मकथनम्	455
✦ दक्षिणोत्तरान्तरज्ञानम्	457
✦ भेदयोगलम्बनज्ञानम्	458

भग्रहयुत्यधिकार:

✦ भध्रुवका:	461
✦ भानां शरांशा:	462
✦ अगत्स्यलुब्धकयो: ध्रुवका:	464
✦ इष्टघटिकानयनम्	466
✦ भग्रहयुतौ पूर्वकर्तव्यता	467
✦ युतिकालज्ञानम्	467
✦ युतिप्रसङ्गेन भानामुदयास्तज्ञानम्	468
✦ अत्र विशेष:	470

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ कालान्तरवशेन विशेषः	472

पाताधिकारः

✦ आरम्भप्रयोजनम्	474
✦ सूर्यस्य गोलायनसन्धिप्रतिपादनम्	474
✦ चन्द्रस्य विशेषः	475
✦ साधारण्येन क्रान्तिसाम्यसम्भवज्ञानम्	480
✦ व्यतिपातवैधृतयोर्लक्षणम्	481
✦ क्रान्तिसाम्यस्य गतैष्यत्वप्रतिपादनम्	483
✦ तस्मात् कालाद्गतगम्यस्य क्रान्तिसाम्यकालस्य परिज्ञानम्	485
✦ पाताद्यन्तकालपरिज्ञानम्	489
✦ स्थित्यर्धोपपत्तिः	491
✦ अत्र विशेषः	492
✦ पातप्रयोजनम्	493

गोलाध्यायः

गोलप्रशंसा

✦ मङ्गलाचरणम्	1
✦ गोलग्रथनकारणम्	2
✦ गोलप्रशंसया गोलानभिज्ञगणकोपहासः	3
✦ गोलस्वरूपम्	4
✦ गणितप्रशंसा	5
✦ ज्योतिश्शास्त्रश्रवणाधिकारिलक्षणम्	6
✦ व्याकरणाध्ययनं प्रथममावश्यकम्	6
✦ अन्योक्तिप्रकारेण आत्मनो गोलग्रन्थस्य वैशिष्ट्यम्	7

गोलस्वरूपप्रश्नाध्यायः

✦ भूसंस्थानप्रश्नाः	8
✦ ग्रहस्फुटीकरणोपपत्तिप्रश्नाः	8
✦ त्रिप्रश्ने दिनमानभेदे प्रश्नाः	9
✦ राश्युदयभेदप्रश्नः	9
✦ द्युज्याकुज्यादिसंस्थानप्रश्नाः	10
✦ चन्द्रार्कग्रहणयोर्दिक्कालभेदाद्युपपत्तिप्रश्नाः	10

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषया:	पृष्ठाङ्का:
✦ शृङ्गोन्नतौ चन्द्रशुक्लस्य क्षयवृद्धिप्रश्न:	11

भुवनकोश:

✦ मङ्गलाचरणम्	12
✦ भूमे: स्वरूपम्	15
✦ पौराणिकभूमेराधारपरम्पराया निराकरणम्	17
✦ भूमौ स्वशक्तिकथनम्	19
✦ भूविषये बौद्धादियुक्ति:	20
✦ बौद्धयुक्तिभङ्गम्	21
✦ जैनयुक्तिभङ्गम्	22
✦ भूमे: समताया निराकरणम्	23
✦ प्रत्यक्षविरोधशङ्काया: परिहार:	24
✦ स्वोक्तस्य भूपरिधिप्रमाणस्योपपत्ति:	25
✦ पूर्वोक्तस्य दृढता	25
✦ भूगोले पुरनिवेश:	26
✦ द्वीपानां समुद्राणाञ्च स्थाननिर्देश:	30
✦ जम्बूद्वीपमध्ये गिरिनिवेशवशेन नवखण्डानां ज्ञानम्	31
✦ मेरुसंस्थानम्	34
✦ अन्यविशेष:	37
✦ भारतस्यापि मध्ये नवखण्डानां कुलाचलानाञ्च कथनम्	39
✦ लोकव्यवस्था	40
✦ दिग्व्यवस्थिति:	41
✦ अत्र विशेष:	42
✦ भचक्रभ्रमणव्यवस्था	42
✦ ध्रुवर्क्षसंस्थानम्	44
✦ विशेषार्थं भूपरिधिमानम्	45
✦ लल्लोक्तभूपृष्ठफलस्य दूषणम्	46
✦ गोलपृष्ठफलोपपत्ति:	47
✦ प्रकारान्तरेण गोलपृष्ठफलोपपत्ति:	47
✦ भूमे: प्रलयभेदौ प्रलयाश्च	49
✦ ब्रह्माण्डगोलकथनम्	50

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयाः	पृष्ठाङ्काः

मध्यगतिवासना

- भूमेरुपरि सप्तवायवः 52
- ग्रहाणां पूर्वगतिमनुपलक्षितामपि दृष्टान्तेन दृढीकरणम् 53
- भदिनपूर्वकं रवेः स्फुटसावनम् 54
- वर्षमध्ये सावनसङ्ख्याकथनम् 55
- चान्द्रमासलक्षणम् 56
- अधिमासोपपत्तिः 57
- अवमोपपत्तिः 59
- अहर्गणात् कल्पगतमानेतुं विलोमविधिना यान्यवमान्यानीतानि ये चाधिमासास्तेषां विशेषः 59
- प्रश्नाध्याये विशेषप्रश्नः 60
- उक्तस्योत्तरम् 60
- उदयान्तराख्यकर्मोपपत्तिः 63
- उदयान्तरकर्म 64
- देशान्तरस्वरूपम् 66
- रेखादेशाः 66
- भूगोले स्फुटपरिधिदेशं स्फटानुपातं च 68

छेद्यकाधिकारः

- ज्योत्पत्तिकथने कारणज्ञानम् 69
- जीवाक्षेत्रसंस्थानम् 69
- स्पष्टीकरणे फलस्योत्पत्तिः 75
- कालविलम्बेन प्रतारणपरं वाक्यमिति ज्ञात्वा शिष्यैः पुनः पृष्टस्तस्योत्तरम् 75
- विलिख्य छेद्यकज्ञानम् 76
- फलानयन इतिकर्तव्यतोपपत्तिः 78
- मन्दस्फुटं मध्यमं प्रकल्प्य शीघ्रफलसाधने युक्तिः 80
- उच्चोपपत्तिः 81
- नीचोच्चवृत्तभङ्गिः 82
- कर्णानयनं फलञ्च 84
- मिश्रभङ्गिः 86

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ मन्दशीघ्रकर्मद्वयेन स्फुटत्वे कारणम्	87
✦ मन्दकर्मणि कर्णः किं न कृतस्तस्योत्तरम्	88
✦ नतकर्मवासना	89
✦ गतिफलाभावस्थानम्	90
✦ ग्रहस्य वक्रत्वं छेद्यके यथा शीघ्रं दृश्यते तदर्थकथनम्	91
✦ केन्द्रसंज्ञास्फुटकक्षयोः ज्ञानम्	91
✦ भुजान्तरकर्मोपपत्तिः	92
✦ छेद्यकोपसंहारेण गणकप्रज्ञावर्णनम्	93

गोलबन्धाधिकारः

✦ गोलरचनाक्रमः	94
✦ गोलबन्धः	94
✦ तत्र विशेषः	95
✦ उन्मण्डलविषुवन्मण्डलदृङ्मण्डलानां लक्षणम्	96
✦ तत्र विशेषः	98
✦ दृग्गोललक्षणम्	99
✦ भगोलबन्धः	100
✦ क्रान्तिवृत्तं, क्रान्तिवृत्तस्य च निवेशनम्	100
✦ विमण्डललक्षणम्	102
✦ क्रान्तिविक्षेपः	103
✦ क्रान्तिपातः	104
✦ विक्षेपपाताः	106
✦ ज्ञशुक्रयोर्विशेषः	108
✦ ग्रहगोले विशेषः	109
✦ अहोरात्रवृत्तम्	111

त्रिप्रश्नवासना

✦ चरस्थानम्	114
✦ लङ्कास्वदेशार्कोदययोरन्तरं चरकालकथनम्	114
✦ चरफलस्य धनर्णवासना	115
✦ दिननिशोर्लघुत्वमहत्वे हेतुः	115
✦ विशेषः	116

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ मेरुसंस्थानम्	117
✦ दिनरात्रिस्वरूपे पितृदिनञ्च	118
✦ संहितोक्तस्याभिप्रायः	118
✦ पितृदिवसस्योदयास्तादिकालाः	119
✦ ब्रह्मदिनोपपत्तिः	120
✦ उदयास्तवासना	120
✦ चरखण्डैरुदयानां न्यूनाधिकत्वम्	123
✦ अस्तमयज्ञानम्	124
✦ अत्र विशेषः	125
✦ लग्नशब्दव्युत्पत्त्योदयास्तमध्यलग्नस्थानानि	125
✦ लग्नार्थमर्कस्य तात्कालिकीकरणवासना	125
✦ देशविशेषेण राशयः सदोदिताननुदिताः	127
✦ लल्लोक्तस्य दृश्यादृश्यत्वलक्षणस्य दूषणम्	128
✦ अन्यदूषणम्	129
✦ अक्षलम्बज्ञानम्	130
✦ संक्षिप्तशङ्क्वानयनवासना	130
✦ केषाञ्चिद्दूषणम्	130
✦ शङ्कुस्थानम्	131
✦ अग्रा, उदयास्तसूत्रलक्षणम्	132
✦ क्रान्तिक्षेत्रं, अक्षक्षेत्राणि	133

ग्रहणवासना

✦ चन्द्रार्कग्रहणयोः स्पर्शे मोक्षे च दिग्व्यत्ययस्योपपत्तिः	134
✦ नतिलम्बनयोः कारणम्	136
✦ छादकनिर्णयः	138
✦ किं ते सिद्धे कुतः कुत इति प्रश्नस्योत्तरम्	140
✦ छेदकप्रकारेण लम्बनम्	141
✦ नत्युपपत्तिः	143
✦ स्फुटलम्बनज्ञानम्	144
✦ वलनवासना	145

उदयास्तवासना

✦ उदयेऽस्ते च दृक्कर्मकारणकथनम्	161

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ तत्कर्मज्ञानम्	161
✦ शरस्य स्पष्टीकरणम्	163
✦ ब्रह्मगुप्तादिभिः किं स्पष्टो नोक्त इत्याशङ्का	164
✦ सदूषणमुपहासः	164
✦ उत्क्रमज्यानिवृत्तिः	165
✦ तद्व्यभिचारः	165
✦ तन्मतिभ्रमे कारणकथनम्	166
शृङ्गोन्नतिवासना	
✦ शुक्लत्वे कृष्णत्वे कारणप्रतिपादनम्	168
✦ उपसंहारः	169
यन्त्राध्यायः	
✦ आदौ तदारम्भप्रयोजनम्	170
✦ गोलयन्त्रलक्षणम्	171
✦ नाडीवलययन्त्रकथनम्	172
✦ घटिकायन्त्रवर्णनम्	173
✦ शङ्कुचक्रयोर्लक्षणम्	174
✦ वेधेन ग्रहज्ञानम्	177
✦ चापयन्त्रतुर्ययन्त्रलक्षणम्	178
✦ फलकयन्त्रप्रतिपादनम्	179
✦ यन्त्रोपकरणम्	181
✦ यष्टिसाधनम्	182
✦ यष्टिप्रयोजनम्	184
✦ एतावत्यभीष्टे काले नते क्वच्छाया लगिष्यतीत्येतदर्थवर्णनम्	185
✦ यष्टियन्त्रलक्षणम्	186
✦ अन्यत्किञ्चित्	187
✦ केवलदिग्ज्ञाने सत्यक्षभा	188
✦ उद्यन्तमर्कमष्टापि	188
✦ दिग्देशकालानामज्ञाने केवलार्कदर्शनादेव सर्वम्	190
✦ कालज्ञानम्	191
✦ धीयन्त्रं विवक्षुरादौ तत्प्रशंसा	193

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
✦ यष्ट्या वेधेन पलभाज्ञानम्	193
✦ वंशादिवेधम्	195
✦ केवलाग्रवेधेन कथनम्	198
✦ जलान्तर्वेधः	201
✦ किंवा यष्ट्येत्यस्योदाहरणम्	202
✦ स्वयंवहयन्त्रलक्षणम्	203
✦ अस्मिन्नन्योपरि आक्षेपः	204

ऋतुवर्णनाध्यायः

✦ ऋतूनां वर्णनम्	206-212

प्रश्नाध्यायः

✦ आरम्भप्रयोजनम्	213
✦ बुद्धमतः प्रशंसा	213
✦ विविधप्रश्नोत्तराणि	214
✦ सिद्धान्तग्रथनकालकथनम्	238
✦ ज्योत्पत्तिः	241
अनुबन्धः 1—शुद्ध अहर्गण साधनसूत्र	1
अनुबन्धः 2—पारिभाषिक शब्दावली	19
अनुबन्धः 3—संख्या शब्दों की सूची	76

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गणिताध्यायः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१

मध्यमाधिकारः

(अ) कालमानाध्याय

तत्रादौ तावदभीष्टदेवतां मनोवाक्कायैर्नमस्कृत्य तस्याः सकाशादभीष्टार्थस्याशंसनमाह—

यत्र त्रातुमिदं जगज्जलजिनीबन्धौ समभ्युद्गते
ध्वान्तध्वंसविधौ विधौतविनमन्निः शेषदोषोच्चये।
वर्त्तन्ते क्रतवः शतक्रतुमुखा दीव्यन्ति देवा दिवि
द्राङ्नः सूक्तिमुचं व्यनक्तु स गिरं गीर्वाणवन्द्यो रविः॥१॥

सूर्य-प्रभा टीका— भगवान भास्कर हमारी वाणी को अर्थपूर्ण शब्दों से पूर्ण वाक्य शैली प्रदान करें। जो सूर्य देव उदित होकर इस विश्व की रक्षा करते हैं तथा जगत का अंधकार दूर करते हैं एवं जो उनकी प्रार्थना करने वालों के पापों का नाश करते हैं, जिनके उदित होने पर पंचमहायज्ञ आदि कर्म संस्कार प्रवृत्त होते हैं जिससे अग्नि के मुख में आहुतियाँ देने से इन्द्रादि देवता अपना यज्ञ भाग (अंश) ग्रहण करके प्रसन्न होते हैं और प्राणियों को स्वर्ग प्रदान करते हैं। ऐसे भगवान सूर्य देवताओं से भी वंदित होते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा भी रात्रि में उदित होकर रात्रि का अंधकार दूर करता है तथा उसको देखकर उसकी रश्मियों से उल्लासित होकर जलकुमोदिनी खिल उठती है। सूर्य चन्द्रमा को विनम्र नमस्कार करने से शेष दोषों का नाश हो जाता है। इस प्रकार ग्रंथारंभ में आचार्य ने अभीष्ट देवता को मनोवाक्यों द्वारा नमस्कार किया है तथा कामना की है कि अभीष्ट की प्राप्ति हो तथा विघ्न शांत हों। इस प्रकार शुभ की कामना की है।

इदानीं पूर्वाचार्याणां प्रशंसनं सविनयमाह—

कृती जयति जिष्णुजो गणकचक्रचूडामणि-
र्जयन्ति ललितोक्तयः प्रथिततन्त्रसद्युक्तयः।
वराहमिहिरादयः समवलोक्य येषां कृतीः
कृती भवति मादृशोऽप्यतनुतन्त्रबन्धेऽल्पधीः॥२॥

पूर्वाचार्यों की प्रशंसा में सविनय—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रंथ रचना से पूर्व आचार्य ने सर्वप्रथम वराहमिहिर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आदि पूर्ववर्ती आचार्यों की स्तुति करके और उनका स्मरण करके उनके प्रति आचार्य की गहरी श्रद्धा उक्त पद्य से सुस्पष्ट रूप में की है। आचार्य कहते हैं कि मैं, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि आचार्यों के समान गणक चूड़ामणि आचार्यों की विस्तृत सद्कृतियों का ठीक प्रकार से अवलोकन करके अपनी अल्प बुद्धि से मृदु अर्थात् सरल तथा आनन्द देने वाले तन्त्र की रचना करता हूँ।

इदानीमात्मनः कर्तृत्वारम्भणीयस्य च सम्बन्धार्थमाह—

कृत्वा चेतसि भक्तितो निजगुरोः पादारविन्दं ततो
लब्ध्वा बोधलवं करोति सुमतिप्रज्ञासमुल्लासकम्।
सद्वृत्तं ललितोक्तियुक्तममलं लीलावबोधं स्फुटं
सत्सिद्धान्तशिरोमणिं सुगणकप्रीत्यै कृती भास्करः॥३॥

उनसे संबंध बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— निज गुरु चरणारविन्द की ध्यानपूर्वक भक्ति करने से आचार्य को सुमति की प्राप्ति तथा प्रज्ञा की वृद्धि हुई है। आचार्य अज्ञान के मैल को धोने के लिए, सद्वृत्ति गणक की प्रसन्नता के लिए रुचिकर, आनन्द देने वाले सत् स्फुट गणना करने वाले तथा युक्तियुक्त "सिद्धान्त शिरोमणि" नामक ग्रंथ की रचना कर रहे हैं।

इदानीं ग्रन्थस्यानारम्भकारणं विशिष्टमारम्भे कारणान्तरं पूर्वार्धेनाभिधायोत्तरार्धेन सुजनगणकान् प्रार्थयन्नाह—

कृता यद्यप्याद्यैश्चतुरवचना ग्रन्थरचना
तथाऽप्यारब्धेयं तदुदितविशेषान् निगदितुम्।
मया मध्ये मध्ये त इह हि यथास्थाननिहिता
विलोक्याऽतः कृत्स्ना सुजनगणकैर्मत्कृतिरपि॥४॥

ग्रंथारंभ का विशिष्ट कारण श्लोक के पूर्वार्ध में कहकर उत्तरार्ध में सुजनगणकों से प्रार्थना की है—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि वे यद्यपि आरंभ से ही ज्ञानपूर्ण चतुर वचनों से श्लाघ्य ग्रंथरचना करेंगे, लेकिन फिर भी वे पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा कही गई विशेष बातों का उल्लेख उनके इस ग्रंथ में बीच-बीच में यथा स्थान पर करते रहेंगे, जिससे सुजन (सुविज्ञ) गणक उनका भी अवलोकन कर सकेंगे। तथा कहा है कि मेरे द्वारा रचित इस ग्रंथ में सुजनगणों को पूर्वाचार्यों से भिन्न (विपरीत) कई बातें भी स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होंगी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं सुजनगणकान् प्रार्थयन् प्रयोजनमाह—

तुष्यन्तु सुजना बुद्ध्वा विशेषान् मदुदीरितान्।
अबोधेन हसन्तो मां तोषमेष्यन्ति दुर्जनाः ॥५॥

सुविज्ञ गणकों को प्रार्थना का प्रयोजन—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि उनकी इस कृति (ग्रंथ) को सुजन (सुविज्ञ) लोग पढ़ कर तथा समझकर तृप्त होंगे, तथा विशेष रूप से मुदित होंगे। लेकिन जिन की समझ से यह परे है वे दुर्जन लोग अपनी सञ्छन्न मति के कारण मेरी इस कृति को पढ़कर समझ नहीं पाने के कारण मुझ पर हँसेंगे तथा दोष निकालेंगे, वे संतुष्ट नहीं होंगे।

अथैकश्लोकेन सिद्धान्तग्रन्थलक्षणमनन्तरश्लोकद्वयेन सिद्धान्तप्रशंसां चाह—

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः ॥६॥
जानन् जातकसंहिताः सगणितस्कन्धैकदेशा अपि
ज्योतिः शास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेष्वकिञ्चित्करः।
यः सिद्धान्तमनन्तयुक्तिविततं नो वेत्ति भित्तौ यथा
राजा चित्रमयोऽथवा सुघटितः काष्ठस्य कण्ठीरवः ॥७॥
गर्जत्कुञ्जरवर्जिता नृपचमूरप्यूर्जिताऽश्वादिकै-
रुद्यानं च्युतचूतवृक्षमथवा पाथोविहीनं सरः।
योषित् प्रोषितनूतनप्रियतमा यद्वन्न भात्युच्चकै-
र्ज्योतिः शास्त्रमिदं तथैव विबुधाः सिद्धान्तहीनं जगुः ॥८॥

अब एक श्लोक में सिद्धान्त ग्रन्थ के लक्षण तथा बाद के दो श्लोकों में सिद्धान्त की प्रशंसा की गई है—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रुट्यादि से लेकर प्रल्यान्त काल तक की काल गणना का मान जो बताता है, सोदाहरण द्विधा गणित से खगोल संबंधी प्रश्नों के उत्तर देने वाला; दिवस (सावन, सौर, चांद्र), नक्षत्र आदि के मानों का भेद प्रतिपादित करने वाला, व्यक्त और अव्यक्त गणित (अंक गणित, बीज गणित, रेखा गणित, त्रिकोणमिति आदि) वाला; पृथ्वी, नक्षत्र और ग्रहों की गति, स्थिति, आकार आदि का वर्णन करने वाला; यन्त्रादि का निर्माण तथा उनका

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्णन करने वाला; गति विधि ज्ञापक गणित स्कन्ध बताने वाला जो शास्त्र है उसको सिद्धान्त कहते हैं। गणित स्कन्ध वह होता है जिसमें व्यक्त, अव्यक्त आदि अनेक प्रकार के गणित का वर्णन हो। यह स्कन्ध सिद्धान्त स्कन्ध के अंदर ही आता है॥६॥

विशेष— भास्कराचार्य ने सिद्धान्त ग्रंथ के लक्षण के विषय में वटेश्वराचार्य से कुछ विशेष कहा है जैसे यंत्रादि के लिए।

वटेश्वर सिद्धान्त मध्यामाधिकार प्रथम अध्याय में यंत्रादि के अतिरिक्त आचार्योक्त ही कहा है, यथा–

"समयमितिरशेषा सावनं खेचराणां गणितमखिलमुक्तं यत्रकुट्टाद्युपेतम्।
ग्रहभगणमहीनां संस्थतिर्यत्र सम्यक् स खलु मुनिवरिष्ठैः स्पष्टराद्धान्त उक्तः॥५॥"

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने सिद्धान्त लक्षण इसी प्रकार कहा है, यथा—

"शतानन्दध्वस्ति प्रभृतित्रुटिपर्यन्तसमयप्रमाणं भूधिष्ण्यग्रहनिवहसंस्थान-कथनम्। ग्रहेन्द्राणां चाराः सकलगणितं यत्र गदितं स सिद्धान्तः प्रोक्तो विपुल गणितस्कन्धकुशलै॥ अ.१श्लोक ३॥"

सूर्य-प्रभा टीका— जातक, संहिता तथा गणित, त्रिस्कन्ध में किसी को भी जान करके ज्योतिष शास्त्र के विचार (जानने) से किसी भी प्रश्न का उत्तर बड़ी योग्यता पूर्ण ढंग से किंचितकर ही दिया जा सकता है। सिद्धान्त ग्रंथ से अनन्त युक्ति से ग्रहादि चालन का ज्ञान विस्तृत रूप से ज्ञात किया जा सकता है। त्रिस्कन्ध (जातक, संहिता, गणित) ज्योतिष के मात्र जातक शास्त्र का ज्ञान रखने वाले दैवज्ञ की आचार्य के अनुसार कोई महत्त्वता नहीं होती। पक्ष-विपक्ष के अनन्त तर्कों से सिद्ध सिद्धान्त गणित को जो ज्योतिषी नहीं जानता वह भित्ति (दीवार) पर बनाये गये चित्र; काष्ठ से बनाये गये गर्जनाहीन सिंह तथा पंक्तिरहित हाथी, अश्व व बिना घोड़ों एवं सेना के राजा, बिना आमके वृक्षों के नीरस उद्यान; जल विहीन तालाब; यौवना स्त्री के परदेश गया हुआ पति का वियोग, जिस प्रकार शोभा नहीं पाते उसी प्रकार यह जगत भी ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त से विहीन होने पर प्रकाशित नहीं होता अर्थात् शोभा नहीं पाता। (ज्योतिष) ग्रह गणित सिद्धान्त से रहित ज्योतिषी की भी ऐसी ही स्थिति कही गई है॥७-८॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं ज्योतिः शास्त्रस्य वेदाङ्गत्वं निरूप्य वेदाङ्गत्वादवश्यमध्येतव्यं तद्द्विजैरेव नान्यैः शूद्रादिभिरित्येतत्प्रतिपादनार्थ श्लोकचतुष्टयमाह—

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद्वेदाङ्गत्वं ज्यौतिषस्योक्तमस्मात्॥९॥

ज्योतिष के वेदाङ्गत्व का निरूपण शूद्रादि के लिए इसका अध्ययन वर्जित—

सूर्य-प्रभा टीका— वेदों में कहे गये, यज्ञ कर्म प्रवृत्ति के लिए, जो यज्ञादि कर्म कहे गये हैं वे काल के अधीन हैं। अतः जिस शास्त्र से काल का बोध होता है वह वेदाङ्ग है अर्थात वह शास्त्र वेदों का अंग है। ज्योतिष शास्त्र क्योंकि काल की गणना करता है तथा काल का बोध कराता है, अतः यह वेदाङ्ग है।

वेद शास्त्र हमें यज्ञ कर्म करने के लिए प्रवृत्त करता है। शुभ काल में यज्ञादि शुभ कर्म सफल होते हैं तथा दूषित काल में किये गये अभीष्ट कार्य असिद्ध होते हैं। शुभ-अशुभ काल तथा तिथि-वारादि का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र के द्वारा होता है, अतः यह वेदों के छः अंगों में से एक अंग है। यह भास्कराचार्य ने इस श्लोक में कहा है।

शब्दशास्त्रं मुखं ज्यौतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ।
या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः॥१०॥

सूर्य-प्रभा टीका— शब्दशास्त्र अर्थात् व्याकरण वेदों का मुख है, ज्योतिष शास्त्र चक्षु है, निरुक्त कर्ण (कान) हैं, इनकी शिक्षा नासिका है तथा छन्द वेदों के दोनों पैर हैं और कल्प उसके हाथ हैं। ये सभी वेदों के ज्ञान प्रवर्तक होने से वेदों के छः अंग शास्त्र कहे गये हैं।

वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येस्य तेनोच्यते।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाऽङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः॥११॥

सूर्य-प्रभा टीका— (वेदों के) सभी छः अंगों में चक्षु की मुख्यता होने के कारण ज्योतिष शास्त्र को इनमें मुख्य कहा गया है। क्योंकि कर्ण, नासिकादि अंगों में यदि चक्षु न हो तो शेष अंगों के होने पर भी कुछ नहीं होने के तुल्य है। नेत्रों के न होने पर कोई भी कुछ नहीं कर सकता।

तस्माद्द्विजैरध्ययनीयमेतत् पुण्यं रहस्यं परमं च तत्वम्।
यो ज्यौतिषं वेत्ति नरः स सम्यग्धर्मार्थकामाँल्लभते यशश्च॥१२॥

सूर्य-प्रभा टीका— इन सब कारणों से ज्योतिष शास्त्र द्विजों (जो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यज्ञोपवीत धारण करते हैं) के लिए अध्ययन करने योग्य हैं तथा इसके तत्त्व का रहस्य परम पुण्यकारी है। जो मनुष्य ज्योतिष शास्त्र जानता है, उसे समस्त धर्म, कामनाओं तथा यश की प्राप्ति होती है।

अर्थात् सर्व शास्त्रों के अध्ययन की महत्त्वता होते हुए भी ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान की परिपक्वता से वेदोक्त धर्म, कर्म, नीति, भूत, भविष्यादि के ज्ञान पूर्वक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

विशेष— श्लोक ९ से १२ में भास्कराचार्य ने ज्योतिष शास्त्र की प्रधानता बताई है, इसको अध्यन करने के अधिकारी तथा इसके फल को बताया है। अब अन्य आचार्यों ने अपने-अपने ग्रंथों में इस विषय में क्या कहा है? उसका थोड़ा अवलोकन करते हैं।

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के मध्यमाधिकार अध्याय १ में कहा है—

"श्रुत्युत्तमाङ्गमिदमेव यतो नियोगः कालेऽयनर्तुतिथिपर्वदिनादि पूर्वैः।
वेदीककुब्भवनकुण्ड-तदन्तरादि ज्ञेयं स्फुटं श्रुतिविदां बहुमत्यमस्मात्॥४॥"

अर्थात् उत्तरायण-दक्षिणायन, वसन्तादि ऋतु, प्रतिपदादि तिथि, ग्रहण, संक्रान्ति रवि आदि दिन, इन कालों में वेदविहित कर्मों का विनियोग होता है, और यज्ञवेदी, यज्ञमण्डल कुण्डादियों की रचना और उनमें दिशा-ज्ञान-दैर्घ्य-विस्तार आदि ज्ञान ज्योतिष शास्त्र से होता है। अतः वैदिकों की बहुसम्मति से ज्यौतिष शास्त्र को वेद का प्रधान अंग (नेत्र रूप) कहा गया है॥

आचार्य ने अध्ययन अध्यापन आदि विषयों की चर्चा नहीं करके वेदी, ककुब्भवन, कुण्ड, तदन्तरादि विशेष बातें कही हैं।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी ज्योतिष शास्त्र के वेदाङ्गत्व पर कहा है—

"क्रतुक्रियार्थं श्रुतयः प्रवृत्ताः कालाश्रयास्ते क्रतवो निरुक्ताः।
शास्त्रादमुष्मात् किल कालबोधो वेदाङ्गतामुष्य ततः प्रसिद्धा॥
छन्दः पादौ शब्दशास्त्रञ्च वक्त्रं कल्पः पाणौ ज्यौतिषं चक्षुषी च।
शिक्षा घ्राणं श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं वेदस्याङ्गान्याहुरेतानि षट् च॥
वेदस्य चक्षुः किल शास्त्रमेतत् प्रधानताऽङ्गेषु ततोऽस्य युक्ता।
अङ्गैर्युतोऽन्यैः परिपूर्णमूर्तिश्चक्षुर्विहीनः पुरुषो न कश्चित्॥
अध्येतव्यं ब्राह्मणैरेव तस्माज्ज्योतिः शास्त्रं पुण्यमेतद् रहस्यम्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एतद् बुद्ध्वा सम्यगाप्नोति यस्मादर्थ धर्म मोक्षमग्रयं यशश्च॥''

इस प्रकार श्रीपति के अनुरूप ही भास्कराचार्य ने कहा है। अंतिम तीनों श्लोक आचार्य ने वृहद वसिष्ठ सिद्धान्त के ज्यों के त्यों कह दिये हैं।

पाणिनीय शिक्षा में भी वेदाङ्ग के रूप में ज्यौतिष का प्रतिपादन किया है।

''छन्द पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्॥
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्त श्रोत्रमुच्यते।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥''

यहाँ भास्कराचार्य के अनुरूप ही शरीर के अंगों का वर्णन करके ज्यौतिष शास्त्र की प्रधानता बताई है।

वेदाङ्ग ज्योतिष में कहा है—

''वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधान शास्त्रं यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥
यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्धनि स्थितम्॥''

वेदाङ्ग ज्यौतिष में कुछ विशेष स्थान ज्योतिष शास्त्र को वेदाङ्गों में दिया गया है कि जिस प्रकार मयूर (मौर) के सिर पर शिखा होती है तथा नागों के फण पर मणि शोभित होती है उसी प्रकार वेदाङ्गों में सर्वोपरि अङ्ग ज्योतिष शास्त्र है। यहाँ कही गई शेष बातें भी भास्कराचार्य ने कही हैं।

वृहद वसिष्ठ सिद्धान्त में भी वेदांग के रूप में ज्योतिष शास्त्र की प्रधानता कही गई है— अध्याय प्रथम

''छन्द पादौ शब्दशास्त्रं च वक्त्रं कल्पः पाणी ज्योतिषं लोचने च।
शिक्षा घ्राणं श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं वेदस्याङ्गान्याहुरेतानि षड्वा॥७॥''
वेदस्यचक्षुः किल शास्त्रमेतत् प्रधानताङ्गेषु ततोऽर्थजाता।
अङ्गैर्युतोऽन्यै परिपूर्णमूर्त्तिश्चक्षुर्विहीनः पुरुषो न किञ्चित्॥
अध्येतव्यं ब्राह्मणैरेव तस्माज्ज्योतिः शास्त्रं पुण्यमेतद्रहस्यम्।
एतद्बुध्वा सम्यगाप्नोति यस्मादर्थ धर्म मोक्षमग्रयं यशश्च॥१०॥

इस प्रकार वृहद वसिष्ठ सिद्धान्त में कही गई बातें भी भास्कराचार्य ने अपने ग्रंथ के उक्त श्लोक ९ से १२ में कही हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं ज्योतिश्शास्त्रमूलभूतस्य सग्रहस्य भचक्रस्य चलनं श्लोकद्वयेनाह—

सृष्ट्वा भचक्रं कमलोद्भवेन ग्रहैः सहैतद्भगणादिसंस्थैः।
शश्वद्भ्रमे विश्वसृजा नियुक्तं तदन्ततारे च तथा ध्रुवत्वे॥१३॥
ततोऽपराशाभिमुखं भपञ्जरे सखेचरे शीघ्रतरे भ्रमत्यपि।
तदल्पगत्येन्द्रदिशं नभश्चराश्चरन्ति नीचोच्चतरात्मवर्त्मसु॥१४॥

ज्योतिष शास्त्र के मूलभूत ग्रहसहित भचक्र के चलने के संबंध में—

सूर्य-प्रभा टीका— सृष्टीकर्ता ब्रह्मा ने सृष्टी की रचना करते समय सर्वप्रथम अश्विनी और रेवती नक्षत्र के मध्य (संधि) में बंधे हुए सूत्र अक्ष पर भचक्र को ग्रहों सहित पूर्व से पश्चिम की ओर भ्रमण करते हुए स्थापित किया, जो अनवरत भ्रमण करते रहते हैं। इनके अतिरिक्त जो भचक्र में अश्विन्यादि तारा समूह सदा स्थिर रहते हैं, की सृष्टी भी ब्रह्मा ने भचक्र के साथ ही की। यह भचक्र ग्रहों सहित दो ध्रुव (स्थिर) तारों के (उत्तर तथा दक्षिण) सापेक्ष भ्रमण करता है। ये ग्रह भपञ्जर अर्थात भचक्र सहित शीघ्रता से पश्चिमाभिमुख भ्रमण करते दिखाई देते हैं लेकिन इनकी गति भपञ्जर से अल्प होने के कारण वे स्वगति से पूर्वाभिमुख होकर आकाश में भ्रमण करते हुए नहीं दिखाई देते हैं। ग्रह नीचे से ऊपर की ओर भिन्न-भिन्न ऊँचाई पर अपनी-अपनी कक्षा में भ्रमण करते हैं। सबसे नीचे चन्द्रमा, उसके ऊपर बुध, फिर शुक्र, फिर रवि, फिर मंगल, फिर गुरु और अंत में शनि ग्रह की कक्षा है। सभी की कक्षायें दूर-दूर एक के ऊपर एक हैं। नीचे से ऊपर की कक्षाओं में भ्रमण करने वाले ग्रहों की गति शीघ्रतम से क्रमशः अल्प होती जाती है। ब्रह्मा ने ग्रहों को प्रवह नामक वायु में आकाश में स्थापित किया है॥१३-१४॥

विशेष— आचार्योक्त प्रकार ही ब्रह्मगुप्त तथा वटेश्वराचार्यादि ने भी कहा है। इन सभी आचार्योक्त कथनों को भास्कराचार्य ने कहा है—

ब्रह्मस्फुट मध्यमाधिकार—

"ध्रुवताराप्रतिबद्धज्योतिश्चक्रं प्रदक्षिणगमादौ।
पौष्णाश्विन्यन्तस्थै सह ग्रहैर्ब्रह्मणा सृष्टम्॥३॥"

वटेश्वर-सिद्धान्त मध्यमाधिकार अध्याय प्रथम—

"आदौ ससर्ज भगणं झष मेष सन्धि-संस्थग्रहैः सह ग्रहस्फुरंदशुजालम्
ब्रह्मा प्रतिक्षणगमर्कजसोमकक्षा-वक्त्र ध्रुव प्रतिनिबद्धमिनेन्दुवश्यम्॥६॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वृहदवसिष्ठ सिद्धान्त में अध्याय १ श्लोक ११ में कहा है—

"सृष्ट्वा ज्योतिश्चक्रं खत्रयवेदाङ्गखाद्रिशशिवर्षैः।
शश्वद् भ्रमणे क्षिप्त्वा मेषादिग्रहाः कमल भुवा॥११॥"

श्रीपति-सिद्धान्तशेखर अध्याय एक श्लोक ९ में—

"ध्रुवद्वयी मध्यगतारकाश्रितं चलद्भचक्रं जलयन्त्रवत् सदा।
विधिः ससर्जाश्विनपौष्णमध्यगैर्ग्रहैः सहोपर्युपरि व्यवस्थितः॥१॥"

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका के अध्याय १३ में ग्रह कक्षाक्रम तथा उनकी घटती हुई गति के लिए भास्कराचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा—

"चन्द्रादूर्ध्वं बुधसितरविकुजजीवाऽर्कजास्ततो भानि।
प्राग्गतयस्तुल्यजवा ग्रहास्तु सर्वे स्वमण्डलगाः॥३९॥
तैलिकचक्रस्य यथा विवरमराणां घनं भवति नाभ्याम्।
नेम्यां स्यान्महेदवं स्थितानि राश्यन्तराण्यूर्ध्वम्॥४०॥
पर्येति शशी शीघ्रं स्वल्पं नक्षत्रमण्डलमधः स्थः।
ऊर्ध्वस्थस्तुल्यजवो विचरति तथा न महदर्कसुतः॥४१॥"

आर्यभट्ट—

"उदयास्तमयनिमित्तं प्रवहेण वायुना क्षिप्तः।
लङ्कासमपश्चिमगो भपञ्जरः सग्रहो भ्रमति॥"

लल्लाचार्य— शि.धी.गो. भुव. ३८-३९ श्लोक में—

"मध्यमकक्षावृत्ते मध्यमया गच्छति ग्रहो गत्या।
उपरिष्टात् तल्लघ्व्या तदधिकगत्या त्वधः स्थः स्यात्॥३८॥
वक्री यात्यपराशां निसर्गतो गच्छति ग्रहः प्राचीम्।
क्रान्त्या याम्योदीच्योर्ग्रहगतिरेवं भवेत् षोढ़ा॥३९॥"

वृहद वसिष्ठ अध्याय १ श्लोक १२ में—

"पश्चिमदिग्गतवायु प्रवहनिबद्धे भपञ्जरे शीघ्रम्।
भ्रमति सखेचरे सत्यपि खेटाः गतितः प्रयान्ति पूर्वदिशम्॥१२॥"

श्रीपति-सिद्धान्त शेखर अध्याय १५ श्लोक ११ व १२ में—

"स्वव्यापारात् प्राग्गतिः खेचराणामूर्ध्वाधस्ताद्याम्यसौम्यापराणि।
गोलाभिज्ञैः पञ्च यातानि यानि तेषामुक्तान्यन्यहेतुनि तानि॥
प्रत्यग्गतिः प्रवध्वायुवशेन तेषां नीचोच्चवृत्तजनितोर्ध्वमधश्च सा स्यात्।
याम्योत्तरा त्वपमवृत्तविमण्डलाभ्यां षोढा गतिर्निगदितैवमिह ग्रहाणाम्॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्यसिद्धान्त भूगोलाध्याय श्लोक ३०-३१ में जो कहा है वह आचार्योक्त ही है। यथा—

"ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योम कक्षाऽभिधीयते। तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा॥३०॥

मन्दामरेज्य-भूपुत्र-सूर्य-शुक्रेन्दुजेन्दवः। परिभ्रमन्त्यधोऽधः स्थाः सिद्धा विद्याधरा घनाः॥३१॥"

भूगोलाध्याय श्लोक ७३ में भचक्र भ्रमण के लिए कहा है तथा क्रमशः ऊँची कक्षाओं में ग्रहगति अल्प होती है यह श्लोक ७५ व ७६ में कहा है।

भचक्रं ध्रुवयोर्बद्धमाक्षिप्तं प्रवहानिलैः।
पर्येत्यजस्रं तन्नद्धा ग्रहकक्षा यथाक्रमम्॥७३॥
उपरिष्ठस्य महती कक्षाऽल्पाऽधः स्थितस्य च।
महत्या कक्षया भागा महान्तोऽप्लास्तथाऽल्पया॥७५॥
कालेनाल्पेन भगणं भुङ्क्तेऽल्पभ्रमणाश्रितः।
ग्रहः कालेन महता मण्डले महति भ्रमन्॥७६॥

शाकल्य ने भी ग्रहों की पूर्वाभिमुख गति ही बनाई है— "इति पर्यटतां तेषां भाग्रे भानि तु तान्ग्रहान्। अतीत्य तरसा साऽह्नि यत्प्रत्यक् प्राग्गतिश्च सा॥"

ग्रहों की उत्पत्ति के लिए अन्य प्रकार से ब्रह्म द्वारा ही बताई है तथा मध्यमा. श्लोक २५ में पूर्वाभिमुख गति बताई है॥

इदानीमनाद्यनन्तस्य कालस्य प्रवृत्तिमाह—

लङ्कानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव।
मधोः सितादेर्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः॥१५॥

अनादि अनन्त काल की प्रवृत्ति—

सूर्य-प्रभा टीका— लङ्कापुरी नगरी पर जब सूर्य प्रथम बार उदय हुआ तब चैत्र शुक्ल रविवार से दिन, मास, वर्ष, युग तथा कल्प आदि की प्रवृत्ति हुई।

विशेष— यहाँ प्रवृत्ति शब्द का अर्थ सृष्टी के आदि से है। जिस समय सूर्य का प्रथम बार लङ्का में उदय हुआ। उस समय से सृष्टि का आरम्भ कहा गया है तथा उस समय चैत्र शुक्ल पक्ष रविवार था तथा उसी घड़ी से कल्प, युग, वर्ष, मास तथा दिन की गणना आरंभ हुई। जिस प्रकार सृष्टी के आरंभ में काल गणना के इन अवयवों की प्रवृत्ति हुई उसी प्रकार प्रलयकाल में इन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का अंत हो जाता है तथा सभी जीवों एवं सूर्यादि का अंत हो जाता है। ऐसे काल को अव्यक्त काल कहते हैं तथा इसका अभिप्राय अव्यक्त अवस्था से है। इस युक्ति से काल अनादि तथा अनन्त कहा गया है। उस अव्यक्त काल से सृष्टी का आरंभ होता है तथा व्यक्त जीव एवं भचक्र ग्रहादि का प्रादुर्भाव होता है। तब से व्यक्त नाम दिन, मास, वर्ष, युग, कल्पादि की प्रवृत्ति होती है। जैसे मधुमासादि, शुक्ल पक्षादि, दिनादि, सौर दिनादि तथा मास वर्ष, युग, मन्वन्तर, कल्प आदि की प्रवृत्ति होती है।

आचार्य ने काल के अनादि अनन्त कहे जाने की युक्ति के लिए शास्त्रान्तर से उद्धरण दिया है—

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव सहात्मना।
कान्ते स पक्वस्तेनैव सहाव्यक्ते लयं व्रजेत्॥

यही श्लोक सिद्धान्त शिरोमणि ग्रथ के संस्कृत व्याख्याकार नृसिंह दैवज्ञ ने अपनी टीका में कहा है।

काल की महिमा का पुराणों में वर्णन

कलनाद्, सर्वभूतानां स कालः परिकीर्तितः।
अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरः परः॥
सर्वगत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मत्वान्महेश्वरः।
ब्रह्मणो बहवो रुद्रा अन्ये नारायणादयः॥
एकोऽहि भगवानीशः कालः कविरिति स्मृतः।
ब्रह्मनारायणेशानां त्रयाणां प्राकृतोलयः॥
प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च सम्भवः।
परं ब्रह्मा च भूतानि वासुदेवोऽपि शङ्करः॥
कालेनैव च सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुनः।
तस्मात् कालात्मकं विश्वं स एव परमेश्वरः॥
अनादि निधनः कालो रुद्रः सङ्कर्षणस्मृतः।
कर्षणात् सर्वभूतानां स तु सङ्कर्षणः स्मृतः॥
सर्वभूतसमित्वाच्च स रुद्रः परिकीर्तितः।
अनादिनिधनत्वेन स महान् परमेश्वरः॥

(विष्णुपराण, कूर्मपुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराणादि से)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अन्तर्गत ब्रह्मसिद्धान्त में भगवान् तथा भृगु संवाद में भगवान का कहा हुआ वाक्य इस प्रकार है—

"लङ्कायामर्कोदये चैत्र शुक्ल प्रतिपदारम्भेऽर्कदिनादावश्विन्यादौ किंस्तुघ्नादौ रौद्रादौ कालप्रवृत्तिः।"

यहाँ अश्विन नक्षत्र तथा किंस्तुघ्न करण का नाम विशेष दिया गया है, शेष आचार्योक्त ही कहा है।

इसी प्रकार **ब्रह्मगुप्त** ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** मध्यमाधिकार श्लोक ४ में कहा है—

"चैत्रसितादेरूदयाद्भानोर्दिनमासवर्षयुग कल्पाः।
सृष्ट्यादौ लङ्कायां समं प्रवृत्ता दिनेऽर्कस्य॥१४॥"

यह भास्कराचार्योक्त ही है।

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त ही कहा है—

"मधुसित प्रतिपद्दिवसादितो रविदिने दिनमासयुगादयः।
दशशिरः पुरि सूर्यसमुद्गमात् सममभी भवसृष्टिमुखेऽभवन्॥ अ. १श्लो.१०॥"

सूर्यसिद्धान्त में काल के बारे में इस प्रकार कहा है—

"भूतानामन्तकृत्कालः कालोऽन्य कलनात्मकः।
स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान्मूर्त्तश्चामुर्त्त उच्यते॥ अ.१ श्लोक १०॥"

अर्थात् काल दो प्रकार का कहा है। एक प्राणियों का संहार करने वाला (प्रलय) उसको काल कहा है तथा दूसरा कलनात्मक अर्थात् गणना करने वाला। यह कलनात्मक काल भी दो प्रकार का होता है एक स्थूल जो मूर्त संज्ञक (व्यवहारिक) है तथा दूसरा सूक्ष्म जो अमूर्त संज्ञक (अव्यवहारिक) कहा गया है। मूर्त संज्ञक में दिन, घटी, पल, मास, वर्ष, युग कल्पादि है। यही भास्कराचार्य ने कहे हैं।

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त प्रकार ही से सृष्टादि काल को कहा है यथा मध्यमाधिकार श्लोक. ५—

"अन्याशाख्यास्तत्राक्षांशा लङ्कापुरे प्रवृत्तिदिने।
कल्पवर्ष मासाश्चैत्रसितादेरिनोदयाद्युगपत्॥५॥"

वटेश्वर सिद्धान्त अध्याय २, मध्यमाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा--

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"त्रुट्यादि पद्मोद्भव जीवितान्तः कालः समंतेन झषजसन्धौ।
लङ्का कुजस्थ द्युचरैः प्रवृत्तो रविर्दिने चैत्रसितादितोऽयम्॥६॥"

अर्थात् त्रुटि आदि से ब्रह्मा की आयु पर्यन्त कालों की, मीन तथा मेष की संधि (रेवत्यन्त) स्थान में लङ्का क्षितिज पर ग्रहों की स्थिति में रविवार के दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा आरंभ के समय से, प्रवृत्ति हुई। अर्थात् इस समय से युगादि, मन्वन्तर, कल्प, सौरवर्षादि की प्रवृत्ति हुई।

आर्यभट (प्रथम) ने आर्यभटीय के कालक्रिया पाद में चैत्र शुक्लादि से काल प्रवृत्ति कही है। यथा—

"युगवर्षमासदिवसास्समं प्रवृत्तास्तु चैत्रशुक्लादेः।
कालोऽयमनाद्यन्तो ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे॥११॥"

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भास्कराचार्य ने उनके पूर्ववर्ति आचार्यों के कथनों को (अनुरूप) ही अपने उक्त श्लोक में कहा है।

इदानीं कालमानानां विभागकल्पनां श्लोकत्रयेणाह—

योऽक्षणोर्निमेषस्य खरामभागः स तत्परस्तच्छतभाग उक्ता।
त्रुटिर्निमेषैर्धृतिभिश्च काष्ठा तत्त्रिंशता सद्गगणकैः कलोक्ता॥१६॥
त्रिंशत्कलाऽऽर्क्षी घटिका क्षणः स्यान्नाडीद्वयं तै खगुणैर्दिनं च।
गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुस्तैः षड्भिः पलं तैर्घटिका खषड्भिः॥१७॥
स्याद्वा घटीषष्टिरहः खरामैर्मासो दिनैस्तैर्द्विकुभिश्च वर्षम्।
क्षेत्रे समाद्येन समा विभागाः स्युश्चक्रराश्यंशकलाविलिप्ताः॥१८॥

कालभाग के विभाग की कल्पना—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने इन श्लोकों में कालविभाग को परिभाषित किया है। पलक झपकने में जितना समय लगता है उसको एक निमेष कहते हैं। एक निमेष का तीसवाँ भाग तत्पर होता है। तत्पर के शतांश को त्रुटि कहते हैं। १८ निमेष का एक काष्ठ होता है। ३० काष्ठ की एक कला होती है। ३० कला की एक घटी होती है। दो घटी का एक मुहूर्त (क्षण) होता है। ३० क्षण का एक दिन होता है।

इसके पश्चात प्रकारान्तर से दिनादि को परिभाषित किया है। दस गुरु (दीर्घ) अक्षरों के उच्चारण का समय एक असु (प्राण) होता है। जिस अक्षर के विसर्ग के अंत में अनुस्वर लग जावे उसे दीर्घ अक्षर कहते हैं अर्थात एक मात्रा का लघु तथा दो मात्रा का अक्षर गुरु कहलाता है। प्राण या असु वह

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होता है, जितने समय में कोई व्यक्ति एक स्वास-प्रस्वास लेता है। ६ असु का एक पल होता है और ६० पल की एक घटी तथा ६० घटी का एक दिन होता है। एक चक्र में १२ राशि, एक राशि में ३० अंश, एक अंश में ६० कला तथा एक कला में ६० विकला होता है।

आचार्योक्त काल विभाग को संख्यात्मक सूत्र रूप में निम्नलिखित प्रकार से लिख कर बताते हैं—

पलक झपकने का काल = एक निमेष = ३० तत्पर = ३०० त्रुटि।

$\frac{\text{निमेष}}{३०}$ = १ तत्पर तथा $\frac{\text{तत्पर}}{१००}$ = १ त्रुटि या १ तत्पर = १०० त्रुटि

३०० त्रुटि = १ निमेष

१८ निमेष = १ काष्ठ

३० काष्ठ = १ कला

३० कला = १ घटी (नाड़ी)

२ घटी = १ क्षण या मुहूर्त्त

प्रकारान्तर से काल विभाग—

१० गुरु अक्षर उच्चारण काल=१ असु = मनुष्य का एक स्वास प्रस्वास।

६ असु = १ पल

६० पल = १ घटी

६० घटी = १ अहोरात्र (दिवस)

३० अहोरात्र = १ मास

१२ मास = १ वर्ष

विशेष— नाडी, घटी तथा दण्ड तीनों एक ही हैं। जो समय अंगुष्ठ प्रमाण के नलिका आकार के यंत्र से प्रदर्शित होता है वह नाडी है, घटी यन्त्र से जो समय प्रदर्शित होता है वह घटी है तथा दण्ड (यष्टि) जैसे यंत्र द्वारा प्रदर्शित समय दण्ड होता है। इस प्रकार ये तीनों यंत्र भेद से एक ही काल को प्रदर्शित करते हैं। अतः इनके केवल नाम का भेद है। इसी प्रकार वि-उपसर्ग लग जाने से उस काल मान का ६० (साठ) वाँ भाग प्रदर्शित होता है।

मनुस्मृति में काल बोध चक्र इस प्रकार कहा है—

"निमेषा दशचाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला।
त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः॥अ. १ श्लोक ६४॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् अठारह निमेष (पल झपकने का काल) का एक काष्ठ और ३० काष्ठ की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त और तीस मुहूर्त का एक दिनरात होता है। आचार्य ने आगे के श्लोकों में १५ अहोरात्र का एक पक्ष (मानुष) तथा दो पक्ष का एक मास, ६ मास का एक अयन, १२ मास का एक वर्ष कहा है।

इस प्रकार भास्कराचार्य ने मनुस्मृति के अनुसार काल विभाग कहा है।

विष्णु पुराण में पाराशरमुनि ने तृतीय अध्याय में १५ निमेष का एक काष्ठ कहा शेष सभी विभाग मनुस्मृति अनुसार ही कहे हैं। यथा–

"काष्ठा पञ्चदशाख्याता निमेषा मुनिसत्तम।
काष्ठा त्रिंशत्कला त्रिंशत्कलामौहूर्तिको मुनिसत्तम्॥८॥
तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम्।
अहोरात्राणि तावन्ति मास पक्षद्वयात्मकः॥९॥
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम्॥१०॥"

वृहदवसिष्ठ सिद्धान्त में भी कालमान भास्कराचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"दशगुर्वक्षरोच्चारकालः प्राणोऽभिधीयते। तत्षटकैश्च पलं षष्ट्या नाडीषष्ट्यार्क्षजं दिनम् (अध्या. १ श्लोक ४)।

सोम सिद्धान्त में भी यथावत ही कहा है—

"दशगुर्वक्षरा प्राणः षड्भि प्राणैर्विनाडिका। तत्षष्ट्या नाडिका प्रोक्ता नाडी षष्ट्या दिवानिशम्।"

आर्यभट ने आर्यभटीय कालक्रियापद श्लोक २ में भास्कराचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"गुर्वक्षराणि षष्टिर्विनाडिकार्क्षी षडेव वा प्राणाः।
एवं काल विभागः क्षेत्र विभागस्तथा भगणात्॥२॥"

अर्थात् जितना काल ६० (साठ) गुरु अक्षर उच्चारण करने में लगता है वह काल आर्क्षि अथवा विनाडी होती है। ऋक्षों का आधारभूत मंडल जितने काल में एक परिभ्रमण करता है वह काल आर्क्षदिवस (नक्षत्र दिवस) होता है। उसका साठवाँ भाग आर्क्ष नाडि है। उसका साठवाँ भाग आर्क्षी विनाडिका होती है। छः विनाडि का एक प्राण होता है। जितने काल में पुरुष छः स्वासप्रस्वास

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करता है उतना काल आर्क्षि विनाडि होती है। ये दोनों काल तुल्य होते हैं। कालविभाग इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है। क्षेत्र विभाग भी इसी प्रकार जानें।

यहाँ आर्यभटीय की परमेश्वराचार्य कृत ''भटदीपिका'' संस्कृत टीका का मैंने हिन्दी अनुवाद कहा है।

क्षेत्र विभाग से यहाँ अर्थ भगण क्षेत्र विभाग से है। एक भगण का बारहवाँ भाग एक राशि, एक राशि में ३० (तीस) अंश, एक अंश में ६० कला तथा एक कला में साठ विलिप्ता होती है। यह वर्षात्मक काल विभाग अनुसार है।

आर्यभट्ट ने आर्यभट्टीय में कालक्रिया पाद के श्लोक-१ में वर्ष-मास-दिनादि का मान आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

''वर्ष द्वादश मासास्त्रिंशद्दिवसो भवेत्स मासस्तु।
षष्टिर्नाड्यो दिवसष्षष्टिस्तु विनाडिका नाडी॥१॥''

अर्थात– १२ मास का एक वर्ष, ३० दिवस का एक मास, एक दिवस में ६० नाडी, एक नाडी में ६० विनाडी होती है। परमेश्वर आचार्य की टीकानुसार ही सौर, सावन तथा चांद्र दिवस संज्ञा अनुसार ये वर्षादि उन-उन के अनुसार ही होंगे।

भास्कराचार्य ने आर्यभटोक्त ये मान ही कहे हैं।

वटेश्वर सिद्धान्त मध्यमाधिकार अध्याय १ में भास्कराचार्योक्त ही कहा है—

कमलदलनतुल्यः काल उक्तस्त्रुटिस्तच्छतमिह लवसंज्ञस्तच्छतं स्यान्निमेषः।
सदलजलधिभिस्तैर्गुविहैवाक्षरं तत्कृतपरिमित-काष्ठा-तच्छरार्धेन वासुः॥७॥''

इसको अंक सूत्र रूप में इस प्रकार कह सकते हैं—

कमलपुष्प को सुई से छेदने में जितना काल लगता है वह एक त्रुटि तुल्य होता है। आचार्य ने १०,००० त्रुटि का एक निमेष कहा है जब कि भास्कराचार्य ने ३००० त्रुटि का एक निमेष कहा है।

१०० त्रुटि = १ लव तथा १०० लव = १ निमेष

$४\frac{१}{२}$ निमेष = १ दीर्घ अक्षर उच्चारण काल

४ दीर्घ अक्षरोच्चारण काल = १८ निमेष = १ काष्ठ

$२\frac{१}{२}$ काष्ठ = १० दीर्घ अक्षर उच्चारण काल = १ असु

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"आर्क्षपलं षडसवो घटिका पलानां षष्ट्या दिनं च घटिका खलु षष्टिमाहुः।
मासंखवह्निभिरथाब्दभिनाहतं तं क्षेत्रे च कालदृशावयवं तथाहुः॥८॥"

अर्थात् ६ असु = १ नाक्षत्र पल तथा ६० पल = १ घटी
६० घटी = १ दिन तथा ३० दिन = १ मास
१२ मास = १ वर्ष तथा १२ राशि = १ भगण
३० दिन = १ मास तथा ३० अंश = १ राशि
६० घटी = १ दिन तथा ६० कला = १ अंश
६० पल = १ घटी तथा ६० विकला = १ कला

अतः वटेश्वराचार्योक्त ही भास्कराचार्य ने कहा है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी इसी प्रकार कहा है। तथा आगे श्लोक ८ में भी उपरोक्त प्रकार ही कहा है—

"मासःप्रोक्तस्त्रिंशताऽहर्निशानां द्विघ्नैः षडभिस्तैश्च वर्षः प्रदिष्टम्।
एवंचक्रार्क्षशलिप्ता विलिप्तास्तुल्याः क्षेत्रेऽनेहसाऽब्दादिकेन॥८॥"

सूर्यसिद्धान्त में काल मान आचार्योक्त ही है। लेकिन वटेश्वर तथा सूर्य सिद्धान्त के काल मानों में अंतर केवल यह है कि वटेश्वर ने १०००० (दस हजार) त्रुटि का एक निमेष कहा तथा सूर्य सिद्धान्त में भास्कराचार्योक्त ३००० (तीन हजार) त्रुटिका एक निमेष कहा है। सूर्य सिद्धान्त मध्याधि श्लोक ११ व १२—

"प्राणादिः कथितो मूर्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्तसंज्ञकः।
षड्भि प्राणैर्विनाडीस्यात्तत्षष्ट्या नाडिका स्मृताः॥११॥
नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम्।
तत् त्रिंशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैस्तथा॥१२॥

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्रह्म गुप्त ने भास्कराचार्य एवं श्रीपति आदि के अनुरूप ही कहा है। मध्यमा अध्याय १ श्लोक ५ व ६—

"प्राणैर्विनाडिकार्क्षी षड्भिर्घटिका विनाडिका षष्ट्या।
घटिका षष्ट्या दिवसो दिवसानां त्रिंशता भवेन्मासः॥५॥
मासा द्वादश वर्ष विकला लिप्तांश-राशि-भगणान्तः।
क्षेत्रविभागस्तुल्यः कालेन विनाडिकाद्येन॥६॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि भास्कराचार्य ने अपने पूर्ववर्ति आचार्योक्त कथनों के अनुकूल ही काल विभाग कहा तथा उनके बहुमत को ही स्वीकार किया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मसिद्धान्त में भी काल मान विभाग आचार्योक्त ही है। यथा—

"अष्टादश निमेषास्तु काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कलाः।
तासां त्रिंशत् क्षणस्तेऽपि षट्नाडीति प्रशस्यते॥
यद्वा गुर्वक्षराणां तु दशकं प्राणः उच्यते।
षडभिः प्राणैर्विनाडी तु तत्षष्ट्या घटिका तथा॥
नाडी षष्ट्या ह्यहोरात्रमिति॥६॥"

इदानीमनयैव कालविभागपरिभाषया सौरादीनि तन्मानान्याह—

रवेश्चक्रभोगोऽर्कवर्षं प्रदिष्टं द्युरात्रं च देवासुराणां तदेव।
रवीन्द्वोर्युतेः संयुतिर्यावदन्या विधोर्मास एतच्च पैत्रं द्युरात्रम्॥१९॥
इनोदयद्वयान्तरं तदर्कसावनं दिनम्।
तदेव मेदिनीदिनं भवासरस्तु भभ्रमः॥२०॥

काल विभाग परिभाषा में सौरादि के मान—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य जितने समय में मेषादि भचक्र में भ्रमण करते हुए अपने पूर्व (आरंभ) स्थान पर एक बार वापस आता है उतने काल को रवि वर्ष कहते हैं। उसका बारहवाँ भाग सौर मास होता है तथा मास के ३० वें भाग को सौर दिन कहते हैं। दिन का साठवाँ भाग एक घटी होता है तथा घटी के साठवें भाग को विघटि कहते हैं। यह पूर्व में दी गई परिभाषा के अनुरूप है।

अब **दैवमान** कहते हैं— पूर्वोक्त एक वर्ष देवता तथा असुरों के लिए एक अहोरात्र होता है लेकिन जब देवताओं का दिन होता है तब दैत्यों की रात्रि होती है। देवताओं का एक वर्ष ३६० सौर वर्षों के तुल्य होता है।

अब **चांद्रमान** कहते हैं— सूर्य चन्द्र की एक बार युति के जितने काल के पश्चात् जब दूसरी बार युति होती है उस काल को चांद्रमास कहते हैं। सूर्य-चंद्र की युति अमावस्या को होती है, अतः इसके बाद जब दूसरी बार सूर्य-चंद्र की युति होती है तो उस काल को विधुमास अर्थात् चांद्रमास कहते हैं। इस प्रकार यह चान्द्रमास अमावस्या से आरंभ होकर दूसरी अमावस्या को समाप्त होता है। इन मानों से पूर्व परिभाषित वर्षादि मान समझें।

अब **पितृमान** कहते हैं— यह चांद्र मास पितृगणों का एक अहोरात्र होता है। इन मानों से पूर्व परिभाषित मास वर्षादि मान समझें।

अब **सावनमान** कहते हैं— सूर्य का एक बार उदय से दूसरी बार उदय होने के अन्तर काल को सूर्य का सावनदिन (काल) या कुदिन (पृथ्वी का दिन)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहते हैं। इस मान से पूर्व परिभाषित प्रकार से मास वर्षादि समझें। यहाँ सूर्य उपलक्षण है, इसी प्रकार अन्य ग्रहों के दो बार लगातार उदयान्तर काल को उनका सावन दिन कहते हैं।

अब **नाक्षत्रमान** कहते हैं– पृथ्वी जितने समय में भचक्र में अपनी धुरी पर एक भ्रमण करती है उस काल को नाक्षत्र दिन कहते हैं। पूर्वोक्त प्रकार से इस मान से मास वर्षादि मानें।

विशेष— ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा–

"सावनमुदयादुदयं भानां चार्क्ष नृवत्सरोऽर्काब्दः।
पितृदिवसाः शशिमासा दिव्यानि दिनानि रविभगणाः॥ मध्य.श्लो. २५॥"

वटेश्वर सिद्धान्त में वटेश्वराचार्य ने मध्यमा अध्याय २ में आचार्योक्त प्रकार कहा है—

"क्षितिशशिनोर्दिवसान्तरमाहुस्तिथिविलयान् नृसमां रविवर्षम्।
पितृदिवसं विधुमासमिनाब्दं दितितनयामरवासरसंज्ञम्॥४॥"

सूर्यसिद्धान्त में भी आचार्योक्त कहा है। मध्यमा. यथा–

"ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत् संक्रान्त्या सौर उच्यते।
मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदह उच्यते॥१३॥
सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्।
तत्षष्टिः षड्गुणा दिव्यं वर्षामासुरमेव च॥१४॥
उदयादुदयं भानोर्भूमिसावनवासरः॥३६॥

इदानीं ब्राह्ममानमाह—

खखाभ्रदन्तसागरैर्युगाग्नियुग्मभूगुणैः।
क्रमेण सूर्यवत्सरैः कृतादयो युगाङ्घ्रयः॥२१॥
स्वसन्ध्यकातदंशकैर्निजार्कभागसंमितैः।
युताश्च तद्युतौ युगं रदाब्धयोऽयुताहताः॥२२॥
मनुः क्षमानगैर्युर्गेर्युगेन्दुभिश्च तैर्भवेत्।
दिनं सरोजजन्मनो निशा च तत्प्रमाणिका॥२३॥

सन्धयः स्युर्मनूनां कृताब्दैः समा आदिमध्यावसानेषु तैर्मिश्रितैः।
स्याद्युगानां सहस्रं दिनं वेधसः सोऽपि कल्पो द्युरात्रन्तु कल्पद्वयम्॥२४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शतायुः शतानन्द एवं प्रदिष्टस्तदायुर्महाकल्प इत्युक्तमाद्यैः।
यतोऽनादिमानेष कालस्ततोऽहं न वेद्म्यत्र पद्मोद्भवा ये गतास्तान्॥२५॥

ब्रह्म मान—

सूर्य-प्रभा टीका— ४,३२,००० (चार लाख बत्तीस हजार) सौर वर्षों का चतुर्गुणित ४,३२,००० × ४ = १७,२८,८०० सौर वर्ष का कृत नामक प्रथम युगचरण है।

त्रिगुणित ४,३२,००० × ३ = १२,९६,००० सौर वर्ष का त्रेत्रा नामक द्वितीय युग चरण है।

द्विगुणित ४,३२,००० × २ = ८,६४,००० सौर वर्ष का द्वापर नामक तृतीय युग चरण है।

तथा एकगुणित ४,३२,००० × १ = ४,३२,००० सौर वर्ष का कलि नामक चतुर्थ युग चरण है।

योग ४,३२,००० × १० = ४३,२०,०००

इन युग चरणों के बारहवें भाग प्रमाण की इन चरणों की सन्ध्यायँ हैं। इतनी ही युग चरण के आरंभ में तथा इतनी ही अंत में होती है। इन युग संधियों सहित ये युग चरण प्रमाण कहे गये हैं।

कृतयुग के आरंभ में संध्यावर्ष = १,४४,००० और इतने ही अंत में।
त्रेतायुग के आरंभ में संध्यावर्ष = १,०८,००० और इतने ही अंत में।
द्वापरयुग के आरंभ में संध्यावर्ष = ७२,००० और इतने ही अंत में।
कलियुग के आरंभ में संध्यावर्ष = ३६,००० और इतने ही अंत में।

इन चारों युग चरण प्रमाण को जोड़ने से एक (महा) युग प्रमाण होता है। यथा १७,२८,०००+१२,९६,०००+८,६४,०००+४,३२,००० = ४३,२०,००० सौर वर्ष का एक महायुग होता है।

७१ महायुग का एक मनु होता है। १४ मनु का ब्रह्मा का एक दिन तथा इनते ही प्रमाण की एक रात्रि होती है। अतः ७१×१४=९९४ महायुग का ब्रह्मा का एक दिन होता है।

स्मृति पुराणादि में कहा गया है "चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणों दिनमुच्यते"। इनमें कहे गये कथन की शंका का परिहार करते हैं। एक मनु में कृतयुग चरण तुल्य १५ संधियाँ १४ मनुओं के आरंभ से अंत तक होती है। अतः १५×१७,२८,००० = २,५९,२०,००० सौर वर्ष। ये सौष वर्ष ६ महायुगों

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(६×४३,२०,००० = २,५९,२०,०००) के तुल्य है। अतः पूर्वोक्तानुसार ब्रह्मा का एक दिन ९९४+६=१००० महायुग अर्थात् चतुर्युग सहस्र गुणा का हुआ। यह सिद्ध हो गया। ब्रह्मा के दिन को एक कल्प कहते हैं तथा रात्रि भी इतने ही प्रमाण की होती है। इस प्रकार ब्रह्मा का एक दिन-रात्रि दो कल्प तुल्य होता है। इस कल्प दिन मान से ब्रह्मा की आयु १०० (३६०×२×१०० कल्प) वर्ष की होती है, जिसको महाकल्प कहते हैं।

ब्रह्मा की आयु के कितने वर्ष बीच चके हैं? इसके लिए श्रुति तथा पुराण बताते हैं। **विष्णु पुराण** में कहा है—

"निजेनैव तु मानेन कायुर्वर्षशतं स्मृतम्।
तत्पराख्यं तदर्ध तु परार्धमभिधीयते॥"

इस श्लोक के अनुसार ब्रह्मा की आयु का आधा भाग बीत चुका है। लेकिन वास्तव में कितने वर्ष बीच चुके हैं? यह शंका ही है। क्योंकि यह तो अनादि मान का काल है, अतः वास्तव में कितना बीत गया, यह ज्ञात नहीं है।

विशेष— ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने मध्यमाधिकार के प्रथम अध्याय में महायुग, युगचरण मान, युग संधि आदि भास्कराचार्योक्त ही कही हैं। मध्यमाधिकार श्लोक ७ व ८ —

"खचतुष्टयरदवेदा ४३,२०,००० रविवर्षाणां चतुर्युगं भवति।
सन्ध्यासन्धयांशैः सह चत्वारि पृथक् कृतादिनि ॥७॥
"युगदशभागो गुणित कृतं १७,२८,००० चतुर्भिस्त्रिभिर्गुण १२,९६,००० स्त्रेता।
द्विगुणो ८,६४,००० द्वापरमेकेन सङ्गुणः ४,३२,००० कलियुगं भवति॥८॥"

यहाँ आचार्य ने चतुर्युग (महायुग) मान ४३,२०,००० के दशमंश का ४,३,२ तथा १ गुणित क्रमशः कृतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग कहा है जिसका मान भास्कराचार्योक्त ही है। युग संधियाँ आदि आचार्योक्त ही कही हैं। आगे के १० वें श्लोक में आचार्य ने भास्करोक्त प्रकार ही से मनुमान बताकर ब्रह्मा का एक दिन १००० युग तुल्य पुराणोक्त प्रकार से सिद्ध किया है। यथा—

"मनुरेकसप्ततियुगः कल्पो मनवश्चतुर्दश मनूनाम्।
आद्यन्तरान्तसन्धिषु कृतकालोऽस्माद्युगसहस्रम्॥१०॥"

लेकिन आगे श्लोक ११ में कहते हैं कि जो १४ मनु संबंधि आदि मध्य और अन्त में संधियों को कृतयुगचरण तुल्य नहीं मानते। उनके मत से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कल्पप्रमाण छः कम एक हजार महायुग (९९४ महायुग) तुल्य ही है। भास्कराचार्य ने भी इतना ही स्वीकार किया है—

"आद्यन्तरान्तसन्धिषु कल्पममूनां कृताब्दसमकालम्।
नेच्छन्ति ये षड्नं तेषां कल्पो युगसहस्रम् ४२९४०८०००० ॥११॥"

लेकिन अगले श्लोक ११ में वे पुनः आर्यभट मतानुसार ७२ युगों का एक मनु मानकर १४ मनु तुल्य ब्रह्म का एक दिन ७२×१४=१००८ महायुगों का होता है कहते हैं लेकिन वे आर्य भटोक्त समान युग चरणों को स्मृति सम्मत नहीं होने से नहीं मानते।

आर्यभट ने दशगीतिका अध्याय में इस प्रकार कहा है। यथा—

"काहो मानवो ढ १४ मनुयुग श्ख ७२ गतास्ते च ६ मनुयुग छ्ना ७२ च।
कल्पादेर्युगपादा ग ३ च गुरुदिवसाच्च भारतात्पूर्वम् ॥३॥"

वटेश्वर ने वटेश्वर सिद्धान्त में भास्कराचार्योक्त प्रकार ही महायुग, मनु, कल्प, ब्रह्मअहोरात्र-वर्ष तथा आयु कही है। यथा मध्यमाधिकार प्रथम अध्याय—

"दन्ताब्धयोऽयुतहता ४३,२०,००० युगमर्कमानाच्चन्द्राद्रयो ७१ युगगुणा मनुरेक उक्तः।
कल्पश्चतुर्दश १४ मनुर्द्युनिशं च तौ द्वौ कस्य स्ववर्षशतमत्र सदायुरुक्तम् ॥९॥"

आचार्य ने चारों कृतादि युगों के पाद ४,३,२ तथा १ क्रमशः नहीं माना है, यहाँ इनके संबंध में कुछ भी नहीं कहा है। उन्होंने आगे अध्याय १० में कहा है। यथा—

"भुञ्जते सममतो युगांघ्रयः श्रीमदार्यभटकीर्त्तिताः स्फुटाः ॥२॥"

अर्थात्— "……इसलिए आर्यभटोक्त स्पष्ट सममान के युगचरण मैं स्वीकार करता हूँ।" ऐसा कहा है।

पौलिश सिद्धान्त में दिव्यमान से कृतादि युग चरणों के वर्षमान मनुस्मृति तथा सूर्यसिद्धान्त आदि की तरह ही कहे हैं। यथा—

"अष्टाचत्वारिंशत् पादविहीना क्रमात्कृतादीनाम्।
अब्दास्ते शतगुणिता ग्रहतुल्य युगं तदेकत्वम् ॥"

ब्रह्मसिद्धान्त में ब्रह्मा ने दिव्यवर्ष मान से सूर्यसिद्धान्त, मनुस्मृति अनुसार ही कहा है। यथा—

"दिव्याब्दानां सहस्राणि द्वादशैव चतुर्युगम्।
युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येकसङ्गुणः।
क्रमात कृतयुगादिनां षष्ठांशः सन्धयः स्वकाः ॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आर्यभट द्वितीय ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त प्रकार ही ७१ युगों का एक मनु तथा युगचरण पाद ४, ३, २, १ गुणित ४३२०००० इत्यादि कहे हैं। यथा—

"कलिसञ्ज्ञो युगपादो ढिडिखिनिनीना विलोमतश्चाद्याः।
कलिवृद्ध्या तद्योगो युगं युगैस्तैर्मनुः स्कमितै॥मध्य.श्लोक १५॥
क भ १४ मनवस्ते कल्पे कृताब्दाब्दतुल्यैः क्मसन्धिभिः सहिताः।
आद्यन्तरान्त्यवर्त्तिभिरेवं कल्पोऽर्कभगण तुल्याब्दः॥१६॥
ब्राह्मो दिवसः कल्पः कल्पसमा शर्वरी तत्र।
ग्रहभसुरासुर लोका नश्यन्त्याविर्भवन्ति दिवसादौ॥१७॥

मनुस्मृति में दिव्यमान से युगचरण आचार्योक्त ही पठित किये हैं। यथा—

"चत्वार्याहु सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः।
इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु।"

ये आगे कहे सूर्यसिद्धान्तोक्त प्रकार से है।

सूर्यसिद्धान्त में मध्यमाधि. अध्याय १ में दिव्यमान से आचार्योक्त प्रकार ही युग, मनु, कल्पादि, युगचरणादि कहे हैं। यथा—

"तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्।
सूर्याब्द सङ्ख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः॥१५॥
सन्ध्यासन्ध्यांशसहितं विज्ञेतं तच्चतुर्युगम्।
कृतादिनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया॥१६॥

अर्थात् देवसुरों के वर्षामान के १२ हजार वर्षों (दस हजार दिव्यवर्ष) का एक चतुर्युग (तुल्य महायुग) कहा गया है। सौर मान से दस हजार गुणित ४३२ वर्षा का अर्थात ४३,२०,००० वर्षों का एक महायुग होता है। कृत युग आदि प्रत्येक युग संध्या संध्यंश युक्त चतुर्युग का मान (१२०० दिव्य वर्षों के) धर्मपाद व्यवस्था के अनुसार हैं।

"युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्वेकसंगुणः।
क्रमात् कृतयुगादीनां षष्ठांश सन्ध्ययो स्वकः॥१७॥
युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।
कृताब्दसङ्ख्यस्तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः॥१८॥"

अर्थात् महायुग मान १२००० दिव्य वर्ष के दशमांश को क्रमशः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४,३,२,१ से गुणा करने से प्राप्त वर्षमान कृत, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग के क्रमशः होते हैं। अपने-अपने युगमान के षष्ठांश तुल्य इनकी दोनों संधियाँ होती हैं। ७१ महायुगों का एक मन्वन्तर कहा है। एक मनु के अंत में कृतयुग (४८००) दिव्यवर्ष तुल्य मनु की सन्धि होती है। संधि काल को जलप्लव कहते हैं।

"ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश।
कृतप्रमाणः कल्पादौ संधि पञ्चदशः स्मृतः॥१९॥"

अर्थात् एक कल्प में संधि सहित १४ (चौदह) मनु होते हैं। कल्प के आदि में कृत युग तुल्य संधि होती है। इस प्रकार एक कल्प में सतयुग के समान, १४ मनु की १५ संधियाँ होती हैं।

इस प्रकार सूर्य सिद्धान्त में भास्कराचार्योक्त ही कहा है। अंतर केवल यह है कि सूर्य सिद्धान्त में मनुस्मृति के अनुरूप दिव्य वर्ष मान से कहा गया है। दोनों प्रकार से मान समान ही हैं। उपरोक्त को सारिणी रूप में लिख कर बताते हैं।

एक महायुग = १२००० दिव्यवर्ष = सौरमान वर्ष ४३,२०,००० वर्ष।

महायुग का दशमांश १२०० दि.वर्ष × ४ = ४८०० दि.व. कृतयुग = १७,२८,००० सौरवर्ष।

महायुग का दशमांश १२०० दि.वर्ष × ३ = ३६०० दि.व. त्रेतायुग = १२,९६,००० सौरवर्ष।

महायुग का दशमांश १२०० दि.वर्ष × २ = २४०० दि.व. द्वापरयुग = ८,६४,००० सौरवर्ष।

महायुग का दशमांश १२०० दि.वर्ष × १ =१२०० दि.व. कलियुग = ४,३२,००० सौरवर्ष।

योग १२०० दिव्यवर्ष ×१०=१२००० दि.व. = ४३,२०,००० सौ.व.

संधियाँ कहते हैं—

कृतयुग ४८०० × $\frac{१}{६}$ = ८०० दि.व. (४००+४००) = १,४४,०००+१,४४,००० सौ.व.

त्रेतायुग ३६०० × $\frac{१}{६}$ = ६०० दि.व. (३००+३००) = १,०८,०००+१,०८,००० सौ.व.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वापरयुग २४०० × $\frac{१}{६}$ = ४०० दि.व. (२००+२००) = ७२,०००+७२,.००० सौ.व.

कलियुग ४८०० × $\frac{१}{६}$ = २०० दि.व. (१००+१००) = ३६,०००+३६,००० सौ.व.

७१ महायुग = १ मनु = ७१×१२०००=८,५२,००० दि.वर्ष = ३०,६७,२०,००० सौ.व.

एक कल्प = १४ मनु +१५ संधि = १४×८,५२,०००+१५×४,८०० = ११,९,२८,०००+७२,०००

एक कल्प = ब्रह्मा का एक दिन = १,२०,००,००० दि.व. = ४३२,००,००,००० सौ.व.

ब्रह्मा का अ.रा. = १२०००×१०००×२=१,२०,००,०००×२ = २,४०,००,००० दि.वर्ष = ८,६४,००,००,००० सौ.व.

''परमायुः शतं तस्य तयाऽहोरात्र सङ्ख्यया॥२१॥''

पूर्वोक्त ब्रह्मा के अहोरात्र प्रमाण से सौ वर्षों = ३६०×२×१०० दिवस की ब्रह्मा की आयु होती है।

इस प्रकार हमने देखा कि आचार्य भास्कर ने उनके पूर्ववर्ति आचार्यों के कहे अनुसार ही कालमान बताये हैं तथा उन्होंने बहुमत को ही स्वीकार किया है।

इदानीमन्यदाह—

तथा वर्त्तमानस्य कस्यायुषोऽर्धं गतं सार्धवर्षाष्टकं केचिदूचुः।
भवत्वागमः कोऽपि नास्योपयोगो ग्रहा वर्त्तमानद्युयातात् प्रसाध्याः॥२६॥

सूर्य-प्रभा टीका— वर्तमान में ब्रह्मा की आयु का कितना काल बीत गया यह ज्ञात नहीं है। कुछ आचार्य आयु का आधा बीत चुका मानते हैं तो कुछ आयु के साढ़े आठ वर्ष बीत गये मानते हैं। इसका आगम ही प्रमाण है। अतः भास्कराचार्य कहते हैं कि कोई मत आगम हो मुझे उसकी जरूरत नहीं है अर्थात् ब्रह्मा की गतायु की कुछ भी जरूरत नहीं है, क्योंकि ग्रहों का साधन तो वर्तमान (कल्प के) अहर्गण पर से करना है।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त में कहा है— ''आयुषोऽर्धमितं तस्य'' अर्थात् ब्रह्मा की आयु का आधा व्यतीत हो गया। वटेश्वर सिद्धान्त में कहा है

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"कजन्मनो ऽष्टौ सदलाः समा ययु" अ.१ श्लोक १०। अर्थात् ब्रह्मा की आयु के साढ़े आठ वर्ष बीत गये।

इदानीं तत्कारणमाह—

यतः सृष्टिरेषां दिनादौ दिनान्ते लयस्तेषु सत्स्वेव तच्चारचिन्ता।
अतो युज्यते कुर्वते तां पुनर्येऽप्यसत्स्वेषु तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्तु॥२७॥

सूर्य-प्रभा टीका— भास्कराचार्य ने आक्षेप किया है कि ब्रह्मा की आयु (महाकाल) के भगण पाठ करना ही व्यर्थ है क्योंकि कल्प अर्थात् ब्रह्मा के दिन के बाद सब ग्रहों का लय हो जाता है। कल्प के अंत में ही सब ग्रहों के भगणों की पूर्ति हो जाती है, अतः अनेक कल्पों का भगण कहना व्यर्थ है।

विशेष— भगवदुक्ति में इसी प्रकार कहा है "अव्यक्ताद्व्यक्तय सर्वाः प्रभवन्त्यहरागये। रात्रयागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥" अर्थात् दिन के आरम्भ में अव्यक्त रूप ब्रह्म से यह सब व्यक्त रूप जगत उत्पन्न होता है तथा रात्र्यारंभ में सब उसी अव्यक्त रूप ब्रह्म में लीन हो जाता है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में इसी प्रकार कहा है—

'ग्रहनक्षत्रोत्पत्तिर्ब्रह्मदिनादौ दिनक्षये प्रलयः।
यस्मात्कल्पस्तस्याद् ग्रहगणिते कल्पयाताब्दाः॥२८॥ अर्थात्

दिन कल्प में रहने तथा रात्रि में प्रलय हो जाने के कारण ग्रह नक्षत्रादि की गति होती है। अतः उनके साधन के लिए वर्तमान कल्पदिन के वर्षमान की आवश्यकता है, अन्य कल्पवर्ष की आवश्यकता नहीं।

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में इसी प्रकार कहा है। यथा—

"ज्योतिर्ग्रहाणां विधिवासरादौ सृष्टिलैयस्तद्दिवसावसाने।
यस्मादतोऽस्मिन् गणिते ग्रहाणां योग्यो मते नः खलु कल्प एव॥ अ.१श्लो.२१॥

नारदपुराण में वेदव्यास ने कहा है कि नारद, ब्रह्माजी के वर्तमान कल्प में जितने वर्ष बीत गये हैं उन्हे एकत्र करके ग्रहानयन करना चाहिये अथवा युगादि से ग्रह साधन करे। इस प्रकार उन्होंने आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"स्वयम्भुवः सृष्टिगतानब्दान् सम्पिण्ड्य नारद। खचरानयन कार्यमथवेष्टयुगादितः॥
पाद. २ श्लोक ६४॥

इदानीं वर्तमानदिनगतमाह—

याताः षण्मनवो युगानि भमितान्यन्यद्युगाङ्घ्रित्रयं
नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोद्रीन्द्वद्रिकृताङ्कदस्रनगगोचन्द्राः १९७२९४७१७९ शकाब्दान्विताः
सर्वे सङ्कलिताः पितामहदिने स्युर्वर्त्तमाने गताः॥२८॥

स्वायम्भुवो मनुरभूत् प्रथमस्ततोऽमी स्वारोचिषोत्तमजतामसरैवताख्याः।
षष्ठस्तु चाक्षुष इति प्रथितः पृथिव्यां वैवस्वतस्तदनु सम्प्रति सप्तमोऽयम्॥२९॥

वर्तमान दिनगत मान—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य के अनुसार छः मनु संधि-सहित तथा सातवें मनु का २७ वाँ युग व्यतीत होकर वर्तमान युग के तीन अंग (तीन युग चरण-कृत, त्रेता और द्वापर) व्यतीत हो चुके हैं तथा कलि आरंभ से ३१७९ वर्ष शकारम्भ तक वर्तमान में व्यतीत हो चुके हैं जिन सब की योग संख्या १९७२९४७१७९ वर्ष है। ब्रह्मा के आदि से छः मनु (१) स्वायम्भुव (२) स्वारोचिष (३) उत्तमज (४) तामस (५) रैवत (६) चाक्षुष व्यतीत हो चुके हैं तथा वर्तमान में सातवाँ वैवस्वत नामक मन्वन्तर चल रहा है।

विशेष— वटेश्वराचार्य के अनुसार ब्रह्मा की आयु के ८$\frac{1}{2}$ वर्ष व्यतीत हो चुके तथा नवें वर्ष के प्रथम दिन के छः मनु, २७ युग, महायुग के तीन चरण (सत्युग, त्रेता, द्वापर) बीत गये तथा कलियुगादि से शकादि आरंभ तक ३१७९ वर्ष व्यतीत हो गये। इस प्रकार दोनों आचार्यों के अनुसार व्यतीत हो चुका काल समान है। लेकिन वटेश्वराचार्य ने कल्पवर्ष संख्या नहीं लिखी है, जबकि भास्कराचार्य ने लिखी है।

वटेश्वर सिद्धान्त– "युगत्रिवृन्दं सदृशाङ्घ्रयस्त्रयः कलेर्नवागैकगुणा शकावधेः॥ म..अ.२श्लो.१०॥"

आर्यभट ने भी वर्ष संख्या नहीं लिखी है। आर्यभटीय गीतिकापाद श्लोक. ३

"काहोमनवो ढ मनुयुग श्रव गतास्ते च मनुयुग छूना च।
कल्पादेर्युगपादा ग च गुरु दिवसाच्च भारतांत्पूर्व॥३॥"

अर्थात् ब्रह्मा के कल्प में १४ मनु होते हैं तथा एक मनु में ७२ महायुग होते हैं। वर्तमान में छः मनु समाप्त हो कर सातवाँ मनु के २७ युग समाप्त होकर २८ वें युग के तीन पाद (चरण) समाप्त हो गये हैं। यहाँ "भरतां" शब्द से युधिष्ठिर को उपलक्षित करके "गुरु दिवसा" से "भारतगुरु दिवस" कहा है। इसका अर्थ द्वापर के आसन्न काल से है जिस दिन युधिष्ठिरादि का राज्य समाप्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो गया था। अतः उस गुरु दिवस से कल्पारंभ से गत मन्वादि के लिए कहा है।

आर्यभट द्वितीय ने महासिद्धान्त में भास्कराचार्योक्त प्रकार ही से कलि आरंभ तक का कल्पारंभ से गतकाल गणना कही है। मध्यमा. गणिताध्याय। यथा–

"चा ६ मनवश्छा ७ याताः सन्धय इह रथमितानि च युगानि।
गायुगचरणा ऐक्यं कुधिथिरधोभीघुनो नोनाः ॥१९॥"

अर्थात् ६ मनुसंधि सहित, २७ युग, तीन युग चरण कल्पारंभ से कलिआरंभ तक व्यतीत हो गये। यदि इन वर्षों में भास्कराचार्योक्त ३१७९ वर्ष शकाब्द आरंभ तक के और जोड़ देवें तो भास्कराचार्योक्त वर्ष संख्या १९७२९४४०००+३१७९ प्राप्त हो जाती है।

आर्यभट ने सूर्यसिद्धान्त की ही भांति ब्रह्मा को सृष्टी की रचना लोकार्थ ४७४०० दिव्यवर्ष अर्थात् १७०६४००० सौरवर्ष लग गये ऐसा माना है। यथा–

तस्मात् कल्पगताब्दा गणिते ग्राह्याः परन्तु सृष्यब्दैः।
बनखभननिनै ऊना लोकार्थं शास्त्रमेतदतः॥१८॥

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में भास्कराचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"कल्पपरार्धे मनवः षट्कस्य गताश्चतुर्युगत्रिघनाः।
त्रीणि कृतादीनि कलिर्गोऽगैकगुणाः ३१७९ शकान्तेब्दाः॥२६॥
नवनगशशिमुनिकृतनवयमनगनन्देन्दवः १९७२९४७१९ शकपृपान्ते।
सार्धमतीतमनूनां सन्धिभिराद्यन्तरान्तगतैः॥२७॥"

सूर्यसिद्धान्त में भी यद्यपि आचार्योक्त कहा है लेकिन क्योंकि यह सिद्धान्त प्राचीनतम है अतः इसमें कृत युग तक के बीत चुके काल के लिए ही कहा है। तथा एक बात विशेष यह कही है कि ब्रह्मा को ग्रह, नक्षत्र, देव, दानव आदि चर-अचर जगत की रचना करने में ४७४०० दिव्य वर्ष लग गये। अर्थात वर्तमान कल्प आरंभ से इतने दिव्य वर्ष पश्चात् सृष्टि काल का आरंभ हुआ। अतः इतने वर्ष काल गणना में और जोड़ने होंगे। यथा—

"कल्पादस्माच्च मनवः षड्व्यतीताः ससन्धयः।
वैवस्वतस्य च मनोर्युगानां त्रिघनो गतः॥२२॥
अष्टाविंशाद्युगादस्माद्यातमेतम् कृतं युगम्।
अतः कालं प्रसङ्ख्याय सङ्ख्यामेकत्र पिण्डयेत्॥२३॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रहर्क्ष-देव-दैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः॥२४॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में सात मनुओं के नामों के लिए आचार्योक्त कहा है।

''स्वायम्भुवाख्यो मनुराद्य आसीत् स्वारोचिषश्चोत्तमतामसाख्यौ।
जातौ ततो रैवतचाक्षुषौ च वैवस्वतः सम्प्रति सप्तमोऽयम्॥'' अ. १ श्लो.२४॥

पूर्वोक्त आचार्योक्त शकारंभ तक की वर्ष संख्या यहाँ गणना करके बताते हैं।

६ मनु+७ मनुसंधि+२७ युग+कृतादि तीन युगचरण+३१७९

= ६ × ७१ यु+७×४×४,३२,०००+२७×४३,२०,०००+ (युग–कलिचरण) +३१७९

=४२६यु+२८×४,३२,०००+२७×४३,२०,०००+ (४३,२०,०००–४,३२,०००)+३१७९

= ४२६×४३,२०,००० + १,२०,९६,००० + ११,६६,४०,००० + ३८,८८,००० + ३१७९

= १९७२९४७१७९ आचार्योक्त वर्ष।

इदानीं बार्हस्पत्यं मानुषमानञ्चाह—

बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात् संवत्सरं सांहितिका वदन्ति।
ज्ञेयं विमिश्रन्तु मनुष्यमानं मानैश्चतुर्भिर्व्यवहारवृत्तेः॥३०॥
वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरान्-
मासास्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात्।
यत् कृच्छ्रसूतकचिकित्सितवासराद्यं
तत् सावनाच्च घटिकादिकमार्क्षमानात्॥३१॥

बृहस्पति तथा मनुष्य मान—

सूर्य-प्रभा टीका— संहिता ग्रंथों में कहा गया है कि बृहस्पति का मध्यम एक राशिभोगकाल संवत्सर कहलाता है। इस संसार में चार प्रकार के मान व्यवहार में आते हैं। वर्ष, अयन, ऋतु, युगादि सौर मान से प्रवर्त होते हैं और मास तिथि चंद्रमा से व्रत, उपवास, चिकित्सा, सूतक, वारादि सूर्य सावनात्मक हैं। घटिकादि नाक्षत्र कालिक हैं। इन सौर-चान्द्र-सावन तथा नक्षत्र

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चारों मानों का मिश्रण मनुष्यों के लिए व्यवहार होता है, अतः ये मनुष्य मान हैं।

विशेष— मध्यम गुरु जितने समय में एक राशि का भोग करता है उस काल को संवत्सर कहते हैं तथा ये विजया से आरंभ करके ६० संवत्सर होते हैं। कल्प के आरंभ में विजय नाम का संवत्सर मनुष्य मान के लिए था। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को सूर्योदय से मनुष्य मान की प्रवृत्ति कहते हैं।

भास्करोक्त वचन ही अधोलिखित शास्त्र भी कहते हैं।

क्षेपकपद्य—

"कल्पादितो मध्यमजीवभुक्ता ये राशयः षष्टिहृतावशेषाः।
संवत्सरास्ते विजयाश्विनाद्या इतीज्यमानं किल संहितोक्तम्॥"

श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर अध्याय-१ में संवत्सर के लिए कहा है। यथा–

"कल्पादि भुक्ता गुरुराशयो ये संवत्सराः स्युर्विजयादयस्ते।
बभाषिरे संहितिका हि पूर्वे वर्षाणि तस्याश्विनपूर्वकाणि॥४३॥"

मुहूर्तकल्पद्रुम में—

"चेत स्पष्टया वाऽप्यंथ मध्यगत्या राश्यन्तरं यत्र च चान्द्रवर्षः।"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में भास्कराचार्योक्त ही प्रकार से कालमानों के विभिन्न उपयोगों को कहा है। यथा अध्याय १—

"वर्षाणि सौरात् प्रवदन्ति चान्द्रान्मासाँस्तिथीः सावनतोदिनानि।
सौरैन्दवाभ्यां तु विना न तत् स्यान्नाक्षत्रमानाद्घटिकादिकालः॥४९॥
युगायनर्तुप्रभृतीनि सौरान्मानाद्द्युरात्र्योरपि वृद्धिहानी।
पर्वाधिमासोनदिनानि चान्द्रात् तथा तिथेरर्धमपि प्रदिष्टम्॥५०॥
प्रायश्चित्तं सूतकाद्यं चिकित्सायज्ञाद्येवं कर्म वारादिकञ्च।
शास्त्रे त्वस्मिन् खेचराणाञ्च चारा विज्ञातव्याः सावनाद्भास्करीयात्॥५१॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में भास्कराचार्य से बहुत अधिक कहा है। उन्होंने नौ प्रकार के कालमान जो भास्कराचार्य ने अगले श्लोक में कहे हैं में से किस मान में क्या कार्य करना चाहिए यह विस्तार से कहा है। ये सब अध्याय २ मध्यमा. में श्लोक १० से १३ में कहे हैं।

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त ही ४ मान मनुष्य मान बताये हैं। यथा–

"सौरचान्द्रमससावनमानैः सार्क्षकैर्गहगते खबोधः।
एभिरत्र मनुजव्यवहारो दृश्यते च पृथगेव चतुर्भि॥४८ अ.१॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्यसिद्धान्त के मानाध्याय में भी मानवमान अर्थात मनुष्यों के उपयोग के चार कालमान बताये हैं तथा किसमान से किसका विचार करते हैं यह भी बताया है यथा– "चतुर्भिर्व्यव्हारोऽत्र सौरचान्द्रार्क्षसावनैः॥२॥ नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः॥१५॥ सौरेण द्युनिशोर्मानं षडशीतिमुखानि च। अयनं विषुवच्चैवं संक्रान्तेः पुण्यकालता॥३॥ तिथिः करणमुद्वाहः क्षौरं सर्वक्रियास्तथा। व्रतोपवासयात्राणां क्रिया चान्द्रेण गृह्यते॥१३॥ सूतकादिपरिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा। मध्यमा ग्रहभुक्तिस्तु सावने नैव गृह्यते॥१९॥" यहाँ भास्कराचार्योक्त ही कहा गया है।

इदानीं मानोपसंहारश्लोकमाह—

एवं पृथङ्मानवदैवजैवपैत्रार्क्षसौरैन्दवसावनानि।
ब्राह्मञ्च काले नवमं प्रमाणं ग्रहास्तु साध्या मनुजैः स्वमानात्॥३२॥

कालमान के उपसंहार स्वरूप में श्लोक—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने काल के नौ मान बताये हैं मानव, दैव, जैव, पैतृ, अर्क्ष, सौर, चान्द्र, सावन, अहोरात्र आदि। ब्रह्मा का काल नवाँ प्रकार का है। मनुष्य जिस मान से ग्रहस्पष्ट करते हैं वह मनुष्य मान अर्थात् मनुष्य का स्वमान है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में अध्याय १ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"पैतामहं दिव्यमथासुरञ्च पैत्रं तथा मानुषमानमन्यत्।
सौराक्षमांशवसावनानि जैवं तथेदं दश कीर्तितानि॥४७॥
सौरचान्द्रमससावनमानैः साक्षैर्ग्रहगतेरवबोधः।
एभिरत्र मनुजव्यवहारो दृश्यते च पृथगेव चतुर्भिः॥४८॥"

यहाँ आचार्य ने दस प्रकार के मान कहे हैं। श्रीपति ने भी ग्रह आनयन मनुष्य मान से करने से भास्करोक्त उन चारों मानों को मनुष्य मान कहा है।

वटेश्वराचार्य ने स्वसिद्धान्त में आचार्योक्त ही कहा है लेकिन उन्होंने मनुष्य मान के स्थान पर दैत्यमान कहा है। दैव तथा दैत्य मान तो एक ही हैं, अतः यह अतिशयोक्ति है। यथा मध्यमाधिकार द्वितीय अध्याय–

"आर्क्ष चान्द्रमस सौर सावन ब्राह्म जैव पितृदेव दैत्यजैः।
काल एभिरनुमीयतेऽव्ययोयेन माननवकस्य च व्ययः॥८॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्यसिद्धान्त मानाध्याय में निम्नलिखित नौ प्रकार के कालमान बताये हैं–

"ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।
सौरश्च सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव॥१॥"

अर्थात– ब्राह्म, दिव्य (देवता), पित्र्य, प्रजापत्य (मन्वन्तरादि), गौरव (ब्रस्पतिवर्ष-संवत्सर), सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र ये नौ प्रकार के काल मान होते हैं।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के कालमानाध्याय की पण्डितवर्य श्रीदामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ब) भगणाध्याय

अथेदानीं ग्रहाणां मन्दोच्चानां चलोच्चानां ग्रहपातानाञ्च भगणान् श्लोकषट्केनाह—

अर्कशुक्रबुधपर्यया विधेरह्नि कोटिगुणिता रदाब्धयः ४३२०००००००।
एत एव शनिजीवभूभुवां कीर्त्तिताश्च गणकैश्चलोच्चजाः ॥१॥
खाभ्रखाभ्रगगनामरेन्द्रियक्ष्माधराद्रिविषया ५७७५३३००००० हिमद्युतेः।
युग्मयुग्मशरनागलोचनव्यालषण्नवयमाश्विनो २२९६८२८५२२ऽसृजः ॥२॥
सिन्धुसिन्धुरनवाष्टगोऽङ्कषट्त्र्यङ्कसप्तशशिनो १७९३६९९८९८४ ज्ञशीघ्रजाः।
पञ्चपञ्चयुगषट्कलोचनद्व्यब्धिषड्गुणमिता ३६४२२६४५५ गुरोर्मताः ॥३॥
द्विनन्दवेदाङ्कगजाग्निलोचनद्विशून्यशैलाः ७०२२३८९४९२ सितशीघ्रपर्ययाः।
भुजङ्गनन्दद्विनगाङ्कबाणषट्कृतेन्दवः १४६५६७२९८ सूर्यसुतस्य पर्ययाः ॥४॥

खाष्टाब्धयो ४८०ऽष्टाक्षगजेषुदिग्द्विप-
द्विपाब्धयो ४८८१०५८५८ द्व्यङ्कयमा २९२ रदाग्नयः ३३२।
शरेष्विभा ८५५ स्त्र्यक्षरसाः ६५३ कुसागराः ४१
स्युः पूर्वगत्या तरणेर्मृदूच्चजाः ॥५॥

गजाष्टिभर्गत्रिरदाश्विनः २३२३१११६८ कुभृ-
द्रसाश्विनः २६७ कुद्विशराः ५२१ क्रमर्त्तव ६३।
त्रिनन्दनागा ८९३ युगकुञ्जरेषवो ५८४
निशाकराद्व्यस्तगपातपर्ययाः ॥६॥

ग्रहों, मंदोच्चों, शीघ्रोच्चों तथा ग्रह पातों के भगण—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य बुध शुक्र की पूर्वाभिमुख गमन करते हुए ४३२ गुणा एक करोड़, एक कल्प में भगण संख्या होती है और इतनी ही शनि, गुरु तथा मंगल के शीघ्रोच्चों की संख्या होती है॥१॥ चन्द्रमा की भगण संख्या ५७७५३३००००० , मंगल की २२९६८२८५२२॥२॥ बुध शीघ्रोच्च की १७९३६९९८९८४, गुरु के भगण ३६४२२६४५५॥३॥ शुक्र शीघ्रोच्च की ७०२२३८९४९२, शनि की भगण संख्या १४६५६७२९८ होती है॥४॥ सूर्य का मन्दोच्च ४८० भगण, चंद्र का मंद ४८८१०५८५८, मंगल का मंद २९२, बुध

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का मंद ३३२, गुरु का ८५५, शुक्र का मंद ६५३, शनि का मंद ४१ पश्चिम से पूर्व की ओर गति करता है॥५॥

पातभगण कहते हैं। चंद्र का पात भगण २३२३१११६८, मंगल का २६७, बुध का ५२१, गुरु का ६३, शुक्र का ८९३, शनि का पात भगण ५८४ है। चंद्र सहित सभी के पात मेष से मीन, कुंभ, मकर आदि क्रम से विलोम गति करते हैं।

उपपत्ति— आचार्य का कहना है कि यहाँ जो आचार्य ने भगणादि पठित किये हैं उस की गणितस्कन्ध से उपपत्ति का आगम ही प्रमाण है। एक कल्प में जितने वर्ष होते हैं उतने ही सूर्य के भगण होते हैं। यह उपपन्न है। पूर्व में यहाँ सूर्य का भगण भोग काल ही वर्ष कहा गया है। बुध शुक्र सदासूर्य के आसन्न ही रहते हैं कभी उसके आगे रहते हैं तो कभी पीछे रहते हैं। ये रवि के साथ सदा अनुचर के रूप में घूमते रहते हैं। अतः उनकी भगण संख्या रविभगण तुल्य होती है। इनके शीघ्रोच्चों की उपपत्ति वक्ष्यमाण प्रकार से आगे बताई जायेगी।

समतल की हुई भूमि पर अभीष्ट कर्कटक (गोला प्रकार) से एक त्रिज्या तुल्य अंकित वृत्त बनावे जिसमें दिशा अंकित हो तथा भगणों के अंशादि अंकित हो। ऐसा करके उसमें पूर्व दिशा के चिन्ह से दक्षिण की ओर थोड़ी दूरी पर वृत्त के मध्य स्थित होकर रवि के उदय का वेध करके (कील) निशान लगा देवे, फिर एक वर्ष के अनन्तर रवि के उदय की गणना करे। यह ३६५ तुल्य होती है। यह एक वर्ष बाद का उदय पूर्व के उदय स्थान के आसन्न ही दक्षिण की ओर होता है। उस अन्तर को गणना करके ग्राह्य करे। फिर अंतर करे कि यदि एक अन्तर विज्ञ (ज्ञात की हुई) कला में ६० घटिका प्राप्त होती है तो दक्षिण की ओर अन्तरित कला में कितनी होगी? इससे १५ घटी ३० पल २२ विपल ३० प्र.विपल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार ३६५ दिन और १५।३०।२२।३० घट्यादि सावन दिन तुल्य रवि वर्ष होता है। फिर अनुपात किया कि यदि एक वर्ष में इतने कुदिन होते हैं तो कल्पवर्षों में कितने होंगे? इससे जो प्राप्त होंगे वे एक कल्प में सावन दिन संख्या होती है। इस प्रकार रविवर्ष प्राप्त करके अनुपात किया कि इतने कुदिन में चक्रकला प्राप्त होती है। (३६०×६०=२१६००) तो एक कुदिन में कितनी होगी? प्राप्त फल मध्यम रवि गति उपपन्न होती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चन्द्रभगणोपपत्ति— ग्रह वेध करने के लिए गोलबन्ध नियमों के अनुरूप गोलयन्त्र बनाकर उस खगोल के अंदर भगोल को स्थापित करे। दोनों का आधारवृत्त विषुवद्वृत्त है। इस वेध रचित गोल में क्रांति वृत्त में ३६० अंश अंकित करे और दोनों कदम्ब को कीलित करे, कदम्ब प्रोत वृत्त जो ग्रह वेधवलन है, पर भी ३६० अंश चिन्हित करें। फिर उस गोलयंत्र को जल के समान क्षितिज वलय की भांति ध्रुवाभिमुखयष्टि करके स्थिर करे। रात्रि में गोल केंद्र गत दृष्टि द्वारा रेवती तारा को देखकर वेधगोलीय क्रांतिवृत्त में मीनांत पर रेवती तारा को अंकित करे और गोलकेंद्रगत दृष्टि द्वारा चन्द्रमा को देखकर वेधगोल में परिणत चन्द्र के ऊपर उसका कदम्ब प्रोत्तवृत्त बनावे। इस वृत्त का व क्रांतिवृत्त का जो संपात है वही वेधगत स्पष्ट चन्द्र जानना चाहिए। रेवती बिंदु से स्पष्टचंद्र तक क्रांतिवृत्त में जो राश्यंशादि हो वही उस समय राश्यादि चन्द्र स्पष्ट होता है। इसी प्रकार क्रांतिवृत्त और चंद्रमा के मध्य वेधवृत्त में जो अंतर होता है। वह चंद्रमा का विक्षेप है। जिस प्रकार यह जिस रात्रि में वेध किया है उसी प्रकार पुनः द्वितीय दिन करे। इन दोनों का अंतर चंद्र की उस दिन की स्फुट गति होती है। फिर इस चंद्र स्पष्ट से "स्फुट ग्रह मध्य खगं प्रकल्प्य" इत्यादि द्वारा मध्यमचन्द्र से स्पष्ट चन्द्र साधन की विपरीत क्रिया द्वारा मध्यम चंद्र का आनयन करे। अनुपात करे की यदि एक दिन में इतनी चंद्र गति होती है तो कुदिन में क्या? इस अनुपात से चन्द्र की भगण संख्या प्राप्त हो जावेगी।

ब्रह्मगुप्त ने भी इसी प्रकार कहा है, यथा—

"ज्ञातं कृत्वा मध्यं भूयोऽन्यदिने तदन्तरं भुक्तिः।
त्रैराशिकेन भुक्त्या कल्पग्रहमण्डलानयनम्॥"

इसी प्रकार अन्यों के भी भगणों की उपपत्ति करें।

चन्द्रोच्च की उपपत्ति— प्रतिदिन वेध के द्वारा चन्द्र की स्पष्ट गति को देखते रहे जिस दिन यह परमाल्प होगी उस दिन मध्यम तथा स्फुट (ग्रह) चंद्र तुल्य होते हैं और वही उसका उच्च स्थान होता है। उच्च स्थान पर ग्रह का फलाभाव अर्थात् फल शून्य होता है अतः वहाँ गति परमाल्प होती है। पुनः उस दिन के उपरान्त दूसरे भगण में भी प्रत्येक दिन वेध से पूर्वोक्त प्रकार ही से चंद्रमन्दोच्च स्थान ज्ञात करें। यह स्थान पूर्व स्थान से आगे होता है। इनका अंतर ज्ञात करके अनुपात करे कि यदि इतने दिन के अंतर में इतना उच्च का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तर प्राप्त होता है तो एक दिन में कितना होगा? प्राप्त फल उच्च की गति होगी। फिर अनुपात करे कि यदि एक दिन में चंद्रमन्दोच्च गति इतनी प्राप्त होती है तो कुदिन में कितनी होगी? इस के द्वारा चन्द्रमन्दोच्च भगण का मान प्राप्त हो जावेगा।

चन्द्रपात भगणोपपत्ति— प्रतिदिन चंद्रमा का वेध करने से जिस दिन उसका दक्षिण (शर) विक्षेप क्षीयमाण हो उस दिन उसका विक्षेप शून्य होता है। उस दिन क्रांतिवृत्त में उस स्थान को चिन्हित कर देवे। वहाँ जितना चंद्र स्पष्ट हो उसको १२ राशि में से घटाने से चन्द्र का पात प्राप्त होता है। पुनः दूसरे पर्यय में भी पात स्थान ज्ञात करे। यह पातस्थान पूर्व पात स्थान से पश्चिम में (पीछे) होता है। इससे पात की विलोम गति सिद्ध होती है। दोनों पातों का अंतर पात की गति होगी। फिर अनुपात करने पर कि इतने दिनों के अंतर में पात गति इतनी होती है तो एक दिन में क्या होगी? प्राप्त फल एक दिन की पात गति होगी। फिर पूर्ववत अनुपात करने पर कि यदि एक दिन में इतनी गतिपात की होती है तो कुदिन में क्या? इस प्रकार प्राप्त फल कल्प में चंद्र पात भगण संख्या आ जावेगी।

रविमन्दोच्च भगणोपपत्ति— मिथुनस्थ रवि के रहने पर किसी भी दिन रेवती नक्षत्र के उदय के पश्चात जितनी घटी बाद सूर्य उदित हो उतनी घटी का मीनान्त से लग्न साधन करे। यह जो लग्न होगा वही स्पष्ट सूर्य होगा। इसी प्रकार दूसरे दिन भी करे। दोनों रविस्पष्ट का अन्तर सूर्य गति होगी। इसी प्रकार प्रत्येक दिन स्फुट गति ज्ञात करे। जिस दिन इस प्रकार करते रहने से रवि की स्पष्ट गति परमाल्प होगी उसी दिन जितना रवि स्पष्ट होगा उतना ही रवि मन्दोच्च प्रमाण होगा। इस प्रकार दूसरे पर्ययों में सौ वर्षों के अनन्तर भी रवि मन्दोच्च गति उपलब्ध नहीं होती किन्तु फिर भी चन्द्रमन्दोच्च की तरह यहाँ भी आचार्य ने इसकी गति स्वीकार की है तथा कहा है कि दूसरे पर्यय में भी मंदोच्च स्थान ज्ञात करे। इस प्रकार इन दोनों मंदोच्चों का अन्तर उनकी गति होती है। फिर पूर्वोक्त प्रकार से अनुपात द्वारा रवि मन्दोच्च भगण प्राप्त करे।

आचार्य कहते हैं कि ये भगण जितने उपयुक्त अहर्गण के वर्ष गणों में कहे अनुसार दृष्टिगत हो उनको कुट्टक के द्वारा कल्पित करे।

अन्य ग्रहों के शीघ्रोच्चोपपत्ति— शनि गुरु मंगल इत्यादि उच्च से आकर्षित होते हैं जिससे वे स्वकक्षामंडल में भ्रमण करते हुए अपने अभिमुख

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उच्च स्थानों की ओर आकर्षित होते हैं। इस आकर्षण के कारण अपनी कक्षा मंडल में ग्रह अपने मध्यम स्थान जितना आगे अथवा पीछे दृश्य होता है उतना फल उसका मंदफल होता है। यहाँ उच्च नामक स्थान, स्थान विशेष होता है। अतः उसके लिए कहा है कि वह आकर्षित करता है। जिस प्रकार सूर्य सिद्धान्त में कहा है—

"अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः।
शीघ्रमन्दोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः॥
तद्वातरश्मिभिर्बद्धास्तैः सव्येतरपाणिभिः।
प्राक्पश्चादपकृष्यन्ते यथाऽऽसन्नं स्वदिङ्मुखम्॥" इत्यादि

यहाँ जो देवता विशेष को अंगिकृत किया है वह दोषपूर्ण है। शनि, गुरु और कुज यदि सूर्य से आगे होते हैं तब मध्यमग्रह से स्फुट ग्रह आगे दृश्य होता है और यदि पीछे होता है तो मध्यम ग्रह से स्फुट ग्रह पीछे दृश्य होता है। यहाँ तीनों ग्रहों के शीघ्रोच्च रवि को ज्ञानियों ने माना है। अतः रविभगण तुल्य इनके शीघ्रोच्च भगण होते हैं, यह उपपन्न हुआ।

मन्दोच्च उपपत्ति— जहाँ वेध से स्फुट ग्रह ज्ञात होता है, उसको मंदस्फुट मान कर उसका शीघ्रफल आनयन करके उस स्फुट ग्रह में विलोम संस्कार करके मंदस्फुट ग्रह प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रत्येक दिन का मंदस्फुट ज्ञात करे। इस प्रकार प्रत्येक दिन को मंदस्फुट उपलक्षित करके उनका धन मंदफल क्षीयमाण होते हुए जिस दिन वह ग्रह मध्यम तुल्य होता है उसके तुल्य ही मंदोच्च होता है। उससे रवि मन्दोच्च भगण जिस प्रकार ज्ञात किया है उसी प्रकार इनका भी ज्ञात करे। द्वितीय पर्यय में भी ग्रह मंदोच्च ज्ञात करना होगा।

बुध शुक्र के शीघ्रोच्चोपत्ति— पूर्व दिशा में चक्रयन्त्र द्वारा स्पष्ट रवि शुक्र के वेध से उनके अंतरांश ज्ञात करे तथा उनको स्फुट सूर्य में से घटाने से स्पष्ट शुक्र होता है। स्फुट शुक्र का मन्दफल साधन करके स्फुट शुक्र में धन ऋण का विलोम संस्कार करने से मन्दस्पष्ट शुक्र प्राप्त होता है। इसी प्रकार स्पष्ट रवि से भी विलोम विधि से मध्यम रवि ज्ञात करे। दोनों का अंतर करने पर धन-ऋण शीघ्रफल होगा अर्थात् मध्यम रवि तुल्य मध्यम शुक्र और मध्यमफल व्यस्त संस्कृत से लाये हुए स्पष्ट शुक्र का अन्तर करने से जो धन-ऋण शीघ्रफल प्राप्त होता है वही स्पष्ट शुक्र तथा मन्द स्पष्ट शुक्र का अंतर शीघ्र फल होता है। इस प्रकार वेध से प्रतिदिन परमशीघ्र फल प्राप्त करना चाहिये। शीघ्रफल का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परमत्व प्रायः कक्षा मध्यतिर्यग्रेखा प्रतिवृत्त सम्पात में रहने से होता है। अतः वहाँ स्पष्ट शुक्र से तीन राशि दूरी पर शीघ्रोच्च होता है। इसी प्रकार पुनः ऐसे ही पर्यय में द्वितीय बार वेध से पूर्वोक्तानुसार शीघ्रोच्च का साधन करके उन दोनों शीघ्रोच्चों का अन्तर करे तथा अनुपात करे कि यदि शीघ्रोच्चों का इतना अंतर इतने समय में प्राप्त होता है तो एक दिन में कितना होगा।? प्राप्त फल एक दिन की शीघ्रोच्च गति होगी। फिर अनुपात करे कि यदि एक दिन में यह शीघ्रोच्च गति होती है तो कुदिन में कितनी होगी? इस के द्वारा कुदिन में शुक्रोच्च भगण आ जायेंगे। इसी प्रकार बुध शीघ्रोच्च भगण प्राप्त करे।

भोमादि के पात भगण— भोमादि के पूर्ववत दक्षिण विक्षेप अभाव स्थान पर वह मंदस्फुट होता है। ग्रह को चक्र (१२ राशि) में से घटाने से उनके पात होते हैं। बुध शुक्र के मन्दफल व्यस्त संस्कृत करने से प्राप्त शीघ्रोच्च को चक्र में से घटाने से उनके पात ज्ञात होते हैं। उनसे पूर्ववत कल्प भगण प्राप्त करे।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने सभी भगण संख्यायें महायुग के लिए कही हैं अतः उनके अंकों में थोड़ा-थोड़ा अंतर प्रतीत होता है। आचार्य ने ये भगण मध्यमाधिकार के द्वितीय अध्याय में श्लोक ११ से १९ तक में कहे हैं।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में श्लोक १६ से २१ में आचार्योक्त भगण ही पठित किये हैं। श्लोकों की संख्या अधिक होने से यहाँ उन्हें नहीं दिया जा रहा है।

सूर्यसिद्धान्त में सू, चं, मं, गु, श, बु, शु, बु.शी, शु.शी, चं.शी. तथा राहु आदि के भगण कहे हैं। ये भगण महायुग के लिए कहे हैं तथा कल्प भगणप्राप्त करने के लिए वटेश्वराचार्य की तरह उन्हें एक हजार से गुणा करने के लिए कहा है। सूर्य सिद्धान्त तथा वटेश्वर सिद्धान्त में इनकी भगणसंख्या तुल्य ही कही है।

वटेश्वर सिद्धान्तोक्त युग भगण		सूर्य सिद्धान्तोक्त युग भगण
सूर्य-बुध-शुक्र	४३२००००	४३२००००
चंद्र	५७७५३३३६	५७७५३३३६
भौम	२२९६८२८	२२९६८३२
		यहाँ ४ भगण का अंतर है।
गुरु	३६४२२०	३६४२२०
शनि	१४६५६८	१४६५६८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राहु (चंद्रपात)	२३२२३८	२३२२३८
बुध शीघ्रोच्च	१७९३७०८०	१७९३७०६०
शुक्र शीघ्रोच्च	७०२२३७६	७०२२३७६
चंद्र मंदोच्च	४८८२०३	४८८२०३
रवि मंदोच्च भगण	१६५११	३८७एक कल्प में
	ब्रह्मा की आयु में	
मंगल मंदोच्च	८११६५ ,,	२०४ ,,
गुरु मंदोच्च	१३९४५ ,,	९०० ,,
शनि मंदोच्च	७२९७४ ,,	३९ ,,
बुध मंदोच्च	४७७२९१ ,,	३६८ ,,
शुक्र मंदोच्च	१५२८४२ ,,	५३५ ,,
ब्रह्मा की आयु में—		
बुध पात भगण	९५५२७१४५५४१८७१९	४८८ ,,
शुक्र पात भगण	१९६१२७४८०६३६५५५	९०३ ,,
मंगल पात भगण	२०६८४	२१४ ,,
गुरु पात भगण	३९२०२	१७४ ,,
शनि पात भगण	१५४२	६६२ ,,

सूर्यसिद्धान्त मध्यमाधिकार श्लोक ३० से ३३ तथा ४१ से ४४ में ये भगण कहे हैं।

सिद्धान्त शेखर में भगण संख्या आचार्योक्त ही कहे हैं। यथा–

"अष्टकोटिगुणिताः कृतेषवः ४,३२,०००००० सूर्यसौम्यभृगुसूनुपर्ययाः।
कल्पकालकथिताश्चलोच्चजा भौम मंदसुरमंत्रिणामपि॥२६॥
देववाणनगशैलवायवो लक्षकाभिनिहता ५७,७५३,३००,००० हिमत्विषः।
आकृतीष्वहियमाष्टषडङ्कद्वयश्विनोऽ २२९६८२८५२२ वनिसुतस्य कीर्तिताः॥२७॥
वेदाष्टनन्दवसुगोऽङ्करसाग्निरन्ध्रशैलेन्दवो १७९३६९९८९८४ बुधचलोच्चज मंडलानि।
वाणेषुवेदरसनेत्रयमाब्धिषट्क रामा ३६४२२६४५५ गिरामधिपतेर्भगणः प्रदिष्टः॥२८॥"

इसी प्रकार आगे। (अ.१ श्लोक २६ से ३१)

अथ भध्रमानाह—

खखेषुवेदषड्गुणाकृतीभभूतभूमयः।
शताहता १५८२२३६४५०००० भपश्चिमध्रमा भवन्ति काहनि॥७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नक्षत्र भगणमान—

सूर्य-प्रभु टीका— एक कल्प में नक्षत्र दिन संख्या १५८२२३६४५०००० होती है।

विशेष— ये भगण वास्तव में पृथ्वी के हैं जो पृथ्वी को स्थिर मान कर (तारे) नक्षत्र के कहे हैं।

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय १ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"भूतवेदरसरामयमाश्विव्यालवाणशशिनोऽयुतनिघ्नाः १५८२२३६४५०००० ज्योतिषामपरया खलु गत्या गच्छतां विधिदिनं परिवर्त्ता॥३२॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में आचार्योक्त नक्षत्रदिन कहे हैं—

"भपरिवर्त्ताः खचतुष्टयशरब्धिरसगुणयमद्विवसुतिथयः १५८२२३६४५०००० ॥२२॥"

अथ सूर्याहाँश्चान्द्राहाँश्चाह—

विधिदिने दिनकृद्दिवसाः करे-
न्द्रियशरेषुभुवोऽर्बुदसङ्गुणाः १५५५२००००००००।
नवनवाङ्ककराभ्ररसेन्दवः
प्रयुतसङ्गुणिता १६०२९९९०००००० विधुवासराः॥८॥

सूर्य चन्द्र दिन संख्या—

सूर्य-प्रभा टीका— एक कल्प में सौर दिवस १,५५५,२००,०००,००० होते हैं तथा चांद्र दिवस १,६०२,९९९,०००,००० होते हैं।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में आचार्योक्त ही कहा है तथा उनकी उक्ति से भास्कराचार्योक्त कथन की उपपत्ति भी हो जाती है। यथा—

रविभगणा रव्यब्दा द्वादशगुणिता भवन्ति रविमासा।
भगणान्तरं रविन्द्वो शशिमासाः ५३४३३३००००० सूर्यमासोनाः॥२३॥
अधिमासाः १,५९३,३००,००० शशिमासास्त्रिंशदगुणता १६०२९९९०००००० भवन्ति शशिदिवसाः।

अर्थात्— रविभगण तुल्य वर्षमान होते हैं अतः रविभगण ४३२०,०००,०००×१२ = ५१,८४०,०००,०००। रविमास × ३० दिन = १५,५५,२००,०००,००० रविदिन।

कल्पचंद्रभगण ५७७५३३००००० – रविभगण ४३२०००००० = चंद्रमास ५३४३३३००००।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन मासों को ३० दिन से गुणा करने से चांद्र दिवस = १६०२,९९९,०००,०००

आचार्योक्त चांद्रमास की परिभाषा सूर्य सिद्धान्तादि में भी दी गई है क्योंकि ये आधारभूत परिभाषायें हैं।

अथ कुदिनान्याह—

भूदिनानि शरवेदभूपगोसप्तसप्ततिथयोऽयुताहताः १५७७९१६४५०००० भभ्रमास्तु भगणैर्विवर्जिता यस्य तस्य कुदिनानि तानि वा॥९॥

कुदिन मान—

सूर्य-प्रभा टीका— कल्प नक्षत्र दिवस में से सूर्य भगण घटा देने से कल्प सावन दिन संख्या होती है। (क्योंकि एक रविवर्ष में जितने नक्षत्र भ्रमण होते हैं उससे एक कम सावन दिन होता है) अतः नक्षत्र भगण १,५८२,२३६,४५०,००० – रवि भगण ४,३२०,०००,००० = १,५७७,९१६,४५०,००० कुदिन (सावन दिन)।

सावन दिन ज्ञात करने की परिभाषा आधारभूत परिभाषा है। इसी परिभाषा से सभी आचार्यों ने अपने अपने ग्रंथ में सावन दिन ज्ञात किये हैं, लेकिन उनके भगणों के मान भिन्न भिन्न होने से तथा वर्षमान भिन्न भिन्न होने से सावन दिनादि संख्या अलग अलग होती है।

वर्ष मान को कल्प/युग सूर्य भगण से गुणा करने से कल्प/युग के सावन दिन संख्या प्राप्त हो जाती है।

अथाधिमासान् न्यूनाहाँश्चाह—

लक्षाहता देवनवेषुचन्द्राः १५९३३००००० कल्पेऽधिमासाः कथिताः सुधीभिः। दिनक्षयास्तत्र सहस्रनिघ्नाः खबाणबाणाश्व्यहिखेषुदस्राः २५०८२५५००००० ॥१०॥

अधिमास-क्षय दिवस—

सूर्य-प्रभा टीका— ज्ञानी जनों ने एक कल्प में १५९३३००००० अधिमास कहे हैं और एक कल्प में २५०८२५५००००० क्षयदिन कहे हैं।

इदानीमधिमासेन्दुदिनावमानि प्रकारान्तरेणाह—

रवेः कोटिनिघ्नाः कृताष्टेन्दुबाणाः ५१८४०००००००। सुराग्न्यब्धिरामेषवो लक्षनिघ्नाः ५३४३३३००००० ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शशाङ्कस्य मासाः पृथक् सूर्यमासै-
र्विहीनास्तु कल्पेऽथ वा तेऽधिमासाः ॥११॥
अधिदिनैर्दिनकृद्दिनसञ्चयः सहित इन्दुदिनान्यथ तानि वा।
विरहितानि च तानि दिनक्षयैः क्षितिदिनान्यत उत्क्रमतोऽपरम् ॥१२॥

अधिमास चांद्र दिवस तथा (क्षय) अवयमान प्रकारान्तर से—

सूर्य-प्रभा टीका— सौर मास (४३२०००००००×१२) ५१,८४०,०००,००० को चांद्रमास (श्लोक ८ में प्राप्त किये अनुसार) ५३,४३३,३००,००० में से कम करने से अधिमास प्राप्त होते हैं। अधिमास के दिनों में सौर दिन युक्त करने से चांद दिवस प्राप्त होते हैं। कल्प चांद्र दिन और कल्प कुदिन का अन्तर कल्प अवमदिन होते हैं। क्षयदिनों को उत्क्रम से चांद्र दिनों में कम करने से कल्प कुदिन प्राप्त होते हैं।

विशेष— ये श्लोक ११ तथा १२ वाँ, श्लोक १० की उपपत्ति भी है। अब

चांद्रमास – सौरमास = अधिमास (परिभाषा है)
अधिमास+सौरमास = चांद्रमास
अर्थात् अधिमास दिन+सौर दिन =चांद्रदिन (कल्प में)

१५९३३०००००×३०+१,५५५,२००,०००,००० = चांद्र दिन एक कल्प में। ४७,७९९,०००,०००+१,५५५,२००,०००,००० = १,६०२,९९९,०००,००० एक कल्प में चांद्र दिन उपपन्न हुआ।

ये सभी आधारभूत परिभाषायें हैं जिनके आधार पर ही अन्य ग्रंथों में गणनायें की गई हैं। उनके मान भिन्न हो सकते हैं। वटेश्वर, ब्रह्मगुप्तादि ने तथा सूर्यसिद्धान्त आदि में भी आचार्योक्त ही कहा है।

इदानीं प्रकारान्तरेण चान्द्रमासान् दिनक्षयांश्चाह—

अन्तरं तरणिचन्द्रचक्रजं यद्भवेत् स विधुमाससञ्चयः।
चन्द्रचक्रदिवसैक्यमूनितं चन्द्रमासभदिनैर्दिनक्षयाः ॥१३॥

प्रकारान्तर से चांद्रमास और दिनक्षय ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्रभगण में से सूर्य भगण घटाने से चांद्रमास संख्या प्राप्त होती है। चान्द्र भगण में से चांद्रमास घटाने से सूर्य भगण प्राप्त होते हैं। नक्षत्र भगण में से रवि भगण घटाने से सूर्य सावनदिन प्राप्त होते हैं। इन सावन दिनों को चांद्रदिनों में से घटाने से क्षय दिन प्राप्त होते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— सूर्यसिद्धान्त, वटेश्वर तथा ब्रह्मगुप्तादि ने भी इसी प्रकार कहा है। आचार्योक्त परिभाषायें आधारभूत परिभाषायें हैं।

एक सौर वर्ष में नृसिंह दैवज्ञानुसार चन्द्र चक्र १३।४।१२।४६।३० ये १३ चक्रसंख्या के अतिरिक्त संख्या के घटिकादि बनाने से २२।७।४५ हुए अतः चन्द्र चक्र को दिन मानने से १३।२२।७।४५ में चांद्र दिवस ३७१।३।५२।३० युत करने से ३८४।२६।०।१५ चन्द्र चक्र दिवसैक्य हुए। इनमें से चांद्रमास १२।११।३।५२।३० घटाने के लिए इसको सजातीय करने के लिए चांद्रमास के आगे के अंकों को दो से गुणा करके घटिकादि प्राप्त करके चान्द्रमास तुल्य दिन मान कर १२।२२।७।४५ घटाने से ३७२।३।५२।३० प्राप्त हुए। इनमें से ३६६।१५।३०।२२।३० नक्षत्रदिन घटाने से ५।४८।२२।७।३० दिन क्षय हुए।

इदानीमन्यदाह—

इन्दुमण्डलगुणेन्दु १३ सङ्गुणब्रध्नचक्रविवरेऽधिमासकाः।
खेचरोच्चभगणान्तरोन्मिताः सन्ति मन्दचलकेन्द्रपर्ययाः॥१४॥

सूर्य-प्रभा टीका— १३ गुणित रविभगण को चान्द्रभगण में से घटाने से अधिमास प्राप्त होते हैं और ग्रहभगण में से मन्द/शीघ्र उच्च भगण को घटाने मन्द/शीघ्र केंद्र भगण प्राप्त होते हैं।

उपपत्ति— युग अधिमास = युग चांद्रमास – युगसौर मास

युग चांद्रमास = युग चांद्रभगण – युगसूर्य भगण .....(१)

तथा युगसौरमास = १२ × युगसूर्य भगण .....(२)

अतः युगअधिमास = (युगचांद्रभगण – युगसूर्यभगण) – १२ युग सूर्यभगण

यहाँ युग चांद्रमास तथा युग सौर मास का मान समी. (१) तथा (२) से प्रतिस्थापित किया है। (यहाँ युग के स्थान पर कल्प ले सकते हैं।)

अथवा युग अधिमास = युग चांद्रमास – १३ युग सूर्यभगण उपपन्न हुआ।

एक सौर वर्ष में सूर्य भचक्र का एक भगण तथा चंद्रमा १३ भगण करता है। क्योंकि चंद्रमा सूर्य के चक्कर लगाता है और सूर्य चंद्रमा सहित भचक्र में एक चक्कर एक वर्ष में लगाता है अतः एक सौर वर्ष में चन्द्रमा के १३ भगण हो जाते हैं। अतः एक वर्ष में सूर्य के बारह मास तथा चंद्रमा के १३ मास हुए। इन दोनों का अंतर चंद्र मास तथा सूर्यमास का अंतर चंद्रमा का एक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अधिमास हुआ। चन्द्रमा का एक भगण एक मास तुल्य होता है। इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि एक वर्ष के चंद्र भगणों (१३) में चांद्रमास (१२) घटाने से एक सूर्यभगण प्राप्त होता है। इस प्रकार यह आचार्योक्त श्लोक १० से १३ की उपपत्ति हो जाती है। चंद्रमा क्योंकि सूर्य से शीघ्र गति से चलता है अतः उसके दिनों की संख्या से सावन दिनों की संख्या अल्प होती है। अतः इन दिनों की संख्या कितनी अल्प होती है यह इन दोनों के अंतर करने से ज्ञात हो जावेगा। अतः यह अन्तर क्षय दिवस कहे जाते हैं।

वटेश्वर तथा ब्रह्मगुप्तादि आचार्यों ने भी यही आधारभूत परिभाषायें कही हैं।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में मध्यमगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"द्युगणां युगाधिमासैर्गुणितं युगभूदिनैर्भजेल्लब्धम्।
भगणादिमध्यमार्कत्रयोदशगुणाधिकं चन्द्रः॥३३॥"

लल्लाचार्य ने शिश्याधिवृद्धिद के मध्यमाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"विश्वघ्नतिग्मकरपर्ययवर्जितेषु चक्रेषु शीतमहसस्त्वधिमासकाः स्युः" ॥९$\frac{१}{२}$॥

"ये स्वोच्चपर्ययनभश्चर मण्डलानां विश्लेषजास्त इह केन्द्रजपर्ययाः स्युः" ॥११॥

॥ इति श्रीमद् भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के भगणाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्यप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

॥ इति भगणाध्यायः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(स) अथ ग्रहानयनाध्यायः।

तत्राहर्गणानयनमाह—

कथितकल्पगतोऽर्कसमागणो
रविगुणो गतमाससमन्वितः।
खदहनैर्गुणितस्तिथिसंयुतः
पृथगतोऽधिकमास - १५९३३००००० समाहतात्॥१॥
रविदिना - १५५५२००००००००गताधिकमासकैः
कृतदिनैः सहितो द्युगणो विधोः।
पृथगतः पठितावम - २५०८२५५०००० सङ्गुणाद्-
विधुदिना - १६०२९९९०००००००गतावमवर्जितः॥२॥
भवति भास्करवासरपूर्वको दिनगणो रविमध्यमसावनः।
अधिकमासदिनक्षयशेषतो द्युघटिकादिकमत्र न गृह्यते॥३॥

अहर्गण आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— कल्पारंभ से गताब्द तुल्य सौर वर्षों को १२ से गुणा करके (गताब्द के रविमास प्राप्त होंगे। इनमें चैत्रारंभ से वर्तमान वर्ष के) गतचांद्रमास संख्या (सौरमास मान कर) युत करके तीस से गुणा करके इष्टमास की (प्रतिपदा से) गति तिथि (सौर तिथि तुल्य मान कर) युत करके इसको पृथक् स्थान पर कल्प अधिमास १५९३३००००० से गुणा करके कल्प रवि दिन १५५५२००००००० से भाग देने से प्राप्त अधिमास संख्या के दिन बनाकर (पूर्वोक्त) द्युगणों में युक्त कर देवे। फिर इन प्राप्त चांद्र दिनों को कल्प अवम दिन संख्या २५०८२५५०००० से पृथक स्थान पर गुणा करके कल्पचांद्र दिवस संख्या १६०२९९९०००००० से विभक्त करने से प्राप्त फल को (पूर्वोक्त) द्युगणों में से हीन करने से पूर्वोक्त रविदिनगण संख्या से रविमध्यम सावन दिन संख्या प्राप्त होती है। यहाँ अधिकमास तथा दिन क्षय में प्राप्त शेष की दिन घटिकादि को ग्रहण न करे।

स्पष्टीकरण— कल्पारंभ से इष्ट दिवस संख्या को सिद्धान्त ग्रंथों में,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथा युगारंभ से इष्ट दिवस संख्या को तंत्र ग्रंथों में एवं इष्ट तिथि वर्ष से करण ग्रंथों में अहर्गण कहा गया है।

कल्पारंभ से गताब्द तुल्य सौर वर्षों को बारह से गुणा करने से रविमास प्राप्त होते हैं। इनमें चैत्र से आरंभ करके वर्तमान वर्ष के गत चांद्र मासों की संख्या को सौरमास तुल्य मानकर युक्त करके प्राप्त फल को तीस से गुणा करने से सौर दिन (तिथि) संख्या प्राप्त होती है। इनमें इष्ट मास की प्रतिपदा से इष्ट दिवस से गत तिथि तुल्य संख्या को सौर तिथि मान कर युत करे। इस योग को एक स्थान पर पृथक स्थापित करके त्रैराशिक से अधिकमास संख्या ज्ञात करे कि, यदि कल्प सौर दिन में कल्प अधिमास प्राप्त होते हैं तो इतने (पूर्वप्राप्त) सौर दिनों में कितने अधिक मास प्राप्त होंगे? इस प्रकार प्राप्त फल गत अधिमास संख्या होगी। इसके लिए अभीष्ट तिथि तक की पूर्व प्राप्त सौर तिथि संख्या को पूर्वोक्त कल्प अधिकमास संख्या १५९३३००००० से गुणा करके कल्प रवि दिन संख्या १५५५२०००००००० से भाग देने से अभीष्ट तिथि तक गत अधिकमास संख्या होगी।

फिर पूर्वोक्त अभीष्ट सौर दिवस संख्या में इन प्राप्त अधिकमास संख्या को ३० से गुणा करके दिन बना कर जोड़ने से प्राप्तफल चांद्र दिवस (अहर्गण) हो जाता है क्योंकि सौर चांद्र दिवसों में अधिकमास के दिनों तुल्य अन्तर होता है। अब इन चांद्र द्युगणों से अवम दिन संख्या त्रैराशिक से ज्ञात करे कि यदि कल्प चांद्र दिवस में इतने अवम दिन होते हैं तो इन अभीष्ट चांद्र द्युगणों में कितने अवम दिन होंगे? प्राप्त फल गत अवमदिनों की संख्या होगी। इसके लिए पूर्वप्राप्त चांद्र द्युगण संख्या को कल्प अवम दिन संख्या २५०८२५५०००० से गुणा करके कल्पचांद्र दिन संख्या १६०२९९०००००० से भाग देने से अभीष्ट तिथि तक के चांद्र द्युगण में गत अवम दिन संख्या प्राप्त होगी।

सावन तथा चांद्र दिवस का अन्तर क्योंकि पूर्व कथित अनुसार अवम दिन संख्या होती है, अतः इन प्राप्त अवम दिन संख्या को चांद्र द्युगण (अहर्गण) में से हीन करने से रविमध्यम सावन दिन अहर्गण प्राप्त होता है लेकिन यह स्फुट अहर्गण नहीं होता। मध्यम तथा स्फुट अहर्गण में जो भेद है वह आचार्य ने गोलाध्याय में कहा है। यहाँ अधिमास आनयन में अधिमास शेष को नष्ट कर दिया (छोड़) गया है उससे पुनः दिनादि अवयव गृहण नहीं किये हैं। इसी प्रकार अवम शेष आनयन में प्राप्त शेष के घटिकादि ग्रहण नहीं किया है, उन्हें छोड़

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिया गया है। अतः उनका अनुपात करके सावयव नहीं करके उनके अवयवों को क्यों नहीं किया है उसके कारण की आचार्य गोलाध्याय में व्याख्या करेंगे।

विशेष— आचार्योक्त प्रकार से अहर्गण साधन सभी पूर्ववर्ति तथा परवर्ती आचार्यों ने अपने-अपने ग्रंथों में कहा है लेकिन आचार्य ने स्पष्ट रूप से एक बात यहाँ पर खोल कर कही है कि इस प्रकार साधित अहर्गण मध्यम मान का है, स्फुट नहीं है। अर्थात् वास्तविक अहर्गण से यह अहर्गण संख्या भिन्न हो सकती है।

वटेश्वराचार्य ने अनेक विधियों से अहर्गण साधन के लिए अलग से "द्युगण विधिः" अध्याय दिया है जिसमें इसके आनयन के लिए २६ श्लोक कहे हैं।

इदानीं ग्रहानयनमाह—

द्युचरचक्रहतो दिनसञ्चयः क्कहहतो भगणादि फलं ग्रहः।
दशशिरः पुरि मध्यमभास्करे क्षितिजसन्निधिगे सति मध्यमः॥४॥

ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण को ग्रह की कल्प भगण संख्या से गुणा करके कल्प कुदिन संख्या से भाग देने से प्राप्त फल मध्यम ग्रह होता है। यह लंका के क्षितिज के आसन्न स्थित है।

विशेष— आचार्य ने यहाँ ग्रह के लंका क्षितिज के आसन्न स्थित होने के लिए कहा है अर्थात् कभी वह क्षितिज से कुछ ऊपर तथा कभी कुछ अधः स्थित होता है। इसके कारण की आचार्य ने गोलाध्याय में उदयांतर कर्म की विवेचना करते समय व्याख्या की है। अतः यहाँ ग्रह को लंका क्षितिज के "सन्निधिग" ही कहा है।

सभी आचार्यों ने आचार्योक्त प्रकार से ग्रह आनयन अहर्गण द्वारा करना बताया है। जैसे **वटेश्वराचार्य** ने मध्या. चतुर्थ अध्याय श्लोक १ में कहा है—

"द्युगणे भगणाभ्यस्ते कुदिनहृतेपर्ययादि गतरवेटाः।
रव्युदये लङ्कायां मृद्च्चपाताः स्वकुद्युभिः साध्याः॥१॥"

सूर्यसिद्धान्त में मध्यमा. १ में भी आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"यथा स्वभगणाभ्यस्तो दिन राशिः कुवासरैः।
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत्॥५३॥"

भास्कराचार्य ने यहाँ आधारभूत विधि कही है। **ब्रह्मगुप्ताचार्य** ने भी जो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अहर्गण से ग्रहादि आनयन विधियाँ दी है उनका आधार भी यही आधार भूत विधि ही है। यथा–

"इष्टग्रहभगणगुणादहर्गणात्कल्पसावनाद्युहतात्।
भगणादिफलं मध्यो लंकायां भास्करौदयिकः॥ मध्यमा. श्लोक ३२॥"

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के प्रथम अध्याय में इसी प्रकार कहा है। यथा–

"कलीकृतं वा ससमं दिवाकरं स्वगीतिकोक्तैर्भगणैः समाहतम्।
भजेत वर्षैर्युगसङ्ख्ययोदितैर्विहङ्गमानां प्रवदन्ति लिप्तिकाः॥९॥"

यहाँ "गीतिकोक्तै" शब्द आर्यभट की आर्यभटीय के प्रथम अध्याय के लिए कहा गया है।

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मध्यग्रहाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अहर्गणे खेचरमण्डलाहते क्वहोद्धृते मण्डलपूर्वको ग्रहः॥१६$\frac{1}{2}$॥"

इदानीं ज्ञातेऽर्केऽवमशेषाच्चन्द्रमाह—

**कोट्याहतैरङ्ककृतेन्दुविश्वै-१३१४९०००००० न्यूनाहशेषे विहृते लवाद्यम्।
रविघ्नतिथ्याढ्यमनेन युक्तो रविर्विधुः स्याद्विधुरूनितोऽर्कः॥५॥**

अवम शेष से सूर्य तथा चंद्र का आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अवमशेष में १३१४९०००००० से भाग देने से प्राप्त फल में १२ गुणित चैत्रादि गत तिथि को जोड़ने से प्राप्त फल को रवि में युक्त करने से चंद्रमा की तथा चंद्रमा में से घटाने से सूर्य की स्थिति प्राप्त होती है।

उपपत्ति— आचार्य द्वारा बताये उपरोक्त पद्य को सूत्र रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं।

$$\text{चंद्रमा} = \text{रवि} + १२ \times \text{गतिविधि} + \frac{\text{क्षयशेष}}{१३१४९०००००००}$$

यदि $\frac{\text{क्षयशेष}}{१३१४९०००००००} + १२ \times$ गत तिथि = A मान लें तो उपरोक्त सूत्र इस प्रकार बन जाता है, चंद्रमा = रवि +A

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अतः आचार्योक्त प्रकार से A को रवि में युक्त करने से चंद्रमा तथा चंद्रमा में से हीन करने से रवि प्राप्त होता है।

चंद्र तथा रवि का अन्तर मान १२ अंश होने पर एक तिथि होती है। अतः गत तिथि संख्या तथा १२ का गुणा चंद्र-सूर्य के अंतर तुल्य होता है। इस अंतर को यदि रवि में जोड़ दिया जावे तो चन्द्र का मान आ जाता है और यदि चंद्र में से घटा देने से सूर्य का मान आ जाता है। यह युक्युिक्त है। किन्तु यह स्थिति तिथि अंत (पूर्ण) पर ही होती है। सूर्योदय कालिक चंद्र तथा सूर्योदय से तिथि अंत के मध्य जो अवमशेष रहता है वह सावनात्मक है। इन रविचंद्र अंश अंतर से अनुपात करके चन्द्रमा ज्ञात करते हैं कि यदि कल्पकुदिन में कल्प चन्द्र दिन प्राप्त होते हैं तो इन अवमशेष पतित कुदिन में कितने होंगे?

क्षयशेष = $\frac{\text{क्षयशेष}}{\text{कल्प चां.}}$ यह सावनात्मक है। इसको चन्द्रात्मक करने के लिए अनुपात किया–

$\frac{\text{क.चां.}}{\text{क.कु.}} \times \frac{\text{क्ष.शे.}}{\text{क.चा.}} = \frac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.कु.}}$ इस प्रकार कल्प कुदिन भाग-हार प्राप्त हुआ।

यह फल चन्द्र दिनात्मक है। (इसको १२ से गुणा करने से अंशात्मक होता है)। इसमें गत तिथि जोड़ने से चैत्र अमान्त से अहर्गणांतपर्यंत तिथि प्रमाण होगा।

गत तिथि + $\frac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.कु.}}$। इनको १२ से गुणा करने से ये अंशात्मक होंगे,

अतः १२ (गत तिथि+ $\frac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.कु.}}$) = अहर्गण के अंत में रवि चंद्र के अंतर अंश।

अतः चन्द्र – रवि = १२ (गति तिथि+ $\frac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.कु.}}$)

अथवा चन्द्र = रवि + १२ (ग.ति.+ $\frac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.कु.}}$) तथा रवि = चंद्र – १२ (ग.ति.+ $\frac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.कु.}}$)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{या चन्द्र} = \text{रवि} + १२ \text{ ग.ति} + \frac{\frac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.कु.}}}{१२} = \text{रवि} + १२$$

ग.ति.+ $\frac{\text{क्षयशेष}}{१३१४६३०३७५००}$ प्राप्त होगा।

भास्कराचार्य स्वकृत टीका में कहते हैं कि उन्होंने लाघवार्थ हार को १३१४६०००००० पठित किया है "लाघवार्थमाद्येषु सप्तसु स्थानेषु शून्यान्येव कृत्वा भागहार पठितः। यतस्तथा कृत एकाऽपि विकला नान्तरं भवति।" तथा कहते हैं कि इस से एक कला से अधिक अंतर नहीं पड़ेगा।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने भास्कराचार्योक्त ही कहा है लेकिन उन्होंनें भाग-हार के लिए कुछ भी नहीं कहा। भास्कराचार्य ने केवल लघुता के लिए तथा कुछ विशेष (अन्य) प्रकार से अपनी बात कहने के लिए हार की संख्या कही है जिसकी शायद आवश्यकता नहीं थी क्योंकि ऐसा करने से त्रुटि तो उत्पन्न हो ही गई है। भास्कराचार्योक्त हार मान से त्रुटि अधिक हो सकती है।

वटेश्वर मध्यमा. अध्याय ४ यथा—

"गततिथि युतावमाद्यं द्वादश गुणितं च भागपूर्वं स्यात्।
तेन विहीनश्चन्द्रोऽर्को युक्तो विधुर्वा स्यात्॥११॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में वटेश्वराचार्योक्त ही कहा है।

आर्यभट द्वितीय ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"किडिपढिधगननुननुनिन भक्तादवमाग्रकाल्लवा ये तैः।
गततिथिकरवधसहितैर्युक्तोनाविनविधु विद्युरवी स्तः॥२७॥"

ब्रह्मगुप्त आचार्य ने मध्यगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त सूत्र कहा है। यथा–

"कुदिनहृतमवमशेष द्वादशभिर्गुणितमाप्तमंशाद्यम्।
द्वादशगुणतिथ्यंशैर्युतं धनं भास्करे चन्द्रः॥३२॥"

इदानीमधिमासावशेषाभ्यां चन्द्रार्कानयनमाह—

कोट्याहतैर्यद्भवभै-२७११०००००० रवाप्तं न्यूनाहशेषे विहृते कलाद्यम्।
तत् स्याद्धनाख्यं तरणेर्विधोस्तत् त्रिभूहतं स्वेषुगुणांशयुक् स्वम्॥६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चैत्रादियातास्तिथयः पृथक्स्था विश्वैर्हताः सूर्यविधू लवाद्यौ।
तौ चाधिशेषाच्छशिमासलब्ध्या हीनौ युतौ स्वस्वधनाह्वयाभ्याम्॥७॥

अधिमास अवमशेष से सूर्य चंद्र आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अवमशेष को २७११०००००० से भाग देने से प्राप्त कलादि लब्धि रवि की धन फल संज्ञक होती है। इस फल को १३ से गुणा करके इसमें फल का ३५ वाँ अंश युक्त करने से चंद्रमा का धन फल संज्ञक फल होता है। अब चैत्रादि से गत तिथि को दो स्थानों पर स्थापित करे। द्वितीय स्थान पर १३ से गुणा करने से क्रमशः रवि तथा चंद्र होते हैं। और वर्षांत अधिमास शेष को कल्प चांद्र मास से विभक्त करने से प्राप्त फल को इनमें से घटा देने से सूर्योदयकालिक सूर्य चंद्र होते हैं।

उपरोक्त विवेचन को निम्न लिखित प्रकार से समीकरण रूप में लिख सकते हैं—

$$\text{सूर्योदय कालिक चन्द्र} = १३ \text{ चैत्रादिगत दिन} + \text{चन्द्रधनफल} - \frac{\text{वर्षान्त अधिशेष}}{\text{कल्प चांद्र मास}}$$

$$\text{सूर्योदय कालिक सूर्य} = \text{चैत्रादिगत दिन} + \text{रविधनफल} - \frac{\text{वर्षान्त अधिशेष}}{\text{कल्प चांद्र मास}}$$

उपपत्ति— अधिमास अवशेष से सूर्यचंद्र का आनयन म.म. सुधाकर द्विवेदी ने इस प्रकार किया है।

कल्पसौर तिथिघात संयुता स्वस्वभुक्त्यवमशेषसंहतिः।
हीनिताऽप्यधिकमासशेषकैः संहता च यदवाप्यते दिनैः॥
चन्द्राकैर्भवति तत्स्वभुक्तिजं भागमानमिनचन्द्रयोः किल।
चन्द्रामानवधेहि संयुतं द्वादशघ्नतिथिभिः स्फुटं बुधाः॥
रवीन्द्वोर्दिनसंख्याया कल्पे चेत्कल्प्यते समा।
मद्विधौ भास्करस्येन्दुरव्योः स्वल्पान्तरान्मितिः॥

$$\text{वर्षान्त से तिथ्यन्त पर्यंत चान्द्रदिन} = \text{चैत्रगत तिथि} - \frac{\text{वर्षांत अधिशेष} \times ३०}{\text{कल्प सौर}}$$

$$= \frac{\text{चै गति} \times \text{क.सौ} - \text{वर्षान्ताधि शे.} \times ३०}{\text{कल्प सौर}}$$

ऐतत्सम्बन्धी सौर दिन ही तिथ्यन्त में अंशात्मक रवि होते हैं। क्योंकि वर्षान्त में रवि का भगण पूरा हो जाता है। अतः तिथ्यन्त में—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{रवि} = \frac{\text{क.सौ.} \times \text{इ चां}}{\text{क.चा,}} = \frac{\text{क.सौ. (चै.गति} \times \text{क.सौ.} - \text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३०)}{\text{क.चा.} \times \text{क.सौ.}}$$

यहाँ उपरोक्त से इचां का मान प्रतिस्थापित किया है।

$$\text{रवि} = \frac{\text{चै.गति} \times \text{क.सौ.} - \text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३०}{\text{क.चां}}$$

और तिथि अंत में चन्द्र = रवि + १२ चै गति.

$$= \frac{\text{चै गति} \times \text{क.सौ.} - \text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३०}{\text{क.चां}} + १२ \times \text{चै गति}$$। यहाँ रवि का मान प्रतिस्थापित किया है।

$$\text{तिथ्यन्त और सूर्योदय में अन्तर सावनात्मक} = \frac{\text{क्षय.शे.}}{\text{क.चां}}$$

$$\text{एतत्सम्बन्धी रवि चालन} = \frac{\text{र ग क} \times \text{क्ष.शे.}}{१ \text{ सादि} \times \text{कचां}}$$

$$\text{और चन्द्र चालन} = \frac{\text{चंग} \times \text{क्ष.शे.}}{१ \text{ सादि} \times \text{कचां}}$$

अतः सूर्योदय कालिक रवि =

$$\frac{\text{चै.गति} \times \text{क.सौ.} - \text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३०}{\text{क.चां}} + \frac{\text{र ग क} \times \text{क्ष.शे.}}{\text{क.चां}}$$

$$\text{सूर्योदयकालिक रवि} = \frac{\text{चै.गति} \times \text{क.सौ.} - \text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३० + \text{र ग क} \times \text{क्ष.शे.}}{\text{क.चां}}$$

इसी प्रकार सूर्योदयकालिक चन्द्र =

$$\frac{\text{चै गति} \times \text{क.सौ.} - \text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३० + \text{चं ग क} \times \text{क्ष.शे.}}{\text{क.चां}} + १२ \text{ चै गति}$$

यहाँ स्वल्पांतर से यदि कसौ = क चां हो तो रवि तथा चंद्र बराबर होंगे और वर्षान्ताधिशेष = तिथ्यन्तकालिकाधिशेष। ये मान उपरोक्त में प्रतिस्थापित करने से—

$$\text{रवि} = \text{चै गति} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३०}{\text{क.चां}} + \frac{\text{र ग} \times \text{क्ष शे}}{\text{क.चां}}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{तथा चंद्र} = १३ \text{ चै गति} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे.} \times ३०}{\text{क.चां}} + \frac{\text{चंगक} \times \text{क्ष शे}}{\text{क.चां}}$$

$$\text{अथवा रवि} = \text{चै गति} + \frac{\frac{\text{क्ष.शे.}}{\frac{\text{क चां}}{\text{र ग}}}}{} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे.}}{\frac{\text{क चां}}{३०}}$$

$$\text{यहाँ } \frac{\text{क चां}}{\text{र ग}} = २७११०००००० = \text{हा; (दी हुई है आचार्य ने)}$$

$$\text{तथा चंद्र} = १३ \times \text{चैगति} + \frac{\text{क्ष शे} \times \text{चं ग}}{\text{र ग}} \div \frac{\text{क चां}}{\text{र ग}} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे.}}{\frac{\text{क चां}}{३०}}$$

$$\text{यहाँ } \frac{\text{चं ग}}{\text{र ग}} = १३ + \frac{१३}{३५} \text{ होता है।}$$

$$\frac{\text{क्ष.शे.}}{\text{हा}} = \text{रविधनफल तथा } \frac{\text{क्ष शे} \times \text{चं ग} \div \text{र ग}}{\text{हा}}$$

$$= \text{चन्द्रधनफल} = \text{रविधनफल} \left(१३ + \frac{१३}{३५}\right)$$

$$\text{इसलिए सूर्योदयकालिकरवि} = \text{चै गति} + \text{रविधनफल} - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे.}}{\text{क चां मा}}$$

तथा सूर्योदय कालिक चंद्र =

$$१३ \text{ चै गति} + \text{रविधनफल} \left(१३ + \frac{१३}{३५}\right) - \frac{\text{वर्षान्ताधिशे.}}{\text{क चां मा}}$$

यह आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

यहाँ रविधनफल $\left(१३ + \frac{१३}{३५}\right)$ = चंद्रधनफल है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के मध्य. में अधिमास से सूर्यचंद्र का आनयन करने के लिए इसी प्रकार कहा है—

"कल्पाधिमासगुणितादवमावशेषात् क्ष्माहोद्धृतात् फलयुतं ह्यधिमास शेषम्।
मासादिकं फलमतः शशिवासरैः स्यात्क्ष्माहैर्हताच्च दिवसाद्यवमावशेषात्॥२१॥
चैत्रादितो विगतमासदिनैर्युतं तत् कृत्वा दिनाद्यथ पृथग्गुणितञ्च विश्वैः।
मासादिना विरहिते विहिते क्रमेण यद्वा दिवाकरतुपारकरौ भवेताम्॥२२॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वटेश्वराचार्य ने मध्यमा. चतुर्थ अध्याय में अधिमास शेष से आचार्योक्त तुल्य प्रकार से सूर्यचंद्र का आनयन बताया है। यथा–

"अवमावशेषगुणिता युगाधिमासाः कुवासरविभक्ताः।
लब्धयुतोऽधिकशेषः शशिमासहृतो दिनादिफलम्॥८॥
कुदितहृतमवमशेषं दिनादितद्वर्षमासदिनयोगः।
पृथगभ्यस्तो विश्वैरधिकफलोनावुभाविनेन्दू वा॥९॥
अधिकफलर्म गुणितं चंद्रांशेभ्यो विशोध्य विश्वांशः।
सूर्यो विश्वैर्गुणितः समन्वितः शीतगुर्वा स्यात्॥१०॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सि. मध्यगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"गुणिताद्युगाधिमासैर्युगभूदिवसैर्हृतादवमशेषात्।
फलयुक्तमधिकमासक शेषं मध्यावतोऽर्केन्दु॥२०॥
अधिमासाववमशेषं युगशशिभूदितहृते पृथक् लब्धेः।
मासदिनाद्येस्याप्ये गतमासदिनानि चैत्रादेः॥२१॥
अवमावशेषलब्ध्या सहितानि पृथक् त्रयोदश गुणानि।
अधिमासशेषलब्ध्या हीनानि पृथग्रवि-शशाङ्कौ॥२२॥"

आर्यभट ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"कथकनुसनुननुननुनै आप्ता अवमाग्रकात् कलिकाः॥१७॥
यास्त्वाभिरिनो युक्तो मध्योऽथो अवमशेषकाद्भक्तात्।
खनुरसुवनुननुनीनै आप्तकलाभिर्युतः शशीमध्यः॥१८॥
चैत्रसिताद्या यातास्तिथयो भागादिरर्कः स्यात्।
पल (१३) गुणितोऽसौ चन्द्रोऽधिमासशेषाच्छशाङ्कमासहृतात्॥१६॥
यद्भागादिकलब्धं तेनोनौ रविविधु कार्यौ॥$\frac{१}{२}$॥"

इदानीं प्रकारान्तरेण ग्रहनयनमाह—

अर्कसावनदिवागणो हतः स्वस्वसावनदिनैस्तु कल्पजैः।
खाभ्रबाणगिरिरामखत्रिगोशक्रविश्व-१३१४९३०३७५०० विहृदाप्तराशिभिः॥८॥
विवर्जितो विकर्त्तनो गृहादिको गृहादिकाः।
ग्रहा भवन्ति वा बुधैर्विचिन्त्यमन्यदप्यतः॥९॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकारान्तर से ग्रहानयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण को ग्रह के कल्प सावन दिनों से गुणा करके १३१४९३०३७५०० से भाग देने से प्राप्त शेष से जो राश्यादि होता है। इसको रवि से अधिक गतिग्रह और अल्प गति ग्रह रहने पर रवि की राश्यादि में धन-ऋण क्रमशः करने से राश्यादिग्रह होते हैं अथवा इसी तरह रवि होते हैं।

उपपत्ति— त्रैराशिक से अनुपात किया कि कल्प कुदिन में कल्प ग्रह भगण होते हैं तो अहर्गण में कितना? इससे अहर्गण में ग्रहभगण प्राप्त होगा।

$$\text{ग्रह भगण} = \frac{\text{कल्प ग्रह भगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

तथा क्योंकि, क. भभ्रम − क.ग्र.भ. = क.ग्र. कुदिन

∴ क. भभ्रम − क.ग्र.कुदिन = क.ग्र.भ पक्षान्तर से,

यह मान उपरोक्त में प्रतिस्थापित करने से−

$$\text{ग्रह भगण} = \frac{(\text{क.भभ्रम} - \text{क.ग्र.कु.})\ \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

$$\text{ग्रह भगण} = \frac{(\text{क.कु.} + \text{क.रविभ} - \text{क.ग्र.कु})\ \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

∵ क भ भ्र म = क.कु.दिन. + क. र. भ

$$= \text{अहर्गण} + \frac{\text{क.र.भ} \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}} - \frac{\text{क.ग्र.कु.} \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

= अहर्गण+(गत र.भ+र. राश्यादि − ग. स्वसावन तुल्य भ.+राश्यादि)

= अहर्गण+गत र. भ+र. राश्यादि − ग. स्वसावन तुल्य भ. − राश्यादि

यहाँ भगणों का प्रयोजन नहीं होने से छोड़ देने से−

रविराश्यादि − राश्यादि = ग्रहराश्यादि

$$\frac{\text{क.ग्र.कुदि.} \times \text{अहर्गण}}{\text{क.कु.}} = \text{गत स्वसावन तुल्य भगण} + \frac{\text{शेष}}{\text{क.कु.}}$$

यहाँ $\frac{\text{शेष}}{\text{क.कु.}}$ ऐतत्सम्बन्धी राश्यादि फल=१२ × $\frac{\text{शेष}}{\text{क.कु.}} = \frac{\frac{\text{शेष}}{\text{क.कु.}}}{१२} = \frac{\text{शेष}}{\text{हर}}$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्य ने हर = १३१४९३०३७५०० दिया है।

भास्कराचार्य ने हर का मान श्लोक ५ में १३१४९०००००० दिया है वह यहाँ दिये गये मान को ही लघुता के लिए दिया। यहाँ दिये गये मान को ही लघुता के लिए दिया। यहाँ दिया गया मान ही वास्तविक है।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटे. सि. के मध्यमाधिकार अध्याय ४ में भास्कराचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"ग्रहोदयघ्नोद्युगणः क्वहोद्धृतो गतोदयो भाद्यवशेषकाद् गृहे।
क्षयस्वमर्काद् बृहदल्प भुक्तिग्रहे ग्रहोऽप्येवमिनोऽथवा भवेत्॥३४॥"

इदानीमानयनप्रकारान्तराणामुपपत्तिमाह—

यथायथाऽधिमासकावमेन्दुमासपूर्वकाः।
परस्परं युतोनिता भवन्ति खेटपर्ययाः॥१०॥
त एव सूर्यसावनद्युपिण्डतोऽनुपातजाः।
तथातथा युतोनिता भवन्ति तेऽथवा ग्रहाः॥११॥

रविचन्द्र आनयन की प्रकारांतर से उपपत्ति—

सूर्य-प्रभा टीका— चान्द्रमास और सौर मास का अंतर अधिमास होता है और चांद्रभगण तथा सौर भगण का अंतर = चांद्रमास होता है। अहर्गण को कल्पाधिमास से गुणा कर युगकुदिन से भाग देने से (अनुपात करने से) जो भगणादि फल हो उसको तेरह गुणित रवि में जोड़ने से चन्द्रहोता है और उसी फल को चंद्र में से घटा कर तेरह से भाग देने से रवि होता है।

उपपत्ति— "इन्द्र मण्डल गुणेन्दुसंगुणघ्न चक्र विवरेऽधिमासकाः" इस उक्ति से कल्प चन्द्रभगण में से १३ गुणित रविभगण को घटाने से कल्पाधिमास होते हैं (भगणाध्याय श्लोक १४)। इस समीकरण से स्पष्ट है कि अहर्गण से अनुपात द्वारा जो कल्पाधिमास संबंधि फल हों उसमें तेरह गुणित रवि भगणादि फल को जोड़ देने से भगणादि चंद्र होता है और यदि उसी अधिमास संबंधि फल को चन्द्र में घटा कर १३ से भाग देते हैं तो रवि प्राप्त होता है। भगणाध्याय के श्लोक १४ में कथित प्रकार से प्राप्त समीकरण को अहर्गण से गुणा करके कल्प कुदिन से भाग देने से यहाँ कहा हुआ प्राप्त हो जाता है।

विशेष— आचार्योक्त प्रकार ही से **वटेश्वराचार्य** ने मध्य. अध्याय ४ में कहा है–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अधिमास हतो द्युगणः कुदिनहतः पर्ययादि तद्युक्तः।
विश्वघ्नोऽर्कश्चन्द्रोहीनस्त्रयोदशहृदर्कः ॥२६॥"

ब्रह्मगुप्त ने मध्यगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"द्युगणं युगाधिमासैर्गुणितं युगभूदिनैर्भजेल्लब्धम्।
भगणादिमध्यमार्कत्रयोदशगुणाधिकं चन्द्रः॥३३॥"

श्रीपति सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अहर्गणाच्चाधिकमासनिघ्नात् कुद्यूद्धृतान्मण्डल पूर्वकेण। विश्वातोऽर्कः सहितोविधुरिति।"

इदानीमस्योदाहरणभूतानि प्रकारान्तराणि दर्शयन्नाह—

द्विचक्रयोगजो ग्रहो वियोगजेन युग्वियुक्।
दलीकृतौ च तौ क्रमादमन्दमन्दगामिनौ॥१२॥
द्विपर्ययान्तरोद्भवग्रहेण वर्जितो द्रुतः।
स मन्दगोऽथ मन्दगो युतो भवेदमन्दगः॥१३॥

इसका उदाहरण रूप प्रकारान्तर से दर्शाया है—

सूर्य-प्रभा टीका— दो ग्रहों के भगण योग तथा वियोग को अहर्गण से गुणाकर कल्पकुदिन से भाग देने से प्राप्त फल को एक स्थान पर जोड़ कर तथा दूसरे स्थान पर घटाकर आधा करने से क्रमशः द्रुतगतिग्रह तथा मंदगति ग्रह होते हैं॥१२॥

दोनों के भगण योगज फल में मन्द गति ग्रह को घटा देने से शीघ्र गति ग्रह तथा उसी में से शीघ्र गति ग्रह को घटाने से मंद गतिग्रह होते हैं॥१३॥

उपपत्ति— यहाँ आचार्य ने दो ग्रहों, एक मन्द गति तथा दूसरा शीघ्रगामी, के भगणों के योग तथा अन्तर के द्वारा उन दोनों को साधन करने की विधि बताई है।

शीघ्रगामी ग्रह भगण + मन्द गति ग्रह भगण = भगण योग

शीघ्रगामी ग्रह भगण – मन्द गति ग्रह भगण = भगणान्तर

अहर्गण से अनुपात करने से अर्थात् अहर्गण से गुणा तथा क.कु. से इनको विभक्त करने से–

$$\frac{(\text{शी.ग्र.भ}+\text{मं.ग्र.भ})\times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

= भगणादि शी.ग्र. फल + भगणादि मं.ग्र.फल = भगणयोगज. ग्र.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसी प्रकार $\frac{(\text{शी.ग्र.भ-म.ग्र.भ})\times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$

= भगणादि शी.ग्र फल – भगणादि मं.ग्र.फल = भगणांतरज ग्र.

इन दोनों का योग करने पर;

$\frac{\text{भगयोगज ग्रह + भगणांतरजग्रह}}{२}$ = भगणादि शी. ग्र. फ

तथा घटाने पर ;

$\frac{\text{भगयोगज ग्रह - भगणांतरजग्रह}}{२}$ = भगणादि मं. ग्र.फ.

यह श्लोक १२ की उपपत्ति हुई।

अब श्लोक १३ की उपपत्ति बताते हैं।

भगण योग = भगण शीघ्र ग्रह + भगणमंद ग्रह

भगण योग – भ०मं०ग्र = भगणादि शी० ग्र

तथा भगण योग – भ.शी.ग्र. = भगणादि मं.ग्र। उपपन्न हुआ।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने इन श्लोकों में कथित सूत्रों को मध्यमा. अध्याय ४ में इस प्रकार स्पष्ट करके कहे है—

"स्वपर्ययैक्याहतवासरौघतक्षितिघ्युलब्धं भगणादिकं द्विधा।
वियोगलब्धोनयुतं तथार्धितं वियत्सदौ वा भवतोऽत्र मध्यमौ॥३२॥
तदूनभुक्तिना हीनं खेचरेण बृहद्गतिः।
शीघ्रभुक्तिग्रहेणोनं मृदुभुक्तिग्रहो भवेत्॥३३॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के मध्यग्रहाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"द्वयोर्द्वयोश्चक्रविशेष सङ्गुणादहर्गणाद्भूदिवसैर्यदाप्यते।
अनल्पगस्तद्रहितोऽल्पगोभवेद्युतोऽल्पगस्तेनतयोरनल्पगैः॥२५॥"

आर्यभट ने महासिद्धान्त के मध्यमाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"खद्युचरभगणयोगजखेटस्त्रैराशिकेन संसाध्यः।
भेदज आद्यो रस्थस्तेनाढ्योनोऽर्धितौ तौ स्तः॥२८॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुनः प्रकारान्तरेणाह—

केन्द्रोच्चयोश्चञ्चलयोर्वियोगे योगेऽथवा स्यान्मृदुनोः प्रसाध्यः।
साध्यस्य चक्रैर्गुणितः प्रसिद्धो भक्तो निजैः स्यादथ वा प्रसाध्यः॥१४॥

पुनः प्रकारांतर से—

सूर्य-प्रभा टीका— शीघ्रोच्च में से ग्रह को शोधित करने से शीघ्र केंद्र होता है तो शीघ्र केंद्र को शीघ्रोच्च में से घटाने से ग्रह होगा यह बात स्पष्ट है। मन्दोच्च में से ग्रह घटाने से मन्द केंद्र होता है। अतः केंद्र में मन्दोच्च को युत करने से ग्रह होता है, यह भी स्पष्ट हैं। सिद्ध ग्रह को साध्य ग्रह कल्प भगण से गुणा करके सिद्ध ग्रह के कल्प भगण से भाग देने से साध्य ग्रह प्राप्त होता है।

उपपत्ति— इष्टग्रह = विदित ग्रह = सिद्धग्रह

अन्य ग्रह = अविदित ग्रह = साध्य ग्रह

ग्रह आनयन रीति से—

$$\text{सिद्ध ग्रह} = \frac{\text{क.सिद्ध ग्र. भगण} \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

$$\text{सिद्ध ग्रह} = \frac{\text{क.साध्य ग्र.} \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

$$\text{अतः} \frac{\text{सिद्ध ग्रह}}{\text{साध्य ग्रह}} = \frac{\text{क.सि.ग्र.भ}}{\text{क.सा.ग्र.भ}}$$

अथवा सि.ग्र × क.सा.ग्र.भ = सा.ग्र × क.सि.ग्र.भ.

$$\text{अतः} \frac{\text{सिद्ध ग्रह} \times \text{क.सा.ग्र.भ.}}{\text{क.सि.ग्र.भ}} = \text{साध्य ग्रह}$$

$$\text{तथा} \frac{\text{साध्य ग्रह} \times \text{क.सि.ग्र.भ.}}{\text{क.सा.ग्र.भ}} = \text{सिद्ध ग्रह।}$$

आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— बटेश्वरसिद्धान्त में बटेश्वर ने मध्यमा. अध्याय ४ में आचार्योक्त ही कहा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अन्यग्रहभगण गुणा इष्ट ग्रह मण्डलोद्धताःखेटाः।
हारान्यगुणाभ्यस्ताद् द्युगुणादिष्टग्रहो भवति॥४२॥"

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"विज्ञातकल्पभगणैर्विहृतेषु साध्यचक्रेषु यद्भगणपूर्वमित्यादिना॥"

भास्कराचार्य प्रथम ने महाभास्करीय के प्रथम अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"निशाकरं वा ग्रहमुच्चमेव वा कलीकृतं तत्सहयातमण्डलैः॥
यथेष्टनक्षत्रगणैर्हतं हरेत् तदीयनक्षत्रगणैस्ततः कलाः॥१०॥"

अर्थात् (मध्यम) चन्द्रमा, ग्रह या उच्च जो ज्ञात हो, के भगणों की कला बनाकर अन्य ग्रह के भगण संख्या से गुणा करके ज्ञात ग्रहादि की भगण संख्या से विभक्त करने से मध्यम अन्य ग्रह के कलादि प्राप्त होते हैं।

श्रीपति सिद्धान्तशेखर में– अविदित ग्रहपर्ययसङ्गुणे सभगणो विदेते कृतलिप्तिके।

विदित कल्पजचक्र विभाजिते भवति वा ऽविदितः स कलादिकः॥२५॥ अ. २॥ इस प्रकार अक्षरशः आचार्योक्त ही कहा है।

भास्कराचार्य की ही भांति **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** मध्यगत्युत्तराध्याय में कहा है। यथा–

"ज्ञात भगणादिभुक्त सविकलमिष्टयुगभगणसङ्गुणितम्।
ज्ञातयुगभगणर्भक्त मध्यो भगणादिफल मिष्टः॥२७॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी. वृ.ग्रंथ के मध्यग्रहाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रसिद्धलिप्ताहतसाध्यपर्ययाः प्रसिद्धचक्रापहृताः कलादिकः।
भवेत् प्रसाध्यो मृदुतुंगकेन्द्रयोः समागमो वा चलयोर्ग्रहान्तरम्॥२६॥"

अहर्गणान्मध्यमग्रहमानीयेदानीं मध्यमग्रहादहर्गणमाह—

साग्रात् सचक्राच्च खगात् क्वहघ्नात् तत्कल्पचक्राप्तमहर्गणः स्यात्।
निरग्रचक्रादपि कुट्टकेन वक्ष्येऽग्रतोऽग्राच्च तथाग्रयोगात्॥१५॥

मध्यम ग्रह से अहर्गण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह को कल्पकुदिन से गुणा करके कल्प ग्रह भगण से भाग देने से अहर्गण होता है। इसके द्वारा कुट्टक विधि से भागफल आगे-आगे जोड़ते जाने की विधि से अहर्गण साधन किया जा सकता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— अहर्गण से ग्रह आनयन विधि में हम अनुपात करते हैं कि कल्प कुदिन में कल्प ग्रह भगण होते हैं तो अहर्गण में कितने होंगे? अर्थात्

$$\text{ग्रह} = \frac{\text{क.ग्र.भ} \times \text{अहर्गण}}{\text{कल्प कुदिन}}$$

$$\text{या अहर्गण} = \frac{\text{ग्रह} \times \text{कल्प कुदिन}}{\text{क.ग्र.भ}}$$

अतः इस सूत्र के द्वारा कुट्टक व्यवहार से हम ग्रह की विकला शेष से ग्रह तथा अहर्गण का साधन कर सकते हैं। यहाँ भाज्य ६०, हार = कल्प कुदिन तथा क्षेप ऋणात्मक विकला शेष समझ कर कुट्टक विधि से साधन कर जो लब्धि हो वह विकला और जो गुणक हो वह कला शेष होगा। इसके पश्चात् कला शेष को ऋणात्मक क्षेप तथा उक्त भाज्य तथा हार मान कर कुट्टक द्वारा लब्धि कला और गुणक भाग (अंश) शेष होगा। इसके बाद भाज्य ३०, हार = कुदिन तथा अंश शेष को ऋणात्मक क्षेप मानकर कुट्टक विधि से लब्धि अंश तथा गुणक राशि शेष होगा। इसके पश्चात् भाज्य १२, हार = कुदिन तथा ऋणात्मक राशि शेष मानकर कुट्टक विधि से लब्धि राशि तथा गुणक भगण शेष होगा। इसके पश्चात् कल्प ग्रह भगण भाज्य, हार कुदिन तथा ऋणात्मक भगण शेष को क्षेप मान कर कुट्टक विधि से लब्धि गत भगण और गुणक अहर्गण होगा। अहर्गण से ग्रह आनयन के लिए कहते हैं –

भगण आनयन—

$$\frac{\text{कल्पग्रहभगण}}{\text{कल्प कुदिन}} \times \text{अहर्गण} = \text{ग्रहभगण} + \frac{\text{भगणशेष}}{\text{क.कु.}}$$

$$\text{अथवा ग्रह भगण} = \frac{\text{क.ग्र.भ.} \times \text{अह.} - \text{भ.शे.}}{\text{क.कु.}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(१)$$

राशि आनयन—

पुनः अनुपात किया कि क.कु. में १२ राशि होते हैं तो भगण शेष में क्या?

$$\frac{१२ \times \text{भ.शे.}}{\text{क.कु.}} = \text{ग्र.रा.} + \frac{\text{रा.शे.}}{\text{क.कु.}}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{अर्थात ग्रह राशि} = \frac{१२ \times \text{भ.शे.} - \text{रा.शे.}}{\text{क.कु.}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(२)$$

अंश आनयन—

पुनः कल्प कुदिन में ३० अंश होते हैं तो राशि शेष में कितने होंगे?

$$\frac{३० \times \text{रा.शे.}}{\text{क.कु.}} = \text{ग्र.अं.} + \frac{\text{अं.शे.}}{\text{क.कु.}}$$

$$\text{अर्थात् ग्र.अं.} = \frac{\text{रा.शे.} \times ३० - \text{अं.शे.}}{\text{क.कु.}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(३)$$

इसी प्रकार कला तथा विकला के लिए करने से—

$$\text{ग्रह कला} = \frac{६० \times \text{अं.शे.} - \text{कलाशे.}}{\text{क.कु.}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(४)$$

$$\text{ग्रह विकला} = \frac{६० \times \text{क.शे.} - \text{वि.शे.}}{\text{क.कु.}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(५)$$

अहर्गण से ग्रह के भगण, राशि, अंश, कला, विकला, ज्ञात करने के १ से ५ उपरोक्त समीकरण है। विपरीत क्रम से ५ से १ तक क्रिया करने से ग्रह की विकला शेष से आरंभ करके अंत में ग्रह के भगण तथा अहर्गण ज्ञात कर सकते हैं। यही बात आचार्य ने इस श्लोक में कही है। अतः **उपपन्न हुआ।**

विशेष— आचार्य ने जो कुट्टक विधि से ग्रह द्वारा अहर्गण साधन करना यहाँ कहा है वह उन्होंने लीलावती में भी कहा है। कुट्टक विधि आचार्य के पूर्वकाल से प्रचलित है। आर्यभट (द्वितीय) ने भी महासिद्धान्त में यह कुट्टक गणित कही है।

महाभास्करीय में भास्कर प्रथम ने कुट्टक विधि द्वारा प्रथम अध्याय में श्लोक ४१ से ५२ तक में विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में अहर्गण ज्ञान करना बताया है। विस्तारभय से श्लोक नहीं दिये जा रहे हैं।

कुट्टक विधि में $\frac{Ax - C}{B} = y$ समीकरण को कुट्टक (Pulveriser) समीकरण कहा जाता है। इस समीकरण में–

A = ग्रह की भगण संख्या है।

B = युग/कल्प में सावन दिन संख्या है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

C = ग्रह का भगण शेष (Residue)।

x = अहर्गण।

y = ग्रह द्वारा पूर्ण किये भगण।

इदानीमहर्गणादपि कल्पगतमाह—

अभिमतद्युगणादवमैर्हतात् क्षितिदिनाप्तगतावमसंयुतः।
दिनगणः स भवेत् तिथिसञ्चयः पृथगतोऽधिकमाससमाहतात्॥१६॥
विधुदिनाप्तगताधिकमासकैः कृतदिनै रहितोऽर्कदिनोच्चयः।
भवति मासगणः खगुणो ३० द्धृतो रवि १२ हृतः स च कल्पगताः समाः॥१७॥

अहर्गण से कल्पगत काल आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अभीष्ट द्युगण को कल्प अवम दिन से गुणा करके कल्प कुदिन से भाग देने से अहर्गण में गत अवम दिन संख्या प्राप्त होती है। इसको द्युगण (अहर्गण) में जोड़ने से अभीष्ट अहर्गण में चांद्र तिथियाँ प्राप्त होती हैं। इन चांद्र तिथियों को कल्प अधिमास से गुणा करके कल्पचांद्र तिथि से भाग देने से प्राप्त लब्धि अभीष्ट अहर्गण में अधिमास संख्या होती है। इस अधिमास संख्या को ३० से गुणा करने से अधिमास की चंद्र दिन संख्या होती है। पूर्व प्राप्त चांद्र तिथि में से ये चांद्र अधिदिन संख्या को घटाने से शेष सूर्य दिन बचते हैं। इन सूर्य दिनों में ३० का भाग देने से अभीष्ट अहर्गण में मासगण प्राप्त होते हैं। मासगण में १२ का भाग देने से प्राप्त लब्धि अभीष्ट अहर्गण में कल्पारंभ से गताब्द प्राप्त होते हैं।

उपपत्ति— पूर्व में अहर्गण आनयन में जो प्रक्रिया अपनाई गई है उसकी विलोम प्रक्रिया यहाँ करने से अहर्गण से कल्पगत काल आनयन होता है। पूर्वोक्त को यहाँ प्राप्त करते हैं—

$$\because \frac{\text{अभीष्ट द्युगण} \times \text{अवमदिन}}{\text{कल्प कुदिन}} = \text{गत अवमदिन कल्पगत}$$

अतः द्युगण + गतअवम दिन = चांद्र तिथि कल्पगत

$$\because \frac{\text{कल्प अधिमास} \times \text{चांद्रतिथि}}{\text{कल्प चांद्र तिथि}} = \text{अधिमास कल्पगत}$$

अतः अधिमास × ३० = चंद्र अधिदिन कल्पगत

और चांद्र तिथि – चन्द्र अधिदिन = सूर्यदिन कल्पगत

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$\frac{\text{सूर्य दिन}}{३०}$ = मास गण कल्पगत

$\frac{\text{मासगण}}{१२}$ = कल्पगत वर्ष उपपन्न हुआ।

इदानीं कलिगतादप्यहर्गणादिकमाह—

कलिगतादथ वा दिनसञ्चयो दिनपतिर्भृगुजप्रभृतिस्तदा।
कलिमुखध्रुवकेण समन्वितो भवति तद्द्युगणोद्भवखेचरः॥१८॥

कलिगत अहर्गण प्राप्त से ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— कलि आरंभ से इष्ट दिवस तक दिन (अहर्गण) ज्ञात करे। कलिआरंभ का दिन पति शुक्र है। कलिआरंभ पर जो ग्रह स्थित थे उनकी ध्रुवांक संज्ञा है। इन में द्युगण से प्राप्त ग्रहों को समन्वित कर देने से अहर्गणोत्पन्न ग्रह प्राप्त होते हैं।

विशेष— म.म. बापूदेव शास्त्री द्वारा : – ७२०६३४४४२७१५ द्युगण में कलिआरंभ से इष्ट दिवस का द्युगण युक्त करने से कल्पादि से द्युगण प्राप्त होता है। यथा–

"तिथ्यर्क्षयुगवेदाब्धि रामाङ्कनख भूधराः द्युगणेन कलेर्युक्ता कल्पादेर्द्युगणो भवेत्॥"

इदानीं कलिमुखग्रहानाह—

खाद्रिरामाग्नयः ३३७० क्रमिरामाङ्कका: ९३३१
वेदवेदाङ्कचन्द्रा १९४४ विलिप्ताः क्रमात्।
षड्सााङ्गाब्धयो-४६६६ऽङ्गाभ्रवेदाब्धयो ४४०६
वेदषट्काभ्रभूपाभ्रभूसंमिताः १०१६०६४॥१९॥
वेदचन्द्रद्विवेदाब्धिनागाः ८४४२१४ कर-
द्व्यब्धिवेदाब्धिशैला ७४४४२२ भवेयुः कुजात्।
द्वापरान्तध्रुवाश्चक्रशुद्धास्तथा
सूर्यतुङ्गेन्दुतुङ्गेन्दुपातोद्भवाः॥२०॥

कलिआरंभ पर ग्रहस्थित ध्रुवाँक—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने यहाँ सूर्यादि सभी ग्रहों आदि के चक्र शुद्ध ध्रुवांक पठित किये, जो इस प्रकार है—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कलिआरंभ पर ग्रह

मं.	बु.	गु.	शु.	श.	चं.	चंद्रोच्च	चंपात
११	११	११	११	११	२	४	५
२९	२७	२९	२८	२८	१७	५	३
३	२४	२७	४२	४६	४५	२९	१२
५०	२९	३६	१४	३४	३६	४६	५८

॥ इति ग्रहानयनाध्यायः॥

॥ इति श्रीमद् भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के ग्रहआनयनाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(द) अथ कक्षाप्रकारेण ग्रहानयनाध्यायः

तत्र खकक्षां तावदाह—

कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभूभृद्भुजङ्गेन्दुभि-१८७१२०६९२०००००००

ज्योतिश्शास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः।

तद् ब्रह्माण्डकटाहसंपुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनं

केचिद् प्रोचुरदृश्यदृश्यकगिरिं पौराणिकाः सूरयः॥१॥

करतलकलितामलवदमलं सकलं विदन्ति ये गोलम्।

दिनकरकरनिकरनिहततमसो नभसः स परिधिरुदितस्तैः॥२॥

कक्षाप्रकार से ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— ज्योतिषशास्त्र को जानने वाले विद्वान आकाश की कक्षा (परिधि) का मान १८,७१२,०६९,२००,०००,००० योजन कहते हैं। कडाहिनुमा इस ब्रह्माण्ड के अन्दर (की तरफ) जो यह दृश्य (लोक) अदृश्य (अलोक) तथा गिरि (पर्वत) आदि वेष्टित हैं, उसकी परिधि पौराणिक ज्ञानियों (पुराणों को जानने वाले) ने कही है। सभी पौराणिक लोग एक स्वर से निष्कपट भाव से हाथ में रखे हुए आंवले के समान ब्रह्माण्ड गोल की परिधि स्पष्ट रूप में कहते हैं। कुछ, सूर्य इस गोल (आकाश) में उदित होते हुए (भ्रमण करते हुए) अपने प्रकाश से आकाश के अंधेरे को दूर करके जितनी दूरी तक प्रकाश फैलाता है को ही (आकाश) नभ की कक्षा है।

विशेष— आचार्य ने यहाँ जो आकाश गोल की परिधि योजन माप में बताई है उसके लिए वे कहते हैं कि उन्होंने अपना मत नहीं कह कर दूसरे आचार्यों के मत के अनुसार कहा है। आकाश गोल में जितनी दूरी तक सूर्य का प्रकाश फैलता है उतने योजन दूरी तक आकाश गोल फैला हुआ है, यह अभिप्राय है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में चंद्रभगण का ३२४००० गुणा आकाश कक्षा कहा है। यथा—

"अम्बर योजन परिधिः शशि भगणाः शून्यखखजिनाग्निगुणाः॥११ अ.२१॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्ति ही परिधि योजन कही है। यथा–

''द्वयङ्कर्तुखेनागधृति प्रमाणा कक्षाम्बरस्यार्बुदयोजनघ्नी॥ मध्य.श्लो.६२॥''

चतुर्वेदाचार्य ने भी यही परिधि योजन कहे हैं। यथा—

''द्विच्छिद्रषट्काम्बरनेत्रचन्द्रशैलाष्टरूपाणि गुणानि कोट्या।
व्योम्नः सधाम्नः परिधिर्दशघ्नैः कल्पे ग्रहाणां स च योजनाध्वा॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त प्रकार ही चराचर जगत की स्थिति आकाश गोल में बताई है। यथा–

''हिरण्यगर्भाण्डकटाहसंपुटप्रेवेष्टने तच्च बभाषिरे बुधाः।
अदृश्यदृश्यं च गिरिं पुरातना जगुः खकक्षामिति गोलवादिनः॥''

तथा ख कक्षा के संबंध में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''रविगभस्तिनिरस्ततमोनभः परिधियोजनमानमिदं भवेद्।''

वटेश्वर आचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में खकक्षा का योजन मान भास्कराचार्य से भिन्न प्रकार १२२२५१४९२०५७६००० योजन (आचार्य के योजन की परिभाषा भिन्न है) कही है। लेकिन सूर्य का प्रकाश जितनी दूर तक आकाश में जाता (फैलता) है उसे ही ख कक्षा कही है। यथा–

''गगने गग्नस्थावितयो वितयो नयत्प्रकुर्वन्ति।
यावत्तावर्दिह नभोद्दीप्ता भानवो भानोः॥'' मध्य अध्या.७ श्लोक ४॥

वटेश्वराचार्य ने अनेक प्रकार से खकक्षा मान कहा है। यथा–

रविशशियुगघातः खाक्षिभक्तः खकस्या शशिभगणाहता वा दिग्घ्नचक्रस्य लिप्ताः।
निजभगणविभक्ता सा ग्रहस्यस्वकक्ष्या भवति खरसनिघ्नः सूर्य कक्ष्या भकक्ष्याः॥५॥

इदानीं स्वमतमाह—

ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा कल्पे ग्रहः क्रामति योजनानि।
यावन्ति पूर्वैरिह तत्प्रमाणं प्रोक्तं खकक्षाख्यमिदं मतं नः॥३॥

स्वमत—

सूर्य-प्रभा टीका— कल्प ग्रह भगण तथा ग्रहकक्षा का गुणा तुल्य ख कक्षा का मान होता है। कल्प में जितने योजन ग्रह भ्रमण करते हैं तत्तुल्य ही खकक्षा योजन है, यह मेरा (आचार्य का) मत है, ब्रह्ममाण्ड चाहे सीमित हो अथवा असीमित हो।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— वटेश्वराचार्य ने पूर्व श्लोक की व्याख्या में कहे अनुसार ख कक्षा ज्ञात करने की विभिन्न युक्तियाँ कही हैं जो इस प्रकार हैं—

रवि तथा चन्द्र के भगणों के गुणा को २० से भाग देने से खकक्षा मान होता है। दस गणित खकक्षा कला को चन्द्र भगण से गुणा करके ग्रह के स्वभगण से विभक्त करने से ग्रह कक्षा का मान होता है। सूर्यकक्षा को ६० (साठ) से गुणा करने से भकक्षा का मान होता है अर्थात्—

$$\frac{\text{चंद्र भगण} \times \text{रविभगण}}{२०} = \text{खकक्षा};$$

$$\frac{१०\ \text{ख कक्षा कला} \times \text{चंद्रभगण}}{\text{ग्रह भगण}} = \text{ग्रह कक्षा}$$

या ६० × सूर्यकक्षा = भकक्षा।

भास्कराचार्यानुसार ग्रहकल्प भगण × ग्रह कक्षा = ख कक्षा

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त में रवि कक्षा का ६० गुणा भकक्षा (नक्षत्र कक्षा) कहा है—

".....त्नहता रविकक्षिका भानाम्॥ मध्य ३२॥"

इदानीं ग्रहकक्षा आह—

ग्रहस्य चक्रैर्विहता खकक्षा भवेत् स्वकक्षा निजकक्षिकायाम्।
ग्रहः खकक्षामितयोजनानि भ्रमत्यजस्रं परिवर्त्तमानः॥४॥

ग्रह कक्षा—

सूर्य-प्रभा टीका— ख कक्षा को जिस-जिस ग्रह की भगण संख्या से विभक्त करेंगे भागफल उस उस ग्रह की कक्षा का मान तुल्य होता है। इसकी उपपत्ति के रूप में आगे का आधा श्लोक कहा है– ग्रहों के पठित भगण में वे खकक्षा योजन भ्रमण करते हैं तो एक भगण में क्या पायेंगे? इस अनुपात से ग्रह कक्षा मान = $\frac{\text{खकक्षा}}{\text{ग्रहभगण}}$। इस प्रकार सभी ग्रहों के कक्षा मान प्राप्त हो सकते हैं।

विशेष— ग्रहों के आचार्यों द्वारा पठित कक्षामान तथा नक्षत्र कक्षामान में भिन्नता है। कक्षा योजन मान भी भिन्न होते हैं।

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"योदोथप्रिनहनरेयचिनेननननोनना खकक्षेयम्।
भगणाप्ता निजकक्षात्नहता रविकक्षिका भानाम्॥३२॥"

आचार्य ने यहाँ भास्कराचार्य के आसन्न ख कक्षा का मान = १८७१२०८०२१६००००० योजनात्मक कहा है। यहाँ योजन के मान में अंतर हो सकता है। तथा भास्करोक्त ही कहा है कि ख कक्षा में जिस ग्रह के भगण संख्या से भाग देंगे उसी ग्रह की कक्षा का मान प्राप्त हो जावेगा।

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फुट के गोलाध्याय-२१ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"यस्य भगणैर्विभक्तास्तत्कक्षाऽर्को भषष्टयंश॥११॥"

इदानीमेवं सिद्धे रवीन्दुकक्षो भकक्षाश्चाह—

सार्धाद्रिगोमनुसुराब्धिमिताऽर्ककक्षा ४३३१४९७$\frac{१}{२}$
चान्द्री सहस्रगुणिता जिनरामसंख्या ३२४०००।
अभ्रेष्विभाङ्कगजकुञ्जरगोऽक्षपक्षाः २५९८८९८५०
कक्षां गृणन्ति गणका भगणस्य चेमाम्॥५॥

भकक्षा तथा रविचंद्र कक्षा से सिद्धि—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्यकक्षा ४३३१४९७$\frac{१}{२}$, चंद्र कक्षा ३२४०००, तथा भकक्षा २५९८८९८५० प्रमाण गणकों ने गणना की है। इनको आगम प्रमाण से मान लिया है। यहाँ सूर्य कक्षा का ६० गुणा भकक्षा है।

विशेष— शेष ग्रहों की कक्षा प्रमाण **श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर** के मध्यमाधिकार में कही है। यथा—

"अष्टयङ्कष्णमनुगजाः ८१४६९१६ क्षितिनन्दनस्य
ज्ञस्येशदन्तकृतखंन्दुमिता १०४३२११ऽथ सूरेः।
रूपाश्विनागयुगशैल गुणेन्दबाणाः ५१३७४८२१॥६४॥
खग्न्यङ्कसागररसोत्कृतयः २६६४६३० सितस्य॥
भूधराहिनगनागरसर्तुक्ष्माधराश्विशशिनः १२७६६८७८७ शनिकक्षाः॥६५॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त में सूर्यचंद्र कक्षामान आचार्य के आसन्न ही कहा है, तथा इनका मान आचार्योक्त प्रकार ही से ज्ञात किया है। यथा–

"शशिकक्षा ग्रघुननुना घुलुगुटुमनुना रवेरनांशाढ्या॥ मध्य. श्लो. ३४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{चन्द्रकक्षा} = \frac{\text{खकक्षा}}{\text{चंद्रभगण}} = \frac{१८७१२०८०२१६०००००}{५७७५३३३४०००} = ३२४०००$$

$$\text{रविकक्षा} = \frac{\text{खकक्षा}}{\text{रविभगण}} = \frac{१८७१२०८०२१६०००००}{४३२०००००००} = ४३३१५०० \frac{१}{२०}$$

रवि कक्षा में अंतर ख कक्षा के मान में अंतर के कारण है।

इदानीं ग्रहगतिजनान्याह—

कल्पोद्भवैः क्षितिदिनैर्गगनस्य कक्षा
भक्ता भवेद्दिनगतिर्गगनेचरस्य।
पादोनगोऽक्षधृतिभूमितयोजननि ११८५८।४५
खेटा व्रजन्त्यनुदिनं निजवर्त्मनीमे॥६॥

ग्रह योजन गति—

सूर्य-प्रभा टीका— कल्पकुदिन से खकक्षा योजन में भाग देने से ग्रह की एकदिन की योजन गति का मान ११८५८/४५ प्राप्त होता है।

विशेष— **वटेश्वराचार्य** ने आचार्योक्त ही युगसंबंधि कहा है। मध्यमा. अध्याय-७। यथा–

"क्वहैः खकक्ष्या विहता ग्रहाणां गतिस्तदिष्टद्युगणाहतिः स्युः।
ग्रहोपभुक्तानि तु योजनानि खवृत्तमानद्युगणाहतेर्वा॥१३॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में भास्करोक्त ही कल्प संबंधि कहा है। यथा–

"कल्प भूदिनहताम्बरकक्षा स्याद् ग्रहस्य खलु योजन भुक्ति।
तद्गुणाद्दिनगणाद् द्युचराणां योजनानि हि गतानि भवन्ति॥
खकक्षया वा निहतो द्युराशिः क्वहैर्विभक्तो गतयोजनानीति"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के मध्यमाधिकार में भास्कराचार्योक्त ही कहा है। आर्यभट द्वारा कथित ग्रह की योजनात्मक दैनिक गति ११८५९ भास्कराचार्य से थोड़ी ही अधिक है। उसका कारण दोनों की खकक्षा तथा कल्पकुदिन संख्या में अंतर होना है। यथा–

"अम्बरकक्षा कल्पाहर्गणभक्ता भवेद्द्युगतिः॥३३॥
कुटिदमिधा दिन भुक्तेर्योजन संख्याऽनया व्रजन्ति खगाः॥३३$\frac{१}{२}$॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यहाँ कुटिदमिधा = ११८५९ है। लेकिन इस श्लोक ३३ के अनुसार ख कक्षा ÷ कल्पकुदिन के अनुसार आर्यभट के अंकों के द्वारा $११८५८ + \frac{११३४००२९६४}{१५७७९१७५४२}$ प्राप्त होता है जिसको आर्यभट ने भी भास्कराचार्य की भांति श्लोक में ११८५९ ले लिया है।

इदानीं ग्रहानयनमाह—

अहर्गणात् क्कक्षिनवाङ्क-९९२१ निघ्नान्नवेन्दुवेदेषुहुताश-३५४१९ लब्ध्या।
अहर्गणो गोऽक्षधृतीन्दु-११८५९ निघ्नो विवर्जितः स्युर्गतयोजनानि॥७॥
स्वया स्वया तानि पृथक् च कक्षया हृतानि वा स्युर्भगणादिका ग्रहाः॥७$\frac{१}{२}$॥

ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण को ९९२१ से गुणा करके ३५४१९ से विभक्त करने से प्राप्त फल को अहर्गण गुणित ११८५९ फल में से घटाने से प्राप्तफल गत योजन होते हैं। इसको पृथक-पृथक अपनी-अपनी कक्ष्या से विभाजित करने से ग्रहों के भगण प्राप्त होते हैं।

उपपत्ति— ग्रह की दिन गति योजन को अहर्गण से गुणा करने से गतयोजन प्राप्त होते हैं, यह स्पष्ट है। यहाँ आचार्य ने सरलता के लिए पूर्वश्लोक ६ में कथित दिन योजन गति को ११८५८/४५ के स्थान पर ११८५९ गृहण कर लिया है। यहाँ जो अधिक ग्रहण कर लिया है उसको बाद में घटा दिया जायेगा, जिसको ज्ञात करते हैं। परम अहर्गण कुदिन तुल्य होता है उसको गुणक से गुणा किया है। इस प्रकार ११८५९ के बराबर खकक्ष्या अधिक हो गई (ले ली गई) है। अतः इसको खकक्षा में से घटाकर शेष से अनुपात करे कि यदि कुदिन तुल्य अहर्गण में इतना अधिक है तो इष्ट अहर्गण में कितना होगा? कुदिन और उसके शेष को ४४५५ से गुणा करके ४४५५ से अपवर्त करने से शेष के स्थान पर ९९२१ तथा कुदिन के स्थान पर ३५४१९ बचता है। यह जो त्रैराशिक से प्राप्त होता है उसको स्थूल गति से गुणित अहर्गण में से घटाने से गत योजन होते हैं। यह सभी ग्रहों के लिए इसी प्रकार होगा क्योंकि गति तुल्य होती है। अब ग्रह प्राप्त करने के लिए अनुपात करे कि यदि कक्षा तुल्य गत योजन में एक भगण हो तो इतने में कितना होगा? प्राप्त फल गत भगण पर सभी ग्रह होंगे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{दिनगति} = \frac{\text{खकक्षा}}{\text{क.कु.}} = \frac{१८७१२०६९२०००००००}{१५७७९१६४५०००}$$

$$= ११८५८\,\frac{११३५९३५९०}{१५७७९१६४५} + १ - १$$

$$= ११८५९ - १ + \frac{११३५९३५९०}{१५७७९१६४५}$$

$$= ११८५९ - \frac{४४१९८०५५}{१५७७९१६४५} \times \frac{४४५५}{४४५५}$$

$$= ११८५९ - \frac{४४१९८०५५}{४४५५} \times \frac{१}{\frac{१५७७९१६४५}{४४५५}}$$

$$\text{दि.गति} \times \text{अहर्गण} = ११८५९\text{अह.} - \frac{९९२१}{३५४१९}\ \text{अहर्गण}$$

यही समीकरण आचार्य ने कहा है। यह उपपन्न हुआ।

विशेष— आर्यभट (द्वि) ने महासिद्धान्त में आचार्य की भांति ही कहा है। आर्यभट्ट की संख्यायें उनकी ख कक्षा तथा कल्पकुदिन के भिन्न मानों के कारण भिन्न हैं। अन्यथा बात भास्कराचार्य ने आर्यभट की ही कही है। यथा—

"कलिमुखगणगतिघातोऽधो घरकणलै हृतः फलविहिनः।
द्युगणो लघुघुसिचिसै भक्तः सफलोऽथवाहनमितिः॥मध्य.३६॥"

यहाँ आर्यभट ने अहर्गण से ग्रह लाने के लिए इस प्रकार समीकरण दिया है, इस श्लोक में—

$$\text{अघ्वमितिः} = ११८५९\ \text{अहर्गण} - \frac{११८५९\ \text{अहर्गण}}{४२१५३} + \frac{\text{अह}}{३४४७६७}\ \text{है।}$$

आर्यभट द्वितीय की ख कक्षा = १८७१२०८०२१६००००० तथा क.कु. = १५७७९१७५४२००० है। अतः अंकों में अन्तर है। भास्करोक्त खकक्षा तथा क.कु. से भास्करोक्त अंक प्राप्त हो सकते हैं। जैसे यहाँ करके बताया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं विशेषमाह—

ग्रहस्य कक्षैव हि तुङ्गपातयोः पृथक् च कल्प्याऽत्र तदीयसिद्धये॥८॥
अर्कस्य कक्षैव सितज्ञयोः सा ज्ञेया तयोरानयनार्थमेव।
उक्ते तयोर्ये चलतुङ्गकक्षे तत्रैव तौ च भ्रमतोऽर्कगत्या॥९॥

विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका — ग्रह की कक्षा ही उसके उच्च तथा पात की कक्षा होती है। ग्रह की कक्षा में उच्च स्थान ही उसका उच्च तथा उसकी कक्षा का सूर्य विमण्डल से संपात स्थान गोल में पातसंज्ञक है। बुध शुक्र की अपनी शीघ्रोच्च कक्षा में भ्रमण करते हुए इनका कलात्मक भोग अर्थात् भगण रविगति से होते हैं। अतः वे अपनी-अपनी शीघ्रोच्च कक्षा में रविगति से भ्रमण करते हैं। मंगल, गुरु, शनि की कक्षा को दूसरे ग्रह भगण से गुणा करने से ख कक्षा का मान प्राप्त होता है, अतः उनका शीघ्रोच मार्ग रवि (कक्षा) है। ग्रह के मन्दोच्च तथा पात की स्थिति की गणना करने में उनकी कक्षायें ग्रह की कक्षा से भिन्न मानी जाती है।

विशेष— आचार्योक्त ही वटेश्वर ने वटेश्वर सिद्धान्त मध्यमा अध्याय १ में कही है। यथा–

"रविभगणहता बुधसितचलकक्ष्यायोजनैर्युगाब्दाः स्युः।
बुधसितयोर्यत एवं लिप्ता भोगतोऽनयोः सौरः॥१८॥
चलकक्ष्यायां भ्रमतो कुज गुरुशनैश्चराः कक्ष्याः।
इतरभगणाहता अध्वा तच्छीघ्राणामश्चार्कः॥१९॥"

॥ इति श्रीमद् भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के कक्षाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

॥ इति कक्षाप्रकारेण ग्रहानयनाध्यायः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ई) अथ प्रत्यब्दशुद्धिः

शुद्धि का अर्थ घटाना या कम करना होता है लेकिन इसका अर्थ एकीकृत करना अथवा एकत्रीकरण करना भी होता है। इष्टवर्षान्त में प्रतिवर्ष संबंधि सावनादि-अवमादियों का एकत्रीकरण करने को "प्रत्यब्द शुद्धि" कहते हैं। ऐसा वटेश्वराचार्य ने कहा है। वटेश्वराचार्य ने "प्रत्यब्द शुद्धि" नाम से अलग से अध्याय दिया है जिसमें ४९ श्लोक हैं।

तत्रादौ सावनदिनाद्यमाह—

अधोऽधस्त्रिधा कल्पयाताब्दवृन्दात् कराभ्यां कृतैः पावकैः २।४।३ सङ्गुणाच्च।
भुजङ्गैरवाप्तं फलं स्याद्दिनाद्यं तदब्दान्वितं भास्करादब्दपः स्यात्॥१॥

सावन दिन आदि—

सूर्य-प्रभा टीका— कल्पारंभ से गताब्द को अधो अधः २॥४॥३॥से गुणा करके योग फल में ८ का भाग देने से प्राप्त फल लब्धि दिनाद्य होता है। इसमें गताब्द को जोड़ कर सात से भाग देने से अब्दपति होता है।

उपपत्ति— आचार्य ने पूर्व में सौर वर्ष मान ३६५।१५।३०।२२।३० दिनादि प्रतिपादित किया है। इसमें से दिन के स्थान पर स्थित ३६५ को अलग रखें तो शेष ०।१५।३०।२२।३० दिनादि बचता है। इसको ८ से गुणा करने से १५।३०।२२।३०×८ = २॥४॥३॥ सवर्णित दिनादि फल हो जाता है। वर्ष मान के ३६५ दिन में ७ का भाग देने से एक शेष बचता है। अतः १।१५।३०।२२।३० का अनुपात करना पड़ता कि एक वर्ष में इतने तो ८ वर्ष में कितना? सावयन करने के लिए इष्ट वर्षों से गुणा करना पड़ता। इस क्रिया की क्लिष्टता को सरल करने के लिए आचार्य ने पूर्वोक्त (एक को अलग रखकर) सुगम उपाय बताया है। अब अनुपात किया यदि आठ वर्ष में इतने दिनाद्य तो कल्पगत में कितने? फल दिनाद्य होंगे। वहाँ आठ से (विभक्त) संस्थापित करके गताब्द युक्त करके सात से भाग देने से फल अब्दपति होता है, यह कहा गया है क्योंकि पूर्व में एक दिन गुणा गताब्द संख्या तुल्य दिन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संख्या अलग रख (छोड़) दी गई है (१।१५।३०।२२।३० के स्थान पर ०।१५।३०।२२।३० लेने से)। ८ से भाग देने से सौर वर्ष दिनाद्य होता है क्योंकि पहले ८ से गुणा किया है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में वर्षपति साधन की मूल विधि दी है। यथा—

"कल्पगताब्द दिनयुतः सूर्योद्योऽब्दाधिपोऽब्द भगणवधः।
कल्पाब्दहृतो भगणादिमध्यमाः सूर्यभगणान्ते ॥४२॥"

इस श्लोक की उपपत्ति इस प्रकार है—

एक वर्ष में सावनदिनादि = ३६५।१५।३०।२०।३० होते हैं।

इष्ट वर्षान्त में सावनदिन = ग.व. (३६५।१५।३०।२२।३०)

= ३६५ × ग.व.+ ग.व. (१५।३०।२२।३०)

= ३६५ × ग.व. + ग.व. संबंधि दिनादि

= कल्पादि से इष्टवर्षान्त में सावन अहर्गण।

यह साधारण तथा मूल बात है। इसमें दिनाधि बोधक द्वितीय खण्ड ही है। अतः इसको भास्कराचार्य ने प्रसिद्ध युक्ति से गुणांक ज्ञात करके विधि कही है।

वटेश्वराचार्य ने भी वटेश्वर सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त ही मूल बात कही है। यथा—

"वत्सरान्वितदिनेषु सप्तभिर्भक्तशेषमिह वत्सराधिपः1
स्युस्ततो रविभसंघकान्तिका मध्यमा दिविचराः सुखेन हि॥६॥"

आगे श्लोक २ की व्याख्या में जो विशेष विवरण में ब्रह्मगुप्त की विधि हमने दर्शाई हैं उसी के अनुरूप आचार्य ने यहाँ पठित गुणक तथा भाजक प्राप्त किये हैं। इसी प्रकार श्लोक १$\frac{१}{२}$ (आगे) की भी युक्ति आचार्य ने इसी ब्रह्मगुप्त की युक्ति के आधार पर ही की है।

विशेष— म.म. बापूदेव शास्त्री ने इस प्रकार कहा है—

**'समास्त्रिनिघ्नयः खभुजङ्गभक्ता स्वदिग्लवोनाः सहिता गताब्दैः।
चतुर्विभक्ताश्च भवेद्दिनाद्यं तदब्दयुग् भास्करतोऽब्दपः स्यात्॥"**

अर्थात्– गताब्द वर्षों को ३ से गुणा करके ८० का भाग देकर प्राप्त फल

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का १० वाँ भाग जोड़ कर उसमें चार का भाग देने से दिनाद्य भास्करोक्त होता है।

भास्कराचार्य ने वर्षमान ३६५।१५।३०।२२।३० में ३६५ को छोड़कर शेष को ८ से गुणा करके २।४।३ दिन घटी पल प्राप्त किया है। यह गुणा भाग को सरल करने के लिए किया है। इस वर्ष मान की संपूर्ण संख्याओं को यदि गताब्द से गुणा करेंगे तो क्लिष्टता रहेगी। अतः शेष से प्राप्त २ दिन ४ घ. ३ पल को गताब्द से क्रमशः गुणा करने से क्रमश दिन, घटी तथा पल प्राप्त होंगे जो गताब्द के प्रतिवर्ष के लिए ३६५ दिन के ऊपर के १५ घ.३० प.२२ वि. ३० प्रवि. होंगे। इन्हें अधो अधः अर्थात् २ से गुणित को दिन के स्थान पर, ४ से गुणित को घटी के स्थान पर तथा ३ से गुणित को पल के स्थान पर रखकर ६० से भाग देकर शुद्ध, दिन घटी पल ज्ञात होंगे। हम ३६५ में ७ का भाग देंगे तो शेष एक बचता है, अर्थात् वर्षमान ३६५।१५।३०।२२।३० के दिनों को ७ से विभक्त करने से शेष १।१५।३०।२२।३० रहता है। यहाँ भी आचार्य ने प्रथम अंक एक दिन को अलग रख दिया है तथा मात्र १५।३०।२२।३० को ही ८ से गुणा करके २॥४॥३ प्राप्त किये हैं। अतः प्रतिवर्ष के लिए इस एक दिन को गताब्द से गुणा करके जोड़ना होगा और शेष १५।३०।२२।३० को ८ से गुणा किया है अतः इस गुणा को सावयव करने के लिए ८ से विभक्त करना होगा। यथा—

$\frac{१५।३०।२२।३० \times ८}{८} = \frac{२॥४॥३}{८}$। इस प्रकार करने से गताब्द के प्रतिवर्ष के लिए १५।३०।२२।३० के लिए दिनादि संख्या जिसे दिनाद्य कहा है प्राप्त होगी। इसमें गताब्द गुणा एक जोड़ने से (गताब्द × वर्षमान के) दिनादि प्राप्त होंगे।

$$\frac{(३६५।१५।३०।२२।३०) \times \text{गताब्द}}{७} = (१।१५।३०।२२।३०) \times \text{गताब्द}$$

$$= १ \times \text{गताब्द} + \frac{८}{८}(१५३०।२२।३०) \times \text{गताब्द} = (\text{गताब्द} + \frac{२॥४॥३}{८} \text{ गताब्द})$$

= दिनाद्य

इसका अब्दपति ज्ञात करने के लिए ७ से विभक्त करना होगा तथा शेष से शनिवार अदि वार वर्ष पति होगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं प्रकारान्तरेणाह—

निजाशीति-८० भागेन युक्तं समार्धं
खषड्-६० भक्तमब्दाङ्घ्रियुग्वा दिनाद्यम्॥१$\frac{१}{२}$॥

प्रकारान्तर से—

सूर्य-प्रभा टीका— गत वर्षों के आधे में उनका ८० वाँ भाग युक्त करके ६० से विभक्त करने से प्राप्त फल में वर्ष का चतुर्थांश जोड़ने से दिनाद्य होते हैं।

उपपत्ति— वर्षमान ३६५।१५।३०।२२।३० के दिनों के आगे के भाग १५।३०।२२।३० घट्यादि को निम्न लिखित प्रकार से लिख सकते हैं—

१५ घटी = $\frac{१}{४}$ दिन

३० पल = $\frac{\text{घ}}{२} = \frac{\text{दिन}}{२\times६०}$; ∵ एक घटी = $\frac{\text{दिन}}{६०}$ होती है।

तथा २०।३० विपलादि = $\frac{\text{दिन}}{९६००} = \frac{\text{दिन}}{२\times६०\times८०}$

तीनों को जोड़ने से दिनाद्य (१५।३०।२०।३०)

$= \frac{\text{दिन}}{४} + \frac{\text{दिन}}{२\times६०} + \frac{\text{दिन}}{२\times६०\times८०}$

या वर्षमान के आद्य भाग के दिन

$= \frac{\text{दिन}}{४} + \frac{१}{६०}\left[\frac{\text{दिन}}{२} + \frac{\text{दिन}}{२\times८०}\right]$

यही आचार्य ने कहा है। अतः उपपन्न हुआ।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने अन्य अनेक प्रकार से युक्ति कही है। आचार्य ने यहाँ गणित के गौरव से वर्षमान के आद्य भाग को अन्य प्रकार से व्यवस्थित कर लिया है।

पुनः प्रकारान्तरेणाह—

गताब्दा विभक्ताः समुद्रैः ४ खसूर्यैः १२०
खखाङ्काङ्कके ९६०० वा फलैक्यं दिनाद्यम्॥२॥

पुनः प्रकारान्तर से—

सूर्य-प्रभा टीका— गताब्द को क्रमशः ४; १२० तथा ९६०० से विभक्त करके सबको युक्त करने से दिनाद्य होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— वर्षमान ३६५।१५।३०।२२।३० के आद्य भाग को निम्नलिखित प्रकार लिखा जा सकता है—

$$१५ \text{ घटी} = \frac{\text{दिन}}{४}, \quad ३० \text{ पल} = \frac{\text{दिन}}{२\times६०} = \frac{\text{दिन}}{१२०};$$

$$२२\frac{१}{२} \text{ विपल} = \frac{४५}{२} \text{ विपल} = \frac{४५}{२\times६०\times६०\times६०} = \frac{\text{दिन}}{९६००}$$

$$\text{अतः दिनाध्य} = \frac{\text{दिन}}{४} + \frac{\text{दिन}}{१२०} + \frac{\text{दिन}}{९६००}।$$

यह सब पूर्व श्लोक १ की उपपत्ति से ही प्राप्त हो जाता है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— आचार्योक्त दिनाद्य में ३६५ योग करके गताब्द से गुणा करने से अहर्गण प्राप्त किया जा सकता है। यह बात इस प्रकार लिख सकते हैं जो आचार्य ने नहीं कही है।

$$\text{अहर्गण} = ३६५ \times \text{गताब्द} + \text{दिनाद्य} \times \text{गताब्द}$$

$$= ३६५ \times \text{गता.} + \frac{\text{गता.}}{४} + \frac{\text{गता.}}{१२०} + \frac{\text{गता.}}{९६००} = ३६५ \text{ गता.} + \frac{७७३९}{९६००} \text{ गता.}$$

यह सूत्र शुद्ध अहर्गण साधन का होगा।

आधुनिक दिन मान ३६५।१५।२२।५७ के लिए हम सूत्र इसी प्रकार लिख सकते हैं यदि गणेश दैवज्ञ तथा केतकर महोदय की भांति ११ या १९ वर्ष का एक चक्र बनावें तो १९ वर्ष के एक चक्र के लिए—

(३६५।१५।२२।५७) × १९ = ६९३९।५२।१६।३ दिनादि।

यहाँ १९ वर्ष के चक्र के यदि ६९४० दिन मान लेवें तो—

$$\text{अहर्गण} = ६९४०\times \text{चक्र} + ३६५ \text{ च.शेष} + \frac{\text{च.शे.}}{४} - \frac{२\text{ च.}}{१५} + \frac{\text{च.}}{२२५} + \frac{\text{च}}{७५७८९}$$

यहाँ गताब्द में १९ का भाग देकर भागफल चक्र संख्या तथा शेष चक्र शेष होगा। इस सूत्र के द्वारा यदि अहर्गण ज्ञात किया जाये तो अहर्गण का मान बिल्कुल शुद्ध आयेगा तथा अन्य आचार्यों के सूत्रों से अधिमास, अवम आदि ज्ञात करके ज्ञात अहर्गण का मान अनेक बार अशुद्ध आता है। मेरे द्वारा प्रतिपादित यह सूत्र मैंने संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में आयोजित ४२ वें ओरियंटल कान्फ्रेंस वर्ष २००४ में अपने शोध पत्र में उद्घोषित किया था। उसमें

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्य आचार्यों द्वारा बताये सूत्रों से प्राप्त अहर्गण की अशुद्धता तथा मेरे द्वारा प्राप्त अहर्गण की शुद्धता प्रतिपादित की गई है। यह शोध पत्र मैंने इस पुस्तक के अंत में संलग्न कर दिया है। विद्वान् लोग इसका अवलोकन करें।

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में मध्यमाधिकार में ब्रह्मगुप्त ने यही बात दूसरे प्रकार से कही है। यथा—

कल्पगताब्दा गुणिता रूपाष्टजिनैर्नवाग्नि सप्तनगैः।
खखरसनव भिर्भक्ता दिनावमान्यंशकाः शेषाः॥४०॥

अर्थात् कल्पादि से गत वर्षों को पृथक पृथक ७७३९ तथा २४८१ से गुणा करके दोनों गुणनफलों को ९६०० से विभक्त करने से प्रथम स्थान पर से अवम दिन तथा दूसरे स्थान पर से सावन दिनादि प्राप्त होते हैं। यह भास्कराचार्योक्त सूत्र से प्राप्त हो जाता है अथवा भास्कराचार्य का सूत्र ब्रह्मगुप्त के सूत्र से प्राप्त कर सकते हैं—

$$\text{दिनादि} = \frac{\text{गव}}{४} + \frac{\text{गव}}{१२} + \frac{\text{गव}}{९६००} = \frac{२४८१\,\text{गव}}{९६००} \text{ उपपन्न होता है।}$$

भास्कराचार्योक्त अग्रोक्त श्लोक ४ द्वारा क्षयाहा

$$= \text{गव} - \frac{\text{गव}}{५} + \frac{\text{गव} - \frac{\text{गव}}{६०}}{१६०} \text{ से क्षयाहा} = \frac{७७३९}{९६००} \text{ ग.व. उपपन्न}$$

होता है।

ब्रह्मगुप्त ने यहाँ जिस प्रकार युक्ति से वर्षपति ज्ञात करने के लिए ग.व × (१५।३०।२२।३०) को विभिन्न खण्डों में व्यक्त किया है, उसी प्रकार की युक्ति भास्कराचार्य ने पूर्व कथित श्लोक १, $१\frac{१}{२}$ में अपनाई है। इस श्लोक में उद्धृत ब्रह्म गुप्त की युक्ति को भास्कराचार्य ने सरल करके दूसरे रूप में व्यक्त कर दिया है।

इदानीं क्षयाहानाह—

स्वषष्ट्यंशयुक्तानि वर्षाणि वर्षैः खरामाहतैः संयुतान्यभ्रभूपैः १६०।
विभक्तानि तान्यत्र लब्धं विशुद्धं समाभ्यो गताभ्यो भवन्ति क्षयाहाः॥३॥

क्षयाहा आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— वर्षों में उसका ६० वाँ भाग युक्त करके पुनः इसमें

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्ष का ३० गुणा युक्त करे। योगफल में से योगफल का $\frac{१}{१६०}$ वाँ भाग हीन करने से प्राप्तफल तुल्य क्षयाहा होते हैं।

उपपत्ति— यदि यह अनुपात किया जावे कि एक कल्प में कल्पक्षयाहा इतने होते हैं तो एक वर्ष में कितने होंगे? तो हमें एक वर्ष में क्षयाहा का मान ५।४८।२२।७।३० दिनादि प्राप्त होता हैं। इसमें से ५ को हटा कर (या छोड़कर) शेष ४८।२२।७।३० को गताब्द से गुणा करने से अवमाद्य हैं। अतः लघवार्थ ४८।२२।७।३० शेष को एक दिन में घटाने से (१-४८।२२।७।३०) या वर्ष के क्षयाहा मान को ६ में से घटाने से (६।०।०।० – ५।४८।२२।७।३०) शेष ०।११।३७।५२।३० बचता है। इसको १६० से सवर्णित करने से इसका मान ३१।१।० होता है। अर्थात् १६० वर्षों में ३१ घटी तथा एक पल अधिदिन प्राप्त होते है तो गताब्द में कितने होंगे? इसके लिए वर्षों के ६० वें भाग में (क्योंकि एक घटी में ६० पल होते हैं अतः यहाँ ६० वर्ष में एक पल प्रतिवर्ष के मान से ६० वर्ष में एक घटी होगी। अतः वर्षों का ६० वाँ भाग युक्त किया है।) गत वर्षों को ३० से गुणा करके योग करने से ३१ घटी हो जाती है। इसको तुल्य करने के लिए फिर १६० फल (भाग) लेकर घटा देवें। इससे प्रत्येक गताब्द वर्ष में छठा अवम दिन पूरा नहीं होगा।

यहाँ ०।११।३७।५२।३० के दो खण्ड किये हैं, पहला ०।११।१५ तथा दूसरा ०।०।२२।३०। पहला खण्ड १६० से सवर्णित करने से घटी के स्थान पर ३० हो जाता है, जिसके लिए ३० से गुणा करने को कहा है। द्वितीय स्थान पर १६० से सवर्णित करने से पल स्थान पर १।१ आता है। अतः स्वषष्टयंश युक्त करने के लिए कहा है। इस योग फल को अंतर से तुल्य करने के लिए तुल्य हर के भाग (अंश) अर्थात् १६० वाँ भाग घटाने के लिए कहा गया है।

पुनः समझाते हैं—

११।३७।५२।३० × १६० = १७६०।५९२०।८३२०।४८०० घट्यादि इनमें ६० से भाग देकर विपल, पल, घटिआदि बनाने से ये ३१।०।५९।२८।० या ३१।१।०।० घट्यादि तुल्य प्राप्त होते हैं। यही आचार्य ने कहा है। यह मान एक वर्ष के लिए है। अतः गताब्द के लिए इसको गताब्द से गुणा करना होगा। यहाँ क्योंकि हमने क्षयाहा ५।४८।२२।७।३० के स्थान पर ६।०।०।० माना है। अतः इस प्रकार हमने ०।११।३७।५२।३० अधिक ले लिया है जो पूर्वोक्त प्रकार

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से १६० से सवर्णित होता है। इसको तुल्य करने के लिए वापस इतना ही अर्थात् गताब्द का १६० वाँ भाग घटा दिया है। अतः जो क्षयाहा ६।०।०।० माना था वह वापस ५।४८।२२।७।३० हो जावेगा।

इदानीं प्रकारान्तरेण क्षयाहानाह—

दिनाद्यं त्रिनिघ्नं समाभ्राभ्रवेदां-४०० शकोनं समात्रिंशदंशेन युग्वा॥३$\frac{१}{२}$॥

प्रकारान्तर से क्षयाहा आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वानीत दिनाद्य के तिगुणे में गताब्द का ३० वाँ भाग युक्त करने तथा ४०० वाँ भाग हीन करने से क्षयाहा का मान प्राप्त होता है।

उपपत्ति— एक वर्ष के दिनाद्य ०।१५।३०।२२।३० का तिगुणा यदि अवमाद्य ०।४८।२२।७।३० में से घटा दिया जावे तो शेष ०।१।५१ बचता है। यथा— ०।१५।३०।२२।३० ×३ = ४५।९०।६६।९० ÷ ६० = ४६।३१।७।३०; ०।४८।२२।७।३० − ०।४६।३१।७।३० = ०।१।५१।०।० प्राप्त हुआ। अर्थात् ०।१।५१ में दिनाद्य का तिगुणा जोड़ दिया जावे तो अवमाद्य का मान आ जाता है। इस शेष को १२०० से गुणा करने से १।५१ × १२०० = १२००।६।२००÷६० = ३७।० होता है। अत· गताब्द के ३७ गुणा को १२०० से भाग देकर प्राप्त फल को दिनाद्य के तिगुणे में जोड़ देवे तो वह गतावम होता है। सुविधा के लिए ३७ के स्थान पर ४० में ३ ऋण कर देवे अर्थात् ४०−३=३७। इसमें १२०० से भाग देने से एक भाग $\frac{४०}{१२००} = \frac{१}{३०}$ धन तथा दूसरा भाग $\frac{३}{१२००} = \frac{१}{४००}$ ऋण होगा। अतः कह सकते हैं कि गताब्द के तिगुणे में पृथक् पृथक् गताब्द में ३० तथा ४०० का भाग देकर प्रथम फल को धन तथा द्वितीय फल को ऋण करने से अवमाद्य प्राप्त होता है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— आचार्यो श्लोक ३ तथा यहाँ जिस रूप में सूत्र दिये हैं वे वातेश्वर तथा ब्रह्मगुप्त के प्रकार की साधन विधि अनुसार है। जैसा कि पूर्व श्लोक २ की व्याख्या में हमने बताया है।

अथ प्रकारान्तरेणावमान्याह—

स्वषष्ट्यंशहीनाब्दखाङ्गेन्दु-१६० भागः स्वपञ्चांशहीनाब्दयुग्वा क्षयाहाः॥४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकारांतर से अवमानयन—

सूर्य-प्रभा टीका— गताब्द में से गताब्द का ६० वाँ भाग हीन करके शेष के १६० वें भाग को, गताब्द में से गताब्द का ५ वाँ भाग हीन करने से प्राप्त शेष में युक्त करने से क्षयाहा (अवम) प्राप्त होते हैं। पूर्वोक्त को सूत्ररूप में क्षयाहा = $\text{गव} - \frac{\text{गव}}{५} + \frac{\text{गव} - \frac{\text{गव}}{६०}}{१६०}$ लिख सकते हैं।

उपपत्ति— एक सौर वर्ष के अवमाद्य ५।४८।२२।७।३० में ४८ घटी होती है। यह दिन का पाँचवाँ अंश (६० घटी ÷५= १२ घटी) एक दिन मान (६० घटी) में से घटाने से आता है। अतः गताब्द का पांचवाँ भाग गताब्द में से कम करने को कहा है। उसके पश्चात ०।०।२२।७।३० भाग शेष रहता है। इसको १६० से गुणा करने से ०।५९।० प्राप्त होता है। यह एक घटी में उसके ६० वें भाग तुल्य कम है। अतः इसको $(१ - \frac{१}{६०})$ घटी लिख सकते हैं। पहले क्योंकि १६० से गुणा करने से ०।५९ आया था अतः अब इसमें १६० से भाग देना होगा। क्योंकि $(२२।७।३०) \times \frac{१६०}{१६०} = \frac{०।५९}{१६०} = \frac{१ - \frac{१}{६०}}{१६०}$

अतः आचार्योक्त गत वर्षों के लिए सूत्र –

क्षयाहा = $\text{गव} - \frac{\text{गव}}{५} + \frac{\text{गव} - \frac{\text{गव}}{६०}}{१६०}$ उपपन्न हुआ।

विशेष— आचार्य के इसी अध्याय के श्लोक २ की व्याख्या में ब्रह्मगुप्तोक्त श्लोक ४० मध्यमाधि. का दिया गया है। वहाँ ब्रह्मगुप्त ने भास्करोक्त ही को सरल रूप में $\frac{७७३९}{९६००}$ = क्षयाहा कहा है। भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त के सूत्र के ही एक भाग को यहाँ कहा है।

अथ गताधिमासांश्छुद्धिं चाह—

दिनादिक्षयाहादिदिग्घ्नाब्दयोगः खरामैर्हृतः स्युः प्रयाताधिमासः।
भवेच्छुद्धिसंज्ञं यदत्रावशिष्टं तदूनं सदूनाहनाड्यादिकेन॥५॥

गताधिमासां शुद्धि—

सूर्य-प्रभा टीका— दिनादि, क्षयाहादि तथा दशगुणित गताब्द का योग

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करके योगफल में ३० से भाग देने से लब्धि अधिमास तथा शेष शुद्धि संज्ञक होती है, यदि अधिमास शेष की तिथि की घटियों में से अवमघटिकायें शोधित करे (से क्षय घटिका होती है)।

उपपत्ति— एक वर्ष में सावनदिन ३६५।१५।३०।२२।३० तथा अवम दिन ५।४८।२२।७।३० होते हैं। इन दोनों के योगतुल्य एक वर्ष में चांद्र दिन होते हैं ३७१।३।५२।३०। एक सौर वर्ष में ३६० सौर दिन होते हैं। इन दोनों का अन्तर अधिदिन ११।३।५२।३० होता है।

एक वर्ष के सावन दिन = ३६५।१५।३०।२२।३० = ३६५ + १ वर्ष सं. दिनादि

एक वर्ष के अवम दिन = ५।४८।२२।७।३० = ५+ १ वर्ष संबन्धी क्षयाहादि

दोनों का योग करने से—

एक वर्ष के चांद्र दिन = ३७१।३।५२।३०।० = ३७०+१ वर्ष सं. दिनादि + १ वर्ष संबंधी क्षयाहा।

एक वर्ष में सौर दिन = ३६० होते हैं।

दोनों का अन्तर करने से—

एक वर्ष में अधिदिन = ११।३।५२।३०।० = १०।१वर्ष सं. दिनादि+१ वर्ष सं. क्षयाहा। इन अधिदिनों में ३० का भाग देने से अधिमास प्राप्त होंगे। यह अधिमास ज्ञात करने के लिए आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

$$\text{एक वर्ष संबंधि अधिमास} = \frac{१०+\text{वर्ष सं.दिनादि}+\text{वर्ष सं. क्षयाहादि}}{३०}$$

$$\text{अतः ग. व.सं. अधिमास} = \frac{१०\ \text{गव} + \text{गव सं. दिनादि} + \text{गव सं. क्षयाहादि}}{३०}$$

आचार्य ने यहाँ अधिशेष का नाम "शुद्धि" कहा है। अधिशेष से अहर्गण आनयन में शेष शुद्धि संज्ञक है। अधिमास शेष की तिथि में से अवमघटिका शोधित करने का कारण आगे कहा जावेगा।

विशेष – सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"दश गुणाब्द दिनावम संयुतिः खदहनैर्विहृता अधिमासकाः।
भवति शुद्धभिधं खलु शेषकमित्यादि॥"

वटेश्वर आचार्य ने भी वटेश्वर सिद्धान्त में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"हीन राशिदिन संयुतिर्युता दिग्घ्नवत्सरगणेन भाजिता।
खाग्नि भिस्त्वधिकमासकाः फलं शुद्धिरत्र विकलं दिनादिकम्॥" मध्य.प्रत्य. २॥

ब्रह्मगुप्त ने भी ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

तद्दिग्गुणाब्दयोगा अधिमासास्त्रिंशता हृता लब्धम्।
शेषास्थिथयः शुद्धिर्दिनानि विकलं दिनांशेभ्यः॥४१॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के मध्यग्रहाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"गुणाब्धिखाष्टेषुहताः समाहृताः खखाभ्रनासत्यनगैर्दिनक्षयाः।
ततोऽवशिष्टं कृतखेन्दुभिर्भजेद् भवेद् समादाववमावशेषकम्॥२८॥"

अथ प्रकारान्तरेणाधिमासानयनमाह—

द्विधाब्दा द्विरामैः ३२ खरामैं-३० श्च भक्ताः फलैक्यं शिवघ्नाब्दयुक्तं विभक्तम्।
खरामैस्तु ते वाधिमासाश्च शेषं भवेच्छुद्धिरूनाहनाडीविहीनम्॥६॥

प्रकारान्तर से अधिमासानयन—

सूर्य-प्रभा टीका— गताब्द को पृथक-पृथक ३२ तथा ३० से विभक्त करके इनके फलैक्य (योग) में ११ से गुणित गताब्द युक्त करके प्राप्त फल में ३० का भाग देने से प्राप्तफल अधिमास होता है तथा अधिशेष में से क्षयाहा घटाने से शेष शुद्धि संज्ञक होता है।

उपपत्ति— एक वर्ष में पूर्व की भांति अधिमास शेष संबंधि दिनादि ११।३।५२।३० होते हैं तो गताब्दों में अधिमास कितने होंगे? इस के लिए इनको गताब्द से गुणा करके ३० से भाग देने से ये प्राप्त होंगे अर्थात्

$\frac{(११।३।५२।३०)\ \text{ग.व.}}{३०}$ = फल गताब्द में अधिमास संख्या।

यहाँ लघ्वार्थ ११ को अलग रख कर शेष ०।३।५२।३० दिनादि को ४८० से गुणा करने से ३१।०।० प्राप्त होता है। अतः गताब्द को ३१ से गुणा करके ४८० से भाग देवें। क्योंकि $(०।३।५२।३०) \times \frac{४८०}{४८०} = \frac{३१।०।०}{४८०}$ होगा। आचार्य ने ३१ के दो खंड किये हैं एक १५ तथा दूसरा १६ दोनों का हर समान है। अतः $\frac{३१}{४८०} = \frac{१५+१६}{४८०} = \frac{१५}{४८०} + \frac{१६}{४८०} = \frac{१}{३२} + \frac{१}{३०}$

अतः आचार्य ने गताब्द को एक बार ३२ से तथा दुबारा ३० से विभक्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करने के लिए कहा है तथा अलग रखे ११ गुणित गताब्द में इन दोनों को युक्त करने के लिए कहा है। इनके मांस बनाने के लिए इन दिन योगफल में ३० का भाग देने के लिए कहा है। पूर्व श्लोक की भांति शेष को यहाँ शुद्धि कहा है।

उपरोक्त को अन्य प्रकार से भी प्राप्त कर सकते हैं। ११।३।५२।३० के तीन खंड ११, ०।२ तथा ०।१।५२।३० करके प्रथम खंड को एक से, दूसरे को ३० से तथा तृतीय को ३२ से सवर्णित करने से क्रमशः ११; $\frac{०।२\times३०}{३०} = \frac{१}{३०}$; $\frac{१।५२।३०\times३२}{३२} = \frac{१}{३२}$ प्राप्त होता है। अतः इनको गताब्द से गुणा करके तीनों का योग करके योगफल को ३० से विभक्त करने से लब्धि अधिमास (गताब्द में) प्राप्त होंगे तथा शेष शुद्धि संज्ञक होगा।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में आचार्योक्त सिद्धान्त ही कहा है, लेकिन उन्होंने भास्कराचार्य की भांति सूत्र अंकों के रूप में नहीं कहा। यथा मध्यमाधिकार प्रत्यब्द शुद्धि अध्याय—

"अध्यहानिशिवनिघ्नहायनैरन्वितानि खदहनोद्धृतानि तानि वा।
लभ्यतेऽधिकगणोऽवशिष्टकं शुद्धिभद्रमथवा दिनादि यत्॥३॥"

यहाँ आचार्य ने इस प्रकार कहा है—

$$\text{गताधिमास} = \frac{११\text{ गव} + (३।५२।३०।०)\text{ गव}}{३०}$$

इदानीं दिनाद्येन विनाऽप्यब्दाधिपानयनमाह—

गताब्दाधिमासान्तरं द्विघ्नमाढ्यं क्षयाहैर्गतैः सप्तभक्तावशिष्टम्।
विशुद्धश्च शुद्धेः स वर्षाधिपो वा भवेत् सप्तभक्तावशिष्टोऽर्कपूर्वः॥७॥

दिनाद्य के बिना अब्दाधिपति का आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— गतवर्षों (गताब्द) तथा गताधिमास के अन्तर को दुगुणा करके उसमें अवम दिन जोड़ने से प्राप्त फल को सात से विभक्त करके शेष को शुद्धि में से घटा कर फिर ७ का भाग देने से प्राप्त शेष की रविवार से क्रमशः गणना करने से वर्षपति होता है।

उपपत्ति— सौरवर्षाब्दान्त तक जो अहर्गण होता है उसका जो वार होता है वह वर्षपति होता है। प्रत्यब्द (प्रतिवर्ष) में सौर दिन संख्या ३६० होती है। इसको ७ से विभक्त करने से ३ शेष रहता है तथा मास के दिनों ३० को ७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से विभक्त करने से २ शेष रहता है। इस प्रकार गताब्द के तीन गुणे तथा गताधिमास के द्विगुणित के योग को ७ से विभक्त करने से जितना होता है, उतना चैत्रादि से आगे तक की तिथिगण होती है, उसको ७ से विभक्त करने से अवशेष होता है। इसमें शुद्धि तिथि जोड़ देवें तथा पूर्व प्राप्त क्षयाह घटा देवे। प्रत्यब्द में पांच दिन अधिक होते हैं, अतः इसमें से गताब्द का पांच गुणा घटा देवे। पूर्वप्राप्त त्रिगुणित में जोड़ देवे और द्विगुणित घटा देवे तथा अधिकमास का द्विगुणित जोड़ देवे। इन सब को लाघवार्थ गताब्द में से गत अधिमास घटा कर शेष का दुगुणा करके अवम जोड़ कर ७ से विभक्त करके शेष को शुद्धि में से घटा कर ७ से भाग देने से प्राप्त शेष रविवारादि क्रम से वर्षपति होता है। यह अब्दान्त का वार होता है यह भी कह सकते हैं।

उपरोक्त की गणना निम्नलिखित प्रकार से करके बताते हैं। यथा–

३६० × गताब्द = गताब्द के सौर दिन।

३० × गताब्द के अधिमास + अ.शेष = गताब्द के अधिदिन

∴ गताब्द के चांद्र दिन = ग.व. सौरदि.+ग.व. अधिदिन

= ३६० × गव + ३० × ग व सं अ. मा. + अ.शे.

∴ गव के सावन दिन = ग.व. चांद्रदिन – ग व के क्षयाहा सावयव

= ३६० × गव+३० गव संअमा +अशे. – (५ गव+क्षदि+क्षशे.)

= ३६० गव+३० गव सं अमा + अशे – ५ गव – क्षदि – क्षशे

इसको ७ से विभक्त करने से–

= ३ ग.व + २ ग.व.सं अमा. + अशे – ५ ग व – क्षदि – क्षशे

= ३ गव+२ गवसंअमा + (अशे-क्षशे) – ५ गव – क्षदि

= ३ गव + २ गव सं अ मा+ शुद्धि – ५ गव – क्षदि.

= शुद्धि – २ (ग व – गवसंअमा) – क्षदि

= शुद्धि – [२ (गव–गवसंअमा) + क्षदि]

इसको ७ से विभक्त करने से रविवार आदि क्रम गणना से शेष संख्या तक वर्तमानवार होता है। यहाँ [२(गव–गवसं अमा)+क्षदि] योगफल २९ से अधिक हो सकता है अतः इस ऋण भाग २ (गव – गवसं अमा) + क्षदि. में पहले ७ से भाग देकर प्राप्त शेष को शुद्धि (प्रथम भाग) में से घटा कर फिर सात से भाग देने के लिए आचार्य ने कहा है। यह उपपन्न हुआ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— वटेश्वर सिद्धान्त में वटेश्वर ने इसी बात को इस प्रकार मध्यमा. प्रत्यब्द शुद्धि अध्याय में कहा है। यथा—

"द्विनिघ्नेवत्सरनिकरेऽधिकोनिते युतेऽवमनिकरेण हीनिता शुद्धिः।
स्वभागहार-युतगुणैर्यथोक्तवद्दिनादितेष्वगहृतशेषमब्दपः ॥८॥"

यहाँ आचार्य ने ऋण भाग को पहले २ से विभक्त करने के लिए नहीं कहा है, लेकिन कहा है कि अपना भागहार जोड़ गुणा द्वारा पूर्ववत दिनादि फल को सात से विभक्त करने से शेष वर्षपति होता है।

सूर्यसिद्धान्त में वर्षपति तथा मासपति आनयन के लिए उपरोक्त सूत्र के अलग भाग किये हैं। यथा मध्यमाधिकार—

"मासाब्ददिनसङ्ख्याऽघ्नं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम्।
सप्तोद्धृतावशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्षपौ ॥५२॥"

अर्थात् अहर्गण को दो स्थानों में स्थापित करके एक स्थान पर मासदिन संख्या (३०) से तथा दूसरे स्थान पर सौर वर्षदिन (३६०) संख्या से विभक्त करने से प्राप्त लब्धि को क्रमशः मास को दो से तथा वर्ष को ३ से गुणा करके गुणन फल में दोनों स्थानों पर एक जोड़ कर ७ से विभक्त करने से प्राप्त शेष से रवि आदि क्रम से क्रमशः मासेश तथा वर्षेश होते हैं'

ब्रह्मगुप्त ने भी ब्रह्मस्फुट में इसी प्रकार कहा है।

इदानीमवमैर्विनाऽप्यवमशेषघटिका आह—

यत् त्वधिमासकशेषकनाडीपूर्वमिदं रहितं विहितं सत्।
आद्यदिनाद्यघटीभिरथैवं स्युः क्षयशेषभवा घटिका वा ॥८॥

अवम के बिना अवमशेष घटि ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— अधिमास शेष तित्थात्मक होता है उसकी आद्य घटियों में से आद्य दिनों की घटियाँ घटाने से वास्तविक क्षयाहाघटिका होती है। पूर्व में दो बार गताब्द को ३२ तथा ३० से भाग देकर दिनाद्य का फल प्राप्त किया है उसके निराकरण (अर्थात् स्थान पर) के लिए आचार्य ने यह कहा है।

उपपत्ति— जिस प्रकार दिन अवम घटियों से युक्त अधिमास शेष की घटिकाओं में से दिन घटिका घटाने से अवमघटिका शेष रहती है वैसे ही अवम घटिका घटाने से दिन घटिका शेष रहती है। यह श्लोक ५ की उपपत्ति के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समीकरण को देखने से स्पष्ट हो जाता है। अधिमास शेष दिनाद्य शेष तथा क्षहाद्य शेष का योग [illegible] है।

आर्यभट (द्वि.) ने प्रश्नोत्तराध्याय अधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"खत्रीधजत्रिणेसै कल्पगताब्दान् हतान् विभजेत्॥२१॥
सरननुनैनै लब्धं याताख्योऽहर्गणो भवति।
तच्छेषाद्यद् घटिकादिफलं तदृणाभिधानं स्यात्॥२२॥"

इदानीं रव्यब्दान्तग्रहानयनमाह—

कल्पजचक्रहतास्तु गताब्दाः कल्पसमाविहता भगणाद्याः।
स्युर्ध्रुवका दिनकृद्भगणान्ते पातमृदूच्चचलोच्चखगानाम्॥९॥

रविब्दान्त के ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— कल्पग्रहभगण को गत सौर वर्ष से गुणा करके कल्प सौर वर्षों से भाग देने से प्राप्त भगणादिक सौर वर्षांत (रविमण्डलान्तिका) के ग्रह होते हैं। ये उन ग्रहों के ध्रुवक होते हैं। पात तथा मन्दोच्च की, ग्रह की अपेक्षा अति मन्द गति होने से उनको वर्षगण से आनयन करना उचित प्रतीत नहीं होता।

उपपत्ति— यदि कल्पवर्षों में कल्पग्रहभगण होते हैं तो गताब्द में कितने होंगे? यह अनुपात करने से प्राप्त फल रविमण्डलान्तिका ग्रह होते हैं। इस प्रकार प्राप्त ग्रहों को ध्रुवक मानना चाहिये।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट मध्यमाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है।

"कल्पगताब्ददिनयुतः सूर्याद्योऽब्दाधिपोऽब्दभगणवधः।
कल्पाब्दहृतो भगणादिमध्यमाः सूर्यभगणान्ते॥४२॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के चतुर्थ अध्याय में आचार्योक्त ही कहा है।

"यातार्काब्दाभ्यस्ता द्युचरभसङ्घ्या युगार्कवर्षहृताः।
मण्डलपूर्वः खचरः सुरासुरार्कोदयास्तसमये स्यात्॥५१॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधी.वृ.ग्रंथ के मध्यग्रहाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"समाहताः खेचरमण्डलैर्हताश्चतुर्युगाब्दैरथ तैरिनोद्धृतैः।
खरामभक्तैरनुरवाङ्गभाजितैर्भवेयुरर्काब्दमुखे ग्रहध्रुवाः॥३०॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं चन्द्रध्रुवकं प्रकारान्तरेणाह—

यत्तु दिनाद्यधिशेषमिनघ्नं १२ स्याद् ध्रुवकस्त्वथवा स लवाद्यः।
कैरविणीवनिताजनभर्तुः पीतचकोरमरीचिचयस्य॥१०॥

चन्द्रध्रुवाँक प्रकारान्तर से—

सूर्य-प्रभा टीका— दिनाद्य अधिशेष (तिथियात्मक अधिमास शेष) को बारह से गुणा करने से अंशात्मक चन्द्र होता है। चन्द्रमा के लिए आचार्य ने यहाँ कैरविणी अर्थात् श्वेत कमलों का समूह, वनीताजन अर्थात् स्त्रियों का भर्तु, चकोर जिसकी किरणों को पीते हैं आदि शब्दों, अलंकारों का प्रयोग किया है।

उपपत्ति— तिथि का द्वादश गुणित रविचंद्र का अंतर अंशात्मक होता है। उसमें रवि को जोड़ने से चन्द्रमा होता है। सौर वर्षादि में भुक्त तिथि शुद्धि के बराबर होती है। अतः शुद्धि को १२ से गुणा करने पर रविचन्द्र के अन्तर अंश होंगे। परन्तु सौरवर्षों में रवि भगण पूर्ण होते हैं अतः तब रवि का राशि अंशादि मान शून्य ही होता है, अतः सूर्य के ध्रुवक शून्य होने से चंद्र रवि के अंतर के अंशादि ही चंद्र के अंशादि (भागादि) ध्रुवक होंगे।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने मध्यमाधिकार प्रत्यब्द शुद्धि अध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"प्राग्वद्रविवर्षैः सिद्धि खेचराणां सूर्याहत शुद्धि र्भागादिकशशी वा॥१२॥"

आर्यभट (द्वि) ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय के आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सावयवा कर गुणिता शुद्धिर्भागा भवन्ति तैर्युक्तः।
रव्यब्दादिदिनौघप्रभवो रजनीश्वरो मध्यः॥२६॥"

इदानीं कलिगतादाह—

कलेर्गताब्दैरथ वा दिनाद्यं पूर्वं यदुक्तं खलु तत् प्रसाध्यम्।
अब्दाधिपस्तत्र सितादिकः स्याद् ध्रुवाश्च युक्ताः कलिवक्त्रखेटैः॥११॥

कलिगत ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वकथित प्रकार से कलिगताब्द और दिनाद्य से ग्रह आयन करे। उसका अब्दपति (वर्षपति) चैत्र शुक्लादिक होता है। उसमें ग्रह के ध्रुवक युक्त करने से कलिगत ग्रह होते हैं। (ग्रहआनयनाध्याय में आचार्य ने कलिआरंभ पर ग्रहों के ध्रुवक कहे हैं श्लोक २० में)।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीमहर्गणार्थं क्षेपदिनान्याह—

स्वीयनखांशयुताः क्षयनाड्यः क्षेपदिनानि दिवागणसिद्धयै।
चैत्रसितादिगतस्तिथिसङ्घः शोधितशुद्धिरधस्तु समेतः॥१२॥
स्वीयकराभ्रतुरङ्ग-७०२ लवेन क्षेपयुतः कृतषट्कविभक्तः।
लब्धदिनक्षयवर्जितशेषो रव्युदये द्युगणोऽब्दपतेः स्यात्॥१३॥

अहर्गण आनयन के लिए क्षेपदिनायन—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्व ज्ञात क्षयाहा में जो आगे के आद्य भाग में नाडिकायें हैं उनमें उनका २० वाँ भाग युत करने से दिनाद्य माने। घटियों से दिन तथा विघटियों से घटियाँ बनाने के लिए उन्हें साठ से विभक्त करे। इस प्रकार दिवा गण सिद्ध करके अहर्गण का साधन करे। अर्थात्

$$\text{क्षेप} = \text{क्ष} + \frac{\text{क्ष}}{२०} = \frac{२१\,\text{क्ष}}{२०}$$

चैत्र शुक्लारंभ से गत तिथियों का संचय कर उसमें से शुद्धि को घटा कर उसमें पूर्वोक्त क्षेप दिन युक्त कर देवे तथा उसका अर्थात (चै.ग.ति – शुद्धि) का ७०२ वाँ भागफल भी युक्त कर देवे। इस समस्त योगफल में ६४ का भाग देकर प्राप्त लब्धि अवम तथा शेष अवम शेष होता है, को (चै.ग.ति.–शुद्धि) में से घटाने से सूर्योदय पर अहर्गण प्राप्त होता है।

स्पष्टीकरण— चैत्रादि गत तिथि में से शुद्धि को घटाकर प्राप्त शेष को तीन स्थानों पर स्थापित करे। अंतिम स्थान पर ७०२ से विभक्त करने से प्राप्त फल को मध्य स्थान पर जोड़ देवें। इसके बाद इसमें पूर्वोक्त क्षेपदिन $\left(\text{क्षद्य} \times \frac{२१}{२०}\right)$ को युक्त करने से प्राप्त फल में ६४का भाग देकर प्राप्त फल अवम का मान होता है तथा शेष अवम शेष होता है। चन्द्र आनयन के लिए उसको अलग स्थापित करे। प्रथम स्थान पर स्थित राशि में से यहाँ प्राप्त अवम को घटाने से अहर्गण प्राप्त होता है तथा इसका अब्दपति जो हो उस दिन (वार) इतनी घटी पर यह अहर्गण आरंभ होता है। उसके अगले दिन तुल्य वार की गणना कर सकते हैं।

श्लोकोक्त को सूत्र रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$\text{लघ्व अहर्गण} = (\text{चै.ग.ति} - \text{शु.}) - \frac{(\text{चै.ग.ति} - \text{शु}) + \frac{(\text{चै.ग.ति} - \text{शु})}{७०२} + \frac{\text{क्ष.घ.}२१}{२०}}{६४}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— वर्षांत से इष्ट दिन पर्यंत दिनों की संख्या को लघ्व अहर्गण आचार्य ने कहा है। अर्थात् वर्षांत कालिक अहर्गण तथा इष्ट कालिक अहर्गण का अन्तर लघ्व अहर्गण होता है। इसका आनयन करना यहाँ बताया जा रहा है।

वर्षांत कालिक अहर्गण (सावन)

= गत चां + अधिशे. – क्षयदि.+दि.घ. .....(१)

यहाँ गतचां = कल्पादि से (या युगादि से जैसा भी हो) चैत्र अमान्त तक चांद्र अहर्गण है।

दिन घटी = सूर्योदय से वर्षांत तक दिनादि घटी है।

तथा इष्ट अहर्गण = गतचां + चैति – क्ष. दि. .....(२)

समीकरण (२) तथा (१) का अंतर करने से—

लघ्व अहर्गण = चैगति. – शुद्धि + क्षदि – क्ष.दि.

= चै.ग.ति – शुद्धि – (क्ष.दि – क्षदि)

= (चैगति – शुद्धि) – क्षय दिनान्तर .....(३)

क्षय दिनान्तर लाने के लिए अनुपात करने से–

$$\frac{\text{कल्प अवम} \times \text{इ चां}}{\text{क चां}} + \frac{\text{क्षघ.}}{६०} = \text{क्षय दिनांतर}$$

$$\text{क्षय दिनांतर} = \frac{\text{कल्प अवम} \times \text{इ चां}}{\text{क चां}} \times \frac{६४}{६४} + \frac{\text{क्षघ.}}{६०} \times \frac{६४}{६४}$$

$$= \frac{\text{कल्प अवम} \times ६४}{\text{क चां}} + \frac{\text{इचां}}{६४} + \frac{\text{क्षघ.}}{६०} \times \frac{(६३+१)}{६४}$$

$$= (१+ \frac{\text{शे.}}{\text{कचा.}}) \times \frac{\text{इचां}}{६४} + \frac{\text{क्षघ.} \times ६३}{६० \times ६४} + \frac{\text{क्षघ}}{६० \times ६४}$$

$$= (१+ \frac{१}{७०२}) \frac{\text{इचां}}{६४} + \frac{\text{क्षघ}}{६० \times ६४} + \frac{\text{क्षघ} \times २१}{६४ \times २०}$$

$$\text{क्षय दिनांतर} = \frac{\text{इचां} + \frac{\text{इचां}}{७०२} + \frac{\text{क्षघ}}{६०} + \frac{\text{क्षघ} \times २१}{२०}}{६४}$$

यह क्षयदिनान्तर मान समीकरण (३) में प्रतिस्थापित करने पर—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{लघ्व अहर्गण} = (\text{चैति} - \text{शु.}) - \frac{\text{इचां} + \frac{\text{इचां}}{७०२} + \frac{\text{क्षघ}}{६०} + \frac{\text{क्षघ} \times २१}{२०}}{६४}$$

$$= (\text{चैति} - \text{शु.}) - \left\{ \frac{\text{इचां} + \frac{\text{इचां}}{७०२} + \frac{\text{क्षघ}}{६०} + \frac{\text{क्षघ} \times २१}{२०}}{६४} \right\}$$

$$= (\text{चैति} - \text{शु.}) - \left\{ \frac{(\text{चैति} - \text{शु.}) + \frac{(\text{चैति} - \text{शु.})}{७०२} + \frac{\text{क्षघ} \times २१}{२०}}{६४} \right\}$$

भास्कराचार्य ने वटेश्वराचार्य की भांति ही इचां के स्थान पर (चैति–शु) लिया है। अन्य प्रकार से (पूर्व अध्याय में) अहर्गण साधन में ६४ दिन में एक अवमदिन गृहण किया। अतः यहाँ ६४ को जान बूझ कर भाग स्थान में लिया है। वटेश्वर तथा ब्रह्मगुप्त ने स्वकृत ग्रंथों में ६४ दिन में एक अवम मान से ७०३ दिवस में ११ अवम ग्रहण किया है लेकिन भास्कराचार्य ने यहाँ ७०२ दिन गृहण किया है। यह शायद अपनी विशिष्टता रखने के लिए लिखा है। पंचसिद्धान्तिका में भी ७०३ दिन ही गृहण किया है। लल्लाचार्य ने भी ७०३ दिन ही गृहण किया है। ७०४ में ६४ का भाग देने से भागफल पूर्ण संख्या ११ आता है। भास्कराचार्य ने पूर्वाचार्यों के मत से ७०३ को न लेकर ७०२ लेकर त्रुटि ही उत्पन्न की है।

विशेष— **वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त** में प्रत्यब्द शुद्धि अध्याय में इसी बात को निम्नलिखित प्रकार से कहा है। यथा–

"अथवा तिथयश्चैत्राद्याः शुद्धयूनितास्त्रिरधः ॥२५$\frac{१}{२}$॥

त्रिखनग हृतफलसहितो मध्यः कुभजहतावमघटीभ्यः ॥२६॥

खभुजाप्तयुगब्धिरसैर्लब्धावमवर्जितो द्युगणः ॥२६$\frac{१}{२}$॥"

वटेश्वराचार्य ने यहाँ ७०२ के स्थान पर परम्परानुसार ७०३ लिया है। विद्वान् गण इस पर विचार करें कि भास्कराचार्य ने पूर्ववर्ती आचार्यों की सम्मत बात में इतना सा अंतर करके क्या अशुद्धि उत्पन्न कर दी?

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में भिन्न समीकरण दिया है।

लल्लाचार्य ने शिष्यधीवृद्धिद तन्त्र में आचार्योक्त सिद्धान्त ही कहा है लेकिन सूत्र को भिन्न प्रकार से लिखा है जिसे भास्कराचार्योक्त सूत्र के ही तुल्य कह सकते हैं। मध्यमाधिकार–

मधोः सितादेस्तिथयो विशुद्धयः पृथङ्मृगाङ्काभरणैः समाहताः।
समादियातावमशेषसंयुता हृतास्त्रिखागैर्द्युगणः फलोनितः॥३१॥

अर्थात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से गत तिथिगण में से शुद्धि को घटा कर फल को दो स्थानों पर स्थापित करे। प्रथम स्थान पर इसको ११ से गुणा करके अवमशेष को युत करके ७०३ से विभक्त करे तथा प्राप्तफल को द्वितीय स्थान पर स्थापित फल में से घटा देने से प्रचलित सौर वर्ष के सावन दिन लघ्व अहर्गण होते हैं।

इसको सूत्र रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$\text{लघ्व अहर्गण} = (\text{चैति} - \text{शु.}) - \left\{ \frac{११\,(\text{चैति} - \text{शु.})}{७०३} + \frac{\text{अवमशेष}}{७०३} \right\}$$

श्रीपति ने भी यही लल्लोक्त ही कहा है श्लोक ४०-४१ में।

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय में इस बात को भिन्न प्रकार से प्रथम अध्याय के २७ तथा २८ वें श्लोक में कही है। यथा—

"वर्षेषु रन्ध्रकृत चन्द्रसमाहतेषु षट्सप्तपञ्चविहृतेषु दिनादिलाभः।
ते योजिता दशहतासु समासु संज्ञां सम्प्राप्नुवन्ति रविजा इति निश्चयो में॥२७॥
रविजदिवसयोज्याश्चावमा येऽत्र लब्धाः सततमधिकमासाञ्छोधयेत् खाग्निनिघ्नान्।
भवति यदवशिष्टं शोधनीयं समायां यदि तदधिक शुद्धं क्षेप्यमेवोपदिष्टम्॥२८॥"

आचार्य ने इन को ही टुकड़ों में श्लोक २२ तथा २३ में भिन्न रूप में ही कहा है।

इदानीं विशेषमाह—

यावत् तिथिभ्योऽभ्यधिकाऽत्र शुद्धिः प्राक्चैत्रतस्तावदहर्गणः स्यात्।
प्राक्शुद्धिपूर्वेण तथैव खेटाः प्राग्वर्षजातैर्ध्रुवकैः समेताः॥१४॥

विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि चैत्रादि तिथि में से (पूर्वश्लोकानुसार) शुद्धि न घटे तो पूर्व के चैत्रादि आरंभ से तिथि गणना करके पूर्व वर्ष की शुद्धि तथा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षेप दिन से अहर्गण साधित करे। उससे आगत ग्रह में पूर्व वर्ष के ध्रुवक युक्त करे।

विशेष— वर्षारंभ से पूर्व के किसी दिन का अहर्गण साधन करना हो तब यह क्रिया करते हैं। चैत्रादि में अवमशेष यदि चैत्र शुक्लादि से पहले हो तब विलोम अहर्गण होता है।

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में, यदि शुद्धि न घटे तब क्या करना चाहिए तथा अहर्गण कैसे ज्ञात करना चाहिये? इसके लिए प्रत्यब्द शुद्धि में कहा है कि अवम शेष में ७०३ जोड़ कर शुद्धि (अवमदिन) घटावें तथा पूर्वोक्त क्रिया से वर्षांत कालिक अवम शेष आता है इससे साधित अहर्गण में एक जोड़ें।

"द्विनवरसघ्नाद्भक्तात्सवच्छेदेनावमाद् विशुद्धयति न चेत्।
शोध्यं द्युगणाद्रूपेशुद्धे गुणाखागसंयुताश्छेद्याः ॥४२॥
शेषं तद्दिवसोत्थ विकलं त्ववमस्य विज्ञेयम्॥४२$\frac{१}{२}$॥"

आचार्य का सूत्र अलग है, अतः यहाँ अंक भिन्न हैं।

लल्लाचार्य ने विपरीत शोधन से आनयन अपने ग्रंथ शिष्याधिवृद्धिद में इस प्रकार कहा है। यथा–

"यावन्न मेषं व्रजति प्रभाकरस्तावन्न पूर्वध्रुवकान् परित्यजेत्।
चैत्रे प्रविष्टेऽपि विलोमकर्म वा शुद्धया विजह्यादगते क्रियं रवौ॥
भास्वानृणाहर्गणश्च सिद्धः पात्यो भचक्रात्स्वफलानि चैवम्।
स्वस्वध्रुवादप्यथखेचराणां शोध्यानि यत्नात् प्रवदन्ति सन्तः॥"

लल्लाचार्य ने चैत्रादि में ऋण अहर्गण कहा है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने इस प्रकार कहा है। यथा–

"शुद्धिमेव पृथगीश्वराहतां शोधयेदवमशेषकान्तिजात्।
चेन्नशुध्यति च सत्रिखाचलात् शोध्यमेकमपि शुद्धितो दिनम्॥"

यहाँ ब्रह्मगुप्तोक्त ही कहा है।

इदानीं रव्यानयनमाह—

**दिनगणो निजषष्टिलवोनितो भवति तिग्मरुचिः स लवादिकः।
गुणगुणाद् द्युगणादथ भाजिताद् यमयमैः २२ कलिकादिफलान्वितः॥१५॥**

रवि गति आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— दिनगण में से उसका ६० वाँ भाग कम करने से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्य (तिग्म रुचि) की गतिका पहला भाग (कला) प्राप्त होता है तथा दिनगण (द्युगण) को ३ से गुणा करके २२ से विभक्त करने से विकलादि गति के अवयव का शेष फल प्राप्त होता है।

उपपत्ति– आचार्य ने सूर्य की दैनिक गति ० अं. ५९ क. ८ वि. १० प्र.वि. २१ प्रप्र.वि. पठित की है। अतः स्पष्ट है कि यदि द्युगण को एक अंश माना जावे तो इस की तुल्य ६० कला में से साठवाँ भाग $\frac{६०}{६०}$ = १ कला कम करने से शेष ५९ कला सूर्य की दैनिक गति का आदि भाग प्राप्त होता है। शेष भाग ८।१०।२१ विकलादि के लिए आचार्य ने आसन्न भिन्न ३/२२ प्राप्त की है जिसको कला मानने से प्राप्त फल ८।१०।५५ विकलादि प्राप्त होता है। यहाँ तीसरी संख्या ५५ को आचार्य ने २१ (अभीष्ट) के स्वल्पान्तर से आसन्न ही मान लिया है। क्योंकि ३/२२ के अतिरिक्त दूसरी ऐसी भिन्न नहीं है जो ८।१०।२१ विकलादि के आसन्न मान दे सके।

आचार्य ने बालावबोधार्थ एक (रूप) अहर्गण मान के लिए अर्थात् एक दिन के लिए ग्रहों की गतियाँ निम्न लिखित कही हैं।

सू.	चं	मं	बुशी.	गु	शुशी.	श	चं.उ.	पा.
०	१३	०	४	०	१	०	०	०
५९	१०	३१	५	४	३६	२	६	३
८	३४	२६	३२	५९	७	०	४०	१०
१०	५३	२८	१८	९	४४	२२	५३	४८
२१	०	७	२८	९	३५	५१	५६	२०

विशेष– श्रीपति तथा ब्रह्मगुप्त ने भी **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** में आचार्योक्त ही ग्रहों की दिन गति का मान दिया है। अतः भास्कराचार्य ने श्रीपति तथा ब्रह्मगुप्त के दैनिक ग्रह गतिमान ही ग्रहण किये हैं।

पंच सिद्धान्तिका में भी सूर्य, चंद्र तथा चंद्रोच्च के दैनिक गतिमान विकला तक आचार्योक्त ही कहे हैं। लल्ल ने चंद्र तथा चंद्रोच्च की विकला एक-एक अधिक ली है क्यों विकला के आगे के भाग आधे से अधिक हैं।

अथ चन्द्रानयनमाह—

रविगुणैस्तिथिभिः पृथगुण्णगुर्लवगतः सहितः स हिमद्युतिः।
स्वनगभागयुतेन दशाहतक्षयदिनोर्वरितेन कलान्वितः॥१६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चन्द्र आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— तिथि को १२ से गुणा करके फल को सूर्य में युक्त करने से चन्द्रमा होता है। अवम में अपना ७ वाँ भाग जोड़ कर १० से गुणाकरके कलायें युक्त करने से उदय कालिक चन्द्र होता है।

सूत्र रूप में—

$$\text{उदयकालिक चंद्रमा} = \text{सूर्य} + १२ \text{ गति तिथि} + \left(\text{क्षशे} + \frac{\text{क्षशे}}{७}\right) \times १०$$

उपपत्ति— तिथि को १२ से गुणा करके सूर्य को जोड़ने से चन्द्रमा का आनयन उपरोक्त प्रकार से करने से प्राप्त चन्द्रमा तिथि अंत पर होता है। तिथि अंत तथा सूर्योदय के मध्य अवमशेष होता है, वह सावन होता है। इसको (चंद्र) उदय कालिक बनाने के लिए अहर्गण से साधित अवम शेष का चांद्रिकरण करना होगा। अवम शेष को ६४ से गुणा तथा ६३ से भाग देवें। यदि ६३ सावन दिन में ६४ चांद्र दिन होते हैं तो अवमशेष में कितने सावन दिन होंगे? अर्थात् $\frac{६४ \times \text{अह.}}{६३} \times \frac{\text{क्षशे.}}{६४}$ प्राप्तफल तिथ्यात्मक है इसके १२ से गुणित अंश होंगे तथा इन्हें पुनः ६० से गुणा करने से कलायें प्राप्त होंगी। अतः अवमशेष का ७२० गुणा तथा ६३ का भाग करे, यथा $\frac{\text{अ.शे.} \times ७२०}{६३}$। इसको ९ से अपवर्तित करने से हार स्थान पर ७ तथा गुणा के स्थान पर ८० प्राप्त होगा अर्थात् $\frac{\text{अ.शे.} \times ८०}{७}$। अवमशेष में अपना सप्तमांश युक्त करने से ८ से गुणा के तुल्य हो जावेगा तथा प्राप्त फल कलायें होंगी। अर्थात् $\frac{\text{अ.शे.} \times ८०}{७} = (\text{अ.शे.} + \frac{\text{अ.शे.}}{७}) \times १०$ यही आचार्य ने कहा है। इन्हें पूर्व प्राप्त अंशों (सूर्य+१२×तिथि) में युक्त करने से उदय कालिक चन्द्रमा होगा।

लीलावती का सूत्र—

स्वांशोऽधिकोनः खलु यत्र तत्र भागनुबन्धे च लवापवहि।
तलस्थहारेण हरन्निहन्यात् स्वांशाधिकोऽनेन तु तेन भागान्॥
इति खवसूनां सप्तमांश इति स्पष्टम्॥१६॥ भागानु.सूत्र

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्रह्मगुत ने आचार्योक्त बात को ही अन्य प्रकार से कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"त्रिगुणमवमावशेषं विभजेद् गुणस्तशशिभिराप्तांशः॥
पृथगधिकोऽर्को रविगुणतिथ्यंशैः संयुतश्चन्द्रः॥" मध्य.४६ श्लो.॥

अर्थात चन्द्र = १२ गतितिथि + सूर्य + $\frac{३}{१७३}$अशे.

इसको स्पष्ट करके बताते हैं—

अहर्गण कालिक चंद्र = (अंश) रवि+१२ (गति+क्षध सं.चां)

ब्रह्म गुप्त ने पूर्वोक्त $\frac{७२०}{६३}$ अशे. को भिन्न प्रकार से हल किया है। यथा

$\frac{७२०}{६३}$ अशे = $\frac{१२\times६०}{६३}$ अशे = $\frac{१२\times२०}{२१}$ क्षशे = $\frac{४\times२०}{७}$ क्षशे = $\frac{८०}{७}$ क्षशे

इसको अंशात्मक करने के लिए ६० से भाग दिया $\frac{८०}{७\times६०}$ क्ष. शे. अंश =

$\frac{८०क्षशे}{७\times६०}\times\frac{३}{३}$

ब्रह्मगुप्त कथित क्षय शेष को ११ से विभक्त करने से भास्कर कथित क्षयशेष होता है = $\frac{क्षय शे}{११}$।

अतः $\frac{८०क्षशे\times३}{६०\times११\times७\times३} = \frac{क्षशे\times३}{\frac{६०\times११\times७\times३}{८०}} = \frac{क्षशे\times३}{\frac{१३८६}{८}} = \frac{क्षशे.\times३}{१७३}$

स्वल्पांतर से = १२ क्षय घ.सं.चां। अतः अहर्गणकालिक चंद्र = रवि+१२ ग.ति + $\frac{क्षशे.\times३}{१७३}$। इस प्रकार ब्रह्मगुप्तोक्त तथा भास्करोक्त एक ही बात है।

इदानीं भौमानयमाह—

दिनगणार्धमधो गुणसङ्गुणं द्युगणसप्तदशांशविवर्जितम्।
लवकलादिफलद्वयसंयुतः क्षितिसुतध्रुवकः क्षितिजो भवेत्॥१७॥

भौम आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— दिन गण के अर्ध तुल्य कलादि माने। इसके पृथक त्रिगुणित में से द्युगण का १७ वाँ भाग घटाकर कलादि फल प्राप्त करे। इन दोनों कलादि फल के संयुक्त फल में भौम के ध्रुवक को युक्त करने से भौम होता है।

उपपत्ति— दिन गणार्ध अर्थात् ३० घटी को ३० कला माने। इसको

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृथक ३ से गुणा करने से प्राप्त फल श्लोक अनुसार १।३० कलादि को पूर्व ३० कला में जोड़ा तो ३१।३० कला विकला प्राप्त हुआ। यह कुज की गति से ३१।३०।०।० − ३१।२६।२८।७ = ०।३।३१।५३ अधिक है। इस अधिक मान ०।३।३१।५३ को १७ से गुणा करने से १।०।२।० कलादि प्राप्त होता है। अतः द्युगण÷१७ को पूर्व प्राप्त ३१।३० में से घटाने से भौम होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त तथा भास्कराचार्य दोनों की भौम गति समान है। ब्रह्मगुप्त के अनुसार दै. कुज गति

$$= \frac{\text{कल्पकुज भगण} \times १२ \times ३०}{\text{क.कु.}} = \frac{२२९६८२८५२२ \times १२ \times ३०}{१५७७९१६४५००००} \text{ है।}$$

$$\text{इससे कुज (गति)} = \frac{११}{२१} + \frac{११}{८७५ + \frac{३४१३८१२५०}{१७३५६६९०८००}}$$

$$\text{अतः कुज} = \left(\frac{११}{२१} \text{अ}\right)^{\circ} + \left(\frac{११}{८७५} \text{अ}\right)^{'}$$

भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्तोक्त $\frac{११}{२१}$ को स्वल्पांतर से $\frac{१}{२}$ अंश मान कर "दिनगणाधर्मधो" कहा है तथा शेष के लिए "गुणसंगुण" आदि कहा है। श्रीपति ने $\frac{११}{२१}$ इस आसन्न मान से "अहर्गणे युगाहते" इत्यादि राश्यादि कुज आनयन किया है। लल्लाचार्य ने भी अंशात्मक भौम ब्रह्मगुप्त की भांति प्राप्त किया हैं लल्ल के कल्पकुदिन तथा कल्पभगण मानों में भिन्नता होने के कारण उनका सूत्र इस प्रकार प्राप्त हुआ—

$$\text{अहर्गण में भौम} = \frac{२२९६८२४ \times ३६० \times \text{अहर्गण}}{१५७७९१७५००}$$

$$= \frac{A}{२} - \left(\frac{A}{२} - \frac{२२,९६,८२४}{१,५७,७९,१७,५००} \times ३६० \text{ A}\right) \text{अंश}$$

$$= \frac{A}{२} + \frac{A}{४२} - \left(\frac{A}{४२} - \frac{३७८९७८९}{१,५७,७९,१७,५००} \text{ A}\right) \text{अंश}$$

$$= \left(\frac{A}{२} + \frac{१}{२१} \times \frac{A}{२}\right) \text{अंश} + \frac{A}{८०} \text{ कला स्वल्पांतर से।}$$

अतः **लल्लाचार्य ने शिष्यधिवृद्धिद** में कहा है (भौमानयन)।—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"कुज ध्रुवे दस्रहृतं द्युसञ्चयं लवेषु रूपाक्षिलवेन संयुतम्।
क्षिपेद्युपिण्डाद् गगनेभभाजितात् कलादि लब्धं न भवेन्महीसुतः॥३५॥"

इदानीं बुधचलानयनमाह—

दिनगणः कृतसङ्गुणितः पृथग् गुणगुणः खगुणेन्दुभिरुद्धृतः।
फलयुतः खलु तेन लवादिना बुधचलं भवति ध्रुवकोऽन्वितः॥१८॥

बुध शीघ्रोच्च चालान आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण को चार से गुणा करे फिर प्रथक से इसको ३ से गुणा करके १३० का भाग देवें। इन दोनों फलों को युक्त करने से बुध शीघ्रोच्च होता है। इसमें पूर्व की भांति ध्रुवक का क्षेप्य करें।

उपपत्ति— आचार्योक्त की उपपत्ति तीन प्रकार से कर सकते हैं—

प्रथम विधि— आचार्योक्त बुध शीघ्रोच्च गति ४°।५'।३२''।१८'''।२८'''' है।

अहर्गणोत्पन्न बु.शी. ४° अहर्गण+अहर्गण (५'।३२''।१८'''।२८'''')
अब ५'।३२''।१८'''।२८'''' का रुपान्तरण अंशों में करते हैं

$$= ५।३२।१८।\frac{२८}{६०} = ५।३२।१८।\frac{७}{१५}$$

$$= ५।३२।\frac{१८\times१५+७}{१५} = ५।३२।\frac{२७७}{१५\times६०} = ५।३२।\frac{२७७}{६००}$$

$$= ५।\frac{३२\times६००+२७७}{६००} = ५।\frac{२८८००+२७७}{६००}$$

$$= ५।\frac{२६०७७}{६००\times६०} = ५।\frac{२६०७७}{५४०००} = ५+\frac{२६०७७}{५४०००}$$

$$= \frac{२७०००+२६०७७}{५४०००} = \frac{२६६०७७}{५४०००\times६०} \text{ अंश}$$

अतः बुध शीघ्रोच्चांश

$$= ४^{\circ}\text{अ} + \frac{२६६०७७}{६०\times५४०००} \text{ अह.}$$

$$= \left(४+\frac{१\times१२}{\frac{६०\times५४०००\times१२}{२६६०७७}}\right)\times \text{अहर्गण}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$= \left(४ + \frac{१२}{१३०}\right) \times \text{अहर्गण}$$

$$= ४ \text{ अ.} + ४ \text{ अ.} \times \frac{३}{१३०}$$ आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

द्वितीय विधि— ३६० × बुध कल्पशीघ्रोच्च भगण = बुध शीघ्रोच्च कल्पांश। अहर्गण को ४ से गुणा करने से अंश प्राप्त होते हैं यह प्रसिद्ध है।

३६० × क.बु.शी.भगण − ४ क.कु. = कल्प में वास्तव तथा अवास्तव शीघ्रोच्चांश का अंतर

अतः अहर्गण संबंधि अंतरांश

$$= \left(\frac{३६०\times\text{क.बु.शी.भ} - ४\text{ क. कु.}}{\text{क.कु.}}\right)\text{अहर्गण}$$

$$= \frac{\frac{\text{अहर्गण} \times १२}{\text{क.कु.} \times १२}}{(३६०\times\text{क.बु.शी.भ} - ४\text{ क.कु.})}$$

$$= \frac{\frac{\text{अहर्गण} \times १२}{१२\times१५७७९१६४५०००}}{३६०\times१७९३६९९८९८४ - ४ \times १५७७९१६४५०००}$$

$$= \frac{\frac{\text{अहर्गण} \times १२}{१८९३४९९७४००००}}{६,४५७,३१९,६३३,००० - ६,३११,६६५,८००,०००}$$

$$= \frac{\frac{\text{अहर्गण} \times १२}{१८,९३४,९९७,४००,०००}}{१४५,६५३,८३३,०००} = \frac{\text{अहर्गण} \times १२}{१३०}$$

अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ। बु.शीघ्रोच्च अंश = ४×अहर्गण+$\frac{१२}{१३०}$× अह.। ब्रह्मगुप्त तथा लल्लाचार्य ने $\frac{१२}{१३०}$ अ = $\frac{६}{६५}$ अ. लिख दिया है जो भास्करोक्त ही है। यथा−

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मगुप्त मध्यमाधिकार ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त—

"कृतगुणितद्युगणांशाः पञ्चरस ६५ षट्बुधः शीघ्रम्॥४७॥"

लल्लाचार्य शिष्याधीवृद्धिद मध्यमाधिकार में—

"दिने दिने भागचतुष्टयं क्षिपेच्छरर्तुभिः षट्च बुध ध्रवेलवम्॥३५$\frac{१}{२}$॥"

तृतीय विधि— अंशात्मक बुध शी. दैनिक गति =

$$= \frac{\text{कल्पबु.शी. भगण} \times ३६०}{\text{क.कु.}}$$

$$= \frac{१७९३६९९८९८४ \times ३६०}{१५७७९१६४५००००} = \frac{१७९३६९९८९८४}{४३८३१०१२५०}$$

$$= ४^{\circ} + \frac{४०४५९३९८४}{४३८३१०१२५०} \times \frac{१२}{१२}$$

$$= ४^{\circ} + \frac{१२}{१३०} \text{ स्वल्पांतर से}$$

अतः अहर्गणोत्पन्न बुध शीघ्रोच्च = ४ × अहर्गण + $\frac{१२}{१३०}$ अहर्गण उपपन्न हुआ।

इदानीं गुरोरानयनमाह—

द्युमणिभिः कुनगैर्द्युगणो हृतो लवकलाः स्वमृणं ध्रवके गुरुः॥१८$\frac{१}{२}$॥

गुरु आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण के १२ वें अंशात्मक भाग में से अहर्गण का ७१ वाँ कलात्मक भाग घटाने से गुरु प्राप्त होता है। इसमें ध्रुव का योग करे।

उपपत्ति— गुरु की गति ५ कला से कुछ न्यून है और इसका बारह दिन में गति का एक भाग होता है। ५ कला से जितनी गुरु गति कम है वह संख्या एक में ७१ का भाग देने से ०°।०'।५०''।४२''' प्राप्त होती है। अतः ७१ दिन में एक कला घटाना सिद्ध होता है।

गुरु की एक दिन की कलादि गति = ४'।५९''।९'''।९''' आचार्य ने पूर्व में बताई है। यहाँ यदि गुरु की गति ५ कला मान लें तो ५ कला तथा आचार्योक्त गतिमान में अंतर ५' − (४'।५९''।९'''।९''') = ०'।०''।५०'''।५१''' होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यहाँ ५०′′′।५१′′′′ = $५०+\frac{५१}{६०}$ = $५०+\frac{१७}{२०}$ = $\frac{१०१७}{२०\times६०}$

विकला = $\frac{१०१७}{१२००\times६०}$ कला

= $\frac{१०१७}{७२०००}$ कला = $\frac{१}{७१}$ कला स्वल्पांतर से।

अतः अहर्गण संबंधि गुरु = (५ अहर्गण)′ − $(\frac{\text{अहर्गण}}{७१})'$

इसको अंशात्मक करने के लिये इन कलाओं को ६० से विभक्त किया।

अहर्गण सं. गुरु अंशादि = $\left(\frac{५}{६०}\text{ अहर्गण}\right)^{\circ} - \left(\frac{\text{अहर्गण}}{७१}\right)'$

= $\left(\frac{\text{अहर्गण}}{१२}\right)^{\circ} - \left(\frac{\text{अहर्गण}}{७१}\right)'$ उपपन्न हुआ।

विशेष— भास्कराचार्य ने जो सूत्र कहा है वह ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र से ही प्राप्त हो जाता है। ब्रह्मगुप्त का सूत्र अ.सं.गु. कलादि = (५ अहर्गण)′ − $\left(\frac{५\text{ अहर्गण}}{३५४}\right)'$ है।

इसके प्रथम भाग के अंश बनाने से तथा द्वितीय भाग में मात्र हार रखने से स्वल्पांतर से अ.सं.गु. अंशादि = $\left(\frac{५}{६०}\text{अहर्गण}\right)^{\circ} - \left(\frac{\text{अहर्गण}}{७१}\right)'$ भास्कराचार्योक्त उपपन्न होता है।

ब्रह्मगुप्त ब्रह्मस्फुट मध्यमाधिकार में—

''द्युगणेषु वधो लिप्ता जीवः कृतशरगुणैः शरकलोनः॥४७$\frac{१}{२}$॥''

इसी प्रकार **लल्लाचार्य** ने ब्रह्मगुप्तोक्त ही कहा है। शिष्याधीवृद्धिद मध्यमा—

''शरघ्नमब्ध्यक्षगुणांश वर्जितं कलादि जीवध्रुवके दिवागणम्॥३६॥''

अथ शुक्रचलानयनमाह—

ऋतुभिरक्षदिनैर्दशसङ्गुणात् फललवाः स्वमृणं ध्रुवके सितः॥१९॥

शुक्रशीघ्रोच्च आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण के दशगुणा के छठे भाग में से उसका

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१५५ वाँ भाग घटाने से प्राप्तफल में ध्रवाँक युक्त करने से शुक्र शीघ्रोच्च होते हैं।

उपपत्ति— शुक्र शीघ्रोच्च की एक दिन की गति आचार्य ने १°।३६'।७''।४४'''।३५''''। पूर्व में कही है। इस गति को यदि स्वल्पांतर से १°।४०' मान लेने से (१°।४०' – १°।३६'।७''।४४'''।३५'''') = ३'।५२''।१५'''।२५''' अधिक ग्रहण हो जाता है। अतः शुक्र शीघ्रोच्च गति के दो खण्ड बनाये—

प्रथमखण्ड = १°४०' तथा द्वितीय खण्ड = ३'५२''१५'''२५''''

$$\text{प्रथमखण्ड} = १°४०' = १ + \frac{४०}{६०} = १ + \frac{२}{३} = \frac{५}{३} \times \frac{२}{२} = \frac{१०}{६}$$

अंश हुए।

द्वितीय खण्ड = ३'५२''१५'''२५''''

$$= ३।५२।१५। \frac{२५}{६०} = ३।५२ + \frac{१८०+५}{१२\times६०} \text{ विकला}$$

$$= ३।५२ + \frac{१८५}{१२\times६०} = ३।५२ + \frac{३७}{१२\times१२} = ३।५२ + \frac{३७}{१४४}$$

$$= ३ + \frac{५२\times१४४+३७}{१४४\times६०} = ३ + \frac{७५२५}{१४४\times६०} \text{ कला}$$

$$= ३ + \frac{१५०५}{१४४\times१२} = \frac{३\times१४४\times१२+१५०५}{१७२८}$$

$$= \frac{६६८६}{१७२८\times६०} \text{ अंश} = \frac{६६८६\times१०}{१०३६८०\times१०} = \frac{१०}{\frac{१०३६८०\times१०}{६६८६}} = \frac{१०}{१५५}$$

$$\text{अतः शु. शीघ्रोच्च गति} = \frac{१०}{६} - \frac{१०}{१५५}$$

$$\text{अहर्गण सं. शु.शी.} = \left(\frac{\text{अहर्गण}\times१०}{६}\right)^\circ - \left(\frac{\text{अहर्गण}\times१०}{१५५}\right)^\circ;$$

आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

भास्कराचार्योक्त सूत्र से ही ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्रप्राप्त होता है। यथा–

$$\text{भास्करोक्त सूत्र} = \frac{१०^\circ}{६} - \frac{१०^\circ}{१५५}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$= \frac{१०}{६} \times \frac{८}{८} - \frac{२}{३१} = \frac{८}{\frac{६\times८}{१०}} - \frac{२}{३१} \times \frac{२}{२}$$

$= \frac{८^\circ}{५} - \frac{४^\circ}{६२}$ यहाँ द्वितीय खण्ड को कलात्मक बनाने के लिए ६० से गुणा किया।

$= \frac{८^\circ}{५} - \frac{४^\circ}{६२} \times ६०$ कला $= \frac{८^\circ}{५} - \frac{८^\circ}{६२} \times ३०$ कला

भास्कराचार्य तथा ब्रह्मगुप्तोक्त शु. शीघ्रोच्च गति में सबसे अंतिम अंक क्रमशः ३५'''' तथा ३१'''' है अतः यहाँ $\frac{८}{६२} \times ३०$ को $\frac{८}{६२}$ ही ग्रहण कर सकते हैं। अतः ब्रह्मगुप्तोक्त शु. शीघ्रोच्च $= \left(\frac{८ \text{ अहर्गण}}{५}\right)^\circ + \left(\frac{८ \text{ अहर्गण}}{६२}\right)'$ उपपन्न होता है। क्योंकि

$$\frac{८^\circ}{५} - \frac{८}{६२} \times ३० + \frac{८}{६२} - \frac{८}{६२} = \frac{८}{५} + \frac{८}{६२} - \frac{८\times३०}{६२} - \frac{८}{६२}$$

$$= \frac{८^\circ}{५} + \frac{८'}{६२} - \frac{८\times३१'}{६२} = \frac{८^\circ}{५} + \frac{८'}{६२} - ४$$

ब्रह्मगुप्त की संख्या ४'''' कम है अतः मात्र $\frac{८^\circ}{५} + \frac{८'}{६२}$ ही ग्रहण किया है।

अन्य प्रकार से ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त कर सकते हैं—

$$\text{शुक्रशीघ्रोच्च गति} = \frac{\text{शुक्र.शी.क.भगण}}{\text{क.कु.}} \times ३६०$$

$= \frac{७०२२३८६४६२}{४३८३१०१२५०} + \frac{८}{५} - \frac{८}{५}$ इत्यादि।

विशेष— अतः **ब्रह्मस्फुट मध्यमा. में ब्रह्मगुप्तोक्त** सूत्र इस प्रकार है—

"भागकलाः सितशीघ्रं विषयैर्वसवो द्विष्ट्याष्टौ॥४८॥"

अर्थात् शु. शीघ्रोच्च $= \text{अहर्गण} \frac{८}{५} + \text{अहर्गण} \frac{८}{६२}$

यही ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र **लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद्** के मध्यमा में कहा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अहर्गणः कुञ्जरताडितः पृथक्शरैर्द्विषष्ट्या च हृतोंऽशलिप्तिकाः।
सितस्य शीघ्रोच्चसमुद्भवे ध्रुवे क्रमेण देयाः सितशीघ्रसिद्धये॥३७॥"

इदानीं शनेरानयनमाह—

द्विघ्नो दिनौघः पृथगक्षभक्तो लिप्ता विलिप्ता ध्रुवके स्वमार्किः।।१९$\frac{१}{२}$॥"

शनि आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— द्विगुणित अहर्गण तथा उसका पृथक ५वाँ भाग शनि गति के क्रमशः कला तथा विकलादि होते हैं। इसमें ध्रुवाँक जोड़ने से शनि होता है।

उपपत्ति— शनि की गति का एक भाग दो कला है। अतः अहर्गण×२ = अहर्गण से उत्पन दो कला हुई तथा शेष गति का भाग ०''।२२'''।५१'''' है।

$$०''।२२'''।५१'''' = ०।२२।\frac{५१}{६०} = ०।२२।\frac{१७}{२०}$$

$$= ०।\frac{२२\times२०+१७}{२०} = ०+\frac{४५७''}{२०\times६०}\times\frac{२}{२}$$

$$= \frac{४५७\times२}{२४००} = \frac{२}{\frac{२४००}{४५७}} = \frac{२''}{५}$$ स्वल्पांतर से।

अतः अहर्गणोत्पन्न शनि = अहर्गण × २ + $\frac{२\text{ अहर्गण}}{५}$, आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

अन्य प्रकार से उपपत्ति—

$$\text{शनि की गति} = \frac{\text{कल्पशनिभगण}}{\text{क.कु.}}\times ३६०\times६०\text{ कला}$$

$$= \frac{१४६५६७२९८\times३६०\times६०}{१५७७९१६४५००००}$$

$$= \frac{१४६५६७२९८\times६०}{४३८३१०१२५००} = \frac{८७९४०३७८८००}{४३८३१०१२५००}$$

$$= २\text{ कला} + \frac{२७८३५३८०}{४३८३१०१२५००}\times\frac{२}{२}\times६०\text{ विकला}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$= २ \text{ कला} + \frac{२}{५}$ विकला स्वल्पांतर से।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट में आचार्योक्त सूत्र ही कहा है लेकिन उन्होंने दोनों भाग कला मान में कहे हैं। यथा–

"द्विगुणःकला दिनगणस्तिथिरामैर्द्वे कले च सूर्यसुतः॥४८$\frac{१}{२}$॥"

अर्थात् शनि = $(२ \text{ अहर्गण})' + \left(\frac{२}{३१५}\text{अहर्गण}\right)'$

इसकी उपपत्ति उपरोक्त प्रकारान्तर विधि से प्राप्त हो जाती है।

लल्लाचार्य ने भी ब्रह्मगुप्तोक्त ही शिष्याधिवृद्धिद ग्रंथ में कही है। यथा—

"कलाद्वयघ्नं द्युगणं शनिध्रुवे शरेन्द्रामांशयुतं विनिक्षिपेत्॥३७$\frac{१}{२}$॥"

इदानीं विधूच्चानयनमाह—

दिग्भिर्गजेभैश्च हृतो दिनौघः क्षेप्यो ध्रुवांशेषु भवेद्विधूच्चम्॥२०॥

चन्द्रोच्च आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— दिन की घटियों में १० का भाग देने से कला तथा दिनों में ८८ का भाग देने से विकलादि शेष चन्द्रोच्च प्राप्त होते हैं।

उपपत्ति— एक दिन की ६० घटियों में १० का भाग देने से ६ कला प्राप्त होती है तथा शेष चंद्रोच्च गति ०।०।४०।५३।५६, एक अंश में ८८ का भाग देने से प्राप्त हो जाती है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

प्रकारांतर से उपपत्ति—

चंद्रउच्च गति $= \frac{४८८१०५८५८}{४३८३१०१२५०}$, पूर्व गणनाओं के अनुसार

$$= \frac{१}{१०} + \frac{४८८१०५८५८}{४३८३१०१२५०} - \frac{१}{१०}$$

$$= \frac{१}{१०} + \frac{४८८१०५८५८० - ४३८३१०१२५०}{४३८३१०१२५००}$$

$$= \frac{१}{१०} + \frac{४९७,९५७,३३०}{४३,८३१,०१२,५००}$$

$$= \frac{१^{\circ}}{१०} + \frac{१^{\circ}}{८८} \text{ स्वल्पांतर से}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अतः अहर्गणोत्पन्न चन्द्रोच्च $= \frac{अ.^{\circ}}{१०} + \frac{अ.^{\circ}}{८८}$

विशेष— भास्कराचार्योक्त सूत्र को ही ब्रह्मगुप्त ने प्रकारान्तर से कहा है। यथा—

"नवभिर्भागः सागरखशून्यवेदैश्य चन्द्रोच्चम्॥४६॥" मध्यमा.

यह सूत्र चन्द्रोच्च गति $= \frac{अ.^{\circ}}{६} + \frac{अ.^{\circ}}{४००४}$ है।

उपरोक्त प्रकारांतर से भास्कराचार्य के सूत्र की जो उपपत्ति की गई है उसमें $\frac{१}{१०}$ के स्थान पर यदि $\frac{१}{६}$ जोड़ तथा घटा कर गणना की जावे तो ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र उपपन्न हो जाता है।

भास्कर तथा ब्रह्मगुप्त के चन्द्रोच्च गति मान समान ही हैं।

अथ पातानयनमाह—

ताडितः खदहनैर्दिनसङ्गः षट्कषट्कशरहृत् फलमंशाः।
स्वं ध्रुवे कुमुदिनीपतिपातो राहुमाहुंरिह केऽपि तमेव॥२१॥

पात आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण को ३० से गुणा करके ५६६ का भाग देने से प्राप्तफल अंशात्मक होता है। यह कुमुदिनी पति अर्थात् चंद्रमा का पात राहु होता है जिसको तम कहते हैं।

उपपत्ति—

$$\text{राहु} = \frac{\text{राहुकल्पभगण}}{\text{क.कु.}} \times १२ \text{ राशि}$$

$$= \frac{२३२३१११६८\times १२}{१५७७६१६४५०००} = \frac{२३२,३११,१६८}{१३१४६३०३७५००} \text{ राशि}$$

$$\text{अहर्गणोत्पन्नराहु} = \frac{\text{अहर्गण}}{५६६} \text{ राशि} = \frac{३० \text{ अहर्गण}}{५६६} \text{ अंश}$$

राशि को अंश बनाने के लिए ३० से गुणा करेंगे। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ। ३० अंश को ५६६ से विभक्त करने से ०°।३'।१०''।४८'''।४५'''' प्राप्त होता है। यह आचार्योक्त पात गति (श्लोक-१५ प्रत्य.) के स्वल्पांतर से आसन्न ही है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में इसी सूत्र को भिन्न प्रकार से कहा है, मध्यमाधिकार। यथा—

"द्युगणो नन्दशशाङ्कै शशिशून्यस्वरयमैश्च शशिपातः।
रविमण्डलान्तिकयुता मध्या भगणान्तगाः शेषाः॥५०॥"

ब्रह्मगुप्त ने पात = $\frac{\text{अहर्गण}}{१९} + \frac{\text{अहर्गण}}{२७०१}$ इस श्लोक में कहा है। उपरोक्त भिन्न से ही यह प्राप्त किया जा सकता है।

$$\text{राहु} = \frac{२३२३१११६८ \times १२ \times ३०}{१५७७९१६४५००००}$$

$$= \frac{२३२३११६८}{४३८३१०१२५०} + \frac{१}{१९} - \frac{१}{१९} = \frac{१}{१९} + \frac{१}{२७०३}$$

आचार्य ने लेकिन २७०३ के स्थान पर २७०१ ग्रहण किया है।

इदानीं प्रकारान्तरेण ग्रहानयनमाह—

लक्षहताद्दिनगणाच्छशिषट्कशक्र-
दिग्भि १०१४६१ र्नगाष्टनगभूतिथिभिः क्रमेण १५१७८७।
देवाष्टखाङ्कशशिभि १९०८३३ श्च रसाग्निवेद-
सिद्धैः २४४३६ खखाब्धिदहनाभ्रयमेन्दुभिश्च १२०३४००॥२२॥
भूपाब्धिलोचनरसैः ६२४१६ खखखाभ्रनन्द-
नन्दाश्विभि २९९०००० र्गगनखाभ्रगजाङ्कनागैः ८९८०००।
खाभ्राष्टषड्गजधृतिप्रमितै १८८६८०० श्च भक्ताद्
भागादिकानि हि फलानि रवे सकाशात्॥२३॥
विधोः फलं खाश्विगुणं विधेयं ग्रहध्रुवाः स्वस्वफलैः समेताः।
ते वा भवन्ति द्युचरा क्रमेण भागादिकः स्यात् फलमेव भानुः॥२४॥

प्रकारांतर से ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— दिनगण (कल्पकुदिन) को एक लाख से गुणा करके क्रमशः १०१४६१, १५१७८७, १९०८३३, २४४३६, १२०३४००, ६२४१६, २९९०००, ८९८००० तथा १८८६८०० से भाग देकर अंशात्मक (१२ राशि × ३० अंश = ३६० अंश) बनाने से क्रमशः रवि, चंद्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, चंद्रमन्द तथा चंद्रपात के ध्रुवाँक प्राप्त होते हैं। चन्द्रमा के फल के हार को २० से गुणा करने से ध्रुवाँक होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— यदि कल्प कुदिन में कल्प ग्रह भगण भाग (अंश) प्राप्त होते हैं तो अहर्गण में कितने होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक से पूर्व में बताये अनुसार ग्रह आनयन करते हैं। हार की संख्या बड़ी लेने के लिए जिससे शुद्धता अधिक हो, कल्प कुदिन को एक लाख से गुणा करने के लिए आचार्य ने कहा है। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो पूर्वोक्त त्रैराशिक से प्राप्त फल दशमलव में प्राप्त होता है जो भास्कराचार्यादि के समय में प्रणाली नहीं थी। अतः—

$$\text{सूर्य} = \frac{४,३२०,०००,०००\times १२\times ३०}{१५७७९१६४५०००० } = \frac{४३२००}{४३८३१०१२५०} = \frac{१}{१०१४६१}$$

$$\text{चंद्र} = \frac{५७७५३३०००००\times १२\times ३०}{१५७७९१६४५०००० } = \frac{५७७५३३}{४३८३१०१२५०} = \frac{१}{७५८९.३५}\times\frac{१}{२०}$$

$$= \frac{१}{१५१७८७}$$

$$\text{मंगल} = \frac{२२९६८२८५२२\times १२\times ३०}{१५७७९१६४५०००० } = \frac{२२९६८२८५२२}{४३८३१०१२५०} = \frac{१}{१९०८३३}$$

इसी प्रकार अन्य ग्रहों के लिए आचार्योक्त हार संख्यायें प्राप्त होंगी। इसी अध्याय में पूर्व श्लोकों में इसी प्रकार से आचार्य ने ग्रह आनयन के लिए ध्रुवक भिन्न-भिन्न प्रकार से क्रियायें करके अन्य पूर्ववर्ति आचार्यों की भांति ही प्राप्त किये हैं। यहाँ उन्हीं भिन्नों से एक भिन्न रूप में सीधा मान प्राप्त करके ध्रुवाँक पठित किये हैं। अतः पूर्व श्लोकों से ग्रह आनयन (अहर्गण द्वारा) तथा इन ध्रुवाँकों द्वारा ग्रह आनयन समान ही प्राप्त होंगे।

इदानीं दिनगतिसाधनमाह—

महीमितादहर्गणात् फलानि यानि तत्कलाः।
भवन्ति मध्यमा क्रमान्नभःसदां द्युभुक्तयः॥२५॥
समा गतिस्तु योजनैर्नभः सदां सदा भवेत्।
कलादिकल्पनावशान्मृदुद्रुता च सा स्मृता॥२६॥

इदानीमतुल्यत्वे कारणमाह—

कक्षाः सर्वा अपि दिविषदां चक्रलिप्ताङ्कितास्ताः
वृत्ते लघ्व्यो लघुनि महति स्युर्महत्यश्च लिप्ताः।
तस्मादेते शशिजभृगुजादित्यभौमेज्यमन्दा
मन्दाक्रान्ता इव शशधराद्धान्ति यान्तः क्रमेण॥२७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिनगति साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— एक दिन के अहर्गण में जितनी कला ग्रह की गति फल, ग्रह कल्प भगणकला को ग्रह कल्प सावन दिन से भाग देने से प्राप्त होती है, वह उसकी मध्यम गति होती है जिससे ग्रह सदा आकाश में भ्रमण करता है।

ग्रहों की कलात्मक गतियों में न्यूनाधिकता होने के कारण वे शीघ्र तथा मन्द गति से भ्रमण करते हैं, लेकिन उनकी योजनात्मक गति सदा बराबर होती है (पूर्व में कहे अनुसार)।

लघुवृत्त में भचक्र कला अर्थात् राश्यंश विभाग लघु तथा वृहद वृत्त में बड़ी होती है। इसलिये चंद्रमा अपनी लघु कक्षा का भ्रमण अल्प काल में करता है तथा शनि अपनी वृहद् कक्षा का भ्रमण अधिक समय में करता है। चन्द्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, गुरु तथा शनि क्रमशः मन्द गति से भ्रमण करते हुए इसी क्रम से आकाश में अपनी-अपनी कक्षा में रहते हैं। प्रत्येक ग्रह की कक्षा में चक्र कला संख्या तुल्य होती है।

उपपत्ति— चन्द्र कक्षा सबसे नीचे होने के कारण सबसे लघु है। इसकी वृत्ताकार कक्षा की एक कला १५ योजन के तुल्य होती है और शनि की कक्षा सबसे ऊपर होने से उसकी कक्षा की एक कला ५९२९ योजन होती है। एक योजन चार कोश के तुल्य होता है। अतः चन्द्रमा से क्रमशः ऊर्ध्व स्थित बुध, शुक्रादि की कक्षाओं में गति मन्द से मन्द क्रमश होती हैं।

ग्रह की योजनात्मक गति = ख कक्षा ÷ क. कुदिन होती है। इनके मान आचार्य ने पूर्व में कहे हैं। इस अनुपात में अंश और हर दोनों संख्यायें निश्चित (स्थिर) हैं। अतः प्रत्येक ग्रह के लिए इस अनुपात से योजनात्मक गति प्रमाण स्थिर (एक ही संख्या) रहता है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने इसके लिए आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"तुल्या गतिर्योजनवत्मैनैषां लिप्ता प्रकृत्या मृदुशीघ्रभावः।"

ग्रह किसी नक्षत्र के साथ पूर्व क्षितिज में उदित होने के पश्चात् दूसरे दिन नक्षत्र के पश्चात उदित होता है। क्योंकि नक्षत्र (तारा) की गति नहीं होती है। ग्रह का पश्चात् उदय उसकी कला उत्पन्न असु गति अनुसार होगा। अतः— भचक्र कला+ग्रह गति कला उत्पन्न असु = ग्रह स्पष्ट सावन दिन और

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रहमध्यम सावन = ६० घ + ग्रह गति कला या तुल्य असु
स्पष्ट सावन = ६० घ. + ग्रह गति कला उत्पन्न असु

विशेष— आचार्योक्त बात ही **वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त** में कही है। मध्यमाधिकार सप्तम अध्याय प्रमाणविधि। यथा—

"अल्पे हि वृत्ते तु भचक्रलिप्ताः स्वल्पा महत्यो महतीन्दुरस्यात्।
अल्पेन कालेन लघु स्ववृत्तं भ्रमत्यनल्पं महतार्कसूनुः॥२३॥
प्राणेन लिप्ताभमुदेति पूर्वे भूजे हरेऽस्तं व्रजति ग्रहश्च।
स्वभुक्तिलिप्ता युत चक्र लिप्ता भोगैस्समं तेन यतो जवत्वम्॥२४॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गोलाध्याय २१ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"लघवोऽल्पे राश्यंशा महति महान्तोऽल्पवृत्तमल्पेन।
पूरयतीन्दुर्महता कालेन महच्छनैश्चारी॥१४॥"
भगणस्याधः शनिगुरु भूमिजरविशुक्रसौम्यचन्द्राणाम्।
कक्षा क्रमेण शीघ्राः शनैश्चराद्याः कलाभुक्तया॥१३॥"

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के प्रत्यब्द शुद्धि अध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेवशर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(प) अधिक मासादिनिर्णयाध्याय

इदानीमहर्गण दौ विशेषमाह—

अभीष्टवारार्थमहर्गणश्चेत् सैको निरेकस्तिथयोऽपि तद्वत्।
तदाधिमासावमशेषके च कल्पाधिमासावमयुक्तहीने॥१॥

अधिक मासादिनिर्णयाध्याय—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण से अभीष्ट वार प्राप्त करने के लिए अहर्गण में तब एक जोड़ना अथवा घटाना चाहिये, यदि अहर्गण से अभीष्ट वार न प्राप्त हो। तिथि में भी इसी प्रकार करे। कल्पाधिमास और अवम से क्रमशः अधिमास शेष तथा अवमशेष में भी युक्त अथवा निरेक करना चाहिये।

उपपत्ति— वटेश्वर, श्रीपति आदि सभी आचार्यों ने अहर्गण से इष्ट दिन लाने के लिए अहर्गण में एक जोड़ने के लिए ही कहा है घटाने के लिए नहीं। क्योंकि अहर्गण आनयन में अभीष्ट तिथि के एक दिवस पूर्व तक का ही अहर्गगण ज्ञात किया जाता है। अतः अभीष्ट आगे का दिवस होने के कारण एक जोड़ने के लिए ही कहा गया है। लेकिन भास्कराचार्य ने एक जोड़ने के साथ एक घटाने के लिए भी आवश्यकता होने पर वार को मिलाने के लिए कहा है क्योंकि वार ही अहर्गण का नियामक है। ग्रह आनयन अध्याय के श्लोक-५ में "कोट्याहतैरङ्ककृतेन्दुविश्वै" इत्यादि में कहे अनुसार अधिमास अवशेष से चन्द्र-रवि आनयन में १२ गुणित तिथि को जोड़ना होगा, यदि अहर्गण में एक जोड़ा है तब, और यदि अहर्गण में एक घटाया जाता है तब १२ गुणित तिथि को वहाँ घटाना होगा। अधिमास शेष (एक माह तुल्य होने पर) में एक जोड़े तो कल्पाधिमास में एक युक्त करे और अवमशेष में जोड़े (एक तिथि तुल्य होने पर) तो कल्पावम में युक्त करे। जिस प्रकार यहाँ जोड़ा है उसी प्रकार घटावे।

अहर्गण आनयन में अभीष्ट दिन और चैत्रादि के अन्तर में जो स्पष्ट चान्द्रमास होते हैं उन्हीं का प्रयोजन होता है। वहाँ उनके अन्तर में गणना द्वारा उपलब्ध मास संख्या ही ग्रहण किये जाते हैं। अतः इष्ट दिन और चैत्रादि के बीच यदि स्पष्ट अधिमास पतित हो तब तज्जनित त्रुटि अहर्गण में अवश्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रहेगी। इष्ट तिथि अंत और सौरान्त के मध्य मासाल्प अधिशेष जो होता है वह कभी एक माह के तुल्य भी हो सकता है। यह अहर्गण आनयन की उपपत्ति से स्पष्ट हो जाती है।

यदि स्पष्ट अधिमास पतित है और अधिशेष यदि एक मास के तुल्य हो तब अधिमास साधन करने से जो अधिमास संख्या प्राप्त होगी उनमें यह एकमास तुल्य अधिशेष सम्मिलित रहने से साधित कि हुई अधिमास संख्या तथा अहर्गण शुद्ध ही होगा। अतः किसी भी प्रकार के (एक जोड़ने अथवा घटाने) संस्कार की आवश्यकता नहीं होगी।

यदि अधिशेष एक मास से न्यून हो तब अधिमास आनयन से जो गताधिमास संख्या प्राप्त हो उसमें एक जोड़कर अहर्गण साधन करना चाहिये, अन्यथा इष्टतिथ्यन्त – ३० तिथि के तुल्य तिथ्यन्त कालिक अहर्गण प्राप्त होगा जिससे अहर्गण में त्रुटि उत्पन्न होगी।

यदि स्पष्टाधिमास अपतित है तब यदि अधिशेष मासाप्ल हो तो अहर्गण शुद्ध ही होगा तथा इसमें किसी भी प्रकार का संस्कार नहीं करना चाहिये। यदि अधिशेष एक माह के तुल्य हो तो अधिमासानयन में जो गत अधिमास संख्या प्राप्त हो उनमें एक घटा कर अहर्गण का आनयन करना चाहिये, अन्यथा इष्टतिथिन्त+३० तिथि जितने तुल्य तिथ्यन्त कालिक अहर्गण प्राप्त होगा जिससे अहर्गण में त्रुटि उत्पन्न होगी।

इदानीं लघुदिनौघविषयमाह—

अथैवमेवाल्पदिवागणेऽपि सैकं निरेकं च तदावमाग्रम्।
तथाधिमासस्य तिथीर्गृहीत्वा लघुर्दिनौघः सुधिया प्रसाध्यः ॥२॥

लघुदिन (लघ्वहर्गण) में जोड़ना-घटना संबंधि विषय—

सूर्य-प्रभा टीका— लघ्व अहर्गण तथा तिथि में एक जोड़ना अथवा घटाना चाहिये, अवम शेष में भी एक जोड़ना अथवा घटाना चाहिये। अवम आनयन करने के लिए तिथि को एक से गुणा तथा ६४ से भाग देने के लिए कहा गया है। लघ्व अहर्गण में अभीष्ट दिवस तथा चैत्रादि के अंतर (मध्य) में यदि अधिमास होता है तो उसकी तिथियाँ (३०) को भी ग्रहण करके लघ्वहर्गण साधन करना चाहिये। यह लघुअहर्गण की रीति बृहदहर्गण में ग्रहण नहीं करनी चाहिये। वहाँ अधिमासानयन में लब्धि में वह युक्त होगा। लघ्व अहर्गण आनयन में अब्दान्त से आगे अधिमास आनयन नहीं करने के कारण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसमें वह अधिमास अवश्य जोड़ना होगा।

इदानीमन्यदाह—

स्पष्टोऽधिमासः पतितोऽप्यलब्धो यदा यदा वाऽपतितोऽपि लब्धः।
सैकैर्निरेकैः क्रमशोऽधिमासैस्तदा दिनौघः सुधिया प्रसाध्यः॥३॥
कृत्वा युतोनं क्रमशोऽधिशेषं दिनीकृतैः कल्पभवाधिमासैः।
सैकान्निरेकान्मधुयातमासांस्ततः प्रसाध्यौ खलु पुष्यवन्तौ॥४॥

अन्य—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण आनयन में जो अधिमास प्राप्त होते हैं वे मध्यमान से होते हैं। यदि स्पष्टमान से अधिमास पतित हो लेकिन अहर्गण साधन में लब्धि एक कम मिले या स्पष्ट मान से अधिमास अपतित हो और लब्धि अधिक मिले तब ऐसी स्थिति में अधिमास संख्या में एक जोड़कर या क्रमशः घटा कर अहर्गणसाधन करना चाहिये।

अधिशेष को इस प्रकार कल्पाधिमास में क्रमशः युत तथा घटा कर प्राप्तफल के दिन बनावे (इसमें ३० दिन का अंतर पड़ता है)। इससे चान्द्र सौर दिनों का साधन करे। इसी प्रकार चैत्रादि से मासों में एक युत या कम करके ग्रहण करके चांद्र सौर दिन का आनयन करे।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्त शेखर, वटेश्वर, ब्रह्मगुप्त आदि ने इन विषयों के बारे में कुछ भी नहीं कहा है। लघ्वअहर्गण का साधन भी लल्ल व वटेश्वर ने किया है।

इदानीं शुद्धौ विशेषमाह—

शुद्ध्यागमे त्वपतितोऽपि स लभ्यते चे-
च्छुद्ध्या तदा खदहनै ३० र्युतया दिनौघः।
एतद्विदन्ति सुधियः स्वयमेव किन्तु
बालावबोधविधये मयका निरुक्तम्॥५॥

शुद्धि में विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— शुद्धि आनयन में स्पष्टअधिमास यदि अपतित हो और लब्धि एक अधिक प्राप्त हो तो उसको ग्राह्य करे। उसको ग्रहण करने से शुद्धि ३० अधिक होती है। स्पष्ट अधिमास के ग्रह ज्ञात करने में उसको अहर्गण करने में योग करे। आचार्य कहते हैं कि यह बात बुद्धिमानों को स्वयं ही समझ में आ जाती है लेकिन बालबोध के लिए मैंने यहाँ कह दी है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीमधिमासस्य क्षयमासस्य च लक्षणमाह—

असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद्
द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित्।
क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्यात्
तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयञ्च च॥६॥

अधिमास क्षयमास के लक्षण—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस चांद्रमास में सूर्य संक्रान्ति नहीं होती वह अधिमास होता है यह बात प्रसिद्ध है और जब एक चांद्रमास में दो संक्रांति होती है वह क्षयमास होता है। इस प्रकार संक्रान्ति से उपलक्षित मास होता है। एक मास में दो संक्रान्ति होने से उस मास में दो मास हो जाते हैं। यह क्षय मास कदाचित कालान्तर में होता है। यह कार्तिकादि तीन मासों में ही होता है। क्षय मास के पूर्व तीन मास के अन्तर पर एक अधिक मास होता है और उसके तीन मास आगे एक और असंक्रांति मास अर्थात् अधिकमास होता है।

उपपत्ति— चान्द्रमास २९।३१।५० सावन दिनादि घटी पल मान का होता है तथा सौर मास ३०।२६।१७ सावन दिनादि घटी पल मान का होता है। इतने समय में रवि मध्यम गति से एक राशि का भोग करता है। जब रवि की गति ६१ कला होती है तब रवि एक राशि २९ दिन ३० घटी में भुक्त करता है, तब सौरमास चांद्रमास से अल्प होता है। रविमास की परमाल्पता २९।२०।४० दिनादि होती है। ६१ कला गति वृश्चिक आदि तीन राशियों में होती है। जब तक इतना अल्प सौर मास चांद्र मास से होता है तब एक-एक मास में दो रवि संक्रमण हो जाते हैं। अतः आचार्य ने कार्तिकादि तीन मास क्षयमास बताये हैं। पूर्व में जब भाद्रपद में संक्रान्ति नहीं होती तब रवि की अधिक गति के कारण मार्गशीर्ष में दो संक्रान्ति होती है। इसके बाद पुनः अल्प गति होने के कारण चैत्र में संक्रांति होती है। इस प्रकार वर्ष में जब एक क्षय मास हो तब दो अधिकमास होते हैं।

जब क्षय मास होता है तब स्पष्ट सौर मास स्पष्ट चान्द्र मास के मध्य में ही पड़ जाता है या पूरा हो जाता है तब प्रथम संक्रान्ति बिन्दु में अधिमास आनयन से अधिशेष सहित जो गताधिमास आवेगा उनमें अधिशेष बहुत अल्प होता है अतः क्षयमास पतन समय से पूर्व मासान्त में अवश्य ही अधिक मास पतन होगा। इसी प्रकार अन्त संक्रांन्ति बिन्दु में जो अधिशेष आता है वह एक मास से कुछ अल्प होता है, अतः आगे मास के समीप ही अधिकमास पतित होगा। अतः वर्ष में दो अधिक मास सिद्ध होते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— ब्रह्मसिद्धान्त में इसके लिए इस प्रकार कहा है—

"मेषादिस्थे सवितरि यो यो मासः प्रपूर्यते चान्द्रः।
चैत्राद्यः स ज्ञेयः पूर्तिद्वित्वेऽधिमासोऽन्त्यः॥"

वृद्ध वसिष्ठ सिद्धान्त में—

सवैषु मासेष्वधिमासकः स्यात् तुलादिषट्केऽपि च शून्यमासः।
संसर्पकः सर्वभवो हि मासः सर्वेऽपि चैते खलु निन्द्यमासाः॥म.६२॥

आर्षवचन—

एकस्मिन्नपि वर्षे चेद्द्वौ मासावधिमासकौ।
पूर्वो मासः प्रशस्तः स्यादपरस्त्वधिमासकः॥
एकस्मिन्नपि वर्षे यत्रेदं लक्ष्म दृश्यते उभयोः।
तत्रोत्तरोऽधिमासः स्फुटगत्या चायमर्केन्द्वोः॥

इदानीं गणकानां प्रतीत्यर्थं क्षयमासकालान् गतागतान् कतिचिद्दर्शयति स्म—

गतोऽब्ध्यद्रिनन्दै ९७४ र्मिते शाककाले
तिथीशै १११५ र्भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः १२५६।
गजाद्र्यग्निभूमि १३७८ स्तथा प्रायशोऽयं
कुवेदेन्दु १४१ वर्षैः क्वचिद्गोकुभिश्च १९॥७॥

क्षयमास का गतागत काल—

सूर्य-प्रभा टीका— ९७४ शक में क्षयमास पतित होने के पश्चात् १११५ शक तथा १२५६ शक एवं १३७८ शक में प्रायः १४१ वर्ष पश्चात् अथवा कभी-कभी १९ वर्ष पश्चात् क्षय मास पतित होता है।

उपपत्ति— अधिकमास पतन, वर्षादि अधिशेष के अर्थात् पहले-पहले के शुद्धि संज्ञक वर्षांत अधिशेष के कारण ही हो सकता है यदि वह शुद्धि न हो तो अधिमास संभव नहीं होगा। अतः जिन शुद्धियों में अधिमास पतन होता है उनमें से एक भास्कराचार्य ने २१ होने पर भाद्रपद मास अधिमास होता है यह माना है; और तब कार्तिकादि तीन मास क्षय मास संभव हो सकते हैं। जिस तरह की शुद्धि में अग्रिम वर्ष में उक्त अधिमास पतन होता है उसी तरह की शुद्धि फिर जिस वर्षांत में होती है उससे अग्रिम वर्ष में अवश्य ही उक्ताधिमास पतन से क्षयमास संभव होता है। किन्तु जितने वर्षों में पूर्ण अधिमास प्राप्त होता है उतने ही वर्ष का अन्तर उक्त शुद्धिद्वयनिष्ट दोनों वर्षांत में होता है, क्योंकि वर्ष के अन्त में अधिमास आनयन से गत अधिमास+शुद्धि = सावयव

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अधिमास। उससे आगे पूर्णाधिमास उत्पन्न करने वाले वर्षान्त में अधिमास आनयन से गताधिमास+एक, दो, तीन अधिमास+शु = ग.अ.मा.+शुद्धि = सावयव अधिमास।

स्पष्ट चान्द्र मासान्त पाति सावन में चन्द्र गतिफल शेष अधोलिखित हैं।

३०।५५।३३	३१।५८।५६	३१।५७।३२	३१।२८।३५	३१।२।५२
२९।३१।५०	२९।३१।५०	२९।३१।५०	२९।३१।५०	२९।३१।५०
१।२३।४३	१।३३।१६	२।५।४२	१।५६।४५	१।३१।२ अधिशेष

१।२३।४५ + १।३३।१६ +२।५।४२+१।५६।४५+१।३१।२ = ८।३२।१८ सर्वअधिशेष योग स्वल्पांतर से स्पष्टभाद्रमास में २९।३१।५० − ८।३२।१८ = २१।४।३२ शुद्धि होने से भाद्रपद अधिमास होता है जो भास्कराचार्य ने ग्रहण किया है।

कितने वर्ष में पूर्ण अधिमास होगा। इसके लिए बापूदेव शास्त्री के अनुसार—

$$\frac{\text{कल्पाधिमास} \times 1}{\text{कल्पवर्ष}} = \frac{1,५९३,३००,०००}{४,३२०,०००,०००} = \frac{५३११}{१४४००}$$

लब्धि ०, २, १, २, २, ६, १, १, ७, ३, २

आसन्नमान अधिमास $\left\{\frac{०}{१}, \frac{१}{२}, \frac{१}{३}, \frac{३}{८}, \frac{७}{१९}, \frac{४५}{११२}, \frac{५२}{१४१}, \frac{९७}{२६३}, \frac{७३१}{१९८२}, \frac{२२९०}{६२०९}, \frac{५३११}{१४४००},\right.$

इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक तुल्य वर्ष में भाज्य तुल्य अधिमास होता है। अतः जिस वर्ष में क्षयमास होगा उससे लेकर हर तुल्य वर्षों में पुनः पुनः क्षयमास संभव होता है। यहाँ प्राप्त प्रथम चार स्थूल मानों को त्याग देने से शेष १९,११२,१४१,२६३ आदि ग्रहण किया जा सकता है। भास्कराचार्य ने इनमें से १९ तथा १४१ केवल दो को ही ग्रहण किया है तथा २६३ को तथा ११२ को छोड़ दिया है।

बापूदेव शास्त्री—

आसन्नमानं भिन्नस्य ज्ञातुमिष्टं यदा तदा।
आदावंश हरौ कार्यो दृढ़ौ तौ च मिथो भजेत्॥
पृथक् फलानि विन्यस्य पङ्क्त्यां तेषामधः क्रमात्।
आद्यं फलं लवस्थाने हरे रूपं न्यसेत्ततः॥
द्वितीयलब्धिसंक्षुण्णं कल्पितांश युतं भुवा।
तथैव लब्ध्या भक्तं तं द्वितीयाप्तादधो न्यसेत्॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ततस्तृतीयलब्ध्या च द्वितीयांशहरौ हतौ।
युतावाद्यांशहाराभ्यां तृतीयाप्तादधो न्यसेत्॥
चतुर्थाप्तादधोप्येषं पञ्चमाप्तादिषु क्रमात्।
लब्ध्यन्तं न भवेद्यावत्तावत्कार्य विजानता॥
न्यनानि विषमाणि स्युः स्युः समान्यधिकानि वै।
एवमासन्न मानानि स्युः सूक्ष्माण्युत्तरोत्तरम्॥

इदानीमस्य प्रश्नमाह—

यत् प्रोक्तं फलकीर्तनाय मुनिभिर्वर्षेऽधिमासद्वयं
तत् प्रब्रूहि कथं कदा कतिषु वा वर्षेषु तत्संभवः।
एवं प्रश्नविदां वरेण गणकः पृष्टो विजानाति य-
स्तं मन्ये गणकाब्जकुड्मलवनप्रोद्बोधने भास्करम्॥८॥

प्रश्न-ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— क्षयमास-अधिक मास के फल कथन के लिए मुनियों ने जिस वर्ष में एक क्षयमास होता है उस वर्ष में दो अधिक मास होते हैं ऐसा कहा है। आचार्य ने यहाँ वे कब संभव होंगे, उसके बारे में गणकों को (इस) प्रश्न के उत्तर को जानने के लिए विस्तृत रूप से यहाँ पूर्व में बता दिया है।

विशेष– आर्षवचनः—

प्रायशो न शुभः प्रोक्तो ज्येष्ठश्चाषाढ़ एव च।
मध्यमौ चैत्रवैशाखावधिकोऽन्यः सुभिक्षकृत्॥
प्रायः कार्तिकमासस्य वृद्धिर्नेष्टेह तादृशी।
आत्यन्तिकी यदा सा स्याज्जगदौत्पातिकं तदा॥
देव कार्तिकमासोऽयं वर्धते नापि हीयते।
मासानामितरेषां वै वर्धनं प्राह नारदः॥
यां तिथिं समनुप्राप्य तुलां गच्छति भास्करः।
तयैव सर्वसंक्रान्तिर्यावन्मेषं न गच्छति॥

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के अधिकमासादि निर्णय अध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेवशर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(फ) भूपरिध्याद्यध्याय

इदाननीं भूपरिधिमाह—

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धय-४९६७
स्तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवो १५८१ऽथ प्रोच्यते योजनम्।
याम्योदक्पुरयोः पलान्तरहतं भूवेष्टनं भांश ३६० हृत्
तद्भक्तस्य पुरान्तराध्वन इह ज्ञेयं समं योजनम्॥१॥

अधिकमासादि का निर्णय—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने भूपरिधि ४९६७ योजन तथा उसका व्यास १५८१ योजन बताया है। याम्योदकपुर (रेखापुर) और स्वपुर (स्वस्थान) के अक्षांश के अंरत को परिधि से गुणा करके ३६० अंश से विभक्त करने से दोनों पुरों (स्थानों) के अंतर योजन होते हैं।

विशेष— भूपरिधि की उपपत्ति आचार्य गोलाध्याय में बतायेंगे तथा योजन लक्षण के बारे में गणित में कही है। लेकिन भूपरिधि के संबंध में यहाँ जो कहा गया है उसके लिए आचार्य कहते हैं कि यद्यपि पृथ्वी तो एक ही है लेकिन आर्यभटादि आचार्यों ने उसके नियामक पलांश को अन्य-अन्य प्रकार से दर्शाकर उसका प्रमाण ज्ञात किया है। उन्होंने छः, सात, आठ यव की अंगुल कनिष्ठिकादि भेद से अपने-अपने शास्त्रों में मान कहे हैं। याम्योत्तर पुर के पलांश वक्ष्यमाण प्रकार से ज्ञात करके उनके अन्तर का अनुपात करते हैं। यदि ३६०° परिधि में दक्षिणोत्तर मण्डल में इतना पलान्तर है तो भूपरिधि पुरान्तर में कितने होंगे? जो लब्धि हो उतने विभाग पुरान्तर के करते हैं फिर उसके एक विभाग के योजन ज्ञात कर लेते हैं। उस योजन के सदृश देशान्तर के ज्ञात कर लेते हैं।

आचार्य ने स्पष्ट कर दिया है कि सबके योजन की माप भिन्न होने से उनके (अन्य आचार्यों के) भूपरिधि मान तथा भूव्यास मान भिन्न-भिन्न आते हैं। इसी कारण से सूर्यसिद्धान्त, वटेश्वर सिद्धान्त, ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त आदि में इनके

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मान भिन्न-भिन्न दिये हैं। आचार्य ने लीलावती में अपने योजन की माप इस प्रकार कही है। लीावती अध्याय १ श्लोक ५-६ में ८ यव का एक अंगुल, २४ अंगुल = १ हाथ, ४ हाथ = एक दण्ड, २००० दण्ड = एक क्रोश, ४ क्रोश = एक योजन होता है।

श्रीपति ने अपनी माप अलग प्रकार से बताई है तथा उन्होंने रज, परमाणु, यूका आदि के द्वारा यव का माप बताकर शेष मापें भास्करोक्त ही कही है।

विशेष— श्रीपति सिद्धान्त शेखर के मध्यमाधिकार में—

"वेश्मान्तः पतितेषु भास्करकरेष्वालोक्यते यद्रजः
स प्रोक्तः परमाणुरष्टगुणितैस्तैरेव रेणुर्भवेत्।
तैर्बालाग्रमथाष्टभिः कचमुखैर्लिक्षा च यूकाष्टभिः
स्यात ताभिश्च तदष्टकेन च यवोऽष्टाभिश्च तैरङ्गुलम्॥६९॥
तैः स्याद् द्वादशभिर्विवस्तिरुदितो हस्तश्च ताभ्यां पुन-
श्चापं हस्तचतुष्टयेन धनुषां क्रोशः सहस्तद्वयम्।
एवं क्रोशचतुष्टयेन गदितं सांवत्सरैर्योजनं
कक्षा तद्ग्रहधिष्ण्य भूपरिधितो व्यासादि संसिद्धये॥७०॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. में मध्यमा. अध्याय ८ में भास्करोक्त प्रकार ही पुरान्तर योजन ज्ञात करना बताया है।

"तिर्यक् लेखा पत्तनपलनिजपलर्योविशेषशेषांशैः।
क्षितिपरिणाहो निघ्नश्चक्रांशहृदध्ववाहः स्यात्॥४॥"

ब्रह्मगुप्त ने भी ब्र. स्फु. सिद्धान्त में योजनान्तर आचार्योक्त ही कहा है।

ब्रह्मगुप्ने ने पृथ्वी की परिधि ५०० योजन कही है जबकि भूव्यास ७९०×२=१५८० या १५८१ ही ग्रहण किया है। वटेश्वराचार्य ने मध्यमाधिकार अध्याय १० में कहा है कि ब्रह्मगुप्त ने भूव्यासार्ध ७९० लिया है। यथा—

"त्यक्ते भूव्यासार्धे सहस्रप्रसंमिते गणितसौक्ष्म्यात्।
कर्तव्यं व्यासार्धं खनवमुनिरतस्त्वतिगणितजाड्यमिदम्॥२८॥"

और **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सि.** के गणिताध्याय में π का मान $\sqrt{१०}$ लिया है जो स्थूल है फिर भी उसे सूक्ष्म कहा है। यथा—

"व्यासव्यासार्धकृति परिधिफले व्यावहारिके त्रिगुणे।
तद्वगोभ्यां दशभिः सङ्गुणिताभ्यां पदे सूक्ष्मे॥१०॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् सूक्ष्म वृत्त परिधि $=\sqrt{\text{व्या}^2\times १०} = \sqrt{१०}\times$ व्यास होती है। इससे भूवृत्त परिधि $= २ \times ७९० \times \sqrt{१०} = २\times७९०\times३.१६२३ = ४९९६.३९९$ आता है जिसे आचार्य ने स्वल्पांतर से ५००० योजन ले लिया है। भास्कराचार्य ने $\pi = \frac{३९२७}{१२५०}$ सूक्ष्म मान कर भूव्यास १५८१ लेकर जो ब्रह्मगुप्तोक्त के आसन्न ही है भूपरिधि सूक्ष्ममान $= १५८० \times \frac{३९२७}{१२५०} = ४९६७$ कहा है। अतः भास्कर ने ब्रह्मगुप्त का ही भूपरिधि मान स्वीकार किया लेकिन ब्रह्मगुप्त का π का मान अशुद्ध होने से उसकी भूपरिधि माप अशुद्ध हो गई जिसे वटेश्वर ने भी गलत बताया। भास्कराचार्य ने उसे वटेश्वर के इंगित करने पर π का शुद्ध मान लेकर शुद्ध भूपरिधि मान स्वयं का ४९६७ कहा। π का मान $\frac{३९२७}{१२५०}$ भी वटेश्वर ने ही बताया है अपने **वटेश्वर सिद्धान्त** अष्टम अध्याय में। यथा—

"कृतनगदिग्भिर्भूमेर्व्यासः स्याद्योजनैर्भगोऽग्निहतः।
खशशर्कहृत परिधिः स्पष्टोऽतो दशकरणिका स्यात्॥३॥"

अर्थात् १०७४ योजन भूव्यास है, भूव्यास को ३९२७ से गुणा तथा १२५० से विभक्त करने से भूपरिधि मान होता है। यहाँ वटेश्वर ने भी $\sqrt{१०}$ को स्पष्ट भूपरिधि का मान कह दिया है। उन्होंने भूपरिधि $\frac{१०७४\times३९२७}{१२५०} = \frac{५३७\times३९२७}{६२५} = \frac{२१०८७९९}{६२५} = ३३७४ + \frac{४९}{६२५} = ३३७४$ ग्रहण करके शेष $\frac{४९}{६२५}$ को त्याग दिया।

$$\text{अतः } \frac{\text{भूपरिधि}}{\text{भूव्यास}} = \frac{३३७४}{१०७४} = ३ + \frac{१५२}{१०७४}$$

$$\text{या } \frac{\text{भूपरिधि}^2}{\text{भूव्यास}^2} = \left(३ + \frac{१५२}{१०७४}\right)^2 = १० \text{ स्वल्पांतर से}$$

अतः भूपरिधि = भूव्या. $\times\sqrt{१०}$ वटेश्वर ने π का शुद्ध मान ग्रहण कर लिया जबकि प्रारंभ में इसका शुद्धमान $\frac{३९२७}{१२५०}$ ही ग्रहण किया था लेकिन अंक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पटु भास्कराचार्य नें इसे पहचान कर ब्रह्मगुप्त तथा वटेश्वर एवं आर्यभट ($\pi = \frac{३९२७}{१२५०}$)तीनों के सिद्धान्तों तथा निष्कर्षों का उपयोग कर लिया।

श्रीपति ने सि.शे. में भी भूपरिधि ५००० योजन ही दी है तथा व्यास १५८१ दिया है। अध्याय २ श्लोक ९४।

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मध्य. में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"कुमध्यरेखाविषयं स्वपत्तनादवस्थितं तिर्यगवेत्य योजनम्।
स्वकीयतंत्रत्यपलांशकान्तरं खखामरघ्नं विभजेत् खषड्गुणैः॥४४॥
पलकृतिरथ यावद्वर्गयो यावद्वर्गतो योजनानां
पदमृजु निजधामक्ष्मार्धयोरन्तरं स्यात्।
ग्रहगतिहतमेतत् स्पष्टभूवृत्तभक्तं।
धनमृणमपरैन्द्र्योर्लिप्तिकादि क्षमार्धात्॥४५॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फ.सि. के गोलाध्याय २१ में अंतर योजन आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"अक्षांश कुपरिधिवधान्मण्डल भागातप्त योजनैर्विषुवत्" ॥९$\frac{१}{२}$॥

इदानीं भूपरिधिस्फुटीकरणं मध्यरेखां चाह—

लम्बज्यागुणितो भवेत् कुपरिधिः स्पष्टस्त्रिभज्याहृतो
यद्वा द्वादशसंगुणः स विषुवत्कर्णेन भक्तः स्फुटः।
यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः॥२॥

भूपरिधि स्फुटीकरण के लिए मध्य रेखा—

सूर्य-प्रभा टीका— भूपरिधि को स्वदेशीय लम्बज्या (केंद्र से ज्यार्ध की दूरी) से गुणा करके भूत्रिज्या से विभक्त करने से स्पष्ट भूपरिधि (स्वस्थान की) प्राप्त होती है।

अथवा भूपरिधि को १२ से गुणा करके विषुवकर्ण से विभक्त करने से भी स्पष्ट भूपरिधि प्राप्त होती है।

लंका, उज्जयिनी पर कुरुक्षेत्रादि प्रदेशों को स्पर्श करती हुई जो रेखा (सूत्र) दोनों ध्रुवों तक जाती है वह पृथ्वी की मध्य रेखा है।

विशेष— विषुव दिन पर मध्यान्ह में १२ अंगल शंकु के उच्च बिंदु

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(शीर्ष) स्थान से छाया (पलभा) अग्र बिंदु तक की कर्णवत दूरी विषुव कर्ण अथवा पल कर्ण कहलाती है।

श्रीपति ने मध्यान्ह रेखा इस प्रकार कही है। सिद्धान्त शे. मध्यमा :–

"लङ्का कुमारी नगरी च काञ्ची पानाटमद्रिश्च सितः षडास्यः।
श्रीवत्सगुल्मं च पुरी ततश्च माहिष्मतीचोज्जयिनी प्रसिद्धा॥९५॥
स्यादाश्रमोऽस्मान्नगरं सुरम्यं ततः पुरं पट्टशिवाभिधानम्।
श्रीगर्गराटं च सरोहितार्क्षस्थानेश्वरं शीतगिरिः सुमेरु॥९६॥
इतीव याम्योत्तरगां धराया रेखामिमां गोलविदो वदन्ति।
अन्यानि रेखास्थितिभाजि लोके ज्ञेयानि तज्ज्ञैः पुटभेदनानि॥९७॥"

सूर्य.सि. में भूपरिधि ज्ञान के लिए आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः॥५९$\frac{१}{२}$॥" मध्यमा.।

वटेश्वराचार्य ने भी यही सूत्र कहा है। अगले श्लोक की व्याख्या में देखें।

लल्लाचार्य ने भी शि.धी.वृ.ग्रंथ के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त विधि ही श्लो. ४३-४५ में बताई है।

दिवाकरघ्नं पलकर्णभाजितं स्फुटं महीगोलकवेष्टनं भवेत्॥४३॥
कुमध्यरेखाविषयं स्वपत्तनादवस्थितं तिर्यगवेत्य योजनम्।
स्वकीयतत्रत्यपलांशकान्तरं खखामरघ्नं विभजेत् खषड्गुणैः॥४४॥
पलकृतिरथ यावद्वर्गतो योजनानां पदमृजु निजधामक्ष्मार्धयोरन्तरं स्यात्।
ग्रहगतिहतमेतत् स्पष्टभूवृत्तभक्तं धनमृणपरैन्द्रयोर्लिप्तिकादि क्षमार्धात्॥४५॥"

उपपत्ति— आचार्य ने इसकी उपपत्ति गोलाध्याय में बताई है। अतः वहाँ देखें।

इदानीं देशान्तरमाह—

यत्र रेखापुरे स्वाक्षतुल्यः पलस्तन्निजस्थानमध्यस्थितैर्योजनैः।
खेटभुक्तिर्हता स्पष्टभूवेष्टनेनोद्धृता प्रागृणं स्वं तु पश्चाद् ग्रहे॥३॥

देशान्तर ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्य रेखा से स्वस्थान के अक्षांश पर जितने पल तुल्य योजन दूरी हो उतने देशांतर योजन पल को ग्रह गति कला से गुणा करके स्वदेशीय स्पष्टपरिधि से भाग देने से प्राप्त कलादिफल को मध्य रेखा देश से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पटु भास्कराचार्य ने इसे पहचान कर ब्रह्मगुप्त तथा वटेश्वर एवं आर्यभट ($\pi = \frac{३९२७}{१२५०}$)तीनों के सिद्धान्तों तथा निष्कर्षों का उपयोग कर लिया।

श्रीपति ने सि.शे. में भी भूपरिधि ५००० योजन ही दी है तथा व्यास १५८१ दिया है। अध्याय २ श्लोक ९४।

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मध्य. में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"कुमध्यरेखाविषयं स्वपत्तनादवस्थितं तिर्यगवेत्य योजनम्।
स्वकीयतंत्रत्यपलांशकान्तरं खखामरघ्नं विभजेत् खषड्गुणैः॥४४॥
पलकृतिरथ यावद्वर्गयो यावद्वर्गतो योजनानां
पदमृजु निजधामक्ष्मार्धयोरन्तरं स्यात्।
ग्रहगतिहतमेतत् स्पष्टभूवृत्तभक्तं।
धनमृणमपरैन्द्र्योर्लिप्तिकादि क्षमार्धात्॥४५॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फ.सि. के गोलाध्याय २१ में अंतर योजन आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"अक्षांश कुपरिधिवधान्मण्डल भागातप्त योजनैर्विषुवत्" ॥९$\frac{१}{२}$॥

इदानीं भूपरिधिस्फुटीकरणं मध्यरेखां चाह—

लम्बज्यागुणितो भवेत् कुपरिधिः स्पष्टस्त्रिभज्याहृतो
यद्वा द्वादशसंगुणः स विषुवत्कर्णेन भक्तः स्फुटः।
यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः॥२॥

भूपरिधि स्फुटीकरण के लिए मध्य रेखा—

सूर्य-प्रभा टीका— भूपरिधि को स्वदेशीय लम्बज्या (केंद्र से ज्यार्ध की दूरी) से गुणा करके भूत्रिज्या से विभक्त करने से स्पष्ट भूपरिधि (स्वस्थान की) प्राप्त होती है।

अथवा भूपरिधि को १२ से गुणा करके विषुवकर्ण से विभक्त करने से भी स्पष्ट भूपरिधि प्राप्त होती है।

लंका, उज्जयिनी पर कुरुक्षेत्रादि प्रदेशों को स्पर्श करती हुई जो रेखा (सूत्र) दोनों ध्रुवों तक जाती है वह पृथ्वी की मध्य रेखा है।

विशेष— विषुव दिन पर मध्यान्ह में १२ अंगल शंकु के उच्च बिंदु

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(शीर्ष) स्थान से छाया (पलभा) अग्र बिंदु तक की कर्णवत दूरी विषुव कर्ण अथवा पल कर्ण कहलाती है।

श्रीपति ने मध्यान्ह रेखा इस प्रकार कही है। सिद्धान्त शे. मध्यमा :–

"लङ्का कुमारी नगरी च काञ्ची पानाटमद्रिश्च सितः षडास्यः।
श्रीवत्सगुल्मं च पुरी ततश्च माहिष्मतीचोज्जयिनी प्रसिद्धा॥९५॥
स्यादाश्रमोऽस्मान्नगरं सुरम्यं ततः पुरं पट्टशिवाभिधानम्।
श्रीगर्गराटं च सरोहितार्क्षस्थानेश्वरं शीतगिरिः सुमेरु॥९६॥
इतीव याम्योत्तरगां धराया रेखामिमां गोलविदो वदन्ति।
अन्यानि रेखास्थितिभाजि लोके ज्ञेयानि तज्ज्ञैः पुटभेदनानि॥९७॥"

सूर्य.सि. में भूपरिधि ज्ञान के लिए आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः॥५९$\frac{१}{२}$॥" मध्यमा.।

वटेश्वराचार्य ने भी यही सूत्र कहा है। अगले श्लोक की व्याख्या में देखें।

लल्लाचार्य ने भी शि.धी.वृ.ग्रंथ के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त विधि ही श्लो. ४३-४५ में बताई है।

दिवाकरघ्नं पलकर्णभाजितं स्फुटं महीगोलकवेष्टनं भवेत्॥४३॥
कुमध्यरेखाविषयं स्वपत्तनादवस्थितं तिर्यगवेत्य योजनम्।
स्वकीयतत्रत्यपलांशकान्तरं खखामरघ्नं विभजेत् खषड्गुणैः॥४४॥
पलकृतिरथ यावद्वर्गतो योजनानां पदमृजु निजधामक्ष्मार्धयोरन्तरं स्यात्।
ग्रहगतिहतमेतत् स्पष्टभूवृत्तभक्तं धनमृणपरैन्द्रयोर्लिप्तिकादि क्षमार्धात्॥४५॥"

उपपत्ति— आचार्य ने इसकी उपपत्ति गोलाध्याय में बताई है। अतः वहाँ देखें।

इदानीं देशान्तरमाह—

यत्र रेखापुरे स्वाक्षतुल्यः पलस्तन्निजस्थानमध्यस्थितैर्योजनैः।
खेटभुक्तिर्हता स्पष्टभूवेष्टनेनोद्धृता प्रागृणं स्वं तु पश्चाद् ग्रहे॥३॥

देशान्तर ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्य रेखा से स्वस्थान के अक्षांश पर जितने पल तुल्य योजन दूरी हो उतने देशांतर योजन पल को ग्रह गति कला से गुणा करके स्वदेशीय स्पष्टपरिधि से भाग देने से प्राप्त कलादिफल को मध्य रेखा देश से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— वार प्रवृत्ति के लिए **शि.शे. में श्रीपति** ने आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"लंकोदग्याम्यसूत्रात् प्रथममपरतः पूर्वदेशे च पश्चा-
दध्वेत्थाभिर्वटीभिः सवितुरुदयतो वासरेशप्रवृत्ति।
ज्ञेया सूर्योदयात् प्राक् चरशकलभवैश्चासुभिर्याम्यगोले
पश्चात्तैः सोम्य गोले युतिवियुतिवशाच्चोभयोः स्पष्टकाल॥३६॥
सृष्टेर्मुखे ध्वान्तमये हि विश्वे ग्रहेषु सृष्टेष्विनपूर्वकेषु।
दिन प्रवृत्तिस्तदधीश्वरस्य वारस्य तस्मादुदयात्प्रवृत्ति॥"

इन्होंने आर्यभट के मत का खंडन किया है तथा ब्रह्मगुप्तोक्त को स्वीकार किया है।

भगवान मनु कहते हैं कि सृष्ट्यादि से पूर्व विश्व अंधकारमय स्थिति में रहने से वारप्रवृत्ति संभव नहीं थी क्योंकि उस समय वार के स्वामी ग्रह ही नहीं थे। अतः रात्रि में वार प्रवृत्ति होने के लिए कहना सही नहीं है। अतः रवि उदय काल से वारप्रवृत्ति मानना ठीक है।

"आसीदिदं तमोभूतम् प्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रत्तर्क्यमनाधृष्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥"

इसको श्रीपति ने पूर्व कथित श्लोक में स्पष्ट कर दी है।

पञ्चसिद्धान्तिका में वराहमिहिर ने वारप्रवृत्ति के संबंध में कहा है कि वार प्रवृत्ति के समय के संबंध में आचार्यों में बहुत मतभेद है। आर्यभट, सिंहाचार्य आदि अर्ध उदित सूर्यबिंब से दिनआरंभ काल मानते हैं। लाटदेव आदि आचार्य सूर्य के अर्धस्त काल से वार प्रवृत्ति मानते हैं। यवन राज रात्रि में दशमुहूर्त पश्चात् मानते हैं। लाटाचार्य ने अर्धरात्रि से वार प्रवृत्ति कही है।

"दिनवार प्रवृत्तिर्न समा सर्वत्र कारणे कथिता।
नेहापि भवति यस्माद्विप्रवदन्तेऽत्र दैवज्ञाः॥
द्युगणाद्दिन वाराप्तिर्द्युगणोऽपि च देश काल सम्बन्धः।
लाटाचार्येणोक्तो यवनपुरे चास्तगे सूर्ये॥
व्युदये लंकायां सिंहाचार्येण दिनगणोऽभिहितः।
यवना निशीह दशभिर्गतैर्मुहूर्तेश्च तद् गुरुणा॥
लंकाऽर्धरात्रसमये दिनप्रवृत्ति जागद चार्यभटः।
भूयः स एव चाकोदयात्प्रभृत्याह लङ्कायाम्॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वटेश्वर ने वटेश्वर सिद्धा. में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

मध्यमाधिकार श्लोक ६ से १३$\frac{१}{२}$ अध्याय ८ में—

"गणितागतशीतांशोः प्रग्रहकालं प्रसाध्य निजविषये।
प्रत्यक्षेण तदन्तरकालो देशान्तरं स्पष्ट॥६॥
तत्खेचरगतिघातात् षष्ट्याप्तकलोन संयुतः प्राग्वत्।
खचरः स्वघाम्नि मध्या मध्यमतिथिनाडिकास्वेवम्॥१०॥
षष्टिहृतः क्षितिपरिधिर्देशान्तरनाडिकाहतः स्पष्टा।
योजनसंख्याऽध्वमितौ फलमस्याः पूर्वत्खचरे॥११॥
षष्ट्यभ्यधिकोने संख्यागतकाले रेखापरपूर्वे द्रष्टा।
क्षितिजे देशान्तरघटिकाभिः प्राग्लेखाया इनोदये प्रश्चात्॥१२॥
वार प्रवृत्तिरुक्ता पश्चात्स्वार्कोदयात्पूर्वम्।
दक्षिणगोले पूर्व लेखायाश्चरदलेन वारादिः॥१३॥
उत्तर गोले पश्चाद्दिनोदयाच्चरदलेनैव॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में आचार्योक्त ही कहा है। यथा मध्य.—

"दिनवारादिः पश्चादुज्जयिनी दक्षिणोत्तरायाः प्राक्।
देशांतरघटिकाभिः पश्चात्प्राग् भवति रव्युदयात्॥३६॥"

सूर्यसिद्धान्त में वार प्रवृत्ति अर्धरात्रि से मानी है लेकिन इष्ट कालिक ग्रहसाधन आचार्योक्त ही बताये हैं।

महाभास्करीय में भास्कर प्रथम ने देशांतर काल चंद्रग्रहण से आचार्योक्त प्रकार ही से ज्ञात करना कहा है। यथा अध्याय २—

"सूर्योन्द्वोरकृतसमाध्वनोर्विधानात्
सम्प्राप्तस्थितिदलदृष्टकालयोश्च।
विश्लेषः स्फुटतर उच्यतेऽत्र कालो
गोलज्ञैर्विदित भटप्रणीततन्त्रैः॥७॥"

मुंजालाचार्य ने लघुमानस में देशान्तर ज्ञात करने के लिए आचार्योक्त कहा है।

"अवन्तीसमयाम्योदग्रेखापूर्वापराध्वना।
ग्रहगत्यंश षष्ट्यंशो हतो र्लिप्तारवृणं धनम्॥२०॥"

लल्लाचार्य ने भी शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय १६ में श्लोक ६ से ११ में देशांतर के लिए आचार्योक्त ही कहा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं ग्रहाणां बीजकर्माह—

खाभ्रखार्कैर्हताः कल्पयाताः समाः शेषकं भागहारात् पृथक् पातयेत्।
यत्तयोरल्पकं तद्द्विशत्या २०० भजेल्लिप्तिकाद्यं फलं तत् त्रिभिः सायकैः॥७॥
पञ्चभिः पञ्चभूभिः कराभ्यां हतं भानुचन्द्रेज्यशुक्रेन्दुतुङ्गेष्वृणम्।
इन्दुना दस्रबाणैः कराभ्यां कृतैर्भौमसौम्येन्दुपातार्किषु स्वं क्रमात्॥८॥

बीजकर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— कल्पगत वर्षों में बारह हजार से भाग देने से प्राप्त लब्धि तथा उसको हार अर्थात १२००० में से घटाने से प्राप्त शेष में (इन दोनों में) से जो अल्प हो उसको (२००) दो सौ से भाग देने से प्राप्त लब्धि को तीन तथा पांच से गुणा करने से प्राप्त कलात्मक फल को क्रमशः रवि तथा चंद्र में ऋण करे। चंद्र में किये गये तुल्य ही गुरु में ऋण करे तथा उसी फल को दुगुणा करके चन्दमन्दोच्च में ऋण करे, पंद्रह से गुणा करके शुक्र शीघ्रोच्च में ऋण करे, ५२ से गुणा करे बुध शीघ्रोच्च में धन करे। उसी फल को दो, एक और चार से पृथक-पृथक गुणा करके प्राप्तफल को क्रमशः पात, मंगल तथा शनि में धन करना चाहिये।

विशेष— भास्करोक्त बात को ही **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के मध्य. में कहा है। यथा—

"खखखार्कहताब्देभ्यो गतगम्याल्पाः खशून्ययमल हृताः।
लब्धं त्रिसायकहतं कलाभिरुनौ सदाऽर्केन्दु॥६०॥
शशिवत् जीवे द्विहतं चन्द्रोच्चे तिथिहतं तु सितशीघ्रे।
द्वीषु ५२ हतं च बुधोच्चे द्वि २ कु १ वेद हतं च पातकुजशनिषु॥६१॥"

लेकिन ब्रह्मगुप्त ने चंद्रपात, मंगल, शनि में भास्कराचार्य के विरुद्ध ऋण संस्कार करने के लिये यहाँ कहा है जबकि भास्कराचार्य ने इनके संस्कार धन करने के लिए कहा है।

उपपत्ति— क्रांतिवृत्त में मध्यम ग्रह से स्फुट क्रिया करने से वास्तविक स्फुट ग्रह नहीं प्राप्त होते। मध्यग्रह में बीजकर्म संस्कार करके उनसे स्फुट ग्रह प्राप्त करने की क्रिया करने से वास्तव स्फुट ग्रह प्राप्त होते हैं, ऐसा आगम ही प्रमाण है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारण नहीं कह सकते, यह भास्कराचार्य ने कहा है। आचार्य कहते हैं कि जिन कारणों से बीज कर्म की छः हजार वर्षों में परम वृद्धि होती है तथा फिर आगे के छः हजार वर्षों में परम ह्रास होता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है, उसका आगम ही प्रमाण है। इस प्रकार १२००० वर्षों में यह एक चक्र पूरा होता है। अतः अभीष्ट वर्ष तक जो कल्पारंभ से वर्ष गत हो चुके हों उनमें १२००० का भाग देने से बीज कर्म के पूर्ण चक्र प्राप्त होंगे तथा प्राप्त शेष यदि ६००० छः हजार से अल्प हो तो उपचित मान बीज कर्मफल होता है तथा ६००० से अधिक हो तो अपचीयमान होता है। यदि शेष ६००० से अल्प हो तब भी वह (१२०००–शेष) से अल्प ही होगा और यदि शेष ६००० से अधिक हो तब वह १२००० – शेष से अधिक ही रहेगा। अतः आचार्य ने १२००० – शेष से ही अनुपात करना ठीक समझ कर इसी से अनुपात करने के लिए श्लोक ७ में कहा है।

$$\text{अतः अनुपात } \frac{\text{परम उपचय फल} \times \text{शेष}}{६०००} = \frac{\frac{\text{परम उच्चफल}}{३०}}{२००} \times \text{शेष}$$

परम उपचय फल जो रवि आदि ग्रहों तथा पातादि के हैं उनमें ३० का भाग देने से क्रमशः ३, ५, ५, १५, २, १, ५२, २, ४ प्राप्त होते हैं। इन फलों को ग्रह, मन्दोच्चादि में आचार्योक्त प्रकार से संस्कार करने से पूर्व, आचार्य ने शेष को २०० से विभक्त करके इन अंकों से गुणा करने के लिए कहा है।

सिद्धान्त तत्त्व विवेक में श्री कमलाकर भट्ट ने बीज कर्म का खंडन किया है। मध्यमा. कक्षावर्णन में यथा–

"वेलहोनेऽन्तरं यत्तद्बीजं मत्वैककालजम्॥२$\frac{१}{२}$॥
कर्माहखचरं शुद्धं नाशयन्त्यधमा बलात्।
इत्थं संक्षेपतः प्रोक्तं विस्तरोऽस्यान्यशास्त्रतः॥२।३॥"

अथाधिकारोपसंहारे श्लोकद्वयं युक्तियुक्तमाह—

यद्ग्राम्यैरपि विस्तृतं बहुतरैस्तन्त्रं प्रकारान्तरै-
र्मन्दानन्दकरं तदत्र निपुणैः प्राज्ञैरवज्ञायते।
आख्याते पृथुता सगोलगणिते व्यर्था हि तस्मान्मया
संक्षिप्तं न च विस्तृतं विरचितं रञ्ज्यो हि सर्वो जनः॥९॥
रूपस्थानविभागतो दृढगुणच्छिद्भ्यां च संचारतो
नानाच्छेदविभेदभिन्नगुणकैर्नानाप्रकारेष्वपि।
आद्याद्यत्र विचित्रभङ्गिभिरभिप्रेतप्रसिद्धयै क्रिया
लघ्वी वाथ समा तदेव सुधिया कार्यं प्रकारान्तरम्॥१०॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपसंहार के लिए युक्तियुक्त दो श्लोक—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि यदि यहाँ कही युक्तियों, सिद्धांतों की अनेक छोटी-छोटी विधियों का उल्लेख करके ग्रंथ को विस्तृत कर दिया जाये तो विद्वान् लोगों को वह व्यर्थ लगेगा। ग्रंथ की महानता उसके विस्तार या आकार से नहीं होती इसी कारण से मैंने (भास्कराचार्य ने) अपने ग्रंथ को न अधिक विस्तृत किया है और न अधिक संक्षिप्त कहा है जिससे ज्ञानीजन तथा सामान्यजन दोनों के लिए यह आनन्ददायक हो सके। विषय को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न सरल विधियों का इस प्रकार से उपयोग किया गया है कि यह ग्रंथ पूर्व ग्रंथों की सीमा से अधिक न हो। इसमें अधिकांश रूप में अंश को इकाई रखा गया है तथा भिन्न के अंश तथा हर को उत्तम (Prime) रखा गया है। अंतरवेशन (Interpolation) तथा न्यूनीकरण की विधि अपनाई गई है। विभिन्न प्रकार के अंश तथा हर का उपयोग अनेक प्रकार से किया गया है। आचार्य कहते हैं उनके द्वारा रचित इस प्रकार के ग्रंथ की रचना करने में इन सब का उपयोग एक विदुषि द्वारा करना चाहिये, जो उन्होंने किया है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के भूपरिध्याद्यध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेवशर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

२

अथ स्पष्टाधिकारः

इदानीं स्पष्टगतिर्व्याख्यायते। तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह—

यात्राविवाहोत्सवजातकादौ खेटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम्।
स्यात् प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्या॥१॥

स्पष्टाधिकार—

सूर्य-प्रभा टीका— यात्रा, विवाह, जातक आदि के फल कथन स्फुट ग्रहों से किये जाते हैं, इस लिए आकाशीय ग्रहों की स्फुट क्रिया दृग्तुल्य गणितैक्य करने वाली होनी चाहिये जिसे आचार्य इस अध्याय में बता रहे हैं।

विशेष— जातक सारदीप, वसिष्ठ सिद्धान्त, ब्रह्मसिद्धानत, सिद्धान्त सुन्दर, दामोदरपद्धति तथा अन्यत्र भी सभी ने दृग्तुल्य ग्रह स्पष्ट करके ही उनका उपयोग करने की महत्त्वता स्थापित की है। यही बात आचार्य ने यहाँ अपने श्लोक में कही है।

इदानीमर्धज्याकरणं ताश्चाह—

अर्धज्याग्रे खेचरो मध्यसूत्रात् तिर्यक्संस्थो जायते येन तेन।
अर्धज्याभिः कर्म सर्वं ग्रहाणामर्धज्यैव ज्याभिधानात्र वेद्या॥२॥
तत्त्वाश्विनो नन्दसमुद्रवेदाश्चन्द्राद्रिषट्का गगनाङ्गनागाः।
पञ्चाभ्ररुद्रास्तिथिविश्वतुल्या आद्यैर्निरुक्ता नखबाणचन्द्राः॥३॥
नन्दावनीशैलभुवो दिगङ्कचन्द्रा हुताशग्रहपूर्णदस्राः।
तुरङ्गषट्काकृतयः कुरामसिद्धाः शराष्टेषुयमाः क्रमेणः॥४॥
गजाश्विभान्यङ्कशराष्टदस्रास्तुरङ्गसप्तग्रहलोचनानि।
अम्भोधिकुम्भ्यभ्रगुणास्तुरङ्गशैलेन्दुरामा रसभूतदन्ताः॥५॥
कुदन्तलोका द्वितुरङ्गदेवा गोऽभ्राब्धिलोकाः कुगुणाब्धिरामाः।
भुजङ्गलोकाब्धिगुणाः क्रमज्या अथोत्क्रमज्या मुनयोऽङ्कदस्राः॥६॥
रसर्तवो भूधरभूमिचन्द्रा द्व्यष्टेन्दवो भूरसलोचनानि।
कृतेषुरामाः शशिषट्कवेदा नन्दाद्रिबाणा गगनेन्दुशैलाः॥७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुणेषुनागा नगखाभ्रचन्द्राः कुशैलरुद्राः शरवेदविश्वे।
भुजङ्गनेत्रेषुभुवो नवेन्दुसप्तेन्दवोऽथो धृतिनन्दचन्द्राः ॥८॥
त्रिसूर्यनेत्राण्यमरत्रिदस्रा वस्वब्धितत्त्वानि नगर्तुभानि।
गोऽष्टाङ्कदस्त्रा दहनेन्दुदन्ता नागाग्निवेदाज्यभुजस्त्रिभज्या ॥९॥
स्याद्व्यासखण्डं खलु खण्डकानि प्रोक्तानि जीवाविवराणि तज्ज्ञैः ॥९$\frac{१}{२}$॥

अर्धज्याकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रहों को स्पष्ट करने के सभी कर्म करने के लिए ज्यार्ध का प्रतिपादन यहाँ करते हैं। ग्रह अपने वलय में भूगर्भ से देखने से जहाँ स्थित होता है उसको मध्य शब्द से उच्चारित करते हैं। वलय मध्य स्थान से वलय के गर्भगामि सूत्र को मध्यसूत्र कहते हैं। मध्यसूत्र से तिर्यक्स्थ ग्रह अर्धज्या अग्र पर स्थित होता है। अतः अर्धज्या से सभी कर्म होते हैं। ग्रह की कक्षा में भगण कला ३६०×६०= २१६०० होते हैं। इसके एक पाद चतुर्थांश में २४ ज्यायें होती हैं जिनके अंतर का नाम ज्याखण्ड है। इनकी उपपत्ति सूर्य सिद्धान्त, आर्यभट्ट आदि तन्त्रों में गोल में अनेक विधि से कही है।

आचार्य ने वृत्त का व्यास ३४३८ मान कर क्रमज्या, उनका अन्तर, उत्क्रमज्या तथा उनका अंतर को मान इन श्लोकों में कहे है। वृत्त के एक पाद में २४ ज्यायें, उत्क्रमज्या तथा उनके अंतर इस प्रकार कहे है—

क्रम	क्रमज्या	अंतर	उत्क्रमज्या	अंतर
१	२२५	२२४	७	२२
२	४४९	२२२	२९	३७
३	६७१	२१९	६६	५१
४	८९०	२१५	११७	६५
५	११०५	२१०	१८२	७९
६	१३१५	२०५	२६१	९३
७	१५२०	१९९	३५४	१०७
८	१७१९	१९१	४६१	११८
९	१९१०	१८३	५७९	१३१
१०	२०९३	१७४	७१०	१४३
११	२२६७	१६४	८५३	१५४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१२	२४३१	१५४	१००७	१६४
१३	२५८५	१४३	११७१	१७४
१४	२७२८	१३१	१३४५	१८३
१५	२८५६	११८	१५२८	१६१
१६	२६७७	१०७	१७१६	१६६
१७	३०८४	६३	१६१८	२०५
१८	३१७७	७६	२१२३	२१०
१६	३२५६	६५	२३३३	२१५
२०	३३२१	५१	२५४८	२१६
२१	३३७२	३७	२७६७	२२२
२२	३४०६	२२	२६८६	२२४
२३	३४३१	७	३२१३	२२५
२४	३४३८	०	३४३८	०

आचार्योक्त पठित इन अंकों में तथा सूर्य सिद्धान्तोक्त अंकों में कहीं-कहीं एक-एक का अन्तर दृष्टिगोचर होता है।

विशेष— ज्या मान के लिए विस्तृत वर्णन मेरे (टीकाकार) स्वकृत "ज्या तत्त्व विवेक" ग्रंथ का अवलोकन करें। भारतीय सिद्धान्तग्रंथों में पूर्वोक्त ही ज्यामान ग्रहण किये हैं। वटेश्वर ने एक पाद में ६६ ज्यामान पठित किये हैं। भिन्न-भिन्न वृत्त व्यास भी ग्रहण करके आचार्यों ने ज्यामान पठित किये हैं। लल्लाचार्य, आर्यभट (प्रथम एवं द्वितीय), सूर्यसिद्धान्त आदि में आचार्योक्त मान ही पठित किये हैं।

इदानीं ज्यासाधनमाह—

तत्त्वाश्विभक्ता असवः कला वा यल्लब्धसंख्या गतशिञ्जिनी सा॥१०॥
यातैष्यजीवान्तरशेषघातात् तत्त्वाश्विलब्ध्या सहितेप्सिता स्यात्।

ज्यासाधन—

सूर्य-प्रभा टीका— जितने चाप कला की ज्या साधित करनी हो उसमें २२५ से भाग देवें। यदि २२५ से अल्प कला हो तो वही ज्या होती है। भाग देने प्राप्त लब्धि संख्या तुल्य गत ज्या होती है। उस गत ज्या तथा ऐष्य ज्या के अन्तर को शेष कला से गुणा करके २२५ से भाग देने से प्राप्त लब्धि को गतज्या में जोड़ने से अभीष्ट कला की ज्या प्राप्त होती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— वृत्त के एक पाद में आचार्य ने २४ ज्या कही हैं जिसके प्रत्येक खण्ड ९०×६०=५४००÷२४ = २२५ कला के होते हैं। अभीष्ट चाप कला में एक खंड के मान २२५ से भाग देने से गतज्या खंड प्राप्त होता है। इस गत एवं ऐष्य खण्ड की ज्यामानों का अंतर २२५ कला के ज्या खंड के लिए होता है। अतः अभीष्ट शेष कला खंड के लिए कितना होगा? इस अनुपात से प्राप्त फल शेष कला की ज्या का मान होगा। इस फल को गत खण्ड की ज्या मान में युक्त करने से प्राप्तफल अभीष्ट कला की ज्या का मान होगा। जैसे ४७ अंश की ज्या का मान ज्ञात करने के लिए $\frac{४७\times६०}{२२५}$ कला = १२ लब्धि तथा १२० शेष। अतः १२ वें तथा १३ वें ज्या खंड के ज्या मान का अंतर १५४ है अतः $\frac{१५४\times१२०}{२२५}$ = ८३ स्वल्पांतर से। १२ वें गतज्या का मान २४३१ है। इसमें शेष खंड १२० कला की ज्या का मान ८३ युक्त करने से अभीष्ट ४७ अंश की ज्या का मान २४३१+८३=२५१४ होगा।

विशेष— आचार्योक्त विधि ही अन्य आचार्यों ने भी कही है।

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में **ब्रह्मगुप्त** स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"लिप्तास्तत्त्वयमहृता लब्धज्या ज्यान्तराहताच्छेषात्।
तिथिकृतिहृतात्फलयुता लब्धज्या ज्याग्रहणमेवम्॥१०॥"

सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

लिप्तास्तत्वयमैर्भक्ता लब्धं ज्यापिण्डकं गतम्।
गतगम्यान्तराभ्यस्तं विभजेत् तत्त्वलोचनैः॥३१॥
तदत्वाप्तफलं योज्यं ज्यापिण्डे गतसंज्ञके।
स्यात् क्रमज्या विधिरयमुत्क्रमज्यास्वपि स्मृतः॥३१॥

शिष्याधीवृद्धिद में लल्लाचार्य ने अध्याय दो में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

कलीकृते तत्र शराक्षिबाहुभिर्हते गतज्यासु गता च जायते।
गतागतज्यान्तरनिघ्नशेषकादिषुद्विदस्राप्तसमन्विता सती॥१२॥

वटेश्वर ने वटेश्वर सिद्धान्त में आचार्योक्त ही कहा है। स्पष्टाधिकार प्रथम अध्याय। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धनुषाहतास्त्वभीष्टा लिप्ता ज्या ज्यान्तराहताच्छेषात्।
धनुषाहतात्फलयुता ज्या कोटिज्या भुजज्या वा॥५५॥

अथ धनुःकरणमाह—

ज्यां प्रोज्झ्य तत्त्वाश्विहतोवशेषं यातैष्यजीवाविवरेण भक्तम्॥११॥
जीवा विशुद्धा यतमात्रतद्घ्नैस्तत्त्वाश्विभिस्तत् सहितं धनुः स्यात्॥$\frac{१}{२}$॥

ज्यामान से धनु ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— अभीष्ट ज्यामान में से जितनी ज्या के मान घट सकें उतने घटा कर प्राप्त शेष को २२५ से गुणा करके गत और गम्य ज्या के अंतर मान से भाग देने से प्राप्त लब्धि को शुद्ध ज्या खण्ड संख्या जो पूर्णरूप से घट चुकी है के २२५ से गुणनफल में युक्त करने से इष्ट ज्या का चाप होता है।

उपपत्ति— इष्ट ज्या में से जितनी ज्यायें घट सकें घटा देवें तथा शेष के लिए अनुपात करे कि यदि गतज्या और ऐष्य ज्या के अन्तर में २२५ कला का चाप होता है तो शेष में कितना होगा? प्राप्त लब्धि को पूर्व प्राप्त विशुद्धज्या खण्ड संख्या गुणित २२५ में युक्त कर देने से इष्ट ज्या का अभीष्ट चाप मान होगा।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में आचार्योक्त ही कहा है, स्पष्टा। यथा—

"ज्यां प्रोह्य शेषगुणितास्तत्त्वयमा ज्यान्तरोद्धृता लब्धम्।
क्षेप्यं विशुद्धजीवासंख्या तिथिकृतिवधे चापम्॥११॥"

सूर्यसिद्धान्त में भी आचार्योक्त ही कहा है, स्पष्टाधिकार। यथा—

"ज्यां प्रोज्झय शेषं तत्वाश्विहतं तद्विवरोद्धृतम्।
सङ्ख्यातत्वाश्विसंवर्गे संयोज्य धनुरुच्यते॥३३॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद् अध्याय २ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"विशोध्य जीवां शरदृग्गाहते हृतेऽवशेषे विवरेण जीवयोः।
विशुद्धजीवा यतिथा तदाहतैः शरद्विदस्रैः सहिता धनुर्भवेत्॥१३॥"

वटेश्वर ने वटेश्वर सिद्धान्त में स्पष्टाधिकार अध्याय प्रथम में आचार्योक्त कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्यां प्रोज्झयं वासरकृतिः शेषगुणा ज्यान्तराब्धि हति भक्ता।
फलयुक् स्याद्रसशर शुद्धसंख्या हतिश्चापम्॥५९॥

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ज्यां प्रोज्झय शेष निहता ररमाभोग्यान्तरेण संभक्ताः।
फललिप्ताढ्यः पिण्डकसंख्याररमाहतश्चापः॥१२॥"

इदानीं परमक्रान्तिज्यामाह—

अश्वाङ्कविश्वे १३९७ऽत्र जिनांशजीवा यद्वा सुखार्थं लघुखण्डकैर्ज्या॥१२॥
रूपाश्विनो विंशतिरङ्कचन्द्रा २१।२०।१९
अत्यष्टितिथ्यर्कनवेषुदस्राः १७।१५।१२।९।५।२
ज्याखण्डकान्यंशमितेर्दशाप्तं
स्युर्यातखण्डान्यथ भोग्यनिघ्नाः॥१३॥
शेषांशकाः खेन्दुहृता यदाप्तं तद्यातखण्डैक्ययुतं लघुज्या।
जिनांशजीवाङ्ककृताविपादाः ४८।४५ स्यादुत्क्रमज्यात्र विलोमखण्डैः॥१४॥
विशोध्य खण्डानि दशघ्नशेषादशुद्धलब्धं धनुरंशकाद्यम्।
विशुद्धसंख्याहतदिग्युतं स्याद् भोग्यात् स्फुटाज्ज्यातिपरिस्फुटात्र॥१५॥

परमक्रांतिज्या आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— २४ अंश (परमक्रांति मान) की ज्या का मान १३९७ होता है। आचार्य ने त्रिज्या का मान १२० मान कर दशदश अंश के दश ज्याखण्ड (के ज्या मान अंतर) क्रमशः २१।२०।१९।१७।१५।१२।९।५।२ कहे है अतः ज्यामान २१।४१।६०।७७।९२।१०४।११३।११८।१२० क्रमशः है। जिस (ग्रह या केन्द्र के) अंश की ज्या साधन करनी है उसके भुजांश बनाकर १० (दश) से विभक्त करने से प्राप्त गत खंड संख्या होती है तथा शेष भोग्य खंड होता है। शेष को भोग्य खण्ड के मान (ऐष्य तथा गत ज्या खण्ड की ज्याओं का अंतर)से गुणा करके दश से विभक्त करने से प्राप्तफल को गत ज्याखण्ड मान में युक्त करने से अभीष्ट लघुखंड की ज्या होती है। यहाँ वही विधि कही है जो पूर्व श्लोक में वृहद्ज्या के लिए कही है।

पूर्वोक्त प्रकार से (वृहद्ज्या के लिए) यहाँ भी इष्ट लघुखण्ड ज्या मान से उसका धनुसाधन करना कहा है जिसका धनु साधन करना हो उसमें से आद्यखण्ड से लेकर जितने ज्या खण्ड की ज्या घट सके उतने घटावें। शेष को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१० से गुणा करके गुणनफल को अशुद्ध ज्या खण्ड के ज्यामान से भाग देने से प्राप्त फल को शुद्ध खण्ड संख्या के दशगुणित में जोड़ देने से इष्टज्या का धनु होता है। इसकी विपरीत क्रिया करने से पुनः धनु से ज्या प्राप्त होती है।

उत्क्रमज्या का मान पृथक पूर्व में कहे अनुसार ज्ञात कर लेवे। लघुखण्ड में २४ अंश की ज्या का मान ४८।४५ होता है (लेकिन वास्तविक मान ४८।४८ होता है यहाँ आचार्य की अशुद्धि है)।

विशेष— भास्कराचार्य ने लल्लाचार्य के शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ की स्वकृत टीका की थी। लल्लाचार्य अपने ग्रंथ में लघुज्या, खण्डज्या तथा पिण्डज्या वृत्त की त्रिज्या १५० लेकर कही है तथा इनसे ग्रहों के स्पष्ट स्थान ज्ञात करना बताया है। अतः भास्कराचार्य ने भी उनसे प्रभावित होकर इन्हें इस ग्रंथ में कहा है जो पूर्वोक्त श्लोक में बताया है। लल्लाचार्य ने जो अपने ग्रंथ में कहा वह तेरहवें अध्याय में इस प्रकार है। यथा—

खण्डज्या–

षडविंशति २६ शरयमा २५ युगलोचनानि २४
रूपश्विनो २१ नवभुव १९ स्तिथय १५ स्त्रिनेत्राः ११
शैला ७ यमौ २ च कथितानि नव क्रमेण
ज्याखण्डकानि कथयाम्यथ पिण्डितानि॥२॥

पिण्डज्या—

अङ्गाश्विनः २६ कुविषया ५१ विषयस्वराः ७५ स्यु-
-स्तस्माच्चतुर्विरहितं ९६ च शतं शरेशाः ११५
व्योमाग्निशीतकिरणाः १३० शशिवेदचन्द्राः १४१
स्ताम्बेरमाब्धिशशिनो १४८ गगनेषुचन्द्रा १५०॥३॥

पंचसिद्धान्तिका में भी १२० त्रिज्या मान से ही ज्या का अनयन किया गया है। प्राचीन आचार्य प्रायः १२० त्रिज्या मान ही ग्रहण करते थे।

इदानीं भोग्यखण्डस्पष्टीकरणमाह—

यातैष्ययोः खण्डकयोर्विशेषः शेषांशनिघ्नो नखहृत् तदनम्।
युतं गतैष्यैक्यदलं स्फुटं स्यात् क्रमोत्क्रमज्याकरणेऽत्र भोग्यम्॥१६॥

भोग्य खण्ड स्पष्टीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— गत और ऐष्य खण्ड का जो अन्तर है उसकी ज्यासाधन करने के लिए उस अन्तर को दश से विभक्त करके जो शेष हो उस शेष के अंशों से गुणा करके २० (बीस) से विभक्त करने से प्राप्तफल (प्रथम)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को गत और ऐष्य खण्ड के योगार्ध (द्वितीय) फल में से घटाने से स्फुट भोग्य खंड होता है। (इसको शेष से गुणा करके दश से भाग देने से प्राप्तफल को गत खण्ड की ज्या में युक्त करने से क्रमज्या प्राप्त होती है।) उत्क्रमज्याकरण के लिए स्फुट भोग्य खंड के लिए युत करे।

$$\text{भोग्य खंड} = \frac{\text{ग खं} + \text{ऐ.खं}}{२} - \frac{(\text{ग खं} - \text{ऐ.खं.}) \times \text{शे.}}{२०}$$

$$\text{इष्ट अंशज्या} = \text{भो.खं.} \times \frac{\text{शे.}}{१०}$$

उपपत्ति— गत और ऐष्य खण्डों के योगार्ध से खण्ड की संधि खंड प्राप्त होता है। अतः अनुपात किया कि दश अंशों में इतना अन्तरार्ध प्राप्त होता है तो शेषांश में कितना होगा? इस प्रकार त्रैराशिक करने से फल गत और ऐष्य खण्ड का अंतर, शेष से गुणित तथा २० से विभक्त होगा $\frac{(\text{ग खं} - \text{भो.खं.}) \times \text{शेष}}{२ \times १०}$। इस फल को क्रमज्या प्राप्त करने के लिए गत और ऐष्य के योगार्ध में से घटाना होगा क्योंकि खण्डों का मान घट रहा है २१, २०, १९, ...९, ५, २ आदि और उत्क्रमज्या प्राप्त करने के लिए क्योंकि वह उपचित होती है अतः योग करना होगा। इससे भोग्य खण्ड प्राप्त होगा। इससे $\frac{\text{भो.खं.} \times \text{शे.}}{१०}$ (श्लोक १३ से १५ के अनुसार) करने से इष्ट ज्या प्राप्त होगी।

उदाहरण– (१) माना हमें २४ अंश की ज्या का साधन करना है। इसके लिए इसमें १० का भाग दिया तो लब्धि २ तथा शेष ४ हुआ। आचार्योक्त ज्या खंड तथा ज्या पिंड इस प्रकार है—

	प्र.	द्वि.	तृ	च.	पं.	ष	स	अ	नवम.
ज्याखंड	२१ –	२० –	१९ –	१७ –	१५ –	१२ –	९ –	५ –	२
ज्यापिंड	२१ –	४१ –	६० –	७७ –	९२ –	१०४ –	११३ –	११८ –	१२०

यहाँ देखा २४ अंश द्वितीय तथा तृतीय खण्ड के बीच स्थित है क्योंकि लघुज्या में प्रत्येक खण्ड १० अंश का है।

अतः गत खण्ड २० तथा ऐष्य खण्ड १९ का योग ३९ इसका आधा १९।३० अर्थात् $\frac{\text{ग खं} + \text{ऐ.खं}}{२} = \frac{२०+१९}{२} = १९।३०$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथा $\frac{\text{ग. खं} - \text{ऐ.खं}}{२०} \times \text{शेष.} = \frac{(२० - १९) \times ४}{२०} = \frac{१}{५} = ०।१२$

१९।३० में से ०।१२ घटाने से = १९।१८, यह भोग्यखंड हुआ।

$\frac{\text{शे.} \times \text{फल}}{१०} = \frac{४ \times १९।१८}{१०} = ७।४३$ यह शेष खण्ड की ज्या है।

इसको गतखंड की ज्या ४१ में युक्त करने से २४ अंश की ज्या का मान ४१+७।४३ = ४८।४३ प्राप्त होता है।

आधुनिक विधि से २४ अंश की ज्या का मान ४८।४८ होता है।

(२) माना ५ अंश की ज्या का साधन करना है। यह आचार्योक्त प्रथम खंड में स्थित है। अतः इसका ऐष्य खंड २१ हुआ क्योंकि ५ में १० का भाग देने से लब्धि ० तथा शेष ५ होगा। इसका पूर्व खंड से अंतर २१ – ० = २१ होगा। अब आचार्योक्त सूत्र से—

$\frac{(\text{ग. खं} - \text{ऐ.खं})}{२०} \times \text{शेष} = \frac{२१ \times ५}{२०} = ५।१५$

$\frac{\text{ग. खं} + \text{ऐ.खं}}{२} = \frac{० + २१}{२} = १०।३०$

दोनों का अंतर करने से १०।३० – ५।१५ = ५।१५ हुआ, यह भोग्यखंड हुआ। अब इस भोग्यखंड को शेष से गुणा करके १० से विभक्त करने से शेष खंड की ज्या प्राप्त होगी। अतः $\frac{५।१५ \times ५}{१०} = \frac{२६।५}{१०} = २।३७।३०$ शेष खंड की ज्या का मान प्राप्त हुआ। क्योंकि गत खंड से ऐष्य खंड की ज्या अधिक है अतः ५।१५ में इसको युक्त करने से लघुज्या ७।५२।३० हुई। यह बापुदेव शास्त्री द्वारा दिया गया उदाहरण है।

विशेष— भास्कराचार्य के इस श्लोक में कही गई विधि मूलतः ब्रह्मगुप्ताचार्य की है जिन्होंने विश्व इतिहास में प्रथम बार अन्तर्वेशन विधि (method of Interpolation to the second order) का उपयोग ब्र.स्फु.सि. के "उत्तर खण्डकाध्याय" ग्रंथ में किया है। बाल (Ball) की गोलीय खगोल शास्त्र (Spherical Astronomy) में यह विधि दी हुई है। **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के अध्याय २५ "ध्यानाग्रहोपदेशाध्याय" में पूर्वोक्त श्लोक इस प्रकार कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"त्रिशत्सनवरसेन्दुर्जिनतिथिविषया गृहार्धचापानाम्।
अर्धज्या खण्डानि ज्या भुक्तैक्यं सभोग्यफलम्॥१६॥
गत भोग्यखण्डकान्तरदलविकलवधाच्छतैर्नवभिराप्तैः।
लघुतिदलं युतोनं भोग्यादूनाधिकं भोग्यम्॥१७॥"

अर्थात् तीस में ९,६ तथा १ युक्त करने से जो ३९,३६,३१ प्राप्त होता है, यह २४।१९।५ ग्रह अर्धचाप का १५ वाँ ज्याखण्ड है। चाप कला को ९०० से भाग देने से प्राप्त भागफल तुल्य ज्यार्ध खण्ड के योग को ही ज्या का भुक्तैक्य जाने। इसका तथा भोग्यफल का योग इष्ट ज्या होती है। यहाँ इस प्रकार बताये स्फुट भोग्यखण्ड से ज्या साधन सूक्ष्म होता है तथा अन्य विधि से स्थूल होता है।

सूक्ष्म भोग्य खण्ड की युक्ति बताते हुए कहते हैं कि:—

भुक्त (गत) और भोग्य खण्ड के अन्तर को आधा करके उसके और शेष के गुणनफल को (९००) से विभक्त करने से प्राप्तफल को गतैष्यखण्ड के योग के आधे में जोड़ देवें, यदि योगार्ध भोग्य खण्ड से अल्प हो; और यदि अधिक हो तो उसे घटा देवें। क्रमज्या प्रकार में घटावें तथा उत्क्रमज्या प्रकार में जोड़ें।

इस प्रकार भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्तोक्त विधि ही कही। अंतर त्रिज्या के मान का है, भास्कराचार्य ने १२० तथा ब्र.गु. ने १५० लिया है।

इदानीं भोग्यखण्डस्य धनुःकरणाय स्फुटीकरणमाह—

विशोध्य खण्डान्यवशेषकार्धनिघ्नं गतैष्यान्तरमेष्यभक्तम्।
फलोनयुगेष्यगतैक्यखण्डं चापार्थमेवं स्फुटभोग्यखण्डम्॥१७॥

भोग्यखण्ड का धनु ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस का धनु करना हो उसमें से शुद्ध खंडों को घटाने से प्राप्त शेष के आधे से गतऐष्य खंडान्तर से गुणा करके ऐष्य खंड से विभक्त करे। प्राप्तफल को गत एवं ऐष्य खंड योगार्ध में से पूर्ववत घटाने से स्फुट भोग्य खंड का धनु बनाने के लिए फल प्राप्त होता है। इससे पूर्ववत क्रम से धनु बनावे।

उदाहरण— जैसे, माना कि ४८।४३ का धनु ज्ञात करना है। यह १९ तथा २० ज्या खंड के मध्य स्थित है। अतः विशुद्ध खण्ड २० के ज्यामान ४१ को इसमें से घटाने से ४८।४३ − ४१ = ७।४३ प्राप्त हुआ। इसके आधे ३।५२ को ऐष्य-गत के अंतर २०−१९ = १ से गुणा करने से ३।५२ आया। इसमें

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऐष्य खंड (अशुद्ध) १९ का भाग दिया तो फल ०।१२ आया। धनु करने के लिए इसको गतैष्य योगार्ध १९।३० में से घटाने से १९।१८ स्फुट भोग्य खंड प्राप्त हुआ। १९।३० तथा १९।१८ का अंतर ०।१२ है। इसमें ६० का भाग देने से $\frac{१२}{६०} = \frac{१}{५}$ अंश प्राप्त हुआ अर्थात् $\frac{१}{५} \times \frac{४}{४} = \frac{१ \times ४}{२०} =$ $\frac{(\text{ग. खं} - \text{ऐ.खं}) \text{ शेष}}{२०}$। अतः शेष ४ प्राप्त हुआ। यह ४ गतचाप द्वितीय ज्या खंड २० में युक्त करने से इष्ट चाप २४° अंश प्राप्त हुआ।

इदानीं केन्द्रमभिधीयते ततो धनर्णकल्पनां भुजकोटिकल्पनाश्च श्लोकचतुष्टयेनाह—

मृदूच्चेन हीनो ग्रहो मन्दकेन्द्रं चलोच्चं ग्रहोनं भवेच्छीघ्रकेन्द्रम्।
तुलाजादिकेन्द्रे फलं स्वर्णमेवं मृदु ज्ञेयमस्माद्विलोमं च शीघ्रम्॥१८॥
त्रिभिर्भैः पदं तानि चत्वारि चक्रे क्रमात् स्यादयुग्युग्मसंज्ञा च तेषाम्।
अयुग्मे पदे यातमेष्यन्तु युग्मे भुजो बाहुहीनं त्रिभं कोटिरुक्ता॥१९॥
ये दोःकोट्योः स्तः क्रमज्ये तदूने त्रिज्ये ते वा कोटिदोरुत्क्रमज्ये।
ये दोःकोट्योरुत्क्रमज्ये तदूने त्रिज्ये ते वा कोटिदोष्णोः क्रमज्ये॥२०॥
दोःकोटिज्यावर्गहीनौ त्रिभज्यावर्गौ मूले वा तयोः कोटिदोर्ज्ये।
एवं द्युज्याक्रान्तिजीवे मिथः स्तो दृग्ज्याशङ्कू यच्छ्रुतिर्वा त्रिभज्या॥२१॥

केन्द्र के नाम तथा उनकी धन ऋण कल्पना और भुज कोटि—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यम ग्रह में से मंदोच्च घटाने से मंद केन्द्र तथा शीघ्रोच्च में से मंद स्पष्ट ग्रह घटाने से शीघ्रकेंद्र होता है। तुलादि तथा मेषादि में केंद्र के रहने से मंद फल क्रमशः धन तथा ऋण होता है एवं शीघ्रफल इसके विपरीत ऋण तथा धन होता है। तीन-तीन राशि अंतर पर वृत्त में एक-एक पद होता है जिसकी क्रमशः अयुग्म तथा युग्म संज्ञा होती है। अयुग्म पद में गत चाप का भुज तथा युग्म पद में ऐष्य चाप का भुज, बाहु होता है। इसको तीन राशि (९० अंश) में से हीन करने से शेष कोटि होती है। धनुष का ज्या रूप क्रमज्या होती है। इन भुज तथा कोटि की ज्या को त्रिज्या में से हीन करने से उनकी कोटि तथा भुज की उत्क्रमज्या होती है। भुज और कोटि की उत्क्रमज्या को त्रिज्या में से घटाने से कोटि तथा भुज की क्रमज्या होती है। भुजज्या और कोटिज्या के वर्गों को त्रिज्या के वर्ग में से हीन करके मूल लेने से क्रमशः कोटिज्या तथा ज्या प्राप्त होती है। द्युज्या, क्रांतिज्या तथा दृग्ज्या शंकु को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पृथक-पृथक त्रिज्या में से घटाने से प्राप्त होती है।

उपपत्ति— समतल की हुई भूमि पर त्रिज्या तुल्य कर्कटक (गोला प्रकार) से एक वृत्त बनाकर उसकी परिधि पर ३६० अंश के समान भाग अंक अंकित करें। इसके मध्य में वृत्त के केंद्र से होती हुई पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण रेखायें खींच देवे। पूर्व बिन्दु से आरंभ करके सव्य क्रम से जहाँ ये दोनों रेखायें वृत्त को काटे वहाँ तक एक-एक पाद माने। इनकी क्रम से अयुग्म तथा युग्म संज्ञा होती है। प्रथम पद में पूर्व से लेकर वृत्त में अभीष्ट स्थान पर बिन्दु लगा देवे। इस बिंदु की पूर्वा पर रेखा से सीधी दूरी दोज्या (ज्या)होती है, और इस बिन्दु की याम्योत्तर (वृत्त मध्य) रेखा से सीधी दूरी कोटिज्या होती है। इनके धनु भुज-कोटि संज्ञक होते हैं। जैसे-तैसे यह बिन्दु आगे चलता है वैसे-वैसे दोर्ज्या उपचीय होती है तथा कोटिज्या अपचीय होती है तथा पदान्त बिंदु पर कोटि बिल्कुल समाप्त हो जाती है तथा दोर्ज्या त्रिज्या के तुल्य हो जाती है।

फिर द्वितीय पद में कोटी उपचीय होती है तथा ज्या अपचीय होती है तथा पदान्त बिंदु पर कोटि परम तथा ज्या समाप्त हो जाती है। अतः कहा गया है "अयुग्मे पदे यातमेष्यन्तु युग्म" इत्यादि। यहाँ ज्यारूप जो है उसको क्रमज्या (ज्या) भी कहते हैं तथा शर रूप में जो अंतर है वह उत्क्रमज है। बाण (शर) को व्यासार्ध में से घटाने से यह दूसरे भाग की ज्या तुल्य होती है। जीवा को व्यासार्ध में से घटाने से दूसरे भाग के बाण तुल्य फल होता है। वृत्त पर यह सब निम्नलिखित प्रकार से दर्शाया जा सकता है।

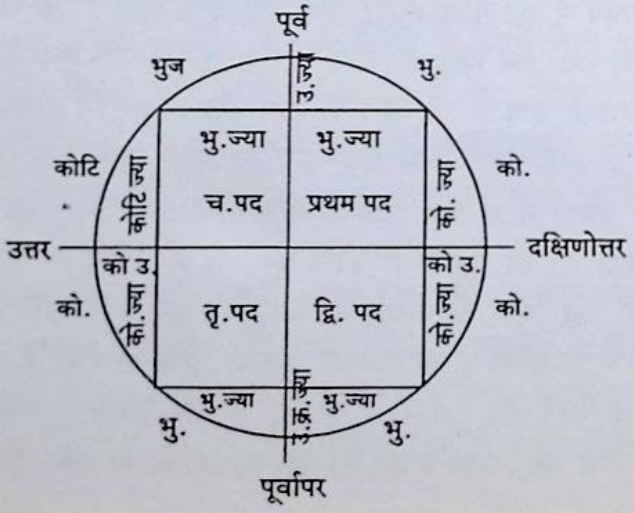

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूकेंद्र से मन्द प्रतिवृत्त और शीघ्र प्रतिवृत्त का जो दूरतम स्थान हैं वे क्रमशः मन्दोच्च तथा शीघ्रोच्च कहलाते हैं। मन्दोच्च से मध्यम ग्रह पर्यन्त मंद प्रतिवृत्त का चाप मन्दकेंद्र होता है और शीघ्रोच्च से मन्दस्पष्ट ग्रह पर्यन्त शीघ्र प्रतिवृत्त का चाप शीघ्र केंद्र होता है। मन्दोच्च, मध्यम ग्रह से अल्प गति से गति करने के कारण मध्यम ग्रह में से मन्दोच्च को घटाने से मन्द केंद्र कहा गया है। इसी प्रकार मन्दस्पष्ट ग्रह से, शीघ्रोच्च तीव्र गति से गति करने के कारण शीघ्रोच्च में से मन्दस्पष्ट ग्रह को घटाने के लिए कहा गया है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार अध्याय प्रथम में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"मध्याद्विशोध्य मन्दं शीघ्रोत्संशोध्य मध्यमं केन्द्रम्।
अयुजि गतयेययोर्युजि पदेऽन्यथा बाहुकोटिज्ये॥१२॥"

वटेश्वराचार्य ने स्पष्टाधिकार प्रथम अध्याय वटेश्वर सिद्धान्त में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

मन्दतुङ्गरहितो नभश्चरो मन्दकेन्द्रमथ खेचरोनितम्।
शीघ्रमत्र चलकेंद्रमुच्यते तत्पदानि भवनैस्त्रिभिस्त्रिभिः॥५१॥
अयुक् पदेस्तो गतयेययोर्गुणौ भुजाग्रसंज्ञौ युजि येययातयोः।
भुजाग्रभागोत्क्रममौर्विकोनिता त्रिमौर्विका वेतरमौर्विका भवेत्॥५२॥
त्रिज्या बाह्वग्रमौर्व्योः कृतिविवरपदं वेतरज्या प्रविष्टा।
बाह्वग्रज्या त्रिमौर्व्योर्विवरयुतिहतेर्मूलमाहुस्तयोर्वा॥५२$\frac{1}{2}$॥

खेचरो निजमृदुच्चवर्जितः खेचरेण च चलोच्चसूनितम्।
केंद्रयुक्तमृषिभिस्तदाह्वयं तदगृहैः खलु पदं त्रिभिस्त्रिभिः॥

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त ही कहा है। स्पष्टाधिकार—

"राश्यादिमृदुचलोच्चे विखगे केन्द्रे तदा ह्वये भवतः।
चगृहोनाभ्यधिके ते धनर्णसंज्ञे पदं भवेद् गगृहैः॥९॥
ओज पदे यातं दोर्गम्यं कोटिः समे व्यस्तम्।
दोः कोटिकला भक्ताः खरणै ज्यापिण्डको भवति॥१०॥
एष्यान्तरशेषकलाघातं खरणै भजेत् फलयुता ज्या॥१०$\frac{1}{2}$॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लल्लाचार्य ने शिष्यधीवद्धिद के रविचन्द्र स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"ग्रहो मृदूच्चेन चलोच्चमूनितं ग्रहेण केन्द्रं कथितं तदाह्वयम्।
त्रिभिस्त्रिभिः केन्द्रगृहैः पदं क्रमादयुग्मयुग्मे भुजकोटिसंज्ञिते॥१०॥
त्रिभाधिकं चक्रदलाद्विशोधिते षड्निते चक्रदलाधिके सति।
नवधिकेऽस्मिन् पतिते भमन्डलाद्भुजीकृतं शेषमुशन्ति तद्विदः॥११॥"

सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार में आचार्यो कहा है। इसमें केन्द्र की परिभाषा समान दी है मध्यम, मन्दोच्च, शीघ्रोच्च के घटाने का क्रम एक समान है जिससे मन्द और शीघ्र क्रियायें भी एक ही नियम से की गई हैं।

"ग्रहं संशोध्य मन्दोच्चात् तथा शीघ्राद् विशोध्य च।
शेषं केन्द्रं पदं तस्माद् भुजज्या कोटिरेव च॥२६॥
गताद् भुजज्या विषमें गम्यात् कोटि पदे भवेत्।
युग्मे तु गम्याद् बाहुज्या कोटिज्या तु गताद् भवेत्॥३०॥
अजादिकेन्द्रे सर्वेषां शैघ्र्ये मान्दे च कर्माणि।
धनं ग्रहाणां लिप्तादि तुलादावृणमेव च॥४५॥"

मुञ्जालाचार्य ने भी लघुमानस में सूर्य सिद्धान्त की भांति ही केन्द्र की समान परिभाषा दी है तथा भास्करोक्त ही कहा है, यथा—

"ग्रहः स्वोच्चोनितः केन्द्रंषड्धूर्धाधोऽर्धजो भुजः।
धनर्णं पदशः कोटी धनर्णर्णधनान्मिका॥११॥
ओजे पदे गतैष्याभ्यां बाहुकोटी समेऽन्यथा॥११$\frac{१}{२}$॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में स्फुटाध्याय में भास्करोक्त कहा है, स्पष्टा.–

"खेचरो निजमृदूच्चवर्जितः खेचरेण च चलोच्चमूनितम्।
केन्द्रमुक्तमृषिभिस्तदाह्वयं तद्गृहैः खलु पदं त्रिभिस्त्रिभिः॥१२॥"

इस प्रकार केंद्र की परिभाषा के भिन्न-भिन्न प्रकार से कहने के कारण आचार्यो ने मंद और शीघ्र फल का संस्कार भिन्न रूप में कहा है। लेकिन सभी का अभीप्राय समान होने से मंद तथा शीघ्रफल से संस्कृत ग्रह में कोई अंतर नहीं होता।

पंचसिद्धान्तिका का अध्याय १७ में सूर्यसिद्धान्तानुसार आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शीघ्रान्मध्यमहीनाद् (रा) शित्रितये गतैष्यदं (श)ज्ये।
भुजकोटी तत्परतः षड्(भिः) प (ति) ते स एव विधिः॥४॥
स्वपरिधिंगुणिते भ्ज्ञोज्ये 'खर्तुगुणै' (स्ते) विप (रिण) ते तच्च।
कोटिफलं व्यासार्धे मृगकर्क्यादौ चयापच (यम्)॥५॥
तद्भुज (कृति) योगपदैर्भा (ज्यं भुजजं 'ख) सूर्य'घ्नम्।
तच्चापार्धं मन्दे हानिधनं शीघ्रकेन्द्रवशात्॥६॥

अथ मन्दोपरिधीनाह—

मन्दोच्चनीचपरिधिस्त्रिलवोनशक्र १३।४०
भागा रवेर्जिनकलोनरदा ३१।३६ हिमांशोः।
खाश्वा ७० भुजङ्गदहना ३८ अमरा ३३ भवाश्च ११
पूर्णेषवो ५० निगदिताः क्षितिजादिकानाम्॥२२॥

मन्दपरिधी—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य की मंद परिधि १३।४०, चंद्र की ३१।३६, मंगल की ७०, बुध की ३८, गुरु की ३३, शुक्र की ११, शनि की ५० होती है।

उपपत्ति— ग्रह के यन्त्र से वेध करने से मध्यम ग्रह तथा मन्द स्पष्ट ग्रह के अंतर को मंदफल कहते हैं तथा परममंदफलज्या को मन्दान्त्यफलज्या कहते हैं। मन्दान्त्यफलज्या व्यासार्ध से मध्यम ग्रह को केंद्र मानकर जो वृत्त बनता है उसको नीचोच्च वृत्त कहते हैं। इसकी परिधि को ज्ञात करने के लिए त्रैराशिक से अनुपात करते हैं कि यदि त्रिज्या व्यासार्ध में ३६० अंश परिधि होती है तो मन्दान्त्यफलज्या व्यासार्ध में कितनी प्राप्त होगी? सूर्यादि ग्रहों के मन्दान्त्यफलज्या को वेध से ज्ञात करके आचार्य ने इस प्रकार अनुपात करके श्लोकोक्त उनके मन्द नीचोच्च वृत्त परिधि के मान कहे हैं।

आचार्य ने आगे श्लोक ३० की उपपत्ति में परम मंदफल सूर्य के लिए २°१०'३१'' कहा है और इसकी ज्या का मान १३०.४९ होता है। आचार्योक्त सूत्र के अनुसार सूर्य नीचोच्च वृत्त परिधि $= \frac{१३०.४९ \times ३६०^{\circ}}{३४३८} =$ १३.६६ =१३।४० आचार्योक्त परिधि प्राप्त होती है। इसी प्रकार चंद्र की परिधि के लिए आचार्य ने उसी श्लोक ३० की उपपत्ति में परम मंदफल ५°२'८'' कहा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। इससे चंद्र नीचोच्च वृत्त परिधि = $\frac{३०.७७\times३६०^{\circ}}{३४३८}$ = ३१.६० = ३।३६ आचार्य ने कही है।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त में समपद में रविमंद परिधि अंश = १४ तथा चंद्र के ३२ हैं, विषमपद में २० कला कम होते हैं जिससे सूर्य के मं.प. अंश = १३।४० तथा चंद्र के ३१।४० होते हैं। भौमादि के मं.प.अं.सम तथा विषम पद में भिन्न कहे हैं। खंडखाध्यायका तथा वराह के सूर्य सिद्धान्त में भास्कराचार्योक्त मन्द परिधि के आसन्न ही म.परिधि कही है। यथा सूर्य १४, चं.३१, बु. २८, गुरु ३२, शु. १४ तथा शनि ६०।

वराहोक्त सूर्य सिद्धान्त अध्याय १७ में—

शीघ्राख्योऽर्कोऽन्येषां भौमादीनां तु परिधयो द्विगुणाः।
पक्षस्वरा (श्च खं षड्यमाः) खकृताश्चकुजादीनाम्॥३॥

मुञ्जालाचार्य के लघुमानस की टीका में यल्ल ने ग्रहों के मंद परिध्यंश सूर्य १३°४१', चंद्र ३१°२१', मंगल ७०°, बुध ३८°, गुरु ३३°, शुक्र ११°, शनि ४८° कहे हैं। इन के द्वारा मुंजालाचार्य ने भुजज्या को लिप्ता में बदल कर जिन ग्रह भाजकों से विभक्त करके मंद फलांश प्राप्त करने के लिए कहा है, वे प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् मुंजालाचार्योक्त भाजकों से उपरोक्त ग्रह मंद परिध्यंश प्राप्त हो जाते हैं।

"सूर्य्याज्जिनाश्विनो (२२४) ऽगाङ्का (९७)
शरवेदाः (४५) खखेन्दवः (१००)।
द्वयङ्का (९२) खदन्ता (३२०) स्त्रिरसा (६३)
श्द्वेदाः कोट्यर्धसंस्कृताः॥१३॥

भुजो लिप्तीकृतश्चेदभक्तो ग्रह फलांशकाः॥१३$\frac{१}{२}$॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में भास्करोक्त ही मं.प. अंश कहे हैं। शनि के लिए ३० अंश कहा है। भास्कराचार्य के शनि के मं.प. अंश आर्यभट के आसन्न हैं।

श्रीपति ने ब्रह्मगुप्त अनुसार ही कहा है।

अथ भौमादीनां चलपरिधीमाह—

एषां चलाः कृतजिनास्त्रिलवेन हीना २४३।४०
दन्तेन्दवो १३२ वसुरसा ६८ वसुबाणदस्राः २५८।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्णाब्धयो ४०ऽथ भृगुजस्य तु मन्दकेन्द्र-
दोःशिञ्जिनी द्विगुणिता त्रिगुणेन ३४३८ भक्ता॥२३॥
लब्धेन मन्दपरिधी रहितः स्फुटः स्यात्
तच्छीघ्रकेन्द्रभुजमौर्व्यथ बाणनिघ्नी॥
त्रिज्योद्धृताशुपरिधिः फलयुक् स्फुटः स्या-
द्भौमाशुकेन्द्रपदगम्यगताल्पजीवा॥२४॥
त्र्यंशोनशैल ६।४० गुणितार्धयुतस्य राशे-
र्मौव्योद्धृताप्तलवहीनयुतं मृदूच्चम्।
भौमस्य कर्किमकरादिगते स्वकेन्द्रे
लब्धांशकैर्विरहितः परिधिस्तु शैघ्र्यः॥२५॥

भौमादि की शीघ्रपरिधि—

सूर्य-प्रभा टीका— कुज के शीघ्र परिधि अंश २४३°४०', बुध शीघ्रोच्च परिधि १३२°, गुरु शीघ्र परिधी ६८, शुक्र शीघ्रोच्च परिधी २५८° तथा शनि के शीघ्रपरिधि ४० होती है। शुक्र के मंद केंद्र की ज्या के दुगुणे को ३४३८ से भाग देने से प्राप्त फल को उसकी मंद परिधी में से घटाने से शुक्र की स्फुट मंद परिधी होती है। और शुक्र के शीघ्र केंद्र की ज्या को पांच से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्त फल को शीघ्र परिधी में युक्त करने से स्फुट शीघ्र परिधी होती है। मंगल के लिए प्रथमतः शीघ्रकेंद्र बना कर वह जिस पद में स्थित हो उसके गत और गम्य में से जिसकी ज्या अल्प हो उसकी ज्या को एक अंश के तृतीयंश (२० कला) रहित सात अर्थात् ६°४०' से गुणा करके ४५ अंश की ज्या २४३१ से भाग देने से प्राप्त लब्धि अंशादि को अलग रखे तथा इसको मकरादि केंद्र होने पर मंगल के मंदोच्च में जोड़ने से तथा कर्कादि केंद्र होने पर घटाने से स्फुट मन्दोच्च होता है। कुज के यहाँ पठित शीघ्र परिधी २४३।४० में से इस (अलग रखे) फल को सदैव घटाने से स्फुट शीघ्र परिधी प्राप्त होती है।

उपपत्ति— शुक्र के मंद परिधी अंश जो पूर्व श्लोक में ११ कहे हैंवे सम (युग्म) पद में होते हैं तथा अयुग्म (ओज) पद में ९ होते हैं। इनके अंतर से अनुपात करते हैं कि त्रिज्या परिधी में अन्तर २ अंश का प्राप्त होता है तो इष्ट दोर्ज्या में कितना होगा? प्राप्त फल को परिधी के अपचीयमान होने पर वर्जित करते हैं। उसकी शीघ्र परिधी युग्म पदांत में २५८ तथा ओज पदांत में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इससे पांच अधिक (२६३) होती है। इसके अंतर से अनुपात करने से प्राप्त फल को उसके उपचीयमान होने से धन करते हैं। भौम के चारों शीघ्र केंद्र पदांत में तथा गणितागत मंदोच्च एक रूप होता है। पद मध्य में एक अंश का तीसरा भाग रहित (२० कला) सात अंश अर्थात् ६°४०' से अल्प होता है। अतः अनुपात किया कि यदि ४५° (पदमध्य) शीघ्रकेन्द्र की ज्या, २४३१ में ६°४०' मंदोच्च का अन्तर होता है, तो इष्ट शीघ्र केंद्र पर में गत और गम्य में अल्प शीघ्र केंद्र ज्या में कितना होगा? यह अनुपात करने से जो फल आता है उसको मकरादि केंद्र में और कर्कादि केंद्र में गणितागत मंगल के मंदोच्च में युत और हीन करने से (फल उपचय तथा अपचय होने के कारण) स्फुट मंदोच्च होता है। आचार्य ने स्वकृत व्याख्या में कहा है कि इसका आगम ही प्रमाण है।

विशेष— भास्करोक्त प्रकार ही ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में कहा है। यथा–

मन्दोच्चनीचवृत्तस्य परिधिभागाः सितस्य विषमान्ते।
नवयुग्मान्ते रुद्राः ११ शीघ्रोजान्तेऽग्निरसयमला २६३॥३४॥
युग्मान्तेऽष्टशरयमा २५८ मन्दफलान्मध्यमः स्फुटो मध्यः।
शीघ्रफलात् स्पष्टोऽसकृदेवं स्वफलैर्ज्ञगुरुसौराः॥३५॥
बुधमन्दपरिधिभागा वसुरामा ३८ सुरगुरोस्त्रयस्त्रिंशत्।
रविजस्य शून्यरामाज्ञशीघ्रपरिधिद्विगुणचन्द्राः १३२॥३६॥
देवगुरोरष्टरसा ६८ भास्करपुत्रस्य शरगुणाः ३५ स्पष्टाः।
कुज शीघ्रकेन्द्रपदगतये याल्पज्या त्रिभागोनैः॥३७॥
सप्तभिरंशै ६।४० र्गुणिता दलाद्ध्यराशिज्ययाप्तांशैः॥
अधिकोनः कुजमन्दो मृगकर्क्यादौ स्फुटो भवति॥३८॥
तत्स्फुटपरिधिः खनगाः ७० शीघ्रस्फुटपरिधिराप्त भागोनाः।
वेदजिनास्त्रयंशोनाः २४३।४० स्पष्टीकरणं कुजस्यैवम्॥३९॥
मन्दफलं मध्येऽर्ध तच्छीघ्रफलस्य मध्यमे सकले।
मध्येऽसकृत् क्षितिसुतः स्पष्टो भुक्तिः स्फुटा ग्रहवत्॥४०॥

यहाँ ब्रह्मगुप्त तथा भास्करोक्त शनि शीघ्र फल में २ अंश का अंतर है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त मंगलादि की स्फुट विधि ही कही है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"भौमोनिते दिन करे पदयातयेयन्यूनज्यका युगहताऽङ्ककृतेन्द्र १४४९ भक्ता।
लब्धांशकैर्युत विहीनमसृङ्मृदूच्चं स्पष्टं भवेन्मकरकर्कटकादिकेंद्रे॥
नीचोच्चवृत्त क्षितिजस्य मान्दं स्फुटं वदन्तीह खशैल ७० भागान्।
त्र्यंशोनिताम्भोधिजिना २४३।४० श्चशैध्यमवाप्तभागै रहितं सदैव॥
मृदुफलदलमादौ मध्ये मेदनीजे तदनुचलफलस्याप्यर्धमस्मिन् विधेयम्।
पुनरपि परिपूर्णे मान्दशैध्येच मध्ये ह्यसकृदवनिसूनोरेवमाहुः स्फुटत्वम्॥"

श्रीपति ने यहाँ $\frac{२०}{३}$ गुणक ६°४०' तुल्य ही कहा है तथा ४५ अंश ज्यात्मक तुल्य भाजक के स्थान पर अपनी त्रिज्या मान के अनुसार २१४५ तुल्य भाजक को $\frac{५}{३}$ से अपवर्तित करके गुणक स्थान पर ४ तथा भाजक स्थान पर १४४९ कहा है।

अलग-अलग आचार्यों ने जो ग्रहों के मंद परिधि तथा शीघ्र परिधियों के अलग-अलग मान दिये हैं उसका कारण इनका समय के अनुसार बदलते रहना है। इस कारण से आचार्यों ने अपने-अपने समय के मंद तथा शीघ्र परिधि अंश अपने-अपने सिद्धान्त ग्रंथों में कहे हैं। अन्य आचार्यों के अपने-अपने ग्रंथों में दिये गये इनके भिन्न-भिन्न मान यहाँ व्यर्थ समझ नहीं दिये जा रहे हैं, क्योंकि ये अलग-अलग समय वर वेध से ज्ञात किये जाकर कहे गये थे।

इदानीं भुजकोट्यो फलानयनमाह—

स्वेनाहते परिधिना भुजकोटिजीवे
भांशैः ३६० हृते च भुजकोटिफलाह्वये स्तः।
त्रिज्योद्धृते च यदि वान्त्यफलज्यकाघ्न्यौ
त्रिज्योद्भवं फलमिहान्त्यफलस्य जीवा॥२६॥

भुज-कोटि फल आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह केंद्र की भुज कोटि जीवा को स्व परिध्यंश से गुणा करके ३६० का भाग देने से स्व परिधि में भुज कोटिफल प्राप्त होता है। अथवा त्रिज्या व्यासार्ध में इतनी केंद्र कोटिज्या होती है तो इतने अंत्यफलज्या व्यासार्ध में कितनी होगी? इस प्रकार प्राप्त दोनों फल तुल्य होते हैं। केंद्र भुज कोटिज्या को अन्त्यफलज्या से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने से त्रिज्योद्भवफल होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— प्रतिमंडल में जो ग्रह का केंद्र होता है वही नीचोच्च वृत्त में भी होता है। अतः प्रतिमंडल में ज्या कोटिज्या का अनुपात करने से नीचोच्च वृत्त में उसका परिमाण प्राप्त होता है। अतः यदि ३६० अंश में इतनी ज्या कोटिज्या होती है तो परिध्यंश में कितनी होगी? यह अनुपात करते हैं। त्रिज्या को पृथक्-पृथक् ग्रहों के मन्द शीघ्र परिधि अंशों से गुणा करके ३६० से विभक्त करने से प्राप्त फल अन्त्य फलज्या होती है।

विशेष— आर्यभट्ट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त सूत्र ही रविमन्द फल साधन के लिए कहा है। यथा—

क्ला भागा ढ्या लिप्ता रविमृदुपरिधिः स कोटिदोर्ज्याघ्नः।
चक्रांशहृतो दोः फलकोटिफले स्तो भुजफलस्य धनुः॥१४॥

वटेश्वर ने वटेश्वर सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार अध्याय ३ मे आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"परिधिगुणास्त्रिभजीवा भगणांशविभाजिताऽन्त्यफलजीवा।
नीचोच्चव्यासदलं शरासनं चास्य परमफलम्॥१२॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"तद्गुणिते ज्ये भांशैहृते फले कोटिफलयुता त्रिज्या।
आद्यन्तयोर्विहीना पदयोर्द्वितृतीययो कोटिः॥१४॥"

सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणांशविभाजिते।
तद्भुजज्याफलं धनुर्मान्दं लिप्तादिकं फलम॥३६॥"

महाभास्करीय में भास्कर प्रथम ने अध्याय ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्यात् स्फुटो मतः। तेनाहतेष्टकेन्द्रज्यां छित्वाऽशीत्या फलं विदुः॥३६॥"

लघुभास्करीय अध्याय २ में इसी प्रकार कहा है। "तेपरिध्याहतेऽशीत्या लब्धे कोटिभुजाफले॥३॥

भास्कर (प्रथम) ने इन दोनों ही ग्रंथों में लल्लाचार्य की भांति ८० से विभक्त करने को कहा है।

लल्लार्य ने भी शि.वृ.ग्रंथ के अध्याय ३ में भाजक स्थान पर ८० दिया है लेकिन ग्रहों की शीघ्र तथा मंद परिधि को $४\frac{१}{२}$ से विभक्त करके कहा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है यदि ऐसा न करे तो भाजक स्थान में ८० × ४$\frac{१}{२}$ = ३६० प्राप्त हो जाता है। लल्लाचार्य ने आर्यभटोक्त प्रकार ही से उसके तुल्य कहा है।

"दोर्ज्यावर्गविवर्जितत्रिभवनज्यावर्गमूलं भवेत् कोटिज्या भुजभाग वर्जितनवत्यं शोत्थजीवाथवा। स्पष्टस्वस्वगुणाहते खवसुभिर्दोः कोटिजीवे हृते स्यातां दोः फलकोटिसंज्ञकफलताभ्यां श्रुतिं साधयेत्॥३॥"

पंचसिद्धान्तिका अध्याय १७ में सूर्यसिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"एवं स्फुटमध्याख्यं शीघ्रात् संशोध्य पूर्वविधिनैव।
आदिवदा (ग्रं) चापं स्फुटमध्या (ख्ये) चयापच (यम्)॥९॥"

इदानीं कर्णानयनं प्रकारचतुष्टयेनाह—

स्वकोटिजीवान्त्यफलज्ययोर्यो योगो मृगादावथ कर्कटादौ।
केन्द्रेऽन्तरं तद्भुजजीवयोर्यद्वर्गैक्यमूलं कथितः स कर्णः॥२७॥
त्रिज्या तथा कोटिफलेन युक्ता हीना च तद्दोः फलवर्गयोगात्।
मूलं श्रुतिर्वान्त्यफलत्रिमौर्व्योर्वर्गैक्यराशेश्च तथा युतोनात्॥२८॥
त्रिभज्यया कोटिफलद्विनिघ्न्या कोटिज्यया वान्त्यफलद्विनिघ्न्या।
मूलं श्रुतिर्वा मृदुदोः फलस्य चापं बुधा मन्दफलं वदन्ति॥२९॥

प्रकारान्तर से कर्ण आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— मृगादि (मकरादि) केंद्र होने पर केंद्र कोटिज्या तथा अंत्यफलज्या का योग तथा कर्क्यादि केंद्र होने पर इनका अंतर स्पष्ट कोटी होती है और दोनों ही केंद्र होने पर इस स्पष्ट केंद्र कोटिज्या तथा भुजज्या के वर्गों के योग का मूल कर्ण होता है।

मकरादि में शीघ्र केंद्र हो तो त्रिज्या में शीघ्रकोटीफल का योग और कर्क्यादि में शीघ्र केंद्र हो तो इनका अन्तर स्पष्ट शीघ्र कोटि होती है। भुजफल तथा इस स्पष्ट शीघ्र कोटी के वर्गों के योग का मूल स्पष्ट शीघ्र कर्ण होता है।

त्रिज्या तथा अंत्यफलज्या के वर्गों के योग में, मकरादि केंद्र में त्रिज्या और कोटिफल के दुगुणे को जोड़ कर मूल लेने से तथा कर्क्यादि केंद्र में केंद्र कोटिज्या तथा अंत्यफलज्या के दुगुणे को घटा कर मूल लेने से कर्ण प्राप्त होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मंदफलज्या के चाप को ही ज्ञानि लोग मंदफल कहते हैं।

उपपत्ति— समतल की हुई भूमि पर एक बिंदु भू कल्पित करके उसको भूमि मान कर तथा इसको केंद्र के (=भ्) मान कर कर्कटक (गोला प्रकार) की सहायता से (मध्यकर्ण को व्यास मानकर) त्रिज्या तुल्य एक वृत्त बनावे यह वृत्त ग्रह की कक्षा मंडल है। इस पर ३६० अंश अंकित करे। मेषारंभ तथा ग्रह के उच्च बिंदु उ' को इसमें चिन्हित (इंगित) करे। भूमि तथा उच्च बिंदु को एक सीधी रेखा से मिला देवे यह उ'भू उच्च रेखा होती है। भू बिंदु से ऊपर अंत्यफलज्या तुल्य दूरी पर उच्च बिंदु की ओर एक बिंदु झ लेकर उसको केंद्र मान कर त्रिज्या तुल्य गोला प्रकार से एक प्रतिमंडल (वृत्त) बनावें, इसका नाम शीघ्र प्रतिवृत्त है। यह वृत्त उच्च रेखा पर जहाँ संपात करे उसको प्रतिमंडल में शीघ्रोच्च बिंदु उ जाने। वृत्त के नीचे के भाग में जहाँ ऊर्ध्वाधर रेखा लगती है वह बिंदु नी शीघ्र नीच है। भूकेंद्र से कक्षा वृत्त के उर्ध्वाधर व्यास रेखा के ऊपर लंबवत रेखा क॑ ब॑ कक्षामध्यगत तिर्यक रेखा है। इसी प्रकार प्रतिमंडल के केंद्र झ से इस रेखा के समानान्तर (चित्र में बताये अनुसार) तथा ऊर्ध्वाधर व्यास रेखा के ऊपर लंनवत रेखा क ब खींचे। इन दोनों तिर्यक रेखाओं के मध्य सर्वत्र अंतर अन्त्यफलज्या तुल्य होता है।

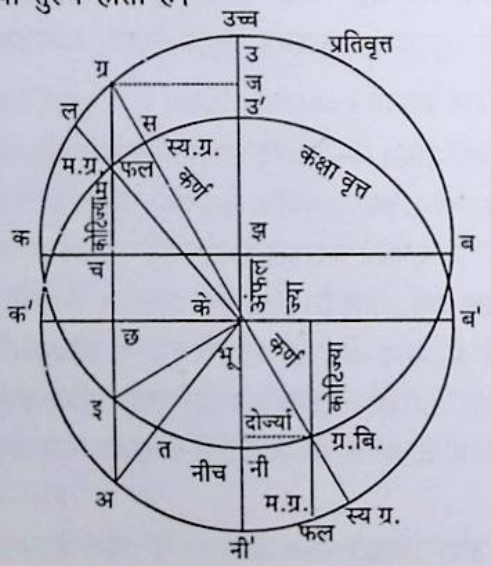

ग्रह ग्र तथा उर्ध्वाधर उच्च रेखा का अंतर ग्र ज दोर्ज्या है तथा ग्रह तथा तिर्यक रेखा का अंतर ग्र च कोटिज्या है। प्रतिमंडल में स्थित ग्रह तथा भू बिंदु को मिलाने वाली रेखासूत्र ग्रभू कर्ण है। यह कर्ण सूत्र जहाँ पर कक्षा वृत्त को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स बिन्दु पर काटता है वहाँ स्फुट ग्रह होता है। कक्षा मंडल में स्फुट ग्रह तथा मध्यम ग्रह **म** का अंतर **मस** फल हेाता है। जहाँ मध्यम ग्रह से स्फुट ग्रह आगे स्थित होता है वहाँ पर यह फल मध्यम ग्रह में धन तथा पीछे स्थित होने पर उसमें ऋण करने से ग्रह स्थान प्राप्त होता है।

कक्षा वृत्त तथा प्रतिवृत्त में तिर्यक रेखाओं का अंतर अन्त्यफलज्या होता है। प्रतिमंडल में कोटिज्या **ग्रच** अंत्यफलज्या के अग्रभाग पर होती है। मकरादि केंद्र में इनका योग स्फुट कोटि **द्दग्र** होता है तथा कर्क्यादि केंद्र में कोटिज्या अंत्यफलज्या के नीचे स्थित होती है। अतः इनका अंतर करने से स्फुट कोटि होती है। स्फुट कोटी के मूल द्द से भू बिंदु जितने अंतर **द्दके = ग्रज** पर होती है वह भुजज्या तुल्य होती है। अतः इन भुज तथा कोटि के वर्गों के योग का मूल कर्ण होता है। यह उपपन्न हुआ।

श्लोक २६ की उपपत्ति—

चित्र में उ ग्र = उ'म = केंद्रांश; के छ = ज्या केंद्रांश; म छ = कोज्या केंद्र तथा के म = त्रिज्या। त्रिभुज के म छ तथा म ग्र ल सजातीय हैं।

$$\therefore \frac{\text{छ के}}{\text{के म}} = \frac{\text{ग्र ल}}{\text{म ग्र}} \text{ अतः ग्र ल} = \frac{\text{छ के} \times \text{म ग्र}}{\text{के म}}$$

$$\text{अतः भुजफल} = \frac{\text{ज्या केंद्र} \times \text{ज्या अंत्यफल}}{\text{त्रिज्या}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(१)$$

यह श्लोक २६ उपपन्न हुआ।

$$\text{और } \therefore \frac{\text{म छ}}{\text{के म}} = \frac{\text{म ल}}{\text{म ग्र}} \text{ अतः मल} = \frac{\text{म छ} \times \text{म ग्र}}{\text{के म}}$$

$$\text{अतः कोटिफल} = \frac{\text{कोज्या केंद्र} \times \text{ज्या अं.फल}}{\text{त्रिज्या}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(२)$$

अतः श्लोक २६ में कहा उपपन्न हुआ।

यदि ज्या केंद्र = त्रिज्या हो तो समीकरण (१) से—

$$\frac{\text{त्रि.} \times \text{ज्या अं.फ.}}{\text{त्रि.}} = \text{ज्या अं.फ.}$$

$$\text{अतः } \frac{\text{परिधि}}{\text{भांश}} = \frac{\text{त्रि.} \times \text{ज्या अं.फ.}}{\text{त्रि.}} \text{ यह मान समीकरण (१) में रखने से—}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{भुजफल} = \frac{\text{ज्या केंद्र} \times \text{ज्या अं.फ.}}{\text{त्रि.}} = \frac{\text{ज्या केंद्र} \times \text{परिधि}}{\text{भांश}}$$

$$\text{तथा कोटिफल} = \frac{\text{कोज्या केंद्र} \times \text{ज्या अं.फ.}}{\text{त्रि.}} = \frac{\text{कोज्या केंद्र} \times \text{परिधि}}{\text{भांश}}$$

यह श्लोक २६ में कहा उपपन्न हुआ।

श्लोक २७ से २९ की उपपत्ति—

चित्र में मकरादि केंद्र में केग्रछ त्रिभुज में के ग्र = कर्ण = भू तथा प्रतिमंडल में स्थित ग्रह का अंतर।

ग्र छ = कोटि = ग्र म + म छ

अथवा कोटि = अंत्यफलज्या + कोज्या केंद्र

तथा भुज = छ के = ज्या केंद्र। इन भुज तथा कोटि के वर्गों के योग का मूल कर्ण होगा। उपपन्न हुआ।

इसी प्रकार कर्क्यादि केंद्र में–

$$\text{कर्ण} = \text{के इ} = \sqrt{\text{के छ}^2 \times \text{छ इ}^2} = \sqrt{(\text{छ अ} - \text{अ इ})^2 \times \text{छ के}^2}$$

$$\text{कर्ण} = \sqrt{(\text{कोज्या कें.} - \text{अं फ. ज्या})^2 + \text{भुजफल}^2}$$ अतः उपपन्न हुआ।

$$\text{कर्ण} = \text{के ग्र} = \sqrt{\text{के ल}^2 \times \text{ग्र ल}^2} = \sqrt{(\text{म के} + \text{म ल})^2 + \text{ग्र ल}^2}$$

$$= \sqrt{(\text{त्रि.} + \text{को. फ.})^2 + \text{भुजफल}^2}$$

और कर्क्यादि केंद्र में–

$$\text{कर्ण} = \text{के ई} = \sqrt{\text{के त}^2 + \text{त इ}^2} = \sqrt{(\text{के अ} - \text{अ त})^2 + \text{त इ}^2}$$

$$= \sqrt{(\text{त्रि.} - \text{को.फ.})^2 + \text{भु.फ.}^2}$$

उपपन्न हुआ।

क्योंकि को.^{2}+केंद्र ज्या^{2} = कर्ण तथा मकरादि व कर्क्यादि में को.कें.± अन्य फ.ज्या. = स्प. कोटी होता है, यह कहा जा चुका है।

अतः स्प.को.^{2} + को.कें.^{2} = (को.कें.± अं.फ.ज्या.)^2 + के. ज्या^{2}

= को.कें.^{2} ± २ को.कें. × अंफ.ज्या.+ अं.फ. ज्या^{2} + कें.ज्या^{2}

$$= \sqrt{\text{त्रि} + \text{अं.फ.ज्या}^2 \pm 2 \text{ के को.ज्या} \times \text{अं.फ.ज्या}} = \text{कर्ण}$$

अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार अध्याय ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"द्विघ्नाग्रज्याऽभ्यस्ता परमफलज्या मृगादिके योज्या।
त्रिजया परमफलमौर्व्योः कृतियोग कर्कटादिके शोध्या॥६॥
केन्द्रे तस्मान्मूलं कर्णो वा स्याद् विनैव बाहुज्याम्॥६$\frac{१}{२}$॥
मृगकर्क्यादौ केन्द्रे कोट्यन्त्यफल्ज्ययोर्युतिविशेषः।
तद्बाहुज्या कृत्योः समासमूलं श्रुतिर्भवति॥३॥

अध्याय २ में–

"अग्राफलत्रिगुणयोर्विवरैक्यमुक्ता केन्द्रे कुलीरमकरादिगतेऽत्र कोटिः।
तद्वर्ग बाहुफल वर्गयुतेः पदं स्यात्कर्णो भुजाफलहतत्रिगुणस्य हारः॥३॥

वटेश्वराचार्य ने अन्य श्लोकों द्वारा अनेक प्रकार से कर्ण के आनयन की विधियाँ कही है।

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कर्णसाधन प्रकार कहा है। यथा—

"चलकेंद्रादृदोः कोट्योः फले प्रसाध्ये परिधिगुणागज्या॥२३॥
चक्रांशाप्ताऽन्त्यज्या तत्कोटिज्यैक्यमन्तरं केंद्रे।
मृगकर्काद्ये तत्कृतिदोर्ज्यावर्गैक्यतः पदं कर्णः॥२४॥
गज्याकोटिफलैक्यं मकरादौ त्वन्तरं कुलीरादौ।
तद्भुजफलवर्गयुतात् मूलं स्वाभीष्टकर्णो वा॥२५॥"

सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त शीघ्रकर्णानयन कहा है। यथा–

"शैघ्र्यं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम्।
संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्क्यादौ कोटिजं फलम्॥४०॥
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः॥४०$\frac{१}{२}$॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"अन्त्यफलज्याग्रात् स्यात् पदयोराद्यन्त्योरूपरिकोटिः।
द्वितृतीययोरधस्तात् तदन्तरैक्यं ततः कोटिः॥१३॥
तद्बाहुज्याकृत्योः संयोगपदं भवति कर्णः॥१४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोटिज्यया द्विगुणयाऽन्त्यफलज्यया गुणितया यतोनायाः।
मृगकर्क्यादौ त्रिज्यान्त्यफलज्या कृतियुते पदं कर्णः॥८॥''

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

''कोटिज्यया द्विगुणितान्त्यफलोत्थजीवा प्रक्षुण्णयेन्दुभमृगादिषु हीनयुक्ता।
कृतयोर्तुतिः परफलोत्थगुणित्रिमौर्व्यास्तस्याः पदं भवति वा प्रतिवृत्त कर्णः॥
नीचोच्च संज्ञवलयस्य च विस्तरार्धकोटिज्यकाऽन्त्यफलजेनगुणेनकार्या।
युक्तोनहीनसहिता च पदक्रमेणे.....॥
स्वकोटि जीवान्त्य फलज्ययोर्यो योगो मृगादावथ कर्कटादावि...॥''

इदानींमर्केन्द्वोः फलानयनं लघुज्यया लघुप्रकारेणाह—

ये केन्द्रदोर्ज्ये लघुखण्डकोत्थे क्रमाद्रवीन्द्वोर्नखसंगुणे ते।
भक्ते त्रिखेशैः ११०३ मुनिसप्तवेदैः ४७७ यद्वा तयोर्मन्दफले लवाद्ये॥३०॥

सूर्यचंद्र का लघुज्या द्वारा लघुप्रकार से फल आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य तथा चंद्र के केंद्रों की लघुखण्ड से प्राप्त दोर्ज्याओं को २० से गुणा करके क्रमशः ११०३ तथा ४७७ से भाग देने से उनका मंदफल प्राप्त होता है। सूर्य चंद्र के केन्द्रों की दोर्ज्या का साधन पूर्व कथित लघुखण्ड से करे यह विशेष कहा है।

उपपत्ति— सूर्य की बृहज्या से परमफल मान २°।१०'।३१'' = ७८३१ होता है। अनुपात किया कि १२० त्रिज्या में केंद्र दोर्ज्या तुल्य फल प्राप्त होता है तो ७८३१ में कितना अंश तुल्य होगा?

$$= \frac{\text{दोर्ज्या} \times ७८३१}{१२०\times६०\times६०} \times \frac{२}{२} \text{ अंश} = \frac{\text{दोर्ज्या} \times २}{११०.३} = \frac{\text{दोर्ज्या} \times २०}{११०३}।$$

अतः आचार्य ने केंद्र दोर्ज्या को २० से गुणा करके ११०३ का भाग देने के लिए कहा है, जो उपपन्न हुआ।

इसी प्रकार चन्द्रमा के लिए परममंदफल ५°।२'।८'' = १८१२० विकला होता है। अतः $\frac{\text{दोर्ज्या} \times १८१२०}{१२०\times६०\times६०} \times \frac{२}{२}$ अंश $= \frac{\text{दोर्ज्या} \times २}{४७.२} = \frac{\text{दोर्ज्या} \times २०}{४७७}।$

अतः यहाँ आचार्य ने चंद्रमा के लिए दोर्ज्या को २० से गुणा करके ४७७ से भाग देने के लिए कहा है, जो उपपन्न हुआ।

विशेष— आचार्य ने कर्ण कुतुहल (स्वकृत ग्रंथ) में इसी प्रकार मंद फल साधन किया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भास्कराचार्य ने यहाँ जो भाजक, गुणक ज्ञात कये हैं, लल्लाचार्य ने अन्य प्रकार से गुणा भाग करके अन्य गुणक-भाजक ज्ञात किये हैं। साथ ही लल्लाचार्य की लघुज्या खण्ड, पिंड के लिए त्रिज्या १५० है तथा भास्कराचार्य की १२० है। भास्कराचार्य ने यहाँ कही हुई विधि लल्लाचार्य द्वारा उक्त विधि के अनुरूप ही कही है। दोनों के परिध्यंशों में भी अंतर है।

इदानीमर्केन्द्वोर्गतिस्पष्टीकरणम्—

तत्कोटिजीवा कृतबाणभक्ता रवेर्विधोर्वेदहताद्रिभक्तां।
लब्धाः कलाः कर्किमृगादिकेन्द्रे गतेः फलं तत् क्रमशो धनर्णम्॥३१॥

सूर्य चंद्र की गति स्पष्टीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— रवि (मंद) की लघु कोटिज्या को ५४ से विभक्त करने से रविगति फल होता है और चंद्र की लघु कोटिज्या को ४ से गुणा करके ७ से विभक्त करने से चंद्र गतिफल प्राप्त होता है। इन गति फल को कर्क्यादि तथा मकरादि में केंद्र होने पर क्रमशः धन तथा ऋण करना चाहिये। इस प्रकार तात्कालिक स्फुट गति होती है।

उपपत्ति— वक्ष्यमाण प्रकार से कोटीफल गुणा मंद केंद्र भुक्ति इत्यादि द्वारा साधित सूर्य तथा चंद्रमा के परम गतिफल क्रमशः २।१४ तथा ६८।४८ कलादि क्रमशः होते हैं। इससे गतिफल ज्ञात करने के लिए अनुपात करते हैं कि यदि १२० लघु त्रिज्या तुल्य कोटिज्या हो तो रवि गतिफल २ क. १४ वि. = १३४ विकला होता है तो इष्ट कोटिज्या में कितना होगा? =

$$\frac{१३४}{१२०} \times \text{केन्द्र कोटिज्या विकला} = \frac{\text{केन्द्र कोटिज्या}}{५४'} \text{ कलादि।}$$

$$\text{इसी प्रकार चंद्र के लिए गतिफल} = \frac{\text{केन्द्र कोटिज्या} \times ४१२८}{१२०}$$

$$= \frac{\text{केन्द्र कोटिज्या}}{\frac{१२०}{४१२८} \times ६०} = \frac{\text{केन्द्र कोटिज्या} \times \frac{४}{७}}{\frac{७२००}{४१२८} \times \frac{४}{७}} = \frac{\text{के. को.} \times \frac{४}{७}}{\frac{२८८००}{२८८९६}}$$

$= \text{के. कोटि.} \times \frac{४}{७}$ स्वल्पांतर से। आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय)ने महासिद्धान्त के स्पषटाधिकार में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्योक्त प्रकार विधि दी है। भास्कराचार्य ने रवि-चंद्र के परम गतिफल से के.कोटि. का गुणन तथा भाजक ज्ञात कर लिया है।

"मन्दफलं केंद्रवशात् स्वर्णं सूर्ये स्फुटो भवति।
कोटिफलघ्नी भुक्तिर्गज्या भक्ता कलादिफलम्॥१५॥
भुक्तौ कर्किमृगाद्ये केन्द्रे स्वर्णं भवेत् स्पष्टा॥१५$\frac{१}{२}$॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अधयय १३ में इसी प्रकार से अपने परिध्यंश तथा लघुज्या खण्डों द्वारा फल ज्ञात करना बताया है। भास्कराचार्य ने उसी का अनुसरण किया है।

इदानीं भौमादीनां शीघ्रफलानयनम्—

**द्राग्दोः फलात् संगुणितात् त्रिमौर्व्या घाताद्भुजज्यान्त्यफलज्ययोर्वा।
कर्णोद्धृताद्यत् सममेव लब्धं तत् कार्मुकं शीघ्रफलं ग्रहाणाम्॥३२॥**

भौमादि का शीघ्र फलानयन—

सूर्य-प्रभा टीका— प्रतिमंडलस्थ दोर्ज्या की नीचोच्च वृत्त परिणामित दोर्ज्याफल (भुजफल) से त्रिज्या को गुणा करके कर्ण से विभक्त करके उसका चाप ग्रह का शीघ्रफल होता है, अथवा भुजज्या (ज्या.शी.के) को अंत्यफल्ज्या से गुणा करके कर्ण से भाग देने से प्राप्त फल का चाप करने से ग्रह का शीघ्रफल होता है।

उपपत्ति— त्रैराशिक किया कि कर्णकोटि सूत्र का यदि कर्णाग्र पर भुजफल तुल्य अन्तर होता है तो त्रिज्याग्र पर कितना होगा? =

$\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{भुजफल}}{\text{कर्ण}}$ = शीघ्रफलज्या। इसका चाप करने से शीघ्रफल प्राप्त होगा। उपपन्न हुआ।

अन्य प्रकार से क्योंकि $\frac{\text{दोर्ज्या} \times \text{अंत्यफलज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ = भुजफल होता है।

अतः पूर्वोक्त से, शीघ्रफल = $\frac{\text{त्रिज्या}}{\text{कर्ण}} \times \frac{\text{दोर्ज्या} \times \text{अंत्यफलज्या}}{\text{त्रिज्या}}$

अर्थात्, शीघ्रफल = $\frac{\text{दोर्ज्या} \times \text{अंत्यफलज्या}}{\text{कर्ण}}$। उपपन्न हुआ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटे. सि. के स्पष्टाधिकार के अध्याय ३ में आचार्योक्त कहा है।

"यलमन्ददोर्गुणौवा निजान्त्यफलजीव या हतौ भक्तौ।
कर्णव्यासार्धभ्यां फलधनुषी शीघ्रमन्दजे फले स्याताम्॥१७॥"

अर्थात् शीघ्र तथा मन्द केंद्र ज्या को स्व.स्व अन्त्यफलज्या से गुणा करके क्रमशः कर्ण तथा त्रिज्या से भाग देने से प्राप्त फलों की ज्या क्रमशः शीघ्रफल तथा मंदफल होता है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। स्पष्टाधिकार–

"तच्चापं मन्दफलं फलयोगान्तरवशात् धनमृणं वा।
शीघ्रफलं तद्गुणिताद् व्यासार्धात्कर्णलब्धधनुः॥१७॥"

कमलाकर भट ने सिद्धान्त तत्व विवेक के स्पष्टाधिकार श्लोक २०६ व २०७ में इन्हीं विषयों को स्पष्ट करके कहा है।

सूर्यसिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"त्रिज्याभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णाविभाजितम्॥४१॥
लब्धस्य चापं लिप्तादि फलं शीघ्रयमिदं स्मृतम्॥४१$\frac{1}{2}$॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में इसी प्रकार मंद तथा शीघ्रफल कहा है। बीजासनाधिकार अध्याय १३ –

"स्पष्टेन वा स्वगुणकेन हृता त्रिमौर्वी खाष्टोद्धृता भवति चान्त्यफलस्य जीवा। सा दोर्ज्यया विगुणिता विहृता त्रिमौर्व्या काष्ठी कृता भवति मन्दफलं ग्रहणाम्॥७॥

बाहुज्याकृतितः पदं श्रुतिरतः कर्णेन भक्तो वधो
बाहुज्यान्त्यफलज्ययोः फलधनुः स्याच्छीघ्रसंज्ञं फलम॥८॥

इदानीं प्रकारान्तरेण फलमाह—

त्रिज्याहता कर्णहता भुजज्या तच्चापबाह्वोर्विवरं फलं वा।
ज्ञेयोऽत्र बाहुः प्रतिमण्डलस्य चापेन शीघ्रान्त्यफलज्यकायाः॥३३॥

त्रिभं युतोनोनयुतं पदानि दोस्तेषु यातैष्यमयुग्मयुग्मे।३३$\frac{1}{2}$।

प्रकारान्तर से शीघ्रफलानयन—

सूर्य-प्रभा टीका— भुजज्या को त्रिज्या से गुणा करके कर्ण से भाग देने से प्राप्त लब्धि का जो चाप होता है उसके तथा (भुजज्या) बाहु के अंतर तुल्य ग्रह का शीघ्र फल होता है। प्रतिमंडल में इसकी बाहु को ज्ञात करने के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिए ग्रह के (परम) शीघ्रफल को तीन राशि में चार स्थानों पर जोड़ने तथा घटाने से प्रतिमंडल में पद होते हैं। यथा ९० + शी. अन्त्यफलज्या =प्रथमपद; ९० – शी.अ.फं.ज्या = द्वितीय पद; ९० – शी.अं.फ.ज्या = तृतीय पद तथा ९०+ शी.अं. फ.ज्या = चतुर्थ पद। अयुग्म पद में भुजज्या भुक्त तथा इसकी कोटि युग्म पद में भुक्त केंद्र होती है।

उपपत्ति— त्रैराशिक किया कि कर्ण का उच्च रेखा से यदि कर्णाग्र पर **र इ** भुजज्या तुल्य अंतर होता है तो त्रिज्या **अग्र** पर कितना होगा? प्राप्त फल स्फुट ग्रह का उच्च रेखा से अंतर **क ल** ज्या रूप होगा। उसके चाप **क उ** का प्रतिमंडल में बाहु **र उ** से जो अन्तर है वह उसका शीघ्रफल **म र** होता है। यह प्रतिमंडल में बाहु है। प्रतिमंडल में ओज पदांत तक में इसका फल जितना उपचित होता है उतना ही फिर अपचित होता है।

शीघ्रफल, शीघ्र केंद्र अंशांतर के तुल्य होता है। यथा **म उ – र उ = म र** = शीघ्रफल। यहाँ **क उ = म उ** = शीघ्र केंद्रांश। अब **के र इ** तथा **के क ल** सामान्य त्रिभुजों में–

$$\frac{\text{क ल}}{\text{क के}} = \frac{\text{र इ}}{\text{के र}}$$

$$\text{या र इ} = \frac{\text{क ल} \times \text{के र}}{\text{क के}} = \frac{\text{ज्याशी.कें.} \times \text{त्रिज्या}}{\text{स्प. कें.}} = \text{स्पष्ट कें.ज्या।}$$

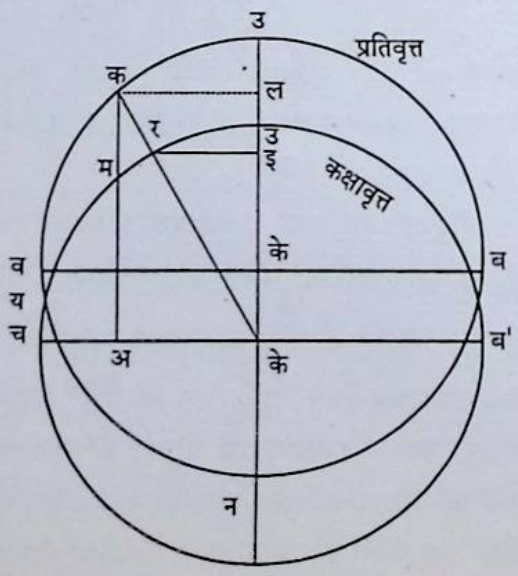

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यहाँ त्रिज्या = कर्ण, अतः ज्या स्प. के. = ज्या शी. कें। अतः स्प. के. = शी. के। तथा शी.फ = ०। इसी प्रकार शी. कें. = उ व य; तथा स्प. के. = उ य, ग्राह्य किया है। इनका अंतर करने से फल प्राप्त होता है। अतः उ क व य च = प्रथम पद माना क्योंकि व च = अंत्य फल।

अतः ९०+अं.फ. = प्रथम पद; द्वितीय पद = ९० – अं. फ., ९० – अं.फ. = तृतीय पद; ९०+अं.फ. = चतुर्थ पद। आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

आचार्य ने बुध का परम शीघ्रफल २१ अंश ३१ कला ४३ विकला कहा है। इसके प्रतिमंडल में पद करने से ९०°+२१°।३१'।४३''। = ३ रा.।२१°।३१'।४३''; ९०° – २१°।३१'।४३'' = २ रा.।८°।२८'।१७''; ९०° – २१°।३१'।४३'' = २ रा.।८°।२८'।१७'' तथा ९०°+२१°।३१'।४३'' = ३ रा.।२१°।३१'।४३'' पदों में चाप क्रमशः हुए। प्रतिमंडल में भुज करेंगे तब अयुग्म पद में गत तथा युग्म पद में ऐष्य होगा।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''कर्णहृतं व्यासार्धं भुजज्यया गुणितमाप्तधनुराद्ये।
प्रोह्यभदलाद् द्वितीयेषड्राशियुतं तृतीयपदे॥१७॥
चक्रात् प्रोह्य चतुर्थे स्फुटोच्चयोरन्तरं स्वमन्दोच्चे।
क्षेप्यं शीघ्रेशोध्यं तत् स्पष्टः पूर्ववत् शेषम्॥१८॥''

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

''बाहुज्या त्रिभजीवया विनिहता कर्णोद्धृता
तादृक् पूर्वपदे भषट्क पतिता षड्भान्विता प्रोज्झिता।
चक्रादुक्तपदक्रमेण भवति स्पष्टोच्चयोरन्तरं
मंदोच्चे विनियोजयेदपनयेच्छीघ्रोच्चतः स्यात् स्फुटः॥''

इत्येवं फलानयनमुक्त्वेदानीं ग्रहस्पष्टीकरणमाह—

स्यात् संस्कृतो मन्दफलेन मध्यो मन्दस्फुटोऽस्माच्चलकेन्द्रपूर्वम्॥३४॥
विधाय शैघ्र्येण फलेन चैवं खेटः स्फुटः स्यादसकृत् फलाभ्याम्।
दलीकृताभ्यां प्रथमं फलाभ्यां ततोऽखिलाभ्यामसकृत् कुजस्तु॥३५॥
स्फुटौ रवीन्दू मृदुनैव वेद्यौ शीघ्राख्यतुङ्गस्य तयोरभावात्।३५$\frac{1}{2}$।

पूर्वोक्त फल आनयन करके ग्रह स्पष्टीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यम ग्रह में मंदफल का संस्कार करने से मंद

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्फुट ग्रह होता है और मंद स्फुट ग्रह को शीघ्रोच्च में से शोधित करके शीघ्र केंद्र बनाकर उसके शीघ्रफल का संस्कार मंदस्फुट ग्रह में करने से वह स्फुट ग्रह होता है। पुनः उसको स्फुट मन्दोच्च में से विशोधित करके उसका फल प्राप्त करके उसको गणितागत मध्य ग्रह में संस्कार करने से ग्रह मंद्रस्फुट होता है। इससे पुनः शीघ्रकेंद्र ज्ञात करके उसका शीघ्रफल मंद स्फुट ग्रह में संस्कार करने से स्फुट ग्रह होता है। इस प्रकार जब तक करते रहे जब तक स्थिर मान न प्राप्त हो जावे। कुज में पहले मंद तथा शीघ्रफल के आधे का संस्कार करके फिर उसे मध्य ग्रह मान कर दोनों फल पुनः प्राप्त करके उनके पूरे का संस्कार करने से वह स्फुट होता है। रवि चंद्र मंद स्पष्ट ग्रह ही स्पष्ट ग्रह होते हैं, उनमें शीघ्रोच्च नहीं होता।

उपपत्ति– इसकी उपपत्ति गोलाध्याय में बताई गई है।

विशेष— यदि यंत्र से वेध किया हुआ ग्रह, स्पष्ट मंदोच्च तुल्य दिखाई देता है तो सर्वदा गणितागत मध्यम ग्रह का वेधोपलब्ध ग्रह से स्पष्ट अंतर शीघ्रफल तुल्य दिखता है जिससे स्पष्ट मंदफल का संस्कार मध्यम ग्रह में करने से वह मंदस्पष्ट होता है। मंदस्पष्ट का शीघ्रफल ज्ञात करके मंदस्पष्ट ग्रह में उसका संस्कार करने से स्पष्ट ग्रह होता है।

मंगल के स्पष्ट के लिए पहले गणितागत मध्यम ग्रह के शीघ्रफल का साधन पूर्व प्रकार से करे। इस फल के आधे का संस्कार मध्यम ग्रह में करने से वह गणितागत मन्द होता है। उसके पश्चात उसका मंदफल साधन करके उसके आधे का संस्कार शीघ्रफलार्ध संस्कृत मध्यम ग्रह में करे। इसमें फिर संपूर्ण मंदफल ज्ञात करके उसका संस्कार करने से वह मंद स्पष्ट ग्रह होता है। पुनः इसका शीघ्रफल ज्ञात करके उसका संपूर्ण संस्कार इस मंद स्पष्ट साधित ग्रह में करने से वह स्पष्ट होता है। सूर्य चन्द्र के लिए किसी आर्ष शास्त्र में उनके शीघ्रोच्च भगण नहीं कहे हैं, अतः इनमें शीघ्रफल का संस्कार नहीं करते, वे मंदफल संस्कार से ही स्फुट होते हैं।

सूर्य सिद्धान्त स्पष्टाधिकार में सभी ग्रहों के लिए (सू.,चं. के अतिरिक्त) यहाँ बताये मंगल के लिए संस्कार के अनुसार ही संस्कार चार बार करने के लिए कहा है। यथा–

"मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वोर्भौमादीनाथोच्यते।
शैघ्र्यं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्र्यं चत्वार्यनुक्रमात्॥४३॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मध्ये शीघ्रफलस्यार्धं मान्दमर्धफलं तथा।
मध्यग्रहे मन्दफलं सकलं शैघ्र्यमेव च॥४४॥''

भास्कर (प्रथम) ने भी महाभास्करीय में सूर्य सिद्धान्त की भांति ही (सूर्य चंद्र बुध शुक्र के अतिरिक्त) अध्याय ४ में कहा है। यथा–

''स्वमन्दकेन्द्रसंप्राप्तफलचापार्धमिष्यते।
पदक्रमाद्यथा भानोः स्वमध्ये तद्विधीयते॥४०॥
शीघ्रकेन्द्रफलाभ्यस्तं विष्कम्भार्धं विभज्यते।
स्वकर्णेनाप्तचापार्धं कार्यं तस्मिन्विपर्ययात्॥४१॥
तस्मान्मन्दफलं कृत्स्नं कार्यमिष्टं स्वमध्यमे।
एवं भौमार्किजीवानां विज्ञेयाः स्फुटमध्यमाः॥४२॥
तद्विहीनचलोत्पन्नफलचापेन संस्कृतः।
स्फुटमध्यः स्फुटो ज्ञेयः शेषयोरुच्यते विधिः॥४३॥''

लघुभास्करीय अध्याय २ में भास्कर (प्रथम) ने बाह्य ग्रहों के लिए इसी प्रकार संस्कार करने के लिए श्लोक ३३ से ३६$\frac{१}{२}$ में कहा है।

लल्लाचार्य ने भी बाह्य ग्रहों के लिए संस्कार इसी प्रकार कहे हैं जिस प्रकार भास्कर (प्रथम) तथा सूर्य सिद्धान्त में कहे हैं। तथा भास्कर प्रथम की भांति बुध शुक्र के लिए अलग विधि कही है। यथा–

''शीघ्रोद्भवेन दलितेन फलने पूर्वं संस्कृत्य वा ग्रहमतो विदधीत मान्दम्।
तेनाखिनेन सकलेन च शीघ्रजेन प्राग्वत् स्फुटो भवति संस्कृतिभाग्ग्रह सः॥८॥''

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में भास्करोक्त तथा लल्लाचार्य, भास्कर (प्रथम), सूर्य सिद्धान्तादि में उक्त दोनों ही विधियों को ग्रह स्फुटीकरण के लिए कही है। भास्कराचार्य ने मंगल के लिए अन्य आचार्यों की (दूसरी) विधि को अपना कर उसका आनयन अलग कहा है। स्पष्टाधिकार अध्याय ५ यथा—

''मन्दोद्भवं मध्यखगे समस्तं सुसंस्कृतं स्पष्टखगोहि मन्दः।
ततस्तदूनात् स्वचलाच्चलोत्थं तस्मिन् समस्तं त्वसकृत् स्फुटः स्यात्॥३॥
मध्यमश्चलदलार्धसंस्कृतो मन्दजेन दलितेन चैव हि।
मन्दजं सकलमेव मध्यमे शीघ्रजं च निखिलं परिस्फुटः॥४॥''

वटेश्वर ने इन दोनों श्लोकों में दोनों ही विधि कही है जिनका अर्थ उपरोक्त कथित ही है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पंच सिद्धान्तिका के सौर सिद्धान्त के अध्याय १७ में भास्करोक्त प्रकार से सू चं बुध शुक्र के अतिरिक्त ग्रहस्फुट करना कहा है। यथा–

"मध्यात् पु (न) र्विशोध्य (त) स्मादवा (हुर्न) तस्य यच्चापम्।
तन्मध्यमे क्षयधनं कर्तव्यं मन्दकेन्द्रवशात्॥८॥
एवं स्फुटमध्याख्यं शीघ्रात् संशोध्य पूर्वविधिनैव।
आदिवदा (प्तं) चापं स्फुटमध्या (ख्ये) चयापच (यम्)॥९॥"

इदानीं गतिस्फुटीकरणमाह—

दिनान्तरस्पष्टखगान्तरं स्याद् गतिः स्फुटा तत्समयान्तराले॥३६॥
कोटीफलघ्नी मृदुकेन्द्रभुक्तिस्त्रिज्योद्धृता कर्किमृगादिकेन्द्रे।
तया युतोना ग्रहमध्यभुक्तिस्तात्कालिकी मन्दपरिस्फुटा स्यात्॥३७॥
समीपतिथ्यन्तसमीपचालनं विधोस्तु तत्कालजयैव युज्यते।
सुदूरसंचालनमाद्यया यतः प्रतिक्षणं सा न समा महत्वतः॥३८॥

गति स्फुटीरकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— गत और आगत (आज और कल) दिनों के स्पष्ट ग्रहों का अंतर उसकी कलादि स्फुटगति उनके समयान्तराल में होती है। (यदि आज की गति से आगे (कल) की गति कम हो तो ग्रह की गति वक्र जाने। जितने काल में मध्यम ग्रह इस गति से जितना चलता है वह उसमें (आरंभ स्थान जोड़ देने से यह उसकी स्थूल गति होती है।) अब आचार्य सूक्ष्म तात्कालिक गति कहते हैं। उच्च में से चन्द्र गति घटाने से केंद्र गति होती है, इसी प्रकार ग्रहों की केंद्र गति होती है। मन्द केंद्र की कोटिफल को उसकी मंद केंद्र गति से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने से प्राप्त लब्धि को कर्क्यादि में केंद्र होने पर ग्रह गति में युक्त करे तथा मकरादि में रहने पर घटाने से तात्कालिक मन्द स्फुट गति होती है।

चंद्र की तात्कालिक गति विशिष्ट प्रयोजन की होती है। तिथि अंत के समीप की चंद्र की गति उसकी तात्कालिक गति से ज्ञात करे। इसी प्रकार जिस काल की चन्द्र की गति हो उससे आगे अथवा पीछे आसन्न किसी काल की गति चंद्र की तात्कालिक गति से ज्ञात करे और चंद्रमा के दूर चालन अथवा तिथ्यन्त दूर स्थित होने पर चंद्र की गति उसकी दैनिक (स्थूल) गति से साधित करके लगभग तिथ्यन्त ज्ञात करे। (इस प्रकार स्थूल चंद्र गति साधन करके वास्तव तिथियन्त के समीप सूक्ष्म तात्कालिक गति से तिथियन्त साधित करे)।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्योंकि चंद्रमा की दैनिक गति वृहद् होती है तथा क्षण-प्रतिक्षण बदलती रहती है समान नहीं रहती।

गतिफल उपपत्ति— आज तथा कल (पूर्व तथा पश्चात्) के दिन के ग्रह का अंतर उसकी दैनिक स्थूल गति होती है। ग्रहफल का अंतर गतिफल होता है। यहाँ उसका साधन करते हैं। पूर्व तथा पश्चात् के ग्रह के केंद्र का अंतर ग्रह की केंद्र गति होती है। इस की भुजज्या ज्ञात करने के लिए जो भोग्य खंड है उससे इसको गुणा करके २२५ से भाग देना होगा। अब तात्कालिक भोग्य खंड के लिए अनुपात किया कि यदि त्रिज्या तुल्य कोटिज्या हो तो आद्य खंड २२५ तुल्य होता है, तो इष्ट कोटि में कितनी होगी? प्राप्त फल तात्कालिक

भोग्य खंड = $\frac{\text{मंदकेंद्र कोटिज्या} \times २२५}{\text{त्रिज्या}}$ होगा। अब इस फल को तात्कालिक स्फुट करने के लिए भोग्यखंड को केंद्र गति से गुणा करके २२५ से भाग देना होगा

$$= \frac{\text{केंद्र कोटिज्या} \times २२५}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{केंद्र गति}}{२२५} = \frac{\text{केंद्र कोटिज्या} \times \text{केंद्र गति}}{\text{त्रिज्या}}$$

यह आद्य तथा अग्रिम केंद्र की दोर्ज्या का अंतर है। इसका फल साधन करने के लिए इसको स्वपरिधि से गुणा करके ३६० से भाग देना होगा। अतः इसको स्वपरिध्यंश से गुणा करके ३६० से भाग देने से कोटिफल प्राप्त होगा। अतः आचार्योक्त ''कोटिफलघ्नी मृदुकेंद्र भुक्ति'' इत्यादि उपपन्न हुआ।

इस प्रकार आद्यतनश्वस्तन ग्रह फलांतर जो गति फल है, को कर्क्यादि केंद्र होने पर ग्रह में फल अपचीय मान होने से ऋण करे तथा तुलादि केंद्र होने पर उपचीय मान होने से धन करे। मकरादि में धनफल अपचीय मान होने से तथा मेषादि में ऋण फल उपचीय मान होने से ऋण करे। यह उपपन्न हुआ।

उपरोक्त को अग्र लिखित प्रकार लिख सकते हैं, यह वटेश्वरादि कथित प्रकार है—

प्रतिक्षण जो भिन्न-भिन्न गति होती है वह स्पष्ट गति है तथा जो समान रहती है बदलती नहीं वह मध्यम गति होती है। स्पष्ट गति दैनिक तथा तात्कालिक दो प्रकार की होती है। यही आचार्य अपने-अपने ग्रंथों में साधन करते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\frac{\text{मंद केंद्रज्या} \times \text{मंद अंत्यफलज्या}}{\text{त्रिज्या}} = \text{अद्यतन मंदफलज्या} = \text{मं.फ.ज्या.}$$

$$\frac{\text{मंद केंद्रज्या}' \times \text{मंद अंत्यफलज्या}}{\text{त्रिज्या}} = \text{श्वस्तन मंद फलज्या} = \text{मं.'फ.ज्या.}$$

दोनों का अंतर करने से—

$$\frac{\text{मं.अं.फ.ज्या}}{\text{त्रिज्या}} \quad (\text{मं कें.ज्या}' \sim \text{मं.के.ज्या})$$

$$= \frac{\text{मं.अं.फ.ज्या} \times \text{मं.कें .ज्यान्तर}}{\text{त्रिज्या}} = \text{मंद फलांतर} = \text{मंद गतिफल।}$$

परन्तु $\frac{\text{मं. के. गति}}{\text{प्रथम चाप}} \times \text{भोग्य खंड} = \text{मं. के .अन्तर}$

यह मान उपरोक्त में प्रतिस्थापित करने से–

$$\frac{\text{मं. अं.फ.ज्या}}{\text{त्रि.}} \times \frac{\text{मं. के .गति} \times \text{भो.खं.}}{\text{प्रथम ज्या}} = \text{मं.ग.फल}$$

लेकिन क्योंकि $\frac{\text{मं. अं.फ.ज्या}}{\text{त्रि.}} = \frac{\text{मं. परिधि}}{\text{भांश}} = \frac{\text{मं. परिधि}}{३६०}$, यह मान ऊपर प्रतिस्थापित करने पर–

$$\frac{\text{मं. परिधि}}{३६०} \times \frac{\text{मं. के .गति} \times \text{भो.खं.}}{\text{प्रथम ज्या}} = \text{मंद गतिफल}$$

यह (ब्रह्मगुप्तादि) आचार्योक्त है।

$$\frac{\text{मं. अं.फ.ज्या} \times \text{मं.के .ज्या}}{\text{त्रि.}} = \text{मं.फ.ज्या}$$

दोनों पक्षों की तात्कालिकिकरण करने से (चलन कलन गणित द्वारा)—

$$\frac{\text{मं. अं. फलज्या}}{\text{त्रि.}} \times \frac{\text{मं. के . कोज्या}}{\text{त्रि.}} \times \text{मं.कें.ग.}$$

$$= \frac{\text{मं.ग.फ.} \times \text{मं. फ. कोज्या}}{\text{त्रि.}}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{या } \frac{\text{मं.को.फल} \times \text{मं. के .ग}}{\text{त्रि.}} = \frac{\text{मं.फ.कोज्या} \times \text{मं.फ.ग.}}{\text{त्रि.}}$$

या मं.को.फ. × मं. के. ग = मं.फ. कोज्या × मं.फ.ग

$$\text{या मं.फ. गति} = \frac{\text{मं.को.फल} \times \text{मं. के .ग}}{\text{मं.फ.कोज्या}} \times \frac{\text{त्रि.}}{\text{त्रि.}}$$

$$= \frac{\text{भास्कर कथित मं.ग.फ.} \times \text{त्रि.}}{\text{मं.फ.कोज्या}}$$

अतः यहाँ से भास्कराचार्य तथा वटेश्वर, लल्लार्य आदि द्वारा कथित प्रकार में जो अंतर है वह स्पष्ट हो जाता है।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने स्पष्टाधिकार अध्याय १ में वटेश्वर सिद्धान्त में इस प्रकार कहा है—

"ह्यः श्वस्तनाद्यतनयोर्विशेषजा सूर्ययोर्गतिः स्फुटगतिर्गतागता।
श्वस्तनाद्यतनयो रवेर्विद्योरेवमिष्टखचरस्य वा भवेत॥६६॥
मन्दतुङ्गगतिवर्जिता गतिः केंद्रभुक्तिरिह खेचरस्य सा।
दोर्गुणान्तर हताद्यजीवया भाजिताः स्वपरिणाहसंगुणा॥६७॥
भगणांशहृता फलं गतौ निजकेन्द्रे मकरादिके क्षयः।
धनमिन्दुगृहादिके स्फुटा श्रवणाग्रे खलु चान्तमानिका॥६८॥
निज केंद्र जह्यादोज भोज्यधनुर्गुणः शकलम्।
धनुषा ग्राह्या जीवा विषमपदे व्युत्क्रमाद् युग्मे॥७१॥
धनुरल्पे धुनर्हते निजभोज्यगुणान्तराभ्यस्ते।
तन्मध्यशुद्धमौर्वी वृद्धिः परिधिसंगुणा हताभांशैः॥७२॥
लब्धधनुः स्वमृणं वा गतौ स्फुटा ह्यस्तनाद्यतनान्तः॥७२$\frac{१}{२}$॥"

वटेश्वराचार्य ने जो स्थूलता मन्दकेन्द्रज्यान्तर = मन्दकेन्द्रान्तर = मन्दकेंद्र गति स्वल्पांतर से स्वीकार करके श्लोक ६६-६८ में कही थी उसको दूसरी विधि से आगे के ७१ से ७२$\frac{१}{२}$ श्लोक में शुद्ध करने का प्रयास किया है लेकिन फलज्यान्तर = फलगति मानने की स्थूलता यहाँ भी रह गई है। इन सबको भास्कराचार्य ने यहाँ से जानकर उनको शुद्ध करके श्लोक पढ़ा है।

ब्रह्मगुप्त, लल्लाचार्य ने भी वटेश्वराचार्य के अनुरूप ही कहा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुंजाल आचार्य ने लघुमानसम् में प्रथम बार दैनिक ग्रह गति में मंद फल्संस्कार करने के लिए कोटिज्या गति का उपयोग किया था जिसको भास्कराचार्य ने यहाँ उक्त श्लोक में ग्रहण किया। लघुमानसम् स्पष्टाधिकार में—

"कोटिर्गतिघ्नी छेदाप्तं व्यस्तं गतिकलाः फलम्॥१४॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"मन्दफलं केन्द्रवशात् स्वर्णं स्फुटो भवति।
कोटिफलघ्नी भुक्तिर्गज्याभक्ता कलादिफलम्॥११५॥
भुक्तौ कर्किमृगाद्ये केन्द्रे स्वर्णं भवेत् स्पष्टा। $\frac{१}{२}$।"

इदानीं गतेः शीघ्रफलमाह—

फलांशखाङ्कान्तरशिञ्जिनीघ्नी द्राक्केन्द्रभुक्तिः श्रुतिहृद्विशोध्या।
स्वशीघ्रभुक्तेः स्फुटखेटभुक्तिः शेषं च वक्रा विपरीतशुद्धौ॥३९॥

शीघ्रगतिफल ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह के जो शीघ्रफल अंश आवे उन्हें ९० में से घटाने से शेष अंश की ज्या को शीघ्र केंद्र गति से गुणा तथा शीघ्रकर्ण से भाग देने से प्राप्त लब्धि को शीघ्रोच्च गति में से शोधित करने से प्राप्त शेष स्फुट गति होती है। यदि वह न घटे तो विपरीत शोधित करने से वक्र गति होती है।

उपपत्ति— भास्कराचार्य कथित श्लोक को सूत्र रूप में निम्नलिखित प्रकार से लिख सकते हैं—

स्पष्ट गति = शीघ्रोच्च दैनिक गति –

$$\frac{\text{दो क्रमागत दिनों के केंद्रशों का अंतर} \times \text{शीघ्रफलकोज्या}}{(\text{शी})\ \text{कर्ण}}$$

अर्थात् स्पष्ट गति = शीघ्रोच्च गति – स्फु. कें. गति

मुंजाल आचार्य ने प्रथम बार मध्यम गति में संस्कार कोटिज्या के रूप में स्थापित किया था। लघुमानसम् स्पष्टाधिकार—

"कोटिर्गतिघ्नी छेदाप्तं व्यस्तं गतिकलाः फलम्॥१४॥"

भास्कराचार्य ने इसी को गृहण किया। **मुंजालाचार्य** ने पुनः आगे ग्रह की स्पष्ट गति साधन करने के लिए सूत्र कहा। (चंद्र के अतिरिक्त के लिए)—

"व्यासं शीघ्रफलार्कांश (१२) भागोनं ग्रहशीघ्रयोः।
गत्यन्तरघ्नं छेदाप्तं व्यक्त्वा शीघ्रगतेर्गतिः॥१७॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस श्लोक कथित बात को सूत्र रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं—

स्पष्ट गति = शीघ्रोच्च दैनिक गति –

$$\frac{(\text{शीघ्रोच्च गति} - \text{ग्र.म.गति})\ (\text{स्पष्ट व्यास} - \frac{\text{शीघ्रफल}}{१२})}{\text{हार}}$$

सूर्यसिद्धान्त स्पष्टाधिकार के श्लोक ५० में जो कहा है उसको समीकरण रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं—

"मन्दस्फुटीकृतां भुक्तिं प्रोज्झय शीघ्रोच्च भुक्तितः।
तच्छेषं विवरेणाथ हन्यात् त्रिज्यान्त्यकर्णयोः॥५०॥"

अर्थात् स्पष्टगति = म.ग. +

$$\frac{(\text{शीघ्रोच्च गति} - \text{ग्र.म.गति})\ (\text{कर्ण} - \text{शी.क. कोज्या})}{\text{कर्ण}}$$

। भास्कर आचार्य के इस श्लोक ३९ की उपपत्ति के लिए अगला श्लोक ४० भी देखें।

इन्हीं से भास्कराचार्य ने अपना सूत्र लिखा है। सूर्य सिद्धान्त के सूत्र को भास्कराचार्य के सूत्र के तुल्य ई. बर्गेस ने अपनी सूर्यसिद्धान्त की टीका में बताया है।

भास्कराचार्य का यह सूत्र आर्य भट (द्वितीय) का महासिद्धान्त में कथित सूत्र ही है, उनका स्वयं का नहीं है।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने भास्कराचार्योक्त सूत्र ही स्पष्टाधिकार में कहा है। यथा–

"बाहुफलं गज्याघ्नं दोर्ज्यान्त्यज्याबधं यद्वा।
कर्णहृतं तच्चापं शीघ्रफलं भवति खचरस्य॥२६॥
फलकोटिज्यानिघ्नि चलकेंद्रगतिं विभाजयेत् श्रुत्या।
फलहीना चल भुक्तिः स्पष्टा वक्रा विलोमशुद्धौ स्यात्॥२७॥"

इदानीं लल्लोक्तगतिफलस्य दूषणमाह—

धीवृद्धिदे चलफलं द्युगतेर्यदुक्तं
लल्लेन तन्न सदिदं गणकैर्विचिन्त्यम्।
केन्द्रे त्रिभे च नवभे च फलस्य नाशा-
द्भावात् तथा गतिफलस्य धनर्णसन्धौ॥४०॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लल्लाचार्योक्त गतिफल सूत्र में दूषण—

सूर्य-प्रभा टीका— लल्लाचार्य ने अपने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में दैनिक शीघ्र गतिफल का जो कथन किया है वह सही नहीं है, इस पर गणक विचार करें। तीन (९०°) तथा नौ (२७०°) राशि केंद्र होने पर गतिफल का अभाव होता है तथा धन ऋण संधि पर गतिफलाभाव होने के स्थान पर भी फल उत्पादित होता है।

उपपत्ति— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में निम्नलिखित श्लोक कहा है। ग्रह गति स्पष्टाध्याय श्लोक ४५-४६—

"त्रिज्याहता ग्रहगतिर्मृदुकर्णहृद्वामन्दस्फुटा भवति तद्रहिताशु भुक्तिः।
त्रिज्याहता स्वचलकर्णहृताशुचापभोग्यज्यया विगुणिता विहृताद्यमौर्व्या॥
लब्धं त्यजेत् स्वचलतुङ्गगतेः सदैव शेषं स्फुटा भवति च ग्रह भुक्ति रेवम्।
लब्धं भवेद्यदधिकं चलतुङ्गभुक्तेर्व्यस्तं भुनक्ति खचरः प्रतिवासरं तत्॥

इस श्लोक को सूत्र रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं। (भास्कराचार्य के अनुसार)—

$$\text{शीघ्रगति फल} = \frac{(\text{शी.ग.} - \text{मं. स्फुट गति}) \times \text{त्रिज्या}}{\text{शी. कर्ण}} \times \frac{\text{शीघ्रफल भोग्यखण्ड}}{२२५}$$

यदि हम अनुपात करें कि आद्यखंड २२५ के लिए त्रिज्या (R) होती है तो भोग्यखंड [ज्या (शी.फ + २२५) – ज्या शी.फ.] के लिए कितनी होगी?

$$\text{लब्धि} = \left[\frac{\text{ज्या (शी.फ+२२५)} - \text{ज्या शी.फ.})}{\text{त्रि.}}\right] \times \frac{\text{त्रिज्या}}{२२५}$$

= (ज्या शी.फ. कोज्या २२५ + कोज्या शी.फ. ज्या २२५ – ज्या शी.फ.) $\times \frac{\text{त्रिज्या}}{२२५}$

यह त्रिकोणमिति के सूत्र द्वारा लिखा है।

यहाँ कोज्या २२५ = १ तथा ज्या २२५ = २२५ मान लेने पर—

$$\left[\frac{\text{ज्या शी.फ+२२५कोज्या शी.फ.} - \text{ज्या शी.फ.}}{\text{त्रि.}}\right] \times \frac{\text{त्रि.}}{२२५}$$

= कोज्या शी.फ.

अतः लल्लाचार्य के सूत्र से भास्करोक्त सूत्र उपपन्न हो जाता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{शी.ग.फ.} = \frac{(\text{शी.ग.} - \text{मे.स्फु.ग.})\ \text{त्रि.}}{\text{शीघ्रकर्ण}} \times \text{कोज्या शी.फ.}$$

लल्लाचार्य ने "आशु(फल)चाप" कहा जिसे भास्कराचार्य ने "आशुकेंद्रचाप" समझा इसलिए भास्कराचार्य ने उसे दूषण दे दिया।

इदानीं वक्रतासंभवमाह—

द्राक्केन्द्रभागैस्त्रिनृपैः १६३ शरेन्द्रै-१४५
स्तत्त्वेन्दुभिः १२५ पञ्चनृपै १६५ स्त्रिरुद्रैः ११३।
स्याद्वक्रता भूमिसुतादिकाना-
मवक्रता तद्रहितैश्च भांशैः ३६०॥४१॥

वक्रता संभावित शीघ्र केंद्रांश—

सूर्य-प्रभा टीका— भौम (बु.गु.शु.श.) आदि के क्रमशः १६३°, १४५°, १२५°, १६५° तथा ११३° शीघ्र केद्रांश होने पर वे (क्रमशः) वक्रि होते हैं और इनको भांश (३६०°) में से घटाने से प्राप्त शेष तुल्य शीघ्र केद्रांश होने पर वे अनुवक्र अर्थात् मार्गी होते हैं।

विशेष— आचार्योक्त ही शीघ्र केंद्रांश ब्रह्मगुप्त तथा वटेश्वराचार्य ने कहे हैं। वटेश्वराचार्य के गुरु के शी. केंद्रांश १२६ है जो इन से एक अंश अधिक है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त स्पष्टाधिकार में—

"आग्न्यष्टिभि (१६३) रिषुमनुभिः (१४५) शरसूर्यै (१२५)
रिषुरसेन्दुभि (१६५) स्त्रिभवैः (११३)
शीघ्रान्त्यकेंद्रभागैर्भौमादिनां भवति वक्रम्॥४८॥
चक्रांशकैस्तदूनैरनुवक्रं तदधिकोनभागकलाः।"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में अध्याय में कहा है—

"रामाष्टिभिः (१६३) क्षितिसुतश्चलकेंद्रभागैर्वक्रीन्दुजोऽक्षमनुभि (१४५) र्गुरुरङ्गसूर्यै (१२६)।
शुक्र शरर्त्तुशशिभि (१६५) शनिरग्निरुद्रै (११३)
श्चक्रुच्चुरैरकुटिलाः कथितास्त्वमीभिः ॥१९॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के कुजादिस्पष्टीकरणाधिकार में इसी प्रकार कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"गुणनृपतिभि (१६३) र्वाणाब्ध्येकैः (१४५) शराक्षिनिशाकरैः (१२५)
शररसकुभि (१६५) र्विश्वक्ष्माभिर्लवै (११३) श्चलकेन्द्रजैः।
भवति नियतं वक्रारम्भः कुजादिनभः सदां
पुनरपि भवेद्वक्रत्यागश्च्युतैस्तु भमण्डलात्॥२०॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त स्पष्टाधिकार में इसी प्रकार कहा है। यथा–

"चलकेन्द्रांशा यतला (१६३) कढणाः (१४५) पठमा (१२५) त्ताताः (१६६) कपिला (११३) वक्रारम्भे भौमात् मार्गा गतनात् (३६०°) परित्यागे॥३१॥"

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है।

पैतामह सिद्धान्त में क्रमशः १६४, १४६, १२५, ११३ तथा वृद्ध वशिष्ट में १६४, १४४, १३०, १६३ तथा ११५ वक्र शी. केंद्रांश कहे हैं।

नीच स्थान से जितने अंतर पर वक्रांरभ होता है उससे विपरीत दिशा में उतने ही अंतर पर वक्र त्याग होता है अतः वक्रांरभ केंद्रांश को भगणांश ३६० में से घटाने से वक्रत्याग कर मार्गी होने के केंद्रांश होते हैं।

इदानीमुदयास्तसंभवमाह—

प्राच्यामुदेति क्षितिजोष्टदस्रैः २८
शक्रैः १४ गुरुः सप्तकुभिश्च १७ मन्दः।
स्वस्वोदयांशोनितचक्रभागै-३३२। ३४६।३४३।
स्त्रयो व्रजन्त्यस्तमयं प्रतीच्याम्॥४२॥
खाक्षैः ५० जिनैः २४ ज्ञसितयोरुदयः प्रतीच्या-
मस्तश्च पञ्चतिथिभिः १५५ मुनिसप्तभूभिः १७७।
प्रागुद्गमः शरनखैः २०५ त्रिधृतिप्रमाणै-१८३
रस्तश्च तत्र दशवन्हिभि ३१० रङ्गदेवैः ३३६॥४३॥

उदयास्त संभावना—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्व दिशा में मंगल २८ अंश, गुरु १४ अंश तथा शनि १७ अंश तुल्य शीघ्र केंद्रांश होने पर उदित होते हैं। इन केंद्रांशों को चक्र (३६०°) में से घटाने से प्राप्त अंश तुल्य केद्रांश होने पर वे पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। बुध तथा शुक्र क्रमशः ५० तथा २५ अंश तुल्य शीघ्र क्रेंद्रांश होने पर पश्चिम दिशा में उदित होते हैं तथा क्रमशः १५५, १७७ तुल्य केंद्रांश होने पर वे पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। बुध शुक्र (के इन अस्त केंद्रांशों

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को चक्र ३६०° में से घटाने से वे) क्रमशः २०५ तथा १८३ तुल्य केंद्रांश होने पर पूर्व में उदित होते हैं तथा ३१० और ३३६ शीघ्र केंद्रांश होने पर वे (क्रमशः) पूर्व दिशा में अस्त भी होते हैं।

उपपत्ति— स्फुट सूर्य तथा ग्रह में जब उदयास्त कालांश जो आचार्य ने आगे उदयास्ताध्याय में कहे हैं, तुल्य होते हैं तब उनका उदयास्त होता है। शीघ्र केंद्र मंदस्फुट ग्रह से जब जैसे मंगल के लिए २८ अंश होगा तब इन २८ अंश केंद्र का (शीघ्र) फल ११ अंश होगा। इतने से अधिक मंदस्फुट ग्रह को सूर्य में घटाने से २८° − ११° = १७° तुल्य सूर्य से दूर पृथ्वी से मं दिखेगा। यही कालांश मंगल के लिए उदयास्ताध्याय में कहे हैं। ३६० अंश में से केंद्रांश जो कहे हैं वे घटाने से प्राप्त अंश तुल्य सूर्य मंगल का अंतर होने पर वह अस्त होता है। इसी प्रकार गुरु के लिए शीघ्रकेंद्र १४ का (शीघ्र) फल ३ होता है। इतना अधिक तुल्य दूरी १४ − ३ = ११° पर पृथ्वी से गुरु सूर्य से दूर दिखाई देगा। ये ही गुरु के कालांश उदयास्ताध्याय में कहे हैं। इसी प्रकार शनि के लिए भी केंद्रांश १७° − फल २° = १५° कालांश कहे हैं। इसी प्रकार बुध शुक्र के केंद्रांश क्रमशः ५० तथा २४ होने पर उनके फलांश क्रमशः १३ तथा ११ प्राप्त होते हैं। यही इनके कालांश होंगे। पुनः इनके शीघ्र केंद्रांश क्रमशः १५५ तथा १७७ होने पर इनका शीघ्रफल उतना ही होगा अतः वे उतने कालांश पर पश्चिम में अस्त होंगे।

मध्यम सूर्य से स्थूल स्फुट ग्रह इन कथित क्षेत्रांशों के तुल्य अंतर पर होते हैं तब उन्हें स्थूल उदयास्त होना कहते हैं। इतने शीघ्रकेंद्र अंतर पर मंदस्फुट ग्रह तथा सूर्य होता है। गुरु, मंगल, शनि का शीघ्रोच्च होता है तथा उसी के आसन्न वे परम अस्त होते हैं। शीघ्रगति के कारण जब सूर्य उनसे श्लोकोक्त कालांश (उदयास्ताध्याय) तुल्य दूरी पर आगे चला जाता है तो वे उदित हो जाते हैं। अतः कालांश तुल्य स्पष्ट केंद्रांश में जो फल चाप होता है उसको कालांश में जोड़ने से उनके उदय केंद्रांश होते हैं। अनुपात करने से, त्रिज्या में कालांश तुल्य स्पष्ट केंद्रांश की ज्या प्राप्त होती है तो अंत्यफलज्या में कितनी होगी? यह कालांश तुल्य स्पष्ट केंद्रांश ज्या से प्राप्त फलज्या प्राप्त होती है $= \frac{\text{अं.फ.ज्या} \times \text{कालांश ज्या}}{\text{त्रि.}}$ इसके चाप को कालांश में जोड़ने से बाह्य ग्रहों के उदय केंद्र प्राप्त होते हैं। जैसे कुज की अंत्य फलज्या = ८१, कालांश =

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१७, कालांश ज्या = ३५, त्रिज्या = १२०। अतः उपरोक्त सूत्र द्वारा फलज्या = $\frac{\text{कालांश ज्या} \times \text{अं.फ.ज्या}}{१२०} = \frac{३५\times८१}{१२०}$। इसका चाप ११° हैं इसको कालांश १७ में युत्त करने से ११+१७ = २८ मंगल के उदय केंद्रांश प्राप्त हुए।

गुरु के कालांश ११°, शनि के १५° है। इनकी लघुज्या क्रमशः २२ तथा ३० है तथा अंत्य फलज्या ३३ तथा १६ है। अतः पूर्वोक्तानुसार शीघ्रफलज्या = $\frac{२२\times३३}{१२०}$ = ६ का चाप ३° तथा शी.फ. ज्या शनि = $\frac{३०\times१६}{१२०}$ = ४ का चाप २° है।

अतः गुरु के केंद्रांश ११+३ = १४ तथा शनि के १५+२ = १७ होते हैं।

मध्यम रवि के तुल्य ही बुध तथा शुक्र होते हैं अतः सूर्य के तुल्य ही बुध तथा शुक्र को मंदस्पष्ट मान कर गणना करते हैं। इनका उदय पश्चिम दिशा में होता है। अतः इनके लिए स्पष्ट केंद्रज्या = $\frac{\text{कालांश ज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{अंत्यफलज्या}}$ होता है। इसके चाप को कालांश में जोड़ने से प्रथम पद में पश्चिम उदय के केंद्रांश होते हैं तथा द्वितीय पद में वे सूर्य के अल्प गति होने से वहीं पर अस्त होते हैं। नीच स्थान में परम अस्त होकर वे पुनः तृतीय पद में शेष रात्रि में उदित होते हैं। चतुर्थ पद में वे अपने कालांश अंतर पर रहने पर अस्त होते हैं। अतः पूर्वोदय केंद्रांश = चाप − कालांश + १८०।

जैसे बुध की अंत्यफलज्या ४४, त्रिज्या = १२०, पश्चिमोदय कालांश = १३ तथा कालांश ज्या = २७ है।

अतः $\frac{\text{कालांश ज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{अंत्यफलज्या}}$ = स्पष्ट केंद्रां.ज्या = $\frac{२७\times१२०}{४४}$ = ७३।

अतः इसका चाप ३७° को कालांश १३ में युक्त करने से पश्चिमोदय केंद्रांश ३७+१३ ५० आर्योक्त हुआ।

पर्न्तु कालांश = १२ है अतः पूर्वोदय केंद्रांश = १८० − कालांश+चाप= २७+ (१८०−१२) = २७+१६८ = २०५ आचार्योक्त प्राप्त हुआ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में आचार्योक्त ही कहा है। स्पष्टाधिकार–

"अष्टयमै (२८) कृतचंद्रै (१४) र्मुनीन्दुभि (१७) भौमजीवरविजानाम्।
उदयः प्रागस्तमयस्तदूनचक्रांशकैः पश्चात्॥५२॥
खशरै (५०) र्जिनै (२४) र्ज्ञर्सितयोरिषुतिथिभि १५५ र्मुनिनगेन्दुभिः १७७ पश्चात्।
उदयास्तमयौ व्यस्तौ मण्डलभागैस्तदूनेः प्राक्॥५३॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"वस्वस्विभि (२८) र्युगकुभि (१४) र्नगचन्द्रमोभिः (१७)
प्राच्युद्गमः क्षितिजजीवशनैश्चराणाम्।
शीघ्राख्यकेन्द्रजलवैर्भगणांशशुद्धैरेभिः
पुनर्नियतमस्तमयः प्रतीच्याम्॥
द्राककेन्द्रजैः खविषयैश्च (५०) जिनेश्च (२४)
भागैरुद्गच्छतो बुधसितौ दिशि पाशपाणेः।
तस्यामपीषुतिथिभिः (१५५) स्वरशैलचन्द्रैः (१७७)
भागैस्तयोर्निगदितोऽस्तमयो ग्रहज्ञैः॥"

अवक्रवक्रास्तमयोदयोक्तभागाधिकोनाः कलिका विभक्ताः।
द्राक्केन्द्रभुक्त्याप्तदिनैर्गतैष्यैरवक्रवक्रास्तमयोदयाः स्युः॥४४॥

उदयास्त दिवस—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह के शीघ्रकेंद्रांश तथा पूर्वश्लोक पठित ग्रह (वक्रवक्रया उदयास्त) केंद्रांश के अन्तर की कलायें बनाकर प्राप्तफल में शीघ्रकेंद्र गति से भाग देने से प्राप्तफल ग्रह के उदयास्त दिवस अथवा वक्रऽवक्र दिवस प्राप्त होते हैं।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है—

"मन्दफल स्फुट युक्त्यूनशीघ्रभुक्त्या हृता दिवसाः॥४८॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार अध्याय ४ में आचार्योक्त ही कहा है—

"एष्यातीत कलाभ्यः स्वकेन्द्रभुक्त्या दिनानि स्युः॥१३॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में आचार्योक्त ही कहा है। कुजादिस्पष्टाधिकार—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"उदयास्तविलोमयानसौम्नामधिकोनाः कलिका हृता दिनानि।
मृदुसंस्कृतया ग्रहस्य गत्यारहिताशूच्चजभुक्तिलिप्तिकाभिः॥२६॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है।

स्पष्टाधिकार–

"न्यूनाभ्यधिका लिप्ता भक्ता निजकेंद्रभुक्ति लिप्ताभिः।
लब्धैरेष्य गतदिनैर्वक्राद्याः स्पष्टतां यान्ति॥३४॥"

इदानीं स्फुटग्रहान्मध्यग्रहानयनमाह—

स्फुटग्रहं मध्यखगं प्रकल्प्य कृत्वा फले मन्दचले यथोक्ते।
ताभ्यां मुहुर्व्यस्तधनर्णकाभ्यां सुसंस्कृतो मध्यखगो भवेत् सः॥४५॥

स्फुट ग्रह से मध्यम ग्रह आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— स्फुट ग्रह को मंदस्पष्ट ग्रह मान कर शीघ्रोच्च को घटाकर शीघ्र केंद्र ज्ञात करके यथोक्त प्रकार से उसका शीघ्रफल ज्ञात करे तथा उसका संपूर्ण का विलोम संस्कार स्पष्ट ग्रह में करे। इस प्रकार बार-बार तब तक करे जब तक फल स्थिर न हो जावे। इस प्रकार मंद स्पष्ट ग्रह प्राप्त होता है। फिर मंदोच्च में से मंद स्पष्ट ग्रह घटाकर मंदकेंद्र से मंदफल साधन करे तथा उस संपूर्ण फल को मंद स्पष्ट ग्रह में विलोम संस्कार करे (मंदफल धन हो तो ऋण तथा ऋण हो तो धन)। इस प्रकार बार-बार जब तक करे जब तक स्थिर फल प्राप्त न हो। इस प्रकार मध्यम ग्रह स्पष्ट होता है।

उपपत्ति— ग्रह के शीघ्रोच्च तथा स्फुट ग्रह का अंतर मंद स्पष्ट ग्रह के लिए उपयुक्त शीघ्रकेंद्र नहीं होता है अतः उसको मंद स्पष्ट तुल्य मानकर उसके शी.फ. का आनयन कहा गया है तथा उसका संस्कार मंद ग्रह से स्फुट ग्रह ज्ञात करने की विधि के विपरीत (विलोम) करना चाहिये।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार अध्याय ३ में आचार्योक्त ही कहा है—

"शीघ्रात्स्पष्ट ग्रहोनाच्चलफलमखिलं खेचरः स्यादनष्टे
व्यत्यासात्स्पष्टसंज्ञे धनमृणमसकृत् स्यान्मृदुस्पष्टसंज्ञः।
तस्मान्मन्दोच्चहीनान्मृदुफलमपि च व्यत्ययादेव कृत्स्नं।
तत्रानेष्टक्षयस्वं गदितवसकृन्मध्यमोऽन्यश्च तस्मात्॥१८॥"

ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"स्वोच्चाद्विशोध्य कृत्वा प्राग्वत् फलमृणधनं विपर्यस्तम्।
कार्यमनष्टस्पष्टे पुनः पुनर्निश्चलो मध्यः॥२८॥"

इदानीं पलभाज्ञानमाह—

क्रियतुलाधरसंक्रमपूर्वतोऽयनलवोत्थदिनैर्विषुवद्दिनम्।
मकरकर्कटसंक्रमतोऽयनं द्युदलभा विषुवद्दिवसेऽक्षभा॥४६॥

पलभा ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अयनांश की कला में रवि भुक्ति (गति) से भाग देने से प्राप्त फल दिन तुल्य पूर्व में (सूर्य की) मेष या तुला संक्रांति होती है (निरयण)। इसी प्रकार एतत् दिवस पूर्व मकर तथा कर्क संक्रांति होती है। उन विषुवद् दिनों में मध्यान्ह समय पर (१२ अंगुल) शंकु की छाया को पलभा कहते हैं।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है।

"अयनांशसंस्कृत इने गोलादिस्थे दिनार्धभे ये स्तः।
तद्योगार्धं विषुवच्छाया तच्छङ्कुवर्गैक्यात्॥३॥
मूलं विषुवत्कर्णस्तत्क्रा (१२) ढयोनाहतेः पदं भा वा।"

अन्य आचार्यों ने भी पलभा की यही परिभाषा दी है।

सूर्यसिद्धान्त त्रिप्रश्ना. में—

"एवं विषुवती छाया स्वदेशे या दिनार्द्धजा॥१२॥
दक्षिणोत्तररेखायां सा तत्र विषुवत्प्रभा।"

इदानीं पञ्चज्यासाधनमाह—

युक्तायनांशादपमः प्रसाध्यः
कालौ च खेटात् खलु भुक्तभोग्यौ।
जिनांशमौर्व्या १३९७ गुणितार्कदोर्ज्या
त्रिज्यो ३४३८ द्धृता क्रान्तिगुणोऽस्य वर्गम्॥४७॥
त्रिज्याकृतेः ११८१९८४४ प्रोह्य पदं द्युजीवा
क्रान्तिर्भवेत् क्रान्तिगुणस्य चापम्।
अक्षप्रभासंगुणितापमज्या
तद्द्वादशांशो भवति क्षितिज्या॥४८॥

सा त्रिज्यकाघ्नी विहता द्युमौर्व्या चरज्यकास्याश्च धनुश्चरं स्यात्।४८$\frac{1}{2}$।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पांच ज्या साधन—

सूर्यप्रभा टीका— जहाँ ग्रह होता है वहाँ उसकी क्रांति साधन करने के लिए उसके भुक्तांश (Longitude) तथा अयनांश के योग तुल्य (अर्थात् सायन) ग्रह लेते हैं। इसी प्रकार क्रांतिवृत्त पर ग्रह के उदय से पूर्व अथवा पश्चात् का समय ज्ञात करने के लिए सायन ग्रह (ज्ञात करते हैं) लेते हैं।

सायन रवि की भुजज्या को परमक्रांति ज्या १३९७ से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने से रवि की इष्ट क्रांतिज्या होती है। इसका चाप क्रांति होती है। त्रिज्यावर्ग (=११८१९८४४) में से इष्ट क्रांतिज्या के वर्ग को घटा कर शेष का मूल लेने से द्युज्या (अहोरात्रवृत्त का व्यासार्ध) प्राप्त होती है। इसकी दिशा क्रांति ज्या की दिशा के अनुरूप होती है।

क्रांतिज्या को पलभा से गुणा करके बारह से भाग देने से क्षितिज्या (कुज्या) होती है। इस क्षितिज्या को त्रिज्या से गुणा करके द्युज्या से भाग देने से चरज्या होती है तथा चरज्या का चाप चर कला (असु) होता है।

उपपत्ति— विषुवद् तथा क्रांतिवृत्त का याम्योत्तर अंतर क्रांति होता है। इनके संपात बिंदु (मेष तथा तुला) पर क्रांति का अभाव होता है। संपात से तीन राशि अंतर (कर्क तथा मकर) पर परम क्रांति २४ अंश तुल्य होती है। अतः संपात बिन्दु से आरंभ करके क्रांतिसाधन करते हैं। राशि का उदयास्त मेषारंभ से पूर्व अयनांश तुल्य अंतर पर होता है। अतः सायन अंश युक्त ग्रह की भुक्त भोग्य क्रांति काल के लिए कहा गया है। यदि त्रिज्या तुल्य भुजज्या में (२४ अंश) जिनांश ज्या तुल्य क्रांतिज्या प्राप्त होती है तो इष्ट ज्या में कितनी होगी? इस प्रकार अनुपात करने से प्राप्तफल क्रांतिज्या, विषुवद् वृत्त में तिर्यगरूप में होती है। क्रांतिज्या भुज तथा त्रिज्याकर्ण के वर्गों का अंतर का मूल अहोरात्र वृत्त का व्यासार्ध साधित होता है। इसको द्युज्या कहते हैं। कुज्या के लिए द्वादश अंगुल कोटि में पलभा तुल्य भुज प्राप्त होती है तो क्रांतिज्या कोटि में कितनी होगी? प्राप्तफल क्षितिज तथा उन्मण्डल के मध्य अहोरात्र वृत्त की ज्या रूप कुज्या होती है। इसका धनु बनाने के लिए इसको त्रिज्या वृत्त में परिणित करते हैं। यदि द्युज्याव्यासार्ध में इतनी कुज्या होती है तो त्रिज्याव्यासार्ध में कितनी होगी? प्राप्तफल चरज्या होती है। इसका धनु चर होता है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"जिनभागज्यागुणिता सूर्यज्या व्यासदलहृता लब्धम्।
इष्टापक्रमजीवा विषुवदुदग्दक्षिण सवितुः॥५५॥
इष्टापक्रमवर्ग त्रिज्यावर्गाद्विशोध्य शेषपदम्।
विषुवदुदग्दक्षिणतः स्वाहोरात्रार्धविषकम्भः॥५६॥
क्रान्तिज्या विषुवच्छायया गुणा द्वादशोद्धृता क्षितिजा।
स्वाहोरात्रेऽनष्टा व्यासार्धेनाहता भक्ता॥५७॥
स्वाहोरात्रार्धेन क्षयवृद्धिज्याधनुश्चरप्राणाः।
ते षड्हृता विनाडयो विनाडिका नाडिकाः षष्ट्या॥५८॥"

सूर्यसिद्धान्त में द्युज्या का आनयन कुछ भिन्न प्रकार से बताया है, स्फुट क्रांति से ज्या तथा उत्क्रमज्या का साधन करके त्रिज्या में से उत्क्रमज्या को घटाने से अहोरात्रवृत्त का व्यासार्ध द्युज्या प्राप्त होता है। शेष का आनयन आचार्योक्त प्रकार ही से है। यथा स्पष्टाधिकार—

"परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः (१३९७)।
तदगुणा ज्या त्रिजीवाप्ता (३४३८) तच्चापं क्रांतिरुच्यते॥२८॥
क्रांतिज्या विषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता।
त्रिज्यागुणाऽहोरात्रार्धकर्णाप्ता चरजा ऽसवः॥६१॥"

भास्कर (प्रथम) ने **महाभास्करीय अध्याय ४** में क्रांतिसाधन के लिए आचार्योक्त सूत्र ही कहा है लेकिन उन्होंने १३९७÷३४३८ = $\frac{१३}{३२}$ ले लिया है। यथा—

"त्रयोदशहता जीवा त्रिस्फुटस्य विवस्वतः।
द्वात्रिंशता हृता क्रांति परिशेषस्तु पूर्ववत्॥२५॥

तथा अध्याय ३ में क्रांतिज्या, द्युज्या, अक्षज्या तथा चर साधन आचार्योक्त ही बताया है। यथा—

"इष्टज्यां मुनिरन्ध्र पुष्कर शशि क्षुण्णां सदा संहरेद्
व्यासार्धेन भवेदपक्रमगुणस्तात्कालिकस्तत्कृतिम्।
विषकम्भार्धकृतेर्विशोध्य च पदं द्युव्यासखण्डं विदुः
स्वेष्टक्रान्तिहतं पलं प्रविभजेल्लम्बेन जीवा क्षितेः॥६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यासखण्डगुणितं क्षितेर्गुणं संहरेद् दिवसजीवया पुनः।
काष्ठितं च यदवाप्तमत्र तु प्राच्यते चरदलं सतां वरैः॥७॥''

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

''जीवा क्रान्तिज्याघ्नी गज्या भक्ताऽपमज्या स्यात॥११॥
रव्यपमज्या पलभाघातः परभाजितः कुज्या।
क्रांतिज्यावर्गोनाद्गज्यावर्गात् पदं द्युज्या॥१७॥
द्युज्या भक्तः कुज्या गज्याघातश्चरज्या स्यात्।
तच्चापकलाः प्राणास्तैर्निघ्नी मध्यमाभुक्तिः॥१८॥''

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

क्रांतिज्या आनयन—

''क्रान्तिः परा जिनांशाः पराक्रमज्या जिनांशकज्योक्ता।
तद्गुणितऽर्कभुजज्या त्रिगुणहृदिष्टापमज्या स्यात्॥१॥

अध्याय ४ में द्युज्या आनयन—

''क्रांतिज्यावर्गोनास्त्रिज्यावर्गात्पदं स्यात्।''१॥

अध्याय ५ में कुज्याआनयन—

''विषुवच्छाया गुणिता क्रान्तिज्याऽर्कोद्धृता वा (कुज्या) स्यात्॥१॥''

अध्याय ८ में चरज्या आनयन—

''कुज्या त्रिज्या गुणिता द्युज्याभक्ता चरार्धजीवा स्यात॥१॥''

इस प्रकार वटेश्वर ने अनेकों विधियों से इन पांच ज्याओं तथा अग्रादि को साधन करने के लिए अलग-अलग पूरे-पूरे अध्याय दिये हैं।

अथ प्रकारान्तरेण चरानयनमाह—

स्वदेशजस्तच्चरखण्डकैर्वा लघुज्यकावद्रविदोस्त्रिभागात्॥४९॥
मेषादिराशित्रितयस्य यानि चराण्यधोऽधः परिशोधितानि।
तानि स्वदेशे चरखण्डकानि दिङ्नागसत्र्यंशगुणैः १०।८।$\frac{१०}{३}$ विनिघ्नी॥५०॥
पलप्रभा तोयपलात्मकानि स्थूलानि वा स्युश्चरखण्डकानि।
स्थूलं चरं चाम्बुपलात्मकं तैस्तत्प्राणचापं यदि वापि सूक्ष्मम्॥५१॥

प्रकारांतर से चर आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— स्वदेश के तीन चर खण्ड ज्ञात करने के लिए

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लघुज्या प्रकार से सायन रवि के लिए तीन राशियों की ज्या ज्ञात करे, फिर पूर्व श्लोक ४७ – ४८ – ४८$\frac{१}{२}$ द्वारा चर ज्ञात करे। मेषादि तीन राशियों (३०°, ६०°, ९०°) के चर को अधो अद्यः स्थापित करके घटाने (द्वितीय में से प्रथम, तृतीय में से द्वितीय) से प्राप्त तीन चर खण्डों को क्रमशः १०, ८ तथा १०/३ से गुणा करके स्वदेश की पलभा से गुणा करने से वे स्वदेश के स्थूल चर खण्ड होते हैं। चाप में ६ का गुणा देने से प्राण प्राप्त होते हैं जिन की ज्या ज्ञात करे। ये सूक्ष्म होने से वही इनके चाप होते हैं।

उपपत्ति— एक अंगुल पलभा मान कर एक, दो तथा तीन राशियों की पृथक्-पृथक् चर प्राण ज्ञात करके ६ से विभाजित करने से प्राणों को पलात्मक बनाकर उनको अधोअद्यः स्थापित करके घटाने से क्रमशः १०, ८ तथा १०/३ उत्पन्न होते हैं। एक अंगुल पलभा के चर असु क्रमशः एक राशि के ६०, दो राशि के १०८ तथा तीन राशि के १२८ होते हैं। इनको अद्यो अधः घटाने से क्रमशः ६०, (१०८–६०) = ४८, (१२८–१०८) = २० प्राप्त हुए। इनमें ६ से भाग देने से क्रमशः १०, ८, १०/३ प्राप्त होते हैं।

सूर्य का चर इसके स्वक्षितिज तथा उन्मंडल के मध्य भाग के उदय काल के तुल्य होता है। अतः निरक्ष में राशि उदय काल में स्वदेशी चरखण्ड घटाने से स्वदेशी राशि उदयकाल आ जाते हैं। मेष राशि का चर, मेष राशि द्वारा स्वक्षितिज तथा उन्मण्डल से ऊपर उदय होने में लगने वाला काल है। क्योंकि मेष राशि इन दोनों क्षितिजों पर एक साथ उदित होती है अतः मेष राशि का चर मेष के अंतिम बिंदु का पहले स्वक्षितिज फिर (बाद में) उन्मंडल तक उदय का काल है। इसी प्रकार दो राशियों का चर काल मेष तथा वृषभ दोनों के पूर्ण उदय होने का काल है। अतः इसमें से मेष का उदय काल घटाने से वृषभ राशि का उदय काल आता है। इसी प्रकार तीन राशि का उदयकाल मेष, वृष तथा मिथुन तीनों का पूर्ण उदय होने का चरकाल है। अतः इनमें से प्रथम दो राशि का उदय काल घटाने से मिथुन राशि का उदयकाल शेष रहता है।

अतः अनुपात किया कि यदि एक अंगुल पलभा के इतने चर खंड प्राप्त होते हैं तो इष्ट पलभा के कितने होंगे? इस प्रकार इष्ट स्थान की पलभा के चरखंड प्राप्त होते हैं। उनकी ज्या ज्ञात कर लेते हैं और यही (लघु होने से) स्वल्पांतर से उनके धनु होते हैं। अतःआचार्य ने "तत्प्राण चापं यदि वापि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूक्ष्मम्'' कहा है। चर खण्डों की ज्या करने के लिए आचार्य ने लघुज्या साधन वासना के अनुसार करने को कहा है। वहाँ लघुज्या के नो खण्ड है जो तीन खण्ड के तुल्य है। अतः तीन-तीन खंड पर एक-एक भुज होगा अतः इस प्रकार तीन खंड होंगे। इसीलिए आचार्य ने ''रवि दोस्त्रि भागात्'' कहा है। कर्क्यादि में चरखंड उपचीयमान होने के कारण चर खंड को धन करते हैं तथा तुलादि में अपने क्षितिज से उन्मंडल नीचे हो से चरखंड को ऋण करते हैं।

विशेष— भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय के अध्याय ३ में आचार्योक्त ही कहा है। परन्तु वही बात कुछ अलग ढंग से कही है।

''जिना दशघ्ना यमरन्ध्रशालिनो निशाकराष्टौ गुणिताः पलाङ्गुलैः।
हृताश्चतुर्भि क्रिय-गो-नरान्तजा भवन्ति निः श्वासलवाः चरोद्भवाः॥८॥''

अर्थात् ''चौबीस का दश गुणा (अर्थात् २४०), १९२ तथा ८१ को पलभा अंगुल से गुणा करके ४ से विभक्त करने से मेषादि तीन राशियों के चर असु प्राप्त होते हैं।

यहाँ आचार्य ने जो २४०, १९२ तथा ८१ गुणांक बताये हैं वे एक अंगुल पलभा स्थान के मेषादि तीन राशियों के चरासु के चतुर्गुणा हैं। यथा ६०×४, ४८×४, २०×४। इनको २४ से विभक्त करने से ये क्रमशः १०, ८ तथा १०/३ चरपल होते हैं। यही भास्कराचार्य (द्वि) ने गुणा करने के लिए अंक कहे हैं। यहाँ असु को ६ से विभक्त करने से पल प्राप्त होते हैं। आचार्य ने यहाँ श्लोक में ४ से अलग से विभक्त करने को कहा है अतः ६×४=२४ का भाग दिया है।

पंचसिद्धान्तिका अध्याय ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''विंशति' –'रष्टिः सार्धा' पादोनाः सप्त 'चाजपूर्वाणाम्।
विषुवच्छायागुणिताः क्रमोत्क्रमाच्च रविनाड्योऽर्धे॥१०॥''

यहाँ २०, १६$\frac{१}{२}$ तथा ६$\frac{३}{४}$ गुणांक कहे हैं जो आचार्योक्त के तुल्य (स्वल्पांतर) ही हैं। ये १०, ८$\frac{१}{४}$ तथा ३$\frac{३}{८}$ के तुल्य है जो स्वल्पांतर से १०, ८, ३$\frac{१}{३}$ के तुल्य हैं।

ब्रह्मगुप्त ने खंडखाध्याय के अध्याय १ श्लोक २१ में १५९/१६, ६५/८ तथा१०/३ च.खं. गुणांक कहे हैं जो स्वल्पांतर से १०, ८, १०/३ के तुल्य ही हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"नवतिथयो (१५६)ऽष्टि (१६) विभक्ताः
पंचरसा (६५) वसु (८) हृता दश १० त्रिहताः।
विषुवच्छायागुणिताः स्वदेशजाश्चरदलविनाडयः॥"

मुंजालाचार्य ने लघुमानस त्रिप्रश्नाध्याय में आचार्योक्त खंड ही कहे हैं —

"नख (२०) घ्नी विषुवच्छाया स्वाक्षांशों (१/५) ना त्रि (३) भाजिता।
उदग् विषुवदाद्यर्क भुजराशि गुणाश्चरे॥२२॥"

यहाँ आचार्य ने कहा है कि पलभा को २० से गुणा करो; फिर इस गुणनफल में से इसका ५ वाँ भाग हीन करो; गुणनफल में ३ का भाग दो। इस से स्वस्थान के तीन चर खंड प्राप्त होते हैं।

आचार्योक्त कथन को इस प्रकार कह सकते हैं पलभा × २०; पलभा × २० − $\frac{\text{पलभा} \times २०}{५}$; $\frac{\text{पलभा} \times २०}{३}$ तीन चरखंड होते हैं (अर्थात् प.×२०; प.×२०−४ = प.१६; तथा $\frac{\text{पलभा} \times २०}{३}$। इनमें दो का भाग देने से प.×१०, प.×८, प.×$\frac{१०}{३}$ भास्कराचार्योक्त प्राप्त होते हैं।

इदानीं दिनरात्रिमानमाह —

चरघटीसहिता रहिताः क्रमात्तिथिमिता घटिकाः खलु गोलयोः।
भवति तद्द्युदलं निजसावनं खगुणतः पतितं रजनीदलम्॥५२॥

दिनरात्रि मान —

सूर्य-प्रभा टीका — १५ (पंद्रह) घटी में चरघटी को उत्तर गोल में योग करने से तथा दक्षिण गोल में हीन करने से स्वदेश का सावनदिनार्ध प्राप्त होता है। दिनार्ध को ३० घटी में से घटाने से रात्रिर्ध होता है (दोनों गोलों में)

उपपत्ति — उन्मंडल तथा याम्योत्तर वलय के मध्य १५ घटी का समय होता है। उत्तर गोल में उन्मंडल के नीचे स्वक्षितिज होता है अतः चरार्धकाल तुल्य १५ घटी से अधिक उत्तर गोल में दिनार्ध होता है। दक्षिण गोल में इससे विपरीत स्थिति होने के कारण वहाँ चरार्ध को १५ घटी में से घटाया जाता है।

विशेष — ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"दिनमान रात्रिघटिकाश्चरार्धघटिकाभिरुत्तरे गोले।
पञ्चदश युक्तहीना याम्ये हीनाधिका द्विगुणाः॥६०॥"

सूर्य-सिद्धान्त स्पष्टाधिकार में भी आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा—

तत्कार्मुकमुदक्क्रान्तौ धनहानि पृथक् स्थिते।
स्वारोहात्र-तुर्भागे दिनरात्रिदले स्मृते॥६२॥
याम्यक्रान्तौ विपर्यस्ते द्विगुणे तु दिनज्ञपे।
विक्षेपयुक्तोनितया क्रान्त्या भानामपि स्वके॥६३॥"

मुंजालाचार्य ने भी लघुमानस त्रि.प्र. में यही कहा—

"व्यस्तं चरविनाडिभिः खाग्नय संस्कृता दिनम्।
मध्याह्नान्नतनाड्यः स्युर्दिनार्धद्युगतान्तरम्॥२५॥"

महाभास्करीय में भास्कर (प्रथम) ने आचार्योक्त ही कहा है। अध्याय ४—

"उदक्चरार्धसंयुक्तः पादोऽहोरात्रसम्भवः।
दिनार्ध दक्षिणे हीनं रात्र्यर्ध तद्विपर्ययात्॥२८॥"

इदानीं ग्रहाणां चरकर्माह—

चरघ्नभुक्तिर्द्युनिशासु भक्ता तयोनयुक्तः खचरो विधेयः।
क्रमादुदग्दक्षिणगोलगेऽर्के सूर्योदये व्यस्तमतोऽस्तकाले॥५३॥

ग्रहों के चर कर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— चर खण्ड असु से ग्रह (गति) भुक्ति को गुणा करके २१६५९ से विभक्त करने से प्राप्त कलादिफल को, ग्रह यदि उत्तर गोल में हो तो ग्रह में ऋण करे तथा दक्षिण गोल में उदित हो तो धन करे। ग्रहों के अस्त काल में विपरीत क्रिया करे और सूर्य (सूर्योदयास्त पर) के लिए भी ऐसे ही करें।

उपपत्ति— लंकोदय कालिक ग्रह को स्वोदयकालिक करना है। उन्मंडल तथा स्वक्षितिज का अंतर ग्रह अहोरात्र वृत्त में चरार्धासु होते हैं। अतः अनुपात किया कि यदि अहोरात्र असु २१६५९ में ग्रह गतिकला पाते हैं तो चरासु में कितनी पायेंगे? प्राप्तफल कला रूप को उत्तर गोल में उन्मंडल से स्व क्षितिज नीचे रहने से, उन्मंडल कालिक ग्रह में से घटाने से वह स्वक्षितिजोदय कालिक ग्रह बन जाता है। लंका का जो क्षितिज है वह अन्य देश का उन्मण्डल है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दक्षिण गोल में उन्मंडल से स्वक्षितिज ऊपर स्थित होने से पूर्व प्राप्त चरार्ध घटी/असु संबंधि ग्रह गतिकला को उन्मंडल कालिक ग्रह में जोड़ने से स्वक्षितिजोदय कालिक ग्रह होता है। अस्तकाल में यह स्थिति विपरीत होने से संस्कार इसके विपरीत करते हैं।

यहाँ आचार्य ने दिनरात्रिमान के २१६५९ तुल्य उसु से विभक्त करने के लिए कहा है यह ६० घटी के तुल्य है। अतः चर घटी को ६० से भी विभक्त कर सकते हैं। चर असु में २१६५९ असु से भाग देने से भी तथा चर घटी में ६० घटी से भाग देने से भी कलादिफल प्राप्त होता है। अहर्गण से साधित ग्रह लंकाक्षितिज़ोदय कालिक होता है। देशांतर संस्कार से उन्मंडल कालिक होता है, यहाँ प्रक्रिया द्वारा ग्रह को स्वक्षितोदय कालिक किया है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"चरदलघटिका गुणिता भुक्तिः षष्ट्याहृता कलाद्याप्तम्।
ऋणमुदयेऽस्तमये धनमुत्तरगोलेऽन्यथा याम्ये॥५९॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के स्पष्टाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"ग्रहगति चर खण्डप्राणपिण्डाभिघातादहरसुभिरवाप्तं ताश्च लिप्ता ग्रहेषु।
धनमृणमुदये स्युर्याम्यसौम्येऽर्क गोले न दिनरजनिमध्ये व्यस्तमस्ते विधेयम्॥६९॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"(चरकला) तच्चाप कलाः प्राणास्तेनिघ्नी मध्यमा भुक्तिः॥१८॥
चक्रकलाप्ता लिप्ताः सायन भानौ तुलाजपूर्वस्थे।
उदये स्वमृणं ताः स्युर्व्यस्ताश्चास्ते ग्रहेषु निखिलेषु॥१९॥
स्फुटरव्युदयेऽस्ते वा स्पष्टीकरणोचिताः स्युरिन्द्वाद्याः।
नैतद्द्युरात्रिदलयोः प्राणाश्चक्रांशभाजिता नाडयः॥२०॥"

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय में आचार्योक्त ही कहा है—

"चरप्राणहता भुक्तिरहोरात्रासुभाजिता।
उदयास्तमयोः शुद्धि क्षेपश्चोत्तरगे रवौ॥२६॥
व्यत्यययो दक्षिणे भानावन्येषामनुपाततः।
फलं च तद्वशाद्विद्धि क्षेपः शोधनमेव वा॥२७॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पंच सिद्धान्तिका अध्याय ३ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"देशान्तरनाडीभ्यश्चरनाड्यर्धं क्षयस्तु पूर्वाऽर्धे।
चक्रस्याऽर्धे चान्त्ये वृद्धिस्तद्भोगमपि जह्यात्॥१५॥"

अथ लङ्कोदयसाधनमाह—

एकस्य राशेर्बृहती ज्यका या द्वयोस्त्रिभस्यापि कृतीकृतानाम्।
स्वस्वापमज्याकृतिवर्जितानां मूलानि तासां त्रिगुणा ३४३८ हतानि॥५४॥
स्वस्वद्युमौर्व्या विभजेत् फलानां चापान्यधोऽधः परिशोधितानि।
क्रमोत्क्रमस्थानी निरक्षदेशे मेषादिकानामुदयासवः स्युः॥५५॥

राशियों के लङ्कोदयमान साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— एक, दो एवं तीन राशि अंत की वृहद्ज्या के वर्गों में से उनकी स्वस्व क्रांतिज्या के वर्गों को घटाकर प्राप्त शेष के मूल को त्रिज्या से गुणा करके स्वस्व द्युज्या से विभक्त करने से प्राप्त चाप फलों को अधो अधः शोधित करने से (तृतीय में से द्वितीय तथा द्वितीय में से प्रथम) लंका पर क्रमशः मेषादि तीन राशियों के उदय असु प्राप्त होते हैं।

उपपत्ति— राशियों के उदित होते समय क्रांतिवृत्त तिरछा स्थित होने के कारण तीनों राशियों के तीन क्षेत्र उत्पन्न होते हैं। मेषान्त की ज्या क्रांतिवृत्त में कर्ण होती है, उसकी क्रांति की ज्या लंका क्षितिज में भुज होती है। इनके वर्गों के अंतर का मूल मेषांत पर अहोरात्र वृत्त की कोटि होती है। ऐसे ही दो राशि की ज्या कर्ण, उसके क्रांति भुज तथा इनके वर्गांतर का मूल वृषांत पर अहोरात्र वृत्त की कोटि होती है। इसी प्रकार तीन राशि की ज्या कर्ण, परम क्रांतिज्या भुज तथा परमाल्प द्युज्या कोटि होती है। इन कोटि के चाप बनाने के लिए इनको त्रिज्या वृत्त में परिणामित करते है, जिसके लिए इनको त्रिज्या से गुणा करके स्वस्वद्युज्या से भाग देने से इनके चाप प्राप्त होते हैं। प्रथम मेष राशि का, दूसरा मेष तथा वृषभ दोनों का तथा तीसरा मेष से मिथुन तीन राशि का होता है। इनको अधोअधः घटाने से प्रत्येक राशि का मान प्राप्त हो जाता है।

विशेष— पंचासिद्धान्तिका अध्याय ४ में आचार्योक्त विधि ही कही है। यथा–

"(राशिज्या)ऽपक्रमज्या (कृ)तिवि (श्ले) षमूल (हत) वि(स्ता)रात्।
द्यु(व्या) स (ह्र) ता (च्चापं) 'दिग्घ्नं' राश्यु (द्ग) मविनाड्यः॥२६॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वटेश्वर सिद्धान्त में वटेश्वराचार्य ने त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ८ में आचार्योक्त कहा है—

"क्रान्तिज्या राशिज्या कृतिविवरपदैर्हता त्रिभज्याप्ताः।
स्वस्वद्युज्ययाऽप्तधनुषो विवराण्यथवा निरक्षराश्युदयाः॥२॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"ज्यावर्गात् क्रान्तिज्या वर्गोनात्तत्पदाहता त्रिज्या।
स्वहोरात्रार्धहृताचाधश्चापान्तराण्यथवा॥१६॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"तत्क्रांतिज्याकृतिविरहिताच्छिञ्जिनी वर्गतो वा मूलं यत् स्यात् त्रिभवनगुणस्ताडितस्तेनभक्तः।
स्वद्युज्याभिविहितधनुषां तत्फलानामधोऽधः संशुद्धानांमितिरसुमयास्ते निरक्षोदयाः स्यु॥"

इदानीं प्रकारान्तरेणाह—

कीटादिराश्यन्तजकोटिजीवास्त्रिज्या ३४३८ गुणाः स्वस्वदिनज्ययाप्ताः।
चापीकृताः प्राग्वदधो विशुद्धाः कीटादिकानामुदयासवो वा॥५६॥

प्रकारान्तर से लंकोदय—

सूर्य-प्रभा टीका— कर्क्यादि राशियों की कोटिज्या को त्रिज्या से गुणा करके स्वस्व दिनज्या (द्युज्या) से विभक्त करने से प्राप्तफल के चापों को अधोअधः घटाने से कर्क्यादि के उदय असु प्राप्त होते हैं।

उपपत्ति— क्रांतिवृत्त में वृषभ के अंत से कर्क के अंत तक एक सूत्र बांधने से उस सूत्र का आधा एक राशि की ज्या होती है। मेषांत से सिंह राशि अत तक सूत्र बांधने से उस सूत्र का आधा दो राशि की ज्या होती है तथा मेष तथा तुला के आरंभ पर सूत्र बांधने से उसकी आधी तीन राशि की ज्या होती है। इस प्रकार वृषांत, मेषांत तथा मीनांत पर अहोरात्र वृत्त परिणत चापान्तर कर्क्यादि के उदय मान होते हैं। यह गोल से स्पष्ट है।

कर्क्यादि तीन राशि अंत की जो कोटिज्या है वह एक, दो, तथा तीन राशि की ज्या १७१९, २९७७, ३४३८ क्रमशः होती है। इनको त्रिज्या से गुणा करके स्वस्व द्युज्या से विभक्त करना है। वृषभ के अंत में जितनी दुज्या है वही कर्क्यान्त की ३२१८ है। मेषांत पर द्युज्या है वही सिहांत की ३३६६ है। कन्यांत

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पर द्युज्या है वही त्रिज्या ३४३८ है। इनसे भाग देने से प्राप्तफल के चापों को अधोअद्यः घटाने से कीटादि राशि के निरक्ष देश पर उदय असु होते हैं। दो तथा एक राशि की कोटिज्यायें एक तथा दो राशि की क्रमशः ज्यायें होती हैं।

इदानीं पुनः प्रकारान्तरेणाह—

मेषादिजीवास्त्रिगृहद्युमौर्व्या ३१४१ क्षुण्णा हृताः स्वस्वदिनज्यया वा।
चापीकृताः प्राग्वदधो विशुद्धा मेषादिकानामुदयासवः स्यु॥५७॥

पुनः प्रकारांतर से लंकोदय मान साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— मेषांत, वृषभांत तथा मिथुनांत राशियों की ज्या से मिथुनांत द्युज्या परमक्रांतिज्या (३१४१) से गुणा तथा स्वस्वद्युज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल के चापों को अधो अधः विशुद्ध करने से मेषादि राशियों के लंकोदय उसु प्राप्त होते हैं।

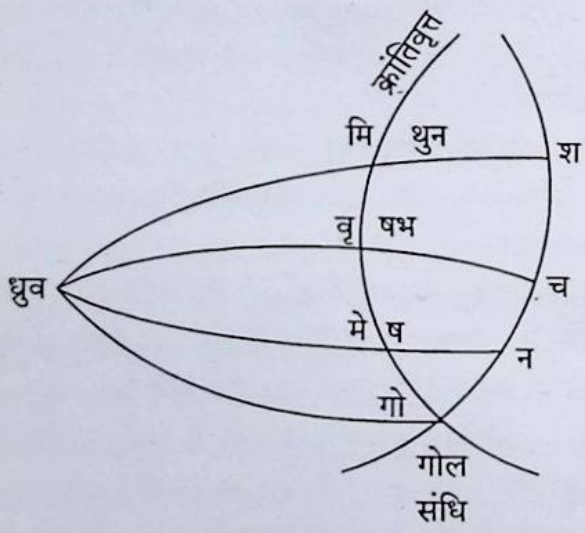

उपपत्ति— चित्र में गोन = मेषनिरक्षोदय। न च = वृषाराशि निरक्षोदय। चश = मिथुन निरक्षोदय। ध्रुमे = मेषांतद्युज्या चाप, ध्रुवृ = वृषांतद्युज्या चाप, ध्रुमि = मिथुनांतद्युज्या चाप = परमाल्पद्युज्याप

चापीय त्रिभुज ध्रुगोमे में $\frac{\text{परमाल्पद्युज्या} \times \text{मेषांतज्या}}{\text{मेषांतद्युज्या}}$ = मेष निरक्षोदय ज्या।

इसी प्रकार ध्रु गो वृ त्रिभुज में $\frac{\text{परमाल्पद्युज्या} \times \text{वृषांतज्या}}{\text{वृषांतद्युज्या}}$ = ज्या (मेष+वृष) उदय।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ध्रु गो मी त्रिभुज में $\frac{\text{परमाल्पद्युज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{परमाल्पद्युज्या}}$ = (मे.+वृ+मि) उदय ज्या।

इन तीनों का चाप करने से एक,दोनों, तीनों राशियों के उदयमान प्राप्त होंगे। इन्हें अधोअधः घटाने से मेष,वृषभ तथा मिथुन राशि के उदय मान प्राप्त होंगे।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में अष्टम अध्याय त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"अजवृष मिथुनान्तज्या मिथुनान्तद्युज्यया हता भक्ताः।
स्वरूपद्युज्ययाप्तधनुरन्तराणि लङ्कोदयप्राणाः॥१॥"

सूर्यसिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"त्रिभद्युकर्णार्द्धगुणाः स्वाहोरात्रार्द्धभाजिताः॥४२॥
क्रमादेकद्वित्रिभज्यास्तच्चापानि पृथक् पृथक्।
स्वाधोधः परिशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासवः॥४३॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"मिथुनाहोरात्रार्ध क्रियाद्यहोरात्रदलहृतं गुणितम्।
तज्ज्याभिराप्तचापान्तराणि लङ्कोदयप्राणाः॥१५॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अन्त्यद्युज्याविनिघ्नाः क्रियवृषमिथुनज्या हृताः स्वद्यु-
मौर्व्या प्राणानां चापलिप्ता विरचितविवराः स्युनिरक्षोदयास्ते।"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है।

"द्रेष्काणज्याः सर्वाः मिथुनान्तद्युज्या निघ्न्यः॥३८॥
स्वस्वद्युज्या भक्तास्तच्चापकला भावन्त्यसवः।
तोऽधो विशोधिताः स्युनिरक्षदेशोदयाः क्रमशः॥३९॥"

अर्थात् १०-१० अंश (द्रेष्काण) की ज्या ६ राशि के बीच १८ द्रेष्काण ज्या होंगी। सभी द्रेष्काण ज्या को मिथुनांतद्युज्या अर्थात् परम क्रा. ज्या ३१४१ से गुणा करके प्रत्येक राशि की स्वस्वद्युज्या से विभक्त करने से प्राप्त लब्धि की चाप कला असु प्राण को अधो अधः विशोधित करने से क्रमशः निरक्ष देश पर राशियों के उदय असु होते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय अध्याय तीन में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"शशिकृतशशिरामैराहता राशिजीवाः स्वकदिवसगुणार्धेर्भाजिताः काष्ठिताश्च।
पतितसमतिरिक्ताः पूर्व चापैरजाद्यैर्विषुवदुदयराशिप्राणपिण्डाः क्रियाद्याः॥९॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्यक्त कहा है। यथा–

"मेषस्य गोः पृथगतो मिथुनस्य मौर्व्या क्षुण्णो गृहत्रय भवो द्युगुणो विभक्तः।
स्वद्युज्यया फलधनुंषि विशेषितानि लङ्कोदयासव इति प्रवदन्ति सन्तः॥८॥"

अथ निष्पन्नांस्तानसूनाह—

तेऽभ्राद्रिभूपा १६७० गुणगोऽद्रिचन्द्राः १७९३
सप्ताग्निनन्देन्दुमिता १९३७ अथैते।
क्रमोत्क्रमस्थाश्चरखण्डकैः स्वैः
क्रमोत्क्रमस्थैश्च विहीनयुक्ताः॥५८॥
मेषादिषण्णामुदयाः स्वदेशे तुलादितोऽमी च विलोमसंस्थाः।
उदेति राशिः समयेन येन तत्सप्तमोऽस्तं समुपैति तेन॥५९॥

राशि उदयअसु मान—

सूर्य-प्रभा टीका— मेषादि तीन राशियों के (सायन) लंकोदय मान क्रमशः १६७०, १७९३ तथा १९३७ असु होते हैं। इन चर खण्डों को क्रम-उत्क्रम से स्थापित करके स्वस्थान के चर खण्डों को इनमें क्रम उत्क्रम से हीन और युक्त करने से स्वस्थान के मेषादि छः राशियों के उदय असु होते हैं। इन छः राशियों के उदय असुओं को विलिम क्रम से स्थापित करने से तुलादि छः राशियों के उदय असु होते हैं। उदित होने वाली राशि के अदयमान के तुल्य उससे सातवीं राशि का अस्त समय होता है।

उपपत्ति— निरक्ष तथा स्वदेश का उदयान्तर चर है। मेषोदय का आरंभ निरक्ष तथा स्वदेश पर एक साथ होता है। मेषांत पहले स्व क्षितिज पर तथा उसके पश्चात उन्मंडल पर होता है, अतः चरखण्ड को लङ्कोदय मान में से कम करने से स्वदेश का मेषोदय मान होता है। इसी प्रकार वृषभ तथा मिथुन का होता है। कर्क्यादि में चरखण्ड उपचीय मान होने से उनको धन करने से फल प्राप्त होते हैं। तुलादि में उन्मण्डल स्वक्षितिज के नीचे स्थित होने से चरखण्ड

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धन करते हैं। मकरादि में चरखण्ड अपचीय मान होने से उसको ऋण करने से फल प्राप्त होता है। यह गोल को देखने से स्पष्ट होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में त्रिप्रश्नाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"स्वचरासुभिरुनयुताः क्रमोत्क्रमस्थै क्रमोत्क्रमस्थास्ते।
उदयप्राण व्यस्ताश्चार्क तात्कालिकं कृत्वा॥१७॥"

आचार्य ने लंकोदय मान के अंक नहीं कहे हैं केवल विधि कही है। क्योंकि शायद वह यह जानते थे कि परमक्रांति का मान बदलता रहता है। अतः इनके मान स्थिर नहीं रह सकते हैं। इसी प्रकार सभी आचार्योक्त मान में अंतर है।

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में लंकोदय मान भास्कराचार्य से बहुत भिन्न कहे हैं लेकिन शेष बातें भास्करोक्त ही कही है। त्रिप्रश्नाधिकार अष्टम अध्याय यथा–

"ते चङ्कागाङ्ग भुवो (१६७९)ऽङ्गगोऽगशशिनः (१७९६) शराग्निगोचन्द्रः (१९३५)।
व्यस्तास्तथा चरदलोनयुता निजधाम्नि षट्सु चोत्क्रमतः॥५॥
निजसप्तम उदयासुभिरस्तं राशिः समेति नियमेन।
लङ्कोदयासुभिः स्वैर्याम्योत्तरवृत्तमायाति॥६॥"

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय के त्रिप्रश्नाध्याय ३ में राशि लंकोदय असु भास्कराचार्य के अधिक आसन्न कहे हैं तथा अन्य बातें आचार्योक्त कही हैं। यथा–

"खनगरसशशङ्काः पञ्चरन्ध्राद्रिरूपा विषयशिखिनवैकास्ते च दृष्टा विधिज्ञैः।
चरदलपरिहीणा योजिता व्युत्क्रमेण प्रतिविषयसमुत्थास्तूदया मेषपूर्वाः॥१०॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में लंकोदयमान भिन्न कहे हैं लेकिन उदयमान ज्ञात करने की विधि आचार्योक्त ही कही है। यथा–

"मभिधाः (५४९) मममाः (५५५) मतमाः (५६५) मदनाः (५८०) मधुहा (५९८) त्कथा (६१७) त्रीचा (६२६)।
चढिजाः (६४८) चरमाः (६२५) प्राणाश्चक्रादिमपदभवा ङ्कानाम्॥४०॥
व्यस्ताः कुलीरतोऽमी स्वचरासुभिरुनसयुताः कार्याः।
क्रमजोत्क्रमजैरुदयानिजदेश्याः स्युर्घटाद्व्यस्ताः॥४१॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् मेषोदयमान (५४९+५५५+५६५=) १६६९,
वृषभोदय मान (५८०+५९८+६१७ =) १७९५
तथा मिथुनोदयमान (६२६+६४८+६२५=) १८९९ होते हैं। शेष पूर्वोक्त प्रकार ही से।

मुञ्जालाचार्य ने लघुमानसम त्रिप्रश्नाधिकार में उदयमान पलों में कहे हैं तथा क्रम उत्क्रम से राश्योदयमान आचार्योक्त प्रकार से कहा है। यथा–
"वसुभान्य (२७८)ङ्ग्योदभ्रा (२९९) स्त्रिदन्ता (३२३) श्च क्रमोत्क्रमात्।
तत्तच्चरगुणार्धोना मध्यषट्केऽन्यथोदयाः ॥२३॥" ये मान पंचसिद्धांतिकोक्त हैं। यहाँ मेषोदय २७८ पल = १६६८ असु; वृषभोदय २९९ पल = १७९४ असु, मिथुनोदय ३२३ पल = १९३८ असु हैं। ये मान आचार्योक्त मान के अधिक निकट हैं।

सूर्यसिद्धान्त में राशिउदयसुभिन्न कहे हैं लेकिन उनके साधन की विधि आचार्योक्त प्रकार ही कही है। यथा त्रिप्रश्नाध्याय—
"खगाष्ट्योऽर्थगोऽगैकाः (१६७०) (१७९५) शरत्र्यङ्कहिमांशव (१९३५)।
स्वदेशचरखण्डोना भवन्तीष्टोदयासवः ॥४४॥
व्यस्ताव्यस्तैर्युताः स्वैः स्वैः कर्कटाद्यास्ततस्त्रयः।
उत्क्रमेण षडेवैते भवन्तीष्टास्तुलादयः॥४५॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धीद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में लंकोदय मान भिन्न कहे हैं लेकिन अन्य उदय मान विधि आचार्योक्त ही कही है। यथा–
"तेचासवो गगनभूधरषट्कचन्द्राः (१६७०) पञ्चाङ्क सप्तशशिनो
(१७९५)ऽक्षगुणाङ्ककचन्द्राः (१९३५)।
व्यस्तास्तथा निजचरार्धविहीनयुक्ताः
षण्णं क्रमात् स्वविषये पुनरुत्क्रमाच्च॥९॥"

उद्गच्छतः परिमितिर्भवनस्य यास्यादस्तंगते जलपतेर्दिशि सास्तराशेः।$\frac{१}{२}$।"

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका में लंकोदय मान पलों में कहे हैं लेकिन क्रम उत्क्रम प्रकार राशिउदयमान की विधि आचार्योक्त ही है। यथा–
"'"वसुमुनिपक्षा' 'व्येकं शतत्रयं' 'त्रिद्विकाग्नय (श्चाङ्का) (तु)।
परतस्त एव वामाः षडुत्क्रमात्ते तुलाद्यर्धे ॥३०॥"

यहाँ हमने देखा सभी आचार्योक्त राशि उदय मान भिन्न-भिन्न हैं। इसका

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक कारण तो परमक्रांति मान भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न होना है तथा दूसरा कारण भास्कराचार्य ने अगले श्लोक में कहा है।

इदानीं नैपुण्यमाह—

क्षेत्राणां स्थूलत्वात् स्थूला उदया भवन्ति राशीनाम्।
सूक्ष्मार्थी होराणां कुर्याद्द्रेक्काणकानां वा॥६०॥

कुशलता से सूक्ष्म मान ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— राशि उदय के (चाप) क्षेत्र मान बडे होने के कारण उनके उदय मान स्थूल प्राप्त होते हैं। इनके मान सूक्ष्म ज्ञात करने के लिए होरा अथवा द्रेष्काण भागों से उदय मान ज्ञात करने चाहिये।

उपपत्ति— जैसे राशि उदयमान पूर्व में ज्ञात किये हैं उसी प्रकार होरोदय के उदय मान ज्ञात करे। उत्तर गोल के १५ अंश के भाग करने से उनके छः होराभाग तीन राशि अंत तक प्राप्त होंगे जिनकी छः ज्यायें होंगी। इनको पृथक-पृथक् मिथुनांत द्युज्या ३१४१ से गुणा करके स्व-स्व द्युज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल के धनु को अधोअधः शुद्ध करने से (पांचवे को छठे में से, पांवचें में से चौथे को इस प्रकार) प्राप्त शेष होरादि उदय के असुमान होंगे। इसी प्रकार उत्तरगोल में दश अंश के भाग करने से द्रेष्काण भाग के उदय असु प्राप्त होंगे। ये नो भाग मिथुनांत तक होंगे। जिस प्रकार होरांशों के चर खण्डों को अधोअधः घटाया है, उसी प्रकार क्रिया करके द्रेष्काण के चरखंड ज्ञात करे।

इनको क्रम-उत्क्रम से स्थापित करके जोड़-घटाने से स्वदेश के होरोदय तथा द्रेष्काणोदय होते हैं। मेषादि से कन्यान्त तक १२ होरोदय तथा इनका व्यत्क्रम तुलादि से १२ होरोदय, इस प्रकार एक दिन में २४ होरा होंगे और द्रेष्काण एक-एक दिनार्ध में ९ होने से संपूर्ण अहोरात्र में ३६ होंगे।

सायन सूर्य के अंशों में १५ का भाग देने से गत होरा संख्या होगी। शेष वर्तमान होराके अंश भुक्त होंगे। इनको १५ में से घटाने से भोग्य अंश होंगे। भोग्य अंश को स्वदेश के होरोदय मान से गुणा करके अशुद्ध होरा उदयमान से भाग देने से प्राप्तफल को अशुद्ध से पूर्व उदित हो चुके होरा संख्या को १५ से गुणा करके गुणन फल में युक्त करने से लग्न के अंश होते हैं। इस लग्न के इष्ट काल का साधन करे। इसी प्रकार द्रेष्काणोदय से लग्नसाधन करे। यहाँ १५ के स्थान पर १० से गुणा भाग करे। इस प्रकार होरोदय तथा द्रेष्काणोदय से साधित लग्नादि के तथा उदयान्तर के कर्म सूक्ष्म होते हैं, अन्यथा स्थूल होते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यहाँ जो आचार्य ने लग्नानयन की विधि बताई है वह सूर्य सिद्धान्तादि में बताई पूर्ण राशि उदयमान के अनुसार लग्न साधन विधि के अनुरूप है।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा—

"द्रेष्काणज्याः सर्वा मिथुनान्तद्युज्यया निघ्न्यः ॥३८॥
स्वस्वद्युज्याभक्तास्तच्चापकला भवन्त्यसवः।
तोऽधो विशोधिताः स्युर्निरक्षदेशोदयाः क्रमशः ॥३९॥
तत्कालरवेरयनसंस्कृतमूर्त्तेर्द्रेकाण भोगलवाः।
तदुदयहतायनहृता भोग्याः प्राणाः भवन्तितान् जह्यात् ॥४२॥
इष्टप्राणेभ्योऽन्यानुदयांश्चाथाऽवशेषयेनबधात्।
अविशुद्धोदय लब्धा भागास्तात्कालिके रवौ क्षेप्याः ॥४३॥
शुद्धोदय भागाश्चासौ लग्नं संस्फुटं भवति।
रात्रौ भगणार्धयुताद्भानोर्भोग्यं विधाय संशोध्यम ॥४४॥
भोग्यः शुध्यति न यदा प्रश्नासुन्काहतिं तदा विभजेत्।
भानुद्रेकाणप्राणैर्लब्धांशाद्द्यो रविर्लग्नम् ॥४५॥
अयन संस्कृतभानोर्भोग्यं तद्वाद्विलग्न भुक्तं च।
क्षेप्यं मध्योदयजप्राणयुतं तत्तनोर्भवेत् समयः ॥४६॥
एकस्मिन् द्रक्काणे लग्नार्कौचेत् तदान्तरांशहताः।
पीनै भक्ता उदयासव इष्टास्ते भवन्त्यसवः ॥४७॥"

इस प्रकार आर्यभट ने बहुत विस्तार पूर्वक वह सब कुछ कहा है जिसका भास्कराचार्य ने मात्र इशारा किया है।

इदानीं भुजान्तरमाह—

भानोः फलं गुणितमर्कयुतस्य राशेर्व्यक्षोदयेन खखनागमही १८०० विभक्तम्।
गत्या ग्रहस्य गुणितं द्युनिशासुभक्तं स्वर्णं ग्रहेऽर्कवदिदं तु भुजान्तराख्यम् ॥६१॥

भुजान्तर संस्कार—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य के भुजफल को जिस राशि में सूर्य हो उस राशि के निरक्षोदय काल से गुणा करके एक राशि कला मान १८०० से विभक्त करने से प्राप्तफल को पुनः ग्रहगति से गुणा करके अहोरात्र असु २१६५९ से विभक्त करने से जो फल प्राप्त हो उसको उस ग्रह में सूर्य के भुज फल के धन-ऋण के अनुसार धन-ऋण करे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूत्र रूप में भुजांतर संस्कार =

$$\pm \frac{\text{सू.भुजफल} \times \text{सूर्य स्थित राशि निरक्षोदय असु} \times \text{दैनिक ग्रहगति}}{१८००\times२१६५९}$$

उपपत्ति— यहाँ बताये अनुसार भुजांतर संस्कार करके सूर्योदय कालिक ग्रह को स्फुट स्योंदय कालिक किया जाता है। मध्यम तथा स्फुट सूर्य का अंतर सूर्य का भुजांतर होता है। यहाँ सूर्य के मंदफल को असु में बनाने के लिए अनुपात किया कि यदि एक राशि कला १८०० उदित होने में निरक्ष देश में इतने असु लगते हैं तो फल कला में कितने लगेंगे? लब्धि फल असु में होता है। फिर दूसरा अनुपता किया कि यदि अहोरात्र असु में इतनी ग्रह गतिकला होती है तो अभीष्ट मंद भुजफल कला असु में कितनी होगी? ये कला मध्य सूर्य से पूर्व स्फुट सूर्य होने पर ऋण तथा बाद में होने पर धन करने होंगे।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त में रविमंदफल कला को रविमंदफल असु के स्वल्पांतर से तुल्य मान कर सूत्र कहा है। शेष सभी बात आचार्योक्त ही है। स्पष्टाधिकार—

"अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता।
भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ताः कार्या ग्रहेऽर्कवत्॥४६॥"

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्ताचार्य ने सूर्य सिद्धान्तानुसार ही रविमंदफल कला को रविमंदफल असु माना है। अतः दोनों की गणना में अशुद्धता है। स्पष्टाधिकार यथा–

"अर्कफलभुक्तिघाताद् भगणकलाप्तं भुजान्तरं रविवत्।
स्फुट भुक्तिरतीतैष्यग्रहान्तरं वर्त्तमानेऽह्नि॥२९॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में भास्करोक्त प्रकार ही से ग्रह के सावनार्गत गति को भुजांतरासु से गुणा करके ग्रहाहोरात्रासु से भाग देने के लिए कहा है। यथा–

"मध्यादधिके स्पष्टे स्वमृणं चोने भुजान्तरं चैतत्।
तदुदयगास्तदहोगतयस्तज्जासुपलेन हताः॥२६॥
तदहोरात्रहृता हीनयुता व्योमवासिनः सर्वे।
अश्विन्यौदयिकास्तदश्विनी दर्शनान्तरोन युताः॥२७॥"

इदानीमुदयान्तरमाह—

युक्तायनांशस्य तु मध्यमस्य भुक्तासवोऽर्कस्य निरक्षदेशे।
मेषादिभुक्तोदयसंयुता ये यश्चापनांशान्वितमध्यभानोः॥६२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लिप्तागणस्तद्विवरेण निघ्नी गतिर्ग्रहस्य द्युनिशासुभक्ता।
स्वर्णं ग्रहे चेदसवोऽधिकोना इदं ग्रहणासुदयान्तराख्यम्॥६३॥

उदयांतर संस्कार—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यमरवि को सायन बनाकर उसकी राशि के भुक्तांशों के निरक्ष देश पर भुक्त असु ज्ञात करके उनमें मेष से आरंभ करके सूर्य की पिछली भुक्त राशियों के निरक्षोदय असु मान युक्त देने से मेष से लेकर सूर्य की भुक्त राशि अंश तक के उदय असु प्राप्त होंगे। फिर सायन रवि की कला बनावें तथा इन दोनों फलों के अंतर को ग्रह गति से गुणा करके अहोरात्र असु (२१६५९) से विभक्त करके लब्धि उदयांतर कला फल को ग्रह में यदि कला से असु अधिक हो तो युक्त करे और यदि अल्प हो तो ऋण करे। अर्थात् रवि विषम पद में हो तो ऋण तथा सम पद में हो तो धन करे।

सूत्र रूप में उदयांतर =

$$\pm \frac{(\text{रवि निरक्षोदयसु} - \text{रविउदय कला}) \times \text{ग्रह की दैनिक गति}}{२१६५९}$$

उपपत्ति— यह संस्कार सूर्य के क्रांतिवृत्त तथा नाडी वृत्त में स्थिति के अंतर के कारण उत्पन्न होता है।

अहर्गण से उत्पन्न ग्रह मध्यम सावन मान से लिया जाता है जो स्फुट सावनमान से चलता है, अतः यहाँ अंतर उत्पन्न होता है। रवि की मध्यम गति की कला तुल्य असु को नाक्षत्र काल में युक्त करने से साठ घटी होता है, ६०।५९।८ यह मध्यम सूर्य सावन है। नाक्षत्र दिन २१६०० असु तुल्य होता है, (२३ घं. ५६ मि.) और सावन दिन २४ घंटे का होता है जो २१६५९ असु तुल्य होता है। अतः इनका अंतर ५९ असु (लगभग ४ मिनट) होता है। सूर्य की मध्यम सावन दिन गति ५९१८ कलादि के तुल्य होती है जो ६० घटी में होती है। इस प्रकार प्रतिदिन गति में इतना अंतर पड़ने से प्रतिमास राशि उदय अन्य समय पर होता है। उतना अंतर अहर्गण से साधित करने से मध्यम ग्रह करने में नहीं आता जिससे सूर्योदय कालिक ग्रह प्राप्त नहीं होते, कभी सूर्योदय से कुछ आगे अथवा कभी कुछ पीछे ग्रह में अंतर होता है। अतः ग्रंथ के आचार्य ने आगे कहा है कि लंकापुरि पर मध्यम सूर्य क्षितिज के आसन्न होता है "दशशिरःपुरि मध्यम भास्करे क्षितिजसन्निधिगे सति मध्यमः।"

अब स्फुट और मध्यम अहर्गण से प्राप्त ग्रह में अंतर का आनयन बताते

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं। मेष से आरंभ करके सूर्य जो राशियाँ भुक्त करता है उनके उदय असु का योग कर लेते हैं। उस असुवात्मक काल में दिनात्मक अहर्गण उत्पन्न होता है। फिर मेषादि से भुक्त कला तुल्य अंतर ज्ञात करते हैं। इन असु और कला में जितना असु अंतर होता है उतना ही असु अन्तर अहर्गण में पड़ता है। यदि अहोरात्र असु में इतनी गति प्राप्त होती है तो उन अन्तर असु में कितनी होगी? प्राप्तफल ग्रह में असु अधिक होने पर योग करते है अन्यथा ऋण करते हैं।

हमने ग्रह की स्थिति में सूर्य स्पष्ट तथा विषुवांश के अंतर से उत्पन्न संस्कार को भुजांतर के नाम से किया है। दूसरा यह **संस्कार उदयांतर के नाम से किया जाता है।** यह संस्कार नाडीवृत्त तथा क्रांतिवृत्त तिर्यक् स्थिति के कारण उत्पन्न होता है। श्रीपति तथा भास्कराचार्य के परवर्ति आचार्यों ने इस संस्कार को अपने ग्रंथों में कहा है।

विशेष— यह उदयान्तर संस्कार प्रथम बार श्रीपति ने अपने सिद्धान्त शेखर ग्रंथ में किया है। उसके पश्चात् भास्कराचार्य ने इसको अपने इस "सिद्धान्त शिरोमणि" ग्रंथ में उपयोग कर लिया है।

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में अध्याय ११ में यह संस्कार इस प्रकार कहा है। यथा–

"अन्त्यभ्रमेण गुणिता रविबाहुजीबाऽभीष्टभ्रमेण विहृता,
फलकार्मुकेण बाहोः कलासु रहितास्ववशेषकं ते,
यातासवो युगयुजोः पदयोः धनर्णम्।"

सूत्र रूप में–

$$\text{ज्या (मध्यम तथा स्पष्ट सूर्य विषुवांशंतर)} = \frac{\text{ज्या सूर्य} \times \text{परम क्रांति}}{\text{कोज्या क्रांति}}$$

श्रीपति ने मात्र इसका उल्लेख किया है, इसके उपयोग के लिए स्पष्ट रूप से मौन हैं। लेकिन भास्कराचार्य ने इसके संस्कार के लिए स्पष्ट रूप से कहा है तथा इस कर्म को 'उदयान्तर कर्म' के नाम से कहा। जब तक सिद्धान्त शेखर की अनुपलब्धि रही तब तक आधुनिक गणकों ने यही माना हुआ था कि यह कर्म भास्कराचार्य का मौलिक है। इस उदयान्तर को ध्यान में रखकर सर्वप्रथम श्रीपति ने ही अपने विचार व्यक्त किये थे–

"त्रिभविरहित चन्द्रोच्चेन भास्वद् भुजज्या
गगननृपविनिघ्नी भत्रयज्याविभक्ता।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पांच ज्या साधन—

सूर्यप्रभा टीका— जहाँ ग्रह होता है वहाँ उसकी क्रांति साधन करने के लिए उसके भुक्तांश (Longitude) तथा अयनांश के योग तुल्य (अर्थात् सायन) ग्रह लेते हैं। इसी प्रकार क्रांतिवृत्त पर ग्रह के उदय से पूर्व अथवा पश्चात् का समय ज्ञात करने के लिए सायन ग्रह (ज्ञात करते हैं) लेते हैं।

सायन रवि की भुजज्या को परमक्रांति ज्या १३९७ से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने से रवि की इष्ट क्रांतिज्या होती है। इसका चाप क्रांति होती है। त्रिज्यावर्ग (=११८१९८४४) में से इष्ट क्रांतिज्या के वर्ग को घटा कर शेष का मूल लेने से द्युज्या (अहोरात्रवृत्त का व्यासार्ध) प्राप्त होती है। इसकी दिशा क्रांति ज्या की दिशा के अनुरूप होती है।

क्रांतिज्या को पलभा से गुणा करके बारह से भाग देने से क्षितिज्या (कुज्या) होती है। इस क्षितिज्या को त्रिज्या से गुणा करके द्युज्या से भाग देने से चरज्या होती है तथा चरज्या का चाप चर कला (असु) होता है।

उपपत्ति— विषुवद् तथा क्रांतिवृत्त का याम्योत्तर अंतर क्रांति होता है। इनके संपात बिंदु (मेष तथा तुला) पर क्रांति का अभाव होता है। संपात से तीन राशि अंतर (कर्क तथा मकर) पर परम क्रांति २४ अंश तुल्य होती है। अतः संपात बिन्दु से आरंभ करके क्रांतिसाधन करते हैं। राशि का उदयास्त मेषारंभ से पूर्व अयनांश तुल्य अंतर पर होता है। अतः सायन अंश युक्त ग्रह की भुक्त भोग्य क्रांति काल के लिए कहा गया है। यदि त्रिज्या तुल्य भुजज्या में (२४ अंश) जिनांश ज्या तुल्य क्रांतिज्या प्राप्त होती है तो इष्ट ज्या में कितनी होगी? इस प्रकार अनुपात करने से प्राप्तफल क्रांतिज्या, विषुवद् वृत्त में तिर्यगरूप में होती है। क्रांतिज्या भुज तथा त्रिज्याकर्ण के वर्गों का अंतर का मूल अहोरात्र वृत्त का व्यासार्ध साधित होता है। इसको द्युज्या कहते हैं। कुज्या के लिए द्वादश अंगुल कोटि में पलभा तुल्य भुज प्राप्त होती है तो क्रांतिज्या कोटि में कितनी होगी? प्राप्तफल क्षितिज तथा उन्मण्डल के मध्य अहोरात्र वृत्त की ज्या रूप कुज्या होती है। इसका धनु बनाने के लिए इसको त्रिज्या वृत्त में परिणित करते हैं। यदि द्युज्याव्यासार्ध में इतनी कुज्या होती है तो त्रिज्याव्यासार्ध में कितनी होगी? प्राप्तफल चरज्या होती है। इसका धनु चर होता है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"जिनभागज्यागुणिता सूर्यज्या व्यासदलहृता लब्धम्।
इष्टापक्रमजीवा विषुवदुदग्दक्षिण सवितुः॥५५॥
इष्टापक्रमवर्ग त्रिज्यावर्गाद्विशोध्य शेषपदम्।
विषुवदुदग्दक्षिणतः स्वाहोरात्रार्धविषकम्भः॥५६॥
क्रान्तिज्या विषुवच्छायया गुणा द्वादशोद्धृता क्षितिजा।
स्वाहोरात्रेऽनष्टा व्यासार्धेनाहता भक्ता॥५७॥
स्वाहोरात्रार्धेन क्षयवृद्धिज्याधनुश्चरप्राणाः।
ते षड्हृता विनाडयो विनाडिका नाडिकाः षष्ट्या॥५८॥"

सूर्यसिद्धान्त में द्युज्या का आनयन कुछ भिन्न प्रकार से बताया है, स्फुट क्रांति से ज्या तथा उत्क्रमज्या का साधन करके त्रिज्या में से उत्क्रमज्या को घटाने से अहोरात्रवृत्त का व्यासार्ध द्युज्या प्राप्त होता है। शेष का आनयन आचार्योक्त प्रकार ही से है। यथा स्पष्टाधिकार—

"परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः (१३९७)।
तदगुणा ज्या त्रिजीवाप्ता (३४३८) तच्चापं क्रांतिरुच्यते॥२८॥
क्रांतिज्या विषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता।
त्रिज्यागुणाऽहोरात्रार्धकर्णाप्ता चरजा ऽसवः॥६१॥"

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय अध्याय ४ में क्रांतिसाधन के लिए आचार्योक्त सूत्र ही कहा है लेकिन उन्होंने १३९७÷३४३८ = $\frac{१३}{३२}$ ले लिया है। यथा—

"त्रयोदशहता जीवा त्रिस्फुटस्य विवस्वतः।
द्वात्रिंशता हृता क्रांति परिशेषस्तु पूर्ववत्॥२५॥

तथा अध्याय ३ में क्रांतिज्या, द्युज्या, अक्षज्या तथा चर साधन आचार्योक्त ही बताया है। यथा—

"इष्टज्यां मुनिरन्ध्र पुष्कर शशि क्षुण्णां सदा संहरेद्
व्यासार्धेन भवेदपक्रमगुणस्तात्कालिकस्तत्कृतिम्।
विषकम्भार्धकृतेर्विशोध्य च पदं द्युव्यासखण्डं विदुः
स्वेष्टक्रान्तिहतं पलं प्रविभजेल्लम्बेन जीवा क्षितेः॥६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्योंकि उदयमान स्थूल है। अतः इसीलिए आर्यभट(द्वि.) आदि ने सूक्ष्मता के लिए द्रेष्काण उदयमान कहे हैं, जैसा कि पूर्व में श्लो-६० में कहा गया है।

उदयान्तर कर्म जिस प्रकार सम्यग हो उसको यहाँ आचार्य कहते हैं कि मध्यम सूर्य के सायन अंशों की दोर्ज्या तथा द्युज्या ज्ञात करके उस द्युज्या का भाग दोर्ज्या में देकर मिथुनांत द्युज्या से गुणा करे = $\frac{\text{ज्या सा.सू.} \times \text{मिथुनांतद्युज्या}}{\text{द्युज्या}}$, इसका धनु करने से प्राप्त असु में से मध्यम सूर्य के सायन अंशों की भुज कला घटाने से स्फुट अंतर असु प्राप्त होते हैं। ये उदय के अंतर तुल्य हैं। पद मध्य में यह अंतर २६ पल से कुछ अधिक होता है। इसको ज्या प्रकार से साधित करके पदमध्य में सूर्य को द्विगुणित करे। पर मध्य में द्विगुणित सूर्य के सायन अंश का भुज ज्या २×४५° = ज्या ९०° पदान्त में तीन राशि पर होती है। उसकी ज्या का २६ से अनुपात किया कि यदि १२० तुल्य त्रिज्या में २६ पल परमांतर होता है तो अभीष्ट में कितने होंगे? अर्थात्

$$\frac{२६ \times \text{अभीष्ट ज्या}}{१२०} = \frac{\text{अभीष्ट ज्या २ (सा.सू.)}}{४\frac{१}{२}}$$ स्वल्पांतर से।

अतः हार स्थान पर $४\frac{१}{२}$ प्राप्त होता है। पुनः अनुपात किया कि यदि ६० में ग्रह गति कला तुल्य विकला चलता है तो इतने पल में कितना चलेगा?

$$\text{प्राप्तफल} = \frac{\text{अभीष्ट ज्या २ (सा.सू.)}}{४\frac{१}{२}} \times \frac{\text{ग्र.ग. विकला ज्या}}{६०}$$

$$= \frac{\text{ग्र.ग.विकला ज्या}}{२७०}$$ विकलादिफल। यहाँ हार के स्थान पर आचार्योक्त २७० प्राप्त हुआ। अतः उपपन्न हुआ। ओज पद में असु, कला से अल्प होते हैं अतः ग्रह में ऋण करे तथा युग्म पद में वह अधिक होता है अतः वहाँ धन करने के लिए आचार्य ने कहा है।

आधुनिक एस्ट्रोनॉमी से उदयांतर = स्प.$^{२}\left(\frac{\text{परमक्रांति}}{२}\right)$ज्या २ सा. सूर्य होता है। यहाँ परमक्रांतिमान २४° होने से स्प$^{२}\left(\frac{२४}{२}\right)$ = ०.०४५१९ = १५५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कला = १५५ असु = १५५÷६ =२६ असु ही आता है जिसको स्वविवेक से भास्कराचार्य ने ज्ञात किया। बापूदेव शास्त्री ने इस सब को इस प्रकार कहा है—

"मध्यात्खरांशोरयनांशयुक्ताद्द्विघ्नाद्भुजज्या बृहती विनिघ्नी।
परापमव्यस्तगुणेन दृग्घन्या द्युजीवयाप्ता ग्रहभुक्तिनिघ्नी॥
हृता द्युरात्रासुभिराप्तलिप्ता ग्रहे विधेयाः स्वमृंण क्रमेण।
सहस्ररश्मौ युगयुक्पदस्थे सुसूक्ष्मेवं ह्युदयान्तरं स्यात्॥"

इदानीं तिथिकरणभयोगानां साधनमाह—

रवि १२ रसैः ६ विरवीन्दुलवा हृताः फलमितास्तिथयः करणानि च।
कुरहितानि च तानि बवादितः शकुनितोऽसितभूतदलादनु॥६६॥
ग्रहकलाः सरवीन्दुकला हृताः खखगजैश्च ८०० भयोगमिति क्रमात्।
अथ हृताः स्वगतैष्यविलिप्तिकाः स्वगतिभिश्च गतागतनाडिकाः॥६७॥

तिथि, करण तथा योग साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— चंद्र में से सूर्य को घटाकर दो स्थानों में स्थापित करे। एक स्थान पर १२ से विभक्त करने से प्राप्तफल गत तिथि तथा अन्य स्थान पर ६ से विभक्त करने से प्राप्तफल गत करण होते हैं। शेष एक आदि से बव आदि होते हैं। कृष्ण चतुर्दशी के आधे के पश्चात अंतिम तीन तथा चौथा शुक्ल प्रतिपदा के प्रथम अर्ध, इस प्रकार चारों क्रमशः शकुनि, चतुष्पद, नाग तथा किंस्तुघ्न होते हैं तथा शेष बवादि क्रम से करण होते हैं। जिस ग्रह के नक्षत्र व योग का ज्ञान करना हो उसकी कला बना लेवे तथा चन्द्र सूर्य के योग की भी कला बना लेवें। इन दोनों में पृथक-पृथक ८०० से भाग देने से प्रथम स्थान में गत नक्षत्र तथा द्वितीय स्थान में गत योग प्राप्त होते हैं। इस प्रकार विभक्त करने से प्राप्त शेष वर्तमान के गत (भुक्त) भाग होते हैं तथा अपने अपने हार से उनका अंतर गम्य भाग होता है। उन गत भागों की विकला में स्वस्वगति से भाग देने से प्राप्तफल गत घटिका होती है। उनकी ऐष्य विकला में स्वस्व गति से भाग देने से प्राप्त फल ऐष्य घटिका होती है।

उपपत्ति— यदि चंद्र सूर्य के ३६० अंश अंतर में ३० तिथि प्राप्त होती है तो एक तिथि कितने अंश में प्राप्त होगी? यहाँ ३० से ३६० को अपवर्तित करने से हर में १२ प्राप्त होता है। अतः एक तिथि में १२ अंश तुल्य चंद्र सूर्य का अंतर होता है और यदि ३६० अंश में ६० करण होते हैं तो एक करण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कितने अंश में होगा? यहाँ भी ६० से ३६० को अपवर्तित करने से हार में ६ प्राप्त होता है। अब यदि चक्रकला २१६०० में २७ योग प्राप्त होते हैं तो एक योग कितनी कला में प्राप्त होगा? यहाँ भी २७ से २१६०० को अपवर्तित करने से हार में ८०० प्राप्त होता है। अतः ८०० कला का एक योग होता अर्थात् चंद्र सूर्य का योग ८०० कला होने पर एक योग होता है। घटी बनाने के लिए यदि गति कला ६० घटी में प्राप्त होती है तो गत तथा ऐष्य की कितनी होगी? प्राप्तफल घटिकायें होंगी और कला को ६० से गुणा करने से विकला होती है। अतः आचार्य ने "हताः स्वगतैष्य विलिप्तिकाः" कहा है।

ब्रह्मगुप्तादि सभी आचर्यों ने इसी प्रकार नक्षत्र, तिथि करण योग आदि के लिए कहा है। ये आधारभूत परिभाषायें हैं।

इदानीं नतकर्माह—

तिथ्यन्तनाडीनतबाहुमौर्व्या लघ्व्यार्कशीतांशुफले विनिघ्ने।
क्रमेण भक्ते नखगोसमुद्रैः ४९२० कङ्गाग्निवेदैः ४३६१ फलहीनयुक्तः॥६८॥
प्राक्पश्चिमस्थस्तरणिर्विधुः प्रागृणे फले युक्त इतोऽन्यथोनः।
मुहुः स्फुटातो ग्रहणे रवीन्द्वोस्तिथिस्त्विदं जिष्णुसुतो जगाद॥६९॥

नतकर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— चंद्र तथा सूर्य स्पष्ट के तिथ्यन्त काल की नत नाडियों को ६ से गुणा करने से नतांश प्राप्त होते हैं। इनकी लघुज्या साधित करे तथा उसको सूर्य तथा चंद्र के भुजफल से गुणा करे। सूर्य के गुणनफल को ४९२० से तथा चंद्र के गुणनफल को ४३६१ से विभक्त करे। इस प्रकार प्राप्तफल यदि मंदफल अंशादि गुणा करने से अंशादिलब्धि हो तो अंशादि तथा कलादि होने पर कलादि ग्रहण करे। लब्धि को रवि पूर्व कपाल में स्थित होने पर रवि में से हीन करे और पश्चिम कपाल में होने पर युक्त करे। चंद्रमा के प्राप्तफल को पूर्वकपाल में चंद्र होने पर ऋण फल होने पर उसमें युक्त करे अन्यथा पूर्व-पश्चिम दोनों में हीन करे। इस प्रकार सूर्य चंद्र स्पष्ट से पुनः तिथि साधित करे तथा पुनः नतकर्म उसी प्रकार करे। यह क्रिया ग्रहण काल के लिए पुनः पुनः करे जब तक स्थिर फल न प्राप्त हो।

इस प्रकार यह कर्म जिष्णु सुत ब्रह्मगुप्त के बताये अनुसार करना चाहिये। यह आचार्य ने कहा है। इसके लिए आचार्य ने आगम को ही प्रमाण मान कर ऐसा लिखा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— भास्कराचार्य ने स्व कृत वासना में कहा है कि चतुर्वेदाचार्य ने भी इस कर्म को स्वीकार करके गणना से दृश्य तुल्य प्राप्त किया है। अतः उन्होंने इसे स्वीकार किया है। आधुनिक खगोल विज्ञान में इस नतकर्म को 'Refraction Correction' कहा जाता है जिसकी आचार्य ने यहाँ स्पष्ट रूप से व्याख्या नहीं की है।

नतकर्म संस्कृत रवि चंद्र से उत्पन्न तिथ्यन्त काल तथा गणितागत नतकर्म बिना तिथ्यन्त काल का अंतर माना (य) है। इसको ६ से गुणा करने से (६य) नत अंश होंगे। गणितागत तिथ्यन्त काल में रवि का नतकालांश यदि (न) हो तो इन दोनों का संस्कार करने से वास्तव नत कालांश = न ± ६य हुआ। अब आचार्योक्त कर्म करने से सूर्य का नतकर्म = $\frac{\text{रविफल} \times \text{ज्या} (\text{न} \pm ६\text{य})}{४६२०}$ तथा चंद्र का नत कर्म = $\frac{\text{चंद्रफल} \times \text{ज्या} (\text{न} \pm ६\text{य})}{४३६१}$। इनका संस्कार करने के लिए कहा है।

सूर्य के परिध्यंश १३°४०' तथा चंद्रमा ३१°३६' मध्यान्ह समय के कहे हैं। अधिक विवरण के लिए यहाँ श्लोक २४ की व्याख्या देखें। अनुपात किया कि त्रिज्या (१२०) तुल्य नत भागज्या में तीसरा भाग (२० कला) परिधि में अंतर होता है तो इष्ट नत भाग ज्या में कितना होगा? नतभागज्या × २० ÷१२० = $\frac{\text{नत भागज्या} \times २०}{१२० \times ६०}$ अंश = $\frac{\text{नत भागज्या}}{३६०}$ अंश यह फल स्फुट परिधि अंतर है। इसका फिर से अनुपात किया कि यदि १३°४०' परिधि अंश तुल्य फल (मंदफल) प्राप्त होता है तो स्फुट परिधि अंतर से कितना होगा?

$\frac{\text{परिध्यंश} \times \text{नतभागज्या}}{१३°२०' \times ३६०} = \frac{\text{परिध्यंश} \times \text{नतभागज्या}}{४६२०}$। यह आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

इसी प्रकार त्रिज्या तुल्य (१२०) नत भागज्या के परिध्यंतर $\frac{५२}{६०}$ है तो इष्ट नतज्या में कितनी होगी? यहाँ चंद्रमा के लिए मध्यान्ह के पठित परिध्यंश में ५२ कला कम करने से ऋण तथा धन मंदफल में पूर्व उन्मंडल में कहे गये परिधि अंश प्राप्त होते हैं तथा पश्चिम उन्मंडल में धन तथा धन मंदफल में ऋण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करने से परिध्यंश प्राप्त होते हैं। ५२ कला में ६० का भाग देने से अंश प्राप्त होते हैं। अतः $\frac{५२}{६०}$ परिधि अंतर कहा है।

अतः इष्ट नतज्या में $\frac{५२'}{६०\times १२०} = \frac{१}{१३८}$ स्वल्पांतर से परिध्यंतर हुआ।

अतः ३१°३६', परिध्यंश प्राप्त होते हैं तो स्फुट परिध्यंतर $\frac{\text{इष्टनतज्या}}{१३८}$ में कितना होगा = $\frac{\text{परिध्यंश} \times \text{नतभागज्या}}{१३८ \times १३^{\circ} ३६'} = \frac{\text{परिध्यंश} \times \text{नतभागज्या}}{४३६१}$ अतः हार में आचार्योक्त अंक प्राप्त हुए। उपपन्न हुआ।

उदयांतर तथा भुजांतर आदि संस्कारों से संस्कृत ग्रह वास्तविक स्फुट ग्रह नहीं होते। यह बात भास्कराचार्य तथा ब्रह्मगुप्तोक्त इस श्लोक में कहे गये संस्कार से स्पष्ट होती है। इन आचार्यों के पूर्ववर्ति आचार्यों ने इस संस्कार के लिए कुछ भी नहीं कहा है। चंद्र ग्रहण में पूर्णांतकाल में मध्यान्ह काल से पूर्व या पश्चात जितनी घटी रवि नत होता है वह सूर्य का नतकाल होता है, इसको ३० घटी में से घटाने से प्राप्त शेष तुल्य चंद्र का नत होता है। किन्तु अर्धरात्रि में तिथ्यन्त काल जितनी घटी रवि का नत होता है उसमें से ३० घटी घटाने से प्राप्त शेष तुल्य चन्द्र का नत होता है। यदि सूर्य का पूर्व नत है तो चंद्रमा का पश्चिम नत तथा रवि का पश्चिम नत हो तो चंद्र का पूर्व नत अर्धरात्रि से होता है। सूर्य ग्रहण में सूर्य तथा चंद्रमा दोनों एक ही कपाल में होते हैं तथा उनकी नतघटी, तुल्य होती है। सिद्धान्त शेखर तथा ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में इस प्रकार कहा गया है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में स्फुट परिधि के लिए इस प्रकार कहा है—

"तद्द्युदल परिध्यन्तगुणा हृता त्रिज्यया स्वनतजीवा।
ऊने धन ऋणमधिके दिनार्ध परिधौ स्फुट परिधिः॥२२॥

अर्थात् अभीष्ट नतज्या और पूर्व पश्चिम उन्मण्डल में जो सूर्य चंद्र के रहने से परिधि अंश कहे गये हैं उनसे दिनार्ध परिधि के अंतर को परस्पर गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल को दिनार्ध परिधि में धन अथवा ऋण करने से अभीष्ट स्थान की स्फुट परिधि प्राप्त होती है। दिनार्ध परिधि से जिस

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिस परिधि का अंतर करते हैं वह दिनार्ध परिधि से अधिक हो तो दिनार्ध परिधि में धन करे तथा कम होने पर प्राप्तफल को ऋण करे।

ब्रह्मगुप्त ने इसके आगे २४ वें श्लोक में कहा है—

"देशान्तराद्यमेवं स्पष्टीकरणं दिनार्ध परिधिभ्याम्।
कृत्वा तत्तिथ्यन्त स्फुटपरिधिभ्यां स्फुटावसकृत्॥२४॥"

अर्थात् रवि चंद्र को (पूर्वोक्त प्रकार से) दिनार्ध परिधियों द्वारा, देशांतरादि संस्कार द्वारा स्फुट करके उनके द्वारा (ग्रहण काल में) तिथ्यन्त साधन करना चाहिये। फिर उन तिथ्यंत काल के सूर्य चंद्र की स्पष्ट परिधियों द्वारा पुनः रविचंद्र को स्पष्ट करे। पुनः इनके द्वारा तिथ्यन्त साधन करे। इस प्रकार पुनः पुनः क्रिया करके ग्रहण के लिए उपयुक्त चंद्र तथा सूर्य स्पष्ट करना चाहिये।

भास्कराचार्य ने उक्त श्लोक ६८ में ब्रह्म गुप्तोक्त इसी बात को "मुहुः स्फुटाप्तो ग्रहणे रविन्द्वो स्थिति.....जगाद" द्वारा कहा है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"तद्दिनार्ध परिधिद्वयान्तरेणाहता स्वनतशिञ्जिनीहृता।
त्रिज्जयाऽथ परिधौदिनार्धजे हीन के स्वमधिके त्वृणं स्फुटम्॥"

आर्यभट ने महासिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"तिथ्यन्तकालिक नतप्राणेभ्यो बाहुशिञ्जिनी क्रमजा।
साध्या तद्घ्नयौ मध्ये भुक्ती भक्ते भवघरननै॥१॥
लिप्तादिफले प्राक् स्वं पश्चादृणमर्कचन्द्रयोः कार्ये।
भानुग्रहणे रगुणे ताभ्यां स्पष्टा तिथिर्भवति॥२॥"

इदानीं स्फुटग्रहस्य तात्कालिकीकरणमाह—

यातैष्यनाडीगुणिता द्युभुक्तिः षष्ट्या ६० हता तद्रहितो युतश्च।
तात्कालिकः स्यात् खचरः शशीनौ तिथ्यन्त एवं समलिप्तिकौ स्तः॥७०॥
पूर्णान्तकाले तु समौ लवाद्यैर्दर्शान्तकालेऽवयवैर्गृहाद्यैः।७०$\frac{1}{2}$।

स्फुट ग्रह का तात्कालिकिकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— पर्व अथवा अग्रिम इष्ट घटियों को ग्रह दिन गति से गुणा करके ६० से विभक्त करने से प्राप्तफल को ग्रह में क्रमश घटाने तथा युक्त करने से तात्कालिक ग्रह होते हैं। सूर्य चन्द्रमा की तिथ्यंत में कलादि तथा पूर्णांत काल में अंश कलादि तुल्य होते हैं केवल राशि में अंतर होता है, लेकिन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दर्शांत काल अर्थात अमावस्या के समय दोनों के राशि अंश कलादि सभी अवयव तुल्य होते हैं।

विशेष— आचार्य ने जो यहाँ कहा है वह साधारण बात है जो सभी आचार्यों ने कही है। यहाँ शिष्याधीवृद्धिद का एक उदाहरण देते हैं। यह बात स्वतः स्फुट है।

शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में लल्लाचार्य ने रविचंद्रस्फुट करणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"गततिथिघटिकाघ्ने सूर्यशीतांशुभुक्तीगगनरसविभक्ते शोधयेत् तत् कलाभ्यः।
धनमपि च विदध्याद् भोग्यनाडीभिरेवं समग्रहलवलिप्तालिप्तिकौ तौ भवेताम्॥२६॥
मासान्ते रविशशिनौ समौ भवेतां पक्षान्ते लवकलिकाविलिप्तिकाभिः।
अन्यस्यामपि च तिथौ तदावसाने तुल्यौ स्तः खलुकलिकाविलिप्तिकाभिः॥२७॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त स्पष्टाधिकार अध्याय ६ में आचार्योक्त ही कहा है।

"तिथिगतायेय घटीघ्न्यौ रविन्दुभुक्ती विभाजिते षष्टया।
फललिप्ताविंयुतयुतौ तिथ्यन्ते समकलौ भवतः॥२४॥
गतयेय विकलघ्ने गती रवीन्द्वोर्गमान्तरेण हृते।
फल लिप्ताभिः प्राग्वद्वियुतयुतौ समकालौ स्तः॥२५॥
तिथियेय यातघटिकातुल्यकलाभिर्युतोनितेन्दुरवी।
तिथिलिप्ताभिश्चैव समलिप्तौ वा विधूष्णकरौ॥२६॥
करणान्ते तिथ्यन्ते समौ कलाभिस्तथा न पूर्णान्ते।
समभागौ मासान्ते समराशी भास्करेन्दुस्तः॥२७॥"

आर्यभट (द्वि) ने महासिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"यातैष्यघटीगुणिता दिनकर शशिपात भुक्तयो भक्ताः॥४॥
तीनै लिप्ताः शोध्या योज्यास्तात्कालिकाः क्रमात् स्युस्ते॥$\frac{१}{२}$॥"

इदानीं सूक्ष्मनक्षत्रानयनमाह—

स्थूलं कृतं भानयनं यदेतज्ज्योतिर्विदां संव्यवहारहेतोः॥७१॥
सूक्ष्मं प्रवक्ष्येऽथ मुनिप्रणीतं विवाहयात्रादिफलप्रसिद्धयै।
अध्यर्धभोगानि ११८५।५२ षडत्र तज्ज्ञाः।
प्रोचुर्विशाखादितिभध्रुवाणि॥७२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

षडर्धभोगानि च ३९५। १७ भोगिरुद्र-
वातान्तकेन्द्राधिपवारुणानि।
शेषाण्यतः पञ्चदशैकभोगा-
न्युक्तो भभोगः शशिमध्यभुक्ति ७९०।३५ ॥७३॥
सर्वर्क्षभोगोनितचक्रलिप्ता वैश्वाग्रतः स्यादभिजिद्भभोगः।
कलीकृतादिष्टखगाद्विशोध्य दास्रादिभोगान् गतभानि विद्यात्॥७४॥
विशुद्धसंख्यानि गतं तु शेषमशुद्धभोगात् पतितं तदेष्यम्।
गतागते षष्टिगुणे विभक्ते ग्रहस्य भुक्त्या घटिका गतैष्या॥७५॥

सूक्ष्म नक्षत्र आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— अभी तक पूर्व में जो नक्षत्र का आनयन करना बताया है वह स्थूल है उसको मात्र लोक व्यवहारार्थ के लिए कहा गया है। अब पुलिश, वशिष्ठ, गर्गादि आचार्यों के अनुसार विवाह, यात्रादि के सम्यक फल सिध्यर्थ के लिए उनके सूक्ष्म आनयन को कहते हैं। विशाखा, पुनर्वसु, रोहिणी और तीनों उत्तरा नक्षत्र अध्यर्ध-भोग संज्ञक हैं। आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाती, भरणी, ज्येष्ठा तथा शतभिषा ये छः नक्षत्र अर्ध-भोग संज्ञक हैं तथा शेष १५ नक्षत्र समान भोग संज्ञक हैं। इनका चंद्र गति ७९०/३५ के तुल्य भोग होता है। चंद्रगति में इसकी अर्ध गति युक्त भोग ११८५।५२ तुल्य वाले नक्षत्र अध्यर्ध संज्ञक हैं। चंद्र गति से अर्धगति के भोग तुल्य नक्षत्र अर्ध भोग संज्ञक हैं। सर्वर्क्षभोग २१३४६ को चक्र कला २१६०० में से घटाने से प्राप्त शेष तुल्य अभिजित नक्षत्र का भोग २५४।१८ होता है।

ग्रह की कला बनाकर अश्विन्यादि से नक्षत्रों की भुक्त कला को घटाने से जो शुद्ध संख्या घटे वह गत नक्षत्र जाने तथा शेष कला वर्तमान नक्षत्र की कला होती है। जो अशुद्ध नक्षत्र भोग का शेष है वह उसका भोग्य है तथा उसकी ऐष्य संज्ञा है। उस गत तथा ऐष्य कला को ६० से गुणा करके ग्रह गति से विभक्त करने से प्राप्त फल गत तथा ऐष्य घटियाँ होती हैं।

उपपत्ति— इनकी उपपत्ति का आगम ही प्रमाण है। क्योंकि इस प्रकार नक्षत्रानयन पौलिश-रोमक-वसिष्ठ-सूर्य-ब्रह्म सिद्धान्तोक्त प्रकार से कहे गये हैं।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार के अध्याय ६ में पूर्णरूप से भास्करोक्त ही कहा है। यथा—

"स्थूलोऽयं स्पष्टोऽसावध्यर्ध समार्धभोगो यः।
तं वच्म्यधुनाऽभिजितः स्फुटभोगोऽहं विशेषेण॥३॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्राह्मोत्तरा विशाखादित्यान्यध्यर्धभोगसंज्ञानि।
वारुण सार्पार्द्रानिलयाम्येन्द्रान्यर्ध भोगीनि॥४॥
समभोगीन्यन्यानि समभोगो मध्यमा गतिः शशिनः।
स्वदलयुताऽध्यर्धाख्यो भागो दलिताहिखण्डमध्यः॥५॥
भगणाश्चक्राच्छुद्धा भोगोऽभिजितोऽथवेन्दु भगणहृताः।
क्ष्महाः फलं भहीनं घटिकाद्यो भघ्नशशि भगणाः॥६॥
वियुक्ताः क्वहाद्गतिघ्ना भगणविभक्ताः विधोः कलादिर्वा।
भगणकला शशिभुक्त्या भजिताः शेषोऽथवा प्रोक्तः॥७॥
द्युचरो भभोगहीनो गतयेया लिप्तिकाः स्वभुक्तिहृताः।
भवति दिवसादिभोगो द्युचराक्रान्तस्य धिष्ण्यस्य॥८॥''

यहाँ आचार्य ने कुछ विशेष भी कहा है। वटेश्वर ने ब्रह्मगुप्तोक्त कहा है।

ब्रह्मगुप्ताचार्य ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुट गत्युक्तराध्याय में कहा है कि पौलिश-रोमक-वसिष्ठ-सूर्य तथा ब्रह्म सिद्धान्त में जो नक्षत्रानयन कहे गयेहैं वे आर्यभट कथित आनयन नहीं हैं। अतः उन सभी आचार्यों की उक्ति उचित है तथा सूक्ष्मनक्षत्रानयन उन्हीं के अनुसार करना चाहिये। यथा–

''पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहेषु प्रोक्तम्।
तन्नक्षत्रानयन नार्यभटोक्तं तदुक्तिरतः॥४६॥''

आगे के श्लोक में भास्करोक्त तथा वटेश्वरोक्त ही कहा है। यथा–

''अध्यर्धानि भवन्ति षड्नक्षत्राण्युडूषडर्धानि।
पञ्चदश समक्षेत्राण्यभिजिद् भोगो भवत्येकः॥४७॥
केशादित्य विशाखा प्रोष्ठपदार्यम्णवैश्वदेवानि।
षड् षड् ज्येष्ठा भरणी स्वात्यार्द्रावारुणाश्लेषाः॥४८॥
पञ्चदशात्रानुक्तान्येकोऽभिजिदुक्त ऋक्षभोऽन्यः।
सस्मात्रन्नक्षत्रं दुरधिगमं मन्दबुद्धीनाम्॥४९॥
अध्यर्धार्धसमक्षेत्राणं मध्यगति लिप्तिकाः शशिनः।
अध्यर्धार्धैकगुणा भभोगलिप्तास्तदैक्योनाः॥५०॥
मण्डललिप्ताः शेषोऽभिजितो भोगः शशाङ्कभगणा वा।
त्रिघनगुणाः संशोध्याः कल्पदिनेभ्यो यदवशेषम्॥५१॥
तदभगणैर्दिनभोगोऽभिजितो भोगो भभोगलिप्तोनाः।
भानिग्रहभुक्तकला गतगम्या गतिहृता दिवसाः॥५२॥''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं ग्रहाणां राशिसंक्रान्तिमानं भतिथिकरणयोगानां सन्धिमानं चाह—

षष्टिघ्नबिम्बं ग्रहभुक्तिभक्तं संक्रान्तिनाड्योऽखिलधर्मकृत्ये।
रवेस्तु ताः पुण्यतमा ग्रहः स्वसंक्रान्तिगो मिश्रफलं विधत्ते॥७६॥
शशितनुविकलाभ्यश्चन्द्रभुक्त्येन्दुभान्वो-
र्गतिविवरकलाभिर्भूय एताभिरेव।
पृथगथ गतियुत्या नाडिकाः सन्धिरात्मा
भतिथिकरणयोगानां फलं तत्र मिश्रम्॥७७॥

ग्रहों के राशि संक्रान्तिमान; नक्षत्र, तिथि, करण, योगों के सन्धिमान—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह बिंब कला को ६० से गुणा करके ग्रह भुक्ति से विभक्त करने से प्राप्तफल ग्रह की राशि संक्रांति की घटियाँ होती हैं। ये सभी धर्म कर्मों के लिए शुभ होते हैं। राश्यन्त काल से पूर्व की आधि तथा पश्चात की आधि इस अर्थ में गत-गम्य होती है। इन संक्रान्ति घटियों में रवि की संक्रांति नाड़ी पुण्यतम होती है तथा जब ग्रह संक्रांति पर स्थित होता है तब उन दोनों राशियों से उत्पन्न फल को करता है। ६० गुणित शशि बिंब विकला में चंद्र सूर्य के गति अंतर से भाग देने से प्राप्त घटियाँ तिथिकरण सन्धि प्रान्त होता है। साठ से गुणित चन्द्र बिम्ब को चंद्र रवि गति योग से भाग देने से योगान्त संधि होती है। इन संधियों में स्थित ग्रह मिश्रफल देते हैं।

विशेष— आचार्योक्त प्रकार ही से **वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धांत** के स्पष्टाध्याय ६ में कहा है। यथा

"गत्यंशहृतबिम्बं संक्रमकालो ग्रहस्य घटिकादिः।
पुण्यतमोऽर्कस्यायं राश्यन्तंत्यजति रविबिम्बे॥२८॥
शशिबिम्बं षष्टिगुणं गतिविवरहृतं च करणतिथ्यन्तम्।
गति युति हृदंयोगान्तं मिश्रफलमत्र स्थितो द्युचरः॥२९॥
अत एवानिष्टानामाद्यन्तौ तिथिकरणयोगानाम्।
नेष्टौ विष्टिर्वारस्तिथिस्त्र्यहस्पृक् दिनं भवति॥३०॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में इसी प्रकार कहा है—

"मानार्घात् षष्टिगुणा भुक्तिहृतान्नाडिकादिलब्धेन।
राश्यान्तात्प्रागादिः पश्चादन्तोऽर्कसंक्रान्ते॥
संक्रान्तिपुण्यकालो यल्लब्धं नाडिकादितद्द्विगुणम्।
स्नानजपहोमदानादिकोऽत्र धर्मो विशिष्टफलः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवं नक्षत्रान्तात् तिथिकरणान्ताच्छशिप्रमाणर्घात्।
षष्टि गुणाद्रविशशिनोर्भुक्त्यन्तरलब्धघटिकाभिः॥''

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

''षष्ठिघ्नं सूर्यबिम्बं स्फुटंगतिविहृतं सोऽर्कसंक्रातिकालः।
पुण्यः स्मृत्यादिषूक्तस्त्यजति दिनमणिर्मण्डले भान्तमेवम्।
षष्ठिघ्नं चन्द्रबिम्बेऽप्युडुकरणतिथिप्रान्तमन्तं युतेर्वा।
चान्द्रया भुक्त्येन्दुभान्वोर्गति युतिवियुतिभ्यांक्रमान्नाडिकादि॥२८-३०॥''

स्पष्टीकरण— संधि वह काल है जितने समय में ग्रह बिंब राशि तथा नक्षत्र विभाग से होकर गुजरता है। तिथि, करण तथा योग आकाश में कोई स्थान विशेष न होकर काल्पनिक बिंदु है तथा इनके लिए चंद्रबिंब का संक्रमण होता है सूर्य का नहीं होता लेकिन इनकी परिभाषा के अनुसार सूर्यचंद्र गति का अंतर लिया जाता है। इन संधियों में होकर ग्रह बिंब का संक्रमण तब तक होता है जब तक उसके बिंब का कुछ भाग उस विभाग बिंदु के आगे तथा कुछ भाग पीछे रहता है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के स्पष्टाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं. सत्यदेवशर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३

अथ त्रिप्रश्नाधिकारः

अथ त्रिप्रश्नाध्यायं विवक्षुस्तावत् तदारम्भप्रयोजनमाह—

जगुर्विदोऽदः किल कालतन्त्रं दिग्देशकालावगमोऽत्र यस्मिन्।
त्रिप्रश्ननाम्नि प्रचुरोक्तिधाम्नि ब्रुवेऽधिकारं तमशेषसारम्॥१॥

त्रिप्रश्नाध्याय कहे जाने का प्रयोजन—

सूर्य-प्रभा टीका— विद्वान लोग जिस कालप्रदिपादक शास्त्र को जानते हैं, उस कालतन्त्र के दिग् अर्थात् दिशा, देश अर्थात् स्थान तथा काल अर्थात् समय को बताने वाले त्रिप्रश्न नामक इस अध्याय को, जो अनेक युक्तियों तथा ज्ञान से पूर्ण है तथा जो समस्त गणित शास्त्र का सार है, कहता हूँ।

इदानीं लग्नसाधनमाह—

तात्कालिकार्केण युतस्य राशेरभुक्तभागैर्गुणितोदयात् स्वात्।
भोग्यासवः खाग्निहृतादवाप्ता भुक्तासवो भुक्तलवैः स्युरेवम्॥२॥
इष्टासुसङ्गादपनीय भोग्यांस्तदग्रतो राश्युदयांश्च शेषम्।
अशुद्धहृत् खाग्निगुणं लवाद्यमशुद्धपूर्वैर्भवनैरजाद्यैः॥३॥
युक्तं तनुः स्यादयनांशहीनमिष्टासवोऽल्पा यदि भोग्यकेभ्यः।
त्रिंशद्गुणाः स्वोदयभाजितास्ते लबांशयुक्तो रविरेव लग्नम्॥४॥

लग्न साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस इष्टकाल का लग्न साधन करना हो उस काल का तात्कालिक सूर्य (सायन) ज्ञात करे। वह सूर्य जिस राशि में स्थित हो उसके उदय असुकाल से सूर्य के भुक्त भाग को गुणा करके तीस से विभक्त करने से प्राप्तफल भुक्त भाग के असु होते हैं। इष्टकाल के असु में से उससे आगे (सूर्य भुक्त भाग से) के उदयासु तथा अग्रिम राशियों के उदय असु घटावे। अशुद्ध राशि के उदयासुओं से, शेष को तीस से गुणित में भाग देने से प्राप्त अशुद्ध भाग के उदय फल में पूर्व में मेष से आरंभ करके भुक्त राशि अंशों में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युक्त करने से प्राप्त फल में से अयनांश हीन करने से इष्ट काल का लग्न होता है। यदि इष्ट काल के असु भोग्य राशि असु से अल्प हो तो इष्ट के असुओं को तीस से गुणा करके सूर्य राशि स्वोदय (राशि) मान से विभाजित करने से प्राप्तफल में सायन सूर्य के राशि अंश युक्त करके अयनांश घटाने से इष्टकाल का लग्न होता है।

उपपत्ति— क्रांतिवृत्त तथा स्वस्थान के उदय क्षितिज के संपता बिन्दु को लग्न कहते हैं। अभीष्ट इष्ट काल पर रवि के भोग्य असु और लग्न के भुक्त असु तथा रवि एवं लग्न के बीच की उदित राशियों के उदय असु इन सबका योग ही इष्ट काल होता है।

रवि के भोग्यांश के उदय (भोग्य) असु प्राप्त करने के लिए त्रैराशिक से अनुपात किया कि यदि सूर्य स्थित राशि के ३० अंश उदय होने में इतने उदयासु लगते हैं तो रवि स्थित राशि के भोग्य अंशों में कितने असु लगेंगे =

$$\frac{\text{रविस्थिराशि के उदय असु} \times \text{रवि के भोग्यांश}}{३०^{\circ}} = \text{रवि की वर्तमान राशि}$$

के भोग्य असु प्राप्त होंगे। इनको इष्ट काल के असुओं में से घटाने से जो शेष बचेगा वह लग्न के भुक्त असु तथा सूर्य एवं लग्न के बीच की भुक्त राशियों के उदय असुओं के योग के तुल्य है, जैसा कि पूर्व में बताया गया है। इस प्राप्त शेष में से रवि स्थित राशि के पश्चात की जिन राशियों के उदय असु घट सके उतने घटा देने के पश्चात बचने वाले शेष में जिस राशि के उदयमान पूर्ण रूप से न घटसके वह अशुद्ध राशि कहलाती है। फिर अनुपात किया कि अशुद्ध राशि के उदय असु मान समय में उसके ३० अंश उदित होते हैं तो इन शेष बचे असुओं में उसके कितने अंश उदित होंगे? क्योंकि इन शेष असुओं में अशुद्ध राशि पूरी तो नहीं उदित (घट) हो सकी लेकिन इसका कुछ भाग उदित हुआ है। इन प्राप्त अंशादि को पूर्व पूर्ण उदित हो चुकी राशियों के अंशों तथा सूर्य के भोग्य अंशों में जोड़ देने से प्राप्त राश्यादि लग्न का प्रमाण होगा।

क्योंकि भास्कराचार्य ने पूर्व में कहा है कि पूर्ण राशि उदयमान जो ज्ञात किये जाते हैं वे क्षेत्र बड़े होने के कारण स्थूल होते हैं। अतः ये जो आचार्योक्त प्रकार से लग्न आनयन किया गया है वह स्थूल होगा (होना चाहिये)। पंडित सुधाकर द्विवेदी जी ने इसमें संशोधन करके लग्नानयन किया है जो अधिक शुद्ध है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"आकाशमध्यविंषुवांशवशात्प्रकुर्याद्यष्टिं दिवाकरमक्रमकोटिभागान्।
यष्टिं जिनांशजगुणं विषुवांशकं च स्वाक्षाद्य हीनदिनभागमितं क्रमेण॥
सौम्यानुदग्गोलगते प्रकल्प्य साध्यो भुजांशोऽथ भुजांशरव्योः।
युतेर्मितं सायनलग्नमानं भवेत्स्फुटं गोलविदां बुधानाम्॥"

विस्तार से व्याख्या तथा उदाहरण आदि के लिए मेरे द्वारा (टीकाकार) लिखित "बृहद् भारतीय कुण्डली विज्ञान" का अवलोकन करें।

प्रकारांतर से उपपत्ति—

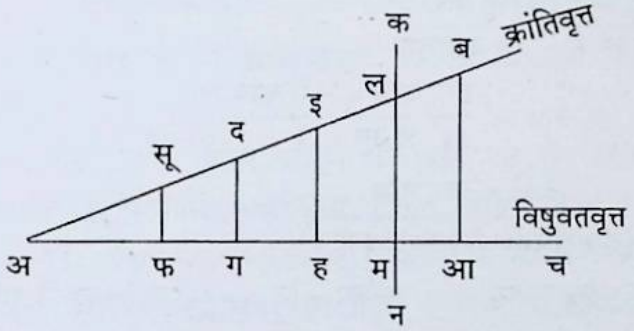

माना **अ द ब** = क्रांतिवृत्त है तथा **अ ह च** विषुवद्वृत्त है तथा **अ** इनका संपात बिन्दु है। **द इ ब** माना तीन राशियों के अंत बिंदु हैं। सूर्योदय के पश्चात माना **क** असु समय पश्चात सूर्य की स्थिति **'सू'** है। माना उस समय पर **क ल म न** क्षितिज स्थान है जो क्रांतिवृत्त को **ल** बिंदु पर तथा विषुवतवृत्त को **म** बिंदु पर काटता है। **ल** इष्ट समय पर लग्न की स्थिति है जो हमें ज्ञात करना है।

माना विषुवद्वृत्त पर क्रां.वृ. के बिंदु सू, द, इ, ल तथा ब के प्रतिच्छाया (Corresponding) बिंदु क्रमशः फ, ग, ह, म तथा आ हैं। इस प्रकार अ ग, ग ह तथा ह आ क्रमशः क्रांतिवृत्त पर अ द, द इ तथा इ ब राशि के उदय काल के तुल्य भाग हैं।

लग्न ल स्पष्ट = अ सू चाप + सू ल चाप

= सूर्यस्पष्ट+सू द चाप + द इ चाप + इ ल चाप

= सूर्यस्प. + (३०° − सू.स्प.) + दूसरी राशि+ इ ल चाप

विषुवत वृत्त पर—

$$\frac{\text{फ ग चाप}}{\text{अ ग चाप}} = \frac{\text{सू द चाप}}{\text{अ द चाप}}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{या फ ग चाप} = \frac{\text{सूद चाप} \times \text{अ ग चाप}}{\text{अ द चाप}}$$

$$= \frac{(३०^\circ - \text{सूर्य स्प.}) \times \text{प्रथम राशि का उदय मान}}{३०^\circ \text{ (एक राशि मान)}}$$

चाप ह म = चाप फ म − चाप फ ग − चाप ग ह

अतः ह म चाप = क असु − चाप फ ग − दूसरी राशि के उदय असु

इसी प्रकार

$$\frac{\text{इ ल चाप}}{\text{इ ब चाप}} = \frac{\text{ह म चाप}}{\text{ह आ चाप}}$$

$$\text{या इ ल चाप} = \frac{\text{इ ब चाप} \times \text{ह म चाप}}{\text{ह आ चाप}}$$

$$= \frac{३०^\circ \times \text{चाप ह म}}{\text{(तीसरी राशि का स्वोदय मान)}}$$

अतः लग्न स्पष्ट ल = सूर्यस्प.+(३० − सू.प.)+दूसरी राशि उदयमान + इ ल

यहाँ इ ल चाप का मान प्रतिस्थापित कर देंगे।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ८ में आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा−

"द्युगताद्दिवा विलग्नं निशिषड्भयुताद्रवेः साध्यम्।
भोग्यात्तात्कालिकरविभवनागतकलागुणिताः ॥७॥
स्वोदयकाला विभक्ता राशिकलाभिः फलाऽसवोऽसुभ्यः।
प्रोह्योष्टेभ्यो भोग्यं क्षिपेद्रवौ तदनु यावन्तः॥८॥
शुद्धयन्त्युदया राशीन् क्षिपेद्रवौ तावतोऽवशेषं च।
खगुणघ्नमशुद्धोदयहृद् भागादौ क्षिपेद्विलग्नं प्राक्॥९॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा−

"रविभुक्तहीनराशेः कलागुणाः स्वोदयासुभिर्भक्ताः।
राशिकलाभिर्लब्धाः प्रश्नासुभ्योऽसवः शोध्याः॥१८॥
प्रक्षिप्य राश्य भुक्तं शेषासुभ्यः क्रमेण यावन्तः।
शुद्धयन्त्युदयाः सूर्ये तावन्तो राशयः क्षेप्याः॥१९॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शेषात् त्रिंशद्गुणितादविशुद्धस्योदयासुभिर्विभजेत्।
लब्धं भागादिरवौ प्रक्षेप्य स्यात्तथा कृते लग्नम्॥२०॥''

मुञ्जालाचार्य ने लघुमानस के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

''स्वोदयैः प्रश्ननाडिभिर्वधितोऽर्कोऽनुपाततः॥२३$\frac{१}{२}$।

खण्डखाध्यायका अध्याय ३ में ब्रह्मगुप्त ने इसी प्रकार कहा है। यथा–

''इष्टघटिकाभिरुदयैरनुपातादवर्द्धितो रविर्लग्नम्।४$\frac{१}{२}$।''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है।

''भोग्यान सहस्रकिरणेन गृहस्य भागान् सन्ताडयेत् तदुदयेन हरेत् खरामैः।
लब्धं त्यजेदसुसमूहमभीप्सितेभ्योऽसुभ्यः क्षिपेद् दिनकरेऽपि च राशिभुक्तम्॥११॥
यावन्त एवमुदया निपतन्त्यसुभ्योराशीन् क्षिपेत् तदनु तावत एव सूर्ये।
शेषात् खरामगुणितादविशुद्धलब्धं भागादिकं च भवतीष्टविलग्नमेवम्॥१२॥''

सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाध्याय ३ में लग्नानयन आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा–

''गतभोग्यासवः कार्या भास्करादिष्टकालिकात्।
स्वोदयासुहता भुक्तभोग्या भक्ताः खवह्निभिः॥४६॥
अभीष्टघटिकासुभ्यो भोग्यासून् प्रविशोधयेत्।
तद्वत् तदेष्यलग्नासूनेवं यातान् तथोत्क्रमात्॥४७॥
शेषं चेत् त्रिंशताभ्यस्तमशुद्धेन विभाजितम्।
भागहीनं च युक्तं च तल्लग्नं क्षितिजे तदा॥४८॥''

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''तत्कालरवेरयनसंस्कृतमूर्त्तेर्द्दकाण भोगलवाः।
तदुदयहतायनहृता भोग्याः प्राणा भवन्तितान् जह्यात्॥४२॥
इष्टप्राणेभ्योऽन्यानुदयांश्चाथाऽवशेषयेनबधात्।
अविशुद्धोदयलब्धा भागास्तात्कालिके रवौ क्षेप्याः॥४३॥
शुद्धोदय भागाश्चासौ लग्नं संस्फुटं भवति।
रात्रौ भगणार्धयुताद्भानोर्भोग्यं विधाय संशोध्यम्॥४४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भोग्यः शुध्यति न यदा प्रश्नासुन्काहतिं तदा विभजेत्।
भानुद्दकाण प्राणैर्लब्धांशाढ्यो रविर्लग्नम्॥४५॥''

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय के अध्याय ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''सूर्यागतसमभ्यस्ताः तद्राशीष्टासवो हृताः।
राशिभागैः कलाभिर्वा लब्धा रव्यगतासवः॥३०॥
इष्टासुभ्यो विशोध्यैतान् रवौ चाप्यगतं क्षिपेत्।
राशिप्राणांस्ततोऽपास्य देयाभानौ च राशयः॥३१॥
शेषं त्रिंशत्समभ्यस्तमिष्टराश्यसुभिर्हृतम्।
लब्ध भागादिसंयुक्तमिष्टकालोदयं विदुः॥३२॥''

इदानीं लग्नात् कालानयनमाह—

अर्कस्य भोग्यस्तनुभुक्तयुक्तो मध्योदयाढ्यः समयो विलग्नात्।
यदैकभे लग्नरवी तदा तद्भागान्तरघ्नोदयखाग्निभागः॥५॥
लग्नेऽल्पके तु द्युनिशात् स शोध्यस्तात्कालिकार्कादसकृच्च कालः।
चेत् सावनाः प्रष्टुरभीष्टनाड्यस्तदैव तात्कालिकतिग्मरश्मेः॥६॥
आक्ष्यों यदेष्टा घटिका विलग्नं कालश्च तत्रौदयिकात् सकृच्च॥६$\frac{१}{२}$॥

लग्न से काल का आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— रवि के भोग्य काल तथा लग्न के सायन अंशों के भुक्तकाल के योग में रवि से आगे की लग्नपर्यंत के मध्य गत राशियों के उदयाकाल को जोड़ देने से सूर्योदय से इष्ट काल होता है।

यदि लग्न तथा रवि एक ही राशि में हो तो दोनों के अंतर अंशों को रवि स्थित राशि के स्वोदय मान से गुणा करके तीस से भाग देने से इष्टकाल प्राप्त होता है।

लग्न यदि रवि से अल्प हो तो रवि और लग्न एक राशि में रहने से जो इष्टकाल आया है उसे रात्रि शेष में होने के कारण अहोरात्र में से घटाने से तात्कालिक रवि से असकृत कर्म से इष्ट काल होता है।

तात्कालिक रवि केंद्रोपरिगत अहोरात्रवृत्त और क्षितिजवृत्त के संपात से तात्कालिक रविकेंद्र तक सावनात्मक इष्ट काल होता है। उदय काल में स्थित रवि औदयिक है। वह इष्टकाल में प्रवहगति से जहाँ पहुँचते हैं उस पर जो अहोरात्र वृत्त क्षितिज वृत्त से जहाँ पर मिलेगा वहाँ से उदय कालिक रवि तक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाक्षत्रात्मक इष्टकाल होता है और इष्टलग्न साधन में सावन इष्टकाल ग्रहण करते हैं लेकिन राशि उदयमान नाक्षत्रात्मक होता है। तब इष्टासु में राश्युदय काल क्यों घटाते हैं? जबकि वे दोनों विजातीय होते हैं। अतः असकृत्कर्म के कारण भी तात्कालिक रवि को ही ग्रहण करना ही होता है, इसके लिए आचार्य ने गोलाध्याय में ''लग्नार्थ मिष्टघटिका.....'' आदि कहा है।

स्पष्टीकरण— आचार्य का सकृत कर्म करने का तात्पर्य यह है कि हमें सावन इष्ट घटी ज्ञात है लेकिन नाक्षत्र इष्ट घटी ज्ञात नहीं है। अतः सकृत् कर्म द्वारा इष्ट घटी को स्थिर किया जाता है। ब्रह्मगुप्तादि ने भी इसी प्रकार कहा है।

उपपत्ति— चित्र में सं रवि पर से जाने वाले अहोरात्र वृत्त तथा क्षितिज वृत्त का संपात है। ल = लग्न है। सू = तात्कालिक सूर्य है। अ = लग्न राशि का आरंभ बिंदु है। र = रवि की राशि का अंत बिन्दु है। अ र = र तथा अ के अंतराल में राशियाँ हैं। सू सं = सावन इष्ट घटी है।

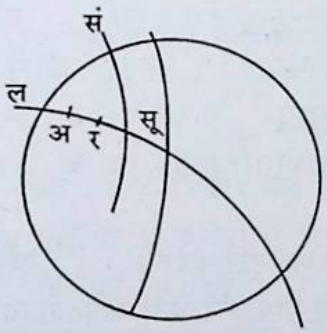

चित्र से स्पष्ट है कि तात्कालिक रवि केंद्र के ऊपर से अहोरात्रवृत्त होता है तथा इष्टकाल, रवि भोग्य असु और लग्न के भुक्तासु तथा इनके अंतर्गत स्थित राशियों के उदयअसु का योग होता है।

$$\text{अ ल} = \frac{\text{लग्न भुक्त कला} \times \text{लग्न राशि उदय असु}}{१८००}$$

$$\text{र सू} = \frac{\text{रवि राशि के भुक्त कला} \times \text{सूर्य स्थित राशि के उदय असु}}{१८००}$$

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"रविराश्य भुक्तलिप्तास्तदुदयगुणिता हृता गृहकलाभिः।
लब्धं प्राणाः स्थाप्याः प्रक्षिप्यार्के गृहाभुक्तम्॥२१॥
तावत्सूर्ये राशीन् क्षिपेत् समं राशिभैर्यावत्।
क्षिप्तग्रहाणां प्राणान् प्रक्षिप्य स्थापितेष्वसुषु॥२२॥
तदधिक कालोदयवधं राशिकलाभिर्भजेत् फलप्राणान्।
प्रक्षिप्य प्राणेषु प्राणाः सूर्योदयादसकृत्॥२३॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार के अध्याय ८ में आचार्योक्त प्रकार ही से इष्टकाल आनयन कहा है। यथा–

"एकस्मिन् यदि भवने विलग्नसूर्यौ तदातयोर्विवरे।
भागाः स्वोदयगुणिता वियदग्निविभाजिताः कालः॥१३॥
रजनीशेषाल्लने रव्यूने साधितः कालः।
द्युनिशाच्छोध्यः कालस्तत्कालरविवशादसकृत्॥१४॥"

सूर्यसिद्धान्त में भी जो कहा है वह आचार्योक्त ही है। त्रिप्रश्नाधिकार–

"भोग्यासूनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च।
सम्पिण्ड्यान्तरलग्नासूनेवं स्यात् कालसाधनम्॥५०॥
सूर्यादूने निषाशेषे लग्नेऽकोदधिके दिवा।
भचक्रर्ध युताद् भानोरधिकेऽस्तमयात् परम्॥५१॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"चक्रार्धयुक्तमिदमस्तविलग्नमाहुर्लग्नोदयेन गुणितास्तनुभुक्तभागाः।
खाग्न्युद्धृताः स्युरसवो रविभोग्यकाले तन्मध्यगोदययुताः समयो विलग्नात्॥१३॥
भानोरभुक्तसमयाल्पतरेष्टकालात् त्रिंशद्गुणात् तदुदयाप्तलवान्वितोऽर्कः।
लग्नं तदर्कविवरांशहतोदयात् स्वात् त्रिंशोद् घृतात् समय एकगृहेऽर्कतन्वो॥१४॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त को ही द्रेष्काण प्रकार से कहा है। यथा–

"अयनसुसंस्कृतभानोर्भोग्यं तद्वद्विलग्नभुक्तं च।
क्षेप्यं मध्योदयजप्राणयुतं तत्तनोर्भवेत् समयः॥४६॥
एकस्मिन् दृक्काणे लग्नार्कौ चेत् तदान्तरांशहताः।
पीनै भक्ता उदयासव इष्टास्ते भवन्त्यसवः॥४७॥"

मुंजालाचार्य ने लघुमानसम त्रिप्रश्नाध्याय में तथा **ब्रह्मगुप्त ने खण्डखाध्याय** में सूक्ष्म में आचार्योक्त कहा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"लग्नं तद्वद्विद्धेऽर्के लग्नतुल्ये तुनाडिकाः॥ लघु.मान. २४॥"
"अनुपातावर्द्धितेऽर्के लग्नसमे स्वौदयैर्घटिकाः॥
खण्डखाध्याय अ. ३ श्लोक ५॥"

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय त्रिप्रश्नाध्याय में आचार्योक्त कहा है—

"उदयस्य गता भागाः स्वोदयेनहता हृताः।
त्रिंशता प्राणलब्धिः स्यात् लग्नराश्यसवः पुनः॥३४॥
आहार्या यावदर्कस्य राशिभिस्तुदयासवः।
जायन्ते पुनरर्कस्य गन्तव्यांशासुभिर्युताः॥३५॥
प्राणाः दिवसशर्वयोर्विज्ञेयाः शड्विभाजिताः।
षष्ट्या भूयोऽपि येलब्धा घटीविघटिकासवः॥३६॥"

इदानीं विलोमलग्नमाह—

भुक्तासुशुद्धेर्विपरीतलग्नं भुक्तांशगेहाप्तलवोनितोऽर्कः॥७॥

विलोम लग्न—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि सूर्योदय से पूर्व का लग्न ज्ञात करना हो तो तात्कालिक सूर्य ज्ञात करके उसके भुक्त असु ज्ञात करके उनको इष्ट असु में से घटा देवें तथा शेष असु में से जितनी अभुक्त राशियों के (सूर्य राशि से पूर्वराशियों के) उदय असु घट सके घटा देवें। शेष बचे (अशुद्ध राशि के) असु को तीस से गुणा करके अशुद्ध राशि के उदय असु से भाग देकर अंशादि लब्धि को सूर्य में से घटाने से रात्रि शेष का लग्न होता है। इस रात्रि शेष लग्न के अभुक्तांश (भोग्यांश) और सूर्य तथा लग्न के बीच की राशियों के उदयमानों के योग से असकृत् कर्म करने से रात्रि शेष में स्फुट इष्टकाल होता है।

उपपत्ति— इसकी भाष्य (टीका) ही उपपत्ति है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—
"प्रागुद्गमादपि रविर्गतराशिभागैः प्राग्भोदयैर्विरहितश्च विलग्नमेवमूने रवौ तनुसमे च कृते स कालः।"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"प्रागुदये प्रश्नासुभिरुनोऽर्को भुक्तराशिभिर्लग्नम्।
कृत्वैवमूनमर्क लग्नसमं प्राग् भवेत्कालः॥२४॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं दिग्ज्ञानमाह—

वृत्तेऽम्भः सुसमीकृतक्षितिगते केन्द्रस्थशङ्कोः क्रमा-
द्भागं यत्र विशत्यपैति च यतस्तत्रापरैन्द्र्यौ दिशौ।
तत्कालापमजीवयोस्तु विवराद्भाकर्णभित्याहता-
ल्लम्बज्याप्तमिताङ्गुलैरयनदिश्यैन्द्री स्फुटा चालिता॥८॥
तन्मत्स्यादथ याम्यसौम्यककुभौ सौम्या ध्रुवे वा भवे-
देकस्मादपि भाग्रतो भुजमितां कोटीमितां शङ्कुतः।
न्यस्येद्यष्टिमृजुं तथा भुवि यथा यष्ट्यग्रयोः संयुतिः
कोटिः प्राच्यपरा भवेदिति कृते बाहुश्च याम्योत्तरा॥९॥

दिशा ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जल से सुसमीकृत अर्थात् समान की हुई भूमि में (इष्ट दिन मध्यान्ह छाया व्यासार्ध) इष्ट प्रमाण का वृत्त बनावें जिसके केंद्र में द्वादश अंगुल नाप का शंकु स्थापित करे। उसकी छाया पूर्वाह्ण में वृत्त को जहाँ प्रवेश करे (पश्चिम) तथा अपराह्न में जहाँ निर्गत हो (पूर्व) उन बिंदु गत रेखा की दिशा में पूर्व पश्चिम स्थूल दिशा होती है। जिस समय छाया प्रवेश तथा निर्गम करती है उस काल की सूर्य की क्रांतिज्या साधित करे तथा उनके अंतर को छायाकर्ण से गुणा करके लम्ब ज्या से विभक्त करने से लब्धि अंगुलादि फल तुल्य पश्चिम बिंदु को स्थिर करके स्थूलपूर्वपश्चिम रेखा को यदि सूर्य उत्तर अयन में हो तो उत्तर की ओर और यदि दक्षिणायन में रवि हो तो दक्षिण की ओर घुमाने से स्फुट पूर्व-पश्चिम रेखा (दिशा) होती है। अन्यथा स्थूल पूर्व-पश्चिम दिशा होती है।

ध्रुवतारा उत्तर की ओर होता है अतःउसकी ओर उत्तर दिशा तथा उसके विरुद्ध दिशा में दक्षिण दिशा होती है। इस प्रकार दक्षिणोत्तर रेखा के अर्ध बिंदु के ऊपर जो लम्ब रेखा होगी वही वास्तव पूर्वापर रेखा होती है। इस तरह से भी प्रकारांतर से पूर्वपश्चिम रेखा का ज्ञान कर सकते हैं।

इष्ट छाया कर्ण, भुज तथा कोटि से निर्मित त्रिभुज के कर्ण के तुल्य जहाँ इष्टच्छाया होती है वहाँ कोटि पूर्वापर होती है।

उपपत्ति— अहोरात्र वृत्त इष्टउन्नतघटीअग्र पर पूर्वाह्ण में सममंडल से जितने अंतर पर रहता है उतना ही इष्ट उन्नत घटी अग्र पर अपराह्ण में रहता है, अतः उनकी छायाग्र बिंदुओं से दिग्ज्ञान होता है। उनको तात्कालिक करने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के लिए उनकी सूर्य क्रांति में जितना अंतर रहता है वह साधित करते हैं। क्योंकि पूर्व तथा पश्चिम कपाल में दोनों तुल्य छायाग्र की जो क्रांति होती है वह समान नहीं होती उनमें अंतर होता है। उस समय में जितने कर्णवृत्ताग्र अंगुल पूर्वाह्न में रहती है तथा इसी प्रकार जितनी अंगुल अपराह्न में रहती है, उनका अंतर कर लेते हैं। इसको लघु रीति से करने के लिए उनके तत्काल की क्रांतियों का अंतर कर लेते हैं। उससे अग्रान्तर करने के लिए अनुपात करते हैं कि यदि लम्बज्या कोटि में त्रिज्या कर्ण होती है तो क्रांतिज्या अंतर में कितनी होगी? प्राप्तफल अग्रा का अंतर होगा। इससे फिर अनुपात किया कि यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतना अंतर रहता है तो कर्णव्यासार्ध में कितना होगा?

$$\frac{\text{त्रि.} \times \text{छाया कर्ण}}{\text{ज्या लं.त्रि.}} \text{ (ज्या क्रां – ज्या क्रां')}$$

त्रिज्या जहाँ गुणा तथा भाग में होने से परस्पर कट जाती है तथा प्राप्तफल $\frac{\text{छाया कर्ण}}{\text{ज्या लं.}}$ (ज्या क्रां – ज्या क्रां'.) = $\frac{\text{तात्कालिक क्रांति अंतर} \times \text{छाया कर्ण}}{\text{लंबज्या}}$ = अग्रान्तर उत्तरायन में सूर्य उत्तर की ओर चलता है तब शंकुअग्र दक्षिण की ओर से उत्तर की तरफ चलता है। इस प्रकार "यैन्द्री स्फुटा चालिता" आदि उपपन्न हुआ।

भुज कोटि की उपपत्ति आगे कही गई है।

ऊपर प्राप्त अग्रांतर से पूर्व बिंदु के चालन से वास्तव पूर्वापर रेखा की समानान्तर रेखा का ज्ञान होता है। केंद्र बिंदु से उसकी समानान्तर रेखा वास्तव पूर्वापर रेखा होती है। इसके अर्ध बिंदु पर से पूर्वापर रेखा पर लम्बवत रेखा दक्षिणोत्तर रेखा होती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। ब्रह्मगुप्त प्रथम भारतीय खगोलविद् थे जिन्होंने यह सूक्ष्मविधि कही जिसको अन्य आचार्यों ने ग्रहण किया। यथा–

"पूर्वापरयोबिन्दु तुल्यच्छांयाग्रयोर्दिगपराद्यः।
पर्वान्यः क्रान्तिवशात् तन्मध्याच्छङ्कुतलमितरे॥१॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय १ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"समभुवि वृत्तेशङ्कोर्मध्यस्य प्रभाक्रामद्यत्र।
प्रविशत्यपैति ककुभौ क्रान्तिवशात्स्तौऽपरैन्द्राख्ये॥२॥
तुल्य प्रभाग्रयोर्वा पूर्वापरयोः कपालयोर्बिन्दू।
कार्यावपक्रमवशादरैन्द्राख्यौ दिशौ भवतः॥३॥
वृत्तं रवौ प्रविष्टे सममंडलसंज्ञितं प्रभा या स्यात्।
समपूर्वापरगा सा सौम्या यत्र ध्रुवः सा स्यात्॥४॥
इष्टाभा भुजकोटिरचितत्रिभुजस्य वा श्रवणतुल्या।
यत्रेष्टाभा यावत्तावत्पूर्वापरा कोटिः॥५॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा त्रिप्रश्नाधिकार–

"छायानिर्गमन प्रवेश समयार्ककान्ति जीवान्तरं
क्षण्णं स्वश्रवणेन लम्बकहृतं स्यादङ्गुलाद्यं फलम्।
पश्चाद्बिन्दुमनेन रव्ययनतः सञ्चालयेद्व्यत्ययात्
स्पष्टा प्राच्यपराथवायनवशात् प्राग्बिन्दुमुत्सारयेत्॥३॥"

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय के त्रिप्रश्नाध्याय ३ में मत्स्य द्वारा उत्तर-दक्षिण रेखा साधन करके शुद्ध पूर्वापर रेखा ज्ञात करना बताया है। यथा–

"अद्भिः समत्वमवगम्य धरातलस्य वृत्तं लिखेत् स्फुटतरं खलु कर्कटेन।
सूत्रैश्चतुर्भिरवलम्बकसन्निबद्धैर्ज्ञातार्जवोरूसवृत्तगुरुर्नरः स्यात्॥१॥
छाया प्रवेश निर्गम बिन्दुभ्यां मीनमालिखेद् व्यक्तम्।
तद्वक्त्रपुच्छनिः सृतं सूत्रं याम्योत्तरं शङ्कोः॥२॥"

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका में आचार्योक्त कहा है। यथा त्रिप्रश्नाधिकार–

"(शङ्कुचतुर्वि) स्तारे वृत्ते छायाप्रवेशनिर्गमनात्।
नपरैन्द्रीदिक्सिद्धि (र्य) वा (च्च) याम्योत्तरे कार्ये॥१९॥"

इदानीमेतत्सम्बन्धमाह—

दिक्सूत्रसंपातगतस्य शङ्कोश्छायाग्रपूर्वापरसूत्रमध्यम्।
दोर्दोः प्रभावर्गवियोगमूलं कोटिर्नरात् प्रागपरा ततः स्यात्॥१०॥

इनका संबंध—

सूर्य-प्रभा टीका— दिक्सूत्र (पूर्वापर रेखा) तथा शङ्कुछायाग्र जहाँ वृत्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

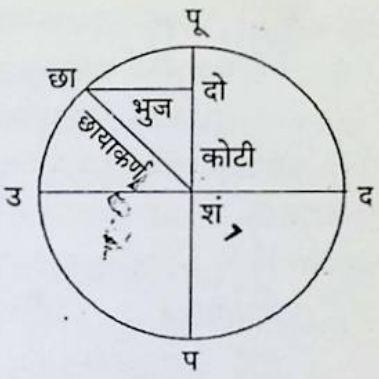

परिधि पर पड़ता है उसके मध्य की दूरी (भुज) दोः होती है। इसके वर्ग का शुङ्कुछाया वर्ग से अंतर का मूल कोटि होती है जो पूर्वापर रेखा में होती है।

स्पष्टीकरण— उपपत्ति— चित्र में शं बिंदु पर शंकु है। शं छा छाया है तथा छा छाया अग्र बिंदु है। छा की पूर्व पश्चिम रेखा पू प से दूरी छा दो भुज है। तथा छाया छा शं कर्ण है।

$$\text{अतः दो शं} = \text{कोटि} = \sqrt{\text{छा शं}^2 - \text{छा दो}^2}$$

$$\text{कोटि} = \sqrt{\text{छायाकर्ण} - \text{भुज}^2}$$ यह पूर्वापर रेखा में है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है।

"शङ्क प्राच्यपरायाश्छाया भुजकृतिविशेषमूलं यत्।
तत् प्राच्यपरा छाया भुजाग्रयोरन्तरं कोटिः॥५॥"

इदानीं छायातः कर्ण, कर्णाच्छायां चाह—

भाकृतीन १२ कृति १४४ संयुतेः पदं स्याच्छुतिः श्रुतिकृतीनवर्गयोः १४४।
अन्तराद्रवियुतोनकर्णयोराहतेश्च यदि वा पदं प्रभा॥११॥

छाया से कर्ण और कर्ण से छाया ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— छाया के वर्ग में बारह के वर्ग (१४४) को जोड़ कर मूल लेने से कर्ण होता है। कर्ण के वर्ग में से बारह के वर्ग को घटाकर मूल लेने से छाया होती है। कर्ण में बारह जोड़कर तथा घटाकर दोनों के गुणा का मूल लेने से छाया होती है।

सूत्र रूप में—

$$\text{छायाकर्ण} = \sqrt{\text{छाया}^2 + १२^2} \; ; \; \text{छाया} = \sqrt{\text{कर्ण}^2 - १२^2} \; ;$$

$$\text{छाया} = \sqrt{(\text{कर्ण} + १२)(\text{कर्ण} - १२)}$$

उपपत्ति— सरल है तथा और उपपत्ति गोलाध्याय में बताई जायेगी।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने भी वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाध्याय १ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"शङ्कु प्रमाणवर्गाच्छायावर्गान्वितात्पदं कर्णः।
कर्णकृतेः शङ्कूकृति विशोध्य मूलं प्रभाभवति॥११॥
श्रुतिशङ्क्वन्तरगुणितात्तद्योगान्मूलमक्षा भा॥१३॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में जो कहा वह भास्कराचार्य ने भी कहा है। आर्यभट की विधि (पलभा ज्ञान-छाया) भास्कराचार्य से अधिक शुद्ध है। यथा–

"तद्योगार्ध विषुवच्छाया तच्छङ्कुवर्गैक्यात्॥३॥
मूलं विषुवत्कर्णस्तत्क्रा(१२) द्ध्योनाहतेः पदं भावा ।
दोर्भाशंकुः कोटिर्विषुवत्कर्णो भवेत् कर्णः॥४॥"

मुञ्जालाचार्य ने लघुमानसम के त्रिप्रश्नाध्याय में जो कहा है वह भी भास्कराचार्य ने कहा है। यथा—

"छायार्क वर्गसंयोगान्मूलं कर्णस्ततोऽपिभा॥२८$\frac{१}{२}$॥"

भास्कर (प्र.) ने महा.भा. के तृतीय अ. में कर्ण अनयन आचार्योक्त कहा है। यथा–

"नृच्छायाकृतियोगस्य मूलमाहुर्मनीषिणः।
विषकम्भार्ध स्ववृत्तस्य छायाकर्मणि सर्वदा॥४॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में इस प्रकार कहा है। यथा–

"मध्यच्छायाकर्ण द्वादशकृत्यन्तरपदं वा॥४९॥"

पंचसिद्धान्तिका अध्याय-४ में आचार्योक्त छायाकर्ण साधन कहा है।

"विषुवद्दिन (सममध्य) च्छायावर्गात् सवेदकृतरूपात्।
मूलेन.....॥२०॥"
लब्धाङ्गुलानि (को) टिस्त (च्छा) या वर्गविवरमूलं (यत्)
सच (बाहुर्दिगग्र)हणे सममितिः को(ट्या) तु देयमृजु॥५४॥"

इदानीं संज्ञाविशेषमाह—

शङ्कुर्नरो ना कथितः स एव खार्धाद्रवेर्या विषुवद्दिनार्धे।
नतिः पलोऽक्षश्च स एव तज्ज्ञैस्तत्रोन्नतिर्यास्य स एव लम्बः॥१२॥

संज्ञा विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— शङ्कु को "नर" अथवा "ना" भी कहते हैं। विषुवद् दिनार्ध पर खस्वस्तिक तथा निरक्षखस्वस्तिक का अंतर ख अक्ष होता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। इन दोनों का अंतर करने से खस्वस्तिक तक रवि का नतांश होता है जिसको ख अक्ष (अक्षांश) भी कहते हैं। नतांश को तीन राशि में से घटाने से शेष को उन्नतांश कहते हैं। इसकी ज्या लम्ब रूप कोटि होती है जिसको शंकु कहते हैं।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद् ग्रन्थ के त्रिप्रश्नाधिकार में नतउन्नत कहा है।

"क्रांतिलम्बधनुषोरुदग्रवौ संयुतिर्वियुतिरन्यगोलके।
उन्नतिस्त्रिभविशेषिता नतिस्तिग्मभासि नभसोऽन्तरागते॥१५॥
क्रांतिचापपलयोः समागमो याम्यगोलयुजि तिग्मदीधितौ।
सौम्यभाजि विवरं भवेन्नतिः सोन्नतिस्त्रिभविशेषिताथ वा॥१६॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार के नवें अध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"क्रान्त्यक्षान्तरयोगः समान्यककुभोर्नतांशकाः खाक्षाः।
तज्जया दृग्ज्या दोर्ज्या नतांशकोनास्त्रिगृहभागाः॥१॥
उन्नतभागाः कोटिस्तज्ज्या दोर्ज्यान्तरं तथा शङ्कः।
उन्नतजीवा त्रिज्या कर्णो यष्टिस्तथा नलकाः॥२॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में नत-उन्नत को इस प्रकार कहा है। यथा–

"दिनमध्यार्ककान्त्यक्ष भागयोगान्तरं समान्यदिशोः।
नतभागा नतभागान्नवतेः प्रोह्योन्नताः शेषाः॥४७॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में भास्कराचार्योक्त प्रकार ही से शंकु को नर कहा है तथा इष्टशंकु तथा नत-उन्नत क्रमज्या ज्ञात करना बताया है। यथा–

"यष्ट्युद्भूतनृयोगान्तरतो गोलक्रमाद भीष्टनरः।
अन्त्या नत्या हीना नतबाणः शेषमुक्तवत् कार्यम्॥३०॥"

इदानीमक्षक्षेत्राण्याह—

भुजोऽक्षभा कोटिरिनाङ्गुलो ना कर्णोऽक्षकर्णः खलु मूलमेतत्।
क्षेत्राणि यान्यक्षभवानि तेषां विद्येव मानार्थयशः सुखानाम्॥१३॥
लम्बज्यका कोटिरथाक्षजीवा भुजोऽत्र कर्णस्त्रिभुजे त्रिभज्या।
कुज्या भुजः कोटिरपक्रमज्या कर्णोऽग्रका च त्रिभुजं तथेदम्॥१४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथैव कोटिः समवृत्तशङ्कुरग्रा भुजस्तद्धृतिरत्र कर्णः।
भुजोऽपमज्या समना च कर्णः कुज्योनिता तद्धृतिरत्र कोटिः॥१५॥
अग्रादिखण्डं कथिता च कोटिरुद्वृत्तना दोः श्रवणोऽपमज्या।
उद्वृत्तना कोटिरथाग्रकाग्रखण्डं भुजस्तच्छ्रवणः क्षितिज्या॥१६॥
खण्डं यदूर्ध्वं समवृत्तशङ्कोर्यत् तद्धृतेस्तावथ कोटिकर्णौ।
अग्रादिखण्डं भुज एवमष्टौ क्षेत्राण्यमून्यक्षभवानि तावत्॥१७॥

अक्ष क्षेत्र—

सूर्य-प्रभा टीका— ध्रुव क्षितिज के आसक्त होता है। निरक्ष देश से दृष्टा जैसे-जैसे उत्तर की तरफ जाता है वैसे-वैसे उसको ध्रुव ऊँचा उठाता हुआ दिखाई देता है। जितने अंश ध्रुव उन्नत होता है उतनी उस स्थान की अक्षांश संज्ञा होती है। ख स्वस्तिक से दक्षिण की ओर विषुवन्मण्डल नीचा दिखाई देता है। विषुवन्मडल की तिर्यक् स्थिति के कारण उसके (समानान्तर) आश्रित अहोरात्र वृत्त स्वस्थान पर तिरछा होता है। अतःसाक्ष देश खगोल वलन तथा तिरछे भगोल वलन के संपात से तीन ओर से क्षेत्र उत्पन्न होता है। ऐसे ही अन्य क्षेत्रों की अक्ष क्षेत्र संज्ञा है। इन क्षेत्रों की उपयोगिता आचार्य कहते हैं।

(१) अक्षभा अर्थात पलभा भुज, १२ अंगुलात्मक शंकु कोटि तथा अक्षकर्ण कर्ण से मूलभूत अक्षक्षेत्र बनता है। यह क्षेत्र ज्ञान के समान, मूलभूत क्षेत्र है, जिससे (ज्ञान से) संसार की सभी मान, अर्थ, यश तथा सुख आदि मूलभूत अच्छाईयाँ प्राप्त होती है।

(२) दक्षिणोत्तर मण्डल और विषुवद् वृत्त के संपात से नीचे अवलम्बित क्षितिज पर्यन्त सूत्र वहाँ कोटि है। लम्ब मूल तथा भूमध्य का अंतर जो अक्षज्या है वह भुज है। भूमध्य से लम्ब पर अग्रगामि सूत्र त्रिज्या है वह कर्ण है। यह भी एक अक्षक्षेत्र बनता है।

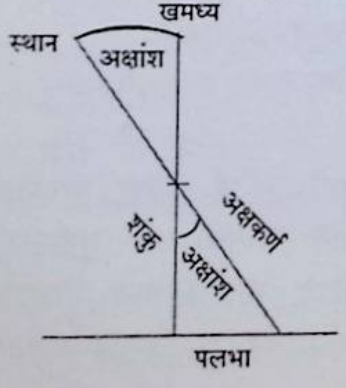

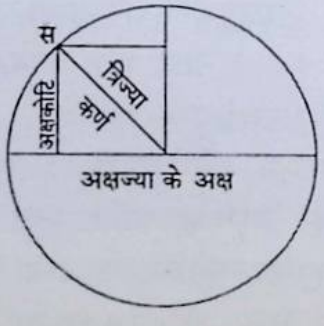

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(३) इष्ट अहोरात्र वृत्त जहाँ क्षितिज पर लगता है उसका पूर्व स्वस्तिक से अन्तर अग्राचापांश होता है जिसकी ज्या अग्रज्या होती है। क्षितिज पर अग्रा के दोनों अग्र बिंदु से निबद्ध सूत्र उदयास्त सूत्र होता है। अहोरात्र वृत्त तथा उन्मण्डल के संपात का पूर्वापर सूत्र से जो अंतर है वह क्रांतिज्या है, वह यहाँ कोटि है। अग्रा कर्ण है। उसका अग्रा से अंतर कुज्या है वह भुज है। इस प्रकार यह तीसरा अक्षक्षेत्र है।

(४) अहोरात्रवृत्त और सममंडल के संपात से नीचे लंब समवृत्तशंकु है वह कोटी है। अग्रा भुज तथा अहोरात्र वृत्त में ज्याखण्ड तद्धृति कर्ण है। इस प्रकार यह चौथा अक्षक्षेत्र है।

(५) कुज्या को तद्धृति में घटाने से अहोरात्र वृत्त में ज्यार्ध कोटि है उन्मण्डल में क्रांतिज्या है वह भुज है। समवृत्त में समशंकु कर्ण है। इस प्रकार यह पांचवाँ अक्षक्षेत्र है।

(६) अहोरात्रवृत्त तथा उन्मण्डल के संपात से अवलंब उन्मण्डल शंकु भुज है। उन्मण्डल में क्रांतिज्या कर्ण है। उन्मंण्डल शंकुमूल से पूर्वापर सूत्र का अंतर जो अग्रादि का खंड है वह कोटि है। यह छठा अक्षक्षेत्र है।

(७) उन्मंडल शंकु कोटि है। शंकूमूल तथा उदयास्त सूत्र का अन्तर अग्रा खण्ड भुज है तथा कोटि भुज, अग्रा का अंतर सूत्र जो कुज्या है वह कर्ण है। इस प्रकार यह सातवाँ अक्षक्षेत्र है।

(८) उन्मंडल शंकु को समशंकु में से घटाने से समशंकु का उर्ध्व खंड कोटि है। तद्धृति में कुज्या घटाने से तद्धृति का उर्ध्व खंड कर्ण है तथा अग्रादि खंड भुज है। यह आठवाँ अक्षक्षेत्र है।

इस प्रकार ये आठ अक्षक्षेत्र कहे हैं। इनसे अतिरिक्त भी अन्य बहुत से अक्षक्षेत्र बनते हैं। इन अक्ष क्षेत्रों में एक कोण अक्षांश तुल्य, दूसरा अक्षांश कोटि लंबाश तुल्य तथा तीसरा समकोण (९०° अंश) होता है। अक्षांश तुल्य कोण के सामने की भुजा भुज, अक्षांश कोटि तुल्य कोण के सामने की भुजा कोटी तथा ९०° समकोण के सामने की भुजा कर्ण होती है। इन आठ अक्ष क्षेत्रों के अतिरिक्त अहोरात्र वृत्त, विषुतवृत्त के अन्य क्षितिजवृत्त, सममण्डल, याम्योत्तर वृत्त, उन्मंडल तथा क्रांतिवृत्त के साथ संपात से अन्य अक्ष क्षेत्र भी बनते हैं। ये सभी वृत्त क्षेत्र अक्ष, अक्षकोटि (लंबांश) तथा समकोण में परस्पर संपात करते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्योक्त आठों अक्ष निम्न लिखित प्रकार से होते हैं। इनकी सहायता से आचार्योक्त आगे के श्लोकों में कथित प्रकार से अक्षज्या, लं.ज्या, समशंकु, अग्रा, तद्धृति आदि का आनयन किया जा सकता है। इन क्षेत्रों में अक्षांश Ø के सम्मुख की भुजा भुज है।

प्रथम क्षेत्र

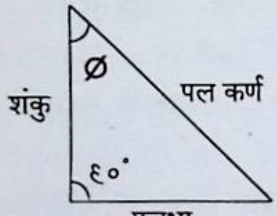

द्वितीय क्षेत्र

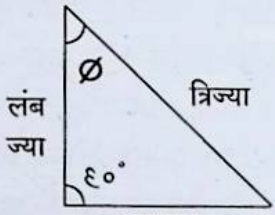

तृतीय क्षेत्र

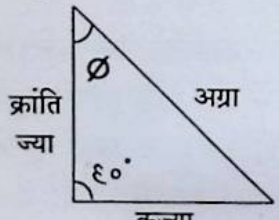

चतुर्थ क्षेत्र

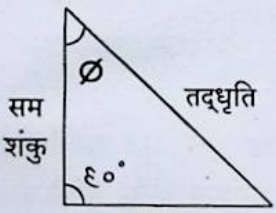

पांचवाँ क्षेत्र

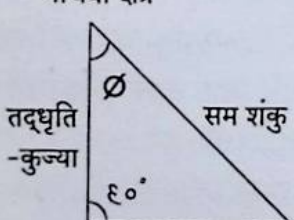

छठा क्षेत्र

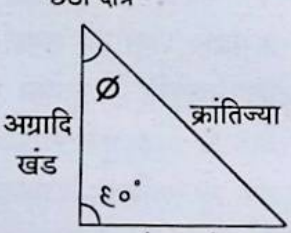

सातवाँ क्षेत्र

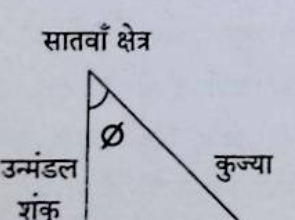

आठवाँ क्षेत्र

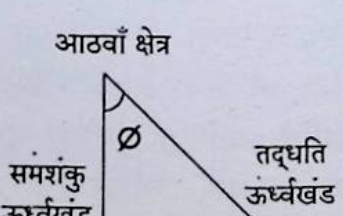

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आधुनिक ज्या (Sine), कोज्या (Cosine) तथा स्पर्शज्या (Tangent) की परिभाषानुसार समतल त्रिभुज में—

$$\text{ज्या} = \frac{\text{लंब}}{\text{कर्ण}} \; ; \quad \text{कोज्या} = \frac{\text{आधार}}{\text{कर्ण}} \; ; \quad \text{स्पर्शज्या} = \frac{\text{लंब}}{\text{आधार}}$$

यहाँ अक्ष क्षेत्रों के भुज = लंब तथा कोटि = आधार है। इनके आधार पर इन सभी त्रिभुज अक्ष क्षेत्रों में ये अनुपात ज्ञात करके यहाँ बताये जा रहे हैं। इस प्रकार सभी त्रिभुजों से ज्ञात अक्षज्या का मान तुल्य होगा, लंबज्या (कोज्या अक्षज्या) का मान समान होगा तथा इसी प्रकार स्पर्शज्या का मान समान होगा। आचार्य ने इस त्रिप्रश्नाधिकार में जो भी अनुपात करके सूत्र बनाये हैं वे सभी इनके द्वारा तथा यहाँ संलग्न गोचचित्र (१) तथा (२) द्वारा प्राप्त हो जाते हैं।

$$\text{ज्या अक्षांश} = \frac{\text{अक्ष क्षेत्र का भुज}}{\text{अक्ष क्षेत्र का कर्ण}} \; ; \quad \text{लंबज्या} = \frac{\text{अक्ष क्षेत्र की कोटि}}{\text{अक्ष क्षेत्र का कर्ण}}$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{अक्ष क्षेत्र का भुज}}{\text{अक्ष क्षेत्र की कोटि}}$$

अक्षक्षेत्र – प्रथम—

$$\text{अक्षांश ज्या} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}} \; ;$$

$$\text{लंब ज्या} = \frac{\text{शंकु}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{\text{कोटि}}{\text{कर्ण}} \; ;$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{भुज}}{\text{कोटि}}$$

द्वितीय—

अक्षज्या = अक्षज्या;

लंबज्या = लंबज्या ;

अक्षांश स्प.ज्या = अक्षांश स्प.ज्या

तृतीय—

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{अग्रा}} \; ;$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{क्रांति ज्या}}{\text{अग्रा}} \; ;$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांतिज्या}}$$

चतुर्थ—

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{अग्रा}}{\text{तद्धृति}}$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{समशंकु}}{\text{तद्धृति}}$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{अग्रा}}{\text{समशंकु}}$$

पंचम—

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{समशंकु}}$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}{\text{क्रांतिज्या}}$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}$$

षष्ठम—

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{क्रांतिज्या}};$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{अग्राखण्ड}}{\text{क्रांतिज्या}};$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{अग्रादि खण्ड}}$$

सप्तम—

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{अग्रा खंड}}{\text{कुज्या}};$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{कुज्या}};$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{अग्रा खण्ड}}{\text{उन्मंडल शंकु}}$$

अष्टम —

$$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{अग्रादि खंड}}{\text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड}};$$

$$\text{लंबज्या} = \frac{\text{समशंकु ऊर्ध्वखंड}}{\text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड}};$$

$$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{अग्रा खण्ड}}{\text{समशंकु ऊर्ध्वखंड}}$$

इन सभी में अक्षज्या, लंबज्या तथा स्प.ज्या के मान सभी अक्ष क्षेत्रों में तुल्य है। यथा —

(क) $$\text{अक्षज्या} = \frac{\text{पलभा}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{अग्रा}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{क्रांज्या}}{\text{समशंकु}}$$

$$= \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{क्रांज्या}} = \frac{\text{अग्रा खंड}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{अग्रादि खंड}}{\text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड}} = \frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$$

ये अक्ष क्षेत्र के भुज तथा कर्ण के अनुपात हैं।

(ख) $$\text{लंबज्या} = \frac{\text{शंकु}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{\text{क्रांज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{समशंकु}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}{\text{समशंकु}}$$

$$= \frac{\text{अग्राखण्ड}}{\text{क्रां.ज्या}} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{समशंकु ऊर्ध्वखंड}}{\text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड}} = \frac{\text{कोटि}}{\text{कर्ण}}$$

ये अक्ष क्षेत्र की कोटि तथा कर्ण के अनुपात हैं।

(ग) $$\text{अक्षांश स्प.ज्या} = \frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांतिज्या}} = \frac{\text{अग्रा}}{\text{समशंकु}} = \frac{\text{क्रांज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}$$

$$= \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{अग्रादिखंड}} = \frac{\text{अग्रा खंड}}{\text{उन्मंडल शंकु}} = \frac{\text{अग्रादि खंड}}{\text{समशंकु ऊर्ध्वखंड}} = \frac{\text{भुज}}{\text{कोटि}}$$

ये अक्षक्षेत्र के भुज तथा कोटि के अनुपात हैं। आचार्य ने इन्हीं अनुपातों की सहायता से संपूर्ण त्रिप्रश्नाधिकार के सूत्र कहे हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि अक्षांश का मान क्रमशः ०°, ३०°, ४५°, ६०°, ९०° हो तो–

(१) अक्षांश ज्या ०° =० = $\frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$ होगा। अर्थात् वहाँ पर अक्ष क्षेत्र के सभी भुज = पलभा = अक्षज्या = कुज्या = अग्रा = क्रांतिज्या = उन्मंडल शंकु = अग्राखंड = अग्रादिखंड का मान शून्य होगा।

(२) यदि अक्षांश = ३०° हो तो अक्षांश ज्या ३०° = $\frac{\text{त्रिज्या}}{२}$; अतः $\frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$ = $\frac{१}{२}$ अर्थात् कर्ण = २ भुज होगा। यह सभी अक्ष क्षेत्रों में होगा। अर्थात् पूर्व लिखित अक्षांश ज्या के अनुपातों में हार (Denominator) का मान अंश (Numerator) के मान से दुगुने होंगे।

कोज्या ३०° = $\frac{\sqrt{३}}{२}$ अतः पूर्व लिखित लंबज्या के अनुपातों में अंश×२ = $\sqrt{३}$ हार अर्थात् कोटि ×२ = $\sqrt{३}$ कर्ण होंगे।

स्प.ज्या ३०° = $\frac{१}{\sqrt{३}}$ अतः पूर्व लिखित स्प.ज्या के अनुपातों में अंश× $\sqrt{३}$ = हार अर्थात् $\sqrt{३}$ भुज = कोटि होगें।

(३) यदि अक्षांश = ६०° हो तो अक्षांश ज्या ६०° = $\frac{\sqrt{३}}{२}$; अतः–

$\frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$ = $\frac{\sqrt{३}}{२}$ अर्थात सभी अक्ष क्षेत्रों में अंश (Numerator) = २ भुज तथा हार (Denominator) = कर्ण × $\sqrt{३}$ के मान तुल्य होंगे।

स्प.ज्या. ६०° = $\frac{\text{भुज}}{\text{कोटि}}$ = $\frac{१}{\sqrt{३}}$ अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में कोटि = $\sqrt{३}$ भुज होगी।

लंबज्या ६०° = $\frac{१}{२}$ = $\frac{\text{कोटि}}{\text{कर्ण}}$ अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में २ कोटि = कर्ण होगी।

(४) यदि अक्षांश ९०° हो तो अक्षज्या ९०° = १ अतः

$\frac{\text{भुज}}{\text{कर्ण}}$ = १ अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में भुज तथा कर्ण समान होंगे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लंबज्या = ९०° = ० अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में कोटि का मान शून्य होगा।

स्प.ज्या = ९०° = ∞ अर्थात् सभी अक्ष क्षेत्रों में भुज का मान अनंत होगा। इसी प्रकार सभी अक्षांशों के लिए ज्ञान किया जा सकता है।

पूर्वोक्त अनुपातों की सहायता से आचार्योक्त अनेक प्रश्न-उत्तर जो आगे कहे गये हैं उस प्रकार के और भी अनेक प्रश्नोत्तर बनाये जा सकते हैं। अन्य आचार्यों के प्रश्न तथा उनके उत्तर इन अनुपातों की सहायता से ज्ञात किय जा सकते हैं।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने भी महासिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में अक्षक्षेत्र इसी प्रकार कहे हैं—

"दौर्भा शङ्कुः कोटिर्विषुवत्कर्णो भवेत् कर्णः॥४॥
अक्षज्या वा बाहुः कोटिर्लम्बज्यका श्रुतिर्गज्या।
कुज्या बाहुः कोटिः क्रान्तिज्याऽग्रा च कर्णः स्यात्॥५॥
अग्राद्यखण्ड कोटेरुन्मण्डलना भुजः श्रवोऽपमजा।
अग्राग्रं दोरुन्मण्डलना कोटिः श्रतिः कुज्या॥६॥
समना कोटिः कर्णस्तद्धृतिरग्रा भुजो भुजोऽपमजा।
तद्धृत्युत्तरखण्डं कोटिः कर्णो भवेत् समना॥७॥"

इदानीमेषां साधनान्याह—

एषामथैकस्य तु बाहुकोटिकर्णैर्मिथोऽन्यान्यनुपाततः स्युः।१७$\frac{1}{2}$।

अक्ष क्षेत्र की तीन भुजायें ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— इन की किसी एक भुजा को बाहु कोटि और कर्ण में परस्पर अनुपात द्वारा ज्ञात कर सकते हैं।

इदानीं तथाह—

त्रिज्ये पृथक् कोटिभुजाहते ते कर्णोद्धृते लम्बपलज्यके स्तः॥१८॥
तत्कार्मुके लम्बपलौ च तज्ज्ये दोःकोटिजीवावदतो मिथो वा।
अक्षज्यका कोटिगुणा भुजाप्ता लम्बज्यका वाक्षगुणोऽन्यथातः॥१९॥

ज्ञात करने की रीति—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या को पृथक-पृथक कोटि और भुज से गुणा करके कर्ण से विभक्त करने से क्रमशः लम्बज्या तथा अक्षज्या होती है। यह द्वितीय अक्षक्षेत्र के अतिरिक्त सभी सातों अक्षक्षेत्रों के लिए करने से होता है। लम्बज्या तथा अक्षज्या का धनु बनावें। ये क्रमश लंबांश तथा अक्षांश होते

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं। लम्बोत्क्रमज्या को त्रिज्या में से घटाने से अक्षज्या होती है तथा अक्षोत्क्रमज्या को त्रिज्या में से घटाने से लम्बज्या होती है। त्रिज्या वर्ग में से पृथक-पृथक लम्ब और अक्ष ज्या के वर्गों को घटा कर मूल लेने से अक्ष तथा लम्ब की ज्या होती हैं, यह क्षेत्र २ से है।

सभी सातों क्षेत्रों में अक्षज्या को कोटि से गुणा करके अपनी-अपनी भुज से विभक्त करने से सात प्रकार से लम्बज्या प्राप्त होती है। सात प्रकार से लम्बज्या को सातों की भुज से गुणा करके अपनी-अपनी कोटी से विभक्त करने से उन क्षेत्रों की अक्षज्या होती है।

द्वितीय क्षेत्र का अन्य सातों क्षेत्रों से इसमें अनुपात किया है।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार २ में आचार्योक्त एक विधि कही है। यथा–

"जलम्बज्याकृति हीनात् त्रिज्यावर्गात्पदं पलज्या वा।
पलजीवा त्रिज्याकृति वियुतिपदं लम्बकज्या वा॥४॥"

सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में—

"दिगभेदे मिश्रिताः साम्ये विश्लिष्टाश्चाक्षलिप्तिकाः।
ताभ्योऽक्षज्या च तद्वर्ग प्रोज्झ्य त्रिज्याकृतेः पदम॥१६॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। यथा त्रिप्रश्नाधिकार—

"कोटिभुजघ्ने गज्ये श्रुतिभक्ते लम्बकाक्षजीवे स्तः।
क्रमशस्तच्चापांशा लम्बपलाख्या उदग्याम्याः॥८॥"

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका के त्रिप्रश्नाधिकार में लंबज्या आनयन आचार्योक्त कही है—

"विषुवज्ज्याऽऽयामार्धवर्ग विश्लेषमूलमवलम्बकः॥२२$\frac{१}{२}$॥"

भास्कर (प्रथम) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"छायाहतं त्रिभवनस्य गुणप्रतानं हत्वा नरेण च पृथग्विभजेत्पदेन।
अक्षावलम्बकगुणौ विषुववत्प्रसिद्धौ छायानरौ च विपुलावपरत्र दृष्टौ॥५॥"

इदानीमन्यवाहं—

क्रान्तिज्यके कर्णगुणे विभक्ते कोट्या भुजेनाप्तमिताग्रका स्यात्।
आद्यं द्वितीयं समशङ्कुरेव स्यात् तद्धृतिः कोटिहृतः श्रुतिघ्नः॥२०॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अग्रज्या, समशंकु तथा तद्धृति ज्ञात करने की विधि—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रातिज्या को अक्ष क्षेत्र के कर्ण से गुणा करके एक स्थान पर स्व कोटी से विभक्त करने से किसी भी अक्ष क्षेत्र में अग्रज्या होती है और द्वितीय स्थान पर स्वभुज से विभक्त करने से समशंकु होता है।

इस प्रकार सभी सातों क्षेत्रों के कर्णों से सात प्रकार से अग्रा तथा सात प्रकार से सम शंकु होते हैं। समशंकुको सातों स्थानों पर कर्ण से गुणा करके स्व.स्वकोटि से विभक्त करने से सात प्रकार से तद्धृति होती है।

प्रथम कथन तृतीय क्षेत्र से तथा द्वितीय कथन पंचम क्षेत्र से अन्य अक्ष क्षेत्रों के अनुपात से कहा है तथा तृतीय कथन चौथे क्षेत्र से अन्य अक्ष क्षेत्रों का अनुपात है।

$$\text{सम शंकु} = \frac{\text{कर्ण} \times \text{क्रांतिज्या}}{\text{भुज}} ; \text{अग्रज्या} = \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{कर्ण}}{\text{कोटि}} ;$$

$$\text{तद्धृति} = \frac{\text{स. शंकु} \times \text{कर्ण}}{\text{कोटि}} ; \text{पूर्वोक्त सूत्र क्रमशः (क)(ख),(ख) द्वारा प्राप्त।}$$

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"क्रान्तिज्ये कर्णहते कोट्या दोष्णा हृते क्रमात् स्याताम्।
अग्रासमवृत्तनरौ समना श्रुत्या हतो हृतः कोट्या॥९॥"

इदानीमन्यदाह—

कर्णेन निघ्नी पृथगग्रका वा भुजेन भक्ता खलु तद्धृतिः स्यात्।२०$\frac{१}{२}$।

तद्धृति ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— कर्ण को पृथक-पृथक सात प्रकार से अग्रा से गुणा करके स्व-स्व भुज से विभक्त करने से तद्धृति प्राप्त होती है। यह सात प्रकार से होती है।

$$\text{तद्धृति} = \frac{\text{कर्ण} \times \text{अग्रा}}{\text{भुज}} ; \text{पूर्वोक्त सूत्र (क) द्वारा प्राप्त।}$$

चतुर्थ अक्ष क्षेत्र का शेष क्षेत्रों से यहाँ अनुपात किया गया है।

इदानीमन्यदाह—

कोट्या हता तद्धृतिरग्रका च कर्णेन दोष्णा क्रमशो विभक्ता॥२१॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्विधा भवेद्वा समवृत्तशङ्कुः स दोर्गुण कोटिहृतोऽग्रका वा।२१$\frac{१}{२}$ ।

समशंकु तथा अग्रा ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— सात प्रकार से तद्धृति को सातों कोटि से गुणा करके स्वस्व कर्ण से विभक्त करने से सात प्रकार से समशंकु होता है। इसी प्रकार सात स्थानों पर कोटि को अग्रा से गुणा करके स्व-स्व भुज से विभक्त करने से समशंकु होता है, यह सात प्रकार से होता है।

समशंकु को सातों स्थानों में भुज से गुणा करके स्व-स्व कोटि से विभक्त करने से सात प्रकार से अग्रा प्राप्त होती है।

$$\text{सम शंकु} = \frac{\text{तद्धृति} \times \text{कोटि}}{\text{कर्ण}} = \frac{\text{अग्रा} \times \text{कोटि}}{\text{भुज}} ; \text{अग्रा} = \frac{\text{समशंकु} \times \text{भुज}}{\text{कोटि}}$$

यहाँ क्रमशः चतुर्थ तथा तृतीय क्षेत्र से शेष क्षेत्रों का अनुपात यहाँ किया गया है। पूर्वोक्त सूत्र क्रमशः (ख), (ग) तथा (ग) के द्वारा प्राप्त।

इदानीमन्यदाह—

कोट्युद्धृतं तद्धृतिखण्डमूर्ध्वं श्रुत्वा हतं वा समवृत्तशङ्कुः ॥२२॥

समशंकु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— तद्धृति से कुज्या घटाने से प्राप्त तद्धृति उर्ध्व खंड को कर्ण से गुणा करके स्व-स्व कोटि से विभक्त करने से सात प्रकार से समशंकु होता है।

$$\text{सम शंकु} = \frac{\text{तद्धृति ऊर्ध्वखंड} \times \text{कर्ण}}{\text{कोटि}}$$; यहाँ पंचम क्षेत्र का अन्य क्षेत्रों से अनुपात किया गया है। पूर्वोक्त सूत्र (ख) द्वारा प्राप्त होते हैं।

इदानीमन्यदाह—

द्विधापमज्या भुजकोटिनिघ्नी कोट्या च दोष्णा विहताद्यमाप्तम्।
कुज्या परं तद्धृतिखण्डमूर्ध्वं स्यात् तद्धृतिः संयुतिरेतयोर्वा॥२३॥

कुज्या तथा तद्धृति ऊर्ध्व खण्ड ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या को सात प्रकार से भुज से गुणा करके स्व-स्व कोटि से विभक्त करने से सात प्रकार से कुज्या होती है। क्रांतिज्या को कोटिज्या से गुणा करके स्वस्व भुज से विभक्त करने से तद्धृति ऊर्ध्वखंड होता है। यह सात प्रकार से होती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार कुज्या में तद्धृति का ऊर्ध्व खंड योग करके तद्धृति ज्ञात करने की ६८ विधियाँ हैं।

$$\text{कुज्या} = \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{भुज}}{\text{कोटि}}; \text{ तद्धृति ऊर्ध्वखंड} = \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{कोटि}}{\text{भुज}}$$

तद्धृति = कुज्या + तद्धृति उर्ध्वखंड

यहाँ क्रमशः तृतीय तथा पंचम क्षेत्र से शेष अक्षक्षेत्रों का अनुपात किया है। पूर्वोक्त सूत्र (ग) द्वारा प्राप्त होते हैं।

इदानीमन्यदाह—

कुज्यापमज्ये भुजकोटिनिघ्न्यौ कर्णोद्धृते स्यात् क्रमशो यदाप्तम्।
अग्राग्रखण्डं प्रथमं द्वितीयमग्रादिखण्डं च तदैक्यमग्रा॥२४॥

अग्रा-अग्रखंड तथा अग्रा-आदि खंड ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— कुज्या को सात प्रकार से भुज से गुणा करके स्व-स्व कर्ण से विभक्त करने से सात प्रकार से अग्रा का अग्र खंड होता है, और सात प्रकार से कोटि को क्रांतिज्या से गुणा करके स्वस्व कर्ण से विभक्त करने से सात प्रकार से अग्रा का आदि खंड होता है। इनको योग करने से सात प्रकार से अग्रा होती है।

$\frac{\text{कुज्या} \times \text{भुज}}{\text{कर्ण}}$ = अग्रा अग्रखंड। पूर्वोक्त सूत्र (क) द्वारा प्राप्त।

$\frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{कोटि}}{\text{कर्ण}}$ = अग्रा आदिखंड। पूर्वोक्त सूत्र (ख) द्वारा प्राप्त।

अग्रा = अग्रा आदिखंड + अग्रा अग्रखंड

यहाँ क्रमशः सप्तम एवं षष्ठम क्षेत्र का अन्य क्षेत्रों से अनुपात किया है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"तद्धृतिरस्या आद्यं खण्डं कुज्योत्तरं शेषम्।
कुज्या दोर्घ्नी श्रुत्या संभक्ताऽग्राग्रखण्डं स्यात्॥१०॥"

इदानीमन्यदाह—

अग्रादिखण्डं च तथापमज्या भुजाहते ते क्रमशो विभक्ते।
कोटिश्रुतिभ्यामुभयत्र शङ्कुरुन्मण्डलस्थे रविमण्डले स्यात्॥२५॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उन्मण्डल शंकु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अग्रा के आदिखंड को सातों क्षेत्र के भुज से गुणा करके स्व-स्व कोटि से विभाजि करने से सात प्रकार से उन्मंडल शंकु होता है। क्रांतिज्या को सातों भुज से गुणा करके स्व-स्व कर्ण से विभक्त करने से सात प्रकार से उन्मण्डल शंकु होता है।

$$\text{उन्मंडल शंकु} = \frac{\text{अग्रा आदि खंड} \times \text{भुज}}{\text{कोटि}} = \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{भुज}}{\text{कर्ण}}$$

यहाँ षष्ठम क्षेत्र का शेष क्षेत्रों से अनुपात किया गया है। पूर्वोक्त (ग) (क) से।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अपमज्या भुजगुणितोन्मण्डलशङ्कुः श्रवोहृता भवति।
निजकोटिभुजश्रवणैः सिध्यन्त्येतैर्निरुक्तानि॥११॥"

इदानीमन्यदाह—

अग्राग्रखण्डं क्षितिशिञ्जिनी च कोट्या हते दोः श्रवणोद्धृते स्तः।
उद्धृत्तशङ्कू समना तदूनः स्यादूर्ध्वखण्डं समवृत्तशङ्कोः॥२६॥

उन्मण्डल शंकु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अग्रा अग्रखंड और (कुज्या) क्षितिज्या को पृथक-पृथक सात प्रकार से कोटि से गुणा करके क्रमशः भुज तथा कर्ण से विभक्त करने से सात प्रकार से उन्मंडल शंकु होता है।

समशंकु में से उन्मंडल शंकु को घटाने से उर्ध्व समशंकु खंड प्राप्त होता है।

$$\text{उन्मंडल शंकु} = \frac{\text{अग्रादि खंड} \times \text{कोटि}}{\text{भुज}} = \frac{\text{क्षितिज्या} \times \text{कोटि}}{\text{कर्ण}}$$

यहाँ क्रमशः छठे तथा सातवें क्षेत्र से शेष सात क्षेत्रों का अनुपात किया गया है। ये पूर्वोक्त सूत्र (ग) तथा (ख) से प्राप्त होते हैं।

इदानीमन्यदाह—

अग्रा भुजघ्नी श्रुतिहृत् क्षितिज्या तदूनिता तद्धृतिरूर्ध्वखण्डम्।२६$\frac{१}{२}$।

(कुज्या) क्षितिज्या तथा तद्धृति उर्ध्वखंड ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अग्रा को सातों भुज से गुणा करके स्वस्व कर्ण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से विभक्त करने से सात प्रकार से प्राप्त (कुज्या) क्षितिज्या को तद्धृति में से घटाने से तद्धृति का आदि खंड प्राप्त होता है।

क्षितिज्या (कुज्या) = $\frac{\text{अग्रा} \times \text{भुज}}{\text{कर्ण}}$; तद्धृति उर्ध्वखंड = तद्धृति – क्षितिज्या। ये पूर्वोक्त सूत्र (क) से प्राप्त होता है।

यहाँ तृतीय क्षेत्र का शेष क्षेत्रों से अनुपात किया गया है।

इदानीमन्यदाह—

ज्ञाताच्च साध्यादितरे भवन्ति यद्वा गुणच्छेदविपर्ययेण॥२७॥

अन्य अवयव ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्व में ज्ञात तथा ज्ञात किये गये अवयवों की सहायता से अन्य अवयव ज्ञात किये जा सकते हैं तथा गुणा-भाग तथा पक्षांतर के द्वारा हम एक से दूसरा अवयव ज्ञात कर सकते हैं।

दोः कोटिवर्गैक्यपदं श्रुतिः स्यात् तत्कोटिवर्गान्तरतः पदं दोः।
दोःकर्णवर्गान्तरश्च कोटिर्द्वाभ्यां तृतीया यदि वा स्युरेवम्॥२८॥

भुज कोटि तथा कर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— भुज तथा कोटि के वर्गों के योग का मूल कर्ण होता है। उस कर्ण के तथा कोटि के वर्गों के अन्तर का मूल भुज तथा कर्ण और भुज के वर्गों के अंतर का मूल कोटि होता है। इस प्रकार दो अवयवों के द्वारा तीसरा अवयव सभी अक्ष क्षेत्रों में ज्ञात किया जा सकता है।

कर्ण = $\sqrt{\text{भुज}^2 + \text{कोटि}^2}$; कोटि = $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{भुज}^2}$;

भुज = $\sqrt{\text{कर्ण}^2 - \text{कोटि}^2}$

विशेष— भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय तृतीय अध्याय में आचार्योक्त कहा है—

"नृच्छायाकृतियोगस्य मूलमाहुर्मनीषिणः।
विषकम्भार्धं स्ववृत्तस्य छाया कर्मणि सर्वदा॥४॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार १ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"त्रिज्या बाह्वग्रमौर्व्योः कृतिविवरपदं वेतरज्या प्रदिष्टा।
बाह्वग्रज्या त्रिमौर्व्योर्विवरयुतिहतेर्मूलमाहुस्तयोर्वा॥५२$\frac{१}{२}$॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीमुपसंहारश्लोकमाह—

त्रिषष्टिरत्रानयनप्रभेदास्तावत् स्युरेवं पललम्बमौर्व्योः।
अग्रादिकानां शतशः प्रभेदैर्लम्बादयोऽपि स्युरनन्तभेदाः॥२९॥

उपसंहार श्लोक—

सूर्य-प्रभा टीका— तिरेसठ (६३) प्रकार से लम्ब तथा भुज ज्या ज्ञात की जा सकती है। अग्रज्यादि को सैकड़ों प्रकार से ज्ञात कर सकने के कारण लम्ब ज्या आदि को प्राप्त करने की अनन्त विधियाँ हो सकती है।

स्पष्टीकरण— आचार्य को यहाँ अनन्त विधियाँ कहने का तात्पर्य अनेकों प्रकार से है इस अनन्त कर अर्थ शाब्दिक अर्थ में अनन्त नहीं है।

विशेष— भास्कराचार्य ने यहाँ श्लोक १८ से २८ में जो अग्रा, तद्धृति, लम्बज्या, अक्षज्या, उन्मंडल शंकु, समशंकु, कर्ण, भुज, कोटि आदि ज्ञात करने की विधियाँ व्यापक रूप में बताई हैं उन्हें अन्य आचार्यों (पूर्ववर्ती) ने भी बताई है। वटेश्वराचार्य ने तो इन प्रत्येक के आनयन के लिए अलग-अलग अध्याय दिये हैं जिनमें अन्य विधियाँ भी हैं। इसी प्रकार आर्यभट, ब्रह्मगुप्त आदि आचार्यों ने भी इसी प्रकार विधियाँ बताई हैं।

जिस प्रकार भास्कराचार्य ने श्लोक लिखे हैं उसी के अनुरूप **आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त** में लिखे हैं। पुनः यहाँ उद्धृत करते हैं। यथा त्रिप्रश्नाधिकार–

"कोटिभुजघ्ने गज्ये श्रुति भक्ते लम्बकाक्षजीवे स्तः।
क्रमशस्तच्चापांशा लम्बपलाख्या उदग्याम्याः॥८॥
क्रांतिज्ये कर्णहते कोट्या दोष्णा हृते क्रमात् स्याताम्।
अग्रासमवृत्तनरौ समना श्रुत्या हतो हृतः कोट्या॥९॥
तद्धृतिरस्या आद्यं खण्डं कुज्योत्तरं शेषम्।
कुज्या दोर्घ्नी श्रुत्या संभक्ताऽग्राग्रखण्डं स्यात्॥१०॥
अपमज्या भुजगुणितोन्मण्डलशङ्कुः श्रवोहृता भवति।
निजकोटि भुज श्रवणैः सिध्यन्त्येतैर्निरुक्तानि॥११॥"
इत्यादि।

इदानीं दिङ्नियमेन छायानयनं विवक्षुरादौ कोणशङ्कोरानयनमाह—

अग्राकृतिं द्विगुणितां त्रिगुणस्य वर्गात् ११८१९८४४
त्यक्त्वा पदं तदिह कोणनरोऽक्षभाघ्नः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्को १२ ह्रुतः फलयुजासकृदग्रयासौ
सौम्ये फलेन वियुजा तु तया प्रसाध्यः ॥३०॥

कोणशङ्कु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या वर्ग में से अग्रा के वर्ग का दुगुना घटा कर मूल लेने से प्राप्तफल स्थूल कोण शंकु होता है। कोण शंकु को पलभा से गुणा करके १२ से विभक्त करने से प्राप्तफल को अग्रज्या में युत करके अग्रा प्राप्त करे। इस अग्रा से पुनः शंकु साधित करे तथा इस कोण शंकु से पुनः पूर्वोक्त प्रकार से पलभा से गुणा करके १२ से विभक्त करके फल प्राप्त करे। इस प्रकार पुनः-पुनः करके, जब तक कोण शंकु का स्थिर फल प्राप्त न हो। इसी प्रकार दक्षिण गोल में करे। सौम्य गोल की क्रांति में, अग्रा में से शंकु घटाने तथा याम्य गोल क्रांति में, अग्रा में युक्त करने से शंकु भुज होता है।

उपपत्ति— कोणवृत्त अहोरात्र वृत्त के संपात से क्षितिज के धरातल पर लम्ब रूप कोणशंकु होता है। अर्थात कोण वृत्तस्थ सूर्य से क्षितिज धरातल पर लम्ब रूप कोणशंकु होता है। इसके मूल और (पूर्वापर रेखा) सममण्डल के बीच जो अंतर है वह ज्यारूप भुज है। कोणशंकु के मूल से याम्योत्तर रेखा पर लम्ब रूप जो अंतर है वह कोटि है। इन भुज और कोटि के वर्गों के योग का मूल खमध्य और सूर्य के अन्तर भाग की ज्या दृग्ज्या है। भूकेंद्र से कोणशंकुमूल पर्यन्त दृग्ज्या कर्ण है। यहाँ भुज तथा कोटि तुल्य होने से भुज के वर्ग का दुगुणा दृग्ज्यावर्ग होता है। इस दृग्ज्या वर्ग को त्रिज्या वर्ग में से घटाने से शंकु वर्ग शेष बचता है। इसका मूल लेने से कोण शंकु होता है। किन्तु यहाँ भुज का मान ज्ञात नहीं है, जिसको ज्ञात करने के लिए विधि बताते हैं।

अक्षभा (पलभा) को कर्ण से गुणा करके १२ से विभक्त करने से शंकुतल होता है। अतः शंकु को पलभा से गुणा करके १२ से विभक्त करने से प्राप्तफल शंकुतल दक्षिण होता है। शंकुतल को भारतीय आचार्यों ने सदा दक्षिण की ओर अग्रगामी कहा है अर्थात् शंकुतल सदा शंकु से दक्षिण की ओर होगा क्योंकि भारत के अक्षांश उत्तर हैं।

स्व अग्रा का स्वशंकुतल में याम्य गोल में योग तथा सौम्य गोल में अंतर करने से भुज होता है। यहाँ कोण शंकु ज्ञात होने से शंकुतल ज्ञात हो जाता है। केवल अग्रा ज्ञात करनी होगी। उसके लिए पहले बाहु कल्पित करे। उससे अग्रा के वर्ग के द्विगुणित को त्रिज्या के वर्ग में से घटाकर मूल लेने से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो शंकु का आनयन करते हैं वह स्थूल होता है। वह असकृत विधि से सम्यग होता है।

जिस देश में जिस समय पर अग्रज्या का मान २४३१ (अर्थात ४५° अग्रा) से अधिक होता है तब वहाँ याम्य गोल में कोणशंकु का अभाव होता है तथा उत्तर गोल में चार कोण शंकु उत्पन्न होते हैं। अतः जिस देश में परम अग्रा ४५° होगी वहाँ पलभा का मान १७/५/२२ होगा। अग्रा^{२} > ज्या^{२} ४५° (अग्रा वर्ग ज्या ४५° के वर्ग से अधिक होने पर) अग्रा^{२} > $\frac{\text{त्रि}^२}{२}$। आचार्य ने यहाँ भुज को अग्रा के तुल्य मान कर कोण शंकु को आनयन किया है।

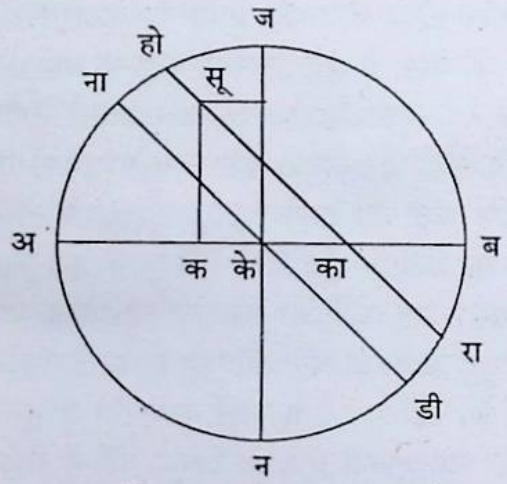

ज ना अ न ब याम्योत्तर वृत्त है। ज खमध्य है। अ के ब क्षितिज है तथा ना के डी नाडी वृत्त है। हो रा अहोरात्र वृत्त है। सू सूर्य है। सू क शंकु है, क का शंकु तल है।

(शंकुतल) क का = क के (सूर्य का सममंडल का अंतर) + अग्रा

क के = (शंकुतल) क का – अग्रा (उत्तरगोल में)

जब सूर्य दक्षिण गोल में हो तब–

क के = शंकुतल क का + अग्रा

सूर्य किसी भी दृग्वृत्त में हो तो यही संबंध होते हैं तथा सूर्य याम्योत्तर वृत्त तथा सममंडल से समान दूरी पर होता है। अतः दृग्ज्या = भुज^२ + भुज^२ = २ भुज^२

विशेष— भास्कराचार्य ने उपरोक्त प्रकार से कोणशंकु का जो आनयन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बताया है उसका व्यभिचार उत्तरगोल में म.म. सुधाकर द्विवेदी ने निम्न प्रकार से दिखाया है—

"युग्माश्वोनाऽक्षप्रभावर्गनिघ्नी बाणाब्ध्यंशज्या द्विकाश्वैर्विभक्ता।
अक्षच्छायावर्गयुक्तैः फलाच्चेदग्रा न्यूनां स्यात्खिलं सौम्यगोले॥"

दक्षिण गोल में उसका व्यभिचार म.म. बापूदेव शास्त्री ने इस प्रकार बताया है—

"अग्राकृतिं द्विगुणितां त्रिगुणस्यवर्गादित्यादि भास्कर कृतानयने विशेषः।
सिद्धान्ततत्त्वसुविवेककृदादिभिर्योनैवावबुद्ध इति सम्प्रति कथ्यते सः॥
अक्ष प्रभाकृति विहीन दृगद्रिनिघ्नः पञ्चाब्धिभागजगुणो विहृतो द्विकाश्वैः।
अक्षप्रभाकृतियुतैः फलतोऽग्रका चेन्नाल्पा तदा न सदिदं रवियाम्यगोले॥"

"कोण शङ्कोरानयनञ्च—

अग्राऽक्षभयोर्धातो द्वादशनिघ्नो भवेत् प्रथम संज्ञः।
द्विघ्न्याग्राकृत्योनस्त्रिज्यावर्गः पराख्यः स्यात्॥
तौ पलभाकृतिनेत्राद्रिसमासहृतौ पराद्विसप्तगुणात्।
प्रथमकृतियुतान्मूलं प्रथम युतोनं विदिक् शङ्कुः॥
गोलक्रमादिह स्यादथ यद्यग्राकृतिर्नयननिघ्नी।
त्रिज्या वृत्तेर्न शुद्धयेद्विरुद्धशुद्धया तदा परो ज्ञेयः॥
तेन परेण नयननगनिघ्नेनोनात् प्रथमवर्गात्।
मूलेनोनो युक्तः प्रथमो द्विविधो विदिङ्नरः सौम्ये॥
याम्ये तदा कुजोर्ध्वे भानुर्नहिकोणमण्डलं विशति।
इत्थं घटते नगभूम्यङ्गुलसमधिकपलप्रभे विषये॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाध्याय में आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा—

"सूर्याग्राया इष्टसंयोजिताया वर्गे त्रिज्यावर्गतो लोचनघ्ने।
त्यक्ते मूलं यत् स शङ्कुर्विदिक्स्थस्तत्राज्ञाभासङ्गुणे सूर्यभक्ते॥३४॥
लब्धमिष्टममुना सहिताग्रा प्राग्वदेवमसकृन्नरसिद्धिः।
दक्षिणे सवितुरुत्तरगोलेऽग्रज्ययेष्टवियुताद् विधिरेषः॥३५॥"

श्रीपति ने भी लल्लाचार्य की विधि ही सिद्धान्त शेखर अध्याय ४ के श्लोक ७२-७३ में दी है।

"इनाऽग्रकायाः सहितोनिताया इष्टेन याम्योत्तरगोलगेऽर्के।
वर्गे द्विनिघ्ने कृतितस्त्रिमौर्व्यास्त्यक्ते पदं यत्स हि कोणशंकुः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पल प्रभाघ्नेऽर्कहृते च तस्मिन् इष्ट भवेत्तेन ततः प्रसाध्य।
विदिङ्नरः पूर्ववदग्रकाया यावत्स्थिरः स्यादसकृद्विधानात्॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार के द्वादश अध्याय में आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा–

"इष्टग्रान्तरकृत्या द्विगुणित योदग्वियुक् त्रिगुण वर्गात्।
मूल कोण नरो वा पलभाघ्नोऽर्कविहृदिष्टमसकृदेवम्॥३॥
दक्षिणगोले चेष्टयुजाग्रयोक्तविधिना विदिग्ना स्यात्।
तस्माद्दृग्ज्या कर्णच्छाया संसाधयेत्प्राग्वत्॥४॥"

यहाँ इष्ट शब्द से स्वेच्छा से कल्पित शंकु अग्र है। इस स्वेच्छा से कल्पित इष्ट का ही साधन कोण शंकु को पलभा से गुणा करके १२ से विभाजित करने से होता है।

इदानी दिनार्धशङ्क्वर्थमाह—

स सौम्यगोलो भदलं यदाद्यं याम्योऽपरं सायनभागभानोः।
क्रान्तेः ककुब् गोलवशेन वेद्या सदाऽक्षलम्बाविह याम्यसौम्यौ॥३१॥
पलावलम्बावपमेन संस्कृतौ नतोन्नते ने भवतो दिवादले।
लवादिकं वा नवतेर्विशोधितं नतं भवेदुन्नतमुन्नतं नतम्॥३२॥

दिनार्ध शंकु—

सूर्य-प्रभा टीका— सायन सूर्य जब भचक्र के प्रथम अर्ध भाग में रहता है तो उसको सौमय गोल में रहना कहते हैं तथा जब वह दूसरे अर्ध भाग में रहता है तब उसको याम्य गोल में रहना कहते हैं। क्रान्ति सूर्य की गोल में स्थिति के अनुसार होती है तथा अक्षांश तथा लंबांश सदा दक्षिण अथवा उत्तर होते हैं।

रवि मध्य क्रांति और अक्षांश के एक दिशा में होने पर उनका योग तथा भिन्न दिशा में रहने पर उनका अंतर करने से नतांश होता है। नतांश को नब्बे में से घटाने से शेष उन्नतांश होता है तथा नब्बे में से उन्नतांश को घटाने से नतांश होता है।

उपपत्ति— यदि ख स्वस्तिक से विषुवदमंडल दक्षिण में हो तो अक्षांश सदा दक्षिण है तथा रवि नाड़ी वृत्त से उत्तर में है अतः रवि से निरक्ष ख स्वस्तिक तक रवि मध्यम क्रांति उत्तर है। यह स्थिति तब होती है जब ख स्वस्तिक और निरक्षखस्वस्तिक के मध्य में रवि रहता है। अतः इस स्थिति में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भिन्न दिशा की रवि क्रांति और अक्षांश का अंतर करने से रवि से ख स्वस्तिक पर्यन्त रवि का नतांश होता है।

और जब निरक्ष ख स्वस्तिक से रवि दक्षिण में हो तब अक्षांश और क्रांति की दिशा एक (दक्षिण) होने से दोनों का योग करने से नतांश (रवि का) होता है। ख स्वस्तिक से समस्थान पर्यंत मध्यम उन्नतांश होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"दिनमध्यार्ककान्त्यक्ष भाग योगान्तरं समान्यदिशोः।
नतभागा नतभान्नवतेः प्रोह्योन्नताः शेषाः॥४७॥"

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में ब्रह्मगुप्तोक्त तथा भास्करोक्त कहा है। यथा—

"मध्यद्रिनोष्णकिरणापमचापभागस्वाक्षांश योगविवरं सदृशान्यदिक्त्वे।
योम्योत्तरा नतलवास्तरणेः खमध्यात् तेऽप्युनता निपतिता नवतेर्भवेयुरिति॥"

वटेश्वराचार्य ने भी वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ६ आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"क्रान्त्यक्षान्तरयोगः समान्य ककुभोर्नतांशकाः खाक्षाः।
तज्ज्या दृग्ज्या दोर्ज्या नतांशकोना स्त्रिगृह भागाः॥१॥"

सूर्यसिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"तन्मान्दमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः।
स्वाक्षार्कापक्रमयुतिर्दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा॥२०॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"क्रान्तिचापपलयोः समागमो याम्यगोल युजि तिग्मदीधितौ।
सौम्यभाजि विवरं भवेन्नतिः सोन्नतिस्त्रिभविशेषिताथ वा॥१६॥"

अन्य पूर्व श्लोक २ की व्याख्या में देखें।

इदानीं शङ्कुं दृग्ज्यां चाह—

नतांशजीवा भवतीह दृग्ज्या दिनार्धशङ्कुश्च तथोन्नतज्या।३२$\frac{१}{२}$।

शंकु और दृग्ज्या ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यान्ह में नतांश की जीवा दृग्ज्या होती है तथा उन्नतांश की ज्या दिनार्ध शंकु होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— सुगम है।

विशेष— वटेश्वर आचार्य ने दृग्ज्या के लिए आचार्योक्त कहा है जो पूर्व श्लोक की व्याख्या में उद्धृत किया गया है। शंकु के लिए त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ९ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"उन्नत भागाः कोटिस्तज्ज्या दोर्ज्यान्तरं तथा शङ्कः।$\frac{१}{२}$।"

सूर्य सिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"शेषं नतांशाः सूर्यस्य तद्बाहुज्या च कोटिज्या।
शङ्कु.....॥२१॥"

लल्लाचार्य आदि ने भी आचार्योक्त कहा है। ये मूलभूत परिभाषायें हैं जो सभी आचार्यों ने कही है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में इनको इसी प्रकार परिभाषित किया है। यथा–

"उन्नतजीवाकोटिश्छाया दृग्ज्या भुजोनतज्या वा।
कर्णश्छायावृत्ते व्यासार्ध द्वयमतोऽन्यत्र॥८॥"

इदानीं प्रकारान्तरेणाह—

त्रिभज्यकोन्मण्डलशङ्कुघाताच्चरज्ययाप्तं खलु यष्टिसंज्ञम्॥३३॥

युतोनितोद्धत्तनरेण यष्टिका भवेदुदग्दक्षिणगोलयोर्नरः।३३ $\frac{१}{२}$।

प्रकारांतर से—

सूर्य-प्रभा टीका— उन्मण्डल शंकु और त्रिज्या को गुणा करके चरज्या से भाग देने से लब्धि यष्टि होती है। यष्टि में उन्मंडल शंकु को युक्त अथवा हीन करने पर जब सूर्य क्रमशः उत्तर अथवा दक्षिण हो, दिनार्ध शंकु प्राप्त होता है।

$$\text{यष्टि} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{चर ज्या}} \text{ ; दिनार्ध शंकु} = \text{यष्टि} \pm \text{उन्मंडल शंकु।}$$

उपपत्ति— क्षितिज और उन्मंडल के मध्य चरकाल होता है। इसकी ज्या कर्ण की भांति तिर्यक रूप में होती है वह चरज्या है। उन्मंडल के ऊपर याम्योत्तर वृत्त तक जितना काल होता है वह सदैव सर्वत्र १५ घटी तुल्य होता है। उसकी ज्या त्रिज्या होती है। अब अनुपात किया कि चरज्या में उन्मंडल

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शंकु तुल्य उर्ध्वखंड प्राप्त होता है तो उन्मंडल से ऊर्ध्व काल की ज्या में कितनी त्रिज्या होगी? प्राप्तफल उन्मंडल शंकु सम सूत्र के मध्य ऊर्ध्व रूप होता है, जो यष्टि संज्ञक है। इस यष्टि को उन्मंडल शंकु में उत्तर गोल में युत करने से दिनार्ध शंकु होता है। यह उपपन्न हुआ। दक्षिण गोल में वह उन्मंडल से नीचे होने से वहाँ हीन करते हैं।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने आचार्योक्त ही महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में कहा है। यथा—

"गज्योन्मण्डलनृहतेश्चरजीवाप्तं भवेद्यष्टिः।
यष्ट्युन्मण्डलनरयुतिभेदाभ्यां गोलयोर्द्युदलङ्कुः॥"

इदानीं हृतिमन्त्यां चाह—

क्षितिज्ययैवं द्युगुणश्च सा हृतिश्चरज्ययैवं त्रिगुणोऽपि सान्त्यका॥३४॥

दिनार्ध से हृति और अन्त्या ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— क्षितिज्या और द्युज्या का उत्तर गोल में योग तथा दक्षिण गोल में अंतर करने से हृति होती है। इसी प्रकार त्रिज्या और चरज्या का योग और अंतर अन्त्या होती है। हृति = क्षितिज्या ± द्युज्या। अन्त्या = त्रिज्या ± चरज्या।

उपपत्ति— गोल में अहोरात्र वृत्त और क्षितिज के संपात बिंदुओं को मिलाने वाली रेखा उदयास्त सूत्र होती है। इसी प्रकार अहोरात्र वृत्त और उन्मंडल के संपात बिंदुओं को मिलाने वाली रेखा व्यास सूत्र अथवा निरक्षोदय सूत्र होता है। इसका उदयास्त सूत्र से अंतर सर्वत्र कुज्या होता है। याम्योत्तरवृत्त के संपात बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा भी व्यास सूत्र होती है। इनके संपात से निरक्षोदय सूत्र के ऊपर लम्बरूप खंड द्युज्या में से पूर्वोक्त कुज्या को दक्षिण गोल में घटाने से दिनार्ध तथा उदयास्त सूत्र का अंतर लम्बरूप हृति होती है। उत्तर गोल में द्युज्या और कुज्या को जोड़ने से हृति होती है। दक्षिण गोल में उदयास्त सूत्र के नीचे कुज्या होती है। इसका सूर्योदयास्त सूत्र से अंतर हृति होता है।

अहोरात्र वृत्त व्यासार्ध त्रिज्या तुल्य अंकों से अंकित करने से वह त्रिज्या तुल्य होता है। उन अंकों से कुज्या को गुणा करने से वह उतनी चरज्या तुल्य होती है। चरज्या को त्रिज्या में युत अथवा घटाने से अंत्या संज्ञक क्रमशः उत्तर तथा दक्षिण गोल में होती है। अन्त्या और हृति में क्षेत्र स्थिति का भेद नहीं है केवल अंकों के अधिक-लघुता का संख्या कृत भेद होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"स्वाहोरात्रार्धमुदग्दक्षिणयोः क्षितिजया युतविहीनम्।
द्युदलान्त्यज्या त्रिज्या क्षयवृद्धिज्या युतोनाऽन्त्या॥३४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्वाहोरात्र दलं युतोनमवनीमौर्व्या दिनार्धान्त्यका
व्यासार्ध चरजीवया भवति सा चान्त्याऽर्कगोलक्रमात्॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिपश्नाधिकार अध्याय ९ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"द्युज्या कुज्योनयुता याम्योत्तरगोलयोर्दिनार्धधृतिः।
त्रिज्या चरज्ययैवं वियुत युता स्याद्दिनार्धान्त्या॥७॥"

सूर्य सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"त्रिज्योदक्चरजायुक्ता याम्यायां तद्विवर्जिता॥३४॥
अन्त्या.....॥३४$\frac{१}{२}$॥"

आर्यभट ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"एवं गभचरगुणयोऽन्त्या हृतिरुर्विगुणद्युजीवातः।
तद्वल्लम्बापमलवसंस्कृतिजीवा दिनार्धशङ्कुर्वा॥१३॥"

इदानीमन्त्यातो हृतिं हृतेश्चान्त्यामाह—

हृतिस्त्रिमौर्व्या चरजीवया वा हता द्युमौर्व्या क्षितिजीवया वा।
भक्तान्त्यका स्यादथवान्त्यकाया हृतिर्गुणच्छेदविपर्ययेण॥३५॥

अंत्या से हृति तथा हृति से अंत्या साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— हृति को त्रिज्या तथा चरज्या से पृथक-पृथक गुणा करके क्रमशः द्युज्या तथा क्षितिज्या से विभक्त करने से अन्त्या प्राप्त होती है। इसी प्रकार गुण-छेद-विपर्य के द्वारा हृति होती है अर्थात् अन्त्या को क्रमशः द्युज्या और कुज्या से पृथक-पृथक गुणा करके त्रिज्या एवं चरज्या से पृथक पृथक विभक्त करने से हृति प्राप्त होती है।

सूत्र रूप में— $\text{अंत्या} = \frac{\text{हृति} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} = \frac{\text{हृति} \times \text{चरज्या}}{\text{कुज्या (=क्षितिज्या)}}$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{हति} = \frac{\text{अंत्या} \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रिज्या}} = \frac{\text{अंत्या} \times \text{कुज्या}}{\text{चरज्या}}$$

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि द्युज्या में त्रिज्या प्राप्त होती है और इसी प्रकार यदि कुज्या में चरज्या प्राप्त होती है तो हति में कितनी होगी? प्राप्तफल अंत्या होती है। इस प्रकार सूत्र में द्युज्या कुज्या में तथा त्रिज्या चरज्या में परिणत होती है। इसी प्रकार अंत्या से हति विलोम प्रकार से प्राप्त होती है।

इदानीमन्त्याहतिभ्यां दिनार्धशङ्कुमाह—

अन्त्याथवोन्मण्डलशङ्कुनिघ्नी चरज्ययाप्ता स दिनार्धशङ्कुः।
हतिः पलक्षेत्रजकोटिनिघ्नी तत्कर्णभक्ता यदि वा स शङ्कुः॥३६॥

अन्त्या और हति से दिनार्ध शंकु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अन्त्या को उन्मण्डल शंकु से गुणा करके चरज्या से विभक्त करने से दिनार्ध शंकु होता है और हति को पलक्षेत्र की कोटि (१२) से गुणा करके स्वस्व कर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल दिनार्ध शंकु होता है। सूत्र रूप में—

$$\text{दिनार्ध शंकु} = \frac{\text{अंत्या} \times \text{उन्मंडल शंकु}}{\text{चरज्या}} = \frac{\text{हति} \times १२}{\text{कर्ण}}$$

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि चरज्या तुल्य अन्त्या के अधः खंड में उन्मंडल शंकु प्राप्त होता है तो समग्र अन्त्या में कितना होगा? प्राप्तफल दिनार्ध शंकु होता है। उपपन्न हुआ।

अक्ष क्षेत्र के कर्ण से अनुपात किया कि यदि अक्षक्षेत्र के कर्ण में उतनी कोटि प्राप्त होती है तो हति कर्ण में कितनी होगी? प्राप्तफल सूर्य से भूपर्यन्त सूत्र का शंकु प्रमाण होता है। उपपन्न हुआ।

प्रकारान्तर से—

$$\text{दिनार्ध शंकु} = \frac{\text{हति} \times \text{उन्मंडल शंकु}}{\text{कुज्या}}$$; यह, कुज्याकर्ण में उन्मंडल शंकु तो हति कर्ण में क्या ? इस अनुपात से प्राप्त होता है।

परन्तु $\frac{\text{हति}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{अन्त्या}}{\text{चरज्या}}$ होता है। उपरोक्त में यहाँ से हति = $\frac{\text{कुज्या} \times \text{अन्त्या}}{\text{चरज्या}}$ का मान प्रतिस्थापित करने से—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{दिनार्धशंकु} = \frac{\text{कुज्या} \times \text{अन्त्या}}{\text{चरज्या}} \times \frac{\text{उन्मंडल शंकु}}{\text{कुज्या}} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु} \times \text{अन्त्या}}{\text{चरज्या}}$$

उपपन्न हुआ।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"हृतिकफ घातो भक्तो विषुवत्कर्णेन वासरार्धनरः।
अन्त्योद्धृतनृघातश्चरगुणभक्तो दिनार्धना यद्वा॥१४॥"

लल्लाचार्य ने भी शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में अनेक प्रकार से दिनार्धशंकु ज्ञात करना बताया है। यथा—

"लम्बाकार्कसमशङ्क्वपक्रमैश्छेदकः पृथगथाहतो हृतः।
व्यासखण्डपलकर्णत्दधृतिनाग्रकाभिरिह सन्ति शङ्कवः॥२०॥"

वटेश्वराचार्य ने भी वटेश्वर सिद्धान्त में लल्लाचार्योक्त प्रकार से कहा है। यथा त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ६—

"लम्बज्यापमजीवा समनरसूर्यैर्धृतिः पृथग्गुणिताः।
त्रिज्यागा तद्धृति पलकर्णैर्भक्ता नराः क्रमशः॥८॥"

इदानीं दिनार्धदृग्ज्यामाह—

हृतिः पलक्षेत्रभुजेन निघ्नी तत्कर्णभक्ताग्रकयोनयुक्ता।
गोलक्रमात् स्यादथवात्र दृग्ज्या याम्याथ सौम्या विपरीतशुद्धौ॥३७॥

दिनार्धदृग्ज्या ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— हृति को आठों अक्षक्षेत्र के भुज से गुणा करके स्व-स्व कर्ण से विभक्त करने से जो फल प्राप्त हो उसको उत्तरगोल में अग्रा में से हीन करने से तथा दक्षिण गोल में युक्त करने से दिनार्ध दृग्ज्या होती है। इसी प्रकार दक्षिण गोल में। यदि उत्तर गोल में अग्रा में से फल न घटे तो फल में से अग्रा को घटावें शेष उत्तर गोल में दृग्ज्या होती है।

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि पलक्षेत्र के कर्ण में उसकी भुज प्राप्त होती है तो हृति में कितनी होगी? प्राप्तफल उदयास्त सूत्र से दक्षिण की ओर शंकु मूल तक होता है। दृग्ज्या शंकुमूल से पूर्वापर सूत्र का अंतर होता है। अतः पूर्वापर सूत्र और उदयास्त सूत्र के अंतर में अग्रा तुल्य अन्तर याम्य गोल में जो हो उसको जोड़े और उत्तर गोल में उसको घटावें। शेष दक्षिण की ओर दृग्ज्या होती है। यदि उत्तर गोल में खअर्ध से उत्तर की ओर रवि होता है तब

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शंकुमूल पूर्वापर से उत्तर की ओर होता है अतः तब अग्रा में से फल नहीं घटता है। अग्रा में से जितना फल घटता है उसमें से पूर्वापर से शंकुमूल का अन्तर शेष रहता है। यह दृग्ज्या है। उपपन्न हुआ।

इदानीं प्रकारान्तरेणाह—

गोलक्रमात् तद्धृतिहीनयुक्ता हृतिः पलक्षेत्रभुजेन निघ्नी।
तत्कर्णभक्ता भवतीह दृग्ज्या प्रद्योतने वा द्युदलं प्रयाते॥३८॥

प्रकारान्तर से—

सूर्य-प्रभा टीका— हृति में से उत्तर गोल के तद्धृति को घटावे तथा दक्षिण गोल में युक्त करके आठों अक्ष क्षेत्रों के भुज से गुणा करके स्वस्व कर्ण से विभक्त करने से दृग्ज्या होती है।

उपपत्ति— अहोरात्र वृत्त सममंडल को जिन पूर्व-पश्चिम बिंदुओं पर संपात करता है, उनका याम्योत्तर वृत्त से अहोरात्रवृत्त के संपात से निबद्ध हृति सूत्र, का उदयास्त सूत्र पर्यन्त तक जो संपात है उसके अधः का हृतिखण्ड तद्धृति तुल्य होता है। इसको हृति में से घटाने से हृति का ऊर्ध्वखंड, समसूत्र के दक्षिण में अक्षकर्ण से सूर्यपर्यन्त होता है।

अनुपात किया कि यदि अक्ष क्षेत्र के कर्ण में इतना भुज प्राप्त होता है तो इतने प्राप्तफल में कितना होगा? प्राप्तफल दृग्ज्या होगा। दक्षिण गोल में क्षितिज के नीचे अहोरात्रवृत्त के सममंडल से संपात के नीचे अधोमुख समशङ्कु और क्षितिज के नीचे तद्धृति होता है। इसलिये वहाँ तद्धृति को हृति में युत करने से नीचे समसूत्र से दक्षिण में अक्षकर्ण से सूर्य पर्यन्त होता है। उसका अनुपात करने से फल दक्षिण दृग्ज्या होती है। ख स्वस्तिक से दक्षिण उत्तर वृत्त में जितने अंश सूर्य का नतांश होता है उसकी ज्या दृग्ज्या होती है, इसका यह अर्थ है।

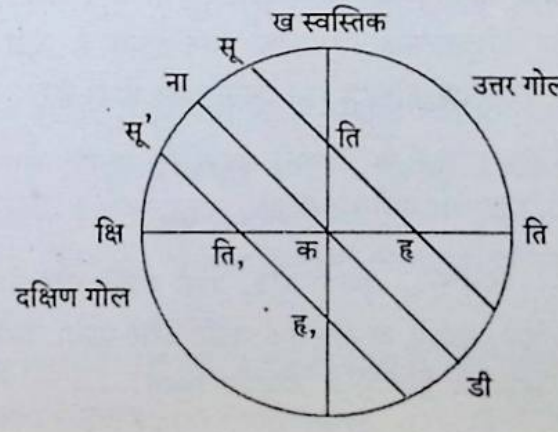

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चित्र में ख स्वस्ति है तथा सू ति ह सूर्य का अहोरात्रवृत्त है। ना क डी नाडीवृत्त (Celetial equator) है। क्षि ना ख ति याम्योत्तर वृत्त है। हति = ह, ति = क्रमशः उत्तर तथा दक्षिण गोल में तद्धृति है तथा सू ति ह = सू' ति, ह, = क्रमशः उत्तर तथा दक्षिण गोल में हति है।

इदानीं प्रकारान्तरेणाह—

त्रिज्या नृचापोत्क्रमजीवयोना दृग्ज्या भवेदेवमतो नरो वा।
एवं हि दृग्ज्या यदि वाखिलानां विदिक्समोद्वृत्तनरादिकानाम्॥३९॥

प्रकारान्तर से—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या में से शंकु चाप की उत्क्रमज्या को घटाने दृग्ज्या होती है और त्रिज्या में से दृग्ज्या चाप की उत्क्रमज्या घटाने से शंकु होता है। इसी प्रकार दिनार्ध उन्मंडल समशंकु आदि से दृग्ज्या होती है, पूर्व में जो कहा है वह दिनार्ध दृग्ज्या है।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"नरचापोत्क्रमजीवाहीना गज्यैव दृग्ज्या स्यात्।
एवमभीष्टोन्मण्डलसमशंकुभ्यः स्फुटा दृग्ज्या॥१५॥"

इदानीं छायाकर्णावाह—

दृग्ज्यात्रिजीवे रविसंगुणे ते शङ्कूद्धृते भाश्रवणौ भवेताम्।३९$\frac{१}{२}$।

छाया और कर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— दृग्ज्या और त्रिज्या दोनों को पृथक-पृथक (१२) बारह से गुणा करके शंकु से विभक्त करने से दृग्ज्यास्थान (प्रथम) पर जो फल प्राप्त होता है वह अंगुलात्मक छाया का मान होता है और त्रिज्या स्थान (द्वितीय) पर जो फल प्राप्त होता है वह छाया कर्ण होता है।

$$\text{छाया} = \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{शंकु}} \text{ और कर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{शंकु}}$$

उपपत्ति— त्रिभुजः – दृग्ज्या भुज, शंकु कोटि और त्रिज्या कर्ण और त्रिभुजः – छाया भुज, द्वादश अंगुल शंकु कोटि और छाया कर्ण।

इन दोनों सजातीय त्रिभुजों में अनुपात किया—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$\frac{\text{दृग्ज्या}}{\text{छाया}} = \frac{\text{शंकु}}{१२}$ अर्थात छाया $= \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{शंकु}}$ आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

इसी प्रकार दूसरा अनुपात किया—

$\frac{\text{त्रिज्या}}{\text{छाया कर्ण}} = \frac{\text{शंकु}}{१२}$ अर्थात् छायाकर्ण $= \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{शंकु}}$

आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"नतभागज्या द्वादशगुणोन्नतांशज्यया हृता लब्धम्।
इष्टदिनार्धच्छाया यथोक्तकरणैर्दिनार्धाद्वा॥४८॥
उन्नतजीवाभक्तं व्यासार्ध द्वादशाहतं कर्णः।$\frac{१}{२}$।"
दृग्ज्या द्वादशगुणिता विभाजिता शंकुना फलं छाया।
व्यासार्ध छेदहृतं विषुवत्कर्णाहतं कर्णः॥२८॥"

वटेश्वर आचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार १० में शंकु आनयन के सूत्र दिये हैं। ये सूत्र भास्करोक्त ही हैं। इनके द्वारा भास्करोक्त प्रकार से छाया तथा कर्ण ज्ञात किये जा सकते हैं। यथा—

"त्रिज्याऽर्कोभ्यस्ता कर्णहृता सर्वदा भवेच्छङ्कु।
दृग्ज्या सूर्याभ्यस्ता प्रभा हृता वा भवेच्छङ्कु॥३॥"

अर्थात् शंकु $= \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{छाया कर्ण}} = \frac{\text{दृग्ज्या} \times १२}{\text{छाया}}$

इनके द्वारा भास्करोक्त कर्ण एवं छाया पक्षान्तर के द्वारा ज्ञात कर सकते हैं।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ना शंकुरुन्नतगुणः स च कोटिरुक्ता दृग्ज्या भुजा नतगुणस्तु भवेत प्रभा च।
अर्कापवत्तितनद्वेण हते च दृग्ज्या त्रिज्येदले दिनदलोत्थविभा श्रुती च॥"

आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"दृग्ज्यागज्ये प्रद्यून्यौ शंकुहते भाश्रुती क्रमाद्भवतः।
निजसंज्ञसर्वनृणां प्रांगुलमानेन दीर्घाणाम्॥१६॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं प्रकारान्तरेण दिनार्धकर्णमाह—

त्रिज्याक्षकर्णेन गुणा विभक्ता हृत्या श्रुतिर्वा दिनमध्यगेऽर्के॥४०॥

प्रकारांतर से दिनार्धकर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या को अक्षकर्ण से गुणा करके हृति से विभक्त करने से प्राप्तफल मध्यकर्ण होता है।

$$\text{मध्य (दिनार्ध) कर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{अक्षकर्ण}}{\text{हृति}}$$

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि अक्षकर्ण में बारह अंगुल शंकु होता है तो हृति तुल्य कर्ण में कितना होगा? प्राप्तफल मध्य शंकु $= \frac{\text{हृति} \times १२}{\text{अक्षकर्ण}}$ होगा।

अब दूसरा अनुपात किया कि यदि मध्यान्हशंकु में त्रिज्या तुल्य कर्ण होता है तो बारह अंगुल शंकु में कितना होगा? यहाँ $\frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{मध्य शंकु}}$ = मध्यकर्ण।

इसमें मध्य शंकु का मान प्रतिस्थापित करने पर—

$$\text{मध्य कर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{हृति} \times १२} \times \text{अक्षकर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{अक्षकर्ण}}{\text{हृति}}$$ उपपन्न हुआ।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त प्रकार से कहा है। यथा—

"गज्याऽक्षश्रवणघ्नी कुज्योद्धृत्तश्रवोनिघ्नी।
तद्धृत्या समकर्णो हृत्या भक्ता द्युखण्डकर्णो वा॥१७॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार ६ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"त्रिज्याऽक्षकर्णगुणिता स्वधृतिभक्ता वा द्युदलकर्णः।८$\frac{१}{२}$।"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में हृति आदि के बहुत प्रकार से साधन के लिए कहा है जिसे भास्कराचार्य ने भी अपनाया है। यथा—

"द्युदलान्त्या ज्या छेदो मध्यच्छाया यथोक्तकरणैर्वा।
अन्त्याज्या छेदाद्यैर्मध्यच्छायाऽथवा बहुधा॥५०॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं प्रकारान्तरेणाह—

युतायनांशार्कबृहद्भुजज्यया खरामतिथ्यभ्रभुवो १०१५३० हृताः परः।
पलश्रुतिघ्नः पलभाविभाजितः परोऽथवोद्वृत्तगते रवौ श्रुतिः॥४१॥

प्रकारान्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— अयनांश युक्त (सायन) सूर्य की वृहदज्या से १०१५३० को विभक्त करने से जो प्राप्त हो उसको 'पर' कहे। उस 'पर' से पलकर्ण को गुणा करके पलभा से विभक्त करने से प्राप्तफल उन्मंडल गत सूर्य का छाया कर्ण होता है।

$$\text{पर} = \frac{१०१५३०}{\text{सायन सूर्यज्या}}; \quad \text{उन्मंडल गतसूर्य} = \text{'पर'} \times \frac{\text{पलकर्ण}}{\text{पलभा}}$$

उपपत्ति— इसकी उपपत्ति अगले श्लोक में बताई जायेगी।

इदानीं तस्मादेव परसंज्ञात् समवृत्तकर्णमाह—

परोऽक्षभासंगुणितोऽक्षकर्णभक्तोऽथवा स्यात् समवृत्तकर्णः।४१$\frac{१}{२}$।

'पर' संज्ञक से समवृत्त कर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— उस 'पर' से पलभा को गुणा करके पलकर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल सममंडल गत सूर्य का छाया कर्ण होता है।

$$\text{सममंडल कर्ण} = \frac{\text{पर} \times \text{पलभा}}{\text{अक्ष कर्ण}}$$

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि त्रिज्या में परम क्रांतिज्या प्राप्त होती है तो रविज्या में कितनी होगी? प्राप्तफल क्रांतिज्या = $\frac{\text{रविज्या} \times \text{परम क्रां.ज्या.}}{\text{त्रिज्या}}$।

फिर दूसरा अनुपात किया कि यदि अक्ष कर्ण में पलभा भुज प्राप्त होती है तो क्रांतिज्या में कितनी होगी? प्राप्तफल उन्मंडल शंकु होगा।

$$\text{उन्मंडल शंकु} = \frac{\text{रविज्या} \times \text{परम क्रां.ज्या.} \times \text{पलभा}}{\text{त्रिज्या} \times \text{अक्षकर्ण}}.$$

अब फिर अनुपात किया कि इतने शंकु में त्रिज्या कर्ण है तो १२ अंगुल शंकु में कितना होगा? इस प्रकार—

$$\frac{\text{त्रिज्या} \times १२ \times \text{त्रिज्या} \times \text{अक्षकर्ण}}{\text{रविज्या} \times \text{परम क्रां.ज्या} \times \text{पलभा}} = \frac{\text{त्रिज्या}^2 \times १२ \times \text{अक्षकर्ण}}{\text{रविज्या} \times \text{परम क्रां.ज्या} \times \text{पलभा}}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यहाँ $\frac{\text{त्रिज्या}^२ \times १२}{\text{परम क्रां.ज्या}} = \frac{(३४३८)^२ \times १२}{१३९७} = १०१५३०$ होगा।

अतः $\frac{१०१५३०}{\text{रविदोर्ज्या}}$ को आचार्य ने 'पर' संज्ञा दी है जिससे उपरोक्त

$\frac{\text{पर} \times \text{अक्षकर्ण}}{\text{पलभा}}$ = उन्मंडल गत सूर्य कर्ण। उपपन्न हुआ।

सममंडल कर्ण के लिए इसी प्रकार अनुपात करने से–

सममंडल कर्ण = $\frac{\text{पर} \times \text{पलभा}}{\text{अक्षकर्ण}}$ उपपन्न हुआ।

इदानीमुन्मण्डलकर्णान्मध्यकर्णमाह—

उद्वृत्तकर्णश्चरशिञ्जिनीघ्नो भक्तोऽन्त्यया वा श्रवणो दिनार्धे॥४२॥

उन्मंडल कर्ण से दिनार्ध कर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— उन्मंडल कर्ण को चरज्या से गुणा करके अन्त्या से विभक्त करने से मध्य (दिनार्ध) कर्ण होता है।

$$\text{मध्यकर्ण} = \frac{\text{उन्मंडल कर्ण} \times \text{चरज्या}}{\text{अन्त्या}}$$

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि चरज्या तुल्य अन्त्या अधः खंड में उन्मंडल शंकु होता है तो अन्त्या में कितना होगा?

$$\text{फल मध्यशंकु} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु} \times \text{अन्त्या}}{\text{चरज्या}}$$

इतने मध्यशंकु में त्रिज्या कर्ण होता है तो १२ अंगुल शंकु में कितना होगा?

$$\text{फल मध्यकर्ण} = \frac{१२ \times \text{त्रिज्या} \times \text{चरज्या}}{\text{उन्मंडल शंकु} \times \text{अन्त्या}} = \frac{\text{उन्मंडल कर्ण} \times \text{चरज्या}}{\text{अन्त्या}}$$

$\because \frac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{उन्मंडल शंकु}}$ = उन्मंडल कर्ण होता है। अतः उपपन्न हुआ।

इदानीं प्रकारान्तरेणोन्मण्डलकर्णात् समवृत्तकर्णाच्च मध्यकर्णमाह—

उद्वृत्तकर्णः समवृत्तकर्णः क्षितिज्यया तद्भुतिसंज्ञया च।
क्रमेण निघ्नौ विहतौ च हृत्या दिनार्धकर्णावथवा भवेताम्॥४३॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकारांतर से उन्मंडल कर्ण तथा समवृत्तकर्ण से मध्य कर्ण—

सूर्य-प्रभा टीका— उन्मंडल कर्ण और समवृत्त कर्ण को क्रमशः क्षितिज्या और तद्धृति से गुणा करके हृति से विभक्त करने से दिनार्ध कर्ण होता है।

$$\text{दिनार्ध कर्ण} = \frac{\text{उन्मंडल कर्ण} \times \text{क्षितिज्या}}{\text{हृति}} = \frac{\text{समवृत्तकर्ण} \times \text{तद्धृति}}{\text{हृति}}$$

उपपत्ति— त्रैराशिक से यदि उन्मंडल अधःस्थ हृतिखंड में कुज्या तुल्य उन्मंडल कर्ण प्राप्त होता है और तद्धृति में सममण्डल कर्ण प्राप्त होता है तो हृति में कितना? इन त्रैराशिक से प्राप्त दिनार्धकर्ण, उक्त दोनों उन्मंडल कर्ण तथा समवृत्त कर्ण द्वारा प्राप्त होगा।

अथवा कुज्या कर्ण में उन्मंडल शंकु कोटि होती है तो हृति में कितनी?

$$\text{लब्धि दिनार्ध शंकु} = \frac{\text{उन्मंडल शंकु} \times \text{हृति}}{\text{कुज्या}}$$। पूर्वोक्त सूत्र (ख) द्वारा।

फिर से, यदि इतने दिनार्ध शंकु में त्रिज्याकर्ण प्राप्त होता है तो १२ अंगुल शंकु में कितना होगा?

$$\text{फल दिनार्ध कर्ण} = \frac{१२ \times \text{त्रि} \times \text{कुज्या}}{\text{उ.शं.} \times \text{ह}} = \frac{\text{उन्मंडल कर्ण} \times \text{कुज्या}}{\text{हृति}}$$

$$\text{इसी प्रकार दिनार्ध कर्ण} = \frac{\text{समवृत्त कर्ण} \times \text{तद्धृति}}{\text{हृति}}$$ उपपन्न हुआ।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"गज्या ऽक्षश्रवणघ्नी कुज्योद्धृतश्रवोनिघ्नी।
तद्धृत्या समकर्णो हृत्या भक्ता द्युखण्डकर्णो वा॥१७॥
उद्धृतश्रुतिनिघ्नी चर जीवाऽन्त्याहृता द्युदलकर्णः।$\frac{१}{२}$।"

इदानीमिच्छादिक्छायां विवक्षुस्तज्ज्ञस्य सुज्ञताधिक्यं निरूपयन् प्रश्नरूपेणाह—

याम्योदक्समकोणभाः किल कृताः पूर्वैः पृथक्साधनै-
र्यास्तद्दिग्विवरान्तरान्तरगता याः पृच्छकेच्छावशात्।
ता एकानयनेन चानयति यो मन्ये तमन्यं भुवि
ज्योतिर्विद्वदनारविन्दमुकुलप्रोल्लासने भास्करम्॥४४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक ही विधि से इच्छित दिशा की छाया ज्ञात करने वाले को अधिक ज्ञानी निरूपण के लिए प्रश्न रूप—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वाचार्य तीन काल की अपेक्षित छाया का आनयन करते हैं। एक पूर्वापर दूसरी याम्योत्तर तथा तीसरी कोणछाया। इनको पृथक-पृथक साधित करते हैं। इनके आनयन में यदि मध्य छाया प्राप्त होती है तो उसी से कोणछाया या सममंडल छाया प्राप्त नहीं होती, अर्थात् एक को साधन करने से उसी के द्वारा दूसरी प्राप्त नहीं होती। यदि कोई इनमें से किसी एक छाया का आनयन करके दूसरी के आनयन में कोई भेद अर्थात् अन्यविधि न करे तो उसदैवज्ञ को मैं सूर्य के समान मानता हूँ, जैसे दिन में केवल एक ही सूर्य होता है। अर्थात् एक ही विधि से किसी भी इच्छित दिशा की छाया का आनयन कर सकने वाले दैवज्ञ को आचार्य ज्योतिर्विदों में सूर्य के समान एक ही विद्वान मानते हैं।

इदानीं तदर्थमाह—

चक्रांशकाङ्के क्षितिजाख्यवृत्ते प्राक्स्वस्तिकाभीष्टदिशोऽस्तु मध्ये।
येंऽशास्थितास्तेऽत्र दिगंशकाख्यास्तज्ज्यात्र दिग्ज्येत्यपरे विभागे॥४५॥

दिगंशज्या की परिभाषा—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस अभीष्ट दिन में जिस काल पर पृच्छक प्रश्न करे उस काल पर सूर्य का जो नत है उसके दृग्मंडल का क्षितिज से जो संपात है वह अभीष्ट दिशा है उसका पूर्व स्वस्तिक से जितना अंतर क्षितिज वृत्त पर है उतने अंश उसका दिगंश होता है। इसकी ज्या दृग्ज्या होती है। इसी प्रकार पश्चिम भाग में होती है।

इदानीमिच्छादिक्क्छायानयनमाह—

पलप्रभा व्यासदलेन निघ्नी दिग्ज्योद्धृता तां पलभां प्रकल्प्य।
साध्याक्षजीवाथ तया विनिघ्नी स्वाक्षज्ययाप्तापमशिञ्जिनी च॥४६॥

ताभ्यां दिनार्धद्युतिवद्विदध्यादभीष्टदिक्स्थे द्युमणौ द्युतिं वा।४६$\frac{१}{२}$।

अभीष्ट दिशा की छाया आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— इष्ट दिन की पल प्रभा को त्रिज्या से गुणा करके इष्ट दिग्ज्या से विभक्त करने से जो प्राप्त हो उसको पलभा मानकर इससे अक्षज्या साधित करे। इस अक्षज्या तथा क्रांतिज्या को गुणा करके स्वस्थान की अक्षज्या से विभक्त करने से प्राप्त फल इष्ट क्रांतिज्या होती है। इष्ट अक्षज्या

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का धनु इष्ट पल होता है। इष्ट क्रांति ज्या का धनु इष्ट क्राति होता है। इन इष्ट पल (पलांश) तथा क्रांति से मध्यछाया ज्ञात होगी जो अभीष्ट दिग्स्थ सूत्र की छाया होगी।

उपपत्ति— विषुव दिन पर रवि विषुवन्मण्डल में भ्रमण करता है। इस सूर्य की, इष्ट दिशा में आने पर जो छाया हो उसे साधित करे। द्वादश अंगुल शंकु की छायाग्र बिंदु मध्य दिन में जहाँ हो उसका पूर्व-पश्चिम रेखा से अंतर विषुवति तुल्य होता है। इससे शंकुतल का अन्तर भुज, दृग्ज्या छाया है। दिनमध्य से त्रिज्या तुल्य कर्कटक (गोला प्रकार) से एक वृत्त बनावे वह क्षितिज है। उस क्षितिज पर जो दिग्ज्या है वह भुज है। अनुपात किया कि यदि दिग्ज्या तुल्य भुज में त्रिज्या तुल्य दृग्ज्या प्राप्त होती है तो पलभा तुल्य भुज में कितनी होगी? प्राप्तफल पलभा और त्रिज्या के गुणा में दिग्ज्या से भाग तुल्य होगा। यह विषुवन्मण्डलस्थ सूर्य की इष्ट दिग्च्छाया होगी। अब इसको पलभा मान कर इससे अक्षज्या साधित करे। खमध्य से सूर्य जितने अन्तर तुल्य अंश पर दृङ्मंडल में स्थित होता है उसकी ज्या साधित करे। यहाँ प्राप्त छाया को पलभा मानकर उसका कर्ण ज्ञात करके उस पलभा तथा त्रिज्या के गुणा में इस कर्ण का भाग देवे। प्राप्तफल इष्ट अक्षज्या होती है। स्वदेश की अक्षज्या दक्षिणोत्तर गत वृत्त में होती है।

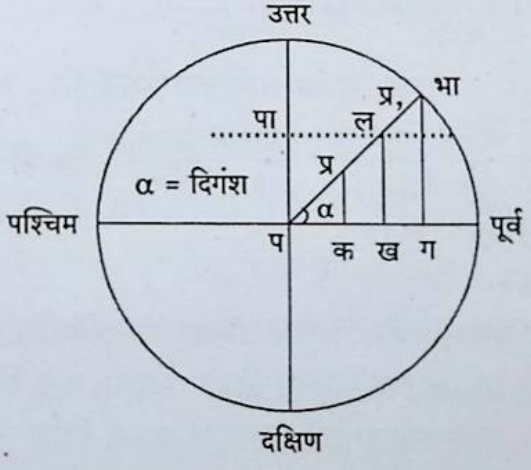

प ल = विषुवदिन पर शंकु छाया इष्टदिशा में। प प्र = किसी अन्य दिन पर शंकुछाया उसी दिशा में।

प ल = इष्ट दृग्मंडल पलभा

प्र,ल = प्र ल = छाया में अंतर है जो क्रांति के कारण है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग भा = दिग्ज्या

प भा = त्रिज्या

ल ख = प पा = पलभा।

अब क्रांतिज्या को दृग्मंडल गत करते हैं। इसके लिए अनुपात किया कि यदि स्वदेश की अक्षज्या में दृग्मंडलगत इष्ट अक्षज्या प्राप्त होती है तो क्रांतिज्या में दृङ्मण्डलगत कितनी होगी? प्राप्तफल, इष्ट अक्षज्या तथा क्रांतिज्या का गुणा स्वस्थान की अक्षज्या से विभक्त तुल्य होगा। यह विषुवन्मंडल से सूर्य के दृग्मण्डल का अंतर तुल्य अंश की ज्या है, यह इष्ट क्रांतिज्या है। इष्ट अक्षज्या का धनु दृग्मण्डगत इष्ट अक्षांश है। इष्ट क्रांतिज्या का धनु इष्ट क्रांति दृगमंडल गत है। इनका याम्य गोल में योग तथा सौम्य गोल में अंतर खमध्य से दृङ्मण्डलगत सूर्य का नतांश होता है। इसकी ज्या दृग्ज्या है। इसको नब्बे (९०) में से घटाने से शेष की ज्या उन्नतज्या संशंकु है। इससे छाया कर्ण प्राप्त होगा। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विषुव दिन में शंकु छायाग्र बिंदु पूर्व–पश्चिम के समानान्तर रेखा पर विषुवद्छाया तुल्य दूरी पर भ्रमण करता है। अतः चित्र में त्रिभुज प ल ख तथा त्रिभुज प भा ग समरूप हैं अतः–

$$\frac{\text{ल ख}}{\text{प ल}} = \frac{\text{ग भा}}{\text{प भा}} = \frac{\text{इष्ट ज्या दिगंश}}{\text{त्रिज्या}}$$

यहाँ ल ख = पलभा; ग भा = त्रिज्या। अतः–

$$\text{प ल} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{ख ल}}{\text{इष्ट दिग्ज्या}} = \frac{\text{त्रि.} \times \text{पलभा}}{\text{इष्ट दिग्ज्या}}$$, इसको पलभा माना कर इसकी अक्षज्या साधित करे।

इदानीं विशेषमाह—

एवं कृते ये पलभागकाः स्युस्तद्धीनखाष्टेन्दुमिताश्च येऽशाः॥४७॥
तांश्चाक्षभागान् प्रविकल्प्य साध्या द्विधेष्टदिग्भा यदि दिग्लवज्या।
अल्पाग्रकायाः खलु सौम्यगोले याम्ये तु तस्यां दिशि नास्ति भैव॥४८॥

विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— इष्ट दिशा में छाया साधन इस प्रकार से करने में उत्तर गोल में दो छाया प्राप्त होती है जब दिग्ज्या अग्रा से अल्प होती है। दक्षिण गोल में सूर्य उस दिशा में क्षितिज के ऊपर प्रविष्ट नहीं करता। उत्तर गोल में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उत्तर की ओर इष्ट दिग्ज्याग्र पर दृग्मंडल स्थित होता है जो अहोरात्र वृत्त को कभी पूर्वाण्ह तथा कभी अपरान्ह में दो स्थानों पर लगता है। ऐसे अहोरात्र वृत्त में सूर्य भ्रमण करते हुए उन दो स्थानों पर आता है तब उन दिशा में दो छाया होती है।

इस प्रकार इष्ट पलांश (अक्षांश) के अतिरिक्त दूसरा पलांश स्थान (अक्षांश) (१८०–इष्ट पलांश) मान कर वहाँ पूर्वोक्त प्रकार से छाया साधित करे। दक्षिण गोल में छाया का अभाव होता है।

उपपत्ति— इष्ट दिशा में स्थित दृग्मण्डल का विषुवन्मण्डल से एक संपात ख स्वस्तिक के आसन्न होता है। यह जितने अंश पर होता है वह इष्ट पलांश है। दूसरा संपात ख स्वस्तिक से दूर दूसरी दिशा में जितने अंश पर होता है उनको भी पलांश कल्पित करे। इन अक्षांश पर से अग्रा के अतिरिक्त अग्रा एवं इष्ट अहोरात्र वृत्त से इष्ट क्रांति और अग्रा होगी। इन दोनों को साधित करे। यह दो प्रकार (दो बार) से होती है।

इनको प्राप्त करने के लिए आचार्य ने सममण्डल में इष्ट छाया आनयन का उदाहरण दिया है। जिस देश में ५ अंगुल पलभा होती है वहाँ जब क्रांतिज्या = ७८० हो अर्थात् क्रांति १३° ७' हो तब वहाँ समशंकु = $\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{क्रांतिज्या}}{\text{अक्षज्या}}$ = २०२८ होता है। अग्रा ८४५ तथा अक्षज्या = १३२२।१८ है। पलभा ५ को अर्धव्यास से गुणा करके दिग्ज्या से विभक्त करने से $\frac{५ \times ३४३८}{\text{दिग्ज्या}} = \frac{१७१९०}{०}$, क्योंकि यहाँ दिग्ज्या = ० है, शून्य अंश की ज्या = ० होती है। इस प्रकार यहाँ पर विषुवद्छाया अनन्त मान की हो गई। आचार्य ने कहा है कि यहाँ 'हार' शून्य राशि होती हैं। इसको पलभा मान कर (श्लोक ४६$\frac{१}{२}$, ४६ अनुसार) अक्षज्या साधित करे। इसके वर्ग को बारह के वर्ग के सदृश्य लेकर शून्य तुल्य मान जोड़कर मूल लेने से कर्ण पलभा के समान $\frac{१७१९०}{०}$ के तुल्य होता है। त्रिज्या को पलभा से गुणा करके उसके तुल्य कर्ण को मान कर विभक्त करने से अक्षज्या होती है। अर्थात

$$\frac{\text{त्रिज्या} \times \frac{१७१९०}{०}}{\frac{१७१९०}{०}} = \text{अक्षज्या।}$$

$\frac{१७१९०}{०}$ परस्पर कट जाने से अक्षज्या

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

= त्रिज्या प्राप्त होती है। इसका धनु ९०° है। इसको ९०° में से शोधित करने से लम्ब शून्य (९०–९० = ०) होता है।

इस प्रकार त्रिज्या तुल्य अक्षज्या ३४३८ और क्रांतिज्या = ७८० को गुणा करके स्वदेश की अक्षज्या १३२२।१८ से विभक्त करने से समशंकु प्राप्त होता है। अर्थात् सम शंकु = $\frac{३४३८ \times ७८०}{१३२२।१८}$। इससे इष्ट क्रांतिज्या = २०२८ तथा लम्ब = ०। इसे इष्ट क्रांतिज्या के धनु से अधिक करे। ऐसा करने से वह उन्नतांश होता है। इसकी जीवा शंकु होती है। इसी प्रकार सममण्डल शंकु होता है, और जब क्रांतिज्या = ० पूर्ण राशि हो तब इसी प्रकार अग्रा, समशंकु आदि साधित करके अनुपात करे।

इदानीं प्रकारान्तरेणेच्छादिक्छायामाह—

व्यासार्धवर्गः पलभाकृतिघ्नो दिग्ज्याकृतिर्द्वादशवर्गनिघ्नी।
तत्संयुतिः स्यात् प्रथमस्तथान्यस्त्रिज्याक्षभाग्राभिहतिस्ततस्तौ॥४९॥
दिग्ज्याग्रयोर्वर्गवियोगभक्तौ यदन्यवर्गेण युताद्यराशेः।
पदं तदन्योनयुतं श्रुतिर्वा गोलक्रमादिष्टदिशं गतेऽर्के॥५०॥
स्यादग्रकाया यदिदिग्ज्यकाल्पा तदान्यवर्गात् प्रथमेन हीनात्।
मूलेन हीनः सहितो द्विधान्यः कर्णद्वयं स्यादिति सौम्यगोले॥५१॥

प्रकारान्तर से इच्छादिक्छाया ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— व्यासार्ध के वर्ग को पलभा के वर्ग से गुणा करके दिग्ज्या के वर्ग तथा बारह के वर्ग के गुणा में युक्त करने से प्राप्त प्रथम संज्ञक फल को एक स्थान पर स्थापित करे। फिर त्रिज्या, अक्षभा (पलभा) तथा अग्रा तीनों के गुणा को अन्य संज्ञक फल मान कर स्थापित करे। फिर दिग्ज्या और अग्रा के वर्गों के अंतर से प्रथम तथा अन्य संज्ञक फलों को विभक्त करने से प्राप्त अन्य राशि के वर्ग तथा प्रथम राशि के योग का मूल लेवे। इस प्रकार मूल लेने से प्राप्त राशि में सूर्य उत्तर गोल में होने पर अन्य (दूसरी) राशि को घटा देने तथा दक्षिण गोल में होने पर युत करने से छाया कर्ण प्राप्त होता है। यदि उत्तर गोल में दिग्ज्या अग्रा से अल्प हो तो अर्थात उत्तर क्रांति होने पर उस अन्य राशि के वर्ग में से प्रथम राशि को घटा कर मूल लेने से प्राप्त फल में वह अन्य राशि एक बार युत करने तथा दुबारा घटाने से दो कर्ण प्राप्त होते हैं। सूर्य के सममंडल के उत्तर में होने पर युत तथा घटाने पर दक्षिण में स्थित होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूत्र रूप में—

त्रिज्या^{२}×पलभा^{२}+ दिग्ज्या^{२} × १२^२ = प्रथम संज्ञक फल।

त्रिज्या × पलभा × अग्रा = अन्य संज्ञक फल।

$$\sqrt{\frac{\text{प्रथम संज्ञक फल}}{(\text{दिग्ज्या}^२ - \text{अग्रा}^२)} + \left(\frac{\text{अन्य संज्ञक फल}}{(\text{दिग्ज्या}^२ - \text{अग्रा}^२)}\right)^२} \pm \text{अन्य राशि} = \text{छाया कर्ण}$$

यदि दिग्ज्या < अग्रा हो तो उत्तर गोल में अर्थात् उत्तर क्रांति होने पर

छाया कर्ण = $\sqrt{(\text{अन्य राशि})^२ - \text{आद्य राशि}} \pm$ अन्य

कभी-कभी सूर्य के सममण्डल से उत्तर में रहने पर भी दो कर्ण होते हैं।

उपपत्ति— यहाँ यदि पलभा को 'प', अग्रा = 'अ' तथा कर्ण को 'क', भुज को 'भु', त्रिज्या को 'त्रि', दृग्ज्या को 'द' द्वारा व्यक्त करें तो—

$$\text{कर्णाग्र} = \frac{\text{क अ}}{\text{त्रि}} = \text{प} + \text{भु}$$

$$\text{या भु} = \frac{\text{क अ}}{\text{त्रि}} - \text{प}; \text{ आचार्योक्त उपपत्ति अनुसार।}$$

$$\text{दृग्ज्या} = \frac{\text{त्रि} \times \text{भु}}{\text{प}}; \text{ आचार्योक्त उपपत्ति अनुसार।}$$

$$\text{अतः प} = \frac{\text{भु त्रि}}{\text{दृग्ज्या}} = \left[\frac{\text{क अ}}{\text{त्रि}} - \text{प}\right] \times \frac{\text{त्रि}}{\text{दृग्ज्या}};$$ यहाँ भु का मान रख दिया है।

$$\text{या प} = \left[\frac{\text{क अ}}{\text{त्रि}} - \text{प}\right] \times \frac{\text{त्रि}}{\text{द}} = \sqrt{\text{कर्ण}^२ - १२^२};$$ यहाँ पलभा = $\sqrt{\text{कर्ण}^२ - १२^२}$ रख दिया।

या त्रि (क अ – प त्रि) = त्रि. × दृग्ज्या × $\sqrt{\text{क}^२ - १२^२}$

दोनों ओर का वर्ग करने पर—

या त्रि^{२} (क अ – प त्रि)^२ = त्रि^{२} दृग्ज्या^{२} (क^२ – १२^२)

या त्रि^{२} (क^{२}अ^२+प^{२}त्रि^{२} – २ क अ प त्रि) =त्रि^{२} दृग्ज्या^{२} (क^२ – १२^२)

त्रि दोनों ओर से उभयनिष्ट होने से निरस्त हो गया है।

या क^{२}अ^२+प^{२}त्रि^{२} – २क अ प त्रि = क^२ द^२ – १२^२ द^२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या $क^२अ^२ - क^२ द^२ - २ क अ प त्रि = -प^२ त्रि^२ - १२^२ द^२$

या $क^२ (द^२ - अ^२) + २ क अ प त्रि = १२^२ द^२ + प^२ त्रि^२$

$$\text{या } क^२ + \frac{२ क अ प त्रि}{(द^२ - अ^२)} = \frac{१२^२ द^२ + प^२ त्रि^२}{(द^२ - अ^२)}$$

$$\text{या } क^२ + \frac{२ त्रि.अ.प.}{(द^२ - अ^२)} क - \frac{१२^२ द^२ + प^२ त्रि^२}{(द^२ - अ^२)} = ०.....(१)$$

आचार्य ने $१२^२ \times$ दृग्ज्या^{२} + पलभा$^२ \times त्रि^२$ = प्रथम संज्ञक कहा है। तथा त्रि × पलभा × अग्रा = अन्य संज्ञक कहा है।

यहाँ हम देखते हैं कि यह समीकरण आधुनिक समीकरण $ax^2 + 2bx = c$ के रूप में है। अतः 'क' में प्राप्त समीरकण (१) के दो हल निम्नलिखित होंगे।

$$\text{कर्ण} = \mp \text{आद्य} \pm \sqrt{\text{अन्य}^२ + \text{आद्य}}$$

$$\text{यहाँ फिर से } \frac{१२^२ द^२ + प^२ त्रि^२}{(द^२ - अ^२)} = \text{आद्य (प्रथम)}$$

$$\text{तथा } \frac{त्रि.अ.प.}{दि^२ - अ^२} = \text{अन्य आचार्य अनुसार}$$

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार अध्याय ११ में कोण शंकु आनयन के लिए भास्कराचार्य द्वारा उक्त उपरोक्त सूत्र के अनुरूप सूत्र ज्ञात किया है। यथा—

"समदृङ्मण्डलविवरे क्षितिजे जीवा निगद्यते दिग्ज्या।
दिग्ज्याकृतिरग्रा कृत्या हीना कृतशक्रताड़िता निहता॥१॥
त्रिज्याकृत्या प्रथमोऽग्रा रव्यक्षभाहता त्रिज्या।
त्रिज्यागुणिता ह्यपरो विभक्तौ तौ च स्फुटौ स्याताम्॥२॥
दिग्ज्याऽर्कघातकृत्यक्षाभा त्रिज्यावधवर्गयोगेन।
अन्यवर्गयुतादाद्यान्मूलं युतोनितं चान्त्रेन॥३॥
सौम्येतरयोर्गोलयोर्दिशि विदिङ्नरः सूर्ये।
उत्तरयाम्यस्थे समवृत्तादुदग्रवौ पदेन युक्तश्च॥४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समदक्षिणगे रवावग्रा यत्र भवेन्न दिग्ज्योना।
दिग्ज्या वर्गोनाऽग्रा कृतिवशेन तत्र चाऽद्योऽन्यः॥५॥
आद्योनादन्यवर्गतो यत्पदं तेन हीनस्तापनः शङ्कुः।
एवमेव हि कोणानामन्यानां ना सुखेन संसाध्यः॥६॥"

आचार्य ने उपरोक्त श्लोकों में जो कहा है वह सूत्र रूप में इस प्रकार है।

$१२^२ त्रि^२ (दिग्ज्या^२ - अग्रा^२)$ = आद्यः (प्रथमः)

अग्रा × पलभा × $त्रि^२$ × १२ = पर (अन्य)

तथा $य^२ \pm \frac{२ \text{ य अन्य}}{(\text{प भा}^२ त्रि^२ + \text{दिग्ज्या}^२ \times १२^२)} = \frac{\text{आद्य}}{(\text{प भा}^२ त्रि^२ + \text{दिग्ज्या}^२ \times १२^२)}$

इस समीकरण में य = कोण शंकु है।

आचार्य ने यहाँ दिग्ज्या < अग्रा की स्थिति कही है।

इस प्रकार भास्कराचार्य का सूत्र वटेश्वराचार्य के उपरोक्त सूत्र के ही अनुरूप है। समीकरण में अंश की संख्या हर के स्थान पर तथा हर की संख्या अंश के स्थान पर है क्योंकि वटेश्वर का सूत्र कोण शंकु ज्ञात करने के लिए है तथा भास्कराचार्य का सूत्र कर्ण को ज्ञात करने के लिए है।

अब आचार्योक्त श्लोक ५१ के अनुसार यदि दृग्ज्या अग्रा से अल्प हो तो यहाँ प्राप्त समीकरण (१) में $(द^२ - अ^२)$ का मान ऋण होने से समीकरण (१) निम्नलिखित रूप में हो जावेगा—

$$य^२ - \frac{२ \text{ त्रि.अ.प.}}{(अ^२ - द^२)} क + \frac{१२ द^२ + प^२ त्रि^२}{(अ^२ - द^२)} = ०$$

अतः इस समीकरण का हल निम्नलिखित होगा—

कर्ण = अन्य $\pm \sqrt{\text{अन्य}^२ - \text{आद्य}}$। यही आचार्य ने कहा है। अतः उपपन्न हुआ।

इदानीमहो सर्वासां दिक्छायानामेकमेवानयनमप्रसिद्धमनेनाचार्येणोक्तम्। तत्र का प्रतीतिरिति मन्दानामाशङ्कां परिहरन्नाह—

कर्णाग्रया बाहुरिह प्रसाध्यस्त्रिज्याहतोऽसौ प्रभया विभक्तः।
भवेत् प्रतीत्यर्थमियं च दिग्ज्य तुल्यैव सा स्याच्छ्रवणद्वयेऽपि॥५२॥

शंका का परिहार—

सूर्य-प्रभा टीका— कर्णाग्र के द्वारा बाहु साधित करे तथा बाहु को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रिज्या से गुणा करके छाया से विभक्त करने से दिग्ज्या प्राप्त होती है। यह दृग्ज्या, दोनों छाया कर्णो के लिए समान होती है।

विशेष— आचार्य ने जो पूर्व में कहा है वह सविज्ञ लोग जानते तथा समझते हैं। लेकिन जो नहीं समझते हैं उनके लिए यहाँ विधि कही है कि पूर्वोक्त दृग्ज्या = भुज + पलभा समीकरण द्वारा भुज ज्ञात करे तथा इस भुज (बाहु) से दृग्ज्या ज्ञात करे श्लोक ४६-४७ अनुसार। यह दृग्ज्या का मान छाया कर्ण के दोनों मानों के लिए समान होता है। एक छायाकर्ण पूर्वान्ह में तथा दूसरा अपरान्ह में होता है। इन में एक कर्ण पूर्वापर रेखा के एक ओर तथा दूसरा दूसरी ओर होता है।

एवं दिङ्नियमेन छायानयनमभिधायेदानीं कालनियमेनाह—

उक्ता प्रभाभिमतदिङ्नियमेन तावत्
तामेव कालनियमेन च वच्मि भूयः।
स्यादुन्नतं द्युगतशेषकयोर्यदल्पं
तेनोनितं दिनदलं नतसंज्ञकं च॥५३॥
अथोन्नतादूनयुताच्चरेण क्रमादुदग्दक्षिणगोलयोर्ज्या।
स्यात् सूत्रमेतद्गुणितं द्युमौर्व्या व्यासार्धभक्तं च कलाभिधानम्॥५४॥

दिग्नुसार छाया आनयन के पश्चात् अब काल अनुसार छाया आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त प्रकार से दिशा के अनुसार छाया का मान ज्ञात किया गया है अब छाया का आनयन काल के अनुसार कहते हैं। दिनगत और दिन शेष में से जो अल्प हो वह उन्नतसंज्ञक है। दिनार्ध में से उस उन्नत को घटाने से शेष नत संज्ञक होता है। उन्नत में चर को उत्तर गोल में घटाने से तथा दक्षिण गोल में युक्त करके उसकी ज्या सूत्र संज्ञक कहलाती है। इस सूत्र को द्युज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्त फल कला संज्ञक होता है।

उपपत्ति— जिस काल की छाया साधित करनी है उस काल में स्वाहोरात्र वृत्त में जितने घटी रवि क्षितिज से उन्नत रहता है वह उन्नत संज्ञक है। इस काल से मध्यान्ह जितना उन्नत है वह नत संज्ञक है। अब चर को उन्नतकाल में से घटा कर तथा युक्त करके उसकी ज्या साधित करे। यह ज्या मध्यावधि होती है और उस स्थान पर अहोरात्रवृत्त का उन्मण्डल से संपात होता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। इस उन्मण्डल संपात से अहोरात्र वृत्त का आधा ऊर्ध्व तथा आधा अद्यः होता है। इस उन्मण्डल से कटे हुए भाग की जीवा ज्ञात करे। क्षितिज तथा उन्मंडल का अन्तर चरार्ध होता है। इस चरार्ध से उत्तर गोल में उन्नत को घटावे तथा दक्षिण गोल में युक्त करे, क्योंकि उत्तर गोल में क्षितिज से ऊपर उन्मण्डल होता है और दक्षिण में नीचे होता है। इष्ट काल की ज्या साधित करके उसको त्रिज्या में परिणत करने से उसकी सूत्र संज्ञा होती है और, यदि त्रिज्या वृत्त में इतनी होती है तो द्युज्या वृत्त में कितनी होगी? इस प्रकार अनुपात करने से वह द्युज्या वृत्त परिणत होती है जिसकी कला संज्ञा होती है।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"चरहीनाढ्योन्नतजा क्रमजीवा गोलयोर्भवति सूत्रम्।
तच्चरगुणयुति भेदान्नतिरिह गोलक्रमाद्भवति॥२७॥
उन्नतमहनो यातं शेषं च तदूनितं द्युदलम्॥१८॥
इष्टोन्नतनतजातप्राणा ज्यार्थं कला कल्प्या।१८$\frac{१}{२}$।"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"उन्नताच्चरदलने वर्जितात् संयुतादुदगसौम्यगोलयोः।
शिञ्जिनी द्युगुणसङ्गुणा हृता त्रिज्यया कुगुणयुक्तवर्जिता॥२४॥
छेद इष्ट समये भवेत् ततः शङ्कुभाश्रवणसिद्धिरुक्तवत्।
व्यासखण्डकृतिशङ्कुवर्गयोर्दृग्गुणो भवति चान्तरात् पदम॥२५॥
प्राक्कपालमथ पूर्वम्बरं पश्चिमं च तदुशन्ति पश्चिमम्।
प्राचि यातमगतं तु पश्चिमे कालमुन्नतमतोऽपरं नतम्॥२३॥"

भास्कराचार्य प्रथम ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"दक्षिणोत्तरगते विवस्वति प्राणराशिनिचयाद् धनुक्षयौ।
स्वक्षजं चरदलं तदा ततो जीवयाऽत्र गुणितं दिवागुणम्॥१८॥
संहरेत् त्रिभवनस्यजीवया तत्र लब्धनिचये क्षितेर्गुणम्।
व्यत्ययं चरदलस्य तत्कुरु स्वावलम्बकहतं हरेतपुनः॥१९॥"

ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"यष्टि व्यासार्धे वा घटिका शङ्कवङ्गुलादितो मूलात्।
अवलम्ब सूत्र युत्तथा घटिका दिवसस्य गतशेषाः॥२३॥"

इदानीं प्रकारान्तरेण कलां तस्याश्चेष्टयष्टिमाह—

सूत्रं कुजीवागुणितं विभक्तं चरज्यया स्यादथवा कला सा।
कला पलक्षेत्रजकोटिनिघ्नी तत्कर्णभक्ता भवतीष्टयष्टिः॥५५॥

प्रकारांतर से कला तथा उससे इष्ट यष्टि ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— सूत्र को कुज्या से गुणा करके चरज्या से विभक्त करने से कला होती है। तथा कला को आठों ही अक्ष क्षेत्रों की कोटि से गुणा करके कर्ण से विभक्त करने से इष्ट यष्टि होती है।

उपपत्ति— चरज्या, कुज्या तथा त्रिज्या, द्युज्या परिणित होती है। अतः उनका अनुपात करने से कि यदि चरज्या में कुज्या प्राप्त होती है तो सूत्र में कितनी होगी? प्राप्तफल कला होगा। अर्थात् कला = $\frac{\text{सूत्र} \times \text{कुज्या}}{\text{चरज्या}}$। यह कला अहोरात्र वृत्त में ज्या है जो नाडी वृत्त में सूत्र है।

अतः $\frac{\text{इष्ट सूत्र}}{\text{इष्ट कला}} = \frac{\text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} = \frac{\text{चरज्या}}{\text{कुज्या}}$; आचार्योक्त अनुसार

अतः $\frac{\text{इष्ट सूत्र}}{\text{इष्ट कला}} = \frac{\text{चरज्या}}{\text{कुज्या}}$ अनुपात द्वारा इष्ट कला $= \frac{\text{इष्ट सूत्र} \times \text{कुज्या}}{\text{चरज्या}}$;

वज्रगुणन द्वारा।

कला, अक्षकर्णवत् तिरछी होती है। इससे कोटि सूत्र यहाँ ज्ञात करते हैं। इसके लिए अनुपात किया कि यदि अक्ष क्षेत्र के कर्ण में उसकी कोटि प्राप्त होती है तो कला कर्ण में कितनी होगी? प्राप्तफल उनमंडल शंकुग्र समसूत्र से ऊपर सूर्य बिंब से ऊर्ध्व कोटि रूप होगा। इसकी इष्टयष्टि संज्ञा है। इष्टयष्टि अहोरात्र वृत्त में स्थित सूर्य से उन्मण्डल शंकुग्र पर (सम सूत्र पर ऊर्ध्वरूप) क्षितिज के समानान्तर धरातल पर डाल गया लम्ब ही होता है और अहोरात्रवृत्त धरातल तथा यष्टि के धरातल के बीच का कोण अक्षांश होता है। अतः इष्ट यष्टि (९० – अक्षांश) कोण के सामने की भुजा होती है तथा कला इससे बनने वाले अक्षक्षेत्र की कर्ण होती है। अतः आचार्योक्त उपपत्ति के अनुसार–

$$\frac{\text{इष्ट यष्टि}}{\text{इष्ट कला}} = \frac{\text{अक्ष क्षेत्र की कोटि}}{\text{अक्ष क्षेत्र की कर्ण}}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{या इष्ट यष्टि} = \frac{\text{इष्ट कला} \times \text{अक्ष क्षेत्र की कोटि}}{\text{अक्ष क्षेत्र की कर्ण}}$$

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त में त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"व्यस्तजसूत्रं तादृक् तथा कला यष्टिके स्याताम्।
सूत्रं कुज्या गुणितं चरगुण भक्तं कलाख्यं स्यात्॥२८॥"
कलिकाऽक्षक्षेत्रजकोटिवधं कर्णाप्तमिष्टयष्टिः॥२९॥"

इदानीं प्रकारान्तरेणेष्टयष्टिमाह—

उद्वृत्तशङ्कोरपि सूत्रनिघ्नाच्चरज्ययाप्तं यदि वेष्टयष्टिः।५५ $\frac{१}{२}$।

प्रकारान्तर से इष्ट यष्टि ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— उन्मण्डल शंकु को सूत्र से गुणा करके चरज्या से विभक्त करने से भी इष्ट यष्टि होती है।

उपपत्ति— यदि चरज्या में उन्मण्डल शंकु यष्टि है तो सूत्र में कितनी होगी? इस प्रकार त्रैराशिक से इष्ट यष्टि प्राप्त होती है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त में त्रिज्या को उन्मण्डल शंकु से गुणा करके चरज्या से भाग देने से यष्टि प्राप्त होना कहा है तथा भास्कराचार्य ने इष्ट यष्टि के लिए त्रिज्या के स्थान पर सूत्र लिया है, अक्ष क्षेत्र द्वारा। अतः—

"गज्योन्मण्डलनृहतेश्चरजीवाप्तं भवेद्यष्टिः। त्रि.प्र.॥$\frac{१}{२}$।"

इदानीमिष्टान्त्यकाहृत्योरानयनमाह—

रवावुदग्दक्षिणगोलयाते सूत्रं युतोनं चरजीवया स्यात्॥५६॥
इष्टान्त्यकैवं क्षितिजीवया च कला युतोना हृतिरिष्टकाले।५६ $\frac{१}{२}$।

इष्ट अन्त्या तथा उससे इष्ट हृति आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वानीत सूत्र में उत्तर गोल में चरज्या युक्त करने से तथा दक्षिण गोल में हीन करने से इष्ट अंत्या संज्ञक फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार गोल अनुसार पूर्वोक्त प्रकार से कला में कुज्या युत-हीन करने से इष्टकाल पर हृति होती है।

उपपत्ति— उन्मण्डल के ऊपर अहोरात्रवृत्त में नतकाल की ज्या कला है। उसके नीचे की ज्या कुज्या है। इनका उत्तर गोल में योग करने से सूर्यबिंब

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से उदयास्त सूत्र पर्यन्त अक्षकर्णगत तीर्यक सूत्र होता है वह इष्ट हृति है। यह त्रिज्यापरिणत करने से इष्ट अन्त्या होती है। अतः चरज्या को सूत्र में युत किया है। दक्षिण गोल में क्षितिज के नीचे स्थित होने से कला में कुज्या हीन किया है। अतः उपपन्न हुआ।

किसी ग्रह की इष्ट समय पर इसके उदयास्त सूत्र से दूरी होती है वह इष्ट हृति होती है।

विशेष— आर्यभट (द्वि) ने महासिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कही है। यथा–

"चरहीनाढयोन्नतजा क्रमजीवा गोलयोर्भवति सूत्रम्।
तच्चरगुणयुति भेदान्नतिरिह गोलक्रमाद्भवति॥२७॥
तत्क्षितिजीवैक्यान्तरतश्छेतो गोलयोर्भवति॥२८$\frac{1}{2}$॥"

इदानीमिष्टशङ्कुमाह—

युतोनितोन्मण्डलशङ्कुनैवमिष्टाख्यसृष्टिर्भवतीष्टशङ्कुः॥५७॥

इष्टशङ्कु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— इष्ट यष्टि में उत्तर गोल में उन्मण्डल शंकु युत करने से तथा दक्षिण गोल में हीन करने से इष्ट शंकु होता है।

उपपत्ति— पूर्व प्राप्त इष्ट यष्टि उन्मण्डल शंकुअग्र सम सूत्र पर उर्ध्वरूप होती है। वह उत्तर गोल में उन्मण्डल शंकु में जोड़ने पर तथा दक्षिण गोल में घटाने पर सूर्य बिंब से भूपर्यंत लम्बरूप होता है। इस प्रकार से इष्ट शंकु उपपन्न हुआ।

उन्नतकालाच्छङ्कुमानीयेदानीं नतकालादाह—

नतोत्क्रमज्या शर इत्यनेन हीनान्त्यका वाभिमतान्त्यका स्यात्।
द्युज्याहतो व्यासदलेन भक्तः कुज्याहतो वा चरशिञ्जिनीहृत्॥५८॥

शरः पृथक्स्थेन फलेन हीना हृतिर्भवेद्वा हृतिरिष्टकाले॥५८$\frac{1}{2}$।

नतकाल से शंकु और इष्ट हृति ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— इष्टकाल पर जो नत होता है उसकी उत्क्रमज्या शर संज्ञक होती है। पूर्वानीत अन्त्या में से शर को हीन करने से इष्ट अन्त्या होती है। शर को द्युज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से अथवा कुज्या से गुणा करके चरज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल को पूर्वाप्राप्त हृति में से घटाने से इष्ट हृति होती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— गोल अनुसार त्रिज्या में चरज्या युत-हीन करने से अन्त्या होती है। सूत्र में चरज्या युत-हीन करने से इष्ट अन्त्या होती है। नत की उत्क्रमज्या बाणरूप को त्रिज्या में से हीन करने से सूत्र होता है। अतः शर को अन्त्या में से घटाने से इष्ट अन्त्या होती है कहा है। अब यह शर जो त्रिज्या परिणत है को अनुपात के द्वारा द्युज्या परिणत करे। यदि त्रिज्या में द्युज्या प्राप्त होती है तो शर में कितनी होगी? अथवा चरज्या में यदि कुज्या प्राप्त होती है तो शर में कितनी होगी? इस प्रकार त्रैराशिक के द्वारा जो फल प्राप्त होता है वह नतोत्क्रमज्या की द्युज्या परिणत हो जाती है। द्युज्या में कुज्या युत-हीन करने से हृति होती है। कला में कुज्या युतहीन करने से इष्टहृति होती है। अब नतोत्क्रमज्या को द्युज्यापरिणत करके उसमें से द्युज्या घटाने से कला होती है, यदि हृति में से घटाने से इष्टहृति होती है। अतः उपपन्न हुआ।

स्वअहोरात्र वृत्त का याम्योत्तर वृत्त में एक संपात आगे के तथा द्वितीय नीचे के, से एक सूत्रबांधे। उस सूत्र का उदयास्त सूत्र से जो सम्पात है उससे ऊपर का खण्ड हृति है। अहोरात्र वृत्त के याम्योत्तर वृत्त से सम्पात से पूर्व और पश्चिम नतघटि अग्र पर चिन्हित करके उनसे सूत्र बांध देवे। इस सूत्र से हृति सूत्र का जो संपात है उसका अधः (नीचे का) खण्ड जो उदयास्त सूत्र पर्यन्त है उसका प्रमाण इष्ट हृति है। इसका ऊर्ध्वखण्ड, नतोत्क्रमज्या का द्युज्या परिणत फल संज्ञक है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अन्त्या नतजीवोना नतिरथ नतशिञ्जिनीहता द्युज्या।
गभमौर्व्या भक्ताप्तं हृतौ विशोध्यं भवेच्छदः॥२१॥"

ब्रह्मगुप्ताचार्य ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

अन्त्या नतोत्क्रमज्या हीना ज्याषट् पृथक् छेदः।
ज्याभ्यां च सह फलानि छायानयनानि षट्त्रिंशत्॥३७॥"

इदानीमिष्टशङ्क्वर्थमाह—

फलं पलक्षेत्रजकोटिनिघ्नं तत्कर्णभक्तं च तदूर्ध्वसंज्ञम्॥५९॥
उद्वृत्तशङ्कोः शरसंगुणात् स्याच्चरज्ययाप्तं यदिवोर्ध्वसंज्ञम्।
ऊर्ध्वेन हीनो दिनमध्यशङ्कुः स्यादिष्टशङ्कुर्नततोऽथवैवम्॥६०॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इष्ट शंकु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वप्राप्त फल को अठों, अक्षक्षेत्रों की कोटि से गुणा करके स्वस्व कर्ण से विभक्त करने से ऊर्ध्व संज्ञक फल आठ प्रकार से प्राप्त होता है। उन्मण्डल शंकु को शर से गुणा करके चरज्या से विभक्त करने से भी ऊर्ध्व संज्ञक फल प्राप्त होता है। इस ऊर्ध्व को दिनार्ध शंकु में से हीन करने से इष्ट शंकु होता है।

(यहाँ शर पूर्वोक्त शर है।)

उपपत्ति— जैसा कि पूर्व में प्रदर्शित किया गया है हृति का ऊपरी फल संज्ञक खण्ड जो तिर्यक रूप में है उसको कोटी रूप में करने के लिए अनुपात करते हैं कि यदि अक्षक्षेत्र के कर्ण में उसके कोटि प्राप्त होती है तो उस फल संज्ञक में कितनी होगी? लब्धि ऊर्ध्व कोटि रूप होगी। उस को जिस दिन के दिनार्ध शंकु में से घटावेंगे तो उस का इष्ट शंकु के तुल्य शेष रहेगा। यह सम सूत्र और सूर्य बिंब के अहोरात्र वृत्त में रहता है। यदि चरज्या में त्रिज्यावृत्त परिणत उन्मण्डल शंकु तुल्य ऊर्ध्व प्राप्त होता है तो शर को त्रिज्यावृत्त परिणत करने में इतना ऊर्ध्व फल होता है।

पूर्वतव दिनार्ध शङ्कु = $\frac{१२ \text{ त्रि.}}{\text{दि.क.}}$, इष्टशङ्कु = $\frac{१२ \text{ त्रि.}}{\text{इ.क.}}$ इनका अंतर ऊर्ध्व संज्ञक = $\frac{१२ \text{ त्रि. } (\text{इ क} - \text{म क})}{\text{इ क} \times \text{दि क}}$। मध्यान्ह शंकु में हृति कर्ण है तो पूर्व प्राप्त ऊर्ध्व संज्ञक में क्या? लब्धि फल संज्ञक है।

$$\text{फल} = \frac{\text{ह ऊर्ध्व}}{\text{म.शं.}} = \frac{\text{ह.} \times १२ \text{ त्रि } (\text{इ.क.} - \text{म. क.})}{\frac{१२ \text{ त्रि}}{\text{दि.क.}} \times \text{दि.क.} \times \text{इ क}} = \frac{\text{ह} \times (\text{इ.क.} - \text{म. क.})}{\text{इ. क.}}$$

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अक्षक्षेत्रजकोटिभिराहतमविनष्टकं भजेत् कर्णैः।
थस्थैर्दिनार्धशङ्कुर्लब्ध्योनः शङ्कवोऽभीष्टाः॥२३॥"
"द्युदलेष्टश्रवणान्तर गुणिता हृतिरिष्टकर्णसंभक्ता।
लब्धं चरगुणगुणितं कुज्याभक्तं नतज्या वा॥३२॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीमिष्टान्त्यकाहृतिभ्यां शङ्कुमाह—

इष्टान्त्यकायाश्च हतेश्च यद्वा दिनार्धशङ्कूक्तवदिष्टशङ्कुः।
शङ्कोश्च दृग्ज्याश्रवणप्रभाः स्युर्हृतेर्न दृग्ज्या सुधियात्र कार्या॥६१॥

इष्टअन्त्या और हृति से शंकु ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस प्रकार अन्त्या के द्वारा अन्त्या और उन्मण्डल शंकु को गुणा आदि प्रकार से दिनार्ध शंकु ज्ञात करते हैं तथा हृति के द्वारा हृति को अक्षक्षेत्र की कोटि से गुणा आदि द्वारा दिनार्ध शंकु ज्ञात करते हैं उसी प्रकार इष्ट अन्त्या तथा इष्ट हृति के द्वारा इष्ट शंकु ज्ञात करे तथा शंकु से दृग्ज्या और उसका छाया कर्ण और छाया ज्ञात करे। यह दिनार्धोक्त अनुसार साधित करे। किन्तु हृति से दृग्ज्या साधित न करे।

उपपत्ति— हृति से दक्षिणोत्तर मण्डल गत दृग्ज्या साधित करते हैं वह दक्षिणोत्तर मण्डल और दिनार्ध में होती है। दक्षिणोत्तर मंडल में दृङ्मण्डल है। श्लोक ३७ में हृति से जो दृग्ज्या साधन करना बताया है वह दिनार्ध में ही होता है अतः आचार्य कहते हैं कि हृति से हमेशा दृग्ज्या साधित नहीं करनी चाहिये।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"यद्वा छेदाक्षक्षेत्रजकोटिबधं विभाजयेच्छ्रवणैः।
इष्टो नर उन्मण्डलनरनतिघाताच्चरज्ययाप्तं वा॥२४॥"

अर्थात् इष्ट शंकु = $\frac{\text{अक्ष कोटि} \times \text{इष्ट हृति}}{\text{अक्ष कर्ण}} = \frac{\text{उन्मं. शंकु} \times \text{इष्ट हृति}}{\text{कुज्या}}$

$= \frac{\text{उन्मं. शंकु} \times \text{इष्ट अंत्या}}{\text{चरज्या}}$

इष्ट हृति = कर्ण; इष्ट शंकु = कोटि तथा शंकुतल = भुज

इस अक्ष क्षेत्र में अनुपात करने से ये प्राप्त होते हैं।

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार १० में इष्ट हृति और इष्ट अन्त्या से इष्ट शंकु आनयन कहा है। यथा—

"स्वधृतिस्वान्त्ये गुणिते द्युदलनरेण क्रमाद्विभक्ते च।
धृत्यान्त्याभ्यां लब्धावभीष्टकालोद्भवौ शङ्कू॥५॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ प्रकारान्तरैश्छायाकर्णमाह—

उद्वृत्तकर्णात् क्षितिशिञ्जिनीघ्नात् समाख्यकर्णादपि तद्धृतिघ्नात्।
दिनार्धकर्णादथवा हृतिघ्नाद्धृत्येष्टयाप्तं यदिवेष्टकर्णः ॥६२॥

प्रकारांतर से इष्ट छाया कर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्व प्राप्त उन्मण्डल कर्ण को कुज्या से गुणा करके, समवृत्त शंकु कर्ण को तद्धृति से गुणा करके तथा मध्यछाया कर्ण को हृति सेगुणा करके तीनों को पृथक-पृथक इष्ट हृति से विभक्त करने से तीन प्रकार से इष्ट कर्ण होता है।

उपपत्ति— त्रैराशिक से ये प्राप्त होते हैं। यदि कुज्या तुल्य में उन्मंडल कर्ण, तद्धृति में सममण्डल कर्ण और हृति में मध्यान्ह कर्ण प्राप्त होता है तो इष्ट हृति में कितना होगा? प्राप्तफल इष्टकर्ण होता है।

$$\text{इष्टकर्ण} = \frac{\text{मध्यान्ह कर्ण}}{\text{इष्ट हृति}} = \frac{\text{उन्मं. कर्ण}}{\text{इष्ट हृति}} = \frac{\text{तद्धृ} \times \text{सम शं.}}{\text{इष्ट हृति}}$$ प्राप्त होता है तथा त्रैराशिक का अनुपात निम्नलिखित प्रकार से—

$$\frac{\text{इष्ट शंकु}}{\text{इष्ट हृति}} = \frac{\text{दिनार्ध शंकु}}{\text{हृति}} = \frac{\text{सम शंकु}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{उन्मं. शं.}}{\text{कुज्या}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (१)$$

तथा इष्टकर्ण $= \frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{इष्ट शंकु}}$ होता है अतः इसी प्रकार दिनार्ध कर्ण $= \frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{दिनार्ध शंकु}}$

समवृत कर्ण $= \frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{सम शंकु}}$ और उन्मं. कर्ण $= \frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{उन्मं. शंकु}}$

यहाँ से दि.शं., स.शं. तथा उ.शं. का मान समीकरण (१) में रखने पर—

$$\frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{इष्ट कर्ण} \times \text{इष्ट हृति}} = \frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{दि क.} \times \text{हृति}} = \frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{सम क.} \times \text{तद्धृति}} = \frac{\text{१२ त्रि.}}{\text{उ.क.} \times \text{कुज्या}}$$

अतः इष्ट कर्ण × इष्ट हृति = दि.क. × हृति = स.क.तद्धृति = उ.क.× कुज्या

या इष्टकर्ण =

$$\frac{\text{दिनार्ध कर्ण} \times \text{हृति}}{\text{इष्ट हृति}} = \frac{\text{सम कर्ण} \times \text{तद्धृति}}{\text{इष्ट हृति}} = \frac{\text{उन्मं. कर्ण} \times \text{कुज्या}}{\text{इष्ट हृति}}$$

अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"हृतिदिनदलकर्ण हतेरुद्धृत्तश्रुतिकुशिञ्जिनीघातात्।
तद्धृतिसमकर्णबधाच्छेदाप्ताश्चेष्टकर्णाः स्युः॥२६॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में हति व इष्ट हति से इष्टकर्ण ज्ञात करने की विधि प्रश्नाधिकार श्लोक ३० में कही है। यह श्लोक आगे श्लोक ६६ से ६७$\frac{१}{२}$ की व्याख्या में उद्धृत किया है, वहाँ देखें।

इदानीं विशेषमाह—

यत्र क्वचिच्छुद्धिविधौ यदेह शोध्यं न शुध्येद्विपरीतशुद्ध्या।
विधिस्तदा प्रोक्तवदेव किन्तु योगे वियोगः सुधिया विधेयः॥६३॥

विशेष जानने की बात—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि कभी शुद्धि करने के लिए कहे जाने पर घटाये जाने वाली राशि न घट सके (अर्थात् बडी हो) तो घटाये जाने वाली राशि में से शोध्य राशि को घटावें अर्थात विपरीत शोधन करे और योग करने के लिए हो तो विधिगत घटाना चाहिये।

उपपत्ति— आचार्य ने सूत्र ज्ञात करने में पूर्वोक्त श्लोक ५४ में कहा है कि उन्नत में चर को घटाने या जोड़ने में यदि उत्तर गोल में उन्नत में से चर न घटे तो चर में से उन्नत को घटावें तथा प्राप्त शेष की ज्या ज्ञात करने से वह उन्मंडल के नीचे के चरज्या खंड की सूत्र संज्ञ होती है। उसकी यदि कला बनावें तो वह उन्मंडल के नीचे कुज्या खंड होता है। कला से इष्ट यष्टि करने से वह उन्मंडल शंकु का ऊर्ध्व खंड होता है। रवि उत्तर व दक्षिण गोल में होता है तो सूत्र में चरज्या युक्त करते हैं तथा नहीं करते हैं। किन्तु उन्मंडल के अधोमुख जो सूत्र आता है उसको चरज्या में से घटाने से शेष इष्ट अन्त्या होती है। इसी प्रकार कला उन्मंडल में अधोमुख जाती है इसको कुज्या में से घटाने से शेष कुज्या का अधः खंड इष्ट हति होती है। इसी प्रकार उन्मंडल से अधोमुख जो इष्ट यष्टि आती है उसमें से उन्मंडल शंकु घटाने से शेष इष्ट शंकु होता है।

ये उदाहरण आचार्य ने स्वकृत उपपत्ति में कहे हैं।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त बात कही है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अल्पीयांसो भवेयुः सवितृचरदलादिष्टकालासवश्चेत्
सौम्ये गोले तदानीं चरदलसमयात् पातयित्वेष्टकालम्।
कार्या शेषस्य जीवा चरशकलगुणस्तद्विहीनोऽन्त्यका स्यात्,
त्रिज्याभक्ताथ सैव द्युगणविगुणिता छेद इष्टः प्रदिष्टः॥२६॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अल्पाः प्रश्नासूनां यदि बहवश्चरदलासवः क्षितिजा।
हृतयोना जीवोना क्षयवृद्धिज्योक्तवच्छेषम्॥३३॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अभीष्ट प्राणाश्चेच्चरशकलतः स्युस्त्वनधिका
उदग्गोले पात्याश्चरशकलतो ज्या चरगुणः।
तयोनस्त्रिज्याप्तो दिनगणगुणोऽसावभिमतो भवेच्छे-
दस्तस्मात् कथितविधिना स्तः श्रवणभेऽनेन लल्लोक्तमेवोक्तमिति॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"नतजीवोत्क्रमचापप्राणा द्युदलाद्भवन्ति नताः।
गज्यां नतज्ययोनां कृत्वा कार्यं क्रमेण धनुः॥३३॥
तद्गोलवशाच्चरजैः प्राणैर्युक्तोनमुन्नताः प्राणाः
व्यस्तविशुद्धयुभ्दवधनुषोनाश्चरजासवस्तदुत्तरजाः॥३४॥"

इदानीमन्यं विशेषमाह—

बाणेन्दु १५ नाड्यूननतात् क्रमज्या त्रिज्यान्विता सैव नतोत्क्रमज्या।
उद्वृत्तशङ्कुस्तु न याम्यगोले दृश्योऽनुपातार्थमयं प्रसाध्यः॥६४॥

विशेष जानने की अन्य बात—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि नत १५ घटी से अधिक होती है तो उसकी उत्क्रमज्या करने के लिए नत में से १५ घटी घटा कर शेष की क्रमज्या में त्रिज्या युत करने से नत की उत्क्रमज्या होती है। तथा दक्षिण गोल में उन्मंडल शंकु क्षितिज के नीचे होने से अदृश्य होता है फिर भी उसको अनुपात के द्वारा साधित कर सकते हैं।

उपपत्ति— उत्क्रमज्या बाण रूप में होती है। यदि नत १५ घटी से अधिक हो तो १५ घटी की उत्क्रमज्या बाण रूपा त्रिज्या तुल्य होता है। १५

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घटी से अधिक जो काल है उसकी क्रमज्या ऊर्ध्वाधः रूप होती है। इसमें त्रिज्या को युक्त करने से बाण रूप उत्क्रमज्या होती है। गोल में अहोरत्र वृत्त में याम्योत्तर वृत्त के पूर्व में नतघटि के आगे सूत्र बांध कर दूसरा पश्चिम में नतघटि के आगे बांध देवे। उस सूत्र का याम्योत्तरवृत्त और अहोरात्र वृत्त के संपात से जो अंतर है वह बाणरूप है। यह उसकी उत्क्रमज्या प्रदर्शित होती है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"नतकालोत्क्रमजीवा साध्याऽथो क्माधिके नते क्मोनम्॥१६॥
कृत्वा शेषात् क्रमजा जीवा गज्यान्वितोत्क्रमज्या स्यात्।
एवं नतकोदण्डं सुधियोत्क्रमजीवया साध्यम्॥२०॥"

इदानीमन्यं विशेषमाह—

मार्त्तण्डः सममण्डलं प्रविशति स्वल्पेऽपमे स्वात् पलात्
दृश्यो ह्युत्तरगोल एव स विशन् श्राव्या तदैवास्य भा।
अप्राप्तेऽपि समाख्यमण्डलमिने यः शङ्कुरुत्पद्यते
नूनं सोऽपि परानुपातविधये नैवं क्वचिद्दुष्यति॥६५॥

अन्य विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य की जब उत्तर क्रांति अक्षांश से अधिक होती है तब वह सममण्डल से उत्तर में रहता है तथा तब दिनार्ध होता है और जब अक्षांश से अल्प होती है तब वह दक्षिणस्थ होता है। अतः तब वह सममंडल में प्रवेश करता है। इस प्रकार दक्षिण गोल में अक्षांश से क्रांति अल्प होती है तब रवि सममण्डल में प्रवेश करता है। लेकिन उस स्थिति में क्षितिज से नीचे स्थित होने के कारण उसका प्रवेश दृश्य नहीं होता। उत्तर गोल में दृश्य होता है अतः वहाँ उसकी छाया, कर्णादि कही है। दक्षिण गोल में सूर्य का सममंडल में प्रवेश अदृश्य होने पर भी उसका समशंकु अनुपात द्वारा ज्ञात कर सकते हैं।

उपपत्ति— पलभा भुज, १२ अंगुल शंकु कोटी तथा पलकर्ण कर्ण–एक अक्षक्षेत्र है। क्रांतिज्या भुज, कुज्योनतद्धृति कोटी तथा समशंकु कर्ण–दूसरा अक्ष क्षेत्र है। इन दोनों अक्ष क्षेत्रों में अनुपात करने से—

$$\frac{\text{पलकर्ण}}{\text{पलभा}} = \frac{\text{समशंकु}}{\text{क्रांतिज्या}}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{या समशंकु} = \frac{\text{पलकर्ण} \times \text{क्रांतिज्या}}{\text{पलभा}}$$

जब उत्तर क्रांति अक्षांश से अल्प होती है तब ही रवि का सममण्डल में प्रवेश होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"विषुवत्कर्णेन गुणा विषुवच्छायोद्धृतोत्तरा क्रान्तिः।
यद्युनाक्षज्यायाः शङ्कुः सममण्डल स्थेऽर्के॥५१॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"यदा भवेत् क्रान्तिरूदक् पलाल्पाविशेत् तदानीं समवृत्तमर्कः।३५$\frac{१}{२}$।"

सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सौम्याक्षोना यदा क्रान्तिः स्यात् तदा द्युदलक्षवः २६॥
विषुवच्छाययाभ्यस्तः कर्णो मध्याग्रयोद्धृतः।$\frac{१}{२}$।"

इदानीं छायातः कालज्ञानमाह—

उद्वृत्तकर्णाच्चरशिञ्जिनीघ्नाद्दिनार्धकर्णादथवान्त्यकाघ्नात्।
इष्टेन कर्णेन हताद्यदाप्तमिष्टान्त्यका सैव पृथक् पृथक् स्यात्॥६६॥
पलश्रुतिघ्नस्त्रिगुणस्य वर्गोद्युज्येष्टकर्णाहतिहृद्धवेद्वा।
इष्टान्त्यका तद्रहितान्त्यकाया भवन्ति या उत्क्रमचापलिप्ताः॥६७॥
नतासवस्ते स्युरहर्दलं तैरूनीकृतं चोन्नतकाल एवम्।६७$\frac{१}{२}$।

छाया से काल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— उन्मण्डल कर्ण से चरज्या को गुणा करके अथवा दिनार्ध कर्ण से अन्त्या को गुणा करके इष्टकर्ण से विभक्त करने से पृथक-पृथक प्राप्तफल इष्ट अन्त्या होती है। पलकर्ण तथा त्रिज्या वर्ग के गुणा में दुज्या और इष्टकर्ण के गुणा से भाग देने से जो फल प्राप्त होता है वह भी इष्ट अन्त्या होती है। इष्ट अन्त्या को अन्त्या में से घटाकर शेष की उत्क्रमज्या का धनु करे। उस धनु की जितनी कला हो उसकी नतअसु ज्ञात करे तथा उनको दिनार्ध असु में से घटाने से उन्नत असु होते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूत्र रूप में—

$$\text{इष्टअंत्या} = \frac{\text{उन्मंडल कर्ण} \times \text{चरज्या}}{\text{इष्ट कर्ण}} = \frac{\text{दिनार्ध कर्ण} \times \text{अन्त्या}}{\text{इष्ट कर्ण}} = \frac{\text{प.क.} \times \text{त्रि.}^{२}}{\text{दृज्या} \times \text{इ.क.}}$$

उत्क्रमज्या (अंत्या – इष्ट अंत्या) =शेष

दिनार्ध असु – शेक के असु = उन्नत असु

उपपत्ति— इसकी उपपत्ति त्रैराशिक द्वारा करेंगे। यदि उन्मण्डल कर्ण में चरज्या इष्ट अन्त्या प्राप्त होती है तो इष्ट कर्ण में कितनी होगी? अथवा यदि मध्यान्ह कर्ण में अन्त्या प्राप्त होती है तो इष्ट छार्या कर्ण में कितनी होगी? इस प्रकार अनुपात करने से दोनों प्रकार से प्राप्तफल इष्ट अन्त्या होता है।

$$\text{अर्थात् इष्ट अन्त्या} = \frac{\text{उन्मंडल कर्ण} \times \text{चरज्या}}{\text{इष्ट कर्ण}} = \frac{\text{दिनार्ध कर्ण} \times \text{अन्त्या}}{\text{इष्ट कर्ण}}$$

अब अन्य प्रकार से त्रैराशिक करके उपपत्ति करते हैं। यदि इष्टछाया कर्ण में द्वादश अंगुल शंकु प्राप्त होता है तो त्रिज्याकर्ण में कितना? यहाँ त्रिज्या तथा बारह के गुणा में इष्ट कर्ण का भाग देने से प्राप्तफल महा शंकु होगा। अर्थात्

$$\text{महाशंकु} = \frac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{इष्ट कर्ण}}$$। अब इसकी हृति करने के लिए अनुपात किया कि यदि १२ अंगुल शंकु में विषुवद्कर्ण कर्ण प्राप्त होता है तो महाशंकु में कितना होगा? प्राप्तफल इष्ट हृति $= \frac{१२ \times \text{त्रिज्या}}{\text{इष्ट कर्ण}} \times \frac{\text{विषुवद कर्ण}}{१२} = \frac{\text{त्रि} \times \text{पलकर्ण}}{\text{इष्टकर्ण}}$

इसकी इष्ट अन्त्या करने के लिए अनुपात किया कि यदि द्युज्या में त्रिज्या प्राप्त होती है तो इष्ट हृति में कितनी? प्राप्तफल इष्ट अन्त्या होता है।

$$\text{अर्थात् इष्ट अन्त्या} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{त्रि.} \times \text{पलकर्ण}}{\text{इष्ट कर्ण} \times \text{द्युज्या}} = \frac{\text{त्रि}^{३} \times \text{पलकर्ण}}{\text{इष्ट कर्ण} \times \text{द्युज्या}}$$

इसको अन्त्या में से घटाने से प्राप्त शेष नत की उत्क्रमज्या शर संज्ञक आचार्य ने कही है और इसका धनु नतकाल होता है। नतकाल को दिनार्ध में से घटाने से उन्नत काल होता है। अतः उपपन्न हुआ।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"चरजीवोद्धृतश्रुतिघातश्चान्त्याहृतो द्युदलकर्णः।
भक्तोऽभीष्टश्रवसा फलोनितान्त्या नतज्या स्यात्॥३१॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्वाहोरात्रर्धेन छायाकर्णेन भक्तायाः।
विषुवत्कर्णगुणाया व्यासार्धकृतेः फलं सौम्ये॥४१॥
क्षयवृद्धिज्याहीनं युक्तं याम्ये धनुश्चरप्राणैः।
सौम्ये युतं विहीनं याम्ये प्रागपरयोः प्राणाः॥४२॥
अन्हो गतावशेषाः फलमन्त्याया विशोध्य शेषस्य।
धनुरूत्क्रमजीवाभिः पूर्वापरयोर्नतप्राणाः॥४३॥
दिन दल कर्णगुणान्त्या छायाकर्णोद्धृता फलोनान्त्या।
शेषस्योत्क्रमजीवा धनुर्दिनार्धान्नतप्राणाः॥४४॥
चरदलजीवोनाधिकफलक्रमज्या धनुश्चारर्धेन।
युतहीनं पूर्वान्हेदिवसगतं शेषमपरान्हे॥४५॥"

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त कहा है। यथा—

"यदि वा पलकर्णताड़ितायास्त्रिभजीवोत्थकृतेर्विभाजितायाः।
श्रुतिसङ्गुणितभ्रमेण लब्धं चरजीवोनयुतं यथोक्तवत्तत्॥
अथ तस्य धनुश्चरासुयुक्तं रहितं गोलवशाद् गतावशेषाः।
तदपास्य फलं तदन्त्यकाया नतमाहुर्विवरीतधन्व यद्वे॥
अन्त्यां दिनार्धश्रवणेन हत्वा भजेत् स्वकर्णेन फलोनितान्त्या।
शेषस्य धन्वोत्क्रमशिञ्जिनीभिर्नता दिनार्धादथवाऽसवः स्युः॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

पलश्रवणताडितात्रिभवनोत्थजीवाकृतिः प्रभाश्रवणताडितद्युगण भाजितात् तत्फलात्।
चरासुगुणसंयुतादनुदगुत्तरे वर्जिताद् धनुश्चरदलोनयुग्दिन गतावशेषासवः॥३१॥
फलाच्चरज्या न शुद्धिमेति यदा तदास्यां फलमेव जह्यात्।
शेषस्य चापेन चरार्धमूनं शेषं गतं वा दिवसस्य शेषम्॥३२॥

आचार्य ने हृति एवं इष्ट हृति से इष्ट कर्ण तथा अन्त्या एवं इष्ट अंत्या से इष्टकर्ण साधन करना श्लोक ३० में कहा है। यथा—

"दिनदलभवकर्णक्षुण्णागात्रौ विभक्तौ द्युददलसमयजातौ छेदहारौ क्रमेण।
अंभिमतसमयोत्थच्छेदकेनाथ हृत्वा श्रवणयुगलमेवं वा भवेदिष्टभाया॥३०॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं विशेषमाह—

त्रिज्याधिकस्य क्रमचापयुक्ताः खखाब्धिबाणा धनुरुत्क्रमात् स्यात्॥६८॥

विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— अन्त्या में से इष्ट अन्त्या घटाने से प्राप्त शेष की उत्क्रमज्या का मान यदि त्रिज्या से अधिक हो तो उसमें से त्रिज्या को घटाकर अर्थात् वह त्रिज्या से जितना अधिक हो उसके क्रमचाप को ५४०० (त्रिज्याचाप) में जोड़ने से उत्क्रम चाप का मान प्राप्त होता है। अर्थात तब वह नत असु होते हैं।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"तद्गोलवशाच्चरजैः प्राणैर्युक्तोनमुन्नताः प्राणाः।
व्यस्तविशुद्धयुद्भवधनुषोनाच्चरजासवस्तदुत्तरजाः॥३४॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है।

"उत्क्रमजीवा चापं क्रमजीवा चापसहितमधिकं चेत्।
दिनरात्र्यर्धप्राणाः पृथक् विना चरदलप्राणैः॥५३॥"

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त कहा है। यथा–

"व्यासार्ध चरजीवया भवति सा चान्त्यार्कगोलक्रमात्॥
मध्याह्नान्त्योत्क्रमविरचितं चापमाहुर्दिनार्ध तच्च
त्रिंशच्च्युतमिह दलं जायते याममत्याः।"

सूर्य सिद्धान्त त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"त्रिज्योदक्चरजायुक्ता याम्यायां तद्विवर्जिता॥३४॥ अन्त्या"

इदानीमुन्नतकालस्य प्रकारान्तरमाह—

इष्टान्त्यका सा चरजीवयोना युक्ता न गोलक्रमतः क्रमोत्थाः।
तच्चापलिप्ताश्चरयुक्तहीनाः समुन्नतास्ते यदि वासवः स्युः॥६९॥

प्रकारान्तर से उन्नत काल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— इष्ट अन्त्या में उत्तर गोल (उत्तर क्रांति होने पर) में चरज्या को हीन करे तथा दक्षिण गोल (दक्षिण क्रांति होने पर) युत करे। इस प्रकार प्राप्तफल शेष की क्रमज्या का चाप बनावे। इस चाप में उत्तर गोल में चर चाप युक्त तथा दक्षिण गोल में हीन करने से तात्कालिक उन्नत असु होते

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं। यदि इष्ट अन्तया में से उत्तर गोल में चरज्या नहीं घटे तो चरज्या में से इष्ट अन्त्या को हीन करे तथा प्राप्त शेष की चाप में चर की चाप को क्षेपित करे। यदि वह नहीं हो सके तो उसके चाप को चर में से शोधित करे अर्थात् योग वियोग साधारण नियमों से करे। इस प्रकार प्राप्त शेष उन्नत असु होते हैं। उन्नत असु को दिनार्ध असु में से शोधित करने से नत असु होते हैं।

उपपत्ति— जिस प्रकार इष्ट अन्त्या में से उत्तर गोल में चरज्या को हीन करने तथा दक्षिण गोल में क्षेपित करते हैं उसी प्रकार उन्मण्डल के ऊपर की ओर के काल की ज्या, सूत्र संज्ञक होती है। इसके धनु में उत्तर गोल में उन्मंडल के नीचे स्थित चर युत करने से तथा दक्षिण गोल में ऊपर स्थित होने से हीन करने से वह क्षितिज से उन्नत काल होता है। यह उपपन्न हुआ। यदि उत्तर गोल में चरज्या न घट सके तो विपरीत शोधन करने से उन्मण्डल से नीचे (अधोमुखी) की ओर की ज्या, सूत्र संज्ञक होती है। इसके धनु को चर में से शोधित करने से क्षितिज से उन्नत काल होता है। यह उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"चरदलजीवोनाधिका फल क्रमज्या धनुश्चरार्धेन।
युतहीनं पूर्वान्हे दिवसगतं शेषपरान्हे॥४५॥"

यहाँ फल शब्द इष्ट अन्त्या के लिए प्रयुक्त हुआ है।

इदानीं छायातोऽर्कानयनमाह—

दिनार्धद्युतेस्त्रिज्यकाघ्न्या हृतायाः स्वकर्णेन चापांशकाः स्युर्नतांशाः।
दिनार्धे वियुक्ता युतास्ते पलांशैरुदग्दक्षिणे भाग्रकेऽर्कापमः स्यात्॥७०॥
ततः क्रान्तितो वैपरीत्येन भानुर्भवेदेतदन्यच्च गोले प्रवक्ष्ये।७०$\frac{१}{२}$।

छाया से रवि आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यान्ह छाया को त्रिज्य से गुणा करके मध्यान्ह छाया कर्ण से विभक्त करने से प्राप्त फल का चापांश नतांश होते हैं। यदि छायाग्र उत्तर हो तो यह दक्षिण होते हैं और छायाग्र छक्षिण हो तो यह ख स्वस्तिक से उत्तर होते हैं। इस प्रकार दिनार्ध में ये नतांश यदि ख स्वस्तिक से दक्षिण हो तो अक्षांश इसमें से कम करने से और यदि उत्तर हो तो युक्त करने से क्रान्त्यांश प्राप्त होते हैं। (अर्थात छायाग्र) उत्तर अथवा दक्षिण होने पर इन नतांश से अक्षांश घटा अथवा जोड़ने से क्रांन्ति अंश प्राप्त होते हैं तथा विलोम विधि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से क्रांतिज्या को त्रिज्या से गुणा करके जिन (२४ अंश) की ज्या से विभक्त करने से प्राप्त चापांश स्फुट रवि के भुजांश होते हैं। भुजांश से पद का ज्ञान होता है।

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि मध्यान्ह छाया कर्ण में मध्यान्ह छाया तुल्य भुज प्राप्त होता है तो त्रिज्या कर्ण में कितना? इस प्रकार त्रैराशिक से जो फल प्राप्त होता है वह याम्योत्तर वृत्त में खमध्य और सूर्य के अन्तर के अंशों की ज्या होती है। अतः उसका धनु नतांश होता है। यह छाया के विपरीत दिशा में होता है यह प्रसिद्ध है। यदि ये दक्षिण हो तो इनमें से अक्षांश कम करने से शेष विषुवन्मण्डल से दक्षिण की ओर क्रांत्यांश होते हैं। यदि ये पलांश (अक्षांश) उनमें से न घटे तो अक्षांश में से नतांश को घटाने से प्राप्त शेष विषुवद्मण्डल से उत्तर की क्रांति होती है। यदि उत्तर नतांश हो तो अक्षांश उसमें युत करने से उत्तर क्रांति होती है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने **महासिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"द्युदलच्छायागज्यावधो दिनार्धश्रवोहृतो दृग्ज्या।
चापांशा याम्योत्तरभाग्रे सौम्येतराः क्रमशः॥३५॥
तत्पलभागानां युतिरेकाशत्वेऽन्यथा वियुतिः।
क्रांत्यंशास्तेभ्योऽर्को व्यस्तविधानेन सुस्पष्टः॥३६॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में क्रांति से रवि का आनयन कहा है।

"क्रांतिर्व्यासार्धगुणा जिनभागज्याहृता धनुरजादौ।
कर्क्यादौ चक्रार्धात् प्रोह्य तुलादौ सभार्धेन॥६१॥
चक्रात् प्रोह्य मृगादौ स्फुटोऽसकृद् धनमृणे धनेत्वृणकम्।
अस्माद्देशान्तरयुगयुगतो मध्यमः प्राग्वत्॥६२॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में छाया से रवि आनयन में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"द्युदलद्युतेरुपचयः कुलीरराशेर्मृगादपचयः स्यात्।
खाक्षाऽक्षान्तरयोगः सामान्यककुभोरिनक्रान्तिः॥१॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"मध्यस्थे नभसः सहस्रकिरणे शंकोर्भवेद् या प्रभा
कल्प्या सैव पलप्रभोक्तविधिना साध्यस्तथेष्टः पलः।
तत्स्वस्थानपलान्तरं यदपमस्तत् स्याद्युतिर्दक्षिणे
छायाग्रेस्य गुणेन भत्रयगुणः क्षुण्णः परक्रान्तिहृत्॥३७॥
फलमिनभुजजीवा तद्धनुस्तिग्मरश्मिः प्रथमचरण एवं वत्सरस्य प्रदिष्टः।
हृतमथ भगणार्धाद्विद्धि भार्धेन युक्तं भगणनिपतितं स्याच्चान्त्यपादेषु चापम्॥३८॥"

सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"मध्यच्छाया भुजस्तेन गुणिता त्रिभमौर्विका॥१४॥
स्वकर्णाप्ता धनुर्लिप्ता नतस्ता दक्षिणे भुजे।
उत्तराश्चोत्तरे याम्यास्ताः सूर्यक्रान्तिलिप्तिकाः॥१५॥
दिग्भेदे मिश्रिताः साम्ये विश्लिष्टाश्चाक्षलिप्तिकाः।
ताभ्योऽक्षज्या च तद्वर्गं प्रोज्झ्य त्रिज्याकृतेः पदम्॥१६॥"

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है तथा अग्रिम श्लोक ७१ के अनुसार भी कहा है।

"विषुवद्दिन(सममध्य)च्छापावर्गात् सवेदकृतरूपात् मूलेन
शतविंशंविषुवच्छायाहतंछिन्द्यात्॥२०॥
लब्धं विषुवज्जीवा चाप (य) तोऽक्षोऽ (थवैव) मिष्टदिने
मेषाद्यपक्रमयुतस्तुलादिषु विवर्जितः स्वाऽक्षः॥२१॥"

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के तृतीय अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"छायायां याम्यकाष्ठा यामक्षयुक्ता नतिः स्फुटा।
जायन्तेऽपक्रमा भागा भास्वतोऽदक्षिणापथे॥१४॥
अक्षतोऽधिकतरा यदा नतिः पात्यते पलमतस्तदा सदा।
शिष्यतेऽपमधनुः स्फुटं ततो भास्करोऽपि खलु याम्यगोलगः॥१५॥
तद्गुणेन गुणितां त्रिराशिजां ज्यापक्रमगुणेन संहरेत्।
लब्धचापगणिते पदक्रमाद् भास्करस्त्रिकसषण्णवाधिकः॥१६॥"

इदानीं क्रान्तिज्ञाने सति पलज्ञानमाह—

नतांशापमांशान्तरं तुल्यदिक्त्वे युतिर्भिन्नदिक्त्वे पलांशा भवेयुः॥७१॥

क्रांति से पलांश (अक्षांश) ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— नतांश तथा क्रान्त्यांश यदि एक दिशा में हो तो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उनका अंतर अन्यथा विपरीत दिशा में होने पर योग करने से अक्षांश प्राप्त होते हैं।

उपपत्ति— पूर्व में यह बताया जा चुका है कि स्वदेशी अक्षांश तथा क्रांत्यंश यदि एक ही दिशा में हो तो उनका योग करने से तथा विपरीत दिशा में हो तो अन्तर करने से रवि के मध्यान्हकालिक नतांश होते हैं। अर्थात अक्षांश ± नतांश = क्रांति। इसी से यह स्फुट होता है कि अक्षांश तथा रवि क्रांति एक दिशा में होने पर उनका अंतर तथा विपरीत दिशा में होने से उनका योग करने से सूर्य के पलांश (अक्षांश) होते हैं क्योंकि–

अक्षांश ± नतांश = क्रांति, समान दिशा में योग तथा विपरीत में अन्तर। अतः पक्षांतर से अक्षांश = क्रांति ∓ नतांश अर्थात् एक दिशा में अंतर तथा विपरीत दिशा में योग करने से अक्षांश होते हैं। यह गोल में देखा जा सकता है।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार १ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दिनदलदृग्ज्याचापं क्रान्त्या युतवर्जितं क्रिय तुलादौ।
अक्षो दक्षिणदृग्ज्या धनुषोना क्रान्तिरक्षः स्यात्॥२२॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के, त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यच्छायाग्रमुदक् शंकुतलाद्दक्षिणा नताभागाः।
दक्षिणतो यदि सौम्या स्वाक्षांशाः सर्वदा याम्या॥४१॥
द्युदलनताक्षांशानामेकदिशामन्तरं युतिर्भेदे।
क्रान्त्यंशाः प्राग्वदतः क्रान्त्यंशैरेवमक्षांशाः॥४२॥"

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के तृतीय अध्याय में आचार्योक्त को और भी स्पष्ट रूप में कहा है। यथा–

"उत्तरे संयुतिः सूर्ये विश्लेषो दक्षिणे स्मृतः।
अपक्रमनतांशानां छायाया च पलं भवेत्॥१७॥"

इदानीं छायातो भुजज्ञानमाह—

त्रिभज्याहतार्काग्रका कर्णनिघ्नी भवेत् कर्णवृत्ताग्रका व्यस्तगोला।
पलच्छायया सौम्यया संस्कृता स्याद्भुजोऽथोत्तरे भाग्रके सौम्यगोले॥७२॥
भुजः कर्णवृत्ताग्रयाढ्योऽन्यदासौ वियुक्तोऽक्षभा स्यात् तया वा वियुक्तः।
भुजः सौम्यभाग्रेऽन्यदाढ्यस्त्रिभज्याहतः कर्णभक्तोऽग्रका चापमोऽतः॥७३॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

छाया से भुज ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य की अग्रा तथा छाया कर्ण के गुणा को त्रिज्या से विभक्त करने से कर्णवृत्ताग्र प्राप्त होता है। यह विपरीत गोल का होता है अर्थात् उत्तर गोल में कर्ण वृताग्र दक्षिण तथा दक्षिण गोल में उत्तर होता है। इसको पलभा (उत्तर) में दक्षिण गोल में योग करने से तथा उत्तर गोल में पलभा में से घटाने से प्राप्त शेष उत्तर भुज होता है। यदि पलभा में से कर्णग्रा न घटे तो कर्णाग्रा में से पलभा को घटाने से शेष दक्षिण भुज होता है। पूर्वापर सूत्र और छायाग्र के बीच में भुज होता है। मध्यान्ह कालिक भुज ही सदैव मध्यान्ह कालिक छाया होती है।

यदि उत्तर गोल में अर्थात उत्तर क्रांति में यदि अग्रा उत्तर हो तो कर्णवृताग्र में उत्तर भुज युत करने से पलभा होती है और क्रान्ति दक्षिण हो अर्थात् दक्षिण गोल में भुज का कर्णवृत्ताग्र से अन्तर करने से पलभा होती है। यहाँ भुज देखकर कर्णवृत्ताग्र से पलभा ज्ञात करना कहा है।

अब भुज को देखकर पलभा से कर्णवृत्ताग्रा ज्ञान बता रहे हैं। यदि भुज उत्तर हो तो भुज में से पलभा का अन्तर करने से अन्यथा (भुज दक्षिण हो तो) योग करने से कर्ण वृत्ताग्र होता है।

कर्णवृत्ताग्र को त्रिज्या से गुणा करके कर्ण से विभक्त करने से अग्रा होती है। अग्रा को अक्षक्षेत्र की कोटि से गुणा करके उसके कर्ण से विभक्त करने से क्रांतिज्या होती है।

सूत्र रूप में—

आचार्य ने इन दो श्लोकों में निम्न लिखित सूत्र कहे हैं।

(१) कर्ण वृत्ताग्र = $\frac{\text{अग्रा} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$

(२) कर्णवृत्ताग्र $\overset{+}{\underset{\sim}{}}$ पलभा = छायाभुज

क्रांति दक्षिण होने पर यहाँ धन करें तथा उत्तर होने पर अंतर करें।

(३) उत्तर गोल में दक्षिण भुज होने पर; कर्णवृत्ताग्रा – दक्षिण भुज = पलभा

उत्तर गोल में उत्तर भुज होने पर; उत्तर भुज + कर्णवृत्ताग्र = पलभा

दक्षिण गोल में भुज – कर्णवृत्ताग्र = पलभा

(४) यदि भुज उत्तर हो तो भुज – पलभा = अग्रा

यदि भुज दक्षिण हो तो भुज + पलभा =अग्रा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(५) अग्रा = $\frac{\text{कर्णवृत्ताग्र} \times \text{त्रिज्या}}{\text{छायाकर्ण}}$

(६) क्रांतिज्या = $\frac{\text{अग्रा} \times \text{अक्षक्षेत्र की कोटि}}{\text{अक्षक्षेत्र का कर्ण}}$; (पूर्वोक्त सूत्र (ख) द्वारा)

उपपत्ति— समान की हुई भूमि पर त्रिज्या वृत्त बनाकर उस पर दिशायें अंकित करे तथा पूर्व से पश्चिम दिशा सूत्र के आगे उदयास्तसूत्र की रेखा खेंचे। उत्तरगोल में इष्ट काल पर सममण्डल से उत्तर की ओर अहोरात्रवृत्त में स्थित रवि से नीचे लम्ब शंकु होता है। शंकूमूल से पूर्वपर सूत्र के साथ जो अंतर है वह शंकु का उत्तर भुज है और उदयास्त सूत्र के साथ जो अन्तर है वह शंकुतल है। अतः शंकुतल को अग्रा में से घटाने से भुज शेष रहता है और अग्रा में से भुज को घटाने से शंकुतल शेष रहता है। क्योंकि स्वोदयास्त सूत्र और पूर्वापर सूत्र का अंतर अग्रा है तथा शंकुतल और भुज का योग अग्रा होता है। उत्तर गोल में समवृत के दक्षिण की ओर शङ्कु है अतः अग्रा में से शंकुतल घटाने से भुज शेष रहता है और भुज को अग्रा में से घटाने से शंकुतल शेष रहता है।

महाशंकु का त्रिज्या तुल्य कर्ण होता है। महाशंकु नियत है इसको द्वादश अंगुल शंकु कहते हैं। महाशंकु को १२ से विभक्त करने से जो प्राप्त होता है उसका तुल्य महाशंकु के बारह भाग होते हैं और त्रिज्या के भाग करते हैं तो उतने छाया कर्ण के प्राप्त होते हैं। अग्रा के हिस्से करते हैं तो उतने कर्णवृत्ताग्र के प्राप्त होते हैं। शंकुतल के हिस्से करते हैं तो उतनी पलभा होती है। भुज के हिस्से करते हैं तो उतने भुज प्राप्त होता है।

इस प्रकार ये सब त्रैराशिक से प्राप्त हो जाते हैं।

यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतनी अग्रा प्राप्त होती है तो छाया कर्णवृत्त में कितनी होगी? इससे प्राप्तफल छायाकर्ण वृत्ताग्र = $\frac{\text{अग्रा} \times \text{छायाकर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$ प्राप्त होता है। यही आचार्य ने कहा है जो उपपन्न हुआ।

परन्तु छायाकर्ण गोल में पलभा और शंकुतल तुल्य होता है। जैसे शंकुतल = $\frac{\text{पलभा} \times \text{शंकु}}{१२}$ इसको छाया कर्ण गोल में परिवर्तित करने से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\frac{\text{पलभा} \times १२ \times \text{त्रि.} \times \text{छायाकर्णशंकु}}{१२ \times \text{छायाकर्ण} \times \text{त्रि.}} = \text{पलभा} = \text{शंकुतल।}$$

अतः छायाकर्ण गोल में अग्रा और पलभा के संस्कार से भुज प्राप्त होता है। अतः उत्तर गोल में कर्णवृत्ताग्रा – उत्तर भुज = पलभा तथा कर्णवृत्ताग्रा + दक्षिण भुज = पलभा। दक्षिण गोल में सर्वदा; भुज – कर्णवृत्ताग्रा = पलभा होती है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ। शंकु का पूर्वापर से अंतर छायाग्र का पूर्वापर से अंतर होता है किन्तु विपरीत दिशा में। अतः कर्णवृत्ताग्रा विपरीत गोल में उपपन्न हुआ।

आचार्य ने एक उदाहरण दिया है। जिस देश में पलभा = ५ अंगुल, उत्तर गोल में अर्थात् क्रांति उत्तर है, अग्रा = ९१६।४८, इष्ट छायाकर्ण = ३० तथा १५ है। वहाँ पृथक-पृथक भुज कहो तथा भुज में पलभा तथा पलभा से अग्रा कहो।

$$\text{कर्णवृत्ताग्र} = \frac{\text{छायाकर्ण} \times \text{अग्रा}}{\text{त्रिज्या}} = \frac{३० \times ९१६।४८}{३४३८} = ८ \text{ दक्षिण।}$$ क्रांति के विपरीत दिशा में।

अतः भुज = कर्णवृत्ताग्रा $\overset{+}{\frown}$ पलभा = ८ (दक्षिण) – ५ (उत्तर) = ३ दक्षिण। क्योंकि बडी संख्या ८ दक्षिण है।

दक्षिण भुज = ३ ज्ञात करके कर्णवृत्ताग्र में से घटाने से ८ – ३ = ५ पलभा प्राप्त हुई। पलभा तथा भुज को ज्ञात करके उनका योग करने से दक्षिण भुज होने से ५+३=८ कर्णवृत्ताग्रा हुआ।

कर्ण वृत्ताग्र को त्रिज्या से गुणा करके कर्ण से विभक्त करने से =

$$\frac{८ \times ३४३८}{३०} = ९१६।४८ \text{ अग्रा हुई।}$$

कर्ण १५ होने पर कर्णवृत्ताग्रा पूर्वोक्त सूत्र से ४ दक्षिण होगा। उत्तर भुज एक अंगुल तथा पलभा ५ होगी।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"कोटिज्यया विभज्याग्रे छाया कर्णावहर्दले।
क्रांतिज्या विषुवत्कर्णगुणाऽऽप्ता शङ्कुजीवया॥२२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्काग्रा स्वेष्टकर्णाघ्नी मध्यकर्णोद्धृता स्वका।
विषुवद्भायुताऽर्काग्रा याम्ये स्यादुत्तरो भुजः॥२३॥
विषुवत्यां विशोध्योदग्गोले स्याद्बाहुरुत्तरः।
विपर्ययाद्भुजो याम्यो भवेत् प्राच्यपरान्तरे॥२४॥
माध्याह्निको भुजो नित्यं छायामाध्याह्निकी स्मृता।''

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार तथा त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा– **त्रिप्रश्नाध्याय–**

''छायावृत्तेऽर्काग्रा कर्णगुणा व्यासदलहृताऽर्काग्रा।
विषुवच्छाया याम्या तदन्तरैक्यं भुजोऽस्याग्रे॥४॥
शङ्कः प्राच्यपरायाश्छाया भुजकृति विशेषमूलं यत्।
तत् प्राच्यपरा छाया भुजाग्रयोरन्तरं कोटिः॥५॥

त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में यथा–

छायावृत्तेऽर्काग्रा कर्णगुणा व्यासदलहृताऽर्काग्रा।
प्राच्यपरा शङ्क्वन्तरमुत्तर याम्यं तदूनयुता॥४९॥
उत्तर गोले याम्ये विषुवच्छायाऽग्रयाऽन्तरं हीनम्।
एवं विषुवच्छाया युक्तविहीनाऽन्तरेणाग्रा॥५०॥''

भास्कराचार्य ने छायाग्र तथा पूर्वरेखा के अन्तर को भुज स्वीकार करके छायाकर्णवृत्ताग्रा को व्यस्त गोल में तथा पलभा को उत्तर कल्पित किया है और ब्रह्मगुप्त ने लघुशंकु मूल और पूर्वापर रेखा के अन्तर को भुज स्वीकार करके अग्रा और पलभा को जो जिस दिशा के हैं उसी दिशा के ही स्थापित किये हैं।

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''अन्य दा तु नरपूर्वपश्चिमाशान्तरेण रुचिवृत्तजाग्रका।
दक्षिणोत्तरभुवा युतोनिता सौम्यवर्तिनि रवौ पलप्रभा॥
दक्षिणेन पुनरिनाग्रया तथा हीनमेव हि तदन्तरं सदा।
एवमन्तरयुतोनिता भवेद-क्षभा नियतमंगुलाऽग्रका॥''

दृष्टवेष्टभां योऽत्र दिगर्कवेदी छायाद्वयं वा प्रविलोक्य दिग्ज्ञः।
वेत्त्यक्षभामुद्धतदैववेदिदुर्दर्पसर्पप्रशमे स ताक्ष्यः॥७४॥

यहाँ से आगे उत्तर सहित प्रश्नोत्तर अहोरात्र संबंधि कहे हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— शंकुछाया, दिगंश और सूर्य के अक्षांश देखकर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथवा दो छाया तथा उनकी दिशा को देखकर जो स्वस्थान की अक्षभा (पलभा) को जानते हैं उसको आचार्य गरुड़ के समान मानते हैं जो देवज्ञों के झूठे घमंड का सर्पों के समान प्रशमन कर सकता है।

इदानीं प्रश्नमाह—

भार्कर्णे खगुणाङ्गुले ३० किल सखे याम्यो भुजस्त्र्यङ्गुलो-
ऽन्यस्मिन् पञ्चदशाङ्गुले १५ ऽङ्गुलमुदग्बाहुश्च यत्रेक्षितः।
अक्षाभां वद तत्र षट्कृतगजैं ८४६ र्यद्वापमज्यां समां
दृष्ट्वेष्टामनयोः श्रुतिं च सभुजां दाग्ब्रूहि मेऽक्षप्रभाम्॥७५॥

अब प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— छायाकर्ण = ३० अंगुल हो तब दक्षिण भुज ३ अंगुल है तथा जब छाया कर्ण १५ अंगुल है तब उत्तर भुज १ अंगुल है। तब वहाँ पर अक्षांश ज्ञात करो और जब क्रांतिज्या ८४६ है और छाया कर्ण तथा भुज दिये हुए हैं तो वहाँ अक्षप्रभा (पलभा) ज्ञात करो।

प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाह—

भाद्वयस्य भुजयोः समाशयोर्व्यस्तकर्णहतयोर्यदन्तरम्।
ऐक्यमन्यककुभोः पलप्रभा जायते श्रुतिवियोगभाजितम्॥७६॥

प्रश्न प्रश्न का उत्तर—

सूर्यप्रभा टीका— एक के भुज को दूसरे के कर्ण से गुणा करके भिन्न दिशा के होने से योग करे। अर्थात् ३० × १ + १५ × ३ = ७५। इसमें दोनों कर्णों के अंतर ३० − १५ = १५ से भाग देने से ७५ ÷ १५ = प्राप्तफल ५ पलभा है। एक दिशा होने पर उनका अन्तर करे।

उपपत्ति— पूर्वोक्त श्लोक ७२ व ७३ के अनुसार यदि किसी स्थान पर दो छायाकर्ण क्रमशः $क_१$ तथा $क_२$ हो और वहाँ कर्णवृत्ताग्र $ए_१$ तथा $ए_२$ हो तथा भुज $भु_१$ तथा $भु_२$ हो और अग्रा अ तथा पलभा प हो तो—

$$ए_१ = \frac{अ \times क_१}{त्रि.} \text{ तथा } ए_२ = \frac{अ \times क_२}{त्रि.}$$

$$\text{तथा } भु_१ = ए_१ - प = \frac{अ \times क_१}{त्रि.} - प \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(१)$$

$$\text{और } भु_२ = ए_२ - प = \frac{अ \times क_२}{त्रि.} - प \quad \ldots\ldots\ldots\ldots(२)$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समी (१) व (२) में पक्षांतर से—

$$\frac{भु_१ + प}{क_१} = \frac{भु_२ + प}{क_२} = \frac{अ}{त्रि}$$; वज्र गुणा द्वारा—

या $क_२ (भु_१ + प) = क_१ (भु_२ + प)$

या $क_२ भु_१ + क_२ प = क_१ भु_२ + क_१ प$

या $क_२ भु_१ - क_१ भु_२ = प (क_१ - क_२)$; पक्षांतर से।

या $$प = \frac{क_२ भु_१ - क_१ भु_२}{क_१ - क_२}$$, जब भुज एक दिशा के हों।

और $$प = \frac{क_२ भु_१ + क_१ भु_२}{क_१ - क_२}$$, जब भुज विपरीत दिशा के हों।

यही आचार्य ने कहा है। उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"प्राच्यपराशङ्कुतलान्तरद्वयव्यस्तकर्णवधविवरम्।
समदिशि विषुवच्छायान्यदिगैक्यं कर्णविवरहतम्॥५७॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त कहा है। यथा—

"छायाग्रैन्द्र्यपरान्तरद्वयविपर्यस्तस्वकर्णाहतिप्रोदुभूतं
विवरं दिशोः सदृशयोरैक्यं च भिन्नाश्योः।
तद्भक्तं श्रवणान्तरेण विषुवच्छाया स्फुटा जायते।"

क्रान्तिज्याकर्णवधात् त्रिज्याप्तकृतिर्लघुः स दोः कृत्या।
हीनोऽब्धिमनु १४४घ्नः स्यादाद्योऽथ परो भुजः कृतेन्द्र १४४घ्नः॥७७॥
तौ लघुवेदेन्द्रा १४४ न्तरभक्तौ परवर्गतो यदाद्याढ्यात्।
मूलं परयुतवियुतं सौम्ये याम्ये भुजे पलभा॥७८॥

द्वितीय प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रान्तिज्या तथा कर्ण के गुणा में त्रिज्या का भाग देकर फल का वर्ग करने से प्राप्त फल 'लघु' संज्ञक है। उस लघु में से भुज के वर्ग के अंतर को १४४ से गुणा करने से प्राप्तफल 'आद्य' संज्ञक है और भुज तथा १४४ का गुणनफल 'पर' संज्ञक है।

लघु तथा १४४ के अंतर से आद्य और पर को विभक्त करने से प्राप्तफल

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रमशः आद्य तथा पर ही संज्ञक मान कर इस पर फल के वर्ग में आद्य फल युत करके मूल लेवें। इसमें उत्तर भुज होने पर 'पर' को युत करे तथा दक्षिण होने पर घटाने से पलभा प्राप्त होती है।

सूत्र रूप में—

$$\text{लघु} = \left(\frac{\text{कर्ण} \times \text{क्रां.ज्या}}{\text{त्रिज्या}}\right)^{२}; \text{आद्य} = १४४\ (\text{लघु} \frown \text{भुज}^{२});$$

$$\text{पर (अन्य)} = १४४\ \text{भुज}$$

$$\frac{\text{आद्य}}{\text{लघु} - १४४} = \text{आद्य (फल) और } \frac{\text{पर}}{\text{लघु} - १४४} = \text{पर (फल)}$$

$$\text{पलभा} = \sqrt{\text{पर}^{२} + \text{आद्य}} \pm \text{पर};$$ उत्तर भुज में धन (+) तथा दक्षिण भुज में ऋण (–) करे।

उपपत्ति— आचार्य ने श्लोक ७२, ७३ में निम्नलिखित कहा है।

$$\text{कर्णवृत्ताग्र} = \frac{\text{छाया कर्ण} \times \text{अग्रा}}{\text{त्रिज्या}} \text{ तथा कर्णवृत्ताग्र} = \text{भुज+पलभा}$$

यहाँ यदि कर्णवृत्ताग्र को 'ए', अग्रा को 'अ', भुज को 'भु', पलभा को 'प' छायाकर्ण को 'क' द्वारा व्यक्त करें तो ये सूत्र निम्न लिखित सूक्ष्म रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। यथा–

$$\text{ए} = \frac{\text{क} \times \text{अ}}{\text{त्रि}} \text{ तथा ए} = \text{भु} + \text{प; जब भुज दक्षिण है।}$$

$$\text{अब हम जानते हैं कि अग्रा} = \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{पलकर्ण}}{१२} \text{ होता है। आचार्योक्त}$$

उपपत्ति से।

$$\because \text{पलकर्ण} = \sqrt{१२^{२} + \text{पलभा}^{२}} \text{ होता है। आचार्योक्त प्रकार से।}$$

$$\text{अ (अग्रा)} = \frac{\text{क्रां.ज्या} \times \sqrt{१२^{२} + \text{प}^{२}}}{१२}$$

$$\text{अतः ए} = \frac{\text{क}}{\text{त्रि.}} \times \frac{\text{क्रां.ज्या} \times \sqrt{१२^{२} + \text{प}^{२}}}{१२} = \text{भु} + \text{प}$$

वज्र गुणा द्वारा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$क \times क्रां.ज्या \times \sqrt{१२^२ + प^२} = १२ त्रि (भु+प)$

दोनों पक्षों का वर्ग करने पर—

$१२^२ त्रि^२ (भु+प)^२ = क^२ \times क्रांज्या^२ \times (१२^२+प^२)$

या $प^२ (१२^२त्रि^२ - क^२ \times क्रांज्या^२) + २ प भु १२^२ त्रि^२ = १२^२ (क^२ क्रांज्या^२ - भु^२ त्रि^२)$

दोनों पक्षों को $त्रि^२$ से विभक्त करने से—

$$या \ प^२(१२^२ - \frac{क^२.क्रां ज्या^२}{त्रि^२}) + २ प भु १२^२$$

$$= १२^२ (\frac{क^२.क्रां ज्या^२}{त्रि^२} - भु^२) \ .....(१)$$

आचार्य ने $\frac{क^२.क्रां ज्या^२}{त्रि^२}$ = लघु कहा है।

तथा $१२^२ (\frac{क^२.क्रां ज्या^२}{त्रि^२} - भु^२) = १२^२ (लघु^२ \frown भु^२)$ = आद्य कहा है। एवं $भु १२^२$ = पर कहा है।

अतः समीकरण (१) निम्नलिखित रूप में परिणत हो जाता है।

$प^२ (१२^२ - लघु) + २ प. पर = आघ$

$$या \ प^२ + \frac{२ प पर}{(१२^२ - लघु)} = \frac{आद्य}{(१२^२ - लघु)}$$

यहाँ फिर $\frac{पर}{(१२^२ - लघु)}$ = पर (फल) तथा $\frac{आद्य}{(१२^२ - लघु)}$ = आद्य (फल) मानने पर—

$प^२ + २ पर . प$ = आद्य; पूर्णवर्ग बनाने के लिए $पर^२$ दोनों ओर जोड़ने से—

या $प^२ + २प. पर + पर^२ = पर^२ + आद्य$

या $(प+पर)^२ = पर^२ + आद्य$

या $प + पर = \sqrt{पर^२ + आद्य}$

या $प = \sqrt{पर^२ + आद्य} - पर$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह पलभा का एक मान है।

यह फल दक्षिण भुज के लिए प्राप्त हुआ है। यदि उत्तर भुज हो तो ए=भु–प होगा। पूर्वोक्त प्रकार से उपरोक्त गणना में यह प्रतिस्थापित करने से 'पर' = –भु.१२^२ होगा। अतः प = $\sqrt{\text{पर}^२ + \text{आद्य}}$ + पर ; उत्तर भुज होने पर। यह पलभा का दूसरा मान है।

आचार्य ने स्वकृत उपपत्ति में उपरोक्त प्रकार ही से कहा है जिसे हमने सरल रूप में कर दिया है।

आचार्योक्त प्रश्न में दक्षिण भुज = ३, क्रांतिज्या = ८४६ स्थापित करने से पलभा = $\sqrt{\text{पर}^२ + \text{आद्य}}$ – पर सूत्र उपयोग में लेने पर पलभा का मान ५ प्राप्त होता है।

$$\text{लघु} = \frac{\text{कर्ण}^२ \times (८४६)^२}{३४३८^२} = \frac{३०^२ \times ७१५७१६}{११८१९८४४} = ५४.५०$$

$$\text{पर} = \text{भुज} \times १४४ = १४४ \times ३ = ४३२$$

$$\text{आद्य} = १४४\ (\text{लघु} \frown \text{भुज}^२) = १४४\ (५४.५० - ९) = ६५५२$$

$$\text{पर (फल)} = \frac{४३२}{\text{लघु} - १४४} = \frac{४३२}{५४.५० - १४४} = ४.८३ ;$$

$$\text{आद्यफल} = \frac{६५५२}{५४.५० - १४४} = ७३.२१$$

$$\text{पलभा} = \sqrt{\text{पर}^२ + \text{आद्य}} - \text{पर}$$

$$= \sqrt{(४.८३)^२ + ७३.२१} - ४.८३ = ९.८३ - ४.८३ = ५$$

इदानीं सममण्डलप्रश्नः—

दिनकरे करिवैरिदल ४/१५ स्थिते नर १२ समा नरभापरदिङ्मुखी।
भवति यत्र पटो पुटभेदने कथय तान्त्रिक तत्र पलप्रभाम्॥७९॥

सममण्डल संबंधी प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— जब सूर्य ४ राशि १५ अंश पर है तब शंकु छाया १२ अंगुल पश्चिम की ओर है तो वहाँ की पलभा कितनी है?

इदानीमस्योत्तरमाह—

त्रिज्यार्कघातः श्रुतिहृन्नरः स्याद्यत् क्रान्तिमौर्वीसमवृत्तशङ्कोः।
वर्गान्तरान्मूलमनेन भक्ता क्रान्तिज्यका सूर्य १२ हताक्षभा स्यात्॥८०॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या तथा १२ के गुणा को छाया कर्ण से विभक्त करने से संबंधित महाशंकु प्राप्त होता है। क्रान्तिज्या तथा समवृत्त शंकु के वर्गों के अन्तर के मूल से क्रांतिज्या तथा १२ के गुणा को विभक्त करने से पलभा प्राप्त होती है।

सूत्र रूप में—

$$\frac{\text{१२ त्रि}}{\text{छाया कर्ण}} = \text{संबंधी महा शंकु}$$

$$\text{पलभा} = \frac{\text{१२} \times \text{क्रांतिज्या}}{\sqrt{\text{समशंकु}^{\text{२}} - \text{क्रांतिज्या}^{\text{२}}}}$$

उपपत्ति तथा प्रश्न का हल— अनुपात किया कि इतने कर्ण में १२ अंगुल शंकु होता है तो त्रिज्या कर्ण में कितना होगा? इस प्रकार प्रस्तुत उदाहरण (प्रश्न) में समशंकु प्राप्त होता है = $\frac{\text{१२ त्रि}}{\text{छाया कर्ण}}$ = यह कर्ण है।

सिंह राशि के १५ अंश पर सूर्य की क्रांतिज्या भुज है। इनके वर्गांतर के मूल में से कुज्या घटाने से तद्धृति कोटि होती है। इस अक्ष क्षेत्र में अनुपात किया कि इतनी कोटि में क्रांतिज्या तुल्य भुज प्राप्त होती है तो १२ अंगुल कोटि में कितनी होगी? प्राप्तफल पलभा त्रैराशिक से उपपन्न होती है। अर्थात्—

$$\text{पलभा} = \frac{\text{१२} \times \text{क्रांतिज्या}}{\sqrt{\text{समशंकु}^{\text{२}} - \text{क्रांतिज्या}^{\text{२}}}}$$

यहाँ सममंडल शंकु द्वादश की ज्या = २४३१ और सिंहराशि के १५ अंश पर स्थित सूर्य की क्रांतिज्या ९८७/४८ है। इनके वर्गान्त के मूल का १२×क्रांतिज्या में भाग देने से पलभा प्राप्त होगी। अतः क्रांतिज्या^{२} = (९८७/४८)^{२} = ९७५७४९ तथा शंकु^{२} = (२४३१)^{२} = ५९०९७६१। इनका अन्तर = ४९३४०१२ इसका मूल = २२२१/१५। इससे १२ × क्रांतिज्या = १२×९७८/४८ = ११८५३।३६ में भाग देने से ११८५३/३६ ÷ २२२१/१५ = ५/२० पलभा का मान प्राप्त हुआ।

इदानीमन्यौ प्रश्नौ—

मार्तण्डः सममण्डलं किल यदा दृष्टः प्रविष्टः सखे
काले पञ्चघटीमिते दिनगते यद्वा नते तावति।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

केलाप्युज्जयिनीगतेन तरणेः क्रान्तिं तदा वेत्सि चे-
न्मन्ये त्वां निशितं सगर्वगणकोन्मत्तेभकुम्भाङ्कुशम्॥८१॥

अब दो प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— हे गणक! किसी दिन उज्जयनि पर सूर्योदय के पांच घटी पश्चात् सूर्य सममण्डल में प्रवेश करता हुआ दिखाई दिया। उस समय यह बताओ कि उसकी क्रांति कितनी थी। यह प्रथम प्रश्न है। दूसरा प्रश्न है, उतनी पंचघटी नति काल में सममण्डल में प्रविष्ट होते हुए सूर्य तथा उसकी क्रांतिज्या को बताने वाले को मैं गर्व से पूर्ण गणकों में हाथियों को वश में करने वाले पैने अंशुक के समान मानूंगा।

विशेष— यहिप्रश्न वटेश्वरचार्य ने त्रिप्रश्नाधिकार १५ वटेश्वर सिद्धान्त में कहा है।

"अभ्रवेदप्रमिता नतासवस्तिग्मगौ हि सममण्डलस्थिते।
अक्षभा नवमिताः किल यत्र ब्रूहि तत्र नियतं दिवाकरम्॥९॥"

इदानीं प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाह—

या स्याद्रवेरुन्नतकालजीवाभीष्टा हृतिः सा प्रथमं प्रकल्प्या।
अर्का १२ क्षभाघातहताक्षकर्णकृत्योद्धृता स्यादपमज्यकास्याः॥८२॥
चरादिकेनेष्टहृतिः प्रसाध्या क्षुण्णस्तया क्रान्तिगुणोऽसकृच्च।
तदाद्यहृत्या विहृतः स्फुटः स्यात् सहस्ररश्मौ सममण्डलस्थे॥८३॥

प्रथम प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— रवि का सममण्डल प्रवेश के समय जो उन्नतकाल है उसकी जीवा को प्रथम इष्टहति मान लेवे। इसको १२ तथा पलभा से गुणा करके पलकर्ण से विभक्त करने से स्थूल क्रांतिज्या प्राप्त होती है। इस स्थूल क्रांतिज्या से द्युज्या, कुज्या, चरज्या तथा चर ज्ञात करके उन्नतकाल में चरज्या जोड़-घटा इत्यादि द्वारा इष्ट हति साधित करे (श्लोक ५४ से श्लोक ५६$\frac{१}{२}$ तक बताई विधि द्वारा)। इस इष्ट हति को पूर्वप्राप्त क्रांतिज्या से गुणा करके प्रथम प्राप्त इष्ट हति से विभाजित करने से प्राप्तफल आसन्न क्रांतिज्या स्फुट होती है। इस प्रकार फिर तद्धृति तथा क्रांतिज्या द्वारा क्रांतिज्या का साधन तब तक करे जब उसका स्थिर मान न प्राप्त हो जावे।

उपपत्ति— उन्नतकाल की जीवा को पहले स्वल्पांतर से तद्धृति कल्पित

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किया है। इसके अनुपात से शंकु प्राप्त करे। यदि पलकर्ण में द्वादश कोटि होती है तो तद्धृति कर्ण में कितनी होगी? ऐसा करने से तद्धृति गुणित द्वादश में पलकर्ण का भागफल सममण्डल शंकु होता है पूर्वोक्त सूत्र (ख) द्वारा। पुनः इसका अनुपात किया कि यदि पलकर्ण में पलभा भुज है तो सममण्डल शंकु तुल्य कर्ण में कितनी? फल स्थूल क्रांतिज्या होगा पूर्वोक्त सूत्र (क) द्वारा। इस क्रांतिज्या तथा चर से उन्नत काल में चर को जोड़ घटा इत्यादि द्वारा इष्ट हृति साधित करे। उसको तद्धृति कल्पित करके पुनः क्रांतिज्या साधित करे। इस प्रकार करते जावे। यदि कल्पित हृति में इतनी क्रांतिज्या प्राप्त होती है तो यहाँ प्राप्त हृति में कितनी होगी? इस प्रकार क्रांतिज्या स्फुट होती है। यह उपपन्न हुआ।

इदानीं द्वितीयप्रश्नस्योत्तरमाह—

तदा नतज्यात्रिभजीवयोर्यद्वर्गान्तरं तत् पलभाकृतिघ्नम्।
तेनोद्धृतो व्यासदलस्य वर्गो वेदेन्द्र १४४ निघ्नोऽथ सरूपलब्ध्या॥८४॥
व्यासार्धवर्गाद्विहृतात् पदं स्यात् क्रान्तिज्यका सा त्रिभशिञ्जिनीघ्नी।
जिनांशमौर्व्या विहृताप्तचापादग्रे प्रवक्ष्ये च यथा रविः स्यात्॥८५॥

द्वितीय प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— जब सूर्य सममण्डल में प्रविष्ट किया उस समय की नतज्या के वर्ग को त्रिज्या के वर्ग में से घटा कर पलभा के वर्ग से गुणा करने से प्राप्त फल से त्रिज्या वर्ग तथा १४४ के गुणा में भाग देने से प्राप्तफल में एक जोड़ देने से जो प्राप्त हो उससे त्रिज्या के वर्ग में भाग देकर वर्गमूल लेने से क्रांतिज्या होती है। इस क्रांतिज्या को त्रिज्या से गुणा करके २४ अंश की ज्या से विभक्त करने से प्राप्त फल का चाप करने से रवि प्राप्त होता है जहाँ सूर्य दिखेगा।

उपपत्ति— क्रांतिज्या वर्ग को त्रिज्या वर्ग में से घटाने से द्युज्या वर्ग होता है। नतज्या वर्ग को त्रिज्या वर्ग में से घटाने से सूत्र संज्ञक का वर्ग प्राप्त होता है। सूत्र को द्युज्या से गुणा करके त्रिज्या से भाग देने से कला प्राप्त होती है। कला, कुज्या और तद्धृति का अंतर होती है। सूत्र के वर्ग को द्युज्या वर्ग से गुणा करके त्रिज्यावर्ग से विभक्त करने से प्राप्तफल कलावर्ग होता है। अतः कला कोटि, क्रांतिज्या भुज तथा समशंकु कर्ण के द्वारा पलक्षेत्र बनता है। उसमें अनुपात किया कि यदि द्वादश कोटि में पलभा भुज होती है तो कुज्या ऊनित तद्धृति तुल्य कला में कितनी होगी? इस प्रकार कला के वर्ग को पलभा के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वर्ग से गुणा करके बारह (१२) के वर्ग से भाग देने से प्राप्तफल क्रांतिज्या का वर्ग होता है।

हम पूर्वोक्त को सूत्र रूप में निम्नलिखित प्रकार लिख सकते हैं—

$$\text{त्रि}^2 - \text{क्रां. ज्या}^2 = \text{द्युज्या}^2 \quad \ldots\ldots(१)$$

$$\text{त्रि}^2 - \text{नतज्या}^2 = \text{सूत्र}^2 \quad \ldots\ldots(२)$$

$$\frac{\text{सूत्र} \times \text{द्युज्या}}{\text{त्रि.}} = \text{कला} \quad \ldots\ldots(३)$$

$$\text{कला} = \text{कुज्या} \frown \text{तद्धृति} \quad \ldots\ldots(४)$$

$$\frac{\text{सूत्र}^2 \times \text{द्युज्या}^2}{\text{त्रि}^2} = \text{कला}^2 \quad \ldots\ldots(५)$$

$$\frac{\text{कला}^2 \times \text{पलभा}^2}{१२^2} = \text{क्रांज्या}^2 \quad \ldots\ldots(६)$$

समीकरण (५) में सूत्र^2 का मान समीकरण (२) से तथा द्युज्या^{2} का मान समीकरण (१) से प्रतिस्थापित करने से और कला^{2} का मान समीकरण (६) से प्रतिस्थापित करने पर–

$$\frac{(\text{त्रि}^2 - \text{नत ज्या}^2)(\text{त्रि}^2 - \text{क्रांज्या}^2)}{\text{त्रि}^2} = \frac{\text{क्रांज्या}^2 \times १२^2}{\text{पलभा}^2}$$

यहाँ नतज्या को 'न' द्वारा, क्रांतिज्या को 'क्रा' द्वारा तथा पलभा को 'प' द्वारा व्यक्त करने पर उपरोक्त सूत्र सरल रूप में इस प्रकार बनता है—

$$\frac{(\text{त्रि}^2 - \text{न}^2)(\text{त्रि}^2 - \text{क्रा}^2)}{\text{त्रि}^2} = \frac{\text{क्रा}^2 \times १२^2}{\text{प}^2}$$

वज्र गुणा द्वारा—

$$\text{प}^2 (\text{त्रि}^2 - \text{न}^2)(\text{त्रि}^2 - \text{क्रा}^2) = १२^2 \times \text{त्रि}^2 \times \text{क्रा}^2$$

$$\text{या } \text{प}^2 \text{त्रि}^2 (\text{त्रि}^2 - \text{न}^2) - \text{प}^2 \text{क्रा}^2 (\text{त्रि}^2 - \text{न}^2) = १२^2 \text{त्रि}^2 \text{क्रा}^2$$

$$\text{या } \text{प}^2 \text{त्रि}^2 (\text{त्रि}^2 - \text{न}^2) = [१२^2 \text{त्रि}^2 + \text{प}^2 (\text{त्रि}^2 - \text{न}^2)] \text{क्रा}^2$$

$$\text{या क्रा}^2 = \frac{\text{प}^2 \text{त्रि}^2 (\text{त्रि} - \text{न}^2)}{१२^2 \text{त्रि}^2 + \text{प}^2 (\text{त्रि}^2 - \text{न}^2)} = \frac{\text{त्रि}^2}{\frac{१२^2 \text{त्रि}^2}{\text{प}^2 (\text{त्रि}^2 - \text{न}^2)} + १}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{या क्रांतिज्या} = \frac{\text{त्रि.}}{\sqrt{\frac{१२^२ \text{ त्रि}^२}{\text{पलभा}^२ (\text{त्रि}^२ - \text{नतज्या}^२)} + १}}$$

अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

रविभुजाज्या तथा जिनांशज्या के गुणा को त्रिज्या से विभक्त करने से क्रांतिज्या होती है, अर्थात्–

$$\frac{\text{रविभुज्या} \times \text{जिनांश ज्या}}{\text{त्रि.}} = \text{क्रांतिज्या}$$

अतः रविभुज्या = $\frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{जिनांश ज्या}}$ इसका धनु सूर्य का अक्षांश होगा। आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

आचार्योक्त प्रश्न में नतकाल ५ घटी = ६×५ = ३०° अतः नतज्या = ज्या३०° = $\frac{\text{त्रिज्या}}{२}$ = १७१९। अतः उपरोक्त सूत्र द्वारा–

$$\text{क्रांतिज्या} = \frac{\text{त्रि.}}{\sqrt{\frac{१२^२ \text{ त्रि}^२}{\text{पलभा}^२ (\text{त्रि}^२ - \text{नतज्या}^२)} + १}} = \frac{३४३८}{\sqrt{\frac{१४४ \times ३४३८^२}{५.५८^२ (३४३८^२ - १७१९^२)} + १}}$$

$$= \frac{३४३८}{\sqrt{\frac{१७०२०५७५३६}{३१.१३६४ (११८१९८४४ - २९५४९६१)} + १}}$$

$$= \frac{३४३८}{\sqrt{\frac{१७०२०५७५३६}{२७६०२०५४३} + १}} = \frac{३४३८}{२.६७७}$$

क्रांतिज्या = १२८४ प्राप्त होती है।

यहाँ उज्जयनी की पलभा ५/७ लेकर गणना की है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त के त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"त्रिज्यादिनार्धसममण्डलान्तरासुज्जययोः कृतिविशेषः।
स्वविषयविषुवच्छायावर्गेण गुणो द्विधा प्रथम॥२४॥
व्यासार्धवर्गभक्तो लब्धं द्वादशजवर्ग संयुक्तम्।
छेदो द्वितीयराशेर्लब्धपदं क्रान्तिरर्कोऽतः॥२५॥"

आचार्य ने यहाँ सूत्र थोड़ा सा भिन्न रूप में कहा है जिसको भास्कराचार्य ने दूसरे रूप में लिखकर कहा है। यथा–

$$\text{ज्या}^२\text{क्रांति} = \frac{\text{पलभा}^२ \times \text{कोज्या}^२\text{नत}}{१२^२ + \frac{\text{पलभा}^२ \times \text{कोज्या}^२\text{नत}}{\text{त्रि}^२}}$$

तथा रविभुजज्या = $\frac{\text{त्रि} \times \text{क्रां.ज्या}}{\text{जि.ज्या}}$; यहाँ कोज्या^{२}नत=(त्रि^{२}–नतज्या^{२}) है।

इससे भास्करोक्त प्राप्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में कहा है। यथा–

"समनरनतकालज्या त्रिभौर्वीकरण्योर्विवरमभिहतं तद्वैषुवत्याश्च कृत्या।
पृथगथपदजीवावर्गसंभक्तमाद्यं फलमिनकृतियुक्तं भाजकः सोऽन्यराशिः॥
फलस्य यत्पदं भवेदपक्रमस्य शिंजिनी।
स्फुटं ततश्च पूर्ववत् प्रसाध येद्दिवाकरम्।"

अथान्यं प्रश्नमाह—

मार्तण्डे सममण्डलं प्रविशति च्छाया किलाष्टयङ्गुला
दृष्टाष्टासु घटीषु कुत्रचिदपि स्थाने कदाचिद्दिने।
अर्कक्रान्तिगुणं तदा वदसि चेदक्षप्रभां तत्र च
त्रिप्रश्नप्रचुरप्रपञ्चचतुरं मन्ये त्वदन्यं नहि॥८६॥

अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— जब सूर्य ने सममंडल में प्रवेश किया तब शंकुछाया १६ अंगुल देखी गई। आठ घटी इष्ट काल पर (उन्नत काल) उस दिन यदि कोई सूर्य की क्रांतिज्या तथा वहाँ की पलभा बता दे तो उसको आचार्य त्रिप्रश्नाधिकार संबंधि प्रश्नों को हल करने में चतुर मानते हैं।

अस्योत्तरमाह—

अत्रापि साध्योन्नतकालजीवा पूर्वं तु सैवेष्टहृतिः प्रकल्प्या।
ततोऽर्कनिघ्नी समशङ्कुभक्ता पलश्रुतिः स्यात् पलभा ततश्च॥८७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पलप्रभाघ्नः समशङ्कुरक्षकर्णोद्धृतः स्यादपमज्यकातः।
चरादिकेनेष्टहृतिस्ततोऽक्षकर्णोऽसकृत् क्रान्तिगुणश्च तस्मात्॥८८॥

इस प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— यहाँ भी उन्नत काल की जीवा साधित करके उसको पूर्व प्रश्न के अनुसार प्रथम इष्ट हृति कल्पित करे। इसको १२ से गुणा करके सममण्डल शंकु से विभाजित करने से प्राप्तफल स्थूल पलकर्ण होता है। इससे पलभा ज्ञात करे। इस पलभा को समशंकु से गुणा करके पलकर्ण से विभाजित करने से प्राप्तफल स्थूल क्रांतिज्या होती है। इस क्रांतिज्या से द्युज्या, कुज्यादि साधन करके उन्नत में से चर को घटा कर इत्यादि द्वारा इष्ट हृति साधित करे। इसके द्वारा पुनः अक्षकर्ण से उसकी क्रांति साधित करे।

उपपत्ति— उन्नत काल की ज्या को तद्धृति कल्पित करके उससे अनुपात किया कि समशंकु में तद्धृति कर्ण है तो १२ अंगुल शंकु में कितनी होगी? प्राप्तफल पलकर्ण है। इससे फिर अनुपात किया कि यदि पलकर्ण में पलभा भुज है तो समशंकु तुल्यकर्ण में कितनी? प्राप्तफल क्रांतिज्या होती है। इस प्रकार समशंकु कर्ण, क्रांतिज्या भुज तथा कुज्या उनित तद्धृति कोटि से अक्ष क्षेत्र बनता है। इससे असकृत्कर्म से पलभा तथा क्रांतिज्या स्फुट होती है। यह उपपन्न हुआ।

आचार्य ने यहाँ जो अनुपात कहे हैं उसके अनुसार

कर्ण $= \sqrt{\text{छाया}^2 + १२^2} = \sqrt{१६^2 + १२^2} =$ २० अंगुल। उन्नतकालांश $=$ ८×६° $=$ ४८ अंश। ज्या ४८°$=$ तद्धृति माना।

$$\frac{\text{तद्धृति}}{\text{समशंकु}} = \frac{\text{पलकर्ण}}{१२}$$ पूर्व समीकरण (ख) द्वारा;

$$\text{अतः पलकर्ण} = \frac{१२ \times \text{ज्या } ४८^\circ}{\frac{१२ \times ३४३८}{२०}}$$

$$\text{क्योंकि समशंकु} = \frac{१२ \text{ त्रि}}{\text{कर्ण}} = \frac{१२ \times ३४३८}{२०} = २०६२.८;$$

$$\text{अतः पलकर्ण} = \frac{२० \text{ ज्या } ४८^\circ}{३४३८} = १४.८६।$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्योंकि $१२^२$ + पलभा^{२} = पलकर्ण^२ होता है। यहाँ पलकर्ण का मान रखने पर–

$$\text{पलभा} = \sqrt{१४.८६^२ - १२^२} = ८.७६$$

$$\text{तथा } \frac{\text{पलभा}}{\text{कर्ण}} = \frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{समशंकु}} \text{ पूर्व समीकरण (क) द्वारा ;}$$

$$\text{अतः क्रांतिज्या} = \frac{\text{पलभा} \times \text{समशंकु}}{\text{कर्ण}} = \frac{८.७६ \times २०६२.८}{१४.८६} = १२१६$$

इदानीमिष्टप्रभाप्रश्नमाह—

पञ्चाङ्गुला गणक यत्र पलप्रभा स्यात् तत्रेष्टभा नवमिता दशनाडिकासु।
दृष्टा यदा वद तदा तरणिं तवास्ति यद्यत्र कौशलमलं गणिते सगोले॥८९॥

इष्ट प्रभा संबंधी प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— हे गणक जहा पलभा पांच अंगुल हो वहाँ (सूर्यादय से) १० घटी पश्चात इष्ट छाया नव अंगुल प्राप्त हुई तो यदि तुम गणित में तथा गोल में कौशल रखते हो तो सूर्य का स्थान बताओ।

अस्योत्तरमाह—

इष्टान्त्यकामुन्नतकालमौर्वीतुल्यां प्रकल्प्याथ तया विभक्तः।
इष्टप्रभाशङ्कुहतोऽक्षकर्णस्त्रिज्यागुणो द्वादशभाजितश्च॥९०॥
द्युज्या भवेत् तत्कृतिवर्जितायास्त्रिज्याकृतेर्मूलमपक्रमज्या।
इष्टान्त्यका प्राग्वदतोऽसकृच्च द्युज्यापमज्या च ततः खरांशुः॥९१॥

इसका उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या तथा बारह के गुणा में कर्ण का भग देने से इष्ट छाया का महाशंकु होता है। उन्नत काल की ज्या को प्रथम इष्ट अन्त्या कल्पि करे। इस इष्ट अन्त्या से इष्टछाया महाशंकु तथा अक्ष कर्ण के गुणा को विभक्त करने से प्राप्तफल को त्रिज्या से गुणा करके बारह से विभक्त करने से प्राप्तफल स्थूल द्युज्या होती है। इस द्युज्या के वर्ग को त्रिज्या के वर्ग में से घटाकर मूल लेने से क्रांतिज्याप्राप्त होती है। क्रांतिज्या से चरादि साधित करे तथा उन्नत में चर को जोड़ घटा कर इष्ट अंत्या साधित करे। इष्ट अंत्या से पुनः द्युज्या, द्युज्या से क्रांतिज्या, पुनः इससे इष्ट अन्त्या साधित करे। इस प्रकार

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऐसा बार-बार करने से शुद्ध क्रांतिज्या स्फुट करे। इस से पूर्व कथित विधि से रवि का आनयन करे। रवि = $\frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{त्रि.}}{\text{परम क्रांज्या}}$ द्वारा।

उदाहरण में महाशंकु = $\frac{१२ \times ३४३८}{१५}$ = २७५०।२४ होता है तथा

कर्ण = $\sqrt{९^२ + १२^२} = १५$।

पलकर्ण = $\sqrt{\text{पलभा} + १२^२} = \sqrt{२५ + १४४} = १३$

उपपत्ति— महाशंकु ज्ञात करने के लिए अनुपात किया कि यदि १२ अंगुल शंकु में पलकर्ण कर्ण होता है तो महाशंकु में कितना? प्राप्त फल इष्ट हति होता है। अर्थात इष्टहति = $\frac{\text{पलकर्ण} \times \text{महाशंकु}}{१२}$ पूर्वोक्त स.(ख) द्वारा।

इष्ट हति को त्रिज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से इष्ट अन्त्या प्राप्त होती है। अर्थात् इष्ट अंत्या = $\frac{\text{इष्ट हति} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}}$

अथवा द्युज्या = $\frac{\text{इष्ट हति} \times \text{त्रिज्या}}{\text{इष्ट अंत्या}}$, यहाँ पूर्वप्राप्त इष्ट हति का मान रखने पर—

द्युज्या = $\frac{\text{पलकर्ण} \times \text{त्रिज्या} \times \text{महाशंकु}}{१२ \times \text{इष्ट अंत्या}}$

यहाँ महाशंकु = २७५०।२४ प्राप्त किया है तथा इष्ट अंत्या = ज्या १०×६ = ज्या ६०° = $\frac{\sqrt{३}}{२}$;

अतः द्युज्या = $\frac{१३ \times ३४३८ \times २७५०।२४ \times २}{१२ \times \sqrt{३}}$

मुनिश्वराचार्य ने सि.शि.की अपनी **मरिचि टीका** में उल्लेख किया है कि लक्ष्मीदास ने स्व टीका में उपरोक्त प्रकार से प्राप्त द्युज्या का मान त्रिज्या से अधिक होना भास्कराचार्य की भूल को इंगित किया है।

अथान्यं प्रश्नमाह—

यत्र क्षितिज्या शरसिद्धतुल्या २४५ स्यात् तद्द्युतिस्तत्त्वकुरामसंख्या ३१२५।
तत्राक्षभार्की गणक प्रचक्ष्व चेदक्षजक्षेत्रविचक्षणोऽसि॥९२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— हे गणक! जहाँ किसी दिन क्षितिज्या २४५ हो तथा तद्धृति ३१२५ हो वहाँ पलभा तथा सूर्य का मान कहो, यदि अक्ष क्षेत्रों में योग्यता रखते हो।

अस्योत्तरमाह—

कुज्योनतद्धृतिहृता कृतशक्रनिघ्नी
कुज्यैव यत् फलपदं पलभा भवेत् सा।
कुज्या हता रविभिरक्षभया विभक्ता
क्रान्तिज्यका भवति भानुरतो विलोमम्॥९३॥

उक्त प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— तद्धृति में से कुज्या को घटा कर प्राप्त फल से १४४ गुणा कुज्या को विभक्त करके मूल लेने से पलभा प्राप्त होती है। कुज्या तथा १२ के गुणा में पलभा से भाग देने से क्रांतिज्या होती है। इससे विलोम क्रिया द्वारा सूर्य का स्थान ज्ञात करते हैं।

सूत्र रूप में–

$$\text{पलभा} = \sqrt{\frac{१४४ \times \text{कुज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}}; \quad \text{क्रांतिज्या} = \frac{१२\ \text{कुज्या}}{\text{पलभा}};$$

$$\text{रवि भुजज्या} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{क्रांतिज्या}}{\text{जि.ज्या}}$$

उपपत्ति— अनुपात किया कि यदि पलभा तुल्य भुज में बारह तुल्य कोटि है तो कुज्या में कितनी होगी? प्राप्त फल क्रांतिज्या होगी। अर्थात् पूर्वोक्त स.(ग) द्वारा।

$\frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांतिज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$। पुनः द्वितीय त्रैराशिक किया कि यदि पलभा तुल्य भुज में १२ कोटि है तो क्रांतिज्या में कितनी होगी? प्राप्तफल तद्धृति में कुज्या तुल्य न्यून होगा। अर्थात्

$\frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$, पूवोक्त समी. (ग) द्वारा।

इन दोनों अनुपातों के द्वारा –

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांतिज्या}} \times \frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}} = \frac{\text{पलभा}^2}{12^2}$$

$$\text{या पलभा}^2 = \frac{144 \text{ कुज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}$$

$$\text{अतः पलभा} = \sqrt{\frac{144 \text{ कुज्या}}{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}} \text{ उपपन्न हुआ।}$$

प्रथम अनुपात से—

$$\frac{\text{कुज्या} \times 12}{\text{पलभा}} = \text{क्रांतिज्या उपपन्न हुआ।}$$

यहाँ प्रश्न में कुज्या = २४५ तथा तद्धृति = ३१२५ दिया हुआ है।

$$\text{अतः पलभा} = \sqrt{\frac{144 \times 245}{3125 - 245}} = \sqrt{\frac{35280}{2880}} = 3.5 = 3\frac{1}{2}$$

$$\text{तथा क्रांतिज्या} = \frac{12 \times 245}{3.5} = 840$$

अथान्यं प्रश्नमाह—

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं कुज्योनितां वीक्ष्य यो
विंशत्यश्वरसैः ६७२० मितामथ परां षष्ट्यङ्कचन्द्रैर्मिताम् १९६०।
कुज्याग्रापमशिञ्जिनीयुतिमिनं वेत्यक्षभां चापि तं
ज्योतिर्वित्कमलावबोधनविधौ वन्दे परं भास्करम्॥९४॥

अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या, समशंकु और तद्धृति के योग में से कुज्या को घटाने से ६७२० प्राप्त होता है तथा कुज्या, अग्रा और क्रांतिज्या का योग १९६० होता है। आचार्य कहते हैं कि जो इनके द्वारा पलभा तथा सूर्य को ज्ञता कर दे उसको वे ज्योतिषियों के कमल दल को प्रकाशित करने वाला चंद्रमा मानते हैं तथा भगवान भास्कर के बाद वे उसकी वन्दना करते हैं।

इदानीमस्योत्तरमाह—

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिः कुज्योनिता या तया
कुज्याग्रापमशिञ्जिनीयुतिमिनैः १२ क्षुण्णां पृथक्स्थां भजेत्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लब्धं स्यात् पलभा पलश्रुतिपलच्छायार्कयुत्या ततो
भाज्यान्याथ पृथक् स्थितात्रमपमज्या स्यात् ततो भास्करः ॥९५॥

इस प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या, समशंकु तथा तद्धृति के योग में से कुज्या घटाने से प्राप्त (६७२०) से कुज्या, अग्रा और क्रांतिज्या के योग (१९६०) के १२ से गुणित को विभाजि करने से पलभा प्राप्त होती है और पलकर्ण, पलभा तथा १२ के योग से विभाजित करने से क्रांतिज्या प्राप्त होती है। इसके द्वारा सूर्य (का भुजांश) ज्ञात किया जा सकता है।

सूत्र रूप में–

$$\frac{१२\ (\text{कुज्या} + \text{अग्रा} + \text{क्रांतिज्या})}{\text{क्रांतिज्या} + \text{समशंकु} + \text{तद्धृति} - \text{कुज्या}} = \text{पलभा}$$

$$\frac{१२\ (\text{कुज्या} + \text{अग्रा} + \text{क्रांतिज्या})}{१२ + \text{पलभा} + \text{पलकर्ण}} = \text{क्रांतिज्या}$$

$$\text{सूर्य भुजज्या} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{क्रांतिज्या}}{\text{परम क्रांतिज्या}}$$

$$\text{उदाहरण में पलभा} = \frac{१२ \times १९६०}{६७२०} = ३\frac{१}{२}\ ;$$

$$\text{पलकर्ण} = \sqrt{१२^२ + ३.५^२} = १२\frac{१}{२}$$

$$\text{क्रांतिज्या} = \frac{१२ \times १९६०}{१२ + ३\frac{१}{२} + १२\frac{१}{२}} = ८४०$$

उपपत्ति— पूर्वोक्त समी. (ग) द्वारा पलक्षेत्रों में जहाँ क्रांतिज्या कोटि तथा कुज्या भुज है; समशंकु कोटि तथा अग्रा भुज है तथा तद्धृति – कुज्या= कोटि तथा क्रांतिज्या भुज है। इनकी पहले कोटियों का योग, क्रांतिज्या + समशंकु + तद्धृति – कुज्या है तथा बाद में भुजों का योग, कुज्या + अग्रा + क्रांतिज्या है। अब अनुपात किया कि यदि कोटियों के योग तुल्य कोटि में भुजों के योग तुल्य भुज प्राप्त होता है तो १२ तुल्य कोटि में कितना होगा?

प्राप्तफल पलभा होती है। अतः आचार्योक्त सूत्र प्राप्त होता है। उपपन्न हुआ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अब क्रांति ज्ञान के लिए पूर्वोक्त समी. (क) तथा (ख) द्वारा पलक्षेत्रों में कुज्या भुज, अग्रा, कर्ण तथा क्रांतिज्या कोटि है तथा पलभा भुज, पलकर्ण कर्ण तथा १२ अंगुल कोटि है।

इनके अनुपात से—

$$\frac{\text{पलभा}}{\text{कुज्या}} = \frac{१२}{\text{क्रांतिज्या}} = \frac{\text{पलकर्ण}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{पलभा}+१२+\text{पलकर्ण}}{\text{कुज्या}+\text{क्रांतिज्या}+\text{अग्रा}}।$$ पूर्व प्रकार से अनुपात से—

$$\text{क्रां.ज्या} = \frac{१२\ (\text{कुज्या} + \text{क्रांतिज्या} + \text{अग्रा})}{\text{पलभा}+१२+\text{पलकर्ण}}$$ आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

अथान्यं प्रश्नमाह—

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं कुज्योनितां वीक्ष्य यः
पूर्णाब्ध्यब्धिमहीमिता १४४० मथ परां खाभ्राष्टभूसंमिताम् १८००।
अग्राज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं वेत्त्यक्षभार्कौ च तं
ज्योतिर्वित्कमलावबोधनविधौ वन्दे परं भास्करम्॥९६॥

अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या+ समशंकु+तद्धृति – कुज्या = १४४० है तथा अग्रज्या+समशंकु+तद्धृति = १८००। आचार्य कहते हैं कि जो पलभा तथा सूर्य की स्थिति बता सके वे उसको ज्योतिर्विदों के समुदाय में सूर्य के समान वन्दनीय मानते हैं।

अस्योत्तरमाह—

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिः कुज्योनिताद्यो हृता
तेनाग्रासमशङ्कुतद्धृतियुतिः सूर्याहताक्षश्रुतिः।
स्यात् तस्याः पलभा पलश्रुतिपलच्छायार्क १२ युत्योद्धृता-
दाद्यादक्षभयाहताच्च भवति क्रान्तिज्यकातो रविः॥९७॥

इस प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या+समशंकु+तद्धृति–कुज्या से अग्रज्या+समशंकु +तद्धृति के योग को विभक्त करके बारह (१२) से गुणा करने से पल कर्ण प्राप्त होता है। इससे पलभा ज्ञात करे।

पलभा+पलकर्ण+१२ से द्वितीय योग को विभक्त करके उसको पलभा से गुणा करके प्राप्तफल से क्रांतिज्या प्राप्त होती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— पूर्वोक्त अक्ष क्षेत्रों में समी. (ख) द्वारा लंबज्या = $\frac{\text{कोटि}}{\text{कर्ण}}$ को तुल्य करने पर—

$$\frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{समशंकु}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}{\text{समशंकु}} = \frac{\text{शंकु}}{\text{पलकर्ण}} \text{ होता है।}$$

$$\text{अतः } \frac{\text{क्रांतिज्या} + \text{समशंकु} + \text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}{\text{अग्रा} + \text{तद्धृति} + \text{समशंकु}} = \frac{\text{शंकु}}{\text{पलकर्ण}}$$

$$\text{अर्थात् पलकर्ण} = \frac{१२\ (\text{अग्रा}+\text{तद्धृति}+\text{समशंकु})}{\text{क्रांज्या} + \text{समशंकु} + \text{तद्धृति} - \text{कुज्या}}$$

$$= \frac{१२ \times १८००}{१४४०} = १५$$

अतः पलकर्ण = १५।

$\text{पलकर्ण}^२ = १२^२ + \text{पलभा}^२$ अतः पलभा = $\sqrt{१५^२ - १२^२} = ९$

अक्षक्षेत्र प्रथम में पलभा = भुज, शंकु-कोटि तथा पलकर्ण = कर्ण तथा अक्षक्षेत्र चतुर्थ में अग्राभुज, समशंकु= कोटि तथा तद्धृति = कर्ण में अनुपात किया— पूर्वोक्त समी. (ख) तथा (ग) द्वारा ;

$$\frac{\text{पलभा}}{\text{अग्रा}} = \frac{१२}{\text{समशंकु}} = \frac{\text{पलकर्ण}}{\text{तद्धृति}} = \frac{\text{पलभा}+१२+\text{पलकर्ण}}{\text{अग्रा}+\text{समशंकु}+\text{तद्धृति}}$$

$$= \frac{९+१२+१५}{१८००} = \frac{१}{५०}$$

$$\text{अतः अग्रा} = \frac{\text{पलभा} \times ५०}{१} = ९ \times ५० = ४५०$$

अक्ष क्षेत्र एक तथा तीन में, $\frac{\text{क्रांतिज्या}}{\text{अग्रा}} = \frac{\text{शंकु}}{\text{पलकर्ण}}$; समी.(ख) द्वारा।

$$\text{अतः क्रांतिज्या} = \frac{\text{अग्रा} \times \text{शंकु}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{४५० \times १२}{१५} = ३६०$$

अतः पलभा = ९ तथा क्रांतिज्या = ३६० प्राप्त हुआ।

इदानीमन्यं प्रश्नमाह—

यत्र त्रिवर्गेण मिता पलाभा तत्र त्रिनाडीप्रमितं चरं स्यात्।
यदा तदार्कं यदि वेत्सि विद्वन् सांवत्सराणां प्रवरोऽसि नूनम्॥९८॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— जहाँ पलभा तीन का वर्ग अर्थात् ९ है वहाँ चर तीन (३) घटी है। यदि हे विद्वान् तुम सूर्य को ज्ञात कर सकते हो तो तुम सांवत्सर गणकों अर्थात् ज्योतिषियों में प्रवर हो।

इदानीमस्योत्तरमाह—

चरज्यकार्काभिहतिस्त्रिमौर्व्या भक्तात्तवर्गोऽक्षभया स्वनिघ्न्या।
युतोऽथ तन्मूलहृता चरज्या सूर्या १२ हता क्रान्तिगुणस्ततोऽर्कः ॥९९॥

इसका उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— चरज्या को (१२) बारह से गुणा करके त्रिज्या से भाग देकर प्राप्तफल के वर्ग में पलभा के वर्ग को युत करके मूल लेने से जो प्राप्त हो उससे चरज्या तथा (१२) के गुणा में भाग देने से सूर्य की क्रांति प्राप्त होती है। उससे सूर्य का स्थान ज्ञात करे।

उपपत्ति— प्रथम तथा तृतीय अक्ष क्षेत्र द्वारा स्पर्श अक्षांश ज्या का तुल्य अनुपात करने से—

$$\frac{\text{पलभा}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{कुज्या}}{\text{क्रांतिज्या}}$$ पूर्वोक्त समी. (ग) द्वारा

$$\text{अतः क्रांतिज्या} = \frac{\text{शंकु} \times \text{कुज्या}}{\text{पलभा}} = \frac{१२ \times \text{कुज्या}}{९} = \frac{४\ \text{कुज्या}}{३}$$

$$\text{द्युज्या} = \sqrt{\text{त्रि}^२ - \text{क्रां ज्या}^२}\ ;\ \frac{\text{द्युज्या}^२ \times \text{चरज्या}^२}{\text{त्रि}^२} = \text{कुज्या}^२ \text{ होता है।}$$

$$\text{तथा कुज्या} = \frac{\text{क्रां ज्या} \times \text{पलभा}}{\text{शंकु}} = \frac{\text{क्रां ज्या} \times \text{पलभा}}{१२}$$

कुज्या^{२} का मान तुल्य करने पर—

$$\frac{\text{द्युज्या}^२ \times \text{चरज्या}^२}{\text{त्रि}^२} = \frac{\text{क्रांज्या}^२ \times \text{पलभा}^२}{१२^२}$$

या $१२^२ \times$ च.ज्या$^२ \times$ (त्रि^{२} – क्रां ज्या^{२}) = त्रि^{२} प^२ × क्रां ज्या^{२}

या १२ त्रि^{२} च.ज्या^{२} – $१२^२$ च.ज्या^{२}. क्रां.ज्या^{२} = त्रि^{२} प^२ क्रांज्या^{२}

या $१२^२$ त्रि^{२} चज्या^{२} = त्रि^{२} प^२ क्रांज्या^{२} +$१२^२$ च.ज्या^{२} क्रांज्या^{२}

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{या } १२^२ \text{ त्रि}^२ \text{ चज्या}^२ = \text{त्रि}^२ \text{ क्रांज्या}^२ \left(\text{प}^२ + \frac{१२^२ \text{ च ज्या}^२}{\text{त्रि}^२} \right)$$

$$\text{या क्रां ज्या}^२ = \frac{१२^२ \text{ त्रि}^२ \text{ चरज्या}^२}{\text{त्रि}^२ \left(\text{प}^२ + \frac{१२^२ \text{ च ज्या}^२}{\text{त्रि}^२} \right)}$$

$$\text{या क्रांति ज्या} = \frac{१२ \text{ चरज्या}}{\sqrt{\text{पलभा}^२ + \frac{१२^२ \text{ चरज्या}^२}{\text{त्रि}^२}}} \text{ ; आचार्योक्त उपपन्न हुआ।}$$

यहाँ पलभा = ९ तथा चरज्या ६×३° = चरज्या १८° =१०६२ इस सूत्र में प्रतिस्थापित करने से—

$$\text{क्रांति ज्या} = \frac{१२ \times १०६२}{\sqrt{९^२ + \frac{१४४ \times १०६२^२}{३४३८^२}}} = \frac{१२७४४}{\sqrt{९^२ + \frac{१६२४०९५३६}{११८१९८४४}}}$$

$$= \frac{१२७४४}{\sqrt{९^२ + १३.७४}} = १३०९।३९$$

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के त्रिप्रश्नाधिकार १५ में आचार्योक्त तथा उससे भी विशेष कहा है।

"चरखण्डपलांशविद्रविं कुर्यादिष्ट चरासुतोऽक्षभाम्।
स्वपलघुतितश्चरार्धकं त्रिप्रश्नोक्तमवैति सस्फुटम्॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सूर्यघ्नी चरशिञ्जिनीकृतकृतिस्तद्युक्त भक्ता सती।
त्रिज्याऽक्षप्रभायोर्वधस्य करणी छेदस्त्रिभज्या कृतेः॥
लब्धेर्मलमिनापमस्य हि गुणस्तस्मादपि प्रोक्तवत्।
तिग्मांशुर्विषुवात्प्रभाचरदलज्ञानादसौ जायते॥

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अर्काज्ञाने ज्ञाने विषुवच्छाया चरासूनाम्॥३६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इष्टचरार्धस्यज्या क्षयवृद्धिज्या तदर्कवधकृत्या।
त्रिज्या विषुवच्छायावधवर्गो युतहृतश्छेदः ॥३७॥
व्यासार्ध कृतेर्मूलं क्रांतिज्या व्यासदलगुणा भक्ता।
जिनभाग जीवया लब्धचापमर्क पदैः प्राग्वत्॥३८॥"

अथान्य प्रश्नमाह—

द्युज्यकापमगुणार्कदोर्ज्यकासंयुतिं खखखबाण ५००० संमिताम्।
वीक्ष्य भास्करमवेहि मध्यमं मध्यमाहरणमस्ति चेच्छ्रुतम्॥१००॥

अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि द्युज्या+क्रांतिज्या+रवि भुजज्या = ५००० हो तो सूर्य के भुजांश बताओ। यदि तुम मध्य का मध्यमाहरण जानते हो।

इदानीमस्योत्तरमाह—

द्युज्यापक्रमभानुदोर्गुणयुतिस्तिथ्यु १५ द्धृताब्ध्या ४ हता
स्यादाद्यो युतिवर्गतो यम २ गुणात् सप्तामरा ३३७ ग्नोनिताः।
नागाद्र्यङ्गदिगङ्ककाः ९१०६७८ पदमतस्तेनाद्य ऊनो भवेद्
व्यासार्धेऽष्टगुणाब्धिपावक ३४३८ मिते क्रान्तिज्यकातो रविः॥१०१॥

इसका उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— द्युज्या+क्रांतिज्या+रवि भुजज्या को ४ से गुणा करके १५ से विभक्त करने से प्राप्तफल यदि 'आद्य संज्ञक' हो। इस योग के वर्ग को २ से गुणा करके ३३७ से विभाजित करके ९१०६७८ में से घटा कर मूल लेवें तथा उसको इस 'आद्य' में से घटाने से ३४३८ तुल्य त्रिज्या की रवि की क्रांति होती है तथा रवि क्रांति से रवि भुजांश ज्ञात होगा।

उपपत्ति— रविज्या = $\frac{\text{त्रि} \times \text{क्रांतिज्या}}{\text{जिनां. ज्या}}$ होता है। अर्थात्

रविज्या = $\frac{\text{त्रि} \times \text{क्रांतिज्या}}{१३९७}$

अतः इसमें क्रांतिज्या जोड़ कर द्युज्या = $\sqrt{\text{त्रि}^२ - \text{क्रां ज्या}^२}$ युक्त करने से आचार्योक्त योगफल प्राप्त होता है। अर्थात्

$\sqrt{\text{त्रि}^२ - \text{क्रां ज्या}^२} + \text{क्रांज्या} + \frac{\text{त्रि. क्रांति ज्या}}{१३९७} = ५०००$ आचार्य ने कहा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{या } \sqrt{\text{त्रि}^२ - \text{क्रां ज्या}^२} = ५००० - \text{क्रांज्या}\left(१ + \frac{\text{त्रि.}}{१३९७}\right)$$

$$= ५०० - \text{क्रांज्या}\ (१ + \frac{३४३८}{१३९७}\ )$$

$$\text{या } \sqrt{\text{त्रि}^२ - \text{क्रां ज्या}^२} = ५००० - \text{क्रांज्या.}\left(\frac{४८३५}{१३९७}\right)$$

दोनों ओर का वर्ग करने पर–

$$\text{त्रि}^२ - \text{क्रांज्या}^२ = ५०००^२ - \frac{२\times५०००\times४८३५}{१३९७}\text{क्रांज्या} + \text{क्रांज्या.}^२\left(\frac{४८३५}{१३९७}\right)^२$$

$$\text{या त्रि}^२ - ५०००^२ = \text{क्रांज्या}^२\left\{१ + \left(\frac{४८३५}{१३९७}\right)^२\right\} - \frac{२\times५०००\times४८३५}{१३९७}\text{क्रांज्या}$$

$$\text{या क्रांज्या}^२\left(\frac{१३९७^२ + ४८३५^२}{१३९७२}\right) - \frac{२\times५०००\times४८३५}{१३९७}\text{क्रांज्या} = (\text{त्रि}^२ - ५०००^२)$$

$$\text{या क्रांज्या}^२\ (२५३२८८३४) - २\times५०००\times४८३५\times१३९७\ \text{क्रांज्या} = १३९७^२\ (\text{त्रि}^२ - ५०००^२)$$

$$\text{या क्रांज्या}^२ - \frac{२\times५०००\times४८३५\times१३९७}{२५३२८८३४}\text{क्रांज्या} = \frac{१३९७^२\ (\text{त्रि}^२ - ५०००^२)}{२५३२८८३४}$$

$$\text{या क्रांज्या}^२ - \frac{२\times५०००\times६७५४४९५}{२५३२८८३४}\text{क्रांज्या} = \frac{१३९७^२\ (३४३८^२ - ५०००^२)}{२५३२८८३४}$$

आचार्य ने $\frac{६७५४४९५}{२५३२८८३४}$ का मान स्वल्पांतर से $\frac{४}{१५}$ ग्रहण करके द्युज्यादि योग = ५००० को ४ से गुणा तथा १५ से विभक्त करके उसे 'आद्य' संज्ञक मानने के लिए कहा है। अतः यह मान स्वीकार करने से–

$$\text{क्रांज्या}^२ - \frac{२\times५०००\times४}{१५}\text{क्रांज्या} = \frac{१३९७^२\ (३४३८^२ - ५०००^२)}{२५३२८८३}$$

आचार्योक्त प्रकार से $५००० \times \frac{४}{१५}$ = 'आद्य' लिखने पर–

$$\text{क्रांज्या}^२ - २\ \text{आद्य}\times\text{क्रांज्या} = \frac{१३९७^२\ (३४३८^२ - ५०००^२)}{२५३२८८३}$$

दोनों ओर आद्य^२ जोड़ने पर–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{क्रांज्या}^२ - २ \text{ आद्य} \times \text{क्रांज्या}^२ + \text{आद्य}^२ = \frac{१३९७^२ (३४३८^२ - ५०००^२)}{२५३२८८३} + \text{आद्य}^२$$

$$\text{या } (\text{क्रांज्या} - \text{आद्य})^२ = \frac{१३९७^२ (३४३८^२ - ५०००^२)}{२५३२८८३} + \left(५००० \times \frac{४}{१५}\right)^२$$

$$\text{या } (\text{क्रांज्या} - \text{आद्य})^२ = ५०००^२ \times \frac{१६}{२२५} + \frac{१३९७^२ \times ३४३८^२}{२५३२८८३} - \frac{५०००^२ \times १३९७^२}{२५३२८८३}$$

$$\text{या } (\text{क्रांज्या} - \text{आद्य})^२ = ५०००^२ \times \left[\frac{१६}{२२५} - \frac{१३९७^२}{२५३२८८३}\right] + \frac{१३९७^२ \times ३४३८^२}{२५३२८८३}$$

$$\text{या } (\text{क्रांज्या} - \text{आद्य})^२ = -\frac{२}{३३७} \times ५०००^२ + ९१०६७८$$

$$\text{या } (\text{क्रांज्या} - \text{आद्य}) = \pm \sqrt{९१०६७८ - \frac{२ \text{ योग}^२}{२३७}}$$

$$\text{या क्रांज्या} = \text{आद्य} \pm \sqrt{९१०६७८ - \frac{२ \text{ योग}^२}{२३७}}$$

क्योंकि क्रांज्या का मान त्रिज्या से अधिक नहीं हो सकता अतः यहाँ धन चिन्ह त्याग कर ऋण चिन्ह स्वीकार करने से—

$$\text{क्रांज्या} = \text{आद्य} - \sqrt{९१०६७८ - \frac{२ \text{ योग}^२}{२३७}}$$ आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

पूर्वश्लोकोक्त प्रकार से रवि भुज ज्ञात करे रवि की क्रांति द्वारा।

यहाँ आद्य तथा योग के मान प्रतिस्थापित करने पर रविज्या = ११३२।३९ क्रांज्या = ४६०।१५; द्युज्या = ३४०७।५ तथा रवि = ०।१९।१।३२ प्राप्त होगा।

$$\text{सूत्र— रवि भुजज्या} = \frac{\text{त्रि.} \times \text{क्रांतिज्या}}{\text{परम क्रांज्या}}$$

इदानीमन्यं प्रश्नमाह—

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतिमहीजीवाग्रकाणां युति-
र्द्रष्टा खाम्बरपञ्चखेचर ९५०० मिता पञ्चाङ्गुलाक्षप्रभे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देशे तत्र पृथक् पृथग्गणक ता गोलेऽसि दक्षोऽक्षज-
क्षेत्रक्षोदविधौ विचक्षण समाचक्ष्वाविलक्षोऽसि चेत्॥१०२॥

अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या+ समशंकु+तद्धृति+कुज्या+अग्रा का योग ६५०० होता है जहाँ पर पलभा का मान ५ अंगुल होता है। उस स्थान के लिए इनके मान हे गणक पृथक-पृथक कहो यदि तुम गोल तथा अक्ष क्षेत्रों में विलक्ष ज्ञान रखते हो।

इदानीमस्योत्तरमाह—

क्रान्तिज्यां विषुवत्प्रभारविहतेस्तुल्यां प्रकल्प्यापराः
कृत्वाग्रासमशङ्कुतद्धृतिमहीजीवा अभीष्टास्ततः।
द्व्याद्यास्तद्युतिभाजिताः पृथगथ प्रोद्दिष्टयुत्या हता
उद्दिष्टा खलु यद्युतिः पृथगिमा व्यक्ता भवन्ति क्रमात्॥१०३॥

इस प्रश्न का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या को बारह (१२) गुणित पलभा मानकर अभीष्ट समशंकु, तद्धृति, कुज्या तथा अग्रा का मान ज्ञात कर के त्रैराशिक से इनके योग तथा प्रश्नोक्त योग से उनके वास्तविक मान ज्ञात करे कि यदि इतने प्राप्त योग में प्रत्येक का अलग-अलग मान इतना होता है तो दिये हुए योग में कितना होगा?

उपपत्ति— पलकर्ण = $\sqrt{१२^२ + \text{पलभा}^२} = \sqrt{१४४ + २५} = १३$;
तथा क्रांतिज्या = १२×५=६० माना है।
अक्षक्षेत्र प्रथम तथा पांच द्वारा; पूर्वोक्त समी. (क) द्वारा—

$$\text{समशंकु} = \frac{\text{क्रां.ज्या}}{\text{पलभा}} \times \text{पलकर्ण} = \frac{६०\times १३}{६} = १५६$$

अक्षक्षेत्र प्रथम तथा चार द्वारा; पूर्वोक्त समी. (ख) द्वारा —

$$\text{तदधृति} = \frac{\text{समशंकु} \times \text{पलकर्ण}}{\text{शंकु}} = \frac{१५६\times १३}{१२} = १६९$$

अक्षक्षेत्र प्रथम तथा तृतीय द्वारा; पूर्वोक्त समी. (ख) द्वारा —

$$\text{अग्रा} = \frac{\text{क्रांतिज्या} \times \text{पलकर्ण}}{\text{शंकु}} = \frac{६०\times १३}{१२} = ६५$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अक्षक्षेत्र प्रथम तथा तृतीय द्वारा—

$$\text{कुज्या} = \frac{\text{अग्रा} \times \text{पलभा}}{\text{पलकर्ण}} = \frac{६५ \times ५}{१३} = २५$$

क्रांतिज्या + समशंकु + तद्धृति + कुज्या + अग्रा = ६० + १५६+ १६९ + ६५ + २५ = ४७५ अतः अनुपात किया कि इस योग का मान ४७५ है तब क्रांतिज्या ६० होती है और जब ९५०० हो तब क्रांतिज्या का मान $\frac{६० \times ९५००}{४७५} = १२००$

इसी प्रकार—

$$\text{समशंकु} = \frac{१५६ \times ९५००}{४७५} = १५६ \times २० = ३१२०$$

$$\text{तद्धृति} = \frac{१६९ \times ९५००}{४७५} = ३३८०$$

$$\text{अग्रा} = \frac{६५ \times ९५००}{४७५} = १३००$$

$$\text{कुज्या} = \frac{२५ \times ९५००}{४७५} = ५००$$

इनका योग क्रांतिज्या + समशंकु + तद्धृति + अग्रा + कुज्या = १२००+३१२०+३३८०+१३००+५००= ९५०० अतः उपपन्न हुआ।

इदानीमस्यानयनस्य व्यासिदर्शनार्थमन्यं प्रश्नमाह—

अग्रापमज्याक्षितिशिञ्जिनीनां योगं सहस्रं द्वितयं २००० विदित्वा।
पृथक् पृथक् ता गणक प्रचक्ष्व रूढा सगोले गणिते मतिश्चेत्॥१०४॥

पूर्वोक्त के विस्तार रूप में अन्य प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि अग्रा+क्रांतिज्या+क्षितिज्या (कुज्या) का योग २००० दो हजार हो तो हे गणक यदि तुम खगोल तथा गणित में बुद्धि (ज्ञान) रखते हो तो इनके मान पृथक-पृथक कहो।

इसका उत्तर—

आचार्य ने इसका उत्तर नहीं कहा है। पूर्व श्लोक के अनुसार हम क्रांतिज्या को १२×५=६० मान लेते हैं। यहाँ पलभा = ५ माना है।

अतः क्रांतिज्या = ६०; पलकर्ण = $\sqrt{१२^२ + \text{पलभा}^२} = \sqrt{१४४ + २५}$ = १३;

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महाभास्करीय के चन्द्रश्रृंगोन्नतिधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विषुवद्भाशरघातं प्रहतं खेटे क्षिपेच्छरे सौम्ये।
पश्चाद्याम्ये जह्याद्व्यस्तं प्रागक्षकर्मैतत्॥४॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"विषुवच्छायागुणिताद्विक्षेपाद्द्वादशोद्धृतात् सौम्यात्।
फलमृणं धनं धनमृणं याम्यादुयास्तमयलग्ने॥४॥"

भास्करोक्त प्रकार से उत्तर शर होने पर अयनदृक्कर्म संस्कृत ग्रह में अक्षज दृक्कर्म कला को घटाने से तथा दक्षिण शर होने पर अक्षज दृक्कर्म कला को अयन दृक्कर्म संस्कृत ग्रह में जोड़ने से उदय लग्न होता है। अस्त लग्न साधन में उत्तर शर होने पर छः राशि सहित अयन दृक्कर्म संस्कृत ग्रह में अक्षजदृक्कर्म कला को जोड़ने से तथा दक्षिण शर होने पर घटाने से पश्चिम क्षितिज में ग्रह के अस्तंगत रहने से जो पूर्व क्षितिज में लग्न होता है वह भास्कराचार्य सम्मत अस्त लग्न होता है। यहाँ ब्रह्मस्फुट ने उसमें से छः राशि को घटाकर पश्चिम क्षितिज में ग्रह के अस्तंगत रहने से जो अस्तलग्न होता है उसी को ग्रहास्त लग्न स्वीकार किया है।

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में ब्रह्मगुप्तोक्त कहा है। यथा–

"क्षुण्णे क्षेपेऽक्षज्यया लम्बभक्तेऽक्षच्छायाघ्ने भानुमक्तेऽथवाऽत्रेति"

सूर्यसिद्धान्त के ग्रहयुत्याधिकार में इस प्रकार कहा है। यथा–

"विषुवच्छाययाऽभ्यस्ताद् विक्षेपाद द्वादशोद्धतात्।
फलं स्वनतनाडीघ्नं स्वदिनार्धविभाजितम्॥८॥
लब्धं प्राच्यमृणं सौम्ये विक्षेपे पश्चिमे धनम्।
दक्षिणे प्राक्कपाले स्वं पश्चिमे तु विपर्ययः॥९॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अक्षज्यागुणितेऽथ लम्बकहृते क्षेपे फलं सौरिका
जयन्ते रविभिर्हृतेऽथ विषुवच्छायाङ्गुलैर्वा हते॥३॥
प्रागृणं स्वमयनग्रहे फलं सौम्ययाम्यशर सम्भवं सदा।
अन्यथापरकपालसंस्थितेकारयेदिति भवेत् स दृग्ग्रहः॥४॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सि.के. उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विषुवत्प्रभया हतः शरो रवि (१२) भक्तो हयुदयास्तगे ग्रहे।
धनदिग्विशिखे क्षयं धनं स्वमृणं याम्यशरे दृशे खगे॥१८॥"

इदानीमुदयास्तलग्नयोः स्वरूपं प्रयोजनं चाह—

निजनिजोदयलग्नसमुद्गमे समुदयोऽपि भवेद्भनभः सदाम्।
भवति चास्तविलग्नसमुद्गमे प्रतिदिनेऽस्तमयः प्रवहभ्रमात्॥९॥

उदयास्त लग्न स्वरूप—

सूर्य-प्रभा टीका— प्रतिदिन ग्रह प्रवह वायु वश भ्रमण करता हुआ अपने-अपने स्थान पर उदयलग्न के समय आकाश में उदित होता है तथा अस्त लग्न के समय पर अस्त होता है।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के ग्रहच्छायाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उदयविलग्नसमाने स्फुटलग्ने खेचरोदयो भवति।
नित्यं प्रवहवशेनास्तं यात्यस्तमयसमलग्ने॥६॥"

इदानीं ग्रहस्य दृश्यत्वलक्षणमाह—

निशीष्टलग्नादुदयास्तलग्ने न्यूनाधिके यस्य खगः स दृश्यः।
दिनेऽपि चन्द्रो रविसन्निधानान्नास्तं गतश्चेत् सति दर्शने भा॥१०॥

ग्रह के दृश्य होने के लक्षण—

सूर्य-प्रभा टीका— रात्रि में किसी समय पर जब ग्रह का गणितागत उदयलग्न उस समय के लग्न से अल्प होता है तब ग्रह उदित (दृश्य) रहता है। इसी प्रकार किसी समय पर जब ग्रह का गणितागत अस्त लग्न उस समय के लग्न से अधिक होता है तब ग्रह उदित (दृश्य) रहता है। इन्हीं लक्षणों के होने पर चंद्रमा दिन में भी दृश्य होता है। दिन में चंद्रमा रवि के पास में स्थित होने पर भी अस्त नहीं होता। यदि ग्रह दृश्यमान हो तो उसकी छाया साधित की जा सकती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रागूनमाद्यमधिकं पश्चाल्लग्नाद्ग्रहोदयोऽस्तमयः।
षड्भयुतमन्यदुदयैर्घटिकाः कृत्वौनमधिकसमम्॥५॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

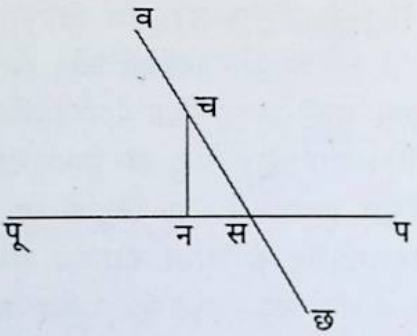

अब माना पू प = पूर्वापर रेखा है। इससे दृक् सूत्र के संपात बिंदु स पर स्थित शंकु की छाया स छ यदि पूर्वोक्त प्रकार से स च = स छ = व च है अर्थात् च बिंदुगत शंकु का छायाग्र बिंदु, स बिंदु पर होगा। अतः उस शंकुवग्र बिंदु च से स बिंदुगत रेखा ग्रह के केंद्र बिंदु तक जावेगी। अतः शंकुवग्र स्थित दृष्टि से ग्रह दिखेगा ही। इसी प्रकार व बिंदु पर यदि शंकु स्थापित हो तो उसकी छायाग्र च बिंदुगत होगा। अतः यदि जल अथवा कोई भी तरल पदार्थ या दर्पण यदि च स्थान पर रख दिया जावे तो उसमें देखने से ग्रह बिंब का प्रतिबिंब दिखाई देगा। नलिका यंत्र व च पर लगाया जावेगा।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में बिना नलिका यंत्र का नाम लिए आचार्योक्त हि त्रिप्रश्नाधिकार १४ में कहा है। यथा—

"गृहमध्यगपरिलेखात्कर्णस्थित्या विधाय गृहपटलम्।
दिग्योगस्थितदृष्टया पश्यति सूर्यग्रहं त्विष्टम्॥१॥
तैलेऽथ दर्पे वा जलेऽथवा शङ्कुमार्गविन्यस्ते।
शंक्वग्रस्थितदृष्ट्या दिनमपि पश्येद् भ्रमत्वमादित्यम्॥१०॥
केन्द्रगप्रभाग्रदृशा विलोकयेच्छङ्कुमार्गगं ह्यपरम्।
भाशङ्कुच्छिद्रैर्वा पश्यति तद्विद्धमिव सूर्यम्॥११॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के त्रिप्रश्नाधिकार में आचार्योक्त कहा है।

"कोट्यग्रात् स्वदिशि भुजं निधाय सम्यक्
तस्याग्रे नरमथ केन्द्रशङ्कुप्रभागे।
कृत्वा ना नयन मुदग्रकर्णगत्या शङ्क्वग्रे ग्रहमवलोकयेन्निविष्टम्॥४७॥
विपुलनलंक कर्णस्थित्या दृगुच्छितदीर्घया
स्फुटतरककुप्सिद्धिर्बध्वा यथाविधि वंशयोः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रहणमुदितं शीताशुं वा ग्रहं च विलोकये-
न्नभसि नलकच्छिद्रेणैवं जले च विलोमतः॥४८॥''

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर अध्याय ४ के श्लोक ८४-८५ में आचार्योक्त ही कहा है।

इदानीं जले विलोकनार्थमाह—

निवेश्य शङ्कुं भुजभाग्रयोगे बिन्दोर्नराग्रानुगते च सूत्रे।
तथैव धार्यो नलको विलोक्यो बिन्दुस्थतोये सुषिरेण खेटः॥१०८॥

जल में ग्रह विलोकन के लिए—

सूर्य-प्रभा टीका— शंकु को भुजाग्र तथा छाया के मिलान बिन्दु पर स्थापित करके नलक यंत्र को शंकुवग्र बिंदु तथा बिंदु गत कर्णसूत्र में पूर्ववत स्थापित करके नलक यंत्र के उच्च अग्र बिंदु पर दृष्टि डाल कर नलक यंत्र की नलिका के अधः छिद्र पर जलपात्र स्थापित करके उसमें ग्रह का दर्शन करे।

उपपत्ति— ग्रह के विपरीत दिशा में छाया भ्रमण करती। यदि पूर्व भाग (कपाल) में ग्रह होता है तो पश्चिम भाग में उसकी छाया होती है और यदि वह पश्चिम भाग (कपाल) में होता है तो पूर्व भाग में छाया होती है। यदि ग्रह का पूर्वापर से अंतर दक्षिण की ओर रहता है तो छाया पूर्वापर से उत्तर की ओर होती है। यदि ग्रह का पूर्वापर से अंतर (दूरी) उत्तर की ओर होती है तो छाया पूर्वापर से दक्षिण की ओर होती है। अतः पूर्वापर से कोटि विपरीत दिशा में देते हैं। भुज यथा दिशा में होती है। छायाग्र से भुज पूर्व से विपरीत होता है। अतः छायाअग्र से शंकुवग्रगामी जो सूत्र है वह ग्रह की ओर जाता है। अतः उसी की दिशा में नलक यंत्र को निवेशित करके उसके भीतर के छिद्र में से ग्रह दिखाई देता है।

जलादि इस की दिशा से जितनी दूरी पर हो जलतल से ऊपर उस दिशा में उतनी दूरी से उतनी ऊँचाई से भूमि पर से अधोमुख करके देखने वाला व्यक्ति जल में देखकर देखने योग्य ग्रह, ग्रहण, शृंगोन्नति को देख सकता है।

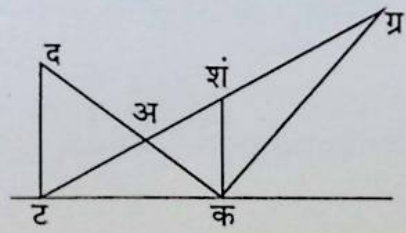

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चित्र में 'ग्र' ग्रह है तथा शं क शंकु है जिसकी छायाग्र बिंदु ट है। ट छाया तथा भुज का कटाव (मिलान) बिंदु है। आचार्य ने जल में ग्रह छाया देखने के लिए श्लोक में शंकु को 'ट' बिन्दु पर रखने के लिए कहा है। अतः द ट शंकु गाड़ा। द ट तथा शं क बराबर तथा समानान्तर हैं। ∠द क शं = ∠शं क ग्र है। अतः यदि क स्थान पर जल (पात्र) हो तो ग्रह, द अ स्थान पर नलक स्थापित करके अधः मुख देखने से जल में दिखाई देगा।

इदानीमस्योपसंहारश्लोकमाह—

दर्शयेद्दिविचरं दिवि के वानेहसि द्युचरदर्शनयोग्ये।
पूर्वमेव विरचय्य यथोक्तं रञ्जनाय सुजनस्य नृपस्य॥१०९॥

उपसंहार के लिए श्लोक—

सूर्य-प्रभा टीका— इस पूर्वोक्त प्रकार से कहे अनुसार प्रक्रिया द्वारा सुजनों तथा राजा को उनके आनन्द के लिए एवं उन्हें प्रसन्नता देने के लिए दिवाचर ग्रहों को (सूर्य, चंद्र) दर्शन योग्य स्थिति में आकाश में अथवा जल में दिखाना चाहिये।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के त्रिप्रश्नाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदर लाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्य देव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४

अथ पर्वसम्भवज्ञानमाह-

कलेर्गताब्दा रवि १२ भिर्विनिघ्नाश्चैत्रादिमासैः सहिताः पृथक्स्थाः।
द्विघ्नाः स्वनागाङ्गगजांश ८९८ हीनाः पञ्चाङ्ग ६५ भक्ताः प्रथमान्विताः स्युः॥१॥
मासाः पृथक् ते द्विगुणास्त्रिपूर्णबाणा ५०३धिका स्वाङ्कनृपांश १६९ युक्ताः।
त्रिभि ३ र्विभक्ताः फलमंशपूर्वं मासौघतुल्यैश्च गृहैर्युतं स्यात्॥२॥
सपातसूर्योऽस्य भुजांशका यदा मनू १४ नकाः स्याद्ग्रहणस्य संभवः।

सूर्य-प्रभा टीका— कलिगत वर्षों को (१२) बारह से गुणा करके चैत्रारंभ से गतमास संख्या को इसमें जोड़कर प्रथक् स्थापित करे। इसको २ (दो) से गुणा करने से प्राप्तफल का ८९८ वाँ भाग इस गुणनफल में से कम करके ६५ (पैंसठ) से विभक्त करने से प्राप्त फल को प्रथक् स्थापित फल में युक्त करने से चांद्रमास प्राप्त होते हैं। इनको प्रथक् दुगुणा करके ५०३ युक्त करके प्राप्तफल का १६९ (एक सौ उन्हत्तर) वाँ भाग इसी में युक्त करके तीन से विभक्त करे। प्राप्तफल अंशादि होता है। इन अंशादि प्राप्तफल को ३० से विभक्त करने से प्राप्तफल राश्यादि स्थान पर स्थापित करे। राशि स्थान पर पूर्व प्राप्त मासों को क्षेपित करे। इस प्रकार करने से सपात (पात सहित) सूर्य प्राप्त होता है। इस के भुजांश यदि १४ अंश से अल्प हो तो चंद्रग्रहण संभव होता है।

सूत्र रूप में–

कलिगताब्द × १२ + चैत्रगतमास = अ, माना।

$$\text{अ} + \frac{२ \times \text{अ}\left(१ - \frac{१}{८९८}\right)}{६५} = \text{ब, चांद्रमास।}$$

$$\frac{(२\,\text{ब} + ५०३)\ \left(१ + \frac{१}{१६९}\right)}{३} = \text{अंशादि प्राप्त फल।}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$\frac{\text{अंशादि प्राप्त फल}}{३०}$ = राश्यादि प्राप्त फल।

राश्यादि प्राप्त फल+ब = सपात सूर्य।

उपपत्ति— त्रैराशिक किया कि यदि युगरविमास ५१८४०००० में युग अधिमास १५९३३०० प्राप्त होते हैं तो कलिगत वर्षों में कितने होंगे? प्राप्तफल लगभग ३२$\frac{१}{२}$ मास गुणा कलिगताब्द। आचार्य ने १५९३३०० अधिमास के स्थान पर इसके आधे से गणना करके प्राप्तफल को २ से गुणा तथा ६५ से कुछ अधिक (६५/४/२१) से विभक्त करने को कहा है।

रविमास ५१८४०००० के दुगुणे तथा अधिमास १५९३३०० के ६५ गुणे का अंतर ५१८४०००० × २ − ६५ × १५९३३०० = ११५५०० होता है। ऊपर जो ६५ मास से कुछ अधिक प्राप्त हुआ है उसका मान ज्ञात करने के लिए इस अन्तर ११५५०० को गताब्द से गुणा करके युगरविमास ५१८४०००० को ६५ से गुणा करके विभक्त किया है।

$$\frac{\text{गताब्द} \times ११५५००}{६५ \times ५१८४००००}$$

$$= \frac{\text{गताब्द} \times २ \times ५७७५०}{६५ \times ५१८४०००० } = \frac{२ \times \text{गताब्द}}{६५ \times ८९८}$$

अतः अन्तर −

$$= \frac{२ \times \text{गताब्द}}{६५} - \frac{२ \times \text{गताब्द}}{६५ \times ८९८} = \frac{२ \times \text{गताब्द}}{६५}\left(१ - \frac{१}{८९८}\right)$$ आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

ग्रहण होने के लिए मानैक्यार्ध से विक्षेप न्यून होना चाहिये। चंद्रग्रहण के लिए मध्यम मानैक्यार्ध ५६ कला होना चाहिये। सूर्यग्रहण के लिए ३२ कला होना चाहिये। ५६ कला शर १२ भुजांश पर होता है तथा ३२ कला शर ७ भुजांश पर होता है। अतः इतना विक्षेप सपात चन्द्र का साधित होता है। दर्शान्त में जितना चंद्रमा होता है उतना ही रवि होता है। पौर्णमासिन्त पर इनका अंतर छः राशि अधिक होता है। यहाँ भी तुल्य भुज होता है। अतः सपात सूर्य का शर ज्ञात करे। सपात सूर्य साधन करने के लिए अनुपात किया। सूर्य पात के कल्प भगणैक्य को १२ से गुणा करके राश्यात्मक बना लेवे। यदि कल्प चन्द्र

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मास ५३४३३३००००० में सूर्य की ५४६२७७३४०१६ राशि प्राप्त होती है (क्योंकि एक कल्प चांद्रमासों में सूर्य तथा राहु के (राहु वक्रि) भगण ४५५२३११६८ होते हैं। इनकी राशि बनाने के लिए इसको १२ से गुणा करने से ४५५२३११६८×१२=५४६२७७३४०१६ राशि प्राप्त होती है) तो एक चांद्रमास में सूर्य की एक राशि प्राप्त होगी तथा शेष $\frac{३५८३३०२०४८०}{५३४३३३००००००}$ अंश प्राप्त होंगे। यह $\frac{२}{३}$ के अधिक तुल्य स्वल्पांतर से होगा। यहाँ अंश तथा हार १७८१११००००० से विभाजित होकर अंश में लगभग २ तथा हार में ३ प्राप्त होता है तथा अंश में शेष २१०८२०४८० प्राप्त होता है अर्थात

$$\frac{३५८३३०२०४८०}{५३४३३३००००००} = २+ \frac{\frac{२१०८२०४८०}{१७८१११००००००}}{३} = \frac{२}{३}+\frac{२}{३}\times\frac{१}{१६९}$$

$= \frac{२}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)$। अर्थात् पूर्वोक्त प्राप्त एक राशि में $\frac{२}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)$ अंश और युक्त करना होगा।

कलियुगादि में पात का क्षेपक ५।३।१३ राश्यादि था तथा सपात सूर्य ०।१५।२० राश्यादि था अतः इन दोनों का योग रा. ५।१८°।३३' हुआ। यह विलोम विधि से ५ रा १८अं. ३३क= १६८ अंश ३३क= $१६८\frac{२}{३}$ तुल्य है। इसको उपरोक्त सूत्र में जोड़ना है।

$$\text{सपात मध्यम सूर्य} = \frac{२}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)\times \text{गताब्द} + १६८\frac{२}{३}$$

$$= \frac{२}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)\text{गताब्द} + \frac{५०३}{३}+१$$

$$= \frac{२}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)\text{गताब्द} + \left(\frac{५०३}{३}+\frac{५०३}{३\times १६९}\right)\text{स्वल्पांतर से।}$$

$$= \frac{२}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)\text{गताब्द} + \frac{५०३}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)$$

$$\text{सपात मध्यम सूर्य} = \frac{२\,\text{गताब्द}+५०३}{३}\left(१+\frac{१}{१६९}\right)$$ आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अब मध्यम सूर्य से स्फुट सूर्य आनयन करने पर अन्तर स्थूल २ अंश का होता है। अतः पूर्व में जो सूर्य भुज कहा है वह स्पष्ट सूर्य से इतना न्यून है। अन्यथा मानैक्यार्ध भुज १४ अंश तुल्य शर प्राप्त होता है अतः चंद्रग्रहण संभव होने के लिए सूर्य का भुज समीप के पात से १४° से अल्प होना चाहिये।

विशेष— शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ की टीका में मल्लिकार्जुन सूरी ने ग्रहण संभव कहा है। विस्तार के लिए मूल ग्रंथ का अवलोकन करें।

"कल्पादेर्द्युगणाद्राहुः सबीजो भगणादिकः।
भगणाद्यर्कसंयुक्तः सषड्भोऽशीकृतस्ततः॥१॥
खधृत्याप्तः पर्वगणो नगैः शेषास्तु पर्वपः।
केन्दुशक्रधनाधीशवरुणाग्नियमाः क्रमात्॥२॥
एते ग्रहणपर्वेशाः खधृत्याप्तस्य तद्गतम्।
गम्यं वा धृतिशक्रोनं तदा गासोऽर्कचन्द्रयोः॥३॥"

इसी प्रकार **वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका** के चन्द्रग्रहणाधिकार अध्याय ६ में ग्रहण संभव की स्थिति के लिए कहा है। यह वशिष्ट-पौलिश सिद्धान्तानुसार हैं—

"राहोः स 'षट्कृति कलां हित्वांशं तच्छशाङ्कविवरांशैः।
ग्रहणं त्रयोदशान्तः पञ्चदशान्तस्तमस्तस्य॥२॥"

पंचसिद्धांतिका के ही पौलिश सिद्धान्तानुसार अध्याय ७ में ग्रहणसंभ कहा है—

"राहोः सषट्कृति कलां हि (त्वांशं) त(च्छ) शाङ्कविरांशैः।
ग्रहणं त्रयोदशान्तः शशिनो भानोस्तथाष्टान्तः॥५॥"

अथ सूर्यग्रहार्थ विशेषः—

गृहार्ध १५° युक्तस्य सपातभास्वतो भुजांशकान् गोलदिशोऽवगम्य च॥३॥
ज्ञेयोऽर्को रविसंक्रमाद्गतदिनैर्दर्शान्तनाडीनता-
द्वेदां ४ शेन गृहादिनोनसहितः प्राक् पश्चिमेऽस्यापमः।
अक्षांशैः खलु संस्कृतो रसलवेनास्याथ ते संस्कृताः
पताढ्यार्कभुजांशका यदि नगो ७ नाः स्युस्तदार्कग्रहः॥४॥
रूपं १ वियत्० पूर्णकृतान् ४० सपादान् १५ क्षिप्त्वा सपाते प्रतिमासमर्के।
तत्सम्भवं प्रागवलोक्य धीमान् ग्रहान् ग्रहार्थं विदधीत तत्र॥५॥

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्तानुसार सपात सूर्य ज्ञात करके उसमें आधि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राशि अर्थात् १५ अंश युक्त करके उसके भुजांश के अनुसार सूर्य का गोल उत्तर अथवा दक्षिण ज्ञात करे। अब रवि की संक्रान्ति से गत दिन ज्ञात करके उसके तुल्य अंश कल्पित करे तथा गत संक्रांतिराशि तुल्य राशि माने और इनसे अमावस्यान्तकाल की स्थूल नतघटि प्राप्त करे। इसका चतुर्थ भाग राश्यादि फल में युक्त करे अथवा हीन करे। सूर्य यदि पूर्वाह्न में हो तो यह (चतुर्थांश) फल हीन करे तथा अपराह्न में हो तो युत करे। इस प्रकार प्राप्त सायन सूर्य के अंशों की क्रांति साधित करे। क्रांत्यक्षांश को एक दिशा में होने पर योग करने से तथा भिन्न दिशा में होने से अंतर करने से नतांश होते हैं। इन नतांश के छठे भाग को सपात सूर्य में एक दिशा में होने पर प्राप्त योग में योग करे तथा अन्तर में घटावें। इस प्रकार प्राप्त सूर्य के अंश यदि ७ से अल्प हो तो सूर्य ग्रहण होने की संभावना होती है।

यदि इस ही प्रथम अग्रगामी अमावस्या को सूर्यग्रहण न हो तो सपादसूर्य में रा.१ अंश ० कला ४० विकला १५ प्रतिमास युक्त करते जाने से आगामी किसी अमावस्या को सूर्यग्रहण की संभावना का ज्ञान होता है, अथवा अन्यथा भी ज्ञात कर सकते हैं। यदि ग्रहण संभावना व्यक्त हो तो आगे अध्याय में कहे अनुसार सूर्य, चंद्र, पात आदि की वास्तविक स्थिति ज्ञात करके ग्रहण होने का समय तथा उससे संबंधित अन्य अवयवों का साधन करे।

उपपत्ति— सपात सूर्य के भुजांश को शर ज्ञात करने के लिए पृथक् स्थापित करे और सूर्य ग्रह के शर में नत का संस्कार करे। हमें ग्रहण संभव दिन का दिनमान ज्ञात है तथा अमान्त काल का समय ज्ञात है। अतः इन दोनों के अंतर करने से हमें सूर्य के नत काल ज्ञात होते हैं। चंद्रमा तथा सूर्य का अक्षांश (स्थान) लम्बन के कारण प्रभावित होता है यह नतघटि का लगभग चतुर्थांश होता है। अतः नतकाल में लम्बन के कारण नतकाल का चतुर्थांश और जोड़ देने से यह $\frac{५}{४}$ नतकाल तुल्य होता है तथा प्रत्येक राशि उदित होने में स्वल्पांतर से लगभग ५ घटी (दो घंटा) लेती है अतः नतकाल की राश्यादि मान $\frac{५}{४} \times \frac{\text{नतकाल}}{५}$ राश्यादि होगा। अर्थात् नतकाल÷४ होगा स्वल्पांतर से। यह नतकाल का चतुर्थांश भाग सूर्य में से हीन युक्त पूर्वोक्तानुसार करने से ग्रहण आरंभ स्थान प्राप्त होता है।

इसके पश्चात सूर्य के द्वारा आचार्य ने सूर्य क्रांति ज्ञात करने के लिए

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहा है। इस प्रकार वित्रिभ लग्न (पूर्व प्राप्त हीन युक्त सूर्य) सूर्य से आगे स्थित होता है तथा वित्रिभ लग्न की क्रांति तथा अक्षांश का संस्कार करने से नतांश प्राप्त होता है। अतः सूत्र क्रांतिज्या = $\frac{\text{परमक्रांतिज्या} \times \text{सूर्य}}{\text{त्रिज्या}}$ के द्वारा सूर्य की क्रांति ज्ञात करे तथा क्रांति एवं सूर्य के भुजांश के द्वारा सूर्य का नतांश ज्ञात करे तथा उसको वित्रिभ लग्न का नतांश तुल्य स्वल्पांतर से माने। यदि नतांश ४५ अंश हो तो त्रिज्या में परम अवनति ४८।४६ (नति) प्राप्त होती है तो ४५ अंश की ज्या में कितनी होगी? अर्थात्

$$\frac{\text{ज्या } ४५ \times ४८।४६}{३४३८} = \frac{२४३१ \times ४८।४६}{३४३८} = ३४ \text{ कला } ३० \text{ विकला।}$$

इतने शर में कितना भुज भाग उत्पन्न होगा यह ज्ञात किया। यदि ७० कला १५ अंश में प्राप्त होते हैं तो ३४।३० नतिकला में कितना होगा? फल $\frac{(३४ \text{ क. } ३० \text{ वि.}) \times १५}{६०}$ = ७ अंश २४ कला होगा। यह ४५ अंश का छठा (स्वल्पांतर से) भाग है। अतः सपात सूर्य में ४५° वित्रिभ लग्न के छठा भाग तुल्य अंतर पड़ेगा। अतः आचार्य ने उसे (सपात सूर्य को) नतकाल (वित्रिभ लग्न तुल्य) के छठे भाग से बढ़ाने अथवा घटाने के लिए कहा है।

यदि चंद्र का पथ क्रांतिवृत्त के उत्तर की ओर हो तो क्रांति वृत्त पर वित्रिभ लग्न खमध्य से दक्षिण में होगा अतः चन्द्रमा को नति के तुल्य घटाते हैं अर्थात् सपात सूर्य को घटाते हैं तथा विपरीत स्थिति में बढाते (युत) हैं।

विशेष— आचार्य ने जो इस अधिकार में कहा है वह अन्य प्रकार से पूर्ववर्ति आचार्यों ने भी कहा है यथा लल्लाचार्य, श्रीपति, वराहमिहिर, सूर्यसिद्धान्त आदि।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के पर्वसम्भवाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदर लाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्य देव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५

अथ चन्द्रग्रहणाधिकारः

इदानीं ग्रहणं विवक्षुस्तदारम्भप्रयोजनमाह—

बहुफलं जपदानहुतादिके स्मृतिपुराणविदः प्रवदन्ति हि।
सदुपयोगि जने सचमत्कृति ग्रहणमिन्द्विनयोः कथयाम्यतः॥१॥

ग्रहण कहने के पूर्व ग्रहण का प्रयोजन—

सूर्य-प्रभा टीका— स्मृति, पुराणादि के ज्ञाताओं का कहना है कि जप, दान, यज्ञाहुति इत्यादि ग्रहण के समय करना आमजन के लिए चमत्कारिक रूप से बहुत उपयोगी तथा बहु फल को देने वाला होता है। अतः उन ग्रहण को भास्कराचार्य ज्ञात करने के लिए गणित क्रिया का यहाँ सुन्दर रूप में वर्णन करेंगे।

विशेष— स्मृतिपुराण वचन– इनमें धार्मिक कृत्य ग्रहण समय पर विस्तार से कहे हैं–

"स्नानं स्यादुपरागादौ मध्येहोमसुरार्चने। सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने। अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात् पङ्केगौरिव सीदति। स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं राहुदर्शने॥ सन्ध्यारात्र्योर्न कर्तव्यं श्राद्धं खलु विचक्षणैः। द्वयोरपि च कर्तव्यं यदि स्याद्राहुदर्शनम्॥
उषस्युषसि यत् स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवौ। चन्द्रसूर्योपरागे च प्राजापत्येन तत् समम्॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहणवासना में इस संबंध में बहुत कहा है। अन्य आचार्यों ने भी कहा है जो आचार्योक्त के अनुरूप है।

इदानीं ग्रहणोपयोगिनीमितिकर्तव्यतामाह—

समगृहांशकलाविकलौ स्फुटौ रविविधू विदधीत रविग्रहम्।
समलवावयवौ तु विधुग्रहं समवगन्तुमगुं च तदोक्तवत्॥२॥

ग्रहण ज्ञान के लिए उपयोगी क्रिया—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य ग्रहण के लिए सूर्य चंद्र के अक्षांशादि अवयव

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जब समान हो वह समय ज्ञात करे तथा चंद्रग्रहण के लिए पूर्णमासी का स्पष्ट समय ज्ञात करे तथा जब उनके अंश कलादि समान हो केवल राशि में छः का अन्तर हो, वह स्पष्ट समय ज्ञात करे और उक्त समय पर राहु की स्थिति भी ज्ञात करे।

विशेष— आचार्य ने स्वकृत भाष्य में कहा है कि तिथिअन्त कालिक (अमावस्या) के समय सूर्य, चंद्र तथा राहु को ज्ञात करे। सूर्य तथा चन्द्र में देशांतर, भुजांतर, उदयांतर आदि कर्म करके उनका आनयन करे। इनका नतकर्म भी पूर्वोक्त प्रकार से साधित करे। चन्द्रग्रहण के लिए इसी प्रकार पूर्णमासी का आनयन करे।

अन्य आचार्यों ने भी यही बात अपने-अपने ग्रंथों में अपने प्रकार से कही है।

इदानीमर्केन्द्वोः कक्षाव्यासार्धे आह—

नगनगाग्निनवाष्टरसा ६८६३७७ रवे रसरसेषुमहीषु ५१५६६ मिता विधोः।
निगदितावनिमध्यत उच्छ्रितिः श्रुतिरियं किल योजनसंख्यया॥३॥

सूर्य-चंद्र की कक्षा का व्यासार्ध—

सूर्य-प्रभा टीका— रविगोल केन्द्र की पृथ्वी गोल केंद्र से दूरी ६८६३७७ योजन तथा चंद्रगोल केन्द्र की पृथ्वी गोल केंद्र से दूरी ५१५६६ योजन तुल्य है। यह इनका कर्ण है। भूकेंद्र से इतने योजन ऊपर इनकी कक्षा है।

उपपत्ति— आचार्य ने कक्षाध्याय में इन ग्रहों (सूर्य चंद्रादि) की कक्षा की परिधि कही है लेकिन व्यास नहीं कहा है। आचार्य ने वहाँ सूर्य की कक्षा की परिधि ४३३१४९७।३० तथा चन्द्र कक्षा परिधि ३२४००० योजन कही है। अतः अनुपात किया कि यदि ३९२७ योजन परिधि में १२५० योजन व्यास होता है तो सूर्य तथा चंद्र की यहाँ कही गई कक्षा परिधियों में उनकी कक्षा का व्यास कितना होगा? इस प्रकार करने से आचार्योक्त संख्या प्राप्त होती है। यहाँ आचार्य ने १२५० व्यास के लिए परिधि ३९२७ कही है अर्थात् परिधि तथा व्यास का अनुपात जो सदा स्थिर रहता है उसका मान आचार्य के अनुसार $\frac{३९२७}{१२५०}$ भिन्न द्वारा व्यक्त होता है। यह आधुनिक π (पाई) के मान के अत्यन्त आसन्न ३.१४१६ है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अतः $\frac{३९२७}{१२५०} \times ६८९३७७ \times २ = ४३३१४९३।३०$ तथा

$\frac{३९२७}{१२५०} \times ३२४००० \times २ = ३२३९९९.४९$ प्राप्त होता है।

ललाचार्य ने चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त प्रकार ही कहा है। शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ—

"खखनखाद्रिहृतं भयुजो भवेद् ग्रहयुजो निजपर्ययहृत् पृथक्।
शरयमाङ्गहता भनवाग्निहृद् ग्रहवृत्तेः श्रवणः फलमुच्यते॥३॥

यहाँ लल्लाचार्य ने π का यही उपरोक्त मान कहा है।

इदानीमस्य योजनात्मककर्णस्य स्फुटीकरणार्थं कलाकर्णं तावदाह—

मन्दश्रुतिर्द्राक्श्रुतिवत् प्रसाध्या तया त्रिभज्या द्विगुणा विहीना।
त्रिज्याकृतिः शेषहता स्फुटा स्याल्लिप्ताश्रुतिस्तिग्मरुचेर्विधोश्च॥४॥

योजनात्मकर्ण से कलाकर्ण की गणना—

सूर्य-प्रभा टीका— शीघ्रफल आनयन करने में सूर्य-चंद्र के शीघ्रकर्ण तथा मंदकर्ण साधित करने होते हैं। उस कर्ण को द्विगुणित त्रिज्या में से घटा कर शेष से त्रिज्या के वर्ग में भाग देने से प्राप्त फल कला कर्ण होता है। इसी प्रकार चंद्रमा का ज्ञात करे।

उपपत्ति— जो मन्द नीचोच्च वृत्त परिधि अंश कहे गये हैं वे त्रिज्या तुल्य व्यासार्ध के लिए कहे हैं। जो ग्रह के कर्ण प्राप्त होते हैं उस कर्णानुसार ग्रह कक्षा होगी। अतः त्रैराशिक से उसको परिणत किया कि यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतनी मंद परिधि अंश होते हैं तो कर्ण व्यासार्ध में कितने होंगे? इस प्रकार जो परिधि प्राप्त हो उससे असकृत् कर्मद्वारा कर्ण का आनयन करे। इस प्रकार कलाकर्ण स्फुट होता है। यह असकृत कर्म जो लम्बा तथा मुश्किल है को त्याग कर सकृत्कर्म के द्वारा कलाकर्ण स्फुट करते हैं। प्रथम यह कर्ण प्राप्त हो उसको त्रिज्या रूप कल्पित करके यहाँ बताये अनुसार कर्ण स्फुट करे। यदि कर्ण त्रिज्या से अल्प हो तो जितना न्यून है उतना त्रिज्या में जोड़ देवें और जितना अधिक हो उतना त्रिज्या में से घटा देवें तथा प्राप्त शेष से अनुपात करे कि यदि (२ त्रि – कर्ण) त्रिज्या में त्रिज्या तुल्य कर्ण प्राप्त होता है तो त्रिज्या मान में कितना होगा? इस प्रकार अनुपात करने से स्फुट कर्ण सकृत प्राप्त होगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं योजनात्मककर्णस्य स्फुटत्वमाह—

लिप्ताश्रुतिघ्नस्त्रिगुणेन भक्त स्पष्टो भवेद्योजनकर्ण एवम्।

योजनात्मक कर्ण का स्फुटीकरण—

सूर्य प्रभा टीका— लिप्ताकर्ण को योजनात्मक कर्ण से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से स्फुट योजना कर्ण प्राप्त होता है।

उपपत्ति— यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतना स्फुट कला कर्ण होता है तो योजनात्मक व्यासार्ध में कितना होगा? प्राप्त फल भूमध्य से ग्रह की ऊँचाई तक के योजन होते हैं।

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के अध्याय ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कलाकर्ण हतावेतौ विष्कम्भार्धविभाजितौ।
स्फुट योजनकर्णो तौ सूर्याचन्द्रमसोर्विदुः॥३॥"

भास्कर प्रथम ने लघुभास्करीय के अध्याय ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अविशेषकलाकर्णताडितौ त्रिज्यया हृतौ।
स्फुटयोजनकर्णो तौ ययोरेव यथाक्रमम्॥३॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"निजमृदुश्रवणेन हते श्रुती त्रिभुगुणेन हृते भवतः स्फुटे।
श्रवणमध्यम भुक्तिहतोऽथवा निजनिजस्फुट भोगविभाजितः॥५॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के अध्याय २१ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कक्षा व्यासार्धगुणा मण्डललिप्ता विभाजिता कर्णः।
स्वकलाकर्णेन गुणः कर्णस्त्रिज्याहतः स्पष्टः॥३१॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

स्वाविशेष कलिकाश्रवणघ्नं व्यासखण्डविहृतं स्फुटमाहुः।५$\frac{१}{२}$।

इदानीं योजनबिम्बान्याह—

बिम्बं रवेर्द्विद्विशरर्तु ६५२२ संख्यानीन्दोः खनागाम्बुधि ४८० योजनानि॥५॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूव्यासहीनं रविबिम्बमिन्दुकर्णाहतं भास्करकर्णभक्तम्।
भूविस्तृतिर्लब्धफलेन हीना भवेत् कुभाविस्तृतिरिन्दुमार्गे॥६॥

योजन बिम्ब—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य बिंब व्यास ६५२२ योजन तथा चंद्र बिंब व्यास ४८० योजन होता है। भूव्यास को रवि बिंब व्यास में से घटाकर चंद्र के कर्ण से गुणा करके सूर्य कर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल को भू व्यास में से घटाने से चन्द्रमार्ग (चन्द्रस्थान) पर कुभा (भूछाया) का विस्तार (व्यास) होता है। ये योजनात्मक बिंब हैं। कुभा के मान को राहु का योजनात्मक मान कहा है।

उपपत्ति— जिस दिन सूर्य की स्फुट गति मध्यगति तुल्य हो उस दिन सूर्योदय काल पर चक्रकला व्यासार्ध तुल्य दो यष्टि केदृ तथा दृस्प के मूल के मिलान बिन्दु दृ से ग्रह के वेध से जो केस्प का मान होता है वह रविबिंब कला होता है।

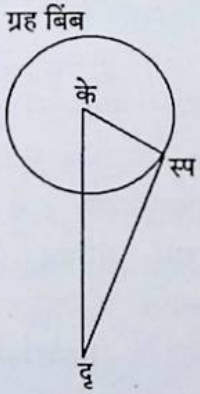

चित्र में के = ग्रहबिंब का केंद्र है। दृ = दृष्टी स्थान है। दृके = दृष्टिसूत्र है। दृष्टि स्थान दृ से ग्रह बिंब की स्पर्श रेखा = दृस्प है। के स्प = ग्रह बिंब व्यासार्ध है। ग्रह बिंब व्यासार्ध के सम्मुख दृष्टि स्थान गत कोण = स्फुट बिम्बार्धकला ∠दृ स्प के = ९०°। उच्च स्थान में ग्रह बिंब छोटा तथा नीच स्थान में बड़ा होता है तथा वहाँ गति भी क्रमशः छोटी तथा अधिक होती है। अतः बिंबों की निष्पत्ति गति की निष्पत्ति के तुल्य होती है। रविबिंब कला ३२।३१।३३ कलादि होता है तथा पूर्णिमा को चंद्र की मध्यमगति स्पष्ट ३२।०।९ कला प्राप्त होती है। बिंबकला को योजनात्मक करने के लिए अनुपात किया कि यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतना मान का बिंब होता है तो पठित कर्ण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योजन में कितना होगा? इस प्रकार करने से ६५२२ योजन प्राप्त होता है, यह सूर्यबिंब मान है तथा चंद्रबिंब मान ४८० तुल्य प्राप्त होता है। सूर्य के व्यास से भूमि का व्यास अल्प होने पर ही उसकी छाया सूचिकार होगी तथा दूर तक चंद्र कक्षा से आगे तक जाती है। रविकर्ण में रवि भूमि व्यासान्तर योजन ४९४१ प्राप्त होते हैं तो चंद्र कर्ण में कितने? फल भूव्यास के अपचय योजन होते है। इसमें से भूव्यास घटाने से चंद्र कक्षा में भूभा का व्यास होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के अध्याय २१ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मृद्दहनजलमयानां विष्कम्भो योजनैः क्विनेन्दूनाम्।
शशिवसुतिथिभि १५८१ र्यमपक्ष शररसै ६५२२ शून्यवसुवेदैः ४८०॥३२॥
क्वर्कव्यासान्तर गुणमिन्दुस्फुटकर्णमर्ककर्णहृतम्।
प्रोह्य भुवो भूच्छाया विष्कम्भश्चन्द्रकक्षायाम्॥३३॥"

श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर के अध्याय ५ के श्लोक ४$\frac{१}{२}$ में आचार्योक्त कहा है—

"इन्दुश्रुतिः स्फुटमहर्यतिभूतधात्रि व्यासान्तरेण गुणिता रविकर्ण भक्ता।
भूविस्तृतेः फलमपोह्य वदन्ति शेषं छायां भुवः शशधरभ्रमणप्रदेशे॥"

सूर्यसिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार-४ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्फुटेन्दु भुक्तिर्भूव्यास गुणिता मध्ययोद्धृता।
लब्धं सूची, महीव्यास स्फुटार्क श्रवणान्तरम्॥४॥
मध्येन्दुव्यास गुणितं मध्यार्कव्यासभाजितम्।
विशोध्य लब्धं सूच्यां तु तमो लिप्तास्तु पूर्ववत्॥५॥"
"सार्धनि षट् सहस्राणि योजनानि विवस्वतः।
विष्कम्भो मण्डलस्येन्दोः सहा शीत्या चतुश्शतम्॥१॥
स्फुट स्वभुक्त्या गुणितौ मध्यभुक्त्योद्धृतौ स्फुटौ॥$\frac{१}{२}$॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सि. के चं. ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है यथा–

"कुमिति क्षितिनविस्तारान्तरे चन्द्रार्कश्रवणोद्धृते हते।
त्रिभमौर्विकया फलान्तरं मानं वा तमसः कलागतम्॥१२॥"
"वेन कर्णहृदिलार्कविशेष चन्द्रकर्ण निहतो विफला भूः॥९॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं योजनानां कलाकरणार्थमाह—

सूर्येन्दुभूभातनुयोजनानि त्रिज्याहतान्यर्कशशीन्दुकर्णैः।
भक्तानि तत्कार्मुकलिप्तिकास्तास्तेषां क्रमान्मानकला भवन्ति॥७॥

योजनात्मक कर्ण को कलात्मक बनाना—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य, चंद्र तथा भूच्छाया के व्यासों को त्रिज्या से गुणा करके क्रमशः सूर्य, चंद्र तथा चंद्र मन्द कर्ण से विभाजित करने से उनके कला कर्ण का मान क्रमशः प्राप्त होता है।

उपपत्ति— त्रैराशिक किया कि यदि योजनात्मक व्यासार्ध (सूर्य की दूरी) में इतना बिंब मान होता है तो त्रिज्या व्यासार्ध में कितना होगा? प्राप्तफल का चाप लघुज्या विधि से ज्ञात करे।

विशेष— आचार्योक्त प्रकार ही **भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय** के ग्रहणाधिकार में कहा है। यथा–

"विष्कम्भार्धहतौ व्यासौ स्फुटयोजन भाजितौ।
भवतस्तौ कलाव्यासावुष्णशीतलतेजसौः॥५॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"त्रिभगुणेन हतानि रविश्रुतिस्मरसुहृच्छ्रवणोपहृतान्यतः।
फलधनूंषि वपूंषि फलानि वा हिमगु-तिग्ममयूख-शशिद्विषाम्॥८॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के अध्याय २१ स्फुट गति वासना में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"तद्गुणितं व्यासार्धं शशिकर्णहृतं तमः प्रमाणकलाः।
एवं त्रिज्यारविशशिविष्कम्भगुणा स्वकर्णहृता॥३४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"एतानि भास्करमृगाङ्कमहीप्रमाणां त्रिज्याहतानि तनुविस्तृतियोजनानि।
भक्तानि भानुशशिशीतकरश्रवोभिर्लिप्तामयानि हि भवन्ति यथाक्रमेण॥६॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"रविचन्द्रतमः प्रविस्तरास्त्रिज्याघ्ना रविचन्द्र चन्द्रजैः।
विभजेत्स्फुटकर्णकैः क्रमात तद्बिम्बानि कलागतानि वै॥११॥"

इदानीं प्रकारान्तरेण बिम्बकलानयनमाह—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भानोर्गतिः स्वदश १० भागयुतार्धिता वा
बिम्बं विधोस्त्रि ३ गुणिता युगशैल ७४ भक्ता।
तिथ्यद्रि ७१५ हीनशशिभुक्तिरिषुघ्नि २५ भक्ता
नन्दाक्षि २९ युग्भवति वा विधुबिम्बमेवम्॥८॥

प्रकारांतर से बिंबकला ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्यगति में अपना दशमांश युक्त करके उसका आधा करने से रवि का कला बिंब मान प्राप्त होता है। चंद्रमा की गति को (३) तीन से गुणा करके ७४ से विभक्त करने से चंद्र बिंब का कलात्मक मान होता है, अथवा चन्द्र गति में से ७१५ घटा कर २५ से विभक्त करने से प्राप्तफल में २९ युक्त करने से चंद्र का कलात्मक बिंब मान होता है।

उपपत्ति— त्रिज्या से बड़ा कर्ण हो तो ग्रह बिंब लघु होता है तथा गति लघु हो तो ग्रह भूमध्य से दूर होता है। कर्ण अल्प हो तो बिंब पृथु (बड़ा) तथा गति अधिक होती है। अतः त्रैराशिक से यदि योजनात्मक गति ११८५८।४५ में ६५२२ योजन बिंब प्राप्त होता है तो कला गति में कितनी?

$$\frac{६५२२}{११८५८।४५} = \frac{६५२२}{११८५८\ \frac{३}{४}} = \frac{६५२२\times४}{११८५८\times४+३} = \frac{२६०८८}{४७४३५}.$$

$$= \frac{११}{२०} = \frac{१}{२}\left(१+\frac{१}{१०}\right)$$ अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

इसी प्रकार चन्द्रमा के लिए $\frac{४८०}{११८५९} = \frac{३}{७४}$ यहाँ १६० से ऊपर नीचे विभक्त किया है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

७१५ तुल्य गति खण्ड में २९ तुल्य बिंब खण्ड प्राप्त होता है। उपरोक्त सूत्र से $\frac{३}{७४} \times ७१५ = २९$ कला स्वल्प. प्राप्त होता है। चंद्र गति मध्यम ७९० कला होती है जिसके लिए $\frac{३}{७४} \times ७९० = ३२$ कला गति प्राप्त होती है। अर्थात् शेष ७५ कला चंद्र गति के लिए २९ कला से ३ कला अधिक होती है। अथवा गति शेष ७५ को २५ से विभक्त करने से बिंब शेष ३ कला प्राप्त होता है और २९+३ = ३२ कला पूर्वप्राप्त होता है, चंद्र की ७९० मध्यम गति के लिए। अतः आचार्य ने चंद्रगति में से ७१५ घटा कर (७९०–७१५ =७५)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शेष (७५) को २५ से विभक्त करने से प्राप्त ३ कला को २९ कला में जोड़ने के लिए कहा है। सो उपपन्न हुआ।

विशेष— लल्लाचार्य ने भास्करोक्त प्रकार ही गणना करके सूर्य, चंद्र तथा भूभा के कलात्मक व्यास कहे हैं। अध्याय ५ चंद्रग्रहणाधिकार शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ–

"शिवहता द्विभहृच्छशिनो गतिस्तनुकलाः स्युरिनस्य नखोद्धृताः।८$\frac{१}{२}$।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त प्रकार कहा है। यथा–

"रवि शशि भुक्ती भवदशगुणे नखैः स्वजिनैर्हृते माने।५$\frac{१}{२}$।"

ब्रह्मगुप्तोक्त $\frac{११}{२०}$ को भास्कराचार्य ने $\frac{१}{२}\left(१+\frac{१}{१०}\right)$ लिख दिया तथा $\frac{१०}{२४७}$ चं. गति को भास्कराचार्य ने

$$\frac{१०\text{ चं.ग.}}{\frac{७४०}{३}} = \frac{\text{चं.ग.}}{\frac{७४}{३}} = \frac{३\text{ चं.ग.}}{७४}$$ लिख दिया है।

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के ग्रहणाधिकार-५ में आचार्योक्त प्रकार से अलग भिन्न कही हैं। यथा–

"नवांशाः पञ्चभोगस्य भूतवर्गांश एव च।
स्वतुरीयविलिप्ताभिर्युतहीने तनू स्फुटे॥६॥
सूर्याचन्द्रमसोर्विद्धि राहुबिम्बं च कथ्यते।
षड्क्त्यंशश्चन्द्रभोगस्य षोडशांशो विलिप्तिकाः॥७॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"रुद्रैः पंक्तया रविशशिगतिताडिते वा विभक्ते कृत्या (२०)
भूभृज्जलधिनयनै २४७ स्ते तयोर्मान लिप्ताः॥९॥

आर्यभट (द्वि) ने महासिद्धान्त के चन्द्रग्रहणराधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्फुटभुक्ती क्य-कन-घ्नयौ खेनै रभिसै हृते बिम्बे॥५॥"

खण्डखाध्याय के अध्याय ४ के श्लोक २ पूर्वार्ध में आचार्योक्त ही कहा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ भुजज्ञानार्थमाह—

सौम्यं त्वधोमुखनरस्य तलं प्रदिष्टं
स्वाग्रास्वशङ्कुतलयोः समभिन्नदिक्त्वे।
योगोऽन्तरं भवति दोरिनचन्द्रदोष्णो-
स्तुल्याशयोर्विवरमन्यदिशोस्तु योगः ॥३॥
स्पष्टो भुजो भवति चन्द्रभुजाश इन्दोः शुद्धे भुजे रविभुजाद्विपरीतदिक्कः ॥

भुज ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— रवि की अग्रा तथा उसका शंकुतल का एक दिशा में होने पर योग तथा भिन्न दिशा में होने पर अन्तर रविभुज होता है और चंद्र की अग्रा तथा शंकुतल का इसी प्रकार योगान्तर चंद्र भुज होता है। चंद्र तथा सूर्य के भुजों का एक दिशा में होने पर अन्तर तथा भिन्न दिशा में होने पर योग करने से शृंगोन्नति का स्फुट भुज होता है। चंद्र भुज की दिशा ही स्फुट भुज की दिशा माने। यदि चन्द्र भुज सूर्य भुज से अल्प हो तो स्पष्ट भुज की दिशा चंद्र भुज की दिशा से विपरीत होती है। तुल्य दिशा होने पर भी दोनों के अन्तर की भुज की दिशा चन्द्र भुज की दिशा होती है।

उपपत्ति— यहाँ भुज ज्ञात की गई है। पूर्वापर सूत्र तथा शंकु मूल का दक्षिणोत्तर अन्तर भुज होता है। पूर्वापर सूत्र तथा उदयास्त सूत्र का अंतर अग्रा होती है। यह अग्रा यदि उत्तर हो तो उदयास्त सूत्र और शंकु का अन्तर शंकुतल दक्षिण होने पर अग्रा में से कम करने से जो शेष रहता है वह अग्राखंड उत्तर भुज होता है। पूर्वापर सूत्र से उत्तर की ओर इतने अंतर पर शंकु रहता है, इसका यह अर्थ है। यह अन्तर करने से शंकुतल में से अग्रा घट जावे तो दक्षिण भुज होता है। यदि अग्रा दक्षिण हो तो शंकुतल भी दक्षिण होता है। इनका योग करने से समसूत्र तथा शंकु का अन्तर भुज दक्षिण होता है। इस प्रकार अधोमुख शंकु उत्तर गोल में अग्रा तथा शंकु तल का योग होता है। यहाँ शंकुतल उत्तर होता है। दक्षिण गोल में इनका अन्तर करते हैं। इस प्रकार चंद्र-सूर्य का भुज होता है। इनसे स्फुट भुज ज्ञात करते हैं। चंद्र-सूर्य का याम्योत्तर अंतर स्फुट भुज होता है। यह दोनों के भुज एक दिशा में होने पर अन्तर करने से तथा भिन्न दिशा में होने पर योग करने से प्राप्त होता है।

जैसे यदि चंद्र का उत्तर भुज १४० हो तथा रवि का ९० कला उत्तर हो। सूर्य तथा चंद्र भुज एक ही दिशा में होने से रवि भुज को चंद्र भुज में से घटाने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से ५० कला उत्तर भुज शेष बचा। इसी प्रकार ये दक्षिण भुज होने पर चंद्र भुज शेष दक्षिण भुज होगा। यदि रवि भुज में से चंद्र भुज घट जावे तो उत्तर दिशा में होने से पूर्वापर सूत्र से उत्तर में चंद्र शंकु ५० कला अन्तर पर होता है। रवि शंकु ९० कला अन्तर पर है अतः रवि शंकु से ४० कला दक्षिण की ओर चंद्र शंकु है।

अग्रा उत्तर होने पर धन तथा दक्षिण होने पर ऋण होती है। इसी प्रकार भुज होता है। लेकिन शंकु दक्षिण होने पर धन तथा उत्तर होने पर ऋण होता है। इन की सहायता से इस अध्याय में स्पष्ट भुज, सूर्य तथा चंद्र के भुज के एक दिशा में होने पर उनका योग तथा विपरीत दिशा में होने पर उनका अन्तर तुल्य परिभाषित किया गया है तथा स्पष्ट भुज की दिशा को चंद्र के भुज की दिशा में ही कहा है।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के चंद्र शृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अग्रे पृथक् स्वशङ्कुतलतुल्ययुतिरन्यदिग्वियुतिः ॥६॥
पृथगन्तरसंयोगौ भुजो यतोऽर्कात् शशी समान्यदिशोः।$\frac{१}{२}$।"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रशृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अग्राकानृतलयोः समाशयोः संयुतिर्वियुतिरन्यदिक्स्थयोः।
चन्द्रयोर्भवति बाहुरैन्दवोऽग्रैवभास्कर भुजस्ततोऽन्यदा ॥८॥
तां भुजां दिनकरस्य कल्पयेत् तद्युते शशिभुजेऽन्यदिग्गते।
चन्द्रसूर्य भुजयोः समाशयोर्जायते यदवशेषमन्तरे ॥१०॥
स्यात् स्फुटस्तु स भुजोऽत्र योगजे चन्द्रबाहुदिगथो वियोगजे।
शीतदीधितिभुजेऽधिकेऽपि वा व्यत्ययेन सवितुर्भुजेऽधिके ॥११॥"

इदानीं कोटिमाह—

योऽधो नरो दिनकृतः स विधोरुदग्रशङ्क्वन्वितो मम मता खलु सैव कोटिः ॥४॥

कोटि ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— रवि का अधः शंकु तथा चंद्रमा का ऊर्ध्व शंकु का योग आचार्य के मत से कोटि होती है।

उपपत्ति— सूर्य तथा चंद्र का याम्योत्तर अन्तर स्पष्ट भुज होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की तरफ विमण्डल तथा क्रांतिवृत्त का अंतर ४।३० अंश होता है। विमण्डल गत चंद्र का क्रांतिवृत्त से जो अंतर होता है वह दक्षिणोत्तर विक्षेप होता है। उसको ज्ञात करने के लिए चंद्र तथा पात का अंतर ज्ञात करते हैं जिसके लिए चंद्र तथा पात का योग करते हैं, क्योंकि पात की विलोम गति होती है। इस सपात चंद्र की ज्या का अनुपात किया कि यदि त्रिज्या तुल्य ज्या में परम २७० कला तुल्य विक्षेप होता है तो प्राप्त सपात चन्द्र में कितना होगा? प्राप्तफल चंद्र का विक्षेप होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"खत्रिघन (२७०) गुणा व्यासार्ध भाजिता चन्द्रपात योगज्या।
विक्षेपकलाः सौम्या षड्राश्यूनेऽधिके याम्याः॥५॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–
"पातोनितस्य समलिप्तक शीतरश्मेर्जीवा कृतेषु (५४) गुणिता त्रिगजर्तु ६८३ भक्ता"।

यहाँ श्रीपति ने पात के बारह राशि में शुद्ध होने के कारण सपात चंद्र भुजज्या के स्थान पर विपता चन्द्र भुजज्या ग्रहण किया है तथा विपात चंद्र भुजज्या के गुणक चन्द्र परम शर २७० कला को तथा श्रीपति द्वारा स्वीकृत त्रिज्या ३४१५ तुल्य हर को ५ से अपवर्तित करने से २७०।३४१५ = ५४।६८३ प्राप्त होता है जो श्रीपति ने श्लोक में कहा है।

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका के सौर सिद्धान्त अध्याय ९ में परम शर २७० कला कहा है। यथा–

"चक्रात् पतितं (वक्त्रं) षड्राशियुतं तु पुच्छाख्यम्।
(नव) विविरस्य लिप्ता विक्षेपः सप्त (तिर्द्वि) शति॥६॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है यथा–

"रविसमानकलस्य कलावतो वितमसो गुणितां भुजशिञ्जिनीम्।
तिथिभिरिन्दुनवेन्दुभिर्हरदे व्यगुनिशाकर गोलवशाच्छरः॥११॥"

यहाँ आचार्य ने २७०।३४३८ = $\frac{१५}{१९१}$ कहा है जो भास्करोक्त तुल्य ही है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के अध्याय ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दिक् तत्र शशिनोग्राह्या पातहीनान्निशाकृतः।
ज्यां खसप्ताश्विभिः क्षुण्णां कलाकर्णेन संहरेत्॥३०॥"

भास्कर प्रथम ने लघुभास्करीय के अध्याय ४ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"पातोन समलिप्तेन्द्रोर्जीवा खत्रिघनाहता।
कर्णेन ह्रियते लब्धो विक्षेपः सौम्यदक्षिणः॥८॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चंद्रग्रहणाधिकर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"तत्कालपातसहितात्समलिप्तचन्द्रदोर्ज्या खभै (२७०) रभिहतं विभजेत् त्रिमौर्व्या। सौम्यः क्रियादभिहितस्त्वितरश्च जूकाद्विक्षेपकः शिशिरगोः कलिकादिकः स्यात्॥१६॥"

इदानीं ग्रहणे ग्रासप्रमाणमाह—

यच्छाद्यसंछादकमण्डलैक्यखण्डं शरोनं स्थगितप्रमाणम्।
तच्छाद्यबिम्बादधिकं यदा स्याज्ज्ञेयं च सर्वग्रहणं तदानीम्॥११॥

ग्रहण में ग्रास प्रमाण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— छाद्य तथा छाद्यक के मानैक्यार्ध में से शर को घटाने से प्राप्तफल **स्थगित** का प्रमाण होता है। यदि इसका मान छाद्य के बिंब से अधिक हो तो पूर्ण ग्रहण होता है।

उपपत्ति— सूर्य से छः राशि अन्तर पर क्रांतिवृत्त में भूच्छाया भ्रमण करती है। अतः पूर्णमास्यन्त पर भूच्छाया तथा चन्द्रमा की समान स्थिति होती है, किन्तु याम्योत्तर अन्तर शर (विक्षेप) तुल्य होता है। यह शर छाद्य तथा छाद्यक के बिंब के मध्य अन्तर तुल्य होता है। यह यदि बिंबैक्य अर्ध तुल्य हो तो इनके बिंब प्रांतों का मात्र संयोग (स्पर्श) होता है। यदि शर बिंबमानैक्यार्ध से अल्प हो तो छाद्य बिंब छाद्यक बिंब में प्रवेश करता है। अतः इस प्रकार स्थगित प्रमाण आचार्य ने कहा है। यह स्थगित मान यदि छाद्य बिंब से अधिक हो तो सर्व अर्थात् संपूर्ण ग्रहण होता है यह सरल बात है।

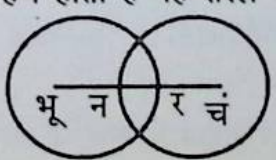

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चित्र में भू= पृथ्वी की छाया का केंद्र है। चं= चंद्रबिंब केंद्र है। चं न= चंद्रबिंब व्यासार्ध है। भू र = भूच्छायाबिंब व्यासार्ध है। न र= ग्रासमान है। चित्र के अनुसार,

भू र + चं न = भू र + र चं + न र

= भू चं. + न र

भूभा बिंबार्ध+चंद्र बिंबार्ध = चंद्र शर + ग्रास

मानैक्यार्ध = चंद्रशर + ग्रास

अतः मानैक्यार्ध – चंद्र शर= ग्रास मान आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

चंद्र बिंब अर्थात् ग्राह्य बिंब से ग्रास मान अधिक होने पर पूर्ण ग्रहण होगा। यह चित्र से स्पष्ट है। अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चन्द्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"छाद्यच्छादक मानैक्यार्ध विक्षेप हीनितं छन्नम्।
सर्वग्रहणं ग्राह्यादधिके खण्डग्रहणमूने॥७॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा अध्याय ५ – "क्षेपो भवत्यथ पिधानपिधेयबिम्बयोगार्धमूनममुना स्थगितं वदन्ति॥११॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"च्युतशरावरणावरणीययोर्दलयुतिः स्थगितस्य मितिर्भवेत्।
समधिकावरणीयतनोर्यदा सकलमेव तदावृतमादिशेत्॥१२॥"

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के पंचम अध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। आचार्योक्त कथन सूर्य ग्रहण तथा चंद्रग्रहण दोनों के लिए लागू होता है। यथा–

"सूर्येन्दुबिम्बस्पर्कदलेन सदृशी नतिः।
ग्रहणं भास्वतो न स्याद्धिनायामस्ति सम्भवः॥३३॥"

भास्कर प्रथम ने लघुभास्करीय अध्याय-४ में आचार्योक्त कथन को ही अन्य प्रकार से कहा है। दोनों कथन एक ही हैं। यथा–

"इन्दुहीनतमोव्यासदललिप्ताविवर्जिताः विक्षेपस्य न गृह्यन्ते तमसा शशलक्ष्मणः॥६॥"

सूर्य सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"तात्कालिकेन्दुविक्षेपंछाद्यच्छादकमानयोः योगार्धात् प्रोज्झ्य यच्छेषं तावच्छन्नं तदुच्यतो॥१०॥

ग्राह्यमानाधिके तस्मिन् सकलं न्यूनमन्यथा योगार्धादधिके न स्याद् विक्षेपे ग्राससम्भवः॥११॥

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"भूभा छादयतीन्दुं चन्द्रोऽर्कं तद्युतेर्दलं विशरम्।
स्थगितं छाद्यविहीनं कलापूर्वं नभश्चछन्नम्॥७॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चं. ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अन्तरेण तिमिरेन्दुखण्डयोः क्षेपके विरहितेऽवशेषकम्।
दृश्यते नभसि शीतगोर्यदानावशेषमखिलस्तदा ग्रहः॥२३॥"

इदानीं स्थितिमर्दार्धयोरानयनमाह—

मानार्धयोगान्तरयोः कृतिभ्यां शरस्य वर्गेण विवर्जिताभ्याम्।
मूले खषट् ६० संगुणिते विभक्ते भुक्त्यन्तरेण स्थितिमर्दखण्डे॥१२॥

स्थिति तथा मर्दार्ध आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— बिंब मानार्ध के योग तथा अन्तर के वर्ग में से शर का वर्ग घटाकर मूल लेने से प्राप्त प्रथक्-प्रथक् फलों को साठ (६०) से गुणा करके सूर्य चंद्र की गति के अन्तर से विभक्त करने से क्रमशः स्थिति खण्ड (अर्ध) तथा मर्द खण्ड (अर्ध) प्राप्त होते हैं।

सूत्र रूप में–

$$\text{स्थितिर्ध} = \frac{\sqrt{(\text{भूछाया त्रिज्या} + \text{चंद्रबिंब त्रिज्या})^2 - \text{चंद्रशर}^2} \times ६०}{(\text{चंद्रगति} - \text{सूर्य गति})}$$

$$\text{मर्दार्ध} = \frac{\sqrt{(\text{भूछायात्रि} - \text{चं. बिंब त्रि.})^2 - \text{चं.शर}^2} \times ६०}{(\text{चंद्रगति} - \text{सूर्य गति})}$$

उपपत्ति— स्पर्श (ग्रहण) काल पर छाद्य तथा छाद्यक के बिंबार्धों का योग उनके केंद्रों के अंतर तुल्य होता है। यह कर्ण रूप में होता है तथा चंद्र का शर कोटि रूप होता है। कर्ण तथा कोटि के वर्गान्तर का मूल भुज रूप

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होता है। यह ग्राहक मार्ग अर्ध होता है। सूर्य ग्रहण में चंद्र तथा चंद्रग्रहण में भूछाया के केंद्र का मार्ग ग्राहक मार्ग कहलाता है। ग्राहक मार्ग खण्ड के क्रमण काल का अनुपात चंद्र सूर्य के अग्र गमन के भुक्त अन्तर से किया कि भुक्ति (गति) अन्तर तुल्य कला यदि सूर्य चंद्र ६० घटी में चलते हैं तो लब्धि भुज कला में कितना होगा? प्राप्तफल स्थितिअर्ध घटियाँ होती हैं। स्पर्श काल पर शर को ज्ञात करके मध्य ग्रहण काल के शर से यह कर्म करने से यह स्थूल स्थितिर्ध प्राप्त होता है।

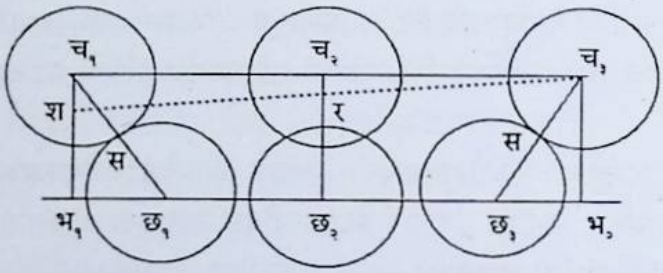

चित्र में $भ_१$ $छ_१$ $छ_२$ $छ_३$ $भ_२$ क्रांतिवृत्त है जिस पर भूछाया $छ_१$, $छ_२$ $छ_३$ भ्रमण करती है। $च_१$ $च_२$ $च_३$ चंद्र मार्ग है जिस पर वह भ्रमण करता है। अतः $च_१$ $भ_१$, $च_२$ $छ_२$ तथा $च_३$ $भ_२$ चंद्र का शर है जो क्रमशः बदल रहा है क्योंकि चंद्र विमण्डल क्रांतिवृत्त पर झुका हुआ है समानान्तर नहीं है। यदि चंद्रशर को स्थिर मान लेवें तो समकोण त्रिभुज $च_१$ $भ_१$ $छ_१$ में $च_१$ $भ_१$ = कोटि, $च_१$ $छ_१$ = कर्ण तथा $भ_१$ $छ_१$ = भुज है। यहाँ $च_१$ $भ_१$ = शर है, $च_१$ $छ_१$ = चंद्र तथा भूच्छाया बिंद्वार्ध (मानैक्यार्ध) है।

अतः भुज = $भ_१छ_१ = \sqrt{\text{चंद्र तथा भूच्छाया मानैक्यार्ध}^२ - \text{शर}^२}$ है। यह चन्द्र द्वारा भूच्छाया की तुलना में चली गई दूरी = $च_१$ $च_२$ − $छ_१$ $छ_२$ = $भ_१$ $छ_१$ है। भूछाया की गति सूर्य की गति ही है अतः भूछाया तथा चंद्र की गति के अन्तर ($च_१$ − $छ_१$) से चन्द्रमा तथा भूछाया चलते हुए $भ_१$ $छ_१$ दूरी, ग्रहण स्पर्श काल $च_१$ स $छ_१$ से ग्रहण मध्य काल $च_२छ_२$ तक चलते हैं। अतः इस दूरी को चलने में लगने वाला समय −

$$\text{स्थिति अर्ध} = \frac{भ_१छ_१ \times ६०}{\text{चंद्रछाया गति अंतर}}$$

$$= \frac{\sqrt{(\text{चंद्र बिंबार्ध} + \text{छाया बिंद्वार्ध})^२ - \text{शर}^२} \times ६०}{\text{चंद्र गति} - \text{छाया अंतर}}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्योंकि चंद्र तथा छाया की गति का अन्तर एक दिवस = ६० घटि में होता है, अतः त्रैराशिक से यह प्राप्त होता है।

यहाँ चंद्रमा के शर को स्थिर मान कर यह गणना की गई है। वास्तव में चंद्रशर स्थिर नहीं रह कर बदलता है जैसे चित्र में श भ$_१$, र छ$_२$, च$_३$भ$_२$ दिखाया है। अतः आचार्योक्त सूत्र स्थूल है।

अब मदार्ध करते हैं। यदि छादक छाद्य को पूर्ण रूप से ग्रस्त कर लेता है तो संमीलन का मान उस समय दोनों के बिंब केंद्रों के अन्तर के तुल्य होता है जो दोनों के बिंबार्ध मान के अन्तर तुल्य होता है। यह कर्ण रूप में होता है। उस समय पर जितना चंद्र विक्षेप होता है वह कोटि रूप है। इनके वर्गों के अन्तर का मूल भुज रूप ग्राहक खंड होता है। अतः यहाँ भी पूर्वोक्त अनुसार मर्दखण्ड का मान त्रैराशिक से,

मर्द अर्ध = $\frac{\sqrt{(\text{चंद्र बिंबार्ध} - \text{भूछाया बिंबार्ध})^२ - \text{चंद्रशर}^२} \times ६०}{\text{चंद्र गति} - \text{छाया गति}}$ प्राप्त होगा। यह भी स्थूल मान ही है। आचार्य द्वारा कथित दोनों मानों को यहाँ परिभाषित करते हैं।

स्थिति खंड— ग्रह के प्रथम स्पर्श से ग्रहण मध्य के काल को,जब छाद्य छाद्यक एक दूसरे में अथवा सम्मुख होते हैं, स्पर्श स्थिति खंड कहते हैं तथा ग्रहणमध्य से ग्रहण समाप्ति पर स्पर्श स्थिति के काल को मोक्ष स्थिति खंड कहते हैं।

मर्द खंड— पूर्ण ग्रहण काल से ग्रहण मध्य काल को संमीलन मर्द खंड तथा ग्रहमध्य काल से पूर्ण ग्रहण समाप्ति काल के अंतर को उन्मीलन मर्द खंड कहते हैं।

खंड शब्द से यहाँ अर्ध या आधा भाग अर्थ है।

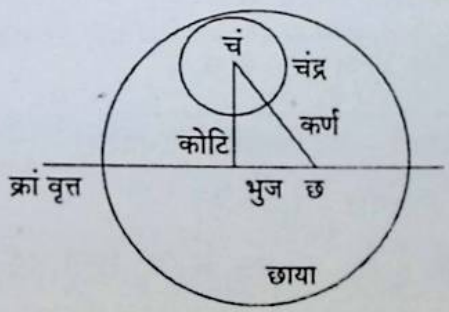

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यहाँ एक चित्र द्वारा चंद्रग्रहण के स्थिति खण्ड (खंड ग्रहणार्ध) तथा मर्द खण्ड (पूर्ण ग्रहणार्ध) को स्पष्ट रूप से समझाते हैं।

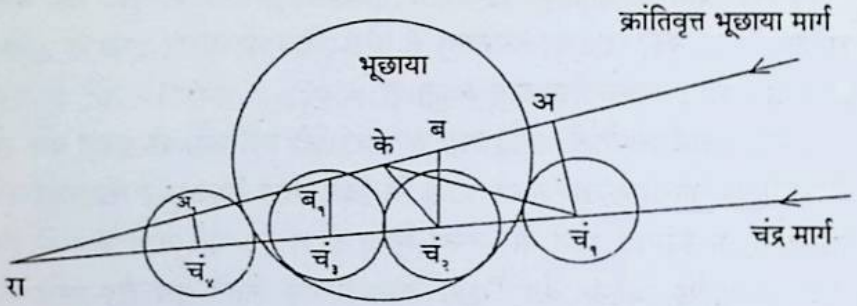

चित्र में मध्य में बडा गोल भूछाया बिंब है तथा $चं_१$, $चं_२$, $चं_३$ तथा $चं_४$ चन्द्रमा की ग्रहणारंभ स्पर्श से लेकर मोक्ष तक की विभिन्न स्थितियाँ हैं। रा = राहु है।

के अ = स्थिति खंड अर्थात स्थितिअर्ध दूरी है। यह ग्रहणस्पर्श से निमीलन आरंभ की स्थिति है।

के ब = मर्दखंड अर्थात मर्दार्ध दूरी है। यह निमीलन से उन्मीलन के अर्ध की स्थिति है।

त्रिभुज के $चं_१$ अ में $केअ^२ = केचं_१^२ - चं_१अ^२$

या $केअ^२$ = (छाया बिंबार्ध + चंद्र बिंबार्ध)^२ – चंद्रशर^२

या के अ = $\sqrt{(\text{छाया बिंबार्ध} + \text{चंद्र बिंबार्ध})^२ - \text{चंद्रशर}^२}$

यह दूरी पार करने में चंद्र (सूर्य) भूछाया को जो समय लगेगा वह

$$\text{स्थिति अर्ध} = \frac{\sqrt{(\text{छाया बिंबार्ध} + \text{चंद्र बिंबार्ध})^२ - \text{चंद्रशर}^२}}{\text{चंद्रगति} - \text{सूर्य (छाया) गति}} \times ६० \text{ है।}$$

इसी प्रकार निमीलन स्थिति पर–

के ब = मर्दार्ध = $\sqrt{(केचं_२^२ - बचं_२^२)}$

$$= \frac{\sqrt{(\text{भूभा बिंबार्ध} - \text{चंद्र बिंबार्ध})^२ - \text{चंद्रशर}^२}}{(\text{चंद्रगति} - \text{सूर्य गति})} \times ६०$$

चित्र से स्पष्ट है के अ तथा के $अ_१$ तुल्य नहीं है। इसी प्रकार के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब तथा के $ब_1$ तुल्य नहीं है। क्योंकि क्रांतिवृत्त तथा चंद्र पथ परस्पर झुके हुए हैं।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा अध्याय ५–

"छाद्येन युतोनस्यच्छादकमानस्य तद्दलकृतिभ्याम्।
विक्षेपकृतिं प्रोह्य पदे तिथिवत् स्थितिविमर्दार्धे॥८॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मानार्धसंयोग वियोगवर्गौ विक्षेपकृत्या रहितौ विधाय।
ये शेषमूले तिथिवत् कृते ते क्रमाद् भवेतां स्थितिमर्दखण्डे॥१२॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दलितमावरणं युतमूनितं पृथगथावरणीयदलेन च।
स्वगुणितं शरवर्गविवर्जितं कृतपदं गगनाङ्गहतं हरेत्॥१४॥
गतिवियोग कलाभिरतो भवेत् स्थितिदलं घटिकादि समर्दलम्॥$\frac{१}{२}$॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"छाद्यच्छादकयोगान्तरखण्डकृती कलम्बवर्गोने।
तन्मूलाभ्यां तिथिवत् स्थित्यर्धविमर्दखण्डे स्तः॥८॥"

भास्कर प्रथम ने लघुभास्करीय के चंद्रग्रहणाधिकार ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विक्षेप वर्गहीनायाः सम्पर्कार्धकृतेः पदम्।
गत्यन्तरहृतं हत्वा षष्टया स्थित्यर्धनाडिकाः॥१०॥
ग्राह्य ग्राहक विश्लेषदल विक्षेपवर्गयोः।
विश्लेषस्य पदं प्राग्वद् विमर्दार्धस्य नाडिकाः॥१४॥"

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"सम्पर्कार्धेनतिवर्गविशेषपदमाहतम्।
षष्ट्या गत्यन्तरेणाप्ताः स्थित्यर्धघटिकाः स्मृताः॥३४॥
ग्राह्यग्राहकबिंबार्धविश्लेषक्षेपवर्गयोः।
विश्लेषस्य पदं ज्ञेयं विमर्दार्धस्य लिप्तिकाः॥४०॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वराहमिहिर की पंच सिद्धान्तिका के चंद्रग्रहणाधिकार अध्याय ६ में पौलिश सिद्धान्तानुसार पूर्णग्रहण काल दिया गया है। यह भी स्थूल है जबकि भास्कराचार्य ने अर्धकाल दिया है। यहाँ वराहमिहिर ने यह भी कहा है कि चंद्र तथा छाया के केंद्र की दूरी ५५' कला होने पर ग्रहण आरंभ होता है अतः चंद्र तथा छाया का मानैक्यार्ध पंचसिद्धान्तिका के अनुसार ५५ कला होता है जिसको श्लोक में सीधा प्रयोग किया है।

"विक्षेपकलाकृतिवर्जितस्य पञ्चोनषष्टिवर्गस्य।
मू(लं) द्विगुणं तिथिवद्विभज्य कालः (स्थि)ते र्भवति॥३॥"

इसी प्रकार आगे श्लोक ५ में विमर्दकाल कहा है। पौलिश सिद्धान्त में पूर्णमासी के दिन चंद्र का शर $\frac{३८० \times (\text{चंद्र-राहु})}{९०}$ कहा है। यह $\frac{२१}{५}$ (चंद्र – राहु) के स्वल्पांतर से तुल्य है। अतः इस को स्वीकार करते हुए निम्नलिखित श्लोक कहा है। यथा–

"किन्त्वन्तरांशहीनैः पञ्चभिरुना हता दश कृतघ्नाः।
तत्पदमेकाश्विघ्नं प (श्चां) शोस्माद् विमर्दकलाः॥५॥"

यहाँ इस श्लोक से विमर्द काल = $\frac{\frac{२\times २१}{५} \times \sqrt{२५ - (\text{चं} - \text{रा})^२} \times ६०}{\text{चंद्र गति} - \text{राहु गति}}$

पौलिश सिद्धान्तानुसार जब चंद्र – राहु = ५° होता है तब ग्रास मान शून्य होता है अतः $५^२ = २५$ सूत्र में ग्रहण किया है।

सूर्य सिद्धान्त के चन्द्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ग्राह्य ग्राहक संयोग वियोगौ दलितौ पृथक्।
विक्षेपवर्ग हीनाभ्यां तद्वर्गाभ्यामुभे पदे॥१२॥
षष्ट्या संगुण्य सूर्येन्द्वोर्भुक्त्यन्तरविभाजिते।
स्यातां स्थिति विमर्दार्धे नाडिकादिफले तयोः॥१३॥"

मुञ्जालाचार्य ने लघुमानस के ग्रहयुत्याधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"बिंबान्तरकृतिं प्रोह्य मानैक्यार्धकृतेः पदम्।
षष्टिघ्नं समदिग्गत्योरन्तराप्तं स्थितेर्दलम्॥४३॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चं. ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"ग्राहकस्य दलमूनसंयुतं ग्राह्यमानशकलेन वर्ग येत्।
क्षेपवर्गरहितात् पृथक्पदे लिप्तिकाः स्थितिविमर्दखण्डयोः॥२४॥
मितियोग विशेष खण्डके ग्राह्यग्राहकयोः शरान्विते।
रहिते च परस्पराहते मूलं वा स्थितिखण्डको भवेत्॥२५॥"

इदानीं स्फुटीकरणमाह—

स्थित्यर्धनाडीगुणिता स्वभुक्तिः षष्ट्या ६० हृता तद्रहितौ युतौ च।
कृत्वेन्दुपातावसकृच्छराभ्यां स्थित्यर्धमाद्यं स्फुटमन्तिमं च॥१३॥

स्थितिर्ध स्पर्श-मोक्ष का स्फुटीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— अपनी गति (चंद्र, सूर्य अथवा राहु गति) को स्थितिर्ध घटी से प्रथक्-प्रथक् गुणा करके साठ (६०) से विभक्त करने से प्राप्त फल को रवि, चंद्र तथा पात में से ऋण करे। आद्य स्थित्यर्ध में धन तथा अन्त्य स्थित्यर्ध में ऋण करे। इस प्रकार बार-बार कर्म करने से स्थित्यर्ध स्फुट होता है।

उपपत्ति— त्रैराशिक द्वारा साठ घटी में चंद्र कला गति होती है तो स्थित्यर्ध घटी में कितनी होगी? प्राप्तफल स्थित्यर्ध घटी संबंधि चन्द्रगति कला होती है। इसी प्रकार पात की भी स्थित्यर्ध घटी संबंधि गति प्राप्त करे। इस प्रकार प्राप्त फलों को क्रमशः चंद्र तथा पात में से घटाने से तथा युत करने से विशिष्ट शुद्ध चन्द्र तथा पात प्राप्त होते हैं। इनके द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से चंद्रशर ज्ञात करके स्थित्यर्ध ज्ञात करे तथा उपरोक्त प्रकार से पुनः स्थित्यर्ध संबंधि चंद्र तथा पात गति ज्ञात करके चंद्र तथा पात में क्रमशः हीन तथा युत करके विशिष्ट चंद्र तथा पात गति प्राप्त करे। असकृत्कर्म से स्फुट स्थित्यर्ध प्राप्त होती है।

इदानीमेवं विमर्दार्धमपीत्यतिदिशति—

एवं विमर्दार्धफलोनयुक्तसपातचन्द्रोद्भवसायकाभ्याम्।
पृथक् पृथक् पूर्ववदेव सिद्धे स्फुटे स्त आद्यान्त्यविमर्दखण्डे॥१४॥

इसी प्रकार विमर्दार्ध का स्फुटीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त श्लोक की टीका तथा उपपत्ति में स्थित्यर्ध के स्थान पर विमर्दार्ध पढ़ने से इस श्लोक की व्याख्या तथा उपपत्ति हो जाती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त दोनों श्लोक १३-१४ में कहा हुआ कहे हैं। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"षष्ट्या विभाजिता स्थितिविमर्ददलनाडिकागुणा स्वगतिः।
आदौ रवीन्दुपातेष्वृणमसकृत् तेषु धनमन्ते॥९॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में आचार्योक्त कहा है, अध्याय ५ चंद्रग्रहणाधिकार यथा–

"रविशशाङ्कतमोगतिसङ्गुणं खरसहृत् स्वफलानि पृथक् पृथक्॥१५॥
रविशशाङ्कफले समलिप्तयोः क्षयधने भवतः प्रथमान्त्ययोः।
धनमृणं तमसः स्वफलं कलाः स्थितिविमर्ददलादसकृत् ततः॥१६॥"

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने अध्याय ५ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"स्थिति विमर्ददलाख्यघटीहृता दिनकरेन्दु तमोमयभुक्तयः।
गगन षट्क हृताः प्रथमान्त्यो क्षयधने भवतस्त्वसकृत्ततः॥१२-१३॥"

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के अध्याय ५ ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"क्षुण्णा स्थित्यर्धकालेन भुक्तिः षष्ट्या समाहृता।
समलिप्ते क्षयः स्पर्शे मोक्षे क्षेपो निगद्यते॥७५॥
विक्षेपस्तस्य तस्माच्च स्थित्यर्ध च प्रसाध्यते।
एवं कर्माविशेषोऽयं विमर्दधस्य वा पुनः॥७६॥"

भास्कर प्रथम ने लघुभास्करीय के अध्याय ४ में चंद्रग्रहण में आचार्योक्त कहा है। पूर्व श्लोक १२ की व्याख्या में आचार्य का श्लोक १० कह दिया है उससे आगे यहाँ दे रहे हैं–

"स्फुट भुक्तिहता नाडयः षष्ट्या नित्यं समुद्धृताः।
लब्धलिप्ताः क्षयश्चन्दे क्षेपश्च स्पर्शमोक्षयोः॥११॥
विक्षेपश्चन्द्रतस्तस्मान्नाडिका लिप्तिकाः शशी।
आवृत्या कर्मणा तेन स्थित्यर्धमविशेषयेत्॥१२॥"

सूर्यसिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार ४ में आचार्योक्त कथन को बहुत स्पष्ट करके कहा है। यथा–

"स्थित्यर्धनाडिकाऽभ्यस्ता गतयः षष्टिभाजिताः।
लिप्तादिप्रग्रहे शोध्यं मोक्षे देयं पुनः पुनः॥१४॥
तद्विक्षेपैः स्थितिदलं विमर्दार्धं तथाऽसकृत्।
संसाध्यमन्यथा पाते तल्लिप्तादि फलं स्वकम्॥१५॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"गत्यन्तरांशभाजिते घटिकादिके ते स्थित्यर्धसङ्गुणगतेर्वियदङ्ग लब्धम्।
प्रग्रासमुक्तिजखगेष्वृणवृद्धिसंज्ञं तत्क्षेपकात् स्थितिदलादसकृत् तु साध्ये॥२६॥
स्थित्यर्धलिप्ताभिहताः क्रमाद्या गत्यन्तरांशैः विभजेदमीषाम्।
भुक्तीः फलं प्रग्रहमोक्षकाले क्षयस्स्वमेष्वेवमनिश्चलत्वे॥२७॥"

इदानीमिष्टकाले भुजानयनमाह—

स्पर्शाग्रतः स्पार्शिकमिष्टमुक्तं प्राङ्मोक्षतो मौक्षिकमत्र पूर्वैः।
वीष्टेन निघ्नाः स्थितिखण्डकेन भुक्त्यन्तरांशा भुज इष्टकाले॥१५॥
एवं विमर्दार्धहताः पृथक् ते संमीलनोन्मलीनयोर्भुजौ स्तः।

इष्टकाल पर भुज आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— प्रथम स्पर्श के पश्चात् किसी इष्ट समय को 'स्पर्शिक इष्ट' कहते हैं तथा मोक्षकाल (अंतिम स्पर्श) से पूर्व किसी इष्ट समय को "मौक्षिक इष्ट" कहते हैं। स्थिति खण्ड में से इष्ट को घटाकर (गति) भुक्त अन्तर भाग से गुणा करने पर कलात्मक भुज होता है। इसी प्रकार (गति) भुक्त्य अंतरांश को प्रथम विर्मदार्ध से गुणा करने से संमीलन भुज होता है तथा द्वितीय से उन्मीलन भुज होता है।

उपपत्ति— इष्टकाल पर जहाँ ग्राहक बिंब तथा मध्य शराग्र चिंह है उनका अन्तर ग्राहक मार्ग खंड (अर्ध) भुज कहलाता है। इसके आनयन के लिए त्रैराशिक करते हैं कि यदि ६० घटी में भुक्त (गति) अंतरकाल प्राप्त होती है तो इष्ट में स्थिति अर्ध घटाने से प्राप्त काल में कितनी होगी? यहाँ गुणक भाजक में ६० से अपवर्तित करने से भुक्त्यन्तरांश गुणक स्थान में तथा हर स्थान में एक रहता है। इसी प्रकार विमर्दार्ध से मर्द भुज प्राप्त होता है।

इदानीं कर्णार्थमाह—

कोटिश्च तत्कालशरोऽथ कोटीदोर्वर्गयोगस्य पदं श्रुतिः स्यात्॥१६॥
मानैक्यखण्डं श्रुतिवर्जितं सद्ग्रासप्रमाणं भवतीष्टकाले।

कर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— तात्काकिल शर कोटि कहलाता है। कोटि तथा भुज के वर्गों के योग का मूल कर्ण होता है। मानैक्य खण्ड में से कर्ण को घटाने से ग्रास प्रमाण इष्ट काल पर प्राप्त होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— भुज यहाँ क्रांतिवृत्त में पूर्वापर है तथा उससे उत्तर-दक्षिण शर कोटि है। इनके वर्गों के योग का मूल कर्ण है। कर्ण दोनों के बिंबों के मध्यम का अन्तर होता है। इसको मानैक्यार्ध में से घटाने से प्राप्तफल तुल्य ग्राहक बिंब में ग्राह्य प्रविष्ट होता है। अतः इसको इष्टकाल पर ग्रास मान कहते हैं।, यह उपपन्न हुआ।

विशेष— पूर्वोक्त श्लोक १४, १५ तथा १६ एवं १६$\frac{१}{२}$ में भास्करोक्त कथन अन्य आचार्यों ने स्व-स्व ग्रंथों में कहे हैं।

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"भुक्त्यन्तरमिष्टोनस्थितिदलघटिकागुणं हृतं षष्ट्या।
बाहुः प्राग्वत् तत्फलहीनयुतैः सूर्यशशिपातैः॥११॥
तात्कालिकविक्षेपः कोटिस्तद्वर्गयुतिपदं कर्णः।
मानैक्यार्धात् कर्ण विशोध्य तात्कालिको ग्रासः॥१२॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"इष्टोनितस्थितिदलेन वियोग लिप्ता भुक्त्योर्हता गगनष्ट्कहृता भुजः स्यात्।
तात्कालिकोडुपपशरं कथयन्ति कोटिं दोः कोटिवर्गयुतिमूलमभीष्टकर्णः॥१९॥
एवं विमर्दार्धहते च गत्योः स्यादन्तरे दोः स्वशरश्च कोटिः।
निमीलनोन्मीलन कर्ण सिद्ध्यै ग्रासस्तु मानैक्यदलं विकर्णम्॥२०॥"

भास्कर प्रथम ने महासिद्धान्त के ग्रहणाधिकर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"इष्टकालविहीनेन स्थित्यर्धेन हतं हरेत्
सूर्येन्द्वोर्भुक्ति विश्लेषं षष्ट्या लब्धस्य वर्गितम्॥६२॥
प्रक्षिप्यावनतेर्वर्गे यन्मूलं रविसीमयोः।
इष्टग्रासशलाका स्यात् तच्छेषो ग्रास इष्टजः॥६३॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अभिमतघटिकारहितस्थितिजनितः कोटिसंज्ञको बाणः।
मर्दजघटिकोत्थशरौ नियमात् कोट्याहतौ भवतः॥१३॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इष्टोनस्थितिगुणितं गत्योरंशान्तरं भुजो भवति।
दोः कोटिकृतियुतिपदं कर्णस्तेनोनमानयोगदलम्॥१४॥''

सूर्य सिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''इष्टनाडीविहीनेन स्थित्यर्धोनार्कचन्द्रयोः।
भुक्त्यन्तरं समाहन्यात् षष्ट्याप्ताः कोटि लिप्तिकाः॥१८॥
भानोर्ग्रहे कोटिलिप्ता मध्यस्थित्यर्धसंगुणाः।
स्फुटस्थित्यर्धसंभक्ताः स्फुटाः कोटिकलाः स्मृताः॥१९॥
क्षेपो भुजस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रवस्तु तत्।
मानयोगार्धतः प्रोज्झ्य ग्रासस्तात्कालिको भवेत्॥२०॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है, अध्याय-५। यथा–

''इष्टन्यूनस्थितिदलगुणा भुक्तिविश्लेषलिप्ता षष्ट्या भक्ता भवति हि भुजः कोटि-रिष्टेन्दुबाणः।
तदवर्गेक्योद्भवमपि पदं कर्ण एतेन हीनं मानैक्यार्धं स्फुटमिहभवेद्वज्छितं छन्नमानम॥१४॥''

इदानीं ग्रासात् तत्कालज्ञानमाह—

ग्रासोनमानैक्यदलस्य वर्गाद्विक्षेपकृत्या रहितात् पदं यत्॥१७॥
गत्यन्तरांशैर्विहृतं फलोनं स्थित्यर्धकं स्वं भवतीष्टकालः।
तत्कालबाणेन मुहुः स्फुटोऽग्रे वक्षेऽन्यथा वा परिलेखतोऽमुम्॥१८॥

ग्रास मास से तत्काल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रास को मानैक्यार्ध में से घटाकर उसके वर्ग में से विक्षेप (चंद्रशर) के वर्ग को घटा कर मूल लेने से प्राप्तफल को सूर्य-चंद्र के गति अंतर से विभक्त करके स्थितिर्ध में से घटाने से इष्टकाल प्राप्त होता है। इस इष्ट काल पर शर का आनयन करके असकृत कर्म करके स्पष्ट मान ज्ञात करे।

यदि इष्टकाल पर ग्रास ग्रहणारंभ से ग्रहणमध्यकाल में है तो पूर्व प्राप्त फल को स्थिति अर्ध में से घटावें तथा यदि ग्रहणमध्य से मोक्ष काल के मध्य हो तो मोक्ष स्थितिऽर्ध काल में से घटाना चाहिये।

उपपत्ति— मानैक्यार्ध में से ग्रास को घटाने से कर्ण प्राप्त होता है तथा तात्कालिक शर कोटि होता है। इनके वर्गान्तर का मूल भुज होता है। इसको

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गति अंतर से विभक्त करने से प्राप्तफल इष्ट काल और मध्यग्रह का सावनान्तर है। इसको स्थिति अर्ध में से शोधित करने से इष्ट काल होता है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विष्टग्रासे मानयोरर्धयोगे स्वघ्ने मूलं क्षेपवर्गोनितं यत्।
तत् षष्टिघ्नं भुक्तिविश्लेषभक्तं स्वस्थित्यर्धाच्छुद्धमिष्टस्तु कालः॥२१॥
स्पर्शाद्यातो ग्राह्यमानस्य खण्डे दृष्टे शेष मुच्यमानस्य शेषः।
तत्कालेन्दो क्षेपमानीय सम्यक् कुर्यात् तावत् कर्म यावत् स्थिरं स्यात॥२२॥"

सूर्यसिद्धान्त के चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ग्राह्यग्राहकयोगार्धाच्छोध्याः स्वच्छन्नलिप्तिकाः।
तद्वर्गात् प्रोज्झ्य तत्कालविक्षेपस्य कृतिं पदम्॥२२॥
कोटिलिप्ता रवेः स्पष्टस्थित्यर्धेनाहता हृताः।
मध्येन लिप्तास्तन्नाडयः स्थितिवद् ग्रासनाडिकाः॥२३॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के चन्द्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"इष्टग्रासोऽभीष्टग्रासोनान्मानयोगजात् खण्डात्।
साध्यं स्थितिदलमसकृत् तदूनिता स्थितिरभीष्टकालः स्यात्॥१५॥

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"असकृद्ग्रासकलोनप्रमाणयुतिदलकृतेर्विशोध्य कृतिम्।
तात्कालिकविक्षेपस्य शेषमूलं कृतं तिथिवत्॥१३॥
प्रग्रहणस्थित्यर्धात् प्रोह्य प्रग्रहणतो भवेत् कालः।
मोक्षं विशोध्य मोक्ष स्थित्यर्धात प्राग् भवेन्मोक्षात्॥१४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय ५ के श्लोक १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"वीष्टग्रासात् तनुयुतिदलाद्वर्गितात् क्षेपकृत्या हीनान्मूलं
खरसगुणितं भुक्तिविश्लेषभक्तम्।
स्वात् स्थित्यर्धात् फलमपनयेदिष्टकालोऽसकृत्स
स्पर्शादूर्ध्वं भवति हि गतो मुच्यमाने तु शेषः॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चं. ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"वीष्टग्रासं मितियुतिदलं तत्कृति क्षेपकृत्या
हीना तस्याः पदमिह भुजो भुक्तिविश्लेषभागैः।
भक्तो नाड्यस्तदवधिविधोः क्षेपकेनासकृताः
प्राक्पश्चात्तत्स्फुटतरतिथिर्यः प्रयातः स्थिरत्वम्॥३५॥"

इदानीं स्पर्शादिव्यवस्थितिमाह—

मध्यग्रहः पर्वविरामकाले प्राक् प्रग्रहोऽस्मात् परतश्च मुक्तिः।
स्थित्यर्धनाडीष्वथ मर्दजासु संमीलनोन्मीलनके तथैव॥१६॥

स्पर्श, स्थिति ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— स्फुट पर्वांतकाल (पूर्णान्त तथा अमान्त काल) में मध्य ग्रह होता है। मध्यग्रह से पूर्व स्थित्यर्ध काल में स्पर्श होता है, मध्यग्रहणान्तर स्थित्यर्धकाल में मोक्ष होता है। मध्य ग्रहण से पूर्व विमर्दार्धकाल में निलीमन (सर्वग्रास) तथा मध्यग्रहण के पश्चात् विमर्दार्धकाल में उन्मीलन (सर्वग्रासान्त) होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्फुटतिथ्यन्ते मध्यं प्रग्रहणं स्थितिदलोनकेऽभ्यधिके।
मोक्षो निमीलनोन्मीलने मिर्दार्धहीन युते॥१५॥"

सूर्य सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्फुटतिथ्यवसाने तु मध्यग्रहणमादिशेत्।
स्थित्यर्धनाडिकाहीने स्पर्शो मोक्षस्तु संयुते॥१६॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्पर्शान्निमीलनं स्थितिदले विमर्दार्धहीनिते पश्चात्।
मोक्षादर्वागुन्मीलनं विमर्दस्तदैक्यार्धः॥१०॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चं. ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्थित्यर्धनाडी वियुतः समेतः स्फुटः तिथिः प्रग्रहमोक्षकालौ।
विमर्दखण्डं च विधेयमेवं निमीलनोन्मीलन सिद्धिहेतोः॥२८॥
पर्वणः स्थितिदलेन पुरस्तात् प्रग्रहो भवति चोपरिमोक्षः।
प्राङ्निमीलनमथोपरि दृष्टं शीतगोरिह विमर्ददलेन॥२९॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं वलनानयनमाह—

खाङ्का ९० हतं स्वद्युदलेन भक्तं स्पर्शादिकालोत्थनतं लवाः स्युः।
तेषां क्रमज्या पलशिञ्जिनीघ्नी भक्ता द्युमौर्व्या यदवाप्तचापम्॥२०॥
प्रजायते प्रागपरे नते क्रमादुदग्यमाशं वलनं पलोद्भवम्।

वलनानयन—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस समय का वलन साधन करना हो उस समय जो नतघटी हो उसकी (९०) नब्बे से गुणा करके चन्द्रग्रहण होने पर रात्रिर्ध से तथा सूर्य ग्रह होने पर दिनार्ध से विभक्त करने से प्राप्तफल अंशादि होते हैं। इनकी क्रमज्या को अक्षज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल का चाप अक्षवलन होता है। नत पूर्व होने पर यह उत्तर होता है तथा पश्चिम नत होने पर यह दक्षिण वलन होता है।

उपपत्ति— इसकी उपपत्ति गोलाध्याय में समझाई गई है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। ब्रह्मगुप्त ने द्युज्या के स्थान पर त्रिज्या स्थूल रूप में ग्रहण किया है। दोनों में यही अंतर है। यथा—

"प्राक्पश्चान्नतविषुवज्ज्ययोर्वद्यात् त्रिज्ययाप्तचापं यत्।
उत्तरयाम्ये पूर्वा विषुवद्वृत्तात् त्रिभे ग्राह्या॥१६॥"

ब्रह्मगुप्त ने उपरोक्ताचार्योक्त सूत्र में नत उत्क्रमज्या के स्थान पर नतक्रमज्या को लिया था।

भास्कर प्रथम ने भी महाभास्करीय में सूत्र में नतक्रमज्या लिया था। यथा ग्रहणाधिकार—

"मध्यतिथ्यन्तरासूनामुत्क्रमज्याक्षसङ्गुणा।
विष्कम्भार्धेन भक्तव्या लब्धकाष्ठस्य दिग्विधिः॥४२॥
व्यासार्धादधिकासूनां क्रमज्यां त्रिज्यया युताम्।
कृत्वैवमेव दिक्कल्प्या मध्ये प्राग्ग्रासवद्दिशा॥४३॥
उदग्दक्षिणतः प्राह्णे बिम्बप्राक्पश्चिमार्धयोः।
नभसः पश्चिमे व्यस्तमक्षस्य वलनं सदा॥४४॥"

पूर्वाचार्यों के सूत्र अनुमान पर आधारित थे। भारतीय आचार्यों ने देखा कि जब ग्रसित बिंब नाडीवृत्त तथा याम्योत्तर (meridian) के कटान बिन्दु पर होता है तब नतांश की उत्क्रमज्या शून्य होती है तथा अक्षवलन की क्रमज्या

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी शून्य होती है। नत की उत्क्रमज्या के बढ़ने के साथ अक्ष वलन की क्रमज्या भी बढ़ती है और जब ग्रसित बिंब क्षितिज तथा नाडीवृत्त के कटान बिंदु पर होता है तब नत उत्क्रमज्या त्रिज्या के मान के तुल्य होती है तथा अक्षवलन की क्रमज्या भी परम होती है और अक्षज्या के तुल्य होती है। अतः उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला कि अक्षवलन की ज्या, नतोत्क्रमज्या के अनुरूप ही बदलती होती है तथा इष्ट समय पर अक्षवलनज्या ज्ञात करने के लिए उन्होंने अनुपात का उपयोग किया कि जब तनोत्क्रमज्या का मान त्रिज्या तुल्य होता है तब अक्षवलन ज्या अक्षज्या के तुल्य होती है तो इष्ट नतोत्क्रमज्या के लिए अक्षवलन ज्या का मान क्या होगा? इस अनुपात द्वारा

$$\text{अक्षवलन ज्या} = \frac{\text{नतोत्क्रमज्या} \times \text{अक्षज्या}}{\text{त्रिज्या}}, \text{ सूत्र प्राप्त होता है।}$$

सूर्य सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में भी नत तथा अक्ष की ज्या ही कहा गया है।

"नतज्याऽक्षज्ययाऽभ्यस्ता त्रिज्याप्ता तस्य कार्मुकम्।
वलनांशाः सौम्ययाम्याः पूर्वापरकपालयोः॥२४॥
राशित्रययुताद् ग्राह्यात् क्रान्त्यंशैर्दिकसमैर्युताः।
भेदेऽन्तराज्ज्या वलना सप्तत्यगुल भाजिता॥२५॥"

यहाँ नतकला को अंशों में बदला है लेकिन उत्क्रमज्या को ग्रहण नहीं किया है।

आर्यभट (द्वि.) ने भी सूत्र में नत उत्क्रमज्या के स्थान पर नतक्रमज्या लेकर सूत्र कहा था जो आचार्योक्त प्रकार ही है। यथा चंद्रग्रहणाधिकार महासिद्धान्त–

"स्पर्शविमोक्षनतभुजक्रमजीवाताडिताक्षज्या।
गज्याभक्ता फलधनुरुत्तरमैन्द्रे नते परे याम्यम्॥१६॥"

आर्यभट ने भी आर्यभटीय के गोलपाद में क्रमज्या का ही उपयोग किया है लेकिन कुछ टीका/व्याख्याकारों ने उसका उत्क्रमज्या अर्थ भी किया है। यथा–

"मध्यान्हात् क्रमगुणितोऽक्षो दक्षिणतोऽर्धविस्तरहृतो दिक्।
स्थित्यर्धाच्चार्केन्द्वोस्त्रिराशिसहितायनात् स्पर्शे॥४५॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीमायनं वलनमाह—

युतायनांशोडुपकोटिशिञ्जिनी जिनांशमौर्व्या १३९७ गुणिता विभाजिता॥२१॥
द्युजीवया लब्धफलस्य कार्मुकं भवेच्छशाङ्कायनदिक्क्रमायनम्।

अयन वलन आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह की सायन अंशों की कोटिज्या को २४ अंश की ज्या (१३९७) से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल का चाप वलन होता है। ग्रह (चंद्र) जिस गोल में होता है वही दिशा वलन की होती है।

उपपत्ति— गोलाध्याय में बताई गई है।

विशेष— भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय के ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त सूत्र में उत्क्रमज्या का प्रयोग किया है तथा हर में त्रिज्या लिया है।

"त्रिराशिसहितेन्द्वर्कविपरीतगुणापमः।
अयनाद्दिक्तु पूर्वार्धे बिम्बस्यैवापरेऽन्यथा॥४५॥"

भास्कर के इस सूत्र को ब्रह्मगुप्त ने सुधारा तथा उत्क्रमज्या के स्थान पर क्रमज्या को ग्रहण किया। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त चन्द्रग्रहणाधिकार यथा—

"सममण्डलाद्विषुवतो ग्राह्यात् त्रिगृहाधिकादुदग्याम्यैः।
क्रान्त्यंशैरपमण्डलपूर्वास्याश्चन्द्रविक्षेपः॥१७॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में सूत्र इस प्रकार दिया है—

"ग्राह्यात् सराशित्रितयाद् भुजज्या व्यस्ता ततः प्राग्वदपक्रमज्या।
तस्या धनुः सत्रिगृहेन्दुदिक् स्यात् क्षेपो विपातस्य विधोर्दिशि स्यात्॥२५॥"

लल्लाचार्य तथा भास्कर द्वारा कथित सूत्र इस प्रकार होते हैं—

$$\text{अयनवलनज्या} = \frac{\text{ज्या } २४^\circ \times \text{उत्क्रमज्या } (९०^\circ + \text{ग्रह})}{\text{त्रिज्या}}$$

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में लल्लाचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"नतोत्क्रमज्याक्षगुणाभिघ्नात् त्रिभज्यकाप्तादथ कार्मुकं यत्।
उदक् च याम्यं च कपालयोस्तु तदाक्षमाशा वलनं वदन्ति॥चं.ग्र. १९ श्लो॥
त्रिभवनसहिताच्च ग्राह्यतो व्यस्तजीवा रचितमपमचापं संस्कृतं स्वेषुणा यत्।
पलवलनमनेन स्पष्टमेकीकृतं स्यात् सदृशदिशि वियुक्तं भिन्नदिक्त्वे कृतज्यम्॥२०॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भास्कराचार्य ने यद्यपि उत्क्रमज्या के उपयोग का खण्डन किया है तथा गलत बताया है लेकिन स्वयं ने ही शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ की स्वकृत टीका में उत्क्रमज्या के उपयोग को सही ठहराया है।

इदानीं स्फुटवलनार्थमाह—

तयोः पलोत्थायनयोः समाशयोर्युतेर्वियुक्तेस्तु विभिन्नकाष्ठयोः ॥२२॥
या शिञ्जिनी मानदलैक्यनिघ्नी त्रिज्योद्धृता तद्वलनं स्फुटं स्यात्।
यैरुत्क्रमज्याविधिनैतदुक्तं सम्यङ्नते गोलगतिं विदन्ति॥२३॥

स्फुट वलन ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अक्षवलन तथा अयनवलन के चापों के एक दिशा में होने पर योग तथा विपरीत दिशा में होने पर अन्तर की ज्या को मानैक्यार्ध से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से स्फुटवलन की ज्या होती है। जो वलन को उत्क्रमज्या के अनुपात से करने को कहते है वे गोल की गति को भली प्रकार से नहीं जानते।

उपपत्ति— गोलाध्याय में विस्तार से बताई गई है।

विशेष— भास्कर प्रथम ने महासिद्धान्त के ग्रहणाधिकार में प्राचार्योक्त कहा है। यथा–

"नानाशयोस्तयोर्विद्धि विश्लेषः धनुषोः सदा।
संयोगोऽन्यत्र तज्जीवा सम्पर्कार्धहता हृता॥४६॥"
विष्कम्भार्धेन यल्लब्धमाशासाम्ये युतं नतौ।
विश्लेषो व्यत्यये कार्यो वलनं तत्र शिष्यते॥४७॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने तथा शिष्याधीवृद्धिद में लल्लाचार्य ने स्पष्ट वलन का संस्कार शर में भी किया है जबकि भास्कराचार्य ने स्पष्ट वलन का संस्कार मानैक्यार्धवृत्त में परिणामन किया है। ब्रह्मगुप्त ने त्रिज्यावृत्त में साधित स्पष्टवलन को ज्यों का त्यों रखा है।

शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में लल्लाचार्य—

"अपक्रमक्षेपपलोद्भवानां युतिः क्रमादेकदिशां कलानाम्।
कार्या वियोगोऽन्यदिशां ततो ज्या ग्राह्या भवेत् सा वलनस्य जीवा॥२६॥"

श्रीपति सिद्धान्त शेखर में यथा—

"पलवलनमनेन स्पष्टमेकीकृतं स्यात् सदृशदिशि वियुक्तं भिन्नदिक्त्वे कृतज्यम्।"

ब्रह्मगुप्त ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्र ग्रहणाधिकर में—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"एकान्यदिशोर्युतिवियुतेर्ज्या प्रग्रहणमध्यमोक्षेषु।
एवं निमीलनोन्मीलनेष्ट कालेष्वतोऽन्य दिशाम्॥१८॥"

इदानीमङ्गुललिप्तार्थमाह—

त्रिज्योद्धृतस्तत्समयोत्थशङ्कुः
सार्धद्वि २।३० युक्तोऽङ्गुललिप्तिकाः स्युः।
स्थूलाः सुखार्थं द्युदलेन भक्तं
समुन्नतं सार्धयमा २।३० न्वितं वा॥२४॥

लिप्ता से अंगुल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रहण मध्य काल पर ग्रह का त्रिप्रश्नोक्त प्रकार से शंकु साधन करे तथा उसको त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल में $२\frac{१}{२}$ युक्त करने से (प्रति) अंगुल की लिप्ता होती है अथवा ग्रह की उन्नतघटी को दिनार्ध घटी से विभक्त करने से प्राप्तफल में $२\frac{१}{२}$ युक्त करने से सरलता से स्थूल अंगुल की लिप्ता होती है।

उपपत्ति— गगन मध्य में स्थित अर्थात दिनार्ध काल पर ग्रह का बिंब उदय काल की तुलना में किंचित सूक्ष्म दिखाई देता है। उदय काल पर क्षितिज पर स्थित ग्रह विशाल दिखता है। यह जो सूक्ष्म तथा बडा दिखाई देता है उसको स्वबुद्धि से कल्पना करके दिनार्ध समय पर $३\frac{१}{२}$ अंगुल कला तथा उदय काल पर $२\frac{१}{२}$ अंगुल कला आचार्य ने माना है तथा इन दोनों के मध्य में शंकु से सूक्ष्म अनुपात किया है कि यदि त्रिज्या तुल्य शंकु में अंगुल लिप्ता अंतर ($३\frac{१}{२} - २\frac{१}{२} = १$) (एक) प्राप्त होता है तो इष्ट शंकु में कितना होगा? प्राप्तफल $२\frac{१}{२}$ अंगुल लिप्त होता है। यह उपपन्न हुआ।

अथवा स्थूल अनुपात किया कि यदि दिनार्ध तुल्य उन्नत घटियों में अंतर १ (एक) तुल्य होता है तो इष्ट घटी में कितना होगा?

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहणोत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"दिनदल विभक्त जिनगुणदिनगतशेषाल्पजीवयेषु गुणम्।
त्रिज्यार्धमधिकमङ्गुललिप्तास्त्रिगृहज्यया भक्तम्॥११॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यहाँ आचार्य ने अनुपात किया है कि दिनार्ध तुल्य उन्नत काल में नब्बे अंश तुल्य उन्नतांश होते हैं तो इष्ट उन्नत काल में क्या? इस अनुपात से उन्नतांश (स्थूल) $= \frac{९० \times \text{उन्नतकाल}}{\text{दिनार्ध}} = \frac{९० \times \text{उ.का.}}{\text{दिनार्ध}}$। अब भास्करोक्त "तत्त्वश्विभक्ता असवः कला वा" प्रकार से उन्नत कला ज्या =

$\frac{९० \times \text{उ. का.} \times ६०}{\text{दिनार्ध} \times २२५}$; इसमें $\frac{९० \times ६०}{२२५} = २४$ (स्वल्पांतर से) शंकु है। अतः यह भास्करोक्त "त्रिज्योद्धृत....." (उपरोक्त) सूत्र अनुसार

$\frac{५}{२} + \frac{\text{शं}}{\text{त्रि}} = \frac{\frac{५\text{त्रि}}{२} + \text{शं}}{\text{त्रि}}$ ब्रह्म गुप्तोक्त उपपन्न हुआ। अतः ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र से भास्कराचार्य ने अपना सूत्र कहा है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त कहा है। यथा–

"स्वोन्नताज्जिनगुणात् द्युदलाप्ताज्जयाऽनया समधिके त्रिगुर्धे।
सायकैरभिहते त्रिभमौर्व्या भाजितेऽत्रफलमङ्गुललिप्ताः॥"

सूर्यसिद्धान्त में यद्यपि आचार्योक्त अनुरूप ही सूत्र कहा है लेकिन वहाँ ग्रह बिंब दिनार्ध काल में चार अंगुल तथा उदय काल में तीन अंगुल कला कल्पना करके कहा है। अतः यहाँ सूत्र में ५ के स्थान पर ३ कहा है।

"सोन्नतं दिनमध्यर्धं दिनार्धाप्तं फलेन तु।
छिन्द्याद् विक्षेपमानानि तान्येषामंगुलानि तु॥२६॥" चंद्रग्रहण।

म.म. सुधाकर द्विवेदी ने सूर्य सिद्धान्त की स्वकृत सुधा वर्षिणी टीका में भास्कराचार्य के कथन 'शङ्क्वनुपात जनित फल सूक्ष्महै' को ठीक नहीं बताया है। उन्होंने अपने कथन को युक्ति युक्त सिद्ध किया है।

आचार्योक्त विधि के संदर्भ में **श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में** स्पष्ट करके कहा है। यथा–

"द्रटा महीव्यासदलेन यस्मात् समुच्छ्रितस्तिष्ठति भूमिपृष्ठे।
नभस्थभानोर्निकटस्ततस्तं प्रभाकरं सूक्ष्ममवेक्षतेऽसौ॥
पिधीयते भानुवपुर्मयूखैः समन्ततः पङ्कजकर्णिकेव।
तत्केसरैरम्बरमध्यवर्ती निरीक्ष्यते तेन च सूक्ष्ममूर्तिः।
वसुन्धरागोलनिरुद्धामा दूरस्थितोऽयं सुखदृश्यबिम्बः।
महीजवृत्तोपगतो विवस्वानतो महान् भात्यरुणो विरश्मिः॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त दूसरा सूत्र कहा है। यथा–

"उन्नतो निजदिनार्धविभक्तः सार्धयुग्मयुगथाङ्गुललिप्ताः ॥२७॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"उन्नताः स्फुटदिनार्ध भाजिता नाडिकाः फलसमन्वितास्त्रयः।
अङ्गुलस्य कलिका यवोदरैरङ्गुलं च वितुषैरिहोरगैः ॥४०॥"

आचार्य ने यहाँ ३ युक्त करने के लिए कहा है।

इदानीं वलनादीनामङ्गुलीकरणमाह—

आभिर्विभक्ता बलनेषुबिम्बदोश्छन्नलिप्ता स्युरथाङ्गुलानि।
शरा यथाशा ग्रहणे खरांशोश्चन्द्रग्रहे व्यस्तदिशस्तु वेद्याः ॥२५॥

वलनादि को अंगुल में बदलना—

सूर्य-प्रभा टीका— उपरोक्त सूत्रोक्त अंगुल कला से वलन् विक्षेप (शर), बिंब, ग्रास, भुज कोटिकर्ण आदिमानों को विभक्त करने से प्राप्तफल अंगुलादि होते हैं। सूर्य ग्रहण परिलेखन में चंद्र शर को स्व दिशा में दर्शाना चाहिये तथा चन्द्रग्रहण में विपरीत दिशा में दर्शाना चाहिये।

उपपत्ति— शराग्र पर चन्द्रमा होता है तथा शर मूल पर भूभा होती है। इस प्रकार चन्द्र विक्षेप के दूसरी ओर भूभा होती है। इसकी स्थिति ज्ञात करने के लिए इसको चन्द्रग्रहण में शर के दूसरी तरफ जाने।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त के ग्रहणोत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"व्यास वलनापवर्त्तनमेकेनेष्टेन कार्यमितरेषाम्।
अङ्गुलकलाभिरेवं शशिसित परिलेखसूत्राणाम् ॥१३॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने ब्रह्मगुप्तोक्त कहा है। यथा–

"ग्राह्यबिंबशकलस्य शराणां मानसंयुतिदलस्य भुजानाम्।
ग्राहकार्धवपुषः श्रवणानां भाजको नियतमङ्गुललिप्ताः ॥"

सूर्यसिद्धान्त में भी चंद्रग्रहणाधिकार में ब्रह्मगुप्तोक्त कहा है। यथा–

"सोन्नतं दिनमध्यर्धं दिनार्धाप्तं फलेन तु।
छिन्द्याद् विक्षेपमानानि तान्येषामंगुलानि तु ॥२६॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लल्लाचार्य ने ब्रह्मगुप्तोक्त प्रकार से ११० ईकाई का एक अंगुल मान वलन, त्रिज्यादि को अंगुल मान में परिवर्तित करते हैं। यथा चंद्रग्रहणाधिकार–

"अङ्गुलानि वलनस्य च जीवा खेश्वरैर्वसुगुणाब्धिहुताशाः।२६$\frac{१}{२}$।"
मानैक्यार्धछादकच्छाद्ययोश्च क्षेपश्छन्नं कर्णदोः कोटयश्च।
भाज्याः सर्वेऽप्यङ्गुलानां कलाभिर्जायन्ते ते वाङ्गुलानि क्रमेण॥२८॥"

ब्रह्मगुप्त ने उपरोक्त श्लोक में ग्राह्य गाहक बिंबों तथा वलनादि को लाघव के लिये किसी एक इष्ट अंक से अपवर्तित करने के लिए कहा है। उसी का अनुसरण लल्लाचार्य, गणेश दैवज्ञादि आचार्यों ने किया है।

भास्कराचार्योक्त अंगुललिप्ता का अर्थ है लिप्ता की संख्या जो एक अंगुल के तुल्य ग्रहण परिलेखन में प्रयोग में लेनी चाहिये।

इदानीं परिलेखमाह—

ग्राह्यार्धसूत्रेण विधाय वृत्तं मानैक्यखण्डेन च साधिताशम्।
बाह्येऽत्र वृत्ते वलनं ज्यकावत् प्राक्चिह्नतः स्पर्शभवं हिमांशोः॥२६॥
सव्यापसव्यं खलु याम्यसौम्यं मौक्षं तदा पश्चिमतश्च देयम्।
रविग्रहे पश्चिमपूर्वतस्ते विक्षेपदिक्चिह्नत एव माध्यम्॥२७॥
सूत्राणि केन्द्राद्वलनाग्रसक्तान्यङ्क्यान्यतः स्पर्शविमुक्तिबाणौ।
ज्यावन्निजाभ्यां वलनाग्रकाभ्यां देयौ यथाशावथ मध्यबाणः॥२८॥
केन्द्रात् प्रदेयो वलनस्य सूत्रे तेभ्यः पृथग्ग्राहकखण्डकेन।
वृत्तैः कृतैः स्पर्शविमुक्तिमध्यग्रासाः क्रमेणैवमिहावगम्याः॥२९॥

ग्रहण परिलेखन—

सूर्य-प्रभा टीका— समतल स्थान पर ग्राह्य बिंबार्ध प्रमाण अर्धव्यास के सूत्र पर किसी कल्पित बिंदु पर एक वृत्त बनावे तथा उस सूत्र बिन्दु पर मानैक्यार्ध त्रिज्या प्रमाण का एक और वृत्त बनावे। इन वृत्तों में उस बिंदु पर पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण दिशा (खडिया मिट्टी से) रेखायें बनावें। मानैक्यार्ध त्रिज्या के बाह्य वृत्त में वलन को पूर्व दिशा से जहाँ चन्द्र ग्रहण में चन्द्र स्पर्श करे वलन की स्व दिशा में चिन्हित करे तथा मोक्ष के लिए पश्चिम दिशा में इसकी विपरीत दिशा में चिन्हित करे। इस प्रकार वलन को ज्या रूप में चिन्हित करे।

सूर्य ग्रहण में स्पर्श के लिए वलन को पश्चिम दिशा की ओर से उसकी स्वदिशा से विपरीत दिशा में चिन्हित करे तथा मोक्ष के लिए पूर्व दिशा की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओर इसकी स्वदिशा में चिन्हित करे। इस प्रकार सूर्य ग्रहण में भी वलन को ज्या रूप में चिन्हित करे।

मध्य वलन का यदि विक्षेप दक्षिण हो तो दक्षिण चिन्ह से तथा उत्तर हो तो उत्तर चिन्ह से देवें। यदि दक्षिण वलन हो तो सव्यक्रम से पूर्व चिन्ह से आरम्भ करके दक्षिण चिन्ह, दक्षिण चिन्ह से पश्चिम चिन्ह, पश्चिम चिन्ह से उत्तर चिन्ह तथा उत्तर चिन्ह से पूर्व की ओर चिन्ह करे। इसके विपरीत स्थिति में अपसव्य क्रम से चिन्ह करे।

यहाँ वलन ज्या रूप में है धनुरूप में नहीं है। इस प्रकार वलन चिन्हित करके वलन अग्र से पूर्वोक्त वत्तों के केन्द्र से होते हुए एक सूत्र अंकित करे। चंद्र का शर वलनाग्र से फिर से ज्या रूप में अंकित करे। यदि शर प्रथम स्पर्शकाल का है तो शर को वलनाग्र से स्पर्शकाल संबंधित समय का ज्या रूप में अंकित करे और यदि मोक्षकाल का है तो मोक्ष काल संबंधि समय का ज्या रूप में अंकित करे। यदि शर ग्रहण मध्य का हो तो इसको केन्द्र से वलन सूत्र (केंद्र तथा वलन ज्याग्र रेखा पर) में अंकित करे। इन शराग्र बिन्दुओं से ग्राहक बिंबार्ध प्रमाण त्रिज्या के वृत्त सूत्र पर बनावे। इनसे स्पर्श, मोक्ष बिन्दु तथा ग्रास का ज्ञान होता है।

उपपत्ति— मानैक्यार्ध वृत्त में जब ग्राहक वृत्त का केंद्र (मध्य) रहता है तब ग्राह्य तथा ग्राहक बिंब प्रान्त संलग्न रहते हैं। अतः मानैक्यार्ध बहिर्वृत्त में दिशा को अंकित करना चाहिये। वहाँ जो पूर्व दिशा है वह सममण्डल का पूर्व है। वहाँ से वलन ज्या दान देने से केन्द्र से वलन ज्याग्रगत रेखा क्रांति वृत्त प्राची है। वलन सूत्र से ज्यावत् शरदान देना चाहिये क्योंकि क्रांतिवृत्त प्राची से शर दक्षिण अथवा उत्तर रहता है। इसी प्रकार स्पर्श और मोक्ष में होता है। मध्यवलन तात्कालिक क्रांतिवृत्तप्राची से दक्षिणोत्तर दिशा में होता है अतः केंद्र से वलन सूत्र में देना चाहिये। शराग्र में ग्राहक वृत्त का केन्द्र होता है अतः वहाँ से तात्कालिक ग्राहकार्ध प्रमाण से बनाये हुए वृत्तों से स्पर्श मोक्षध्य होते हैं।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"मानैक्यार्धालिखित वलये तत्परीणामिनीर्वा दत्वा जीवा वलनजनिताः पूर्ववज्ज्यानिपातात्।
कुर्यात् तज्ज्ञः कथितविधिनैवात्रवृत्तद्वयेऽपि मध्याद्यन्तग्रहणजनिता संस्थितिश्चन्द्र भान्वोः॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहणोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"प्रथमे वलनज्याभिर्दिशो द्वितीये यथादिशं भानोः।
आद्यन्तौ विक्षेपौ मध्यान्मध्योऽन्यथा शशिनः॥१४॥
शशिविक्षेपाग्रेभ्यः परिलिख्य ग्राहकप्रमाणेन।
प्रग्रहमोक्षग्रासा भूपरिलेखे भवन्त्येवम्॥१५॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्र ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"पूर्वाशायांप्रग्रहः शीतरश्मेः पश्चान्मोक्षस्तिग्मगोरन्यथा तौ।
क्षेपाः सर्वे व्यत्ययेन स्युरिन्दोर्यद्वद् भानोरागतास्तद्वदेव॥२९॥
ग्राह्यं वृत्तं मानयोगार्धवृत्तं त्रिज्यावृत्तं चालिखेत् साधिताशम्।
त्रिज्यावृत्ते शीतगोः पूर्वभागे ज्यावद् दद्याद् वालनान्यङ्गुलानि॥३०॥
पश्चाद्भागे तिग्मगोश्चन्द्रभान्वोः पश्चाद् व्यस्तान्यन्तजान्यादिजानि।
याम्यात् सौम्यान् मध्यमानि प्रदेशादन्यैकाशान्यानयेत् प्राक्प्रतीच्योः॥३१॥
क्षेपं ज्ञात्वा तिग्मगोरन्यथेन्दोस्तेभ्यः सूत्राण्यानयेत् केन्द्रभाञ्जि।
आद्यादन्त्यात् सूत्रमानैक्यभोगाज्ज्यावत् क्षेपौ सारयेदाद्यमोक्षौ॥३२॥
मध्यक्षेपं मध्यतो मध्यसूत्रे क्षेपाग्रेभ्यो ग्राहकार्धेन तेभ्यः।
विज्ञायन्ते खण्डिते तु क्रमेण ग्राह्ये स्पर्शो मध्यमग्रासमोक्षौ॥३३॥"

सूर्य सिद्धान्त में छेद्यकाधिकार में श्लोक २ से ९ तक आचार्योक्त ही कहा है।

इदानीं निमीलीनोन्मीलनेष्टग्रासपरिलेखमाह—

**केन्द्राद्भुजं स्वे वलनस्य सूत्रे शरं भुजाग्राच्छ्रवणं च केन्द्रात्।
प्रसार्य कोटिश्रुतियोगचिह्नाद्वृत्ते कृते ग्राहकखण्डकेन॥३०॥
संमीलनोन्मीलनकेष्टकालग्रासाश्च वेद्या यदि वान्यथामी।**

निमीलन उन्मीलन तथा इष्ट ग्रास परिलेखन—

सूर्य-प्रभा टीका— भुज को चंद्र केंद्र से वलनसूत्र पर देवें। शर को भुजाग्र पर भुज के लंबवत देवें तथा कर्ण को चंद्र केंद्र से देवे। शर (कोटि) तथा कर्ण के मिलान बिन्दु पर ग्राहकखण्ड के तुल्य त्रिज्या के वृत्त बनावे तथा इनसे संमीलन स्थान ज्ञात करे। (यहाँ संमीलन काल का वलन ज्ञात करके पूर्व चिन्हित पूर्व की तरह चंद्र केंद्र से वलनाग्र तथा रेखा खेचे उस रेखा पर चंद्र

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

केन्द्र से पूर्व की ओर भुज देवें।) इसी प्रकार उन्मीलन वलन को पश्चिमी की ओर देकर उन्मीलन स्थान ज्ञात करे और इष्ट काल पर तात्कालिक वलन पूर्व-पश्चिम देकर उक्त प्रकार से इष्ट ग्रास ज्ञात करे।

उपपत्ति— ग्राहक मार्ग खण्ड भुज है। शर कोटि है तथा भुज एवं शर के वर्गों का योग का मूल कर्ण है। कर्णाग्र से ग्राहक बिंब लिखने से संमीलनादिक होता है। यह युक्ति युक्त है। यदि कोई कहे कि ग्राह्य बिंब केंद्र से वलन सूत्र में भुज दिया गया है तब भुज ग्राहक मार्ग खण्ड किस प्रकार है? तो इसका उत्तर है कि जब भी भुज, कोटि तथा कर्ण से जो एक त्रिभुज बनता है वह उसके आयत चतुर्भुज का आधा होता है। यहाँ भुजाग्र पर शर कोटि है तथा भुजमूल से भी। शरद्वय के मूलान्तर में जितना भुज है उतना ही दोनों शराग्र के अंतर में भी है। अतः ग्राहक मार्ग खण्ड भुज कहा जाता है। यह **संमीलन तथा उन्मीलन की उपपत्ति है। इष्ट ग्रास परिलेखन की उपपत्ति भी इसी प्रकार जाननी चाहिये।**

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के ग्रहणोतराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"पश्चात् प्रग्रहणे प्राग्मोक्षे रविविम्बतो बाहुः।
स्ववलनसिद्धज्यादिशि विपरीतः शीतकरमध्यात्॥१६॥
भानुमतो बाह्यग्राद्यथा दिशं कोटिरन्यथा शशिनः।
रविशशिमध्यात् कर्णस्तिर्यक् कर्णाग्रकोटियुतेः॥१७॥
परिलेखं ग्राह्यस्य ग्राहक मानेन पूर्ववत् कृत्वा।
तात्कालिकसंस्थानं निमीलनोन्मीलने चैवम्॥१८॥"

श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर में ग्रास परिलेखन के लिए जो विधि कही है उसकी उपपत्ति भास्करोक्त उपरोक्त श्लोक है। यथा–

"दिश्यभीष्टवलनस्य कोटिदोः कर्णदान विधिनैवमेवहि।
विद्वयभीष्टवलनस्य संस्थितिं ग्राहक ग्रहणतः शशीनयोः॥"

सूर्य सिद्धान्त में छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मानान्तरार्धेन मितां शलाकां ग्रासादिङ्मुखीम।
निमीलनाख्यां दद्यात् सा तन्मार्गे यत्र संस्पृशेत्॥२०॥
ततो ग्राहकखण्डेन प्राग्वन्मण्डलमालिखेत्।
तद्ग्राह्यमण्डलयुतिर्यत्र तत्र निमीलनम्॥२१॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवमुन्मीलने मोक्ष दिङ्मुखीं सम्प्रसारयेत्।
विलिखेन्मण्डलं प्राग्वदुन्मीलनमथोक्तवत्॥२२॥''

इष्ट ग्रास परिलेखन के लिए इसी अध्याय में इस प्रकार कहा है, यथा–

''ग्राह्यग्राहकयोगार्धात् प्रोज्झ्येष्टग्रासमागतम्।
अवशिष्टांगुलसमां शलाकां मध्य बिन्दुतः॥१७॥
तयोर्मार्गोन्मुखीं दद्याद् ग्रासतः प्राग् ग्रहाश्रिताम्।
विमुञ्चतो मोक्षदिशि ग्राहकाध्वानमेव सा॥१८॥
स्पृशेद्यत्र ततो वृत्तं ग्राहकार्धेन संलिखेत्।
तेन ग्राह्यं यदाक्रान्तं तत् तमोग्रस्तमादिशेत्॥१९॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''क्षेपाग्रत्रयमण्डलैस्तिमियुगस्यास्यस्थितासक्तयो
रज्ज्वोर्योगभवं शरत्रयशिरः प्राप्यालिखेन्मण्डलम्।
तच्च ग्राहकवर्त्म केन्द्रविसृतां युक्तां श्रुतिं तत्स्पृशां
कृत्वा ग्राहकमालिखेदभिमतग्रासादि संसिद्धये॥३४॥
मुच्यमान उडुपे पराङ्मुखीं छाद्यमानम इह शक्रदिङ्मुखीम्।
संप्रसार्य विधिवच्छ्रुतिं ततो विद्ध्यभीष्टदितमन्यथा रवौ॥३५॥''

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''बिन्दोर्वाहुं दद्याद्वालनसूत्रेऽथ तस्याग्रात्॥७॥
दद्यात् कोटिशलाकां यथाशकां सौम्ययाम्यायाम्।
श्रवणशलाकां बिन्दोर्दद्यात् कोट्यग्रगां तयो र्योगात्॥८॥
लेख्यं ग्राहकमण्डलदलेन वृत्तं भवेदसौ ग्रासः।
इष्टोऽथ नीमिलनकं ह्युन्मीलनकं च मर्दभवैः॥१९॥''

इदानीमन्यथा संमीलनादिपरिलेखमाह—

ये स्पर्शमुक्त्योर्विशिखाग्रचिह्ने ताभ्यां पृथङ्मध्यशराग्रयाते॥३१॥
रेखे किल ग्रग्रहमोक्षमार्गौ तयोश्च माने विगणय्य वेद्ये।
बिम्बान्तरार्धेन विधाय वृत्तं केन्द्रेऽथ तन्मार्गयुतिद्वयेऽपि॥३२॥
भूभार्धसूत्रेण विधाय वृत्ते संमीलनोन्मीलनके च वेद्ये।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्य प्रकार से संमीलनादि परिलेखन—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रहण मध्य के चंद्र शराग्र को ग्रहण स्पर्श तथा मुक्ति के शराग्रों से मिलाने वाली रेखायें खेंचे। ये क्रमशः प्रग्रहमार्ग तथा मुक्तिमार्ग होते हैं। इन मार्गों के प्रमाण अंगुल शलाका रूप में ज्ञात करके पृथक स्थापित करे। अनन्तर चंद्र केंद्र से बिंबान्तर (छाद्य-छादक बिंबों का अंतर) के आधे के मान तुल्य त्रिज्या सूत्र का वृत्त बनावे। यह पूर्वोक्त मार्गों को एक-एक स्थान पर काटता है उन दोनों योग बिंदुओं को केंद्र मान कर भूभा अर्ध सूत्र (त्रिज्या) से वृत्त बनावे तो वे चंद्र बिंब को जिन दो बिंदुओं पर काटेंगे वे क्रमशः संमीलन तथा उन्मीलन बिंदु होते हैं।

उपपत्ति— स्वमार्ग पर चलते हुए ग्राहकमध्य स्थान पर मानान्तरार्ध तुल्य उनका कर्ण होता है और ग्राहक के संमीलन उन्मीलन स्थान पर उनके केंद्र (ग्राह्य-ग्राहक) का अन्तर बिंबान्तरार्ध तुल्य होता है। अतः ग्राह्य (ग्रस्त) ग्रह के केंद्र से बिंबान्तरार्ध तुल्य त्रिज्या के वृत्त का प्रग्रह मार्ग तथा मुक्तिमार्ग से कटाव (योग) बिंदु ग्राहक (छादक) का केंद्र होता है। आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहणोत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"विक्षेपाग्रेषु त्रीन् बिन्दुन् प्रग्रहणमध्यमोक्षेषु।
कृत्वा तन्मत्स्यद्वयमध्यगयोः सूत्रयोर्योगात्॥३९॥
बिन्दुपरिलेखरेखाग्राहकमार्गः प्रसार्य सूत्रे द्वे।
आद्यन्ताभ्यां मध्यगमुच्छाद्य स्थूलमेवं वा॥४०॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विक्षेपाग्रत्रयकृतमितिद्वन्द्वमध्यस्थरज्वोयोगाद्धृतं कृतशरशिरो वर्त्मतद् ग्राहकस्य। तत्संसक्ता श्रुतिमपि नयेद्युक्तिनो मध्यकेन्द्रादिष्टग्रासाद्यवगमविधिज्ञप्तये चन्द्रभान्वोः॥"

सूर्य सिद्धान्त के छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"स्वसंज्ञितास्त्रयः कार्या विक्षेपाग्रेषु बिन्दवः।
तत्रप्राङ्मध्ययोर्मध्ये तथा मोक्षिकमध्ययोः॥१४॥
लिखेन्मत्स्यौ तयोर्मध्यान्मुखपुच्छविनिःसृतम्।
प्रसार्य सूत्रद्वितयं तयोर्यत्र युतिर्भवेत्॥१५॥
तत्र सूत्रेण विलिखेच्चापं बिन्दुत्रयस्पृशा।
स पन्था ग्राहकस्योक्तो येनासौ सम्प्रयास्यति॥१६"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

पूर्व श्लोक की व्याख्या में उद्धृत लल्लाचार्योक्त श्लोक ३४ व ३५ का अवलोकन करें।

आर्यभट ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। यथा छेद्यकाधिकार—

"समभुवि बिन्दुं दत्त्वा तस्माद्वृत्तं घनाङ्गुलैः कार्यम्।
दिक्सिद्धिं तद्वृत्ते वलनं प्राच्यां यथाशमर्केन्द्वोः॥१॥
दद्याद्वरुणाशायां व्यस्ताशं सर्वदा वलनम्।
स्पर्शविमोक्षाविन्दोः प्राक् पश्चादन्यथा भानोः॥२॥
मानैक्यार्धेन लिखेद्वृत्तं च ग्राह्यखण्ड सूत्रेण।
वलनाग्रबिन्दुसूत्रस्य युतिर्मानैक्यखण्डवृत्तेन॥३॥
या तस्यास्तद्वृत्ते लेख्या व्यस्ताऽऽशकौ शरौ शशिनः।
भानोर्यथागताशौ वलनाग्राद्विन्दुगं सूत्रम्॥४॥
धार्यं तद्ग्रह्यार्धजवृत्तयुतौ स्पर्शमोक्षकौ स्याताम्।
वलनाग्राभ्यां मत्स्यं विलिख्य तत् पुच्छमुखसूत्रे॥५॥
दद्याद्विन्दोर्माध्यं व्यस्ताशेषुर्विधौ रवौ स्वाशम्।
तद्वाणाग्राद्विलिखेद्ग्राहकखण्डेन वृत्तं वा॥६॥
तद्ग्राह्यवृत्तयुतिवच्छन्नं स्यात् परममर्केन्द्वोः।$\frac{१}{२}$।

यहाँ आर्यभट ने भास्करोक्त समस्त परिलेखन को सूक्ष्म रूप में कह दिया है।

इदानीमिष्टग्रासार्थमाह—

मार्गाङ्गुलघ्नं स्थितिखण्डभक्तमिष्टं स्युरिष्टाङ्गुलसंज्ञकानि॥३३॥
इष्टाङ्गुलानीष्टवशात् स्वमार्गे दत्त्वात्र च ग्राहकखण्डवृत्तम्।
कृत्वेष्टखण्डं यदि वावगम्यं स्थूलः सुखार्थं परिलेख एवम्॥३४॥

इष्टग्रास ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— स्पर्शिक अथवा मौक्षिक इष्टकाल की घटिकादि तथा मार्ग अंगुल को (प्रथम स्पर्श से ग्रहमध्य तक के मार्ग की अंगुलादि लम्बाई तथा ग्रहण मध्य से मोक्ष तक के मार्ग की लंबाई) परस्पर गुणा करके स्वस्थितिर्ध घटियों से विभक्त करने से प्राप्तफल इष्ट काल पर (मार्ग के) अंगुलादि होते हैं। (यहाँ स्पर्शस्थिति खंड मार्ग तथा मोक्ष स्थिति खंड मार्ग दोनों के लिए यह

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गणना करनी है) यदि स्पर्श से आगे का इष्ट हो तो स्पर्श शराग्र से आगे प्राप्त इष्ट अंगुल देवे। यदि ग्रहमध्य से मोक्ष पूर्व का इष्टं हो तो मध्यशराग्र से मोक्षपूर्व में देवे (इष्ट अंगुल)। इस प्रकार पूर्व प्राप्त इष्ट अंगुल को अपने-अपने मार्ग में देवे (चिन्हित करे)। इस प्रकार से ये बिंदु ग्राहक बिंब केंद्र के रूप में इष्ट काल पर प्राप्त होते हैं। इन बिंदुओं को केंद्र मानकर ग्राहक बिंबार्ध त्रिज्या से वृत्त बनावे तो इन वृत्तों के ग्राह्य बिंब के छादित (कटाव) भाग से इष्टग्रास का ज्ञान होता है।

उपपत्ति— इसकी उपपत्ति त्रैराशिक से कर सकते हैं कि यदि स्थितिर्ध घटी में मार्ग अंगुल प्राप्त होते हैं तो इष्ट घटी में कितने होंगे? प्राप्तफल इष्ट अंगुल होंगे। इन इष्ट अंगुल स्थानों पर यदि ग्राहकार्ध त्रिज्या से वृत्त बनावें तो इससे इष्टग्रास प्राप्त होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहणोत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"बिन्दुद्वयान्तरं स्थितिदलेन हृतमिष्टनाडिकागुणितम्।
ग्राह्यं फलाङ्गुलस्थं ग्राहकमानेन परिलिख्य॥४१॥"

इदानीं ग्रासात् कालानयनं परिलेखेनैवाह—

ग्रासोनमानैक्यदलेन केन्द्रे वृत्तात् कृतान्मार्गदले बहिर्ये।
ते संगुणे स्वस्थितिखण्डकेन मार्गाङ्गुलाप्ते पृथगिष्टकालौ॥३५॥

ग्रास से काल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— मानैक्यार्ध में से ग्रास मान को घटा कर ग्राह्य केंद्र पर वृत्त बनावे। इस वृत्त से बाहर की ओर के मार्गखण्ड अंगुल को स्वस्थिति खण्ड घटि से गुणा करके स्वमार्ग अंगुल से विभाजित करे। इस प्रकार प्राप्त फल स्पर्श से आगे का इष्टकाल होता है।

मोक्ष काल के लिए पृष्ठ स्थिति से ज्ञात करे।

उपपत्ति— इष्टकाल पर मानैक्यार्ध में से ग्रास मान घटाने से प्राप्त शेष कर्ण होता है। यह बात इसी अध्याय के पूर्व श्लोक १६$\frac{१}{२}$ में बताई गई है। इस कर्णमान से ग्राह्य केन्द्र पर वृत्त बनावे तथा जो मार्गखण्ड इस वृत्त के बहिर्वत है से अनुपात करे कि यदि मार्ग अंगुलों में स्थित्यर्ध घटियाँ प्राप्त होती है तो वृत्त के बहिर्भूत मार्ग खण्ड अंगुलों में कितनी होगी? प्राप्तफल स्पर्श से आगे का इष्टकाल होगा। अतः उपपन्न हुआ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यहाँ प्राप्त अन्तराल काल वह समय है जो ग्राहक बिंब केंद्र द्वारा स्वमार्ग पर प्रथम ग्रहण स्पर्श से उसके मार्ग को उपरोक्त वृत्त (जो ग्राह्य बिंब को केंद्र मान कर मानैक्यार्ध में से ग्रास मान घटा कर बनाया गया है) द्वारा काटे गये बिंदू तक जाने में लगता है। इसी प्रकार ग्राहक बिंब केंद्र को उसी प्रकार के तथा समान मार्ग को अन्तरित करने में समय अन्तराल इसके दूसरी ओर ग्रहण मध्य से मोक्ष के पूर्व लगता है वह ग्रहण मध्य से मोक्ष पूर्व तक होता है।

उपरोक्त में यदि ट = स्थिति खंड अर्थात प्रथम स्पर्श तथा ग्रहण मध्य का अथवा ग्रहण मध्य से मोक्ष स्पर्श का समय हो।

त = प्रथम स्पर्श के बाद का इष्ट समय अथवा मोक्ष पूर्व का इष्ट समय (ग्रहमध्य से)।

ल = प्रग्रह मार्ग अथवा मोक्ष मार्ग की लम्बाई

कर्ण = मानैक्यार्ध − ग्रास

कर्ण = $\sqrt{\text{भुज}^२ + \text{शर}^२}$

अब त्रैराशिक किया कि यदि 'ट' समय में 'ल' दूरी पार की जाती है तो 'त' समय में कितनी होगी? फल = $\frac{\text{ल त}}{\text{ट}}$

भुज = ल − $\frac{\text{ल त}}{\text{ट}}$; कर्ण^२ = भुज^२+शर^२; मानैयार्ध − ग्रास =कर्ण

इन तीनों समीकरणों द्वारा कर्ण^२ का मान तुल्य करने पर−

अतः भुज^२+शर^२ = कर्ण^२ = (मानैक्यार्ध − ग्रास)^२

यहाँ भुज का मान प्रतिस्थापित करने से—

$$\left(\text{ल} - \frac{\text{ल त}}{\text{ट}}\right)^२ + \text{शर}^२ = (\text{मानैक्यार्ध} - \text{ग्रास})^२$$

या $$\frac{\text{ल}^२(\text{ट} - \text{त})^२}{\text{ट}^२} + \text{शर}^२ = (\text{मानैक्यार्ध} - \text{ग्रास})^२$$

या ल^२ (ट − त)^२ + ट^२ शर^२ = ट^२ (मानैक्यार्ध − ग्रास)^२

इस समीकरण में ग्रास तथा इष्ट समय के अतिरिक्त सभी संख्यायें ज्ञात हैं। अतः इस समीकरण द्वारा ग्रास मान ज्ञात होने पर उसका इष्टकाल तथा इष्टकाल ज्ञात होने पर ग्रास मान ज्ञात किया जा सकता है। यही क्रिया

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भास्कराचार्य ने बताई है। यहाँ $ट = \frac{\text{स्थिति खण्ड}}{\text{सूर्यचंद्र गत्यंतर}}$ होता है। यह पूर्व में आचार्य ने परिभाषित किया है।

प्रग्रहमार्ग अथवा मोक्ष मार्ग = $\sqrt{\text{मानैक्यार्ध}^2 - \text{शर}^2}$ होता है। यह भी पूर्व में परिभाषित किया जा चुका है।

इदानीं ग्रहणे वर्णमाह—

स्वल्पे छन्ने धूम्रवर्णः सुधांशोरर्धे कृष्णः कृष्णरक्तोऽधिकेऽर्धात्।
सर्वच्छन्ने वर्ण उक्तः पिशङ्गो भानोश्छन्ने सर्वदा कृष्ण एव॥३६॥

ग्रहण वर्ण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्र बिंब का स्वल्प भाग (आधे से कम) ग्रस्त होने पर उसका वर्ण धूम्र (धुंऐं) जैसा होता है। आधा बिंब ग्रास होने पर काला रंग का होता है तथा आधे से अधिक ग्रसित होने पर काला लाल रंग का होता है। संपूर्ण ग्रहण होने पर उसका रंग लाल भूरा (पिशङ्ग) होता है तथा सूर्य ग्रहण में सूर्य का सर्वदा काला रंग होता है।

विशेष— सूर्य सिद्धान्त छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"अर्धादूने सधूम्रं स्यात् कृष्णमर्धाधिके भवेत्।
विमुञ्चतः कृष्णताम्रं कपिलं सकल ग्रहे॥२३॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"ग्रस्तेऽप्यर्कक्रांशो विधोः पचांशो न लक्ष्यते दृष्ट्या।
कृष्णोऽर्कोऽल्पार्धाधिक इन्दुर्धूम्रोऽसितः पिशङ्ग स्यात्॥१६॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चद्रं ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"आद्यन्तयोर्बहुल धूम्रलवानुकारी खण्ड ग्रहे नियतमञ्जनपुञ्जवर्णः।
ग्रासे दलात् समधिकेऽरुणकृष्णवर्णः सर्वग्रहे भवति शीतकरः पिशङ्गः॥३६॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"आद्यन्तयोः सधूम्रः कृष्णः खण्ड ग्रहेऽर्धतोऽभ्याधिके।
ग्रासे स कृष्णताम्रः सर्वग्रहणे कपिलवर्णः॥१६॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वराहोक्त पंचसिद्धान्तिका के वशिष्ट पौलिश सिद्धान्तानुसार चंद्रग्रहण अध्याय ६ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"रक्त कपिलौ च वर्णावुच्चाऽधस्स्थे परे नितराम्॥८॥
सर्वग्रासिन्येवं वर्णविशेषं वदेन्निशानाथे।
उदयास्तमये धूम्रं खण्डग्रहणे सलिलदाभम्॥९॥"

इदानीमादेश्यानादेश्यानाह—

इन्दोर्भागः षोडशः खण्डितोऽपि
तेजः पुञ्जच्छन्नभावान्न लक्ष्यः।
तेजस्तैक्ष्ण्यात् तीक्ष्णगोर्द्वादशांशो
नादेश्योऽतोऽल्पो ग्रहो बुद्धिमद्भिः॥३७॥

ग्रहण का होना अथवा न होना कब कहना चाहिये—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्रमा के सोलहवें भाग के खण्ड ग्रस्त होने पर भी चंद्रमा के प्रकाश के कारण उसका वह ग्रस्त भाग दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार सूर्य बिंब के बारहवें भाग के ग्रसित होने पर सूर्य की तेज किरणों के कारण वह ग्रास भाग दिखाई नहीं देता। अतः उपरोक्त तुल्य चंद्र सूर्य के ग्रस्त होने तक हमें इनके ग्रहण का आदेश नहीं करना चाहिये।

विशेष— आर्यभट (द्वि) ने महाभास्करीय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"ग्रस्तेऽप्यर्कक्रांशो विधोः पंचांशो (१६) न लक्ष्यते दृष्ट्या।१५$\frac{१}{२}$।"

वृद्धवशिष्ठ में भी आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ग्रस्तं शशाङ्कस्य कलाद्वयं चेत् कलात्रयं भानुमतो न लक्ष्यम्।"

सूर्य सिद्धान्त के छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त से कुछ भिन्न कहा है। यथा–

"स्वच्छत्वाद् द्वादशांशोऽपि ग्रस्तश्चन्द्रस्य दृश्यते।
लिप्तात्रयमपि ग्रस्तं तीक्ष्णत्वाच्च विवस्वतः॥१३॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"द्वादशः सवितृमण्डलांशकः पाटवेन महसो न दृश्यते।
खण्डितोऽपि खलु षोडशांशकः स्वच्छतां विदधतः कलावतः॥१७॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"वलनादिशशिवदन्यद् ग्रहणं तैक्ष्ण्याद्रवेरनादेश्यम्।
द्वादशभागादूनं स्वच्छत्वात् षोडशादिन्दोः॥२०॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"तेजस्तैक्ष्ण्यात्तीक्ष्णगोर्मण्डलस्य ग्रस्तोऽप्यंशो रूद्वादशांशोन दृश्यः।
तद्वदभाग् षोडशः शीतरश्मेः स्वच्छांशुत्वाल्लक्ष्यते नाधिकोऽतः॥"

अथोत्क्रमज्यानिराकरणे दृष्टान्तद्वारेण गोलविदो गणकान् प्रति सोपालम्भमाह—

यत् खस्वस्तिकगे रवौ भवलये दृग्वृत्तवत् संस्थिते
प्रत्यक्षं वलनं कुजे त्रिभयुतार्काग्रासमं दृश्यते।
त्वं चेदुत्क्रमजीवयानयसि तत् तादृक् सखे गोलविन्-
मन्ये तर्ह्यमलं तदेव वलनं धीवृद्धिदाद्योदितम्॥३८॥
यत्राक्षोऽङ्गरसा ६६ लवा दिनमणेस्तत्रोदयं गच्छतो
मेषे वा वृषभेऽपि वाप्यनिमिषे कुम्भे स्थितस्यापि वा।
स्पर्शो दक्षिणतस्तदा क्षितिजवत् स्यात् क्रान्तिवृत्तं यत-
स्तद्ब्रुह्युत्क्रमजीवयात्र वलनं व्यासार्धतुल्यं कथम्॥३९॥

वलन आनयन में क्रमज्या के स्थान पर उत्क्रमज्या के उपयोग अप्रासंगिकता—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य जब खस्वस्तिक पर स्थित होता है तब आकाश वलय अर्थात क्रांतिवृत्त दृग्वृत्त समान स्थित होता है तब वलन प्रत्यक्षरूप में (सूर्य+९०°) की अग्रा रूप होता है। यदि आप उत्क्रमज्या के उपयोग से (सूत्र) गोल द्वारा इसी के तुल्य वलन ज्ञात करके दिखा देवें तो मैं (भास्कराचार्य) लल्लाचार्य द्वारा अपने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में कही हुई बात को सही मान लूंगा। इसी प्रकार ६६°अक्षांश अर्थात (९०-२४° स्वल्पांतर) पर जब सूर्य वहाँ उदित होते समय मेष, वृषभ अथवा मीन, कुंभ पर स्थित हो तब चंद्रमा उसको (सूर्य ग्रहण में) दक्षिण की ओर से स्पर्श करता है तथा उस समय क्रांतिवृत्त क्षितिजवत् होता है। इस स्थिति में तब वलन को त्रिज्या तुल्य किस प्रकार कह सकते हैं?

विशेष— जैसा कि हमने पूर्व में कहा ब्रह्मगुप्त ने क्रमज्या का ही उपयोग किया है अपने ग्रंथ में लेकिन श्रीपति तथा पृथुदकाचार्य (जिन्होंने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त की टीका की है) दोनों ने ही ब्रह्मगुप्त की बात पर ध्यान नहीं देकर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लल्लार्योक्त कथन को ही स्वीकार कर लिया। (सिद्धान्त शेखर चंद्र ग्रहणाध्याय श्लोक १८ से २०)। यद्यपि भास्कराचार्य से पूर्व आचार्यों ने उत्क्रमज्या के उपयोग की अप्रासंगिकता को स्वीकार लिया था लेकिन उसके समर्थन में ठोस तर्क नहीं दिये जाने के कारण आगे के आचार्यों ने उस सुधार को न समझ पाकर पारम्परिक सूत्र को ही ग्रहण कर लिया। जब कि भास्कराचार्यने उनके पूर्वाचार्यों द्वारा दिये गये दोनों प्रकार के सूत्रों का बारीकी से अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि उन दोनों में से किस के द्वारा शुद्ध मान ज्ञात होते हैं। उन्होंने जिन तर्कों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला वह यहाँ उन्होंने कह दिया है, जिनको उनके परवर्ति आचार्यों ने तर्क द्वारा गलत सिद्ध नहीं कर पाने के कारण स्वीकार कर लिया।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के चंद्र ग्रहणाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

६

अथ सूर्यग्रहणाधिकारः

इदानीं सूर्यग्रहणाधिकारो व्याख्यायते—

तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह—

दर्शान्तकालेऽपि समौ रवीन्दू द्रष्टा नतौ येन विभिन्नकक्षौ।
क्रर्धोच्छ्रितः पश्यति नैकसूत्रे तल्लम्बनं तेन नतिं च वक्ष्मि॥१॥

अध्याय के आरंभ का प्रयोजन—

सूर्य-प्रभा टीका— अमावस्यान्त काल पर समकल चंद्र-सूर्य को दृष्टा पृथ्वी पर स्थित होकर कुछ नत देखता है उनको वह भूकेंद्र से होकर जाते हुए एक सूत्र की सीध में नहीं देखता है। सूर्य चंद्र की भिन्न कक्षायें इसका कारण हैं। चंद्र कक्षा लघु तथा सूर्य कक्षा दीर्घ होती है। चन्द्र ग्रहण में जो चंद्र की कक्षा होती है वही भूभा की होती है। वहाँ तिथ्यन्त पर भूभा तथा चंद्र की नति समान होती है अतः भूमध्य से ऊपर जाते हुए सूत्र की सीध में ही दृष्टा उन्हें देखता है लेकिन सूर्य ग्रहण में सूर्य चन्द्र को उनकी भिन्न कक्षा होने के कारण दृष्टा उन्हें एक सूत्र में नहीं देखता। इस कारण से मैं (आचार्य) लम्बन तथा नति को कह रहा हूँ जिनके कारण सूर्य ग्रहण में सूर्य-चंद्र एक सूत्र में नहीं दिखाई देते हैं।

इदानीं लम्बनस्य भावाभावं धनर्णत्वं च कथयितुमिति कर्त्तव्यतामाह—

दर्शान्तलग्नं प्रथमं विधाय न लम्बनं वित्रिभलग्नतुल्ये।
रवौ तदूनेऽभ्यधिके च तत् स्यादेवं धनर्णं क्रमतश्च वेद्यम्॥२॥

लम्बन की स्थिति अथवा अभाव एवं धन ऋणत्व—

सूर्य-प्रभा टीका— दर्शान्त काल (अमावस्या) का लग्न ज्ञात करे तथा इसका त्रिभोन लग्न ज्ञात करे। इस त्रिभोन लग्न के समय रवि का लम्बन नहीं होता। सूर्य यदि इससे न्यून अथवा अधिक हो तब इसका लम्बन होता है तथा वह क्रमशः धन एवं ऋण होता है। वित्रिभ लग्न के तुल्य रवि के रहने पर लम्बन नहीं होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— सर्वप्रथम हम यह स्पष्ट करते हैं कि लम्बन क्या होता है? चंद्र ग्रहण में क्योंकि चन्द्रमा भूछाया द्वारा आच्छादित होता है अतः वह दृष्टा की पृथ्वी पर किसी भी स्थिति से दृश्यमान होने में प्रभावित नहीं होता। लेकिन चंद्रमा जब सूर्य ग्रहण में सूर्य को आच्छादित करता है तब उसकी दृश्यस्थिति दृष्टा के पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों पर से प्रभावित होती है। यह लंबन के कारण होती है।

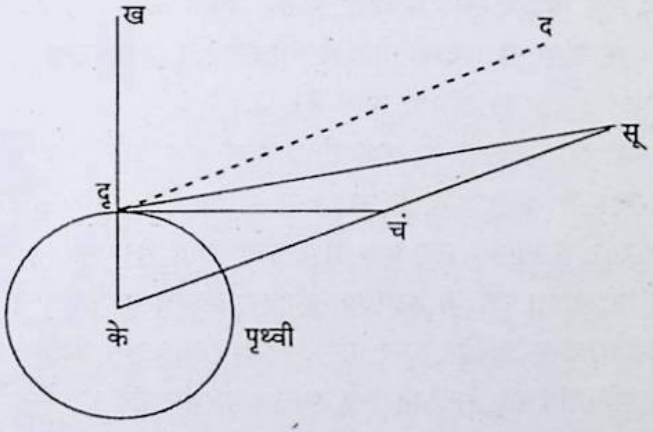

चित्र में,

के = भू केंद्र है।

दृ = दृष्टा की पृथ्वी के ऊपर की स्थिति है।

ख = खमध्य है।

चं = चंद्रमा है।

सू = सूर्य है।

दृद = रेखा **के चं सू** के समानांतर खींची गई है।

दृष्टा भूकेंद्र (के) से चंद्रमा को (के चं) रेखा में देखता है तथा वहाँ से चन्द्रमा का नतांश ख के चं = ख दृ द है। लेकिन दृ स्थान पर बैठा हुआ दृष्टा चंद्रमा को (दृ चं) रेखा में देखता है तथा वहाँ से चंद्रमा का नतांश ख दृ चं है तथा–

$\angle$ख दृ चं = $\angle$ख के चं + $\angle$के चं दृ = $\angle$ख दृ द + $\angle$द दृ चं

तथा $\angle$दृ चं के, $\angle$ख के चं के लिए लंबन शुद्धि है।

सूर्य के लिए लम्बन शुद्धि $\angle$दृ सू के है। यह चंद्र की लंबन शुद्धि से अल्प है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

∠दृ चं के लंबन का मान होता है।

लग्न से प्राप्त नब्बे अंश वृत्त क्रांतिवृत्त में जहाँ लगता है वही विक्षिभ लग्न होता है। विक्षिभ लग्न के तुल्य सूर्य होने पर स्पष्ट लम्बन का अभाव होता है। कदम्ब प्रोत वृत्त रवि के ऊपर से तथा दूसरा कदम्ब प्रोत वृत्त लंबित रवि के ऊपर से क्रांतिवृत्त में जहाँ जहाँ लगता है उनके बीच का क्रांतिवृत्त पर चाप (रवि के लंबित स्थान से रवि स्थान पर्यंत) रवि का स्पष्ट लम्बन होता है। लेकिन जब सूर्य विक्षिभ लग्न में रहता है तब उसके ऊपर दृग्वृत्त तथा रवि और लंबित रवि के ऊपर से कदम्ब प्रोत वृत्त एक ही दृक्क्षेप वृत्त होता है। अतः वहाँ पर स्पष्ट लंबन का अभाव होता है।

गर्भीय अमान्तकाल में स्थानाभिप्रायिक रवि और चंद्र एक ही बिंदु (रेखा) में होते हैं अतः एक ही दृग्वृत्त में लंबित रवि और लंबित चंद्र होते हैं। लंबित रवि से लंबित चंद्र पृष्ठ में लंबित होता है। अतः विक्षिभ से रवि अल्प होने पर लंबित रवि के ऊपरीगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रांतिवृत्त में जहाँ लगता है उससे अधोभाग में लम्बित चन्द्र परिगत कदम्ब प्रोत वृत्त क्रांतिवृत्त में लगेगा। अतः यहाँ शीघ्रगति ग्रह (लंबित चंद्र स्थान) से मन्दगति (लंबित सूर्य स्थान) के आगे रहने के कारण युति गम्य होती है। अतः गर्भीय अमान्त से पृष्ठीय अमान्त स्पष्ट लंबांतर के पश्चात् होता है। इसलिए गर्भीय अमान्तकाल में स्पष्ट लंबान्तर जोड़ने से पृष्ठीय अमान्त काल होता है। विक्षिभ से रवि अधिक रहने पर लंबित रवि से लंबित चंद्रमा अधोभाग में होता है। अतः लंबित रवि ऊपर गत कदम्ब प्रोत वृत्त और क्रांति वृत्त के सम्पात से लंबित चंद्रोपरिगत कदम्ब प्रोत्त वृत्त और क्रांतिवृत्त का सम्पात ऊपर होता है अतः मध्यगति ग्रह (लंबित रवि स्थान) से शीघ्रगति ग्रह (लंबित चंद्र स्थान) के आगे रहने के कारण युति गत होती है। अतः गर्भीय अमान्त काल में स्पष्टलम्बांतर को ऋण करने से पृष्ठीय अमान्त काल होता है। अतः आर्योक्त "तदूनेऽभ्यधिके" युक्ति युक्त है। उपपन्न हुआ।

दृग्लंबन का परमत्व— भूकेंद्र से और भू पृष्ठ से स्वकक्षा स्थित रविकेंद्रगत रेखा द्वय चन्द्रकक्षा में जहाँ-जहाँ लगती है उसके अन्तर्गत चन्द्रगोलीय दृग्वृत्तचाप रवि लंबन है। इसी प्रकार भूकेंद्र से और भूपृष्ठ से चंद्रकक्षास्थ चंद्र केंद्रगत दोनों रेखायें रवि कक्षा में जहाँ जहाँ लगती है उनके अन्तर्गत रविगोलीय दृगवृत्त चाप चन्द्रलंबन है। इस तरह एक त्रिभुज बनता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूकेंद्र से ग्रह केंद्र (रवि केंद्र या चंद्र केंद्र) पर्यन्त ग्रह कर्ण एक भुज, भूपृष्ठ से ग्रहकेंद्र पर्यन्त पृष्ठ कर्ण द्वितीय भुज, भूव्यासार्ध तृतीय भुज। इन भुजों से बनने वाले त्रिभुज में पृष्ठकर्ण और भूव्यासार्ध से उत्पन्न कोण = १८० – पृष्ठीय नतांश, कोणज्या और कोणोनभार्धांशज्या बराबर होती है, इसलिये ज्या (१८०–पृष्ठीय नतांश) = पृष्ठीय दृग्ज्या। अब अनुपात किया कि यदि ग्रह कर्ण में पृष्ठीय दृग्ज्या पाते हैं तो भूव्यासार्ध से क्या? इससे प्राप्तफल ग्रहलग्न कोणज्या (दृग्लग्नज्या) आती है, जिसका मान = $\frac{\text{पृ.दृग्ज्या} \times \text{भूव्यासार्ध}}{\text{ग्रह कर्ण}}$। इस सूत्र में ग्रहकर्ण तथा भूव्यासार्ध स्थिर हैं अतः सिद्ध हुआ कि पृष्ठीय दृग्ज्या का परमत्व जहाँ जो, वहीं दृग्लम्बनज्या का भी परमत्व होगा। लेकिन पृष्ठीय दृग्ज्या का परमत्व पृष्ठ क्षितिज में ग्रह के रहने से होता है, अतः पृष्ठ क्षितिज ही में दृग्लम्बन का परमत्व होता है यह सिद्ध हुआ। गर्भक्षितिज धरातल और पृष्ठक्षितिज धरातल के अन्तर्गत दृगमंडलीय चाप (कुच्छन्न कला) होता है।

ख स्वस्तिक से ग्रहगोलीय दृग्मण्डल और पृष्ठ क्षितिज के योग बिन्दु में जो भूव्यासार्धकला (कुच्छन्न कला) होती है वह परम लंबन होती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"वित्रिभलग्नसमेऽर्के न लंबनं तदधिकोनके भवति।
वस्य क्रांतिज्योदक् यदाऽक्षजीवा समा न तदा॥२॥"

सूर्यसिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यलग्नसमे भानौ हरिजस्य न सम्भवः।$\frac{१}{२}$।"

"लंबनस्यापि पूर्वान्यदिग्वशाच्च तथोच्यते॥२॥
मध्य लग्नाधिके भानौ तिथ्यन्तात् प्रविशोधयेत्।
धनमूनेऽसकृत् कर्म यावत् सर्वं स्थिरीभवेत्॥९॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"वित्रिभोदयसमे न लंबनं भास्करे समधिकोनके भवेत्।
चेत् समा तदपमज्यकोत्तराऽक्षज्ययाऽस्त्यवनतिस्तदा नहि॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"परमं लम्बनमुदयेऽस्ते वा भानोर्दिवादले न स्यात्।
दर्शान्तजे प्रसाध्ये कथितवदभ्रोदयविलग्ने ॥१॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के रवि.ग्र. में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"विन्निभलग्नसमे दिननाथे लम्बननाश इहाभ्यधिकोने।
तद्भवति क्षयवृद्धि विधायि स्पष्टतिथेरसकृच्च सकृद्वा ॥३॥"

इदानीममुमेवार्थं सम्प्रधार्यानुपातद्वयेन लम्बनमाह—

त्रिभोनलग्नं तरणिं प्रकल्प्य तल्लग्नयोर्यः समयोऽन्तरेऽसौ।
त्रिभोनलग्नस्य भवेद्द्युयातः शङ्क्वाद्यतस्तस्य चरान्त्यकाद्यैः ॥३॥
त्रिभोनलग्नार्कविशेषशिञ्जिनी कृताहता व्यासदलेन भाजिता।
हतात् फलाद्वित्रिभलग्नशङ्कुना त्रिजीवयाप्तं घटिकादि लम्बनम् ॥४॥

दो अनुपातों द्वारा लम्बन ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— दर्शान्त काल पर लग्न ज्ञात करके उसको वित्रिभ करके, उस वित्रिभ के भुक्त भोग्य के अन्तर को लग्न के उदय काल में जोड़ देने से वित्रिभ का उदय काल प्राप्त होता है। इस काल से वित्रिभ लग्न जनित कुज्या, द्युज्या, अन्त्या तथा त्रिप्रश्नाधिकारोक्त प्रकार से शंकु का साधन करे। शंकु से दृग्ज्या तथा उसका छायाकर्ण साधित करे। फिर त्रिभोन लग्न तथा सूर्य के अन्तर की ज्या का साधन करे। (अब उनसे लंबन ज्ञान करने के लिए अनुपात करे कि यदि त्रिज्या तुल्य वित्रिभ लग्न तथा सूर्य के अन्तर की ज्या से चार घटी लंबन (परम लंबन) प्राप्त होता है तो अभीष्ट में क्या? प्राप्तफल मध्यमलग्न होगा। इसको स्फुट करने के लिए दूसरा अनुपात करे कि यदि त्रिज्या तुल्य वित्रिभलग्न शंकु का इतना लंबन होता है तो इतने नत अंतर में क्या? प्राप्तफल स्फुट लंबन होगा।) त्रिभोलग्न में से सूर्य के अन्तर की ज्या को चार से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्त फल को वित्रिभ लग्नशंकु से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से घटिकादि लंबन स्फुट होता है।

सूत्र रूप में—

$$\text{लंबन} = \frac{४ \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{वित्रिभ लग्न शंकु}}{\text{त्रिज्या}}$$

उपपत्ति— पूर्वोक्त टीका में ही ब्रेकिट में लिखा गया भाग उपपत्ति रूप है। यहाँ आचार्य ने दो अनुपात किये हैं प्रथम यह कि यदि वित्रिभ लग्न खमध्य हो जावे अर्थात् वित्रिभलग्नऽर्क अन्तर ज्या यदि त्रिज्या तुल्य हो जावे तो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षितिज पर परमलंबन का मान चार (४) नाडी होता है; तब प्राप्त वित्रिभ लग्नऽर्क अन्तर ज्या में कितना लंबन होगा?

दूसरा अनुपात यह किया है कि यदि वित्रिभ लग्न खमध्य पर न हो तब यदि वित्रिभ लग्न की नतांश कोज्या (वित्रिभ लग्न शंकु) यदि त्रिज्या तुल्य हो जावे तब मध्यम लंबन $\frac{४ \times \text{त्रिभोनलग्नऽर्क अन्तरज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ होता है (प्रथम अनुपात से) अतः प्राप्त त्रिभोन लग्न की नतांश कोज्या (अर्थात वित्रिभ लग्न शंकु) में कितना लंबन होगा?

विशेष— ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में ब्रह्मगुप्त ने आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"त्रिज्याकृतेश्चतुर्गुणशङ्कुहतायाः फलेन भक्तायाः।
तात्कालिकार्कराशित्रयोनलग्नान्तरज्यायाः ॥४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"वेदघ्नशङ्कुविहतात् त्रिगुणस्य वर्गाल्लब्धेन वित्रिभदिनेशविशेष जीवा।
भक्ता विलम्बनमिदं ह्युदितं दिनेशे न्यूनाधिके धन ऋणं त्रिगृहोनलग्नात्॥"

सूर्य सिद्धान्त में सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"एक ज्यावर्गतश्छेदो लब्धं दृग्गति जीवया॥७॥
मध्यलग्नार्क विश्लेषज्या छेदेन विभाजिता।
रविन्द्वोर्लम्बनं ज्ञेयं प्राक्पश्चात् घटिकादिकम्॥८॥"

यहाँ वित्रिभ लग्न की नतांश कोज्या को दृग्गति कहा गया है। यह वित्रिभ लग्न शंकु ही है।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"तद्गज्यावर्गान्तरमूलं सा दृग्गतिर्भवति।
तद्घबधेन गभज्यावर्गो भक्तो भवेच्छेदः॥६॥
दृग्लम्बार्कान्तरजा ज्या छेदाप्ता भवेद्धरिजम्।$\frac{१}{२}$।"
"असकृत् कार्य चैतत् पराशर्यं मतं प्रवक्ष्येऽथ।
दृग्लम्बजनरघबधेन भजेद्गज्याकृतिं फलेन हता॥८॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दृग्लम्बार्कान्तरजा ज्या लम्बनताडिका भवन्त्यसकृत्।
सुस्थिरलम्बनतिथिजान् कुर्यादुष्णांशुशशिपातान्॥९॥''

पूर्व श्लोक ६ में स्थूल दृग्गति ग्रहण की गई है तथा इन श्लोकों में पराशरमत से सूक्ष्म दृग्गति ग्रहण की गई है यही यहाँ विशेष है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्याधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

''ग्राह्य वित्रिभविलग्नविशेषज्या हता विपद लग्नं नरेण।
व्यास खण्डकृतिहृत्फलमाहुर्लम्बनं परमलम्बननिघ्नम्॥''

इदानीं प्रकारान्तरेण स्फुटीकरणमाह—

फलाद्रवि १२ घ्नात् त्रिभहीनलग्नकर्णेन लब्धं खलु लम्बनं वा।

प्रकारांतर से लंबन स्फुटीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वप्राप्त फल अर्थात् मध्यलंबन को बारह (१२) से गुणा करके वित्रिभ लग्न (शंकु) के छाया कर्ण से विभक्त करने से भी स्फुट लंबन प्राप्त होता है।

उपपत्ति— त्रैराशिक से कि, यदि वित्रिभलग्नशंकु द्वादश अंश हो तो वित्रिभ लग्न शंकु को त्रिज्या चाप से अपवर्तित करने से गुणा के स्थान पर १२ तथा हर स्थान पर वित्रिभ लग्न कर्ण प्राप्त होता है। यथा–

$$\text{पूर्वानीत लंबन घटी} = \frac{४ \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या} \times \text{वित्रिभ लग्न शंकु}}{\text{त्रि} \times \text{त्रि}} \text{ है}$$

$$= \frac{४ \times १२ \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\frac{१२ \times \text{त्रि.}}{\text{वित्रिभलग्नशंकु}} \times \text{त्रि.}}$$

$$= \frac{४ \times १२ \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\text{वित्रिभ छाया कर्ण} \times \text{त्रि}} \text{ (यह ब्रह्मगुप्तोक्त है।)}$$

$$= \frac{१२ \times \text{फल}}{\text{वित्रिभ लग्न छाया कर्ण}}$$

$$\text{यहाँ फल} = \frac{४ \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\text{त्रि}} = \text{मध्यलंबन है।}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त** के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"कर्णगुणाद् व्यासार्धाद् वसुवेद विभाजितात् फलविभक्ता।
लम्बननाड्यो भास्करविन्निभलग्नान्तरज्या वा॥६॥"

उपरोक्त उपपत्ति के अनुसार भास्करोक्त तथा ब्रह्मगुप्तोक्त बात को परस्पर परिवर्तित किया जा सकता है।

सिद्धान्त शेखर में भी श्रीपति ने आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"श्रुतिसङ्गुणात् त्रिभगुणाद्विभाजिताद्वसुसागरैरथ फलेन वा हृता।
रवि वित्रिभोदय वियोगशिञ्जिनी घटिकादिलम्बनमिहासकृत् भवेत्॥"

श्रीपति ने इस श्लोक से भास्कराचार्य के पूर्व श्लोक ३ व ४ की व्याख्या भी होती है।

इदानीं प्रकारान्तरेण लम्बनमाह—

त्रिभोनलग्नस्य रवेश्च शङ्कोर्वा दृग्ज्ययोर्वर्गवियोगमूलम्॥५॥
स्याद्दृङ्नतिर्वेद ४ गुणा त्रिमौर्व्या भक्ताथवा लम्बननाडिकाः स्युः।

प्रकारांतर से लंबन ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिभोनलग्न तथा रवि के शंकु तथा दृग्ज्या साधित करे। दोनों के शंकु वर्गों तथा दृग्ज्या के वर्गों का पृथक्-पृथक् अंतर का मूल दृङ्नति होता है। दृङ्नति को चार (४) से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से लम्बन घटियाँ होती है।

सूत्र रूप में—

$$\text{दृङ्नति} = \sqrt{\text{त्रिभोन लग्न शंकु}^2 - \text{रविशंकु}^2}$$

$$= \sqrt{\text{त्रिभोन लग्न दृग्ज्या}^2 - \text{रवि दृग्ज्या}^2}$$

$$\text{स्फुट लंबन घटि} = \frac{\text{दृङ्नति} \times 4}{\text{त्रिज्या}}$$

उपपत्ति— यदि वित्रिभ लग्न खमध्य बिंदु हो तब क्रांतिवृत्त दृग्मंडल हो जाता है तथा त्रिभोन लग्न तथा रवि के अन्तर की ज्या, सूर्य की दृग्ज्या होती है। पूर्व श्लोक ३-४ के अनुसार इस दृग्ज्या को चार (४) से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से मध्य लंबन होता है। यह वहाँ उपपत्ति में कहा है। वित्रिभ लग्न खमध्य बिंदु पर होने पर परम लंबन शून्य घटी होता है तथा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षितिज पर होने पर ४ घटी होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि लम्बन सूर्य की नतज्या के अनुपात में प्राप्त होता है। इस परिस्थिति में यह लंबन क्रांतिवृत्त में ऊर्ध्व स्थिति में होता है तथा यह कर्ण रूप में होता है।

यदि वित्रिभ लग्न खअर्ध तुल्य नत हो तो क्रांतिवृत्त के तिर्यक स्थित होने के कारण पूर्वापर स्फुट लंबन कोटिरूप में होता है। मध्य लम्बन आनयन में त्रिज्या वित्रिभलग्नशंकु है। इसको स्फुट करने के लिए यह वित्रिभ लग्न शंकु दृक्क्षेपमंडल में कोटि होता है, तब उसकी दृग्ज्या भुज है एंव त्रिज्या कर्ण है। जब वित्रिभ शंकु कर्ण से कोटि रूप में होता है तब स्फुट लंबन त्रिज्या भी कोटि रूप में हो जाती है।

भास्कराचार्य के कहे अनुसार हम इसको दूसरे प्रकार से भी देख सकते हैं। रवि की दृङमंडल में दृग्ज्या कर्ण रूप में है तथा वित्रिभ लग्न की जो दृग्ज्या है वह दृक्क्षेप में भुजरूप में है। स्फुट लंबन जो कर्ण रूप में है जब दृग्मंडल नतांश रूप में कोटी रूप में हो जाता है। अतः तब $\sqrt{\text{त्रिभोन लग्न दृग्ज्या}^2 - \text{रवि दृग्ज्या}^2}$ स्फुट लंबन की कोटि है। अतः इसको दृग्नति कहते हैं।

अतः स्फुट लंबन को दृग्मंडल नत पर आधारित समझना चाहिये। दृग्मंडल नत को दृग्नति भी कहते हैं। वित्रिभलग्न और रवि की अन्तर ज्या, वित्रिभलग्नशंकु व्यासार्ध में परिणत करने से दृग्नति होती है। इस प्रकार क्षितिस्थ रवि की परमनति वित्रिभ लग्न शंकु तुल्य होती है यह पूर्व के तुल्य होती है। किन्तु दृक्क्षेप और रवि की दृग्ज्या तुल्य शलाका समतल भूमि पर भुजकर्ण के रूप में विन्यास करने पर उसकी कोटि रूप दृग्नति दिखाई देती है।

यहाँ जिस प्रकार वित्रिभलग्न तथा रवि की दृग्ज्या के वर्गों के अन्तर का मूल उसका शंकु होता है, उसी प्रकार उनके शंकु वर्गों के अन्तर का मूल होता है। अब इसके लिए बताते हैं। इनके स्व-स्व शंकुवर्गों को त्रिज्या के वर्ग में घटाने से दृग्ज्या वर्ग होता है। अतः इन का अंतर करने से त्रिज्या वर्ग दोनों स्थानों पर तुल्य होने से समाप्त हो जाता है तथा शंकु वर्गान्तर शेष रहता है। अतः आचार्य ने कहा है "त्रिभोनलग्नस्य खेश्च शंक्वीर्वा दृग्ज्योरिति।" दृङ्नति का त्रिज्या से अनुपात करने से लंबन घटी में प्राप्त होता है।

विशेष— भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के अध्याय ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"स्वदृग्दृक्षेपगुणयोवर्गविश्लेषजे पदे।
दृग्गतिज्ये भवेतां भास्करामृत तेजसोः॥२३॥"

यहाँ खमध्य से सूर्य तक जाने वाली (वृत्त में) दूरी जो क्रांतिवृत्त पर लंबवत होती है "दृग्गतिज्या" होती है। इसके पश्चात् के आचार्यों ने खमध्य से क्रांतिवृत्त पर लंबवत् दूरी को 'दृन्नतिज्या' कहा है।

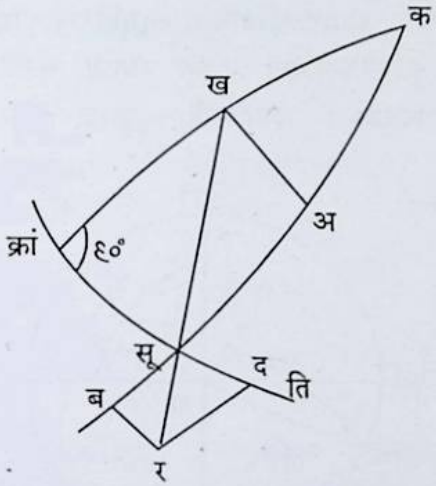

चित्र में क्रां सू द ति क्रांति वृत्त है। क= कदम्ब है। सू= सूर्य है। ख= खमध्य है। क ख क्रां तथा क सू क्रांतिवृत्त पर लम्ब हैं। र= स्वस्थान से देखने पर सूर्य की स्थिति है। ख अ, क सू पर लंब है। समकोण त्रिभुज ख क्रां सू में –

$(\text{ज्या ख अ})^२ = (\text{ज्या ख सू})^२ - (\text{ज्या ख क्रां})^२$ ∵ ख क्रां = अ सू

अथवा $(\text{सूर्य दृग्गति ज्या})^२ = (\text{सूर्य दृग्ज्या})^२ - (\text{सूर्य दृक्क्षेपज्या})^२$

यहाँ क्योंकि वित्रिभ लग्न की दृग्ज्या दृक्क्षेप होती है। अतः

दृग्नति = $\sqrt{\text{सूर्य दृग्ज्या}^२ - \text{वित्रिभ लग्न दृग्ज्या}^२}$ आचार्योक्त उपपन्न हुआ। चित्र में सू द सूर्य की लंबन है तथा सू र सूर्य की नति लंबन है।

वराह के पंचसिद्धान्तिका के सौर सिद्धान्त द्वारा सूर्यग्रहण आनयन के अध्याय ९ में आचार्योक्त विधि ही कही है। यथा–

निम्नलिखित दो श्लोकों में मध्य लग्नज्या ज्ञात करने के लिए कहा है–

"मध्यार्कलम्बित तिथेरनक्ष राश्युद्गमैः प्रतीपांशाः।
प्राक् समलिप्ताहानिः क्रमेण पश्चाद्धनं कार्यम्॥१७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तन्मध्य विलग्नाख्यं तस्माच्चापक्रमांशकाः क्रमशः।
तैरक्षवियुतयुक्तैर्या ज्यामध्याभिधाना सा॥१८॥''

इसके पश्चात् आगे के दो श्लोकों में रविदृक्क्षेप ज्ञात करने के लिए बताया है। यथा–

''तिथ्यन्तविलग्न ज्या काष्ठान्तज्याहता स्वलम्बहृता।
मध्यज्याघ्नी व्यासार्धभाजिता वर्गिता सा च॥१९॥
मध्यज्या कृतिविश्लेषितां पृथक् स्थाप्य मूलमेकस्याः।
सवितुर्दृक्क्षेपाख्यं संस्मृत्यर्थं पृथक् स्थाप्यम्॥२०॥''

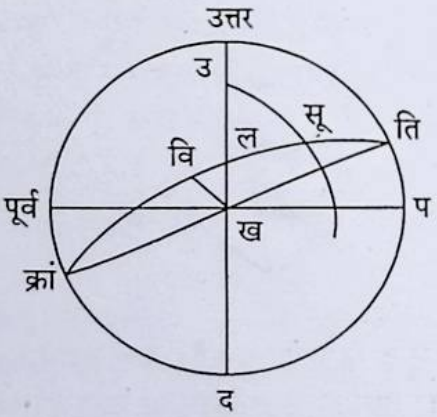

चित्र में वि = वित्रिभ लग्न अर्थात (लग्न–९०°) है। ख = ख स्वस्तिक है। वि ख = वित्रिभ लग्न का नत है। क्रां वि ल सू ति = क्रांतिवृत्त है। उ ख द = याम्योत्त है। ल = याम्योत्तर वृत्त तथा क्रांतिवृत्त का मिलान बिंदु मध्यलग्न है। सू = अमान्त पर सूर्य की स्थिति है। ज्या (विख) = सूर्य दृक्क्षेप है जो ज्ञात करना है। गोलीय ख वि ल त्रिभुज जो वि बिंदु पर समकोण है, को स्वल्पांतर से समतल त्रिभुज मान लेने पर चापीय त्रिभुज की भुजाओं के चापों की ज्या को इस समतल त्रिभुज की भुजायें मान ली गई हैं।

(ज्या विख)^२ = (ज्या ल ख)^२ – (ज्या वि ल)^२

समकोण त्रिभुज ख वि ल में ख ल कर्ण है।

अथवा (ज्या वित्रिभलग्न नत)^२ = (ज्या म. ल.नतांश)^२ – (ज्या (म.ल. – वि.))^२

अथवा (रवि दृक्क्षेप)^२ = (ज्या म.ल. नतांश)^२ – (ज्या म.ल.वि.)^२

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मध्य लग्न का नतांश पूर्व श्लोक १७-१८ से ज्ञात कर लिया जाता है तथा ज्या (म.ल. – वि.) को पंचसिद्धान्तोक्त सूत्र–

$$\text{ज्या (म.ल. –वि.)} = \frac{\text{ज्या (म.ल.नतांश)} \times \text{ज्या } \angle \text{ल ख वि}}{१२०}$$

इस प्रकार पंच सिद्धान्तिका में भी आचार्योक्त को आधार रूप ही कहा गया है।

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में नति की घटिकादि आचार्योक्त कही है। यथा–

"हृताथवा दृष्टि गतिः खषड्गजैर्विलम्बनं तत् स्वमृणं क्रमाद् भवेत्।
तिथेर्विरामे परपूर्वभाग योर्मुहुस्तदुत्थांशकलाः शशीनयोः ॥६॥
तद्वर्गतिथ्यन्तजदृष्टिजीवा वर्गान्तरं दृग्गतिवर्गमुक्तम्॥६॥"

यहाँ आचार्य ने $\frac{\text{दृग्गति}}{\text{त्रिज्या}} \times ४$ को ही $\frac{\text{दृग्गति}}{३४३८ \div ४} = \frac{\text{दृग्गति}}{८६०}$ कहा है।

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि के रविग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दृक्क्षेपवर्गौ पृथगन्वितौ वा भूयाल्पभूखण्डकवर्गिताभ्याम्।
हीने तु तच्छङ्कुकृते पदे स्ते दृङ्मध्यजीवे नरमौर्विके वा॥१४॥
दृग्गतिः कृत (४) गुणाऽथवा हृता त्रिज्ययैव घटिकादिलम्बनम्।
तत्तिथौ क्षयधनं यथोक्तवल्लम्बनस्फुट इहोदितोऽसकृत्॥१६॥"

आचार्य ने लल्लाचार्य की भांति भी (पूर्वोक्त श्लोक) लंबन कहा है। यथा–

"नतघटिकाङ्ग समाहतिरंशा स्वमृणमिने परपूर्वकपाले।
तदपमचापपलापंशयुतोनं त्रिभरहितं द्युदले नतशङ्कू॥७॥
खरसनाग हृता नतमौर्विका द्युदलशङ्कुगुणा त्रिभमौर्विहृत्।
भवति लम्बनमुक्तकपालयोः तिथिघटीष्वसकृत्स्वमृणं क्रमात॥८॥"

इदानीं लम्बनप्रयोजनमाह—

शङ्क्वोस्तयोर्दृग्गुणयोस्तयोर्वा त्रिज्याचतुर्थांशविभक्तयोः स्यात्॥६॥
यद्वर्गविश्लेषपदं द्विधैवं विलम्बनं तद्घटिकादिकं वा।

लंबन ज्ञात करने की अन्य विधि—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त त्रिभोनलग्न तथा सूर्य के शंकु एवं दृग्ज्या

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को त्रिज्या के चतुर्थांश से विभक्त करके उनके वर्गों के अंतर का मूल लेने से लंबन प्राप्त होता है।

उपपत्ति— आचार्य ने यह श्लोक पूर्वोक्त श्लोक में कथित सूत्र के दोनों भागों को ही सम्मिलित करके नये रूप में कह दिया है।

आचार्य द्वारा पूर्व कथित श्लोक के दोनों सूत्रों को एक रूप में करने से—

$$\text{स्फुट लंबन घटी} = \frac{४}{\text{त्रिज्या}} \sqrt{\text{त्रिभोन लग्न शंकु}^२ - \text{रवि शंकु}^२}$$

$$= \sqrt{\left(\frac{४}{\text{त्रिज्या}}\right)^२ [\text{त्रिभोन लग्न शंकु}^२ - \text{रवि शंकु}^२]}$$

$$= \sqrt{(\text{त्रिभोन लग्न शंकु})^२ \times \left(\frac{४}{\text{त्रिज्या}}\right)^२ - (\text{रवि शंकु})^२ \times \left(\frac{४}{\text{त्रिज्या}}\right)^२}$$

$$= \sqrt{\left(\frac{\text{त्रिभोन लग्न शंकु}}{\frac{\text{त्रिज्या}}{४}}\right)^२ - \left(\frac{\text{रवि शंकु}}{\frac{\text{त्रिज्या}}{४}}\right)^२}$$

इसी प्रकार —

$$\text{स्फुट लंबन घटी} = \sqrt{\left(\frac{\text{त्रिभोन लग्न दृग्ज्या}}{\frac{\text{त्रिज्या}}{४}}\right)^२ - \left(\frac{\text{रवि दृग्ज्या}}{\frac{\text{त्रिज्या}}{४}}\right)^२}$$

इदानीं लम्बनप्रयोजनमाह—

तत्संस्कृतः पर्वविराम एवं स्फुटोऽसकृत् स ग्रहमध्यकालः ॥७॥

लंबन का प्रयोजन—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यलग्न अर्थात् त्रिभोन लग्न से सूर्य अधिक हो तो दर्शान्तकाल में लंबन को हीन करना चाहिये और यदि त्रिभोन लग्न से सूर्य न्यून हो तो दर्शान्त काल में लंबन को धन करना चाहिये। लंबन संस्कृत दर्शान्त काल से पुनः पुनः तब तक लंबन आदि संपूर्ण क्रिया करे जब तक लम्बन का मान स्थिर न हो जावे। इस प्रकार स्थिर भूत दर्शान्त काल स्पष्ट दर्शान्तकाल होता है।

उपपत्ति— चंद्र कक्षा आसन्न है तथा रवि कक्षा दूर स्थित है अतः भूमि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पर स्थित दृष्टा से जो रवि मंडल गामी सूत्र है उससे चंद्रमा दृष्टा को अवलम्बित दिखता है। यही लंबन है। क्रांति वृत्त पर परमोच्च स्थान पर वित्रिभलग्न होता है। उससे यदि रवि न्यून हो तो सूर्य से अवलंबित चन्द्र पीछे की ओर होता है। चन्द्रमा की गति शीघ्र होती है अतः वह पीछे से तेज गति से आकर सूर्य से पीछे से युति करता है। अतः लंबन का तिथि में धन करते हैं। यदि वित्रिभ से रवि अधिक हो तो अवलंबित चंद्रमा सूर्य से आगे होता है तब शीघ्र गति से युति लंबन तुल्य काल में हो चुकती होती है अतः लंबन को ऋण करते हैं। इस प्रकार लंबन संस्कृत दार्शान्त ग्रहण मध्य काल होता है, यह उपपन्न हुआ।

यदि त्रिज्या तुल्य सूर्य की दृग्ज्या का परम भुक्त अन्तर १५ अंश तुल्य होता है तब लंबन कला ४८।४६ प्राप्त होती है तो इष्ट सूर्य दृग्ज्या में कितनी होगी? प्राप्तफल दृग्लंबन कला होती है। इससे इसी प्रकार अनुपात करने से दृक्क्षेप से जो लंबन लिप्ता प्राप्त होती है वह अवनति लिप्ता है। यह भुज रूपा है। दृग्लंबन कला कर्ण है। इनके वर्गान्तर का मूल स्फुट लंबन लिप्ता होता है।

जैसे दृङ्नति आनयन में रविदृग्ज्या कर्ण तथा दृक्क्षेप भुज होता है इसी प्रकार दृक्क्षेप के आनयन में अवनति भुज तथा स्फुट लंबन लिप्ता कोटी होती है।

इदानीं सकृत्प्रकारेण लम्बनमाह—

त्रिभोनलग्नस्य नरस्त्रिभू १३ घ्नो दन्तैः ३२ विभक्तः परसंज्ञकः स्यात्।
लग्नार्कयोरन्तरकोटिदोर्ज्ये विधाय दोर्ज्यापरयोर्वियोगात्॥८॥
स्वघ्नाद्युतात् कोटिगुणस्य कृत्या मूलं श्रुतिः कोटिगुणात् परघ्नात्।
श्रुत्या हृताल्लब्धधनुः कला यास्ते वासवो लम्बनजाः सकृत् स्युः॥९॥

अब सकृत्प्रकार से लम्बन ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिभोलन लग्न के शंकु को (१३) तेरह से गुणा करके ३२ से विभक्त करने से प्राप्त फल 'पर'संज्ञक है। दर्शान्त काल पर जो लग्न है उसके तथा सूर्य के अंतर की भुज कोटि साधित करके उस ज्या तथा 'पर' के अंतर के वर्ग में कोटिज्या के वर्ग का अंतर युक्त कर देवें। इस प्रकार प्राप्त योगफल का मूल कर्ण है। कोटिज्या तथा 'पर' के गुणा में कर्ण से भाग देने से जो फल प्राप्त हो उसको चाप की जितनी कला हो उतनी लम्ब असु होते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूत्र रूप में—

$$\text{पर} = \frac{१३}{३२} \text{ त्रिभोन लग्न शंकु}$$

$$\text{कर्ण} = \sqrt{[\text{पर } \backsim \text{ ज्या (लग्न अर्कान्तर)}]^२ + \text{कोज्या}^२ \text{ (लग्नऽर्कान्तर)}}$$

$$\text{लंबन} = \text{चाप} \left(\frac{\text{लग्नऽर्कान्तर कोज्या} \times \text{पर}}{\text{कर्ण}} \right)$$

उपपत्ति— यदि त्रिज्या तुल्य विक्रिभ लग्न शंकु में परम लंबन प्राप्त होता है तो इष्ट शंकु में कितना होगा?

$$\text{प्राप्तफल} = \frac{\text{इष्ट त्रिभोलग्न शंकु} \times \text{परम लंबन ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$\text{अर्थात} \quad \text{पर} = \frac{\text{त्रिभोन लग्न शंकु} \times \text{ज्या } २४^\circ}{३४३८} = \frac{\text{त्रिभो.ल.शे} \times १३}{३२}$$

यहाँ ४ घटी परमलंबन होता है तब त्रिज्या तुल्य विक्रिभ लग्न शंकु होता है। ४ घटी कितने अंश तुल्य होती है यदि ६० घटी में ३६० अंश होते हैं। $\frac{४ \times ३६०}{६०}$ = २४ अंश। अर्थात् परम लंबन की ४ घटी, २४ अंश तुल्य होती है। अतः $\text{पर} = \frac{\text{ज्या } २४^\circ \times \text{त्रिभोन लग्न शंकु}}{\text{त्रिज्या}}$

अतः पूर्व श्लोक ३ व ४ में आचार्योक्त लंबन का सूत्र—

$$\text{लंबन} = \frac{४ \times \text{विक्रिभ लग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{विक्रिभ लग्नशंकु}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$\text{लंबन} = \text{पर} \times \frac{\text{विक्रिभ लग्नऽर्क्रान्तरज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

यहाँ विक्रिभ लग्नऽर्कान्तरज्या जब त्रिज्या के तुल्य होगी जब लंबन 'पर' के तुल्य हो जाता है। उपरोक्त प्राप्त 'पर' का मान निम्नलिखित क्रांतिज्या ज्ञात करने के सूत्र के समरूप है।

$$\text{क्रांतिज्या} = \frac{\text{ज्या } २४^\circ \times \text{ज्या भुजांश}}{\text{त्रिज्या}}$$

दोनों सूत्रों को देखने से ज्ञात होता है कि त्रिभोनलग्नशंकु = ज्या

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भुजांश है। अर्थात् 'पर' का मान क्रांतिज्या के द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। अतः त्रिज्या संभूत क्रांतिकला तुल्य परम लंबन होता है। यदि वित्रिभ लग्न शंकु त्रिज्या से अल्प हो तो वह तज्जनित क्रांतिकला तुल्य होता है। अतः वित्रिभ लग्न शंकु जनित क्रांतिज्या, परमलम्बन असू की ज्या होती है।

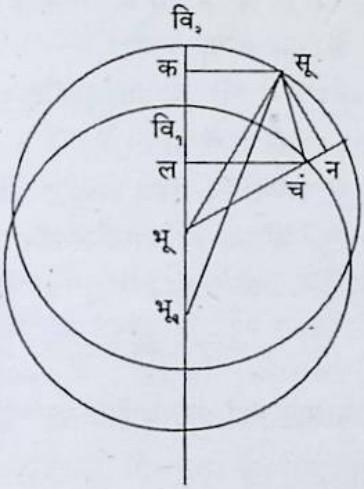

यहाँ चित्र में त्रिज्या तुल्य अंगुल मान से कर्कटक (गोला प्रकार) से भू$_1$ को केंद्र मानकर एक वृत्त बनावे तथा इसको चंद्र कक्षा कल्पित करे। इस केंद्र से ऊर्ध्व-अधः एक सीधी रेखा खेंचे। भू$_1$ से ऊपर की ओर इस ऊर्ध्व रेखा पर परम लंबनासुज्या अंतर पर भूमी को भू बिंदु पर मानकर फिर एक वृत्त खेंचे। इसको सूर्य कक्षा कल्पित करे तथा इस पर चक्रांश अंकित करे। भू भू$_1$ से होकर जाती हुई उर्ध्व रेखा जहाँ इन वृत्तों को काटे वहाँ वित्रिभलग्न संज्ञक बिन्दु वि$_1$ तथा वि$_2$ उच्च स्थान कल्पित करे। रवि कक्षा में वित्रिभलग्न तथा सूर्य के अंतर भाग तुल्य वित्रिभलग्न वि$_2$ से नतांश पर सूर्य को सू बिंदु पर अंकित करे। इसी प्रकार चंद्र कक्षा में चंद्र वित्रिभलग्न से जितने अंश पर हो उतने अंश नत पर चंद्रमा को चं बिंदु पर कल्पित करे। भूमि बिंदु भू से चंद्र बिंदु चं को मिलाती हुई एक रेखा आगे तक खेंचे। यह सूत्र रविकक्षा को जहाँ पर काटे वह सूर्य बिंदु से जितने घटी अंतर पर हो उतने घटिकायें लग्न की ज्ञात करे। इस प्रकार से क्षेत्र बनाकर लम्बन साधन के लिए उपपत्ति ग्रह के शीघ्रफल ज्ञात करने के प्रकार से करे।

यहाँ रविकक्षा कक्षामंडल, चंद्र कक्षा प्रतिमंडल तथा परम लंबन असुज्या

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अंतर फलज्या तथा वित्रिभलग्न को शीघ्रोच्च कल्पित करके क्रिया करे। चित्र में वि$_२$ भू सू कोण स्फुट केंद्र है तथा वि$_२$ भू$_१$ सू कोण मध्यम केंद्र है तथा भू चं कर्ण है।

समकोण त्रिभुज भू ल चं में–

कर्ण^२ = भू चं^{२} = भू ल^२ + ल चं^{२} = (भू क − ल क)^२ + क सू^{२}

= (भू क − सू चं)^२ + क सू^{२}

कर्ण^२ = (कोज्या (क भू सू) − पर)^२ + ज्या (क भू सू)^२

यदि ल, वित्रिभ अर्कांतर पर लग्न हो तो

कोज्या क भू सू = कोज्या वि. लग्न अर्कान्तर

तथा ज्या क भू सू = कोज्या वि. लग्न अर्कान्तर

अतः कर्ण^२ = [कोज्या (वि.ल. अर्कान्तर ∽ पर)]^२ + कोज्या^{२} (वि.ल.अर्कांतर)

अतः लंबन = $\frac{\text{पर}}{\text{कर्ण}}$ × वित्रिभलग्न अर्कान्तर ज्या; पूर्व प्राप्त सूत्र में त्रिज्या = कर्ण। कर्ण का मान यहाँ प्रतिस्थापित करने पर आचार्योक्त सूत्र प्राप्त हो जाता है।

सूत्रों की समरूपता से ही इस विधि की प्रेरणा आचार्य को प्राप्त हुई होगी, ऐसा प्रतीत होता है।

विशेष— उपरोक्त उपपत्ति में किये गये विवेचन के अनुसार भास्कराचार्य ने मध्यक्रांतिज्या को 'पर' संज्ञा कहा है उसी प्रकार **लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ** के चंद्र श्रृंगोन्नति अध्याय में कहा है। वहाँ उन्होंने चंद्रमा की मध्यक्रांतिज्या के लिए सूत्र कहा है। यथा–

"शुभ्रभानु भुजशिञ्जिनी हता कृष्णवर्त्मकुमुदाकरप्रियैः
भाजिता नयनपावकैर्भवेत क्रान्तिमौर्व्यशिशिरद्युतेरपि॥१॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के रविग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"त्रिभरहितविलग्नादर्कहीनाद्भुजाग्रे त्रिकुलवरद ($\frac{३२}{१३}$) भक्ते त्रिज्ययाग्रोनयुक्तात्।
दृगदृगुडुकलापे तद्भुजावर्गयोगात् पदविहृदिषुजो ना काष्ठतो दोर्गणो वा॥३२॥
सकृदेवमिहापि लम्बनं प्राग्वद्दृग्गतितोऽपि साधयेत्।
द्युदलत्रिभहीनलग्नयोरन्तर्ज्यात इह द्युखण्डजम्॥३३॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ नत्यर्थमर्केन्द्वोर्दृक्क्षेपावाह—

दृग्ज्यैव या वित्रिभलग्नशङ्कोः स एव दृक्क्षेप इनस्य तावत्।
सौम्येऽपमे वित्रिभजेऽधिकेऽक्षात् सौम्योऽन्यथा दक्षिण एव वेद्यः॥१०॥
चापीकृतस्यास्य तु संस्कृस्य त्रिभोनलग्नोत्थशरेण जीवा।

सूर्य चंद्र की दृक्क्षेप ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— वित्रिभ लगन शंकु की दृग्ज्या सूर्य की दृक्क्षेप संज्ञक होती है तथा इसी प्रकार चंद्र की होती है। वित्रिभ लग्न की उत्तर क्रांतिज्या अक्षांश से अधिक हो तो दृक्क्षेप उत्तर तथा अन्यथा होने पर दक्षिण होता है। दृक्क्षेप का धनु प्राप्त करके वित्रिभ लग्न को चंद्र मानकर सपात तात्कालिक चन्द्र की ज्या से विक्षेप चंद्र साधित करे। इस वित्रिभ लग्न विक्षेप से (उस) दृक्क्षेप के धनु में संस्कार करे। यदि दोनों एक दिशा में हो तो योग तथा विभिन्न दिशा में हो तो अन्तर करे। इस प्रकार संस्कार वशाद चंद्र दृक्क्षेप की दिशा होती है। इसकी ज्या, चंद्र की दृक्क्षेप संज्ञक होती है।

उपपत्ति— त्रित्रिभ लग्न क्रांतिवृत्त में भ्रमण करने के कारण कदाचित वह दक्षिणोत्तर वृत्त से पूर्व की ओर तथा कदाचित पश्चिम की ओर होता है। यदि उदयलग्न उत्तर गोल में होता है तो वह पूर्व की ओर होता है तथा अन्यथा पश्चिम में होता है। खअर्ध पर वित्रिभ लग्न होने पर दृक्क्षेपमंडल में जहाँ वित्रिभ लगता है उससे खअर्ध की दूरी तक रवि दृक्क्षेप का चापांश होता है। जहाँ विमंडल लगता है उससे ख अर्ध अन्तर तक चन्द्र दृक्क्षेप चापांश होता है। इसकी ज्या उनकी दृक्क्षेप होती है।

जब कक्षामंडल खमध्य होता है तब दृङ्मंडल से इधर उधर स्थित ग्रह लंबित होने पर भी कक्षामंडल में ही रहता है उसको त्यागता नहीं है। अतः यहाँ नति का अभाव होता है। यदि खअर्ध से नत होकर वित्रिभ लग्न दक्षिण की ओर हो तो क्रांतिवृत्त तिरछा होने के कारण उस पर स्थित रवि दृङ्मण्डल गत लंबित होने पर क्रांतिवृत्त से दक्षिण की ओर जितने अंतर पर दिखाई देता है उतनी उसकी नति होती है और वित्रिभ लग्न यदि खअर्ध से नत होकर उत्तर की ओर होता है तो उत्तर नति होती है। इसी प्रकार चंद्र की नति होती है। चन्द्रकक्षामण्डल को विमंडल कल्पित करे क्योंकि चन्द्रमा विमंडल में ही भ्रमण करता है। अतः खार्ध से विमंडल जितना नत होता है उतना चंद्र दृक्क्षेप का चाप होता है। उसकी ज्या उसका दृक्क्षेप होता है। दृक्क्षेप से तिरछा विमंडल

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होने के कारण दृङ्मंडल गत लंबित चंद्र का विमंडल से जितना अन्तर दक्षिणोत्तर होता है वह चंद्र नति होती है तथा उससे दृक्क्षेप प्राप्त होता है।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अक्षज्याया वित्रिभलग्नात् स्वक्रान्तिरुत्तराऽर्कस्य।
इन्दोर्वा यद्यधिकाऽवनतिः सौम्याऽन्यथा याम्या॥८॥
वित्रिभलग्नादुत्तरदक्षिणविक्षेप हीन संयुक्तम्।
शंकुधनुरुत्तरायामधिकोनं दक्षिणावनतौ॥९॥
तज्ज्ययेन्दुशंकुराद्यः सवितुर्दृक्क्षेपमण्डले युक्ते।
अपमण्डलेन भानोश्चन्द्रस्य विमण्डले युते॥१०॥"

भास्कराचार्य ने सूर्यग्रहणाधिकार के अंत में श्लोक १८,१९ की स्वकृत्त उपपत्ति में अपने ही यहाँ कथित श्लोक में वर्णित विधि का खण्डन भी कर दिया है।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दृग्लम्बनजा दृग्ज्या सौम्या सौम्येऽपमेऽक्षतोऽभ्यधिके।
याम्याऽन्यथाऽत्र सैव स्पष्टा दृक्क्षेपउक्तदिक्वस्तु॥१०॥
केचित् सपातदृग्लम्बजेषुणेच्छन्ति संस्कृतिं सद्सत्॥$\frac{1}{2}$॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"उत्तरो यदि हि वित्रिभलग्नात् स्वापमः समधिकः पलमौर्व्याः।
स्यात्तदाऽवनतिरुत्तरदिक्का दक्षिणात्वपरया तपनेन्द्वोः॥"

इदानीं दृक्क्षेपान्नतिसाधनमाह—

दृक्क्षेप इन्दोर्निजमध्यभुक्तितिथ्यंशनिघ्नौ त्रिगुणोद्धृतौ तौ॥११॥
नती रवीन्द्वोः समभिन्नदिक्त्वे तदन्तरैक्यं तु नतिः स्फुटात्र।

दृक्क्षेप से नति साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्रसूर्य के दृक्क्षेप को स्व-स्व मध्यभुक्ति (मध्यम गति) के पंद्रहवें भाग से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से उनकी क्रमशः नति प्राप्त होती है। उनकी नति एक ही दिशा में होने से उनका अन्तर करने से तथा विभिन्न दिशा में होने से उनका योग करने से रविग्रह की स्फुट नति होती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— त्रैराशिक से, यदि त्रिज्यातुल्य दृक्क्षेप में परम भुक्ति (गति) का १५ वाँ भाग तुल्य नति प्राप्त होती है तो इष्ट दृक्क्षेप में कितनी होगी? प्राप्तफल नतिकला होता है। अब नति के योग-वियोग करने के कारण को कहते हैं। यदि जिस दिशा में चंद्र नत है यदि उसी दिशा में रवि नत होगा तो उनकी नति का अंतर सूर्य-चंद्र के तुल्य होगा और नति भिन्न दिशा में होने पर उनकी नति का योग चन्द्र सूर्य के अन्तर तुल्य होगा। उपपन्न हुआ।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"रविशशिमध्यगतिगुणे तिथिगुणितव्यासदल भक्ते॥११॥
फलयोर्दिक् साम्येऽन्तरमवनतिरैक्यं दिगन्यत्वे॥१२॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ततो दृग्ज्ये मध्यस्वगति तिथि भागेन गुणिते।
त्रिमौर्व्या संभक्ते भवति विवरं यच्च फलयोः॥"

सूर्य सिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दृक्क्षेपः शीततिग्मांश्वोर्मध्य भुक्त्यन्तराहतः।
तिथिघ्नत्रिज्यया भक्तो लब्धं साऽवनतिर्भवेत्॥१०॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। आचार्य ने सूर्य चंद्र दोनों के गति अंतर को लेकर सूत्र कहा है जब कि भास्कराचार्य ने सूर्य-चंद्र के अलग अलग दृक्क्षेप की गणना की है। यथा–

"दृक्षेपे शरयुग्मबाणगुणिते द्विःस्थे शशाङ्केनयोः।
कर्णाभ्यां विहृते फलान्तरकला मध्यांशदिक् सा नतिः।
दृक्क्षेपः स्फुट भुक्तिजान्तरहतः खाद्रीषुरुपेषुहृद्।
वा नत्येन्दुशरः समान्यककुभोर्युक्तो वियुक्ततः स्फुटः॥११॥"

यहाँ आचार्य ने सूत्र निम्नलिखित कहा है जो भास्करोक्त तुल्य ही है। श्लोक के प्रथम भाग की व्याख्या आगे भास्कर प्रथम के महाभास्करीय श्लोक की व्याख्या में देखें।

$$\text{चंद्रसूर्य नति} = \frac{\text{दृक्क्षेपज्या} \times \text{सूर्य चंद्र मध्य गति अंतर}}{५१५७० \ (= ३४३८ \times १५)}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भारतीय आचार्यों के अनुसार अधिकतम नति ग्रहगति का $\frac{१}{१५}$ वाँ भाग हो सकती है। यही भास्कराचार्य ने ग्रहण किया है।

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के अध्याय ५ में आचार्योक्त को भिन्न प्रकार से कहा है। यथा–

"दृक्क्षेपज्ये त्वविशिष्टे भूव्यासार्धहते हृते।
स्फुट योजन कर्णाभ्यामवाप्ता लिप्तिकादयः ॥२८॥
अभिन्नाशयोर्विश्लेषस्तासां सूर्यनिशाकृतोः।
मध्यज्ययोरथान्यत्वे योगोऽवनति लिप्तिकाः ॥२९॥"

यहाँ आचार्योक्त सूत्र से भास्करोक्त सूत्र प्राप्त किया जा सकता है। यथा—

$$\text{चंद्र नति} = \frac{\text{दृग्गतिज्या} \times \text{भूमी का योजनात्मक अर्धव्यास}}{\text{चंद्र की स्पष्ट दूरी}} \text{ चापकला}$$

$$\text{लेकिन चंद्र की स्पष्ट दूरी} = \frac{\text{चंद्र की मध्य गति योजन} \times ३४३८}{\text{चंद्र की चाप कला गति}}$$

$$\text{चंद्र नति} = \frac{\text{दृग्गतिज्या} \times \text{भू योजनात्मक व्यासार्ध}}{\text{चंद्र की मध्यम योजनात्मक गति} \times ३४३८} \times \text{चंद्र की चाप कला गति}$$

$$= \frac{\text{दृग्गतिज्या} \times ५२५}{७९०६ \times ३४३८} \times \text{चंद्र चाप कला गति}$$

$$= \frac{\text{दृग्गतिज्या} \times \text{चंद्र चाप कला गति}}{१५ \times ३४३८}$$

इसी प्रकार सूर्य नति प्राप्त होगी। भूमि का योजनात्मक व्यास ५२५ ग्रहण किया है।

भास्कर प्रथम ने लघुभास्करीय के अध्याय ५ में आचार्योक्त सूत्र ही कहा है। यथा–

"दृक्क्षेपज्यामविशिष्टां गत्यन्तरहतां हरेत्।
खस्वरेष्वेकभूतारव्यैर्लब्धास्ता लिप्तिकादयः ॥११॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के रविग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अथवा स्फुट भुक्तिताडितौ दृक्क्षेपौत्रिगुणेन भाजितौ।
तिथिभिश्च फलेनती स्फुटे स्वे कक्ष्याप्रतिमण्डले तयोः॥४॥
मध्यभुक्तिताडितौ (च वा) दृक्क्षेपौ तिथिभाग ताडितौ।
नती त्रिगुण भाजितौ क्रमात् सूर्य-चंद्रमसोः कलागते॥६॥"

इदानीं स्फुटनतेरेवानयनमाह—

दृक्क्षेप इन्दोर्द्विगुणो विभक्तः क्रिन्द्रैः १४१ स्फुटैवावनतिर्भवेद्वा॥१२॥
लघुज्यकोत्थो द्विगुणोऽक्षभक्तः षष्ट्यंशयुक्तोऽवनतिः स्फुटा वा।

स्फुट नती आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्रमा के दृक्क्षेप को दो से गुणा करके १४१ से विभक्त करने से स्फुट अवनति होती है अथवा लघु ज्या से (व्यासार्ध १२० मान कर) गणना करने से चंद्र दृक्क्षेप को दो से गुणा करके ५ से विभक्त करने से प्राप्तफल में उसका साठवाँ भाग युक्त करने से स्फुट अवनति होती है।

उपपत्ति— यहाँ स्वल्पांतर से चंद्र दृक्क्षेप तथा रवि दृक्क्षेप को तुल्य मान कर भुक्त्यंतर के पन्द्रहवें भाग से अनुपात करे। यदि त्रिज्या तुल्य दृक्क्षेप हो तब भुक्त्यन्तर के पन्द्रहवें भाग तुल्य स्फुट नति होती है तब इष्ट दृक्क्षेप में कितनी होगी? प्राप्तफल में भुक्त्यन्तर (गति अंतर) का पंद्रहवाँ भाग गुणा में तथा त्रिज्या हर में प्राप्त होती है। इसके गुणक तथा हर के स्थान पर १४१ प्राप्त होता है। यह वृहज्या से प्राप्त होता है। अर्थात् $\frac{\text{दृक्क्षेप} \times ४८' ४६''}{३४३८} =$

$\frac{\text{दृक्क्षेप} \times २}{१४१}$ स्वल यहाँ $\frac{\text{चन्द्रगति} - \text{सूर्य गति}}{१५} = ४८'४६''$ इसको लघुज्या से करने पर $\frac{\text{दृक्क्षेप} \times ४८' \times ४६''}{१२०} = \text{दृक्क्षेप} \times \frac{२}{५}$ स्वल

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"केचित् सपातदृग्लम्बजेषुणेच्छन्ति संस्कृतिं तदसत्।
पढिकै भक्तो रघ्नो दृक्क्षेपोऽसौ नतिर्भवति॥११॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त बात के मूल सूत्र को कहा है। इस सूत्र को आगे सरल रूप में अपवर्तित करके सूर्य सिद्धान्त आदि में तथा भास्कराचार्य ने कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"जीवा शशाङ्कभास्कर मध्यम भुक्त्यन्तरेण सङ्गुणिता।
पञ्चदशभिर्गुणितया विभाजिता त्रिज्ययाऽवनतिः ॥२४॥"

सूर्य सिद्धान्त के सूर्य ग्रहणाधिकार में ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र को कहकर आगे और सरल रूप में गणना करके कहा है। यथा—

"दृक्क्षेपः शीततिग्मांश्वोर्मध्य भुक्त्यन्तराहतः।
तिथिघ्नत्रिज्यया भक्तो लब्धं साऽवनतिर्भवेत् ॥१०॥
दृक्क्षेपात सप्ततिहृताद् भवेद्वाऽवनति फलम्।
अथ वा त्रिज्यया भक्तात् सप्त सप्तकसंगुणात् ॥११॥"

यहाँ सूत्र इस प्रकार प्राप्त किया है। त्रिज्या का मान ३४१५ ग्रहण किया है—

$$\text{नति} = \frac{\text{दृक्क्षेप (सूर्य चंद्र गति अंतर)}}{३४१५ \times १५} = \frac{\text{दृक्क्षेप } (७९० - ५९)}{५१२२५}$$

$$= \frac{\text{दृक्क्षेप} \times ७३१}{५१२२५} = \frac{\text{दृक्क्षेप}}{७०} \quad \text{स्वल. से}$$

$$\text{तथा नति} = \frac{\text{दृक्क्षेप} \times ७३१}{\text{त्रिज्या} \times १५} = \frac{\text{दृक्क्षेप} \times ४८'४६''}{\text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{दृक्क्षेप} \times ४९}{\text{त्रिज्या}} \quad \text{स्वल्पां.}$$

अतः ये दोनों सूत्र एक ही हैं। भास्कराचार्य ने और भी अलग प्रकार से इन को सरल करके रख दिया है।

अन्य के लिए पूर्व श्लोक की व्याख्या के विशेष में देखें।

वटेश्वरचार्य ने वटे.सि. के रविग्रहण में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"द्वि गुणानतशिञ्जिनी हृता क्षितिशक्रै (१४१) र्नति लिप्तिकामितिः।८$\frac{१}{२}$।"

इदानीं स्थूले लम्बनावनती सुखार्थमाह—

त्रिभोनलग्नस्य दिनार्धजाते नतोन्नतज्ये यदि वा सुखार्थम् ॥१३॥
दृक्क्षेपशङ्कू परिकल्प्य साध्यं स्वल्पान्तरं लम्बनकं नतिश्च।

स्थूल लम्बनावनती सरलरूप में ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिभोन लग्न की (चंद्र मान कर उसकी) क्रांति तथा शर ज्ञात करे तथा इस शर से क्रांति में संस्कार करके स्फुट क्रांति प्राप्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करे। क्रांत्यांश तथा अक्षांश से वित्रिभ नतांश ज्ञात करे। इसको तीन राशि में से घटा कर (उन्नतांश) उसकी ज्या वित्रिभ शंकु होती है। इस प्रकार उन्नतज्या को वित्रिभ लग्न शंकु तथा नतज्या चंद्र का दृक्क्षेप मान कर उपरोक्त प्रकार से लंबन तथा अवनति ज्ञात करे।

उपपत्ति— स्वल्पांतर से याम्योत्तर वृत्त में ही वित्रिभ लग्न को मान कर दिनार्धकाल की भांति वित्रिभनतांश और उन्नतांश ज्ञात करे। उन्नतांश ज्या, वित्रिभ शंकु होता है तथा निदार्धशंकु की दृग्ज्या दृक्क्षेप के आसन्न होती है। पूर्वोक्त प्रकार से वित्रिभ शंकु से नतांश तथा दृक्क्षेप से नति का साधन सरलता से किया जा सकता है। वित्रिभ लग्न की नतांश ज्या तथा उन्नतांश ज्या क्रमशः नति तथा लंबन होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"लग्नात् त्रिराशिहीनादपक्रमाक्षांशयुति विशेषोनात्।
भक्तितयाज्ज्या छेदस्त्रिज्यार्धकृतेः फलेन हृताः॥२२॥
वित्रिभलग्नार्कान्तरजीवा घटिकादिलंबनं वा स्यात्।
वित्रिभलग्नापक्रमविक्षेपाक्षांश युतिवियुतेः॥२३॥"

भास्कराचार्य ने भी स्वकृत वा.भा. में ब्रह्मगुप्तोक्त उपरोक्त श्लोक २३ को ही उद्धृत किया है। आचार्य का श्लोक ब्रह्मगुप्तोक्त श्लोक पर ही आधारित है।

इदानीं नतेः प्रयोजनमाह—

स्पष्टोऽत्र बाणो नतिसंस्कृतोऽस्मात् प्राग्वत् प्रसाध्ये स्थितिमर्दखण्डे॥१४॥

नति का प्रयोजन—

सूर्य-प्रभा टीका— चंद्रशर तथा नति का (एक दिशा में योग तथा भिन्न दिशा में अन्तर) संस्कार करके स्पष्ट शर प्राप्त होता है। उससे पूर्व कथित प्रकार से स्थिति तथा मर्द-खण्ड ज्ञात करे।

उपपत्ति— गणितागत दर्शान्तकाल में लंबन का असकृत प्रकार से क्रिया करने से स्फुट दर्शान्तकाल आता है वह ग्रहमध्य काल होता है तथा उस समय का तात्कालिक चंद्र संपात ज्ञात करके उसका विक्षेप (शर) साधित करे। स्थिर लंबन काल पर जो वित्रिभलग्न हो उससे अवनति साधित करे तथा उसमें विक्षेप का संस्कार करे। इस प्रकार मध्यग्रहण का शर स्फुट होता है। इससे मानार्ध योगान्तर से स्थिति मर्द खण्ड आदि चंद्र ग्रह की भांति ज्ञात करे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चंद्र स्थान पर से क्रांतिमंडल का अंतर विक्षेप (शर) होता है। चंद्र विमंडल में तथा रवि क्रांतिमंडल में रहने से उनका जो विक्षेप है वह याम्योत्तर अन्तर होता है। अब भूगर्भस्थ दृष्टा यदि भूअर्ध पर ऊपर पृथ्वी पर स्थित हो तो रविकक्षामंडल से चंद्र कक्षा मंडल नीचे होने से दृक्क्षेप के कारण लंबित होता है। उनका योम्योत्तर दिशा में जितना लंबन होता है वह नति के आगे शर होने से उसमें शर का संस्कार करने से स्फुट रविचन्द्र का अंतर प्राप्त होता है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धानत के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्राग्दृक्क्षेपोत्थनतिर्नत भागाशाऽथ तत्समयजेन्दोः।
बाणेन संस्कृताऽसौ स्पष्टो बाणोऽत्र तेनैव॥१२॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"संयोगान्तरमवनतिशशाङ्कविक्षेपयोः समान्यदिशोः।
स्फुटविक्षेपः शशिवत् स्थित्यर्धविमर्ददलनाडयः॥१३॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दिशोः साम्ये भेदे युतिरवनतिस्तच्छशिशरौ
समाशौ चेद्योगोऽन्तरमपरथा स स्फुटशरः।"

सूर्यसिद्धान्त के सूर्य ग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यज्यादिग्वशात् सा च विज्ञेया दक्षिणोत्तरा।
सेन्दु विक्षेपदिक्साम्ये युक्ता विश्लेषिताऽन्यथा॥१२॥"
तया स्थिति विमिर्दार्धग्रासाद्यं तु यथोदितम्।$\frac{१}{२}$।"

भास्कर (प्रथम) ने महासिद्धान्त के पंचम अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विक्षेपः शशिनः स्पष्टस्तेन युक्ता नतिः स्फुटा।
नानाशयोस्तु विश्लेषः शेषा सा नतिरुच्यते॥३१॥"

इसके आगे श्लोक ३४ से ३६ में स्थितिर्ध, विमर्दादि ज्ञात करना बताया है नति की सहायता से। इसी प्रकार लघुभास्करीय में भी आचार्य ने कहा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं स्पर्शमुक्तिसंमीलनोन्मीलनकालार्थमाह—

तिथ्यन्ताद्गणितागतात् स्थितिदलेनोनाधिकाल्लम्बनं
तत्कालोत्थनतीषुसंस्कृतिभवस्थित्यर्धहीनाधिके।
दर्शान्ते गणितागते धनमृणं वा तद्विधायासकृज्-
ज्ञेयौ प्रग्रहमोक्षसंज्ञसमयावेवं क्रमात् प्रस्फुटौ॥१५॥
तन्मध्यकालान्तरयोः समाने स्पष्टे भवेतां स्थितिखण्डके च।
दर्शान्ततो मर्ददलोनयुक्तात् संमीलनोन्मीलनकाल एवम्॥१६॥
सकृत्प्रकारेण विलम्बनं चेत् सकृत् स्फुटौ प्रग्रहमोक्षकालौ।
किंत्वत्र बाणावनती पुनश्च तात्कालिकाभ्यां विधुविम्बाभ्याम्॥१७॥

स्पर्श, मुक्ति, संमीलन, उन्मीलन काल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— गणितागत तिथ्यन्त में से स्थिति अर्ध हीन युत करके लंबन ज्ञात करे अर्थात् तिथ्यन्त काल में स्पर्श कालिक स्थित्यर्ध घटाकर तथा मोक्षकालिक स्थित्यर्ध जोड़कर स्पर्शिक लम्बन तथा मौक्षिक लंबन का साधन करे, फिर उसे स्पष्ट शर जनित स्थित्यर्ध करके हीन और युत तिथ्यन्त से लंबन ज्ञात करे। इस प्रकार असकृत करे।

तात्पर्य यह है कि स्पर्शकाल ज्ञान के लिए पहले मध्यकालिक स्पष्टशर से स्थित्यर्ध साधन करे फिर उसको स्पष्ट तिथ्यन्त में से घटाने से प्राप्तफल से लंबन तथा नति साधन करे। तात्कालिक सपात चंद्र से शर साधन करे। नति तथा शर के संस्कार से स्पष्ट शर साधन करके उससे चंद्र ग्रहण की भांति स्थित्यर्ध साधन करे। तिथ्यन्त में उसको घटाने से प्राप्तफल से पुनः नति, स्पष्ट शर तथा स्थितिऽर्ध का साधन जब तक अधिशेष रहे तब तक इसी तरह करे। अधिशेष होने पर जो लंबन हो उसको तात्कालिक स्पष्ट शर जनित स्थित्यर्ध करके हीन गणितागतदर्शान्त में धन या ऋण करे, तब स्फुट स्पर्श काल प्राप्त होता है। इसी तरह स्थित्यर्ध युक्त तिथ्यन्त से स्फुट मोक्षकाल प्राप्त होता है। उस स्फुट स्पर्शकाल तथा स्फुट मोक्षकाल का तथा स्पष्ट दर्शान्त काल का अन्तर स्पार्शिक तथा मौक्षिक स्पष्ट स्थित्यर्ध होते हैं एवं जिस प्रकार स्थित्यर्ध से स्पष्ट स्थित्यर्ध साधन किया है उसी प्रकार असकृत् कर्म द्वारा अपने विमर्दार्ध से स्पष्ट विमर्दार्ध साधन करना चाहिये अर्थात् पूर्ववत् असकृत् कर्म से स्फुट संमीलन काल और स्फुट उन्मीलन काल का साधन कर के उनके और मध्यकाल के अन्तर के बराबर स्पष्ट विमर्दार्धद्वय समझना चाहिये। (यहाँ आचार्य ने पहले

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मध्यकाल लंबन को ही स्थूल रूप में स्पर्शकाल और मोक्षकाल में स्वीकार किया है, इससे असकृत कर्म में कोई हानि नहीं है)।

उपपत्ति— स्थिति अर्ध आनयन तथा उसका स्फुटीकरण पूर्व में बताया गया है। गणितागत दर्शान्त काल, मध्य ग्रहण काल होता है। उस समय चन्द्र सूर्य तुल्य होते हैं। स्थित्यर्ध दर्शान्त काल में से घटाने से स्पर्शकाल तथा युत करने से मोक्षकाल होता है।

दृष्टा जब भूकेंद्र से भूअर्धव्यास तुल्य ऊपर भूपृष्ठ पर स्थित होता है तब लंबन उत्पन्न होता है। उससे संस्कृत दर्शान्त स्फुट मध्यग्रहकाल होता है एवं स्पर्शकाल के समय तत्काल जनित लंबन से संस्कृत स्पर्शकाल स्फुट काल होता है। इस युक्ति से मध्यग्रहणकाल में लंबन का संस्कार करने से स्पर्श, मोक्ष, संमीलन, उन्मीलन काल होता है। किंतु स्पर्शकाल के लंबन संस्कार को करने से शर किंचित अन्यथा होता है तथा नति किंचित अन्यथा दिखती है। उससे संस्कृत स्थित्यर्ध भी किंचित अन्य दृश्य होती है। अतः गणितागत दर्शान्त में उसको घटाने से दर्शान्त में लंबन धन-ऋण करके युक्त करते हैं। असकृत विधि से लंबन तथा पुनः लंबन से नति, तत्काल शर से स्फुट स्थित्यर्ध करते हैं। उससे तत्काल शर भी स्फुट होता है। इस प्रकार स्पार्शिक शर ज्ञात होता है। यदि पूर्व श्लोक ६ में बताई सकृत विधि से लंबन ज्ञात करके स्पर्श-मोक्ष एक बार में ज्ञात कर सकते हैं। लेकिन पुनः पुनः शर, शर से नति करके स्पार्शिक शर पुनः प्राप्त करना होता है। अतः कहा गया है कि 'किंत्वत्र बाणावनती पुनश्च तात्कालिकाभ्यां विधुवित्रिभाभ्यामिति'।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्फुटतिथ्यन्ताल्लम्बनमसकृत् स्थित्यर्ध हीनयुक्तद्वा।
तत्स्फुट विक्षेप कृत स्थित्यर्धोनयुततिथ्यन्तात्॥१६॥
तत्स्पष्टतिथिच्छेदान्तरे स्फुटे दिनदले विहीनयुतात्।
स्वविमर्दार्धेनासकृदेवं स्पष्टे विमर्दार्धे॥१७॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्थित्यार्धोनयुतात् परिस्फुटतिथेः स्याल्लंबनं
पूर्ववत्मन्मध्यग्रहवे च मध्यतिथो ततस्तु तिथौ।
स्थित्यर्धेन परिस्फुटेषु जनितेनोनाधिकाद्वाऽसकृत्
ततिथ्यन्तरनाडिकाः स्थितिदले स्तः स्पर्शमुक्त्योः स्फुटे॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"कुर्याच्छन्नस्थितिदलमर्दार्धान्युक्तवत् खगजतिथौ।
हित्वा क्षिप्त्वा साध्यं तात्कालिकलम्बनं प्राग्वत्॥१३॥
स्थितिसंस्कृततिथि भोगे स्वर्णं कार्यं विलम्बनं त्वसकृत्।
सुस्थिरलम्बन समयजनत्या कार्यः स्फुटो बाणः॥१४॥
स्पर्शादिमध्यकालान्तरं स्फुटं स्थितिदलाद्याख्यम्।
इष्टग्रासादिप्राग्वदत्र साध्यं च बुद्धिमता॥१५॥"

इदानीं विशेषमाह—

शेषं शशाङ्कग्रहणोक्तमत्र स्फुटेषुजेन स्थितिखण्डकेन।
हतोऽथ तेनैव हतः स्फुटेन बाहुः स्फुटः स्याद्ग्रहणेऽत्र भानोः॥१८॥
ग्रासाच्च कालानयने फलं यत् स्फुटेन निघ्नं स्थितिखण्डकेन।
स्फुटेषुजेनासकृदुद्धृतं तत् स्थित्यर्धशुद्धं भवतीष्टकालः॥१९॥

विशेष ज्ञान– भुज एवं इष्ट काल—

सूर्य-प्रभा टीका— यहाँ सूर्य ग्रहण में शेष बातें बिम्ब, वलन, भुज, कोटी, आदि का आनयन चंद्रग्रहणोक्त प्रकार से ज्ञात करे। किंतु इसमें भुज साधन में विशेष बात है। यहाँ पूर्वोक्त चंद्रग्रहण प्रकार से भुज प्राप्त करके उसको तात्कालिक शर जनित स्थितिर्ध से गुणा करके स्फुट स्थिति खंड से विभक्त करने से स्फुट भुज प्राप्त होता है।

यहाँ नति से संस्कृत चंद्रशर के द्वारा स्थितिर्ध तथा लंबन से संस्कृत स्थितिखंड से उपरोक्त क्रिया करते हैं।

ग्रास के मान के द्वारा काल आनयन के फल (श्लोक १५ चंद्रग्रहणाधिकार) को लंबन संस्कृत स्थितिखंड से गुणा करके तात्कालिक स्फुट शर जनित स्थित्यर्ध से विभक्त करके जो स्फुट हो उसको स्थितिर्ध में से घटाने से इष्ट काल प्राप्त होता है। यह स्पर्श से आगे का तथा मोक्ष के पूर्व का काल होता है। उस काल के पुनः नतिसंस्कृत शर ज्ञात करके 'ग्रासोनमानैक्यदलस्य वर्गाद्विक्षेपकृत्येत्यादि" फल साधित करके स्फुट करे। इससे जो इष्ट काल स्फुट हो उससे असकृत्कर्म करे।

उपपत्ति— भुज आनयन पूर्व में बता दिया गया है उस प्रकार साधित करे। लंबन संस्कार युक्त स्पर्श तथा मध्य काल का अंतर स्फुट स्थित्यर्ध होता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। भुज स्थितिर्ध संबंधि प्राप्त होता है जैसे चंद्रग्रहण में मध्य में स्थित्यर्ध होता है। तत्संबंधि भुज वहाँ जो प्राप्त होता है तदृश ही यहाँ भी होता है।

इष्ट को स्थितिखंड से गुणा करके जो आनयन करते हैं उसमें स्फुट स्थित्यर्ध से इष्ट करके गणना करते हैं, वह स्फुटस्थित्यर्ध संबंधी भुज होता है। अब उसको तत्काल स्फुट शर जनित स्थित्यर्ध संबंधी करने के लिए अनुपात किया कि यदि स्फुट स्थित्यर्ध में इतना भुज होता है तो तत्कालजनित स्फुट शर की स्थित्यर्ध में कितनी भुज होगी? प्राप्तफल स्फुट भुज होता है। इससे विपरीत कर्म द्वारा ग्रास से काल आनयन के लिए करते हैं। 'ग्रासोनमानैक्यदलस्य वर्गादि' द्वारा जो फल प्राप्त होता है वह मध्य स्थित्यर्ध ईष्ट होता है। इसको स्फुट स्थित्यर्ध में से घटाने से उतना सम्यग इष्ट प्राप्त होता है। उस फल से स्फुट स्थित्यर्ध परिणाम के लिए अनुपात किया कि यदि मध्यमस्थित्यर्ध में इतना फल प्राप्त होता है तो स्फुट स्थित्यर्ध में कितना होगा? यह जो फल प्राप्त होता है उसको स्फुट स्थित्यर्ध में शोधित करने से स्फुट इष्ट शेष रहता है।

ब्रह्मगुप्त यद्यपि प्रथम व्यक्ति था जिसने भुज में शुद्धिकरण किया, जिसको आगे उद्धृत किया जायेगा। ब्रह्मगुप्तोक्त को ही आचार्य ने यहाँ कहा है जिसको श्रीपति ने अपने सिद्धान्त शेखर में कहा है।

ब्रह्मगुप्तोक्त कथन का भास्करोक्त शुद्धिकरण–

'शशिदृक्क्षेपार्थ यद्वित्रिभलग्नेषुणात्र संस्करणम्।
जिष्णुजमतं तदुक्तं न मन्मतं वच्मि युक्तिमिह॥१॥
यत्राक्षोजिनभागास्तत्रार्केन्दू तुलादिगावुदये।
पातः किल गृहषट्कं सममण्डलवत् तदापवृत्तं स्यात्॥२॥
अर्काल्लम्बितचन्द्रो न जहात्यपमण्डलं ह्यविक्षिप्तः।
वित्रिभशरसंस्काराऋतिरत्रायाति सा व्यर्था॥३॥'

यहाँ आचार्य ने कहा है कि ब्रह्मगुप्त का यह कहना कि सूर्य के दृक्क्षेप धनु तथा वित्रिभ लग्न के शर के संस्कार (धन-ऋण) से चंद्र दृक्क्षेप धनु प्राप्त होता है मुझे (भास्कराचार्य को) मान्य नहीं है। वे कहते हैं कि उदाहरण रूप में जहाँ अक्षांश २४° है वहाँ जब सूर्य, चंद्र तथा राहु तुला राशि के आरंभ में हों तब सूर्योदय पर रवि ही लग्न होता है तथा वित्रिभ लग्न तीन राशि होता है एवं चंद्र शर शून्य होता है, तब क्रांति मण्डल सममण्डल होता है तथा दृग्मण्डल होता है। दृङ्मण्डलगत अधः लंबित चंद्र उस कक्षा मंडल (क्रांतिवृत्त)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को नहीं त्यागता है, अतः जब नति का अभाव होता है तब वित्रिभ लग्न खमध्य होता है तथा उसका शर $४\frac{१}{२}^{\circ}$ होता है। अतः चंद्र का दृक्क्षेप ब्रह्म गुप्तोक्त प्रकार से $४\frac{१}{२}^{\circ}$ होता है जिससे इस दृक्क्षेप से प्राप्त नति

$$=\frac{७९०'३५''}{१५} \times \frac{\text{ज्या } ४\frac{१}{२}}{३४३८} = \frac{५२'४२''}{३४३८} \times २७० = ४'८'' \text{ होती है।}$$

जबकि वास्तव में ऐसा नहीं होता।

रवि ग्रहण में रवि चन्द्र का याम्योत्तर अंतर होता है। दृङ्मण्डल गत अधोलंबित चंद्र होता है उसका रविकक्षा से जितना अन्तर होता है वह चन्द्र रवि का याम्योत्तर अंतर ही स्फुट विक्षेप होता है। उसका पूर्व विक्षेप से जितना अंतर होता है उतनी नति होती है। इस प्रकार यह रवि ग्रहण में नति का स्वरूप होता है।

उपरोक्त प्रकार से ब्रह्मगुप्तोक्त कथित सूत्र की कमी बताने के पश्चात् आचार्य ने आगे उक्त सूत्र किस स्थिति में युक्ति युक्त हो सकता है वह कहा है।

ब्रह्मगुप्त ने विमण्डल को रविकक्षामंडल कल्पि करके नति का आनयन किया है, जो युक्तियुक्त है। क्योंकि ग्रहण काल पर चंद्रशर बहुत अल्प होता है अतः उसको कक्षा मंडल पर माना जा सकता है। भास्कराचार्य कहते हैं कि विमंडल को कक्षामंडल ब्रह्मगुप्त द्वारा मान लेने से ब्रह्मगुप्तोक्त नति प्राप्त होती है। लंबन काल में चन्द्रमा जितना विक्षेप चलता है उतने अंश से प्रथम शर के अंतर से उसकी नति को कम करे। रविदृक्क्षेप का धनु यदि वित्रिभलग्न के शर में युक्त करे तो उतना अन्तर नति में से घटावे और यदि कम करे तो उतनी युक्त करे। इस प्रकार करने से वह नति स्फुट होती है। अथवा रविदृक्क्षेप को चंद्र शर में संस्कृत करके नति साधित करे तो वह भी स्फुटासन्न होती है। किन्तु ग्रहण काल में चन्द्र शर अल्प होता है अतः संस्कार करने से भी स्वल्पांतर से वह नति तुल्य ही होता है। अतएव ब्रह्मगुप्ताचार्य ने स्वल्पांतर होने के कारण इस कर्म को भास्कराचार्य के मत से उपेक्षित किया है।

उपरोक्त विवेचन को भास्कराचार्य ने स्वकृत उपपत्ति में निम्न लिखित श्लोकों में कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लम्बनकालशरान्तरमस्यां व्यस्तं नती यदि क्रियते।
स्पष्टैवं स्यादथवा चन्द्रस्य शरेण संस्कृत्य॥४॥
भानोर्दृक्क्षेपधनुः साध्या स्वल्पान्तरा नतिस्तस्मात्।
ग्रहणे स्वल्पशरत्वात् स्वल्पान्तरता नतेर्यस्मात्॥५॥
तस्मान्नेदं पूर्वैरर्काशाद्यैस्तदा कृतं कर्म।
आत्मप्रतिभासो वा मयोदितः किं जगद्विरोधेन॥६॥

आधुनिक आचार्यों का कहना है कि भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त की प्रक्रिया को गलत-समझ कर अपना इस बारे में सुझाव दिया है। ब्रह्मगुप्त ने रविचंद्र की परस्पर नति को ज्ञात किया था।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के सूर्यग्रहणाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"शशिवद्बाहुः स्फुटविक्षेपकृतस्थितिदलेन सङ्गुणितः।
स्पष्टस्थित्यर्धहृतो भवति भुजः पूर्वच्छेषम्॥१८॥
ग्रासात्कालः शशिवत् स्पष्टस्थितिदलगुणोऽसकृद् भक्तः।
स्फुटविक्षेपकृतस्थितिदलेन शोध्यः स्थितिदलात् स्यात्॥१९॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने सूर्यग्रहणाधिकार के श्लोक १४ में ब्र.गु. आचार्योक्त बात को स्वीकार किया है। यथा–

"बाहुश्चन्द्रग्रहण विधिनैवेष्टकालोद्भवो यः
क्षेपस्पष्टस्थितिदलहतो भाजितः प्रस्फुटेन।
स्थित्यर्धेन स्फुट इह भवेदुक्तवत् कालसिद्धि-
श्चेष्टग्रासाद् गुणकहरयोव्यत्ययेनासकृत् स्यात्॥१४॥"

सूर्य सिद्धान्त के चंद्रग्रहणाधिकार में आचार्योक्त बात की ओर ही संकेत किया है। रंगनाथ ने भास्करोक्त वचनों को ध्यान में रखकर अपनी स्वकृत सूर्यसिद्धान्त की टीका में इस श्लोक का अर्थ किया है। सूर्य सिद्धान्तोक्त यहाँ कोटि ही भास्कराचार्योक्त भुज है। यथा–

"भानोर्ग्रहे कोटिलिप्ता मध्यस्थित्यर्धसंगुणाः।
स्फुटस्थित्यर्धसंभक्ताः स्फुटाः कोटिकलाः स्मृताः॥१९॥"

लेकिन इस श्लोक में 'मध्यस्थित्यर्ध' तथा 'स्पष्ट स्थित्यर्ध' की परिभाषा स्पष्ट नहीं होने से विद्वानों में इनके अर्थ में भ्रम की सी स्थिति है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद् ग्रंथ में आचार्योक्त कहा है। सूर्य ग्रहणाधिकार–

"बाहु स्पष्टशरोद्भवः स्थितिदलक्षुण्णः स्फुटो जायते।
स्थित्यर्धेन हृतः स्फुटेन शशिच्छेषस्य कार्यो विधिः।
ग्रासात् पूर्ववदागतश्च समयः क्षुण्णः स्फुटेनासकृत्
स्थित्यर्धेन हृतः स्फुटेषुजनितेन स्तः स्थितेः स्वाद दलात्॥१६॥"

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के सूर्यग्रहणाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

७

अथ ग्रहच्छायाधिकारः

अथ ग्रहच्छायाधिकारो व्याख्यायते। तत्रादौ तावद्ग्रहविक्षेपान् मध्यमानाह—

विक्षेपलिप्ताः क्षितिजादिकानां
खेशा ११० द्विबाणेन्दुमिता १५२ रसाश्वाः ७६।
षट्त्रीन्दवः १३६ खाग्निभुवः १३० सितज्ञ-
पातौ स्फुटौ स्तश्चलकेन्द्रयुक्तौ॥१॥

ग्रहों के विक्षेप मध्यमान—

सूर्य-प्रभा टीका— मंगल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि का क्रांतिवृत्त से विक्षेप (झुकाव) क्रमशः ११०, १५२, ७६, १३६, १३० कला चाप तुल्य है। बुध तथा शुक्र के गणितागत पातों को उनके शीघ्र केन्द्रों से युक्त करने से उनके पात स्फुट होते हैं।

उपपत्ति— मध्यगति वासना के वेध प्रकार से वेध वलय की ग्रह विक्षेपोपत्ति को देखें। जब शीघ्रकेंद्र ९०°३०' होता है तब त्रिज्या तुल्य शीघ्रकर्ण होता है। जिस दिन वेधवलय में परम विक्षेप उपलब्ध होता है तब ग्रह का परम मध्यम विक्षेप होता है। इस प्रकार जो भोमादि ग्रहों के परम मध्यम विक्षेप उपलब्ध हुए उन्हें यहाँ आचार्य ने कहा है।

अब बुध शुक्र के पात स्फुट करने के लिए कहते हैं। भगणाध्याय में इन बुध शुक्र के पातों के जो भगण पठित किये हैं उनमें उनके शीघ्र केन्द्र भगण युक्त करने से उनके वास्तव मान होते हैं। इस प्रकार पूर्व में प्राप्त गणितागत बुध-शुक्र के पातों में उनके स्वस्व शीघ्र केंद्र युक्त करने से उनके मान स्फुट होते हैं।

विशेष— ब्रह्मगुप्त गुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त ग्रहों के शर पठित किये हैं तथा शर आनयन कहा है। यथा—

"शून्येशाः यम तिथयः षडगा षटत्रीन्दवः खगुणचन्द्राः।
क्रान्तेर्विक्षेपकलाः कुज बुध गुरु शुक्र रविजा नाम्॥१॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बुधसितपातेऽव्यस्तं मन्दफलमुपान्त्यशीघ्रफलम्॥७$\frac{१}{२}$॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में गुरु के अतिरिक्त सभी विक्षेप आचार्योक्त कहे हैं। यथा–

''दिगिन्दवो द्वीषु भुवोरसेभाः षड्वन्हि चन्द्राः खगुणेन्दवश्च।''

इदानीं ग्रहविक्षेपानयनमाह—

मन्दस्फुटात् खेचरतः स्वपातयुक्ताद्भुजज्या पठितेषुनिघ्नी।
स्वशीघ्रकर्णेन हृता शरः स्यात् सपातमन्दस्फुटगोलदिक्कः॥२॥

ग्रह विक्षेप आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— मन्द स्फुट ग्रह में स्वपातयुक्त करके उसकी भुजज्या साधित करे। उसको ग्रह के पठित (पूर्वोक्त) शर से गुणा करके स्वशीघ्रकर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल ग्रह का स्फुट विक्षेप होता है। सपात मन्दस्फुट ग्रह यदि छै राशि से अल्प हो तो उत्तर विक्षेप होता है अन्यथा दक्षिण होता है।

उपपत्ति— मन्द स्फुट ग्रह स्व शीघ्र प्रतिमण्डल में भ्रमण करता है, तथा उसका पात भी उसी में भ्रमण करता है। प्रतिमण्डल तथा विमण्डल के संपात पर पात होता है। उससे आरंभ करके विक्षेप की प्रवृत्ति होती है। यहाँ सीधी शलाका को कक्षामंडल तथा तत्प्रतिमंडल में छेद्यकोक्त विधि अनुसार चलाने से शीघ्र प्रतिमंडल में मेष से आरंभ करके प्रतिलोम पातस्थान चिन्हित करके वहाँ विमण्डल निवेश करे। पात चिन्ह से छै राशि अन्तर पर विमण्डल-प्रतिमंडल का अन्य संपात करके पात से पूर्व की ओर त्रिभा तुल्य अंतर पर पठित विक्षेप प्रमाण से प्रतिमंडल के उत्तर की ओर विमंडल किसी आधार पर स्थिर करके मेष के आदि से अनुलोम मंद स्फुट ग्रह प्रतिमंडल तथा विमंडल में देकर विक्षेपोपपत्ति को दर्शाये। जहाँ जो ग्रह जितना विप्रकर्ष हो उस प्रदेश में उतना विक्षेप होता है।

अब विक्षेप आनयन को कहते हैं। पात स्थान पर ही विक्षेप का अभाव होता है। उससे त्रिभा तुल्य अन्तर पर परम विक्षेप होता है। इसके बीच में अनुपात से ज्ञात करे। अतः पात तथा ग्रह के चिन्ह की बीच जितना अंतर ज्ञात हो वह ग्रह तथा पात को युत्त करने से वहाँ उसका माना होता है। मेष के आदि से अनुलोम ग्रह देकर पातको प्रतिलोम देवें। इनका योग शर ज्ञान के लिए केंद्र होता है। इसकी ज्या साधित करे। यदि त्रिज्या तुल्य ज्या में पठित विक्षेप

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तुल्य प्रतिमंडल तथा विमंडल का अंतर प्राप्त होता है तो अभीष्ट ग्रह स्थान की ज्या में कितना होगा? प्राप्तफल शीघ्रकर्ण के आगे विक्षेप होता है। अब द्वितीय अनुपात करे कि यदि शीघ्र कर्णाग्र पर इतना विक्षेप होता है तो त्रिज्याग्र पर क्या? यहाँ गुणक भाजक में त्रिज्या तुल्य होने से उसका नाश हो जाता है तथा दोज्या तथा पठित विक्षेप के गुणा में शीघ्रकर्ण हर होता है।

इस प्रकार यह प्राप्तफल कक्षा प्रदेश में विक्षेप ज्या रूप का चाप स्फुट विक्षेप होता है। भूमि के चिन्ह से एक सूत्र बांध कर दूसरा आगे विमंडल में ग्रह स्थान से निबद्ध किया गया सूत्र कर्ण है। सूत्र का कक्षा मंडल से अंतर स्फुट शर इत्यादि छात्रों को दिखायें।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के ग्रहयुत्याधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"समलिप्तस्फुट मध्यात् स्वपात युक्ताज्ज्ञशुक्रयोः शीघ्रात्।
जीवाविक्षेपगुणा हृताऽन्त्यकर्णेन विक्षेपः॥१०॥"
"शेषाणां स्फुटपाताद्विक्षेपो मध्यमायोगात्॥८॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"समकलग्रहपातसमागतात् भुजगुणोऽथ निजेषु कला
हतः निजचलश्रवणेन हृतो भवेदपममण्डलतः स्फुट सायकः।"

सूर्य सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

'स्वपातोनाद् ग्रहाज्जीवा शीघ्राद्भृगुजसौम्ययोः।
विक्षेपघ्नान्त्यकर्णाप्ता विक्षेपस्त्रिज्यया विधोः॥५७॥'

इदानीं विक्षेपस्य क्रान्तिसंस्कारयोग्यतालक्षणमन्यत् स्फुटीकरणमाह—

त्रिज्यावर्गादयनवलनज्याकृतिं प्रोह्य मूलं
यष्टिर्यष्ट्या द्युचरविशिखस्ताडितस्त्रिज्ययाप्तः।
यद्वा राशित्रययुतखगद्युज्यकाघ्नस्त्रिमौर्व्या
भक्तः स्पष्टो भवति नियतं क्रान्तिसंस्कारयोग्यः॥३॥

विक्षेप के क्रांति संस्कार योग्यता के लक्षण-स्फुटीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या वर्ग में से अयनवलन ज्या के वर्ग को घटा कर मूल लेने से यष्टि संज्ञक फल प्राप्त होता है। इस को ग्रह विक्षेप से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से क्रांति संस्कार योग स्फुट शर प्राप्त होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथवा यष्टि को तीन राशि युक्त ग्रह की द्युज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से भी क्रांति संस्कार योग्य विक्षेप होता है।

उपपत्ति— चित्र में सं = संपात बिंदु, क = कदम्ब, ध्रु = ध्रुव, ∠क श^{१} ध्रु = चाप क ध्रु^{१} = अयनवलन, ग्र = ग्रह; ग्र^{१} न = ग्रल = स्फुट क्रांति, ग्र श^{१} = विक्षेप; ग^{१}श^{१} = स्फुट विक्षेप। चित्र से आचार्योक्त कथन स्पष्ट हो जाता है।

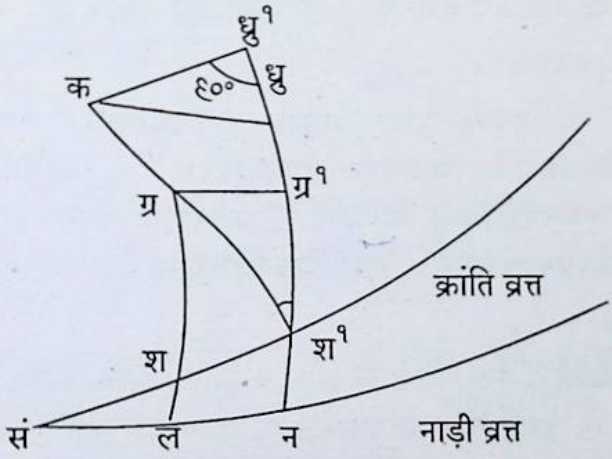

शराग्र (श^{१}ग्र) पर ग्रह (ग्र) होता है। क्रांति (=शल) के आगे शर (ग्र श) होता है। क्रांति में शर का संस्कार करने से ग्रह की स्फुट क्रांति= ग्र ल होती है। यहाँ गणितागत शर से क्रांति को स्फुट करना कहा है। क्रांति विषुवत् मण्डल से तिर्यग ध्रुवाभिमुख होती है तथा विक्षेप क्रांतिमंडल से तिर्यगरूप में कदम्बाभिमुख होता है। अभी तक कि परिभाषानुसार क्रांतिवृत्त पर स्थित ग्रह की नाडीवृत्त से ध्रुवप्रोत वृत्त में दूरी क्रांति कही गई है। यहाँ किसी अन्य स्थान पर स्थित ग्रह (ग्र) की क्रांति को यहाँ स्पष्ट क्रांति कहा है। जिसको ज्ञात करना बताया है।

कध्रु^{१} चाप की ज्या भुज है तथा ग्रह यदि श^{१} बिंदु पर हो तो कश^{१} चाप की ज्या त्रिज्या तुल्य कर्ण है तथा ∠क ध्रु^{१}ध्रु = ९०° अतः $\sqrt{\text{त्रि}^{२} - \text{ज्या वलन}^{२}}$ = वलन कोटी (=ध्रु^{१}श^{१}) है। इसको आचार्य ने यष्टि संज्ञा दी है। क्रांति के आगे विक्षेप कदम्बाभिमुख कर्णरूप (=ग्रश^{१}) है। इसका कोटी रूप करने के लिए अनुपात किया कि यदि त्रिज्या कर्ण में कोटि यष्टि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तुल्य होती है तो शर कर्ण में कितनी होगी? प्राप्तफल क्रांतिसंस्कार योग्य विक्षेप होता है। इसका संस्कार करने से स्फुट क्रांति होती है।

विक्षेपग्रस्थ ग्रह की विषुवमण्डल से याम्योत्तर अंतर होता है वह स्फुट क्रांति कहलाती है।

अब सत्रिभ ग्रह की क्रांतिज्या भुजस्थान पर कल्पित करने से वह भुज होती है और उसकी द्युज्या को यष्टि स्थान पर कल्पित करने से कोटि होती है। वहाँ त्रिज्या कर्ण रूप होता है। इससे दूसरा सूत्र उपपन्न होता है।

इदानीमायनं दृक्कर्माह—

आयनं वलनमस्फुटेषुणा संगुणं द्युगुणभाजितं हतम्।
पूर्णपूर्णधृतिभिर्ग्रहाश्रितव्यक्षभोदयहृदायनाः कलाः ॥४॥
अस्फुटेषुवलनाहतिस्तु वा यष्टिहृत् फलकलाः स्युरायनाः।
ता ग्रहेऽयनपृषत्कयोः क्रमादेकभिन्नककुभोर्ऋणं धनम् ॥५॥

अयन दृक्कर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह के अयन वलन को उसके अस्फुट शर से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल को १८०० से गुणा करके ग्रह स्थित राशि के निरक्षोदय असु से विभाजित करने से प्राप्त फल अयन कला होता है।

अथवा अयनवलन कला को अस्फुट शर से गुणा करके यष्टि से विभक्त करने से भी प्राप्तफल कला स्वल्पान्तर से अनुकल्प्य अयन कला प्राप्त होती है।

ग्रह जिस अयन में होता है उस (ग्रह के) अयन तथा ग्रह के शर के एक दिशा में होने पर इस अयन कला (दृक्कर्म) को ग्रह में ऋण करे तथा भिन्न दिशा में होने पर धन करे। इस प्रकार करने से अयन दृक्कर्म युक्त ग्रह होता है।

उपपत्ति— ग्रह बिंब (ग्र) केन्द्र के ऊपरीगत (क ग्र अ) कदम्बप्रोत वृत्त क्रांतिवृत्त में जहाँ (अ) पर लगता है वह ग्रह स्थान है। इस ग्रह स्थान के उपरीगत ध्रुवप्रोत वृत्त ध्रु अ खेंचे। बिंब केंद्र (ग्र) से अहोरात्र वृत्त (ग्र उ) बनावे तब बिंब केंद्र (ग्र) से स्थान (अ) पर्यन्त मध्यशर (ग्र अ) एक भुज। बिंब केंद्र (ग्र) से स्थान ऊपरीगत ध्रुवप्रोत्तवृत्त (ध्रु उ अ) पर लंबवृत्त (ग्र उ) लंब वृत्तीय चाप (ग्र उ) द्वितीय भुज। लंब (उ) से स्थान पर्यन्त (उ अ) तृतीय भुज। स अ = अयन दृक्कर्म होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

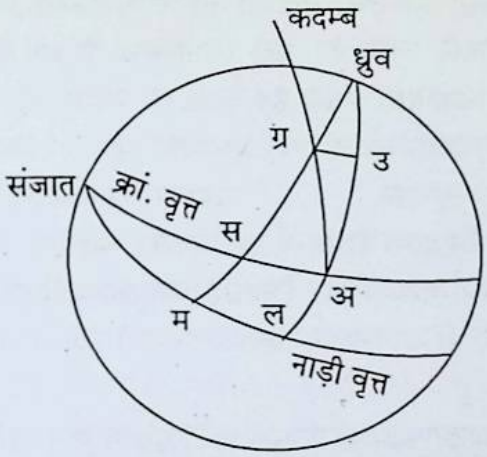

इन तीनों भुजों से उत्पन्न त्रिभुज में स्थान गत कदम्ब प्रोत वृत्त तथा ध्रुव प्रोत वृत्त से उत्पन्न कोण (ग्र अ उ) अयन वलन है। ∠ग्र उ अ = ९०° है। तब अनुपात द्वारा–

$$\frac{\text{मध्यशर ज्या} \times \text{आयन वलन ज्या}}{\text{त्रिज्या}} = \frac{\text{मध्यशर ज्या} \times \text{सत्रिभ ग्रह क्रान्ति}}{\text{त्रिज्या}}$$

भास्कराचार्य ने $\frac{\text{मध्यशर} \times \text{आयन वलन}}{\text{त्रिज्या}}$ को त्रिज्या में परिणत किया है जैसे

$$\frac{\text{मध्यशर} \times \text{आयन वलन} \times \text{त्रि}}{\text{त्रि} \times \text{बिम्बीय द्युज्या}} = \text{नाडी वृत्तीय अयन दृक्कर्म} - \text{असु}$$

$$= \frac{\text{मध्यशर} \times \text{आयन वलन}}{\text{बिम्बीयद्यु.}}$$

यहाँ आचार्य ने स्वल्पांतर से बिम्बीयद्यु = स्थानीयद्यु = द्यु इस फल को ग्रहसंस्कार योगत्व किया है कि यदि ग्रहाश्रित राशि के निरक्षोदय असु में १८०० राशिकला पाते हैं तो इन असुओं में क्या? इससे आयनदृक्कर्म कला प्राप्त होती है जिसका स्वरूप = $\frac{\text{मध्यशर} \times \text{आयन वलन} \times १८००}{\text{द्यु} \times \text{निरक्षोदयासु}}$ है।

इस प्रकार भास्करोक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में गोलबंधनाधिकार में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भास्कराचार्य से भिन्न बिम्बीय अहोरात्र वृत्तीय चापकला को स्वीकार करके इसका ग्रह में संस्कार किया है। यही लल्लाचार्य ने भी किया है। इस को भास्कराचार्य ने अधिक शुद्ध किया है।

"सत्रिगृहक्रान्तिरुदग्दक्षिणयोस्त्रिज्या हृतं वलनम्।
विक्षेपगुणमृणधनं ग्रहेऽन्यदृक्कर्मचरदलवत्॥६६॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में लल्लोक्तवत् सत्रिभग्रह क्रांतिज्या के स्थान पर उसकी उत्क्रमज्या को स्वीकार किया है। बहुत स्थानों पर ब्रह्मगुप्ताचार्य का अनुसरण करते हुए भी कहीं कहीं लल्लोक्त को भी स्वीकार किया है। अध्याय १ श्लोक ४–

"विक्षेप सत्रिभखगोत्क्रमजाऽपमज्याधाते गृहत्रयगुणेन हृते कलास्ताः।
शोध्यतास्तयोः समदिशोः खचरेषु देया भिन्नांशयोर्भवति दृग्विधिरेषपूर्वः॥"

सूर्य सिद्धान्त के ग्रहयुत्याधिकार में आयन दृक्कर्म श्रीपति और लल्लाचार्य से सूक्ष्म है। इसकी उपपत्ति में रंगनाथ ने भास्करोक्त सूत्र की भी उपपत्ति की है।

"सत्रिभग्रहजक्रान्ति भागघ्नाः क्षेपलिप्तिकाः।
विकला स्वमृणं क्रांतिक्षेपयोर्भिन्न तुल्ययोः॥१०॥"

आर्यभट (द्वि.) ने भी लल्लाचार्य का अनुसरण किया है।

इदानीमक्षजं दृक्कर्माह—

स्फुटास्फुटक्रान्तिजयोश्चरार्धयोः समान्यदिक्त्वेऽन्तरयोगजासवः।
पलोद्भवाख्या भनभःसदां शरे महत्यथाल्पे यदि वा स्युरन्यथा॥६॥
स्पष्टेषुरक्षवलनेन हतो विभक्तो लम्बज्यया रविहृतोऽक्षभया हतो वा।
लब्धं हतं त्रिभगुणेन हृतं द्युमौर्व्या स्युर्वासवः पलभवा अथ तैः शरे तु॥७॥

याम्योत्तरे क्रमविलोमविधानलग्नं
खेटात् कृतायनफलादुदयाख्यलग्नम्।
सौम्ये क्रमेण विपरीतमिषौ तु याम्ये
भार्धाधिकात् खचरतोऽस्तविलग्नमेवम्॥८॥

अक्ष दृक्कर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह की स्फुट तथा अस्फुट क्रांति साधित करके उनके चरार्ध करे। यदि वे स्फुट-अस्फुट क्रांति एक ही दिशा में हो तो चरार्धों का अंतर करे और यदि भिन्न दिशा में हो तो चरार्धों का योग करे। प्राप्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

असुफल से, यदि शर अधिक मान का हो तो अक्षदृक्कर्म होता है। यदि शर अन्यथा अल्प हो तो ग्रह के स्पष्ट शर को आक्षवलन से गुणा करके फिर लंबज्या से विभक्त करने से अथवा स्पष्ट शर को अक्षभा से गुणा करके १२ से विभक्त करने से प्राप्तफल को त्रिज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से अक्षदृक्कर्म असु होता है।

ग्रह को दृक्कर्म संस्कृत करके उसको सूर्य मानकर दृक्कर्म असु से लग्न ज्ञात करे। यदि ग्रह का शर दक्षिण हो तो क्रम लग्न (धन दिशा में) तथा उत्तर हो तो विलोम लग्न ज्ञात करे। इस प्रकार ग्रह का उदय लग्न प्राप्त होता है।

अब ग्रह को (१८०°+रवि) मान कर अक्षदृक्कर्म असु से उत्तर शर हो तो क्रमलग्न तथा दक्षिण हो तो विलोम क्रम से उस ग्रह का अस्त लग्न प्राप्त होता है।

उपपत्ति— चित्र में स न = क्षितिज है। ख = खस्वस्तिक; ग्र = ग्रह; ब = ग्रह की अयन दृक्कर्म के पश्चात की स्थिति। क म इ = नाडी वृत्त तथा अ म ब = क्रांतिवृत्त। ग्र द = अहोरात्रवृत्त का भाग है। यह ग्र द = स्थानीय अक्षांशवश शुद्धि अथवा दृक्कर्म असु है। कोण ब = स्थानीय अक्षांश तथा द कोण = लंबांश (Colatitude), ग्र ब = ग्रह का शर है।

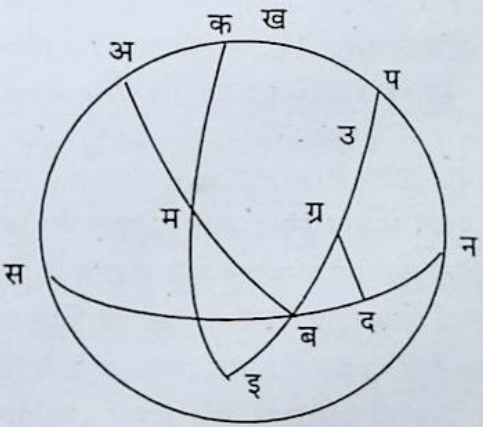

जब **ग्रहस्थान** क्षितिज में रहता है तब ग्रहबिंब केंद्र क्षितिज से नीचे अथवा ऊपर रहता है। ग्रह स्थान ऊपरीगत ध्रुवप्रोतवृत्त तथा बिंब केन्द्रोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त बनाने से दोनों के अन्तर्गत बिम्बीय अहोरात्र वृत्तीय चाप आक्षदृक्कर्म संज्ञक है। **ग्रहस्थान** से बिंबीय अहोरात्र वृत्त पर्यन्त स्थान गत ध्रुवप्रोतवृत्त में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्पष्ट शर ग्र ब एक भुज है। बिंबीय अहोरात्रवृत्त और क्षितिज वृत्त के सम्पात से स्थान पर्यन्त क्षितिज वृत्त में ब द द्वितीय भुज है। बिंबीय अहोरात्रवृत्त और क्षितिज वृत्त के सम्पात से स्थान गत ध्रुवप्रोत वृत्त के ऊपर लम्बवृत्त में ग्रद तृतीय भुज है। इस त्रिभुज को आचार्य ने सरल जात्य माना है तथा इसमें स्थान लग्न कोण अक्षांश या तत्तुल्य आक्षवलन है। यहाँ एक कोण समकोण है अतः अवशिष्ट तृतीय कोण लंबाश के बराबर है। अब अनुपात किया कि यदि लम्बज्या में स्पष्ट शरज्या पाते हैं तो अक्षज्या में क्या? इससे लम्बवृत्तीय चापज्या व बिंबीय अहोरात्र वृत्तीय चापज्या आती है

$$= \frac{\text{स्पष्ट शरज्या} \times \text{अक्षज्या}}{\text{लंबज्या}}$$। लेकिन $\frac{\text{अक्षज्या}}{\text{लंबज्या}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$

अतः $\frac{\text{स्प.श.ज्या} \times \text{पभा}}{१२}$ = लम्बवृत्तज्या = बिम्बीय अहोरात्र वृत्त चाप ज्या। यहाँ स्वल्पांतर से स्प.श.ज्या = स्प.शर = म.शर तथा पूर्वागतफल का चांप करने से $\frac{\text{शर} \times \text{पभा}}{१२}$ = बिंबीय अहोरात्र वृत्तचाप। लेकिन यह आक्षदृक्कर्म के बराबर नहीं है। अतः ब्रह्मगुप्त आचार्योक्त यह आनयन स्थूल है।

(भास्कराचार्य ने दोनों ही सूत्रों में त्रिज्या से गुणा करके दृग्ज्या से विभक्त किया है जिससे सूक्ष्मता है)

क्षितिज में ग्रहस्थान स्थित रहने से अक्षज्या =अक्षवलनज्या = आक्षवलन स्वल्पांतर से। अतः $\frac{\text{स्व.शर} \times \text{आक्षवलन}}{\text{लंबज्या}} = \frac{\text{स्व.शर} \times \text{पलभा}}{१२}$ = आक्षदृक्कर्म। इससे भास्करोक्त उपपन्न होता है।

आचार्योक्त प्रकार से और स्पष्ट करते हैं। गोल में विषुवन्मंडल स्वाक्षांश से जितने मान का होता है उतना उन्मण्डल उत्तर गोल में क्षितिज से ऊपर लगता है तथा दक्षिण गोल में नीचे रहता है। अतः वहाँ पर स्थित ग्रह स्वचरार्ध असु तुल्य उन्नत तथा नत स्थित रहता है। अतः आचार्य ने चरार्ध साधन के लिए श्लोक में कहा है। ये चरार्ध पलोद्भव असु होते हैं। स्फुटास्फुट क्रांतिज्या के चरार्धों का अंतर जितना असु होता है उतना शर होता है। अतः तुल्य दिशा में रहने से उनका जितना अन्तर होता है उतना चर होता है। यदि शर अधिक हो तो उसकी क्रांति विपरीत दिशा में होती हैं तब उसका शर का एक खण्ड उत्तर की ओर तथा दूसरा दक्षिण की ओर होता है। इनका योग वह शर होता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। अतः तज्जनित चरार्धों का योग शर जनित पलोद्भव असु होता है। यह महति शर में होता है।

अब अल्प शर में। ग्रह जब उत्तर गोल में रहता है तब उसका उत्तर शर उसके अक्ष के वशाद ग्रह के शर से जितना उन्नत होता है वह त्रैराशिक से साधित करते हैं। यदि लम्बज्या में अक्षवलन कोटि तुल्य भुज होता है तो स्फुट शर तुल्य में कितनी होगी? इस प्रकार जो फल प्राप्त होता है वह ग्रह के द्युज्यावृत्त में ज्या रूप में होता है। अथवा लघुरूप में क्षेत्र में अनुपात किया कि यदि द्वादश अंगुल कोटि में पलभा भुज होती है तो स्फुट शर कोटि में कितनी होगी। प्राप्तफल तथा पूर्व प्राप्तफल तुल्य होंगे। इसका त्रिज्या वृत्त में परिणाम करने के लिए अनुपात किया कि यदि द्युज्या में इतनी ज्या होती है तो त्रिज्या वृत्त में कितनी? प्राप्तफल का धनु करे। यह शर से अल्प होने से उत्पन्न नहीं होता अतः इसको नहीं करते।

अब आयन दृक्कर्म के लिए स्फुट विक्षेप असु का साधन करते हैं। इसको स्फुट करने का कारण कहते हैं। इसके लिए निरक्ष देश के क्षितिज पर स्थित ग्रह करे। यह क्षितिज अन्य देश का उन्मण्डल होता है। शर के मूल में से जो द्युज्या वृत्त शराग्र पर है उसका उन्मण्डल से जितना अन्तर होता है उतना स्फुट शर होता है। यह कोटि रूप में होता है तथा अस्फुट कर्णरूप में होता है। अतः यहाँ कोटि रूप में पलोद्भव असु साधित करते हैं।

दक्षिण शर के इतने असु क्षितिज से नीचे स्थित ग्रह जब इतना ही क्षितिज से ऊपर होता है तब उतना अयन दृक्कर्म किये हुए ग्रह से आगे की ओर क्रांतिवृत्त क्षितिज पर लगता है। यदि उत्तर शर हो तो इतने असु, क्षितिज से ऊपर स्थिति ग्रह जब क्षितिज से इतना ही नीचा होता है तब उतना अयन दृक्कर्म किये हुए ग्रह से पीछे की ओर क्रांतिवृत्त क्षितिज से लगता है। अतः कहा गया है कि 'शरे तु याम्योत्तरेक्रमविलोमविधान लग्नं इत्यादि'' इस प्रकार उदय लग्न होता है। इस प्रकार उदय लग्न साधन से विपरीत प्रकार से अस्त लग्न का साधन करे।

पश्चिम में ग्रह अस्त होकर चलता हुआ पूर्व में उदित होने पर जहाँ लगता है वहाँ पर पूर्व में उदय लग्न तथा पश्चिम का अस्त लग्न होता है। अतः कहा है कि ''भार्धाधिकात् खचरतोऽस्त विलग्नमेवम् इत्यादि।''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महाभास्करीय के चन्द्रश्रृंगोन्नतिधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"विषुवद्भाशरघातं प्रहृतं खेटे क्षिपेच्छरे सौम्ये।
पश्चाद्याम्ये जह्याद्व्यस्तं प्रागक्षकर्मैतत्॥४॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"विषुवच्छायागुणिताद्विक्षेपाद्द्वादशोद्धृतात् सौम्यात्।
फलमृणं धनं धनमृणं याम्यादुयास्तमयलग्ने॥४॥"

भास्करोक्त प्रकार से उत्तर शर होने पर अयनदृक्कर्म संस्कृत ग्रह में अक्षज दृक्कर्म कला को घटाने से तथा दक्षिण शर होने पर अक्षज दृक्कर्म कला को अयन दृक्कर्म संस्कृत ग्रह में जोड़ने से उदय लग्न होता है। अस्त लग्न साधन में उत्तर शर होने पर छः राशि सहित अयन दृक्कर्म संस्कृत ग्रह में अक्षजदृक्कर्म कला को जोड़ने से तथा दक्षिण शर होने पर घटाने से पश्चिम क्षितिज में ग्रह के अस्तंगत रहने से जो पूर्व क्षितिज में लग्न होता है वह भास्कराचार्य सम्मत अस्त लग्न होता है। यहाँ ब्रह्मस्फुट ने उसमें से छः राशि को घटाकर पश्चिम क्षितिज में ग्रह के अस्तंगत रहने से जो अस्तलग्न होता है उसी को ग्रहास्त लग्न स्वीकार किया है।

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में ब्रह्मगुप्तोक्त कहा है। यथा—

"क्षुण्णे क्षेपेऽक्षज्यया लम्बभक्तेऽक्षच्छायाघ्ने भानुमक्तेऽथवाऽत्रेति"

सूर्यसिद्धान्त के ग्रहयुत्याधिकार में इस प्रकार कहा है। यथा—

"विषुवच्छाययाऽभ्यस्ताद् विक्षेपाद द्वादशोद्धृतात्।
फलं स्वनतनाडीघ्नं स्वदिनार्धविभाजितम्॥८॥
लब्धं प्राच्यमृणं सौम्ये विक्षेपे पश्चिमे धनम्।
दक्षिणे प्राक्कपाले स्वं पश्चिमे तु विपर्ययः॥९॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अक्षज्यागुणितेऽथ लम्बकहृते क्षेपे फलं सौरिका
जयन्ते रविभिर्हृतेऽथ विषुवच्छायाङ्गुलैर्वा हते॥३॥
प्रागृणं स्वमयनग्रहे फलं सौम्ययाम्यशर सम्भवं सदा।
अन्यथापरकपालसंस्थितेकार्येदिति भवेत् स दृग्ग्रहः॥४॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सि.के. उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विषुवत्प्रभया हतः शरो रवि (१२) भक्तो हयुदयास्तगे ग्रहे।
धनदिग्विशिखे क्षयं धनं स्वमृणं याम्यशरे दृशे खगे॥१८॥"

इदानीमुदयास्तलग्नयोः स्वरूपं प्रयोजनं चाह—

निजनिजोदयलग्नसमुद्गमे समुदयोऽपि भवेद्धनभः सदाम्।
भवति चास्तविलग्नसमुद्गमे प्रतिदिनेऽस्तमयः प्रवहभ्रमात्॥९॥

उदयास्त लग्न स्वरूप—

सूर्य-प्रभा टीका— प्रतिदिन ग्रह प्रवह वायु वश भ्रमण करता हुआ अपने-अपने स्थान पर उदयलग्न के समय आकाश में उदित होता है तथा अस्त लग्न के समय पर अस्त होता है।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के ग्रहच्छायाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उदयविलग्नसमाने स्फुटलग्ने खेचरोदयो भवति।
नित्यं प्रवहवशेनास्तं यात्यस्तमयसमलग्ने॥६॥"

इदानीं ग्रहस्य दृश्यत्वलक्षणमाह—

निशीष्टलग्नादुदयास्तलग्ने न्यूनाधिके यस्य खगः स दृश्यः।
दिनेऽपि चन्द्रो रविसन्निधानान्नास्तं गतश्चेत् सति दर्शने भा॥१०॥

ग्रह के दृश्य होने के लक्षण—

सूर्य-प्रभा टीका— रात्रि में किसी समय पर जब ग्रह का गणितागत उदयलग्न उस समय के लग्न से अल्प होता है तब ग्रह उदित (दृश्य) रहता है। इसी प्रकार किसी समय पर जब ग्रह का गणितागत अस्त लग्न उस समय के लग्न से अधिक होता है तब ग्रह उदित (दृश्य) रहता है। इन्हीं लक्षणों के होने पर चंद्रमा दिन में भी दृश्य होता है। दिन में चंद्रमा रवि के पास में स्थित होने पर भी अस्त नहीं होता। यदि ग्रह दृश्यमान हो तो उसकी छाया साधित की जा सकती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रागूनमाद्यमधिकं पश्चाल्लग्नाद्ग्रहोदयोऽस्तमयः।
षड्भयुतमन्यदुदयैर्घटिकाः कृत्वौनमधिकसमम्॥५॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"यद्यधिकमुदयलग्नादूनं षड्ग्रहयुतास्तमयलग्नात्।
लग्नं तदा शशाङ्कोदृश्यः सति दर्शने छाया॥ चं.छाया धि.श्लोक-३॥"

इदानीं छायार्थं ग्रहस्य द्युगतमाह—

ज्ञातुं यदा भाभिमता ग्रहस्य तत्कालखेटोदयलग्नलग्ने।
साध्ये तयोरन्तरनाडिका यास्ताः सावनाः स्युर्द्युगता ग्रहस्य॥११॥
ता एव खेटद्युतिसाधनार्थं क्षेत्रात्मकत्वात् सुधिया नियोज्याः।
ऊनस्य भोग्योऽधिकभुक्तयुक्तो मध्योदयाढ्योऽन्तरकाल एवम्॥१२॥

ग्रह की छाया ज्ञात करने के लिए ग्रह की दिनगत घटि साधन करना—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस समय की ग्रह की छाया ज्ञात करनी हो तो तात्कालिक ग्रह का उदय लग्न तथा इष्ट लग्न ज्ञात करके उनकी अन्तर घटियाँ साधित करे। ये सावन घटियाँ ग्रह के ओरात्र वृत्त पर ग्रह की दिनगत घटियाँ होती हैं। इनके साधन के लिए इसको विद्वानों को क्षेत्रात्मक जानकर इनसे ही क्रिया करनी चाहिये। उदय लग्न यदि इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह स्थित राशि के भोग्य काल को, इष्ट लग्न राशि के भुक्तकाल में युक्त करके उसमें इन दोनों राशियों के बीच की राशियों के उदयकालों को जोड़ने से ग्रह के उदयलग्न तथा इष्ट लग्न का अन्तर काल होता है।

उपपत्ति— इष्ट लग्न क्षितिज पर होता है। इष्टकालिक ग्रह से जो उदयलग्न ज्ञात करते हैं उस उदयलग्न से ग्रह क्षितिज के ऊपर आस-पास के स्थान पर रहता है उसका उपरोक्त भुक्त-भोग्य प्रकार से लग्न साधन करके अन्तर काल ज्ञात करे। ये अन्तर घटियाँ ग्रह से संबंधित सावनात्मक होती हैं, सूर्य से संबंधित नहीं होती।

इसको गोल में प्रदर्शित करते हैं। गोल में इष्ट लग्न को क्षितिज पर निवेश करे और तात्कालिक ग्रह का उदयलग्न मेष आरंभ से आगे देवे उसके अग्रभाग पर बिन्दु रूप में ग्रह को दिखावे। वहाँ उसका अहोरात्र वृत्त निवेश करे। उस वृत्त के पूर्व क्षितिज संपात से आरंभ करके ग्रह चिन्ह पर्यन्त जितनी घटियाँ होती हैं वह ग्रह की द्युगत (दिनगता) होती है। ये सावनात्मक होती हैं। इनकी अहोरात्रवृत्त पर गणना की जाती है। ग्रह के अहोरात्रवृत्त में ६० घटियाँ सावनात्मक होती हैं। छाया साधन के लिए क्षेत्रात्मक इन घटियों को ग्रहण करते हैं। क्षेत्र व्यवहार ही से छाया साधन करते हैं। अतः आचार्य ने 'ता एव खेटद्युति साधनार्थं।' इत्यादि कहा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रतिदिनमुदयास्तमयावसकृत् तात्कालिक ग्रह विलग्नैः।
सूर्यास्तमयौदयिकौ शीतांशोः पूर्णिमास्यन्तः॥८॥"

चन्द्रछायाधिकार में (ग्रह) चंद्र के उन्नतकालानयन को आचार्योक्त प्रकार कहा है। यथा–

"लग्नसममुदयलग्नं षड्गृहयुक्तास्तमयलग्नसमम्।
पूर्वापरयोः कृत्वाः गतशेषाः स्वोदयैर्घटिकाः॥४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्राचिलग्न उदयेन्दुना समे सर्त्तुभास्तशशिना च पश्चिमे।
संविधाय गतशेष नाडिकाः"

लल्लाचार्य ने ग्रहोदयास्तमयाधिकार में लग्नअन्तरकाल आचार्योक्त प्रकार कहा है। यथा शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में–

"गम्योऽल्पादसुनिवहोऽधिकारद् गतोयो मध्यस्थैरसुभिरसौ युतो विधेयः।
कालांशा गगनरसैर्भजेदमीभिश्चोत्काल्पैर्द्युचरमवेहि तैरदृश्यम्॥६॥"

इसका अर्थ यहाँ बताते हैं जिससे भास्करोक्त श्लोक भी स्पष्ट होगा। अर्थ-तात्कालिक (इष्ट समय) ग्रह और लग्न से असकृत कर्म द्वारा प्रतिदिन उदय और अस्त साधन करे अर्थात् जिस समय ग्रह उदय की घटी ज्ञात करनी हो उस समय के लग्न (तात्कालिक लग्न) तथा ग्रहोदय लग्न साधन कर दोनों के अन्तर्गत घटी साधन कर उन साधित घटी से ग्रह को चलाकर उससे फिर उदय लग्न साधन कर तात्कालिक स्थर लग्न से पुनः इष्ट घटी साधन करना चाहिये। इस प्रकार असकृत करना चाहिये। अस्त काल ज्ञात करने के लिए अस्त लग्न (सषडभास्त लग्न) से कर्म करना चाहिये।

यहाँ काल ज्ञान भास्करोक्त श्लोक १२ उत्तरार्ध अनुसार किया जाता है। श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है।

"उदयति सममस्तं गच्छता प्राक् तदूनस्तदनु तदधिकश्चेदुक्तवत् तत्र कालः।"

इदानीं क्रान्तेः स्फुटत्वं कृत्वा छाया साधनातिदेशं करोति स्म—

स्पष्टा क्रान्तिः स्फुटशरयुतोनैकभिन्नाशभावे
तज्ज्या स्पष्टोऽपमगुण इतो द्युज्यकाद्यं ग्रहस्य।
कृत्वा साध्या तदुदितघटीभिः प्रभा भानुभाव-
च्चन्द्रादीनां नलकसुषिरे दर्शनायापि भानाम्॥१३॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रह की छाया साधन की विधि से ग्रह की स्पष्ट क्रांति द्वारा सूर्य छायावत ग्रहतारादि की छाया आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह की क्रांति ग्रह के स्फुट शर में, दोनों एक दिशा होने पर युक्त करने से तथा भिन्न दिशा में होने पर भी युत करने से स्फुट क्रांति होती है। स्फुट क्रांति की ज्या स्फुट क्रांतिज्या होती है तथा कुज्या, द्युज्या, चरज्या आदि सभी साधित कर सकते हैं। पूर्वानीत द्युगत (दिनगत) घटि से उन्नत ज्ञात करके उन्नत से सूर्य की छाया साधन अनुसार ग्रह छाया का साधन करे। इस प्रकार चन्द्र, तारा आदि की छाया साधन करके नलक यंत्र के द्वारा उनका दर्शन करने के लिए उनकी छाया का उपयोग कर सकते हैं।

उपपत्ति— त्रिप्रश्नाध्यायानुसार इसकी उपपत्ति है। वहाँ क्रांतिज्ञान से नत उन्नत ज्ञात करना बताया है। क्रांति तथा स्पष्ट क्रांति आदि भी पूर्व में बता दी गई है।

विशेष— आर्यभट (द्वि) ने महाभास्करीय के ग्रहच्छायाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"निजदिनदलजस्पष्टक्रान्त्यक्षांशगतशेषकैः कुर्यात्।
रविवत् समयच्छायासाधनमत्रपि कालज्ञः॥७॥"

इदानीमत्रापि विशेषमाह—

स्वभुक्तितिथ्यंशविवर्जितो ना महांल्लघुः खाग्निकृतां ४३० शहीनः।
स्पष्टो भवेदस्फुटजातदृग्ज्या संताडितार्कैः स्फुटशङ्कुभक्ता॥१४॥
प्रभा भवेन्ना तिथिभागतोऽल्पो यावद्विधुस्तावदसावदृश्यः।
एवं किल स्यादितरग्रहाणां स्वल्पान्तरत्वान्न कृतं तदाद्यैः॥१५॥

विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिप्रश्नाधिकारोक्त प्रकार से ग्रह का शंकु एवं दृग्ज्या साधन करे। वहाँ ग्रह को स्फुट किया है। ग्रह की भुक्ति (गति) का पंद्रहवाँ भाग महाशंकु में से कम करने से स्फुट शंकु प्राप्त होता है। अस्फुट शंकु से प्राप्त दृग्ज्या को बारह से गुणा करके स्फुट शंकु से विभक्त करने से छाया प्राप्त होती है। छाया के वर्ग में बारह का वर्ग युक्त करके मूल लेने से कर्ण प्राप्त होता है। बृहद्ज्या से शंकु प्राप्त करने से इस प्रकार होता है।

यदि लघुज्या से लघु शंकु ज्ञात करे तो उसमें से भुक्ति का ४३० वाँ भाग कम करने से स्फुट शंकु होता है। यदि महाशंकु भुक्ति के पंद्रहवें भाग से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अल्प हो अथवा लघु शंकु यदि भुक्ति के ४३० वें भाग से अल्प हो तो चंद्रमा अदृश्य रहता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के लिए भी होता है। लेकिन अन्य ग्रहों के लिए यह बहुत अल्प होता है जिस कारण से पूर्वाचार्यों ने इसको नहीं किया है।

उपपत्ति— शंकु दृग्मण्डल में उन्नतांशों की जीवा होती है उसका शंकूमूल का ऊपरी भाग भुक्ति का पंद्रहवाँ भाग तुल्य कला भाग भूपृष्ठस्थ दृष्ट भूमि से (दबा हुआ) अदृश्य होने के कारण दिखाई नहीं देता। यह पूर्व प्रतिपादित किया गया क्षितिजलंबन है। गोलाध्या त्रिप्रश्नवासना के ३८ वें श्लोक में आचार्य ने इस संबंध में कहा है।

यदि ३४३८ त्रिज्या में पंद्रहवाँ भाग लंबन होता है तो १२० त्रिज्या में कितना होगा?

$$\frac{१}{१५} \times \frac{१२०}{३४३८} = \frac{१}{४३०}$$ स्वल्पांतर से।

इस प्रकार लघुशंकु के लिए ४३० भूछन्न कला प्राप्त होता है। इतनी लिप्ता शंकु में कम करने से चंद्रमा दृश्य होता है तथा इससे कम शंकु होने पर चंद्रमा अदृश्य होता है, इसी प्रकार सभी ग्रह अदृश्य रहते हैं। अन्य ग्रहों के लिए यह अंतर अल्प होने के कारण इस संस्कार को अन्य पूर्वाचार्यों ने नहीं कहा।

आर्यभट ने महासिद्धान्त के ग्रहच्छायाधिकार में ग्रहच्छाया का आनयन आचार्योक्त प्रकार कहा है। यथा–

"निजदिनदलजस्पष्टक्रान्त्यक्षांशगतशेषकैः कुर्यात्।
रविवत् समयच्छायासाधनमत्रापि कालज्ञः॥७॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त के चन्द्रच्छायाधिकार में चंद्र आदि ग्रह छाया आनयन आचार्योक्त प्रकार कहा है। यथा–

'द्वादशभिर्गुणिताया दृग्ज्याया इष्टमङ्गुलाप्तं यत्।
तत् प्रग्रहणे छाया स्फुटा विधोरन्यथाऽऽसन्ना॥७॥
स्पष्टापक्रम भागैर्मध्यच्छायाऽर्कवच्छशांकस्यः।
शशिवद्भौमादिनामृक्षाणां तु स्वककुव्वशात्॥८॥"

सिद्धान्त शेखर में भी श्रीपति ने भी ब्रह्मगुप्तोक्त ही कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अस्पष्टशङ्कुजनितां खलुदृष्टिजीवामभ्यस्य युग्मशशिभिर्विभजेन्नरेण।
स्पष्टीकृतेन फलङ्गुल पूर्वकं यत् सेन्दोः स्फुटा भवति भानिकटाऽन्यथा तु॥"
स्वक्रांतिभागैः शशिनो दिनार्धच्छाया श्रुतिभास्करवत् प्रसाध्ये।
भौमादिकानां च नभश्चराणां शशांकवत् स्वध्रुवकाच्च भानाम्॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रछायाधिकार में आचार्योक्त प्रकार से स्पष्ट शंकु का आनयन कहा है। यथा–

"शङ्कुधनुषोऽधिकस्य स्फुट प्रमाणार्धलिप्ताकाभिर्ज्या।
रविशशिमध्यनतिकला तिथ्यंशेनोनिता छेदः॥६॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में इसी प्रकार कहा है। यथा–

"मानखण्डसहितान्नुकार्मुकात् शिञ्जिनी भवति हि क्रमेण या।
मध्यभुक्तितिथिभाग जीवया वर्जिता स्फुतरो नरोभवेत्॥"

इदानीं तेषां दूषणं निराकुर्वन्नाह—

स्वल्पान्तरत्वादबहूपयोगात् प्रसिद्धभावाच्च बहुप्रयासात्।
ग्रन्थस्य तज्ज्ञैर्गुरुताभयेन यस्त्यज्यतेऽर्थो न स दूषणाय॥१६॥

पूंर्वाचार्यों के दोष का निराकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि किसी क्रिया के स्वल्पांतर होने के कारण, अधिक उपयोगी नहीं होने के कारण, अधिक प्रसिद्ध नहीं होने के कारण, बहुत प्रयास से ज्ञात होने के कारण, अत्यधिक वृहद् होने के कारण ग्रंथ में उसकी आवश्यकता त्याग दी जावे तो उसमें कोई दोष नहीं होता है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के ग्रहच्छायाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

८

अथ ग्रहोदयास्ताधिकारः

अथ ग्रहोदयास्तमयाध्यायो व्याख्ययते। तत्रादौ नित्योदयास्तयोर्गतगम्यलक्षणमाह—

प्राग्दृग्ग्रहः स्यादुदयाख्यलग्नमस्ताख्यकं पश्चिमदृग्ग्रहः सः।
प्राग्दृग्ग्रहोऽल्पोऽत्र यदीष्टलग्नाद्गतो गमिष्यत्युदयं बहुश्चेत्॥१॥
ऊनोऽधिकः पश्चिमदृग्ग्रहश्चेदस्तं गतो यास्यति चेति वेद्यम्।

प्रतिदिन ग्रह उदयास्त के गत-गम्य के लक्षण—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह के उदयलग्न को प्राग्दृग्ग्रह तथा अस्त लग्न को पश्चिम दृग्ग्रह कहे। यदि प्राग्दृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह उदित हो चुका होता है। यदि अधिक हो तो ग्रह उदित होने वाला होता है।

इसी प्रकार यदि पश्चिमदृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह अस्त चुका होता है और अधिक हो तो अस्त होने वाला होता है।

उपपत्ति— प्रग्दृग्ग्रह तथा पश्चिमदृग्ग्रह को परिभाषित करके आचार्य ने इनके द्वारा क्रांतिवृत्त तथा पूर्वी एवं पश्चिमि क्षितिज के मिलान बिन्दुओं को परिभाषित कर दिया है, जब ग्रह उदित अथवा अस्त होता है तथा ग्रह का शर होता है। जब ग्रह का शराभाव होता है तब प्राग्दृग्ग्रह उदित होते हुए ग्रह पर तथा पश्चिम दृग्ग्रह अस्त होते हुए ग्रह पर ही होता है अर्थात् दोनों एक ही बिंदु पर होते हैं।

ग्रह का शर होने पर इष्ट लग्न से दृग्ग्रह अल्प हो तो ग्रह क्षितिज के ऊपर रहने से उदित रहता है तथा अधिक होने पर क्षितिज से नीचे रहने के कारण उदित होने वाला होता है। अतः आचार्य ने यह युक्तियुक्त कहा है। इसी तरह इष्टलग्न से ग्रह का अस्तलग्न अल्प होने पर ग्रह पश्चिम क्षितिज के नीचे रहता है अतः अस्त हो चुका होता है तथा अधिक होने पर क्षितिज के ऊपर रहने से अस्त होने वाला होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"प्रागूनमाद्यमधिकं पश्चाल्लग्नाद्ग्रहोदयोऽस्तमयः।
षड्भयुतमन्यदुदयैर्घटिकाः कृत्वोनमधिकसमम्॥५॥"

आर्यभट (द्वि.) ने ग्रहच्छायाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा महासिद्धान्तं—

"तस्मिन् पूर्वदिगुक्तैः कुर्याद् दृक्कर्मणी ततः कालः।
कार्यस्तज्ज्ञो द्युचरः कृतदृष्टिफलोऽसकृदुदयविलग्नम्॥३॥"

इदानीं तदन्तरघटिकाज्ञानमाह—

तदन्तरोत्था घटिका गतैष्यास्तच्चालितः स्यात् स निजोदयेऽस्ते॥२॥
तल्लग्नयोरन्तरतोऽसकृद्याः कालात्मिकास्ता घटिकाः स्युरार्क्ष्यः।
अभीष्टकालद्युचरोदयान्तर्यद्वेष्टकालद्युचरास्तमध्ये॥३॥

इष्ट समय तथा ग्रहोदय की नक्षत्र अन्तर घटि ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— इष्ट लग्न से प्राग्दृग्ग्रह यदि अल्प हो तो उनकी अन्तर घटियाँ पूर्वोक्त प्रकार से साधित करने से गत घटियाँ होती हैं। ये सावनात्मक हैं। इनको ग्रह की भुक्ति (गति) से गुणा करके साठ (६०) से विभक्त करने से प्राप्त कलाफल को गतघटियों में से कम करने से दृग्ग्रह की निजोदय कालिक घटियाँ होती हैं। इनके द्वारा पुनः इष्ट लग्न की अन्तर घटियाँ साधित करे जब तक कि असकृत कर्म द्वारा वह स्थिर न हो जावे। ग्रहोदय से इष्ट काल के मध्य इतनी नाक्षत्र गत घटियाँ होती हैं। इसी प्रकार ऐष्य घटियाँ साधन करे और इसी प्रकार अस्त के लिए कालात्मक गत-आगत घटियाँ साधन करे।

उपपत्ति— लग्न घटियों के नाक्षत्रात्मक साधन पूर्व में बताये गये हैं। ग्रह के प्रवह वायु वश अर्थात् भूभ्रमण के कारण उदयास्त को **प्रतिदिन उदयास्त** तथा किसी मुहूर्त पर उदय-अस्त को **निरुक्त उदयास्त** कहते हैं।

इदानीमर्कासन्नभावेन यावुदयास्तौ तदर्थमाह—

निरुक्तौ ग्रहस्येति नित्योदयास्ताविनासन्नभावेन यौ तौ च वक्ष्ये।
रवेरूनभुक्तिर्ग्रहः प्रागुदेति प्रतीच्यामसावस्तमेत्यन्यथान्यः॥४॥

सूर्यासन्न अभाव के कारण उदयास्त—

सूर्य-प्रभा टीका— नित्योदय के अतिरिक्त निरुक्त (ग्रह) के उदयास्त को आचार्य कहते हैं। यदि किसी ग्रह की गति रवि से अल्प हो तो वह पूर्व दिशा में उदित तथा पश्चिम दिशा में अस्त होता है जैसे मं.गु.श. अन्यथा होने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पर विपरीत होता है अर्थात् सूर्य से अधिक गति ग्रह पश्चिम में उदित या पूर्व में अस्त होता है। जैसें चंद्रमा।

उपपत्ति— मंद गतिक् ग्रह के निकट जब सूर्य रहता है तो वह ग्रह अदृश्य होता है। वहाँ से सूर्य शीघ्र गति से उससे आगे हटता जाता है तथा मंदगतिक् ग्रह पीछे हटता जाता है। अतः इस प्रकार पीछे रहा मंदगति ग्रह पूर्व दिशा में सूर्योदय से पूर्व दृश्य होता है। यदि मन्दगति ग्रह सूर्य से अधिक आगे स्थित हो तो शीघ्रता से रवि उसके आसन्न जाता है तब सूर्य किरणों से आच्छादित ग्रह (कुण्ठित) पश्चिम में अस्त होता है। इसी प्रकार युक्ति से अधिक भुक्ति वाला ग्रह पश्चिम में उदित तथा पूर्व में अस्त होता है।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रागून भुक्तिरुनो दृश्योऽदृश्योऽन्यथा रवितः।
दृश्योऽधिकगतिरधिकोऽदृश्यः पश्चाद् ग्रहोऽल्पगतिः॥२॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ऊनोह्यूनगतिः सहस्रकिरणाद् दृश्योभवेत् प्राग्ग्रहः पश्चादभ्यधिकस्तथाऽधिकगतिः स्यात् प्रागदृश्यः पुनः।
स्वल्पोऽनल्पगतिस्तथोनगतिकः पश्चाददृश्योऽधिकः कालांशैरधिकोनकस्तु कथितैरिति।"

सूर्य सिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"सूर्यादभ्यधिकाः पश्चास्तं जीवकुजार्कजाः।
ऊनाः प्रागुदयं.....॥२॥
ऊना विवस्वतः प्राच्यामस्तं चन्द्रज्ञभार्गवाः।
व्रजन्त्यभ्यधिकाः पश्चादुदयं शीघ्रयायिनः॥३॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"कुजजीवार्कजमुनयः शुक्रज्ञौ वक्रिणौ च सूर्याल्पाः।
यान्ति प्राच्यामुदयं पश्चादस्तं व्रजन्त्यधिकाः॥१॥
ऋजुगौ ज्ञसितौ चेन्दुः प्राच्यामूना रवेर्व्रजन्त्यस्तम।
अधिकाः पश्चादुदयं सान्निध्ये लक्षणं चिन्त्यम्॥२॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहोदयास्तमयाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"ऊनः प्राग्दयं प्रयाति सवितुः प्रागेव चास्तं ग्रहः
पश्चादभ्यधिकोऽर्क सन्निधिवशान्तित्यं प्रवाहेण च
दृश्याः प्राचि कुजार्यसूर्यतनयाः पश्चाददृश्यास्सदा
वक्रस्थौ ज्ञसितौ च तौ क्रमगती चन्द्रश्च तद्व्यत्ययात्॥१॥"

इदानीं बुधशुक्रयोर्विशेषमाह—

ज्ञशुक्रावृजू प्रत्यगुद्गम्य वक्रां गतिं प्राप्य तत्रैव यातः प्रतिष्ठाम्।
ततः प्राक् समुद्गम्य वक्रावृजुत्वं समासाद्य तत्रैव चास्तं व्रजेताम्॥५॥

बुध शुक्र के लिए विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— बुध-शुक्र मार्गी होने पर तथा उनकी भुक्ति अधिक होने से पश्चिम में उदित होते हैं तथा वहाँ वक्रि होकर वहीं पर अस्त हो जाते हैं तथा वक्रि रहते हुए पूर्व में उदित होते हैं और वहाँ अवक्रि होकर अधिक गति होने के कारण पूर्व में ही अस्त हो जाते हैं।

उपपत्ति— पूर्वोक्त व्याख्या ही उपपत्ति है।

विशेष— पूर्व तथा अग्रिम श्लोक की व्याख्या में विशेष में उद्धृत उद्धरणों का अवलोकन करें। पूर्वाचार्यों ने आचार्योक्त कहा है।

इदानीं कालांशानाह—

दस्रेन्दवः १२ शैलभुवश्च १७ शक्रा १४ रुद्राः
११ खचन्द्राः १० तिथयः १५ क्रमेण।
चन्द्रादितः काललवा निरुक्ता
ज्ञशुक्रयोर्वक्रगयोर्द्विहीनाः॥६॥

कालांश ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि के निरुक्त कालांश क्रमशः १२, १७, १४, ११, १०, १५ होते हैं। वक्रि बुध, शुक्र के कालांश इनसे दो कम अर्थात् क्रमशः १२ तथा ८ होते हैं।

उपपत्ति— कालांश का अर्थ कालात्मक अंश है। छः अंश की एक घटी होती है। एक अंश की दश पानीय पल होते हैं। सूर्य से अस्त होकर उदय होने में चंद्रमा को दो घटी लगती है। इससे कम समय में सूर्य की प्रभा से आच्छाति होने से अदृश्य होता है। दो घटी बारह अंश के तुल्य होती है अतः चन्द्रमा के कालांश १२ होते हैं। इतने अंश से अधिक अंतर पर चंद्रमा दृष्टयोग्य होता है। मंगल के १७ अंश २।५० घटियों के तुल्य होते हैं। इसी प्रकार अन्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रहों के लिए कहे गये कालांश न्यूनाधिक उलके बिंबों की स्थूल-सूक्ष्मता वश हैं और बुध-शुक्र के बिंब वक्र गतिक होने पर पृथ्वी से निकटतम होने के कारण अधिक चमकदार तथा बड़े होने से उनके कालांश २ अंश न्यून कहे हैं। क्योंकि तब वे सूर्य से अधिक सान्निध्य में होने पर अस्त होते हैं।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है केवल बुध तथा शुक्र के कालांशों में एक अंश का अंतर (कम) है। यथा–

"द्वादशभिः शीतांशुः सितजीवज्ञशनिभूमिजा नवभिः।
द्वयुत्तर वृद्धैरन्तरघटिका षड्गुणितकालांशैः॥६॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने ब्रह्म गुप्तोक्त कालांश ही कहे हैं। यथा– "शुक्रार्यज्ञद्युमणिजकुजा द्वयुत्तरैः कालभागैर्गोभिश्चन्द्रो रविभिरिनतो जायतेऽदृश्यदृश्यः। गम्यो न्यूनादसुचय इतश्चाधिकादन्तरस्थैर्युक्त प्राणैः स खरसहृतः कालभागा भवन्ति॥"

पुनः ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुसिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में भास्करोक्त कहा है। यथा–

"मानाल्पत्वात् पश्चादुदयोऽस्तमयः सितस्य दशभिः प्राक्।
पश्चान्मानमहत्वादस्तमयोऽष्टाभिरुदयः प्राक्॥११॥"

पुनः सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मानाल्पत्वादृशभिरुदयं याति शुक्रः प्रतीच्यामंशैरस्तं दिशि सुरपतेः पीनभावात्तु मूर्त्तेः पश्चादस्तं व्रजति वसुभिः प्रागुदेतीत्यनेन।"

श्रीपति ने अध्याय ८ सिद्धान्त शेखर के श्लोक ९ में बुध-शुक्र के कालांश क्रमशः १४ व १० तथा वक्रि बुध-शुक्र के क्रमश १२ तथा ४ कहे हैं।

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय में आचार्योक्त कालांश कहे हैं। उन्होंने भी शुक्र-बुध के कालांश भास्कराचार्य से एक-एक अंश अल्प कहे हैं। यथा अध्याय ६—

"अंशैरन्तरितः सूर्यान्नवभिदृश्यते भृगुः।
द्वयधिकैर्द्वयधिकैर्दृश्या ज्यौज्ञसौरिधरासुताः॥४४॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में आचार्योक्त कालांश पठित किये हैं लेकिन बुध-शुक्र के कालांश भास्करोक्त से एक-एक अंश कम कहे हैं। लेकिन वक्रि बुध-शुक्र के कालांश भास्करोक्त १२ तथा ८ ही कहे हैं। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"कालांशै रविभिः शशी महिसुतोऽत्यष्टयाथ नन्दैः सितः
शाशाङ्किर्गुणभूमिरक्षशशभिः सौरिः शिवैरङ्गिराः।
वक्रस्थौ बुधमार्गवौ रवि-गजैः सूर्यान्तरैर्दृश्यतां
यान्ति प्रत्यगिनो भषट्कसहितः कार्यस्तथा दृग्ग्रहः॥५॥"

कालांशों के मानों के लिए वेध द्वारा ही उनको दृकसिद्ध करके मान कहे जाते हैं। अतः आगम ही इनका प्रमाण है।

सूर्यसिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कालांश ही कहे हैं केवल शुक्र कालांश एक अंश अल्प कहा है। शेष सभी आचार्योक्त ही हैं। यथा—

एकादशामरेज्यस्य तिथिसंख्याऽर्कजस्य च।
अस्तांशा भूमिपुत्रस्य दश सप्ताऽधिकास्ततः॥६॥
पश्चादस्तमयोऽष्टाभिरुदयः प्राङ्महत्तया।
प्रागस्त उदयः पश्चादल्पत्वाद्दशभिर्भृगोः॥७॥
एवं बुधो द्वादशभिश्चतुर्दशभिरंशकै।
वक्री शीघ्रगतिश्चार्कात् करोत्यस्तमयोदयौ॥८॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सि. के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कालांशकैर्नवभिरुष्णुगुलुप्तदीप्तिर्दृश्यो भृगुर्गुरुबुधार्किजा क्रमेण।
तैर्द्वयन्तरैस्तुहिनदीधितिरर्क संख्यैः वक्री बुधाश्च वसुभिर्भृगुनन्दनोऽपि॥३॥"

यहाँ ग्रहों के कालांश में कुछ अंतर है लेकिन बुध, शुक्र के आचार्योक्त तुल्य हैं।

इदानीमितिकर्त्तव्यतामाह—

यत्रोदयो वास्तमयोऽवगम्यस्तद्दिग्भवो दृक्खचरो रविश्च।
अस्तोदयासन्नदिने कदाचित् साध्यस्तु पश्चात् तरणिः सषड्भः॥७॥

ग्रहउदयास्त समय ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह के उदय व अस्त को जब जानना हो तो ग्रह के पूर्व अथवा पश्चिम उदयास्त के अनुसार पूर्व अथवा पश्चिम दृग्ग्रह की तथा सूर्य की स्थिति उस दिन उदयास्त से कुछ पूर्व ज्ञात करे। यदि ग्रह पूर्व में उदित हो तो ग्रह साधन करके उदय लग्न साधन करे। यदि पश्चिम में ग्रह उदयास्त हो तो ग्रह का साधन करके सूर्य में छः राशि जोड़ कर लग्न साधन करे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीमिष्टकालांशानयनमाह—

दृक्खेचरार्कान्तरजातनाड्यो रसाहताः काललवाः स्युरिष्टाः।

इष्ट कालांश आनयन—

सूर्य-प्रभा टीका— दृग्ग्रह तथा सूर्य की अन्तर घटिकाओं का साधन करके उनको ६ से गुणा करने से इष्ट कालांश प्राप्त होते हैं।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सूर्यास्तकालिकौ पश्चात् प्राच्यामुदयकालिकौ।
दिवा चार्कग्रहौ कुर्याद् दृक्कर्माथ ग्रहस्य तु॥४॥
ततो लग्नान्तरप्राणाः कालांशा षष्टिभाजिताः।
प्रतीच्यां षड्भयुतयोस्तद्वल्लग्नान्तरासवः॥५॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में इसी प्रकार कहा है। ग्रहोदयास्ताधिकार। यथा—

"गम्योऽल्पादसुनिवहोऽधिकाद् गतो यो
मध्यस्थैरसुभिरसौ युतो विधेयः।
कालांशा गगनरसैर्भजेदमीभि-
श्चोत्काल्पैर्द्युचरमवेहि तैरदृश्यम्॥६॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"रविदृक्खेटौ पश्चात् कार्यौ भगणार्धसंयुक्तौ।
तद्विश्लेषांशहतं स्वदृकाणं चीननै विभजेत्॥४॥"

अथ तैरुदयास्तयोर्गतैष्यतामाह—

उक्तेभ्य ऊनाभ्यधिका यदीष्टाः खेटोदयो गम्यगतस्तदा स्यात्॥८॥
अतोऽन्यथा वास्तमयोऽवगम्यः प्रोक्तेष्टकालांशवियोगलिप्ताः।
खाभ्राष्टभू १८०० घ्ना द्युचरोदयाप्ताः खेटार्कभुक्त्यन्तरभाजिताश्च॥९॥
वक्रे तु भुक्त्यैक्यहता अवाप्तास्तदन्तराले दिवसा गतैष्याः।
तात्कालिकाभ्यां रविदृग्ग्रहाभ्यां मुहुः कृतास्ते स्फुटतां प्रयान्ति॥१०॥

ग्रह के उदित होने अथवा उदित हो चुकने का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— इस प्रकार प्राप्त इष्ट कालांश यदि पठित कालांश से अल्प हो तो ग्रह को उदय होना शेष होता है। यदि अधिक हो तो उदय

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हो चुका होता है। अस्त के समय इससे विपरीत होता है अर्थात् यदि इष्ट कालांश पठित कालांश से अल्प हो तो ग्रह अस्त हो चुका तथा अधिक हो तो अस्त अब होगा। पठित कालांश तथा इष्ट कालांश के अंतर को १८०० से गुणा करके दृग्ग्रह की आक्रांत राशि के स्वदेशीय उदय असुओं से विभक्त करके प्राप्त कला फल को, ग्रह वक्रि हो तो ग्रह तथा सूर्य की गति के अन्तर से पुनः विभक्त करने से तथा मार्गि होने पर दोनों के गति योग से विभक्त करने से प्राप्तफल क्रमशः (वक्रि ग्रह होने पर) ग्रह उदित होने के पश्चात् की दिन संख्या तथा (मार्गि ग्रह होने पर) उदित होने में शेष दिनों की संख्या होती है।

इस प्रकार दिनों से तात्कालिक दृग्ग्रह तथा सूर्य का साधन करके असकृत कर्म करे जब वास्तविक काल का ज्ञान न हो जावे।

उपपत्ति— पठित कालांशों के अन्तर्वर्ति ग्रह के रहने पर वह अदृश्य रहता है। अतः जब इष्ट कालांश पठित कालांश से अल्प होंगे तब ग्रह उदित नहीं होकर अदृश्य रहेगा तथा उदय के लिए पठित कालांश तुल्य इष्ट कालांश होने से वह विलोक्य मान के तुल्य होने से उदित हो जावेगा। अस्त समय पर विलोक्य मान्य तुल्य अस्त कालांश होने पर अस्त हो जायेगा। इष्ट कालांश अधिक होने से (पठित उदित कालांश से) भूमि से बाहर आ जाने से ग्रह उदित होकर विलोक्यमान हो जाता है। इष्ट कालांश तथा पठित कालांश की अन्तर कलाओं की क्षेत्र लिप्तिका करने के लिए अनुपात करते हैं कि यदि इतनी दृग्ग्रह उदय असु में १८०० क्षेत्र लिप्ता होती है तो अन्तर कला असु में कितनी होगी? प्राप्तफल क्षेत्र लिप्ता होती है। इसको ग्रह-सूर्य भुक्ति अंतर से विभाजित करे। भुक्त्यंतर को क्षेत्र लिप्तान्तरात्मक के सजातीय करने के लिए क्षेत्र लिप्तिकाकरण करते हैं कि यदि भुक्त्यन्तर में एक दिवस पाते हैं तो कालांतर कला में क्या? इस प्रकार जो दिनप्रमाण आता है वक्रि ग्रह होने पर भुक्ति का योग करके गणना करते हैं। दूर अन्तर पर होने के कारण स्थूल काल होता है अतः असकृत कर्म सूक्ष्मता के लिए करने के लिए कहा है।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** में उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दृश्यादृश्यैर्युतिवद्ग्रहार्क-भुक्त्यन्तरैक्य लब्ध दिनैः।
ऊनाधिक लिप्ताभ्यां प्राग्वत् तात्कालिकैरसकृत्॥७॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"उक्तोनाधिककालभागविवर राशेः कलाभिः (१८००)
र्हतं भक्तं प्राचि निजोदयने वरुणाशायां तदस्तेन च।
षष्टिघ्नं ग्रहसूर्य भुक्ति विवरेणाप्तं ग्रहे वक्रिते
भुक्तयैक्येन दिनानि तैरथ मुहुः साध्योग्रहास्तोदयः॥
कथितसमयांशैभ्योऽभीष्टा भवन्ति यदाधिका
विगत उदयो भावी चास्तस्तथा ऽपरथाऽल्पकैः।
उदयति सितो वक्रं यातश्चतुर्भिरिहांशकैः
समयजनितैरेवं केचिद् वदन्त्यपरे त्रिभिः॥"

आर्यभट ने महासिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"फलमिष्टांशा एतैरुक्तांशेभ्योऽधिकैरेष्यः।
अस्तो न्यूनैर्यातो व्यस्तो ऽस्माल्लक्षणादुदयः॥५॥
इष्टोक्तांशवियोगः कार्योऽथ प्रागिनादधिकः।
पश्चादूनो वा चेद्दृक्खेटः स्यात्तदा योगः॥६॥
तल्लिप्तौघं विभजेद्गत्योः स्वदृकाणसङ्गुणयोः।
तननै हृतयोर्युत्या वक्रिणि खटेऽन्यथा वियोगेन॥७॥
लब्धैर्दिवसैः कथितवदेष्यगतत्वं विचिन्त्यामिह।

सूर्यसिद्धान्त के उदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"एभ्योऽधिकैः कालभागैर्दृश्या न्यूनैरदर्शनाः।
भवन्ति लोके खचरा भानुभाग्रस्तमूर्तयः॥९॥
तत्कालांशान्तरकला भुक्त्यन्तरविभाजिताः।
दिनादि तत्फलं लब्धं भुक्तियोगेन वक्रिणः॥१०॥
तल्लग्नासुहते भुक्ती अष्टादशशतोद्धृते।
स्यातां कालगती ताभ्यां दिनादि गतगम्ययोः॥११॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहउदयास्ताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उक्तेष्टकालांशविशेषलिप्ता गत्योर्वियोगेन हृता दिनानि।
विलोमगेऽर्कग्रहभुक्तियुत्या गतानि गम्यानि च विद्धि युक्त्या॥७॥
अस्तेऽधिकाः स्युर्ध्रुवकालभागा गतानि विद्धीह दिनानि तानि।
अल्पास्तथा गम्य (दिना)नि तानि तथोदये गम्यगतानि तानि॥८॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ विशेषमाह—

प्राग्दृगग्रहश्चेदधिको रवेः स्यादूनोऽथवा पश्चिमदृग्ग्रहश्च।
प्रोक्तेष्टकालांशयुतेः कलाभि साध्यास्तदानीं दिवसा गतैष्याः॥११॥
तथा यदीष्टकालांशाः प्रोक्तेभ्योऽभ्यधिकास्तदा।
व्यत्ययश्च गतैष्यत्वे ज्ञेयोऽह्नां सुधिया खलु॥१२॥

विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि प्राग्दृग्ग्रह रवि से अधिक हो अथवा पश्चिम दृग्ग्रह रवि से अल्प हो तो इन इष्ट कालांश तथा पठित कालांश के योग की कला से गत-ऐष्य दिन संख्या ज्ञात करे तथा यदि प्राग्दृग्ग्रह से रवि अधिक हो अथवा पश्चिम दृग्ग्रह से रवि अल्प हो तो इष्ट कालांश यदि पठित कालांश से अधिक हो तो इन दोनों कालांशों के योग की कलाओं से (पूर्व श्लोक ८ की द्वितीय लाइन तथा श्लोक ९ की पूर्व लाइन) गत-ऐष्य दिवस का आनयन करे।

उपपत्ति— जो ग्रह पूर्व में उदित हो चुका है उसके असु रवि से अल्प होंगे तथा जो पश्चिम में उदित हो चुका है उसके अधिक होंगे। पूर्व दिशा के पठित कालांश अल्प होने से वह प्रदृश्य होगा। इसी प्रकार पश्चिम के अधिक होंगे। अतः रवि के पीछे पूर्व दिशा के पठित कालांश होंगे तथा पश्चिम दिशा के आगे होंगे। पूर्व में ग्रह के इष्ट कालांश यदि अल्प हो तो रवि के पीछे होंगे। अतः पृष्ठ गत होने से पठित कालांश से उनका अंतर कर के गणना करेंगे। जब पूर्व में रवि से अधिक दृग्ग्रह के जो इष्ट कालांश साधित करेंगे वे रवि के आगे होंगे। अतः अग्रगत तथा पृष्ठगत कालांशों का योग करने से वह उनके अन्तर के तुल्य होता है। अतः इष्टांशों को अल्प-अधिक कहा है वह गत-गम्य लक्षण से कहा गया है जिनको सजातीय बना लेते हैं।

पुनः यदि एक पीछे तथा एक आगे हो तो ये गत-गम्य लक्षण विपरीत होते हैं। अतः विपरीत होने से ये गत-ऐष्य होते हैं।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के ग्रहोदयास्ताधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ शृङ्गोन्नत्यधिकारः

इदानीं शृङ्गोन्नतिर्व्याख्यायते। तत्रादौ चन्द्रशङ्क्वर्थमाह—

मासान्तपादे प्रथमेऽथवेन्दोः शृङ्गोन्नतिर्यद्दिवसेऽवगम्या।
तदोदयेऽस्ते निशि वा प्रसाध्यः शङ्कुर्विधोः स्वोदितनाडिकाद्यैः॥१॥

चंद्रशंकु का साधन—

सूर्य-प्रभा टीका— मासान्त पाद अर्थात् चतुर्थ पाद (अर्थात् कृष्ण पक्ष की अष्टमी से आगे) अथवा प्रथम पाद (अर्थात शुक्ल पक्ष की एकम से आगे अष्टमी तक) में से किसी भी अभीष्ट दिवस को जब चंद्रशृंगोन्नति ज्ञात करनी हो तब उस मास पाद के उस अभीष्ट दिवस की रात्रि में सूर्योदय अथवा सूर्यास्त के समय अथवा रात्रि के किसी भी समय पर चंद्र सूर्य स्पष्ट करे। प्रथम चरण में उनसे अस्त काल में शृंगोन्नति ज्ञात करें, इसी प्रकार रात्रि में किसी समय पर तथा मासान्त पाद के उदयकाल पर चंद्र की शृंगोन्नति साधन करे। उदय से अभीष्ट घटी तुल्य काल अथवा जब अस्त हो वहाँ से ऊपर इष्ट घटी काल पर शृंगोन्नति साधित करे। वहाँ तात्कालिक सूर्य-चंद्र ज्ञात करके चंद्र की स्फुट क्रांति, उदयास्त लग्न, उन्नत घटिकादि उपकरणों से शंकु साधन करे।

उपपत्ति— चंद्रमा के आधे से अल्प शुक्ल भाग की कोटी (उपरी भाग) शृंगाकार होता है, तब वहाँ इष्ट काल पर कितनी शृंगोन्नति होगी यह ज्ञात करनी है। शृंगाकार भाग शुक्ल भाग के आधे से अल्प भाग में होता है। यह मासान्तपाद व प्रथम पाद में चंद्र के आधे से अल्प शुक्ल भाग में संभव होता है। द्वितीय तथा तृतीय (चरण) पाद में ब्रह्मगुप्तादि ने कृष्ण शृंगोन्नति साधित की है उससे भास्कराचार्य सहमत नहीं है। वे कहते हैं कि कृष्ण शृंगोन्नति मनुष्यों को नेत्रों से दृश्य नहीं होती अतः शुक्ल शृंगोन्नति ही प्रसिद्ध है। अतः आचार्य ने मासान्त पाद व प्रथम पाद के लिए कहा है। द्वितीय तृतीय पाद में चद्र बिंबार्ध कृष्ण होने से वहाँ कृष्ण शृंगोन्नति होती है। सूर्यास्त के पश्चात जितनी घटी में चंद्र अस्त होता है वह गत घटी है तथा सूर्यास्त से जितनी घटी पहले चंद्रास्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होता है वह ऐश्य घटी है। इसी प्रकार पूर्व क्षितिज में सूर्योदय से गत एवं ऐष्य घटी होती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चन्द्रशृंगोन्नत्यधिकार में यह कहा है कि रवि से जब तक प्रथम तथा चतुर्थ पद (भास्करोक्त) में चन्द्रमा रहे तब ही भुज, कोटि तथा कर्ण आदि होते हैं। लेकिन फिर भी उन्होंने द्वितीय तथा तृतीय पद में भी चंद्रमा के रहने पर भी चंद्रशृंणोन्नति, जो कृष्ण शृंगोन्नति होती है, साधन करने की रीति बताई है। ब्रह्मगुप्त ने शुक्ल शृंगोन्नति साधन के लिए मना नहीं किया है। दोनों शृंगोन्नति साधन की रीति बताकर उन्होनें अपनी विद्वद्ता का ही परिचय दिया है। यथा चं.श्रृंगो. अधिकार–

"एवं तावद्यावत् पदयोराद्यन्तयोः शशिनि चार्कात्।
रविरर्धचक्रयुक्तः कल्पयो द्वित्रिपदयोरर्कः॥१०॥"

आचार्य ने निम्नलिखित श्लोक में किसी पाद की चर्चा न करके दोनों ही (शुक्ल तथा कृष्ण) शृंगोन्नति का साधन किया है। यथा–

"रविचंद्रपातलग्नैः स्वक्रान्त्युदयात् स्वलग्नगतशेषाः।
घटिकाः खचरार्धास्तात् स्वेष्टौ रविशीतगू कृत्वा॥४॥"

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में "शेषयोश्च पदयोः सषड्ग्रहं भास्करं दिनकरं प्रकल्पयेदिति" प्रकार से ब्रह्मगुप्तोक्त बात कही है।

आर्यभट (द्वि.) ने भी चं. श्रृंगो. अधिकार में पूर्व कपाल तथा पश्चिम कपाल दोनों में ही शृंगोन्नति साधन के लिए कहा है। यथा–

"प्राक् शृंगोन्नतिमुख्यै कर्मणि सूर्यग्राविनोदयजौ॥
कृत्वा चन्द्रादीना बाणः साध्योऽस्तजौ पश्चात्॥१॥"

इनके कथम में भास्कराचार्योक्त समानता भी है।

लल्लाचार्य ने भी शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के शृंगोन्नत्यधिकार में शुक्ल शृंगोन्नति साधन के लिए ही कहा है। यथा–

"शुक्लपक्ष दिवसे द्वितीयके भास्वदस्तसमये प्रसाधयेत्।
तिग्मशीतकिरणौ परिस्फुटौ शृंगमानमवगन्तुमैन्दवम्॥६॥"

इस प्रकार सभी आचार्यो ने शुक्ल शृंगोन्नति का ही साधन किया है। भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त को व्यर्थ निशाना बनाकर अपनी विशिष्टता बताने का ही प्रयास किया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथार्कशङ्क्वर्थ शङ्कुतलार्थ चाह—

निशावशेषैरसुभिर्गतैर्वा यथाक्रमं गोलविपर्ययेण।
रवेरधः शङ्कुरथाक्षभाघ्नो नरोऽर्क १२ हृच्छङ्कुतलं यमाशम्॥२॥

रवि शंकु शंकुतल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— शृंगोन्नति काल पर चंद्र शंकु साधन करे तथा रवि का साधन करे। उदय तथा अस्त समय का पूर्ण रवि शंकु सिद्ध करे। यदि उसका पूर्व में उदय अस्त अनन्तर हो तो क्षितिज के नीचे रवि होता है, उसका शंकु कैसे साधित करे। उदय से पूर्व जितनी घटी पर शृंगोन्नति होती है वह रात्रि अवशेष होती है। सूर्य अस्त के पश्चात जितनी घटी में होती है वह गत रात्रि होती है।

(रात्रि के पूर्व भाग तथा पश्चात भाग में जब सूर्य क्षितिज के नीचे रहता है तब सूर्य क्षिजि से उन समयों पर समान स्थिति पर होता है जो सूर्यास्त तथा अग्रिम दिन के सूर्योदय से समान अंतर पर होते हैं।) रात्रि अवशेष असु अर्थात् सूर्यास्त के पश्चात् गत असुओं से तथा उदयात सूर्य को विपरीत गोल में मान कर (सूर्य उत्तर गोल में हो तो दक्षिण गोल में मान कर तथा दक्षिण गोल में हो तो उत्तर गोल में मान कर) त्रिप्रश्नाधिकार के श्लोक ५४ में कथित अनुसार शंकु साधित करने से वह रवि के नीचे स्थित शंकु होता है।

इस रवि के अधः स्थित शंकु को पलभा से गुणा करके १२ से विभक्त करने से (त्रिप्रश्नाधिकार में बताये अनुसार) शंकुतल प्राप्त होता है। यह दक्षिण होता है। अधोमुख शंकु से उत्तर शंकुतल प्राप्त होता है।

उपपत्ति— निशावशेष व गत असुओं का अधः स्थल से अभिप्राय होने से इन असुओं से शंकु साधन करने से रवि का अधोमुख शंकु होता है। इसको गोल विपरीत स्थिति प्रकार से साधित करते हैं। ग्रह स्थान से क्षितिज धरातल के ऊपर जो लंब होता है वह शंकु है। शंकु मूल से उदयास्त सूत्र पर्यन्त शंकुतल होता है। क्षितिज के ऊपर अहोरात्रवृत्त के दक्षिण की ओर होने से दिन में वह शंकुतल उदयास्त सूत्र से दक्षिण होता है और रात्रि में क्षितिज से नीचे अहोरात्रवृत्त के उत्तर की ओर होने से वह शंकुतल उदयास्त सूत्र से उत्तर होता है। यह शंकुतल भुज, शंकु कोटि तथा इष्ट हृति कर्ण होती है। इनसे एक अक्ष क्षेत्र बनता है। इस में अनुपात किया कि यदि बारह अंगुल शंकु में पलभा भुज होती है तो कलात्मक महा शंकु में कितनी? प्राप्तफल कलात्मक शंकुतल होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ भुजज्ञानार्थमाह—

सौम्यं त्वधोमुखनरस्य तलं प्रदिष्टं
स्वाग्रास्वशङ्कुतलयोः समभिन्नदिक्त्वे।
योगोऽन्तरं भवति दोरिनचन्द्रदोष्णो-
स्तुल्याशयोर्विवरमन्यदिशोस्तु योगः॥३॥
स्पष्टो भुजो भवति चन्द्रभुजाश इन्दोः शुद्धे भुजे रविभुजाद्विपरीतदिक्कः॥

भुज ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— रवि की अग्रा तथा उसका शंकुतल का एक दिशा में होने पर योग तथा भिन्न दिशा में होने पर अन्तर रविभुज होता है और चंद्र की अग्रा तथा शंकुतल का इसी प्रकार योगान्तर चंद्र भुज होता है। चंद्र तथा सूर्य के भुजों का एक दिशा में होने पर अन्तर तथा भिन्न दिशा में होने पर योग करने से शृंगोन्नति का स्फुट भुज होता है। चंद्र भुज की दिशा ही स्फुट भुज की दिशा माने। यदि चन्द्र भुज सूर्य भुज से अल्प हो तो स्पष्ट भुज की दिशा चंद्र भुज की दिशा से विपरीत होती है। तुल्य दिशा होने पर भी दोनों के अन्तर की भुज की दिशा चन्द्र भुज की दिशा होती है।

उपपत्ति— यहाँ भुज ज्ञात की गई है। पूर्वापर सूत्र तथा शंकु मूल का दक्षिणोत्तर अन्तर भुज होता है। पूर्वापर सूत्र तथा उदयास्त सूत्र का अंतर अग्रा होती है। यह अग्रा यदि उत्तर हो तो उदयास्त सूत्र और शंकु का अन्तर शंकुतल दक्षिण होने पर अग्रा में से कम करने से जो शेष रहता है वह अग्राखंड उत्तर भुज होता है। पूर्वापर सूत्र से उत्तर की ओर इतने अंतर पर शंकु रहता है, इसका यह अर्थ है। यह अन्तर करने से शंकुतल में से अग्रा घट जावे तो दक्षिण भुज होता है। यदि अग्रा दक्षिण हो तो शंकुतल भी दक्षिण होता है। इनका योग करने से समसूत्र तथा शंकु का अन्तर भुज दक्षिण होता है। इस प्रकार अधोमुख शंकु उत्तर गोल में अग्रा तथा शंकु तल का योग होता है। यहाँ शंकुतल उत्तर होता है। दक्षिण गोल में इनका अन्तर करते हैं। इस प्रकार चंद्र-सूर्य का भुज होता है। इनसे स्फुट भुज ज्ञात करते हैं। चंद्र-सूर्य का याम्योत्तर अंतर स्फुट भुज होता है। यह दोनों के भुज एक दिशा में होने पर अन्तर करने से तथा भिन्न दिशा में होने पर योग करने से प्राप्त होता है।

जैसे यदि चंद्र का उत्तर भुज १४० हो तथा रवि का ९० कला उत्तर हो। सूर्य तथा चंद्र भुज एक ही दिशा में होने से रवि भुज को चंद्र भुज में से घटाने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से ५० कला उत्तर भुज शेष बचा। इसी प्रकार ये दक्षिण भुज होने पर चंद्र भुज शेष दक्षिण भुज होगा। यदि रवि भुज में से चंद्र भुज घट जावे तो उत्तर दिशा में होने से पूर्वापर सूत्र से उत्तर में चंद्र शंकु ५० कला अन्तर पर होता है। रवि शंकु ९० कला अन्तर पर है अतः रवि शंकु से ४० कला दक्षिण की ओर चंद्र शंकु है।

अग्रा उत्तर होने पर धन तथा दक्षिण होने पर ऋण होती है। इसी प्रकार भुज होता है। लेकिन शंकु दक्षिण होने पर धन तथा उत्तर होने पर ऋण होता है। इन की सहायता से इस अध्याय में स्पष्ट भुज, सूर्य तथा चंद्र के भुज के एक दिशा में होने पर उनका योग तथा विपरीत दिशा में होने पर उनका अन्तर तुल्य परिभाषित किया गया है तथा स्पष्ट भुज की दिशा को चंद्र के भुज की दिशा में ही कहा है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्र शृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अग्रे पृथक् स्वशङ्कुतलतुल्ययुतिरन्यदिग्वियुतिः ॥६॥
पृथगन्तरसंयोगौ भुजो यतोऽर्कात् शशी समान्यदिशोः।$\frac{१}{२}$।"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्रशृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अग्राकानृतलयोः समाशयोः संयुतिर्वियुतिरन्यदिक्स्थयोः।
चन्द्रयोर्भवति बाहुरैन्दवोऽग्रैवभास्कर भुजस्ततोऽन्यदा॥८॥
तां भुजां दिनकरस्य कल्पयेत् तद्युते शशिभुजेऽन्यदिग्गते।
चन्द्रसूर्य भुजयोः समाशयोर्जायते यदवशेषमन्तरे॥१०॥
स्यात् स्फुटस्तु स भुजोऽत्र योगजे चन्द्रबाहुदिगथो वियोगजे।
शीतदीधितिभुजेऽधिकेऽपि वा व्यत्ययेन सवितुर्भुजेऽधिके॥११॥"

इदानीं कोटिमाह—

योऽधो नरो दिनकृतः स विधोरुदग्रशङ्कन्वितो मम मता खलु सैव कोटिः॥४॥

कोटि ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— रवि का अधः शंकु तथा चंद्रमा का ऊर्ध्व शंकु का योग आचार्य के मत से कोटि होती है।

उपपत्ति— सूर्य तथा चंद्र का याम्योत्तर अन्तर स्पष्ट भुज होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऊर्ध्वाधर अन्तर होता है वह कोटि होती है। उदयास्त समय पर यदि शृंगोन्नति होती है तो रवि शंकु से चंद्र शंकुतक कोटि होती है। जब रात्रि में सूर्य का अधः शंकु होता है, उसमें चंद्रमा का ऊर्धवशंकु युत करने से जो ऊर्ध्वाधर अन्तर होता है वह कोटि, उचित रूप से होती है। इसको दृष्टा व्यक्ति अपनी स्वस्थान वश शशि (चंद्र) का शृंग उन्नत देखता है। अतः स्वस्थित स्थान पर सम सूत्र से ऊर्ध्वरूप में कोटि होती है। भुज-कोटि से कर्ण ज्ञात करके, एक त्रिभुज बनता है। इस त्रिभुज क्षेत्र में ब्रह्मगुप्त ने सूर्यचंद्र की अन्तरार्धज्या के द्विगुणित को कर्ण मानकर उसके तथा भुज के वर्गों के अंतर के मूल को कोटि माना है। ब्रह्मगुप्त का यह त्रिभुज क्षेत्र ऊर्ध्वाधर न होकर तिरछा है। जिससे दृष्टा की दृष्टि पूरी तरह सम्मुख देखने के अनुसार दर्पण की तरह नहीं होती। अतः आचार्य के मत से ब्रह्मगुप्त की रीति सम्यक् नहीं है।

एक प्रकार से भास्कराचार्य की रीति से भी कोटि तथा कर्ण ऊर्ध्वाधर धरातल में नहीं है। पं.सुधाक द्विवेदी ने स्वकृत ''वास्तव-शृंगोन्नति'' ग्रंथ में आधुनिक विधि से शृंगोन्नति का साधन सही प्रकार से किया है। श्रीपति ने ब्रह्मगुप्त की विधि का ही अनुसरण किया है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्र शृंगोन्नत्यधिकार में भास्करोक्त विधि का संकेत दिया है जिसको आधार बना कर भास्कराचार्य ने इस विधि में रही कमी को सूर्य का अधः शंकु जोड़कर पूरी करने का प्रयास किया। यथा–

''कोटिमाहुरथ शङ्कुमैन्दवं तद्भुजाकृति युतेः पदं श्रुतिः॥११$\frac{१}{२}$॥''

अर्थात्— शुक्ल द्वितीया को सूर्यास्त समय पर तथा कृष्ण चतुर्दशी को सूर्योदय काल पर शृंगोन्नति का तत्कालिक चंद्र का शंकु कोटि होता है।

इस प्रकार भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त की रीति को निशाना बनाकर अपनी बात को श्रेष्ठ बताने का प्रयास किया है लेकिन अपनी बात के आधार रूप लल्लाचार्य की उक्ति के लिए मौन रहे हैं।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रशृंगोन्नत्यधिकार में भास्करोक्त संकेत प्राप्त होता है। यथा–

''वियुत सहिते रवीन्द्वोरेकान्यकपाल संस्थयोराद्यः।
रवि शशि दृक्शंक्वन्तरमन्योऽदृग्दृश्यशंक्वैक्यम्॥८॥
आद्यान्य वर्ग योर्युतिमूलं पूर्वापरा भुजात् कोटिः।$\frac{१}{२}$।''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ दिग्वलनार्थमाह—

दोः कोटिवर्गैक्यपदं श्रुतिः स्याद्भुजो रस ६ घ्नः श्रवणेन भक्तः।
प्रजायते दिग्वलनं हिमांशोः शृङ्गोन्नतौ तत् स्फुटबाहुदिक्कम्॥५॥

वलन व उसकी दिशा का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— भुज तथा कोटि के वर्गों के योग का मूल कर्ण होता है। भुज को छः से गुणा करके कर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल वलन होता है। स्फुट भुज (बाहु) की जो दिशा होती है वही वलन की दिशा होती है।

उपपत्ति—चंद्र बिंब के व्यासार्ध को छः अंगुल तुल्य कर्ण मान कर उसमें परिणत भुज की वलन संज्ञा होती है। अतः वलन के लिए अनुपात किया कि यदि इतने अंतर के कर्ण में भुज प्राप्त होता है तो छः अंगुल में कितना होगा? प्राप्तफल = $\frac{६ \times \text{स्प. भुज}}{\text{कर्ण}}$ = चंद्र बिंब वलन उत्पन्न होता है।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के चंद्र शृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"दिकसाम्ये विश्लेषोऽर्केन्दुक्रान्त्योरसाम्य ऐक्यंतत्।
व्यर्केन्दुज्याक्षज्याहतेर्गमौर्व्याप्त याम्यांशैः॥५॥
संस्कृत्य भजेद्व्यर्केन्दुज्यातांशेन चन्द्रबिम्बघ्नम्।
पारै भक्तं वलनं संस्कारवशेन दिक कल्प्या॥६॥"

यहाँ रवि भुज = रवि − अग्रा = ज्या रवि क्रांति।
चंद्र भुज = चंद्राग्रा ∓ चंद्र शंकुतल

अथ चन्द्रस्य परिलेखसूत्रानयनयोग्यतां कर्तुं संस्कारविशेषमाह—

चन्द्रस्य योजनमयश्रवणेन निघ्नो व्यर्केन्दुदोर्गुण इनश्रवणेन भक्तः।
तत्कार्मुकेण सहितः खलु शुक्लपक्षे कृष्णेऽमुना विरहितः शशभृद्विधेयः॥६॥

चंद्रमा के परिलेखनसूत्र को आनयन योग्य करने के लिए विशेष संस्कार—

सूर्य-प्रभा टीका— शृंगोन्नति कालिक चंद्र में से रवि को हीन करके शेष की ज्या को चंद्र के योजन कर्ण से गुणा करके रवि के योजन कर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल का धनु शुक्ल पक्ष में चंद्र में युक्त करने से तथा कृष्ण पक्ष में घटाने से परिलेखन सूत्र साधन के लिए चंद्रमा होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— परिलेख सूत्र चंद्रमा की शुक्लता पर आधारित होता है। शुक्ल भाग का उपचय चंद्र सूर्य के अंतर के उपचय के अनुसार होता है। चंद्र बिंबार्ध को छः अंगुल पूर्व में कल्पित करने के लिए कहा है। चंद्र-शुक्ल का अंतर १५ अंश होने पर एक अंगुल शुक्ल भाग होता है। ३० अंश होने पर दो अंगुल तथा इसी प्रकार ९० अंश होने पर छः अंगुल शुक्ल भाग होता है। आचार्य कहते हैं कि इस प्रकार बहुत से (पूर्ववर्ति) आचार्य चंद्र के शुक्ल भाग का मान ज्ञात करते थे। लेकिन उनकी यह विधि स्वल्पांतर है, क्योंकि ८५°।४५' तुल्य व्यर्क चंद्र होने पर ही बिंबार्ध शुक्ल हो जाता है। आचार्य ने इसके लिए विस्तार से गोलाध्याय के शृंगोन्नति वासना के श्लोक १ में कहा है। आचार्योक्त उपपत्ति अनुसार चित्र बनाया।

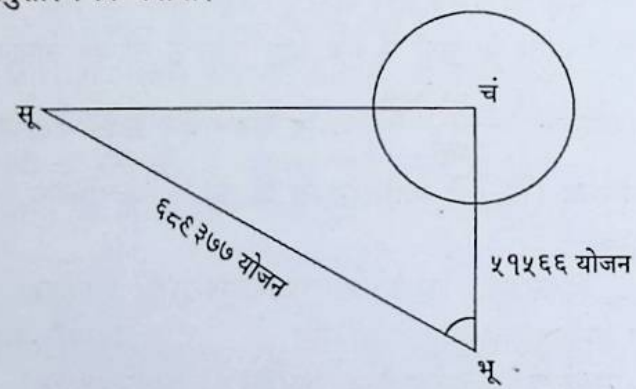

चित्र में सू= सूर्य, चं= चंद्र तथा भू= भूमि की स्थिति बताई गई है। व्यर्केन्दु= चं − सू = कोण सू भू चं होता है। भास्करोक्त भू सू= ६८९३७७ योजन तथा भू चं= ५१५६६ योजन।

$$\text{अतः कोज्या } \angle \text{ सू भू चं} = \frac{\text{भू चं}}{\text{भू सू}} = \frac{५१५६६}{६८९३७७} = ०.०७४८$$

अतः कोण सू भू चं= ८५°४३' इसको भास्कराचार्य ने ८५°४५' ग्रहण किया है।

अतः भास्कराचार्य ने (९०° − ८५°४५'') ४°१५' चंद्रमा में शुक्ल पक्ष में युक्त करने के लिए कहा है तथा कृष्ण पक्ष में घटाने के लिए कहा है।

अनुपात किया कि यदि रवि योजन कर्ण में त्रिज्या तुल्य कला होती है तो चंद्र के नीचे स्थित योजन तुल्य रविकर्ण में कितनी होगी? इस प्रकार प्राप्त कला ज्या रूप होती है। अब दूसरा अनुपात किया कि यदि त्रिज्या तुल्य व्यर्केन्दु

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की ज्या इतनी कला होती है तो अभीष्ट में कितनी होगी? इस प्रकार करने से पूर्व अनुपात में त्रिज्या से गुणा करने से यही हर में होने से परस्पर इसका नाश हो जाता है तथा चंद्र कर्ण से गुणा तथा रविकर्ण हर में प्राप्त होता है। यही श्लोक में कहा गया है। इस प्रकार $\frac{\text{व्यर्केन्दु ज्या} \times \text{चंद्र कर्ण}}{\text{सूर्य कर्ण}}$ प्राप्त होता है। इसके चाप तुल्य शुक्ल पक्ष में चंद्रमा में युक्त करने से तथा कृष्ण पक्ष में हीन करने से वह चंद्र शुक्ल भाग साधन योग्य होता है। इस धनु का परम मान ४°१५' होता है।

भास्कराचार्य ने ४°१५' की त्रुटि सही ज्ञात की लेकिन जो सूत्र बनाया वह शुद्ध नहीं था। उससे वेध तुल्य शुद्ध मान प्राप्त नहीं होते।

विशेष— शुक्ल भाग आनयन के आधुनिक गणित द्वारा प्राप्त सूत्र के तुल्य ही शुद्ध सूत्र **लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद** गंथ के चंद्रशृंगोन्नत्यधिकार में भास्कराचार्य से बहुत पूर्व ही बताया था। लेकिन भास्कराचार्य ने लल्लाचार्य तथा ब्रह्मगुप्तोक्त कथनों को त्रुटिपूर्ण सिद्ध करने की मानसिकता के कारण लल्लाचार्य के शुद्ध सूत्र की अवहेलना करके अपना सूत्र कहने की भूल की। यथा–

"रविशीतकरान्तरांशजीवा विपरीता शशिखण्डताडिता वा।
विहृता त्रिभ जीवया सितं स्याच्छशलक्ष्माङ्गवदङ्गुलानि तस्मिन्॥१४॥"

सूत्र—

$$\frac{\text{चंद्र त्रिज्या (अंगुलात्मक) (त्रिज्या} - \text{व्यर्केन्दु कोज्या)}}{\text{त्रिज्या}} = \text{शुक्ल भाग}$$

$$\text{शुक्ल भाग} = \frac{\text{चंद्र त्रिज्या} \times \text{व्यर्केन्दु उत्क्रमज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के अध्याय ६ में यही सूत्र दिया है। यथा–

"चन्द्र भानुविवरोत्क्रमज्ययाचन्द्रबिम्बमभिहत्य भाजयेत्॥५॥
षण्णगाष्टरससंख्यया सितं नित्यमेव गणकाः प्रजानते।
चन्द्रभानुविवरं पदाधिकं स्यात्तदा क्रमगुणेन युक्त्या॥६॥
त्रिज्यया सितविधिर्विधीयते पौर्णमास्यपरतोऽसित तथा।
सूर्यचन्द्रविवरांशजीवया चोत्क्रमक्रमवशात्सितं विदुः॥७॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यहाँ आचार्य ने चांद्र मास के चारों पदों में शुक्ल तथा कृष्ण शृंगोन्नति साधन के सूत्र कहे हैं। यथा–

(१) शुक्ल पक्ष में—

$$\text{चंद्र का शुक्ल भाग} = \frac{\text{उत्क्रमज्या (चं. – सू.)} \times \text{चंद्र व्यास}}{६८७६}$$

(चं – सू) तीन राशि से अल्प होने पर अर्थात् प्रथम पाद में यह सूत्र है।

(चं. – सू) तीन राशि से अधिक होने पर अर्थात् द्वितीय पाद में—

$$\text{चंद्र का शुक्ल भाग} = \frac{\text{त्रि} + \text{ज्या (चं. – सू – ९०°)} \times \text{चंद्र व्यास}}{६८७६}$$

(२) कृष्ण पक्ष में—

छः राशि से अधिक (चं. – सू) होने पर अर्थात् तृतीय पाद में—

$$\text{कृष्ण भाग} = \frac{\text{उत्क्रमज्या (चं. – सू – १८०°)} \times \text{चंद्र व्यास}}{६८७६}$$

नौ राशि से (चं – सू) अधिक होने पर अर्थात् चतुर्थ पाद में—

$$\text{कृष्ण भाग} = \frac{\text{त्रि} + \text{ज्या (चं. – सू – २७०°)} \times \text{चंद्र व्यास}}{६८७६}$$

भास्कर प्रथम ने लघुभास्करीय के अध्याय ६ में उपरोक्त सूत्र ही कहा है। यथा—

"अंतरांशोत्क्रमां जीवा स्फुटेन्दुव्यासताडिताम्।
षण्णगाष्टरसैर्हृत्वा सितमानं पदाधिके॥६॥
क्रमज्यामधिकोत्पन्नां त्रिज्यया योज्य तत् सितम्।
आनयेदसितेऽप्येवमुत्क्रमतोऽसितम्॥७॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रशृंगोन्नत्यधिकार में उपरोक्त आचार्यों के अनुरूप कहा है। यथा–

"व्यर्केन्दुदलभुजांशाः शशिमानगुणाः सितं नवतिभक्ताः।
द्विगुणांशोत्क्रमजीवा तावद्यावन्नवतिरंशाः॥११॥
नवतेरधिकांशानां क्रमज्यया संयुतोत्क्रमा त्रिज्या।
चन्द्रप्रमाणगुणिता द्विगुणव्यासार्ध भक्ताऽन्यत्॥१२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रथमं शुक्लं रात्रौ दिवसेऽन्यत् सन्ध्ययोस्तदैक्यार्धम्।
कर्णो ज्या रविदिग् भवति तस्य सितं श्रवणगत्या च॥१३॥''

अथ परिलेखसूत्रमाह—

व्यर्केन्दुकोट्यंशशरेन्दु १५ भागो हारोऽमुना षट्कृति ३६ तो यदाप्तम्।
द्विष्ठं च हारोनयुतं तदर्धे स्यातां क्रमादत्र विभास्वभाख्ये॥७॥

परिलेखन सूत्र—

सूर्य-प्रभा टीका— चंद्र-सूर्य के अंतरांशों की कोटी अंशों के १५वें भाग (हार) से ३६ को विभक्त करने से प्राप्तफल को दो स्थानों पर स्थापित करके पूर्वोक्त हार की सहायता से संक्रमण गणित के द्वारा कोटि (विभा) तथा कर्ण (स्वभा) को ज्ञात कर सकते हैं।

उपपत्ति— परिलेखन सूत्र का स्वरूप बताते हैं। व्यर्केन्दु भुजांशों को १५ से विभक्त करने से अंगुलात्मक शुक्ल भाग पूर्वोक्त प्रकार से प्राप्त होता है। चंद्र (चं.) तथा भूमि को लिखकर वहाँ यथोक्त (व ल) वलन देकर (के चं व) वलन सूत्र में शुक्ल पक्ष में शुक्ल भाग (द व) देकर उसके आगे चिन्ह (द) लगावे तथा वलन सूत्र से तिर्यग्रेखा (अ ब) खेंचे जो चंद्रमंडल वृत्त को अन्य दो बिंदुओं अ ब पर काटे। इन (अ द ब) तीनों चिन्हों से होते हुए एक वृत्त बनावे जिसको परिलेखन वृत्त कहते हैं। इसका के अ = के ब = के द व्यासार्ध होता है उसको परिलेखन सूत्र कहते हैं। परिलेखन वृत्त के अन्दर ही वलन सूत्र व'ल' = वल होता है। वलन रेखा से चंद्र बिंब पर व' बिन्दु बनावे तथा उससे होते हुए के व' चं व सू रेखा खेंचे।

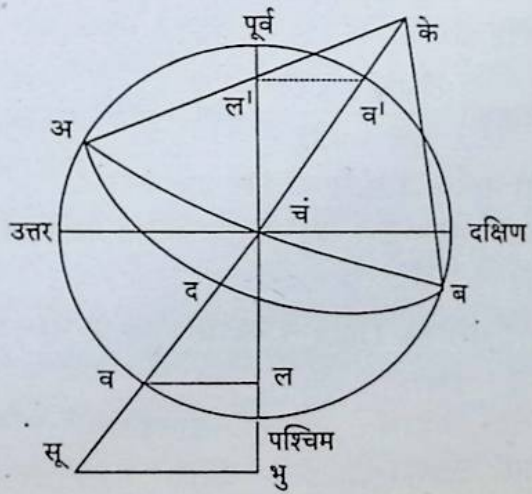

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समकोण त्रिभुज के चं अ में कोण चं समकोण है तथा अ के = द के कर्ण है, अ चं भुज है तथा के चं कोटि है। अतः चंद्र केन्द्र चं तथा शुक्ल चिन्ह द का अंतर (द चं), कोटि (के चं) तथा कर्ण (के द) का अन्तर है।

आचार्योक्त लीलावती के सूत्र अनुसार "भुजाद्वर्गितात् कोटिकर्णान्तरान्तम् द्विधा कोटि कर्णान्तरेणोन युक्तम्। तदर्धे क्रमात्कोटिकर्णो भवेताम् इंदधीमांताऽऽवेद्य सर्वत्र योज्यम्" इस श्लोक के अनुसार

$$\frac{\text{भुज}^२}{\text{कर्ण} - \text{कोटि}} = \text{कर्ण} + \text{कोटि}$$

क्योंकि भुज^२ = कर्ण^२ − कोटि^{२} होता है।

इस प्रकार इनकी सहायता से कोटि तथा कर्ण ज्ञात किये जा सकते हैं।

तथा शुक्ल भाग = $\frac{९०^\circ - \text{ज्या (चं} - \text{सू)}}{१५} = ६ - \frac{\text{ज्या (चं} - \text{सू)}}{१५}$ आचार्योक्त अनुसार।

यहाँ चन्द्रमा का व्यासार्ध चंदव= ६ है। अतः $\frac{\text{ज्या (चं} - \text{सू)}}{१५}$ = व द = शुक्ल भाग। इसी प्रकार चं द= चं व − व द= चंद्र व्यासार्ध − $\frac{\text{ज्या (चं} - \text{सू)}}{१५}$ आचार्योक्त श्लोक।

कोटि (के द) − शुक्ल भाग (व द) =चंद्र बिंबार्ध (वचं) है। यह कोटि तथा कर्ण का अन्तर है।

सूत्र के अनुसार $\frac{(\text{व चं} = ६)^२}{\text{कर्ण} - \text{कोटि}} = \text{कर्ण} + \text{कोटि}$

इनके द्वारा कर्ण तथा कोटि का मान ज्ञात करे।

आगे के दो श्लोक ८-९ की व्याख्या से यह परिलेखन चित्र और भी स्पष्ट हो जावेगा।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के चंद्रशृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा−

"शुक्लोन मण्डल दलेनानष्टेनेन्दुमण्डलार्ध कृतिम्।
विभजेत् फलमविनष्टाढ्योनं दलितं श्रवण कोटी॥८॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चंद्रशृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त सूत्र ही कहा है। यथा–

"शशिमान वर्गपादो मानार्धसितान्तरार्धभक्तयुतः।
परिलेखसूत्रमस्मात् शुक्लेऽर्धाल्पे च परिलेखः॥१४॥"

यहाँ आचार्योक्त सूत्र भास्कोक्त विधि से स्फुट हो जाता है।

अथ परिलेखमाह—

सूत्रेण बिम्बमुडुपस्य षडङ्गुलेन कृत्वा दिगङ्कमिह तद्वलनं ज्यकावत्।
मासस्य तुर्यचरणे वरुणेशदेशात् प्राग्भागतः प्रथमके सुधिया प्रदेयम्॥८॥
केन्द्राद्विभां तद्वलनाग्रसूत्रे कृत्वा विभाग्रे स्वभया च वृत्तम्।
ज्ञेयेन्दुखण्डाकृतिरेवमत्र स्यात् तुङ्गशृङ्गं वलनान्यदिक्स्थम्॥९॥

परिलेखन—

सूर्य-प्रभा टीका— समान की हुई भूमि पर छः अंगुल सूत्र से एक वृत्त बनाकर उसमें पूर्वादि दिशायें अंकित करे तथा उसको चंद्रमा कल्पित करे तथा पूर्व (श्लोक ५) कथित प्रकार से वलन साधन करके इसको ज्या रूप में मासान्त (चतुर्थ पाद) में पश्चिम चिन्ह से तथा प्रथम चरण में पूर्व दिशा से देवें। चित्र में व ल तथा व' ल' अनुसार। चंद्र केंद्र (चं) से व' वलन के ऊपर से जाते हुए सूत्र में चंद्र गोल के बाहर की ओर चंद्र केंद्र से विभा (कोटि) चं के तुल्य देवें। विभा के अग्र चिन्ह (के) से स्वभा (कर्ण) तुल्य सूत्र से वृत्त बनावे इससे चंद्रमा की खंडित हुई आकृति अ द ब से चंद्रमा की शेष आकृति अ व ब द प्राप्त होती है जो ऊपर नीचे उन्नत तथा नत होती है। समान भूमि पर चंद्र बिंब खंड बनाया है उसमें जो शृंग उन्नत होता है वह कितना है उसकी संख्या ज्ञात करे। उच्चशृंग वलन की दिशा से दूसरी दिशा की ओर होता है। यदि दक्षिण वलन हो तो उत्तर शृंगउन्नत होता है तथा उत्तर वलन होने पर दक्षिण शृंग उन्नत होता है।

उपपत्ति— आचार्य ने जलमय गोलाकार चंद्र के शुक्लत्व का कारण तथा उसको उपचय अपचय होने का कारण बताया है जो यहाँ बताते हैं। आचार्य ने गोलाध्याय में शृंगोन्नति वासना में इस प्रकार कहा है। यथा—

"तरणि किरण सङ्गादेव पीयूषपिण्डो दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिका भिश्चकास्ति।
तदितरदिशि बालाकुन्तलश्यामलश्रीर्घट इव निज मूर्तिच्छाययैवातपस्थ॥१॥"

हरिहर भगवान से ब्रह्मा ने वर प्राप्त करके सहर्ष पुत्र की कामना की तो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उनके त्रिनेत्र से पिघले हुए जल बिंदुओं को इकट्ठा करके पितामह ने आकाश में निवेशित कर दिया। यह स्मृति-पुराणों में हम सुनते हैं। अतः आगम प्रमाण से यह चंद्रमा जलमय है। इसके ऊपर सूर्य भ्रमण करता है। अतः यह जिस जिस दिशा में सूर्य के सामने अपनी कक्षा में भ्रमण करता है उस-उस ओर का हिस्सा सूर्य की रोशनी से दिप्तिमान होता है तथा उसके दूसरी ओर स्त्री के काले बालों की तरह श्याम होता है। स्त्री के गोलाकार केश बन्ध की उक्ति आचार्य ने सम्मान सूचक रूप में की है। स्त्री के बालों की श्यामलता उसके श्री की शोभा को बढ़ा देती है। चंद्र की श्यामलता निजमूर्ति की छाया के रूप में है।

इसी प्रकार जैसे घड़े का जो अर्धभाग सूर्य की दिशा की ओर रहता है वह उज्ज्वल होता है तथा दूसरी ओर का भाग श्यामल दिखाई देता है, इसी प्रकार चंद्र होता है। चंद्रमा तथा सूर्य जब एक राशि में स्थित होते है तब वह सूर्य के नीचे स्थित होता है अतः उसका ऊपर का अर्धभाग शुक्ल रहता है तथा नीचे की ओर का अर्ध भाग मनुष्यों को कृष्ण दिखता है। फिर आकाश का आधा भाग अन्तरित करके उनकी स्थिति परिवर्तित हो जाती है तब पूर्णमासि को ऊपर का अर्धभाग कृष्ण तथा नीचे का अर्ध भाग शुक्ल दिखता है। इस प्रकार ८५°४५' सूर्य से तिर्यक स्थित जब चंद्रमा होता है तब उसका ऊपर का तथा नीचे का आधा भाग शुक्ल तथा कृष्ण होता है। इस प्रकार सूर्य चंद्र का दक्षिणोत्तर वलन दिग्वलन होता है। इसको ज्ञात करने के लिए भुजकोटि का साधन करते हैं। इसकी उपपत्ति गोलाध्याय श्रृङ्गो. वासना में बताई गई है यथा–

"यद्याम्योदक् तपनशशिनोरन्तरं सोऽत्र बाहुः
कोटिस्तूर्ध्वाधरमपि तयोर्यच्च तिर्यक् सकर्णः।
दो र्मूलेऽर्कः शशिदिशि भुजोऽग्राच्च कोटिस्तदग्रे
चन्द्रः कर्णो रविदिगनया दीयते तेन शौक्ल्यम्॥५॥"

रवि चंद्र का दक्षिणोत्तर अंतर भुज है। सूर्य से चंद्रमा जिस दिशा में होता है वह उसकी दिशा है। इसकी ऊर्ध्वाधर अन्तर कोटि होती है। इन पर जो तिर्यक रूप है वह कर्ण है। चंद्र बिंबार्ध मान छः अंगुल को कर्ण मान कर भुजको उससे परिणत करने से भुज की वलन संज्ञा करते हैं। मास के प्रथम चरण में शृंगोन्नति होती है। दक्षिण वलन तीन अंगुल होता है तब वहाँ पूर्वाभिमुख चंद्र शृंगोन्नति होती है। अतः चन्द्रमध्य (केंद्र) से पूर्वाभिमुख विभा देनी चाहिये। इसके आगे चंद्र बिंब जहाँ खंडित हो वहाँ चंद्र का शृंग होता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। अतः पूर्वभाग का वलन दक्षिण देवे। मासान्त पाद में पश्चिम भागाभिमुख शृंग होता है। अतः वहाँ पश्चिम भाग में वलन देवे। अतः श्लोक में "मासस्य तर्युचरणे वरुणेशदेशादिति।" कहा गया है।

अतः चंद्र केंद्र से वलनाग्र तक गये हुए सूत्र में विभा देने से वह पूर्व प्रतिपादित त्रिभुज की कोटि होती है तथा स्वभा कर्ण होता है। अतः वहाँ विभाग्र से वृत्त खेंचने से चंद्र के शुक्ल भाग की सम्यग् आकृति प्राप्त होती है। जिस दिशा में चंद्रमा से रवि होता है उस दिशा में शृंग उन्नत होता है। जो पूर्व में वलन प्राप्त किया है वह चंद्र की दिशा है। चंद्रमा से सूर्य विपरीत दिशा में होता है।

अतः आचार्योक्त 'स्यात् तुङ्ग शृंग वलनान्यदिक्स्यमिति आदि' उपपन्न हुए।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के चन्द्रशृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"रविदृष्टं सितमर्धं कृष्णमदृष्टं यथाऽऽतपस्थस्य।
कुम्भस्य तथासन्नं रवेरधः स्थस्य चन्द्रस्य॥२॥
सितमुन्नतं यतोऽर्कः सितासितं शुक्लपक्षान्ते।
अर्वागर्धं पश्चाद् गणिताच्छृङ्गोन्नतिस्तस्मात्॥३॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"धाम्ना धामनिधेरयं जलमयो धत्ते सुधादीधितिः
सद्यः कृत्तमृणालकन्दविशदच्छायां विवस्वद्दिशि।
हर्म्ये धर्मघृणेः करैर्घट इवान्यस्मिन् विभागे
पुनर्वाला कुन्तल कालता कलयति स्वस्यास्तनोश्छायया।
पाथोमये शीतकरेऽर्करश्मयो विमूर्छिताघ्नन्ति तमस्विनीतमः।
निकेतनाभ्यन्तरगं तमः स्वयं यथा त एवामल दर्पणाश्रिताः॥
यस्यां सहस्रकिरणो दिशि तत्र नूनमालोक्यते शशधरस्य सितोन्नतत्वम्।
पक्षान्तयोरपि सितासितता यतोऽस्य शृंगोन्नतिः खलु ततो गणितावगम्या॥"

वराहमिहिर ने इन्हीं की पुनरुक्ति की है। यथा वृहदसंहिता—

"सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम्।
क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मन्दिरस्यान्तः॥"
प्रतिदिवसमेवमर्कात्स्थान विशेषेण शौक्त्यपरिवृद्धिः।
भवति शशिनोऽपराह्णे पश्चाद्भागे घटस्येव॥४॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्य ने जल को यहाँ जल पिण्डात्मक कहा है।

लल्लचार्य ने भी शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चंद्र शृंगोन्नत्यधिकार में आचार्योक्त प्रकार सुन्दर उक्ति कही है। यथा–

"बाह्वङ्गुलानि यत एव निवेशितानि शृंग तु तन्नमति शेषमिहोन्नतं स्यात्।
शुक्लेऽर्धबिम्बसदृशे दलितेऽर्धमौर्व्या लाटीललाटतटरूपधरः शशाङ्क॥१६॥"

आचार्य ने चंद्रमा की उक्ति अपने लाट देश की सुन्दरी स्त्री के सुन्दर मुख से की है।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के छेद्यकाधिकार आचार्योक्त परिलेखन कहा है। यथा–

"शृंगोन्नतौ हिमांशोर्मण्डलखण्डेन मण्डलं कुर्यात्।
सितपक्षे प्राग्वलनं दद्यादसिते दिगङ्कितं पश्चात्॥१०॥
विन्दोर्वलनगसूत्रे कोटिं दद्यात्तदग्रतो वृत्तम्।
कर्णजसूत्रे विलिखेत् संस्था स्याच्छृङ्गयोरिन्दोः॥११॥
शशिशुक्ले त्वऽर्धोने साध्या शृंगोन्नतिर्गणकैः।
बिम्बादौ परिलेखेऽङ्गुलानि लिप्तासमान्यत्र॥१२॥"

उपपत्तौ हि क्वचिदमूर्त्तं प्रमेयं परब्रह्मवत् तज्ज्ञानमेव स्वसंवेद्यम्। अतोऽत्र मन्दावबोधनेन स्वमतं द्रढयितुं परमतनिराकरणाय सुगणकानभ्यर्थ्य दृष्टान्तमाह—

यौ ब्रह्मगुप्तकथितौ किल कोटिकर्णौ ताभ्यां कृते तु परिलेखविधौ यथोक्ते।
नास्तीव भाति मम दृग्गणितैक्यमत्र शृङ्गोन्नतौ सुगणकैर्निपुणं विलोक्यम्॥१०॥
यत्राक्षोऽङ्गरसा ६६ लवाः क्षितिजवत् तत्रापवृत्ते स्थिते
मेषादावुदयं प्रयाति तपने नक्रादिगेन्दोर्दलम्।
याम्योदग्वलयेन खण्डितमिव प्राच्यां सितं स्यात् तदा
नैतद्ब्रह्ममतेऽस्य हि त्रिभगुणो बाहुश्च कोटिस्तदा॥११॥
शृङ्गे समे स्तो यदि बाह्वभाव ऊर्ध्वाधरे ते यदि कोट्यभावः।
त्रिज्यासमौ तस्य च कोटिबाहू किं वा ममानेन नमो महद्भ्यः॥१२॥

स्वमत को दृढ़ता प्रदान करने के लिए आचार्य विद्वान गणितज्ञों के समक्ष दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— ब्रह्मगुप्त कथित कोटि एवं कर्ण के द्वारा यथोक्त परिलेख करने पर आचार्य को गणितागत तथा दृग्वेध द्वारा श्रृगोन्नति को देंखने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में एकता अनुभव नहीं हुई अर्थात् उनमें अन्तर अनुभव हुआ है। अतः आचार्य विद्वान गणितों को इसकी सत्यता को परखने के लिए आह्वाहन करते हैं।

जिस देश में ६६ अंश अक्षांश हैं वहाँ उदय काल पर जब मेषारंभ पूर्व क्षितिज पर स्थित होता है तब समस्त राशियाँ क्षितिजस्थ होती है अर्थात् तब अपमण्डल क्षितिज होता है तथा उस समय चंद्रमा मकरारंभ पर होता है। ऐसी स्थिति में चन्द्रमा को याम्योत्तर वृत्त काटता हुआ होता है तथा चंद्रमा का पूर्व की ओर का भाग शुक्ल होता है। लेकिन ब्रह्मगुप्त की परिभाषानुसार यह ऐसा नहीं होता क्योंकि तब उनके अनुसार बाहु तथा कोटि दोनों त्रिज्या के तुल्य होती है। यदि बाहु (भुज) का अभाव हो तो शृंग समतल (क्षितिज धरातल के समानान्तर) होते हैं और यदि कोटि का अभाव होता है तो शृंग ऊर्ध्वाधर होते हैं। अतः ब्रह्मगुप्तानुसार यहाँ भुज-कोटि दोनों त्रिज्या के तुल्य होने से आचार्य के उक्त कथन के तथा सत्यता के विपरीत ब्रह्मगुप्त का निष्कर्ष होता है कि यहाँ शृंग ऊर्ध्वाधर नहीं हो सकते। अतः आचार्य महान गणितज्ञों को नमस्कार प्रेषित करते हैं।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के शृंगोन्नत्यधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१०

अथ ग्रहयुत्यधिकारः

अथ ग्रहयुतिर्व्याख्यायते। तत्रादौ ग्रहाणां मध्यमबिम्बान्याह—

व्यङ्घ्रीषवः ४।४५ सचरणा ऋतवः ६।१५ त्रिभाग-
युक्ताद्रयो ७।२० नव ९ च सत्रिलवेषव ५।२० श्च।
स्युर्मध्यमास्तनुकलाः क्षितिजादिकानां
त्रिज्याशुकर्णविवरेण पृथग्विनिघ्न्यः॥१॥

ग्रहों के मध्यम बिंबमान—

सूर्य-प्रभा टीका— मंगल का मध्यम बिंब मान ४।४५ कला, बुध का ६।१५ कला, गुरु का ७।२० कला, शुक्र का ९।० कला तथा शनि का ५।२० कला होता है। इनको पृथक-पृथक त्रिज्या और शीघ्रकर्ण के अन्तर से गुणादि करने के संबंध में आगे बताया गया है जिससे इनके शुद्ध मान ज्ञात होते हैं।

उपपत्ति— चंद्रग्रहणाधिकार के श्लोक ५ में बताये अनुसार ग्रहों के कोणिय व्यास ज्ञात कर सकते हैं। आगे बताई गई विधि द्वारा इन मानों को शुद्ध करना बताया है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में जो सूत्र दिया है उसके अनुसार मंगलादि ग्रहों के कलात्मक मान भास्कराचार्य के आसन्न ही प्राप्त होते हैं। यथा—

"भुजलिप्ता भक्ताः कुजादि दृश्यांश संमितर्लब्धाः।
मध्यममानकलाः स्युः कुजबुध गुरु शुक्ररविजानाम्॥२०॥"

इस प्रकार मंगल का मध्यम बिंब मान = $\frac{८१}{१७}$ = ४।१६ कला, बुध = $\frac{८१}{१३}$ = ६।१४ कला, गुरु = $\frac{८१}{११}$ = ७।२२ कला, शुक्र = $\frac{८१}{९}$ = ९ कला, शनि = $\frac{८१}{१५}$ = ५।२४ कला होता है। ये मान भास्करोक्त मानों के आसन्न

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही हैं। दोनों में, सूत्र में उपयोग किये गये अंक मानों की कुछ स्थूलता के कारण तथा नंगी आंखों से वेध करने के कारण थोड़ा सा अंतर पड़ता है। इसी श्लोक में आचार्य ने इनको आगे बताई गई विधि से शुद्ध करने के लिए कहा है।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में ग्रहों के मध्यम कला बिंबमान भास्करोक्त मानों के आसन्न हैं। गुरु तथा शनि के बिंब मान भास्करोक्त से ५ विकला अल्प प्राप्त होते हैं।

"पेधा रेमा रुधा लेता रोटा घभक्ताः स्युः।
भौमान्मण्डललिप्ता मध्या वक्ष्ये स्फुटीकरणम्॥१॥"

इसके अनुसार बिंबमान मंगल = $\frac{\text{पेधा}=१६}{४}$ = ४।४५; बुध = $\frac{\text{रेमा}=२५}{४}$ = ६।१५; गुरु = $\frac{\text{रुधा}=२६}{४}$ = ७।१५; शुक्र = $\frac{\text{लेता}=३६}{४}$ = ९; शनि = $\frac{\text{रोटा}=२१}{४}$ = ५।१५ कलादि होते हैं।

आचार्य ने इन बिंब कलाओं के स्पष्ट मान आगे के श्लोक में ज्ञात करना बताया है।

अथासां स्फुटीकरणमाह—

त्रिघ्न्या निजान्त्यफलमौर्विकया विभक्ता
लब्धेन युक्तरहिताः क्रमशः पृथक्स्थाः।
ऊनाधिके त्रिभगुणाच्छ्रवणे स्फुटाः स्युः।
कल्प्यं खलु त्रिकलमङ्गुलमत्र बिम्बे॥२॥

इन मानों का स्फुटीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रहों के इन मध्यमान कलाओं को उनके (पृथक-पृथक) त्रिज्या और शीघ्रकर्ण के अन्तर से गुणा करके उनके शीघ्र अन्त्यफलज्या के तीन गुणे से विभक्त करने से प्राप्त फल को पृथक्स्थ इन मध्यम मानों में यदि त्रिज्या से शीघ्र कर्ण अल्प हो तो युत करने से तथा अधिक हो तो घटाने से स्पष्ट बिंब कला प्राप्त होती है। चाप की तीन कला को एक अंगुल तुल्य मानने से अंगुलात्मक बिंब होता है।

उपपत्ति— ग्रह (मन्दस्पष्ट) का जब त्रिज्या तुल्य शीघ्रकर्ण होता है तब वह अपनी मध्यम दूरी स्थान पर स्थित होने से उसका बिंब मान मध्यम होता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। त्रिज्या से अल्प कर्ण होने पर वह पृथ्वी के समीप स्थित होने से उसका बिंब उपचित (बड़ा) होता है तथा त्रिज्या से अधिक कर्ण होने पर ग्रह पृथ्वी से दूर स्थित होने से उसका बिंब अपचय (छोटा) होता है। इस प्रकार ग्रह बिंब का परम उपचय उसके बिंबमान का तीसरा ($\frac{१}{३}$) भाग तुल्य होता है तथा इतना ही परम अपचय होता है। इनके बीच में अनुपात करते हैं। यदि त्रिज्या से अल्प अन्त्यफलज्या के तुल्य कर्ण उपलब्ध होता है तब वह ग्रह परम स्थूल होता है तथा त्रिज्या से अधिक अन्त्यफल ज्या तुल्य कर्ण यदि उपलब्ध होता है तब वह ग्रह परम सूक्ष्म होता है। इस प्रकार परम सूक्ष्म और मध्यम तथा परमस्थूल और मध्यम का अन्तर मध्यम बिंब का तीसरा भाग होता है, यह उपलब्ध होता है। अतः इतने अंतर के लिए अनुपात करते हैं कि यदि अन्त्यफलज्या तुल्य त्रिज्या और शीघ्रकर्ण के अन्तर में बिंब का तीसरा भाग उपलब्ध होता है तो अभीष्ट अन्तर में क्या होगा? त्रिज्या से अल्प कर्ण होने पर इस प्राप्त फल को मध्यम बिंब में युत करने से तथा अधिक होने पर घटाने से स्फुट ग्रह बिंब होता है। यह उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में जो ग्रह बिंबमान स्फुट करने का सूत्र दिया है वह भास्करोक्त सूत्र से प्राप्त हो जाता है तथा ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र से भास्करोक्त सूत्र प्राप्त किया जा सकता है। यथा ग्रहयुत्यधिकार–

"व्यासार्ध संयुक्तं त्रिगुणान्त्यफलज्ययाऽन्त्यकर्णोनम्।
स्वरदृग्घ्नं स्वदृगंशैर्गुणयाऽन्त्यफलज्यया भक्तम्॥३॥
स्फुटमानकला भूमिजबुधसुरगुरु शुक्र सूर्यपुत्राणाम्।
नाधः स्थयोर्ज्ञसितयोरासन्नत्वाद्रवेरसितम्॥४॥"

$$\text{स्फुटमानकला} = \text{म.बि.} - \frac{\text{म.बिं. (शी.कर्ण} - \text{त्रि)}}{\text{३ अं. फलज्या}} \text{ ; भास्करोक्त सूत्र।}$$

$$= \frac{\text{म.बिं.}}{\text{३ अं. फलज्या}} \text{ (३ अं. फलज्या+त्रि} - \text{शी.क)}$$

यहाँ मध्यम बिंब कला= $\frac{८१}{\text{कलांश}}$ रखने पर

$$= \frac{८१}{\text{कलांश} \times ३ \times \text{अंफलज्या}} \text{ (३ अं. फ.ज्या+त्रि} - \text{शी.क)}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$= \frac{२१\ (३\ अं.\ फ.ज्या + त्रि - शी.क)}{अंफलज्या \times कालांश}$$ ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र।

अतः भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र से ही अपना सूत्र आगे गणना करके भिन्न रूप में प्रदर्शित किया है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी ब्रह्मगुप्तोक्त सूत्र ही कहा है। यथा—

"त्रिगुणयाऽन्त्य फलोद्भवजीवा समधिकां भुवनत्रयशिञ्जिनीम्।
द्युचरचञ्चलकर्ण विवर्जिता त्रिघन संगुणितां च विभाजयेत्॥
स्वसमयांश हताऽन्त्यफलज्या द्युचर मानकलाः सुपरिस्फुटाः।
न बुधभार्गवयोरासितो रवेर्ध्रुवमधः स्थितयोर्निकटत्वतः॥"

इदानीं युतिकालज्ञानार्थमाह—

दिवौकसोरन्तरलिप्तिकौघाद्गत्योर्वियोगेन हताद्यदैकः।
वक्री जवैक्येन दिनैरवाप्तैर्याता तयोः संयुतिरल्पभुक्तौ॥३॥
वक्रेऽथवा न्यूनतरेऽन्यथैष्या द्वयोरनृज्वोर्विपरीतमस्मात्।

युतिकाल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अभीष्ट दिन के (दो) ग्रहों का अंतर ज्ञात करके उसको उनकी दैनिक गति के अंतर से विभक्त करने से और यदि उनमें से एक वक्रि हो तो उनकी दैनिक गति के योग से विभक्त करने से उनकी युति होने का समय प्राप्त होता है। यदि अल्प गति ग्रह दूसरे ग्रह से अल्प (ऊन) हो तो दोनों ग्रहों की युति हो चुकी होती है। यदि दोनों ग्रह वक्रि हो और उनमें से अल्पगति ग्रह दूसरे से (ऊन) अल्प हो तो उनकी युति आगे होगी अन्यथा होने पर युति हो चुकी होती है।

उपपत्ति— यदि दोनों ग्रह एक दिशा में चल रहे हों तो उनकी गति का अंतर उनके प्रतिदिन का अन्तर होता है। यदि एक आगे पूर्व की ओर जाता हो तथा दूसरा दूसरी दिशा में पीछे पश्चिम की ओर जाता हो तो उनकी गति का योग दोनों के बीच प्रतिदिन का अन्तर होगा। अतःउनका अनुपात करते हैं कि यदि एक दिन में दोनों ग्रहों में इतना अंतर होता है तो दोनों ग्रहों की स्थिति की अन्तर कला में कितने दिन होंगे? लब्ध दिन संख्या युति के दिनों की संख्या होगी। यदि अल्पगति ग्रह अथवा वक्रि अल्प गति ग्रह दूसरे ग्रह से न्यून हो तो उसका दूसरा ग्रह का अतिक्रम करता हुआ आगे चला गया है। यदि दोनों वक्रि हो तो इससे विपरीत स्थिति होने से वे परस्पर युति करते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपरोक्त बात को और स्पष्ट करके बताते हैं। दो ग्रहों की स्थिति के अन्तर की कलाओं को उनकी गति के अन्तर की कलाओं से विभक्त करने से प्राप्त फल दिन संख्या होती है, ऊपर बताये अनुसार। अब यदि अधिक गति वाला ग्रह अल्पगति वाले ग्रह से अधिक (आगे) रहे तो पूर्व गत दिनों में ग्रह युति हो चुकी यह समझना चाहिये। यदि अल्पगति ग्रह अधिक गति ग्रह से अधिक हो तो पूर्व प्रकार से प्राप्त दिवस संख्या में ग्रह युति ऐष्य (होने वाली) समझनी चाहिये। यदि दोनों ग्रह वक्री हों तो विपरीत होता है अर्थात गत युति, ऐष्य होती है तथा ऐष्य युति, गत युति होती है। यदि दोनों ग्रह में एक वक्रि ग्रह दूसरे मार्गी से अल्प हो तो पूर्व प्राप्त दिनों में युति गत (हो चुकी) कहनी चाहिये। यदि यहाँ वक्रिग्रह अधिक (आगे) हो तो युति ऐष्य समझनी चाहिये।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"भुक्त्यन्तरेण भक्तं ग्रहान्तरं फलेदिनैरधिक भुक्तो।
प्रागुनगतौ पश्चाद्युतिरधिके वक्रिणोर्व्यस्तम्॥५॥
एको वक्री भुक्त्योर्युत्योनः प्रागथाधिकः पश्चात्।
ग्रहयोरन्तरलिप्तास्तथैव भक्ताः स्वभुक्ति गुणाः॥६॥"

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"भुक्त्यन्तरेण विवरे ग्रहयोर्विभक्ते मार्गस्थयोः
कुटिलयोरपि भिन्नगत्योरित्यादिना।"

अध्याय ११ के श्लोक ११ से १४ का भी अवलोकन करें।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"भुक्त्यन्तरेण विभजेद्ग्रहान्तरं मार्गगौ यदि तौ॥३॥
वक्रस्थौ वाथैको वक्री चेदैक्यकेन लब्धदिनैः।
यातो योगोऽभ्यधिके शैघ्र्यगखेटेऽनृजौ चाल्पे॥४॥
व्यस्तो वक्रस्थितयोर्योगस्तात्कालिकौ च तौ कार्यौ।
तुल्यौ स्यातां दृग्योग्यायोक्तौ दृग्ग्रहो कार्यौ॥५॥
तुल्यौ तो यत्समये तदा युतिर्निश्चितं भवति।$\frac{१}{२}$।"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहयुत्याधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"निजगतिविवरेण संविभक्ता विवरकलास्त्वनुलोमयोर्दिनानि।
ऋजुगमन विलोम भुक्तियुत्याभ्यधिकगतावधिके युतिर्गतातैः॥७॥
अनधिकगमनेऽधिकेऽथ वक्रिण्यपि चरितान्तरलिप्तका गतिघ्नाः।
गतियुतिविवरोद्धृतास्तथैव स्वफलमृणं स्वमिते गते च योगे॥८॥
धनमृणमथ तद्विलोमगे स्तः समकलिकौ समलिप्तिकाद्विपातात्॥$\frac{१}{२}$॥"

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के छठे अध्याय में आचार्योक्त कहा है।

"ग्रहयोरन्तरं भाज्यं प्रतिलोमानुलोमयोः।
भुक्ति योगेन शेषाणां भोगविश्लेषसंख्यया॥४९॥
दिनादिर्लभ्यते कालो योगिनां योगकारकः।
भुक्तेरनेकरूपत्वात् स्थूल कालोऽत्र गम्यते॥५०॥
समलिप्तौ ततो युक्त्या कुर्यात्तन्त्रस्य वेदिता।
स्वोपदेशाद्गुरोर्नित्यमभ्यासेनापि गम्यते॥५१॥"

सूर्य सिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"शीघ्रे मन्दाधिकेऽतीतः संयोगो भविताऽन्यथा।
द्वयोः प्रागयायिनोरेवं वक्रिणोस्तु विपर्ययात्॥२॥
प्राग्यायीन्यधिकेऽतीतो वक्रिण्येष्यः समागमः।
ग्रहान्तरकलाः स्वस्वभुक्तिलिप्तासमाहताः॥३॥
भुक्त्यन्तरेण विभजेदनुलोमविलोम योः।
द्वयोर्वक्रिण्यथैकस्मिन् भुक्तियोगेन भाजयेत्॥४॥
लब्धं लिप्तादिकं शोध्यं गते देयं भविष्यति।
विपर्ययाद्वक्रगत्योरेकस्मिस्तु धनव्ययौः॥५॥
समलिप्तौ भवेतां तौ ग्रहौ भगणसंस्थितौ।
विवरं तद्वदुद्धृत्य दिनादि फलममिष्यते॥६॥"

अथैवं स्थूलकालमानीय सूक्ष्मार्थमाह—

दृक्कर्म कृत्वायनमेव भूयः साध्येति तात्कालिकयोर्युतिर्यत्॥४॥
एवं कृते दिविचरौ ध्रुवसूत्रसंस्थौ स्यातां तदा वियति सैव युतिर्निरुक्ता।
दृक्कर्मणायनभवेन न संस्कृतौ चेत् सूत्रे तदा त्वमपवृत्तजयाम्यसौम्ये॥५॥

अब स्थूल कालमान से सूक्ष्मकाल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त प्रकार से जिस दिन स्थूल रूप से ग्रह युति

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का दिन प्राप्त हो उस दिन पुनः मध्यम स्फुट ग्रह स्पष्ट करके शर ज्ञात करके अयन दक्कर्म करके उपरोक्त श्लोक ३ में कथित प्रकार से उनकी युति साधन करे। यह स्फुट युतिकाल होता है। इस प्रकार करने से ग्रह युतिकाल में ध्रुवसूत्र पर स्थित होता है अर्थात् ध्रुव से एक ग्रह के ऊपर से होकर जाता हुआ सूत्र दूसरे ग्रह के ऊपर से होकर भी जाता है। इस प्रकार अयन दृक्कर्म से उनकी युति होती है और यदि अयन दृक्कर्म नहीं करे तो ग्रहयुति, क्रांतिवृत्त सूत्र पर होती है अर्थात कदम्ब से होकर जाने वाले सूत्र पर दोनों ग्रह स्थित होते हैं। कदम्ब सूत्र युति की प्रसिद्धि नहीं है क्योंकि इसके कारण दृष्टा को युति की प्रतिती नहीं होती अतः ध्रुव सूत्र युति ही कही गई है। आकाश में जब अल्प अंतर पर युति दिखाई देती है तब वह प्रायः कदम्बसूत्रस्थ होती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्याधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अन्तरयोगो तुल्यान्यदिशोर्विक्षेपयोर्ग्रहान्तरकम्।
आर्यभटादिष्वेवं समलिप्तिकयोर्युतिर्ग्रहयोः ॥११॥"

इस श्लोक में उक्त युति गोलयुक्ति से एक कदम्ब प्रोतवृत्त में दो ग्रहों के रहने से सिद्ध होती है। इस युक्ति की असमीचीनता को तथा स्व सम्मत सम सूत्र युति को आचार्य ने आगे कहा है। कदम्ब प्रोतवृत्तीय युति ठीक नहीं है यह बात दृष्टान्त द्वारा निरुपित की गई है। यथा—

"चित्रा स्वातिवदुदये यथाऽन्यथा ऽस्ते तथा युतौग्रहयोः।
न भवति दृग्गणितैक्यं यथा तदैक्यं तदुक्तिरतः ॥१२॥"

सूर्यसिद्धान्त में भी ग्रह युति साधन के लिए दृक्कर्म साधन के लिए कहा गया है।

"नक्षत्रग्रहयोगेषु ग्रहास्तोदयसाधने।
शृंगोन्नतौ तु चन्द्रस्य दृक्कर्मादाविदं स्मृतम् ॥११॥
तात्कालिकौ पुनः कार्यौ विक्षेपो च ततस्तयोः।
दिक्तुल्येत्वन्तरं भेदे योगः शिष्टं ग्रहान्तरम् ॥१२॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अन्तरे महति दक्षिणोत्तरे प्राचि तुल्यकलयोः समागमः।
अन्यथा भवति पश्चिमेऽन्यथा दृष्टिकर्मगणितैक्यकार्यतः ॥१४॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ दक्षिणोत्तरान्तरज्ञानार्थमाह—

एवं लब्धैर्ग्रहयुतिदिनैश्चालितौ तौ समौ स्त-
स्ताभ्यां सूर्यग्रहणवदिषू संस्कृतौ स्वस्वनत्या।
तौ च स्पष्टौ तदनु विशिखौ पूर्ववत् संविधेयौ
दिक्साम्ये या वियुतिरनयोः संयुतिर्भिन्नदिक्त्वे॥६॥
याम्योदक्स्थद्युचरविवरं ज्ञेयमत्रेषुदिक्स्थौ
खेटौ यः स्याल्लघुतरशरः सोऽन्यदिक् तुल्यदिक्त्वे।

दक्षिणोत्तरअन्तर ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त प्रकार से ग्रहयुति काल दिवस ज्ञात करके असकृत प्रकार से उनको तात्कालिक बना कर उन ग्रहों की समलिप्तिक स्थिति ज्ञात करे। फिर उनमें सूर्यग्रहण वत् नति का संस्कार करके उनके शर यदि एक दिशा में हो तो अंतर करने से तथा भिन्न दिशा में होने पर योग करने से ग्रह का याम्योत्तर अन्तर प्राप्त होता है। यदि दोनों शर उत्तर अथवा दक्षिण हो तो अल्प शर वाला ग्रह दूसरे ग्रह के शर की दिशा से विपरीत दिशा में होता है।

उपपत्ति— पूर्वानुसार।

विशेष— **आर्यभट (द्वि.)** ने ग्रहयुत्याधिकार अध्याय महासिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"शशिबाणो निजनत्या संस्कार्योऽन्ये यथागताः स्पष्टाः॥६॥
निज दिक्स्थो द्युचरोऽन्याशोऽल्पशरो यदैकदिग्बाणौ।
एकदिगिष्वोर्विवरं भिन्नदिशोः संयुतिः कार्याः॥७॥"

सूर्यसिद्धान्त के ग्रहयुत्याधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"तात्कालिकौ पुनः कार्यौ विक्षेपौ च ततस्तयोः।
दिक्तुल्येत्वन्तरं भेदे योगः शिष्टं ग्रहान्तरम्॥१२॥"

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में ब्रह्मगुप्त ने आचार्योक्त कहा है—

"अन्तरयोगौ तुल्यान्यदिशोर्विक्षेपयोर्ग्रहान्तरकम्।
आर्यभटादिष्वेवं समलिप्तिकयोर्युतिर्ग्रहयोः॥११॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा अध्याय ११ श्लोक १८—

"समदिगन्यदिशोः शरयोः क्रमात् वियुतिरैक्यमिह द्युचरान्तरम्।
इति युति कथिताऽऽर्यभटादिभिः सदृशलिप्तिकयोर्गगनौकसौः॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहयुत्याधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"निजमध्यमबाणसङ्गुणाभुजजीवा कुखगान्तरोद्धृता।
स शरो भवति स्फुटो रविग्रहणोक्त्या नतिसंस्कृतो विधोः॥१०॥
स्वस्वबाणदिशि भिन्नगोलयोः क्षेपयोश्च भवतौ नभश्चरौ।
यस्य तुल्यककुयोर्लघुः शरो जायतेऽन्यदिशि सोऽपर ग्रहात॥१२॥"
समये समलिप्तयोर्भवेदुदयो यस्य च तुल्यलिप्तयोः।
उदयास्तमयेन येन तद्भेदे पर्वबिलम्बनाद्यतः॥१३॥"

भास्कर प्रथम ने महाभास्करीय के अध्याय ६ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"भिन्नदिक्कौ तु विक्षेपौ युक्तावन्तरमिष्टयोः।
तुल्यदिक्को विशेषेण विधाद्विवरलिप्तिकाः॥५४॥"

लघुभास्करीय में भास्कर प्रथम ने अध्याय ७ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"विक्षेपलिप्तिका लब्धास्ताभिरन्तरमिष्टयोः।
एकदिक्त्वे विशिष्टाभिर्युक्तार्भिन्नदिक्कयोः॥६॥"

इदानीं भेदयोगलम्बनज्ञानार्थमाह—

मानैक्यार्धाद्द्युचरविवरेऽल्पे भवेद्भेदयोगः
कार्यं सूर्यग्रहवदखिलं लम्बनाद्यं स्फुटार्थम्॥७॥
कल्प्योऽधःस्थः सुधांशुस्तदुपरिग इनो लम्बनादिप्रसिद्ध्यै
किंत्वर्कादेव लग्नं ग्रहयुतिसमये कल्पितार्कान्न साध्यम्।
प्राग्वत् तल्लम्बनेन ग्रहयुतिसमयः संस्कृतः प्रस्फुटः स्यात्
खेटौ तौ दृष्टियोग्यौ यदि युतिसमये कार्यमेवं तदैव॥८॥
याम्योदक्स्थद्युचरविवरं भेदयोगे स बाणो
ज्ञेयः सूर्याद्भवति स यतः शीतगुः सा शराशा।
मन्दाक्रान्तोऽनृजुरपि यदाधः स्थितः स्यात् तदैन्द्र्यां
स्पर्शो मोक्षोऽपरदिशि तदा पारिलेख्येऽवगम्यः॥९॥

भेदयोग लम्बन ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि दो ग्रहों का याम्योत्तर अन्तर उनके मानैक्यार्ध से अल्प हो तो उनकी भेदयुति होती है। जिस प्रकार सूर्य-चंद्र ग्रहों का ग्रहण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होता है उसी प्रकार इनके अतिरिक्त ग्रहों के ग्रहण को भेद युति कहते हैं। भेदयुति के लिए भी लंबन साधन किया जाता है। इसके लिए जो ग्रह नीचे स्थित होता है उसको चंद्रमा माना जाता है तथा जो ऊर्ध्वस्थित होता है उसको सूर्य माना जाता है। किन्तु वित्रिभ लग्न साधन के लिए जो लग्न साधन किया जाता है वह वास्तविक सूर्य से ही ज्ञात किया जाता है इस कल्पित सूर्य से नहीं किया जाता। सूर्य से लग्न ग्रह युति के समय का ज्ञात करते हैं। पूर्व प्रकार से इससे लंबन तथा नति का साधन करे। लंबन से ग्रहयुति काल को संस्कारित करके स्पष्ट युतिकाल ज्ञात करे, यदि भेद युति दृष्टियोग्य हो अर्थात् क्षितिज के ऊपर हो। भेद युति में ग्रह का याम्योत्तर अन्तर जो बाण (शर) है वह सूर्य ग्रहण में चंद्रमा के शर के समान है।

इस शर की दिशा कल्पित सूर्य से कल्पित चन्द्रमा जिस दिशा में होता है वही होती है अर्थात् पृथ्वी के आसन्न स्थित ग्रह, दूरस्थ दूसरे ग्रह से जिस दिशा में होता है वही होती है। यदि नीचे स्थित ग्रह जिसको चंद्रमा माना है वह वक्रि हो अथवा उसकी अल्प भुक्ति हो तो दूसरा उच्चस्थ ग्रह की उससे भेद युति उसके पूर्व दिशा की और से स्पर्श तथा पश्चिम की ओर से मोक्ष होता है। यह उसके परिलेखन कर्म के लिए विशेष बात कही गई है। यदि उपरोक्त से अन्यथा स्थिति हो तो पश्चिम से स्पर्श तथा पूर्व में मोक्ष होता है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"तत् खेटमण्डलान्तरमल्पं मानैक्यखण्डतस्तच्चेत्।
भेदयुतिर्लम्बनकं भानुग्रहवत् तदा कुर्याद्॥८॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"क्षेपयोर्वियुतिरेकगोलयोर्या च भिन्नककुभोर्भवेद् युतिः।
अन्तरं तदुभयोः प्रकीर्तितं तद्दलैक्यलघुभेदकारकम॥११॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"एवं मानैक्यार्धादधिके मध्यान्तरे न युतिर्ग्रहयोः।
स्थित्यर्धविमर्ददले हीने ताराग्रहोडुयुतौ॥१९॥
लम्बनमर्क ग्रहणवदसकृत स्वावनतिलिप्तिकास्पष्टौ।
तात्कालिकविक्षेपौ तदन्तरैक्यं समान्यदिशोः॥२०॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विक्षेपो मध्यान्तरमूर्ध्वस्यच्छादको ग्रहोऽधस्थः।
मानैक्यार्धादधिके नातिस्पष्टा स्फुटोक्तिरतः॥२१॥
ग्राह्यग्राहकलम्बनाख्यकलिका विश्लेषिता लम्बना।
एवं चावनति पुराविगणिता लिप्तास्तु षष्ट्या हृताः॥२३॥
ऋज्वोर्वक्रगयोश्च भुक्तिविवरेणाप्ता घटीपूर्वकं।
वक्रावक्रगयोर्जवैक्यविहृतास्तज्ज्ञायते लम्बनम्॥२४॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''मानैक्यार्धाद् द्युचर विवरे स्यान्न भेदोऽधिके
तू न्यूने भेदो ग्रहणवदिहच्छादकोऽधस्तनः स्यात्।
साध्यलग्नं युतिसमयतो वित्रिभं तद् विधाय कार्याः
सूर्यग्रहणवदखिला लम्बनार्थाः क्रियाश्च॥''

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के ग्रहयुत्यधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११

अथ भग्रहयुत्यधिकारः

अथ भग्रहयुतिर्व्याख्यायते। तत्रादौ भध्रुवकानाह—

अष्टौ नखा गजगुणाः खशरास्त्रिषट्काः सप्तर्तवस्त्रिनव चाङ्गदिशोऽष्टकाष्ठाः।
गोऽर्कास्तथाद्रिमनवः शरबाणचन्द्राः खात्यष्टयस्त्रिधृतयो नवनन्दचन्द्राः॥१॥
अर्काश्विनो जिनयमा नवबाहुदस्त्राः क्रब्ध्यश्विनो जलधितत्त्वमिताश्च भागाः।
षष्ट्यश्विनश्च पवनोत्कृतयोऽष्टभानि खाङ्काश्विनो नखगुणा रसदन्तसंख्याः॥२॥
सप्तामराः खमिति भध्रुवका निरुक्ता दृक्कर्मणायनभवेन सहाश्विधिष्ण्यात्।
ब्रह्माग्निभध्रुवलवा रदलिप्तिकोना मैत्रेन्द्रयोर्द्वयधिपभस्य च सेषुलिप्ताः॥३॥

नक्षत्रों के ध्रुवक—

सूर्य-प्रभा टीका— अभिजीत नक्षत्र सहित नक्षत्रों के ध्रुवाँक उपरोक्त श्लोक में अधोलिखित सारिणी अनुसार आचार्य ने कहे हैं। यथा—

अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु.	पु.	आ.	म.	पू.	उ.	ह.	चि.
०	०	१	१	२	२	३	३	३	४	४	५	५	६
८	२०	७	१९	३	७	३	१६	१८	९	२७	५	२०	३
०	०	२८	२८	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

स्व.	वि.	अ.	ज्ये.	मू.	पू.	उ.	अ.	श्र.	ध.	श.	पू.	उ.	रे.
६	७	७	७	८	८	८	८	९	९	१०	१०	११	०
१९	२	१४	१९	१	१४	२०	२५	८	२०	२०	२६	७	०
०	५	५	५	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

ये राशि, अंश, कलादि हैं।

आचार्य ने ये नक्षत्र ध्रुवाँक अयन दृक्कर्मसंस्कारित कहे हैं। कृत्तिका तथा रोहिणी नक्षत्र ३२ कला अल्प हैं और विशाखा,अनुराधा व ज्येष्ठा नक्षत्र ध्रुवाँक ५ कला अधिक कहे गये हैं।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त ध्रुवाँक ही कहे हैं। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अष्टनखैर्मेषे गविरदलिप्तोनैर्गुणस्वरैर्मियुते।
कर्कटने गुणषोडशधृतिभिः सिंहे नवत्रिघनैः ॥१॥
कन्यायां पञ्चनखैस्तुलिनि त्रयतिधृतिभिरलिनि सेषुकलैः।
द्विचतुर्दशातिधृतिभिर्धनुषि शशांकमनुनखतत्त्वैः ॥२॥
मकरेऽष्टनखैः कुम्भे नखषड्विंशैर्झर्ष मुनित्रिंशेः।
पृथगश्विन्यादीनां ध्रुवकांशैर्योगतारास्थैः ॥३॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने भी आचार्योक्त ही ध्रुवाँक कहे हैं।

सूर्यसिद्धान्त के नक्षत्रग्रह युत्यधिकार में श्लोक १ से ९ तक प्रकार से जो नक्षत्र ध्रुवाँक विधि कही है उनमें तथा भास्करोक्त ध्रुवाँको में कुछ अंतर आता है। लेकिन अधिक आसन्न हैं।

अथ भानां शरांशानाह—

दिशोऽर्काश्च सार्धाब्धयः सार्धवेदा दशेशा रसाः खं स्वराः खं च सूर्याः।
त्रिचन्द्राः कुचन्द्रा विपादौ च दस्रौ तुरङ्गाग्नयः सत्रिभागं च रूपम् ॥४॥
विपादं द्वयं सार्थरामाश्च सार्धा गजाः सत्रिभागेषवो मार्गणाश्च।
द्विषष्टिः खरामाश्च षड्वर्गसंख्यास्त्रिभागो जिना उत्कृतिः खं च भानाम् ॥५॥
निरुक्ताः स्फुटा योगताराशरांशास्त्रयं ब्रह्मधिष्ण्याद्विशाखादिषट्कम्।
करो वारुणं त्वाष्ट्रभं सार्पमेषां शरा दक्षिणा उत्तराः शेषभानाम् ॥६॥

नक्षत्र शरमान—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने नक्षत्रों के निम्नलिखित शर दिशा सहित पठित किये हैं।

अश्विनि	१०° – ०	उत्तर	स्वा.	३७° – ००'	उ.
भ.	१२° – ०'	उत्तर	वि.	१° – २०'	द.
कृ.	४° – ३०'	उ.	अ.	१° – ४५'	द.
रो.	४° – ३०'	दक्षिण	ज्ये.	३° – ३०	द.
मृ.	१०° – ०'	द.	मू.	८° – ३०'	द.
आ.	११° – ०'	द.	पू.	५° – २०'	द.
पु.	६° – ०'	उ.	उ.	५° – ०'	द.
पु.	०° – ०'	उ.	अ.	६२° – ०'	उ.
आ.	७° – ०'	द.	श्र.	३०° – ०'	उ.
म.	०° – ०'	उ.	ध	३६° – ०'	उ.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पू.	१२° –०'	उ.	श.	०° – २०'	द.
उ.	१३° –०'	उ.	पू.	२४° – ०'	उ.
ह.	११° – ०'	द.	उ.	२६° – ०'	उ.
चि.	१° – ४६'	द.	रे.	०° – ०'	उ.

उपपत्ति— गोल बन्धोक्त विधि से एक बड़ा गोलयन्त्र बनावे। उसमें भगोल का आधार वृत्त विषुवद्वृत्त बनावे तथा क्रांति वृत्त पर ३६०° भगणांश अंकित करे। फिर उस गोल यंत्र को ठीक उत्तर-दक्षिण ध्रुवाभिमुख यष्टि पर जल से समान की हुई क्षितिज वृत्त जिस प्रकार हो उसके अनुसार स्थिर करके रात्रि में गोल केंद्रगत दृष्टि से रेवती तारा को देखकर क्रांतिवृत्त में मीनान्त बिन्दु को रेवती तारा निश्चित करके केंद्रगत दृष्टि से ही अश्विन प्रथमनक्षत्र के योगतारा को देखकर उस पर वेध वलय निवेश करे। इस प्रकार करने से वेधवलय का क्रांतिवृत्त से जो संपात है वह मीनांत से आगे जितने अंतर पर है वह तारा का ध्रुवांश होता है। अब वेधवलय का जहाँ संपात होता है वहाँ से योगतारा जितने अंतर पर है उतना शरांश उत्तर-दक्षिण होता है। यहाँ जो ध्रुवांश पठित किये गये हैं वे दृक्कर्म किये हुए हैं। ये जो शरांश पठित किये हैं, ये भी स्फुट हैं। जो दोनों ध्रुवों को कीलता हुआ प्रोत वृत्त है वह वेधवलय है। उस वेधवलय से जो शर ज्ञात करते हैं वह ध्रुवाभिमुख है। यही ध्रुवाभिमुख शर स्फुट शर है। जो कदम्बाभिमुख है वह अस्फुट है। अतएव पूर्व में भगणोत्पत्ति कथन में ग्रहवेधवलय में कदम्ब प्रोत (वृत्त) करने के लिए कहा है। इस कारण से दृक्कर्म करके ये नक्षत्र ध्रुवाँक कहे हैं। जहाँ ध्रुव से ग्रह के ऊपर से होकर जाने वाला सूत्र जहाँ क्रांतिवृत्त में लगता है वहाँ अयन दृक्कर्म कृत ग्रह होता है।

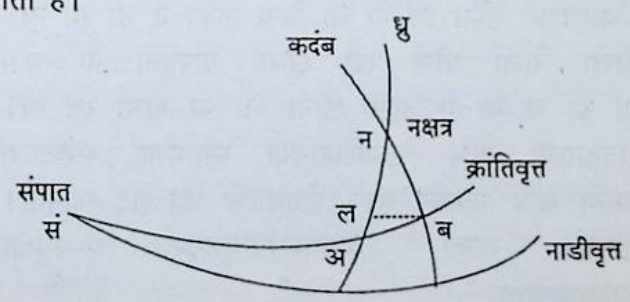

आचार्य का कथन चित्र से स्पष्ट है। सं ब = ध्रुवक है तथा न ब = अस्फुट शर है। सं.अ = ध्रुवांश है तथा न अ = ध्रुवप्रोत स्फुट शर है। अ ब =

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अयन दृक्कर्म संस्कार है। ग्रहच्छायाधिकार के श्लोक ३ में आचार्य द्वारा कहे अनुसार न ल = स्फुट शर है जब कि यहाँ न अ को स्फुट शर कहा है। इस बात की ओर आचार्य ने यहाँ ध्यान आकर्षित किया है। आचार्य ने कहा है कि इस अंतर के लिए उन्होंने दृक्कर्म कृत ध्रुवांकादि यहाँ कहे हैं।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में नक्षत्रों के आचार्योक्त शर ही पठित किये हैं। भास्कराचार्य तथा ब्रह्मगुप्तोक्त शरांशों में कृत्तिका, विशाखा तथा अनुराधा के शरांसों में थोडी कलाओं का अंतर है। यथा–

"सौम्या दशार्कविषया याम्याः शरदशभवा रसाः सौम्याः।
खं सप्तदक्षिणाः खं सौम्याः सूर्यत्रयोदशकाः॥५॥
दक्षिणातो भवयमलाः सप्तत्रिंशदुदगंशका याम्या।
अध्यर्धत्रिचतुष्कार्धनवमसत्र्यंशविषयशराः॥६॥
सौम्या द्वयधिका षष्टिस्त्रिंशत् षट्त्रिंशदितरलिप्ताः।
अष्टादशोत्तरा जिनषट्विंशत्यम्बराण्यंशाः॥७॥
प्राजेशयोगतारा विक्षेपांशैः कला त्रिघनहीनैः।
आग्नेयस्य कला नामेकोनत्रिंशता हीनैः॥८॥
पञ्चदश कला हीनैश्चित्रायाः सप्तभिर्विंशाखायाः।
षट्सप्तत्या मैत्रस्यैन्द्रस्य त्रिंशता हीनैः॥९॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त शरांश ही कहे हैं।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में नक्षत्र शरांश आचार्य के बहुत आसन्न कहे हैं। आर्यभट ने ३०' को पूर्ण अंश मान लिया है। यथा–

"बाणांशाः पीना प्रा मा मा केना कका त ना सा ना।
योला केला पीना खा लासा दलयुता पा च॥६॥
गा ढा ध मा म ताला गोना ग्ता ना खभा रत ना।
शततारायाबाणः खनलिप्ताढ्यो भमार्गणाः स्पष्टाः॥७॥
वारुण सार्प भकत्रय हस्त द्वितय द्वि दैव षट् कानाम्।
याम्या बाणा भानामन्येषामुत्तराशाः स्युः॥८॥"

अथागस्त्यलुब्धकयोराह—

अगस्त्यध्रुवः सप्तनागास्तु भागास्तुरङ्गाद्रयस्तस्य याम्याः शरांशाः।
षडष्टौ लवा लुब्धकस्य ध्रुवोऽयं नभोऽम्भोधिभागाः शरस्तस्य याम्यः॥७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अगस्त्य तथा लुब्धक ध्रुवांश तथा शर—

सूर्य-प्रभा टीका— अगस्त्य के ध्रुवांश ८७° तथा दक्षिण शरांश ७७° है। लुब्धक के ध्रुवांश ८६° तथा शरांश ४०° दक्षिण हैं।

उपपत्ति— पूर्ववत।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने अगस्त्य तारा के ध्रुवांश तथा शर आचार्योक्त ही कहा है। यथा **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** भग्रहयुत्यधिकार—

"विक्षेप्तो दक्षिणतस्तत् क्रान्तेर्भागसप्तसप्तत्या।
मिथुनस्य सप्तविंशे भागेऽगस्त्यो नतैर्भागैः॥३५॥"

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त शर ही अगस्त्य के कहे हैं। यथा—

"नक्षत्रांशैः संयुतं राशियुग्मं ८७° लोपा मुद्रावल्लभस्य ध्रुवः स्यात्।
शैलाभ्यस्तै रुद्रतुल्यैश्च भागैः विक्षिप्तोऽयं दक्षिणे स्वापमाग्रात्॥"

सूर्य सिद्धान्त के नक्षत्र ग्रहयुत्यधिकार में कहा गया है कि अश्विन्यादि नक्षत्रों तथा अगस्त्यादि ताराओं के ध्रुवक और शर की गोल रचना कर के गणक वेध द्वारा इनकी परीक्षा करे। क्योंकि ये पाठ पठित ध्रुवक एवं शर ग्रंथ निर्माण काल के हैं। कालान्तर में वेधोपलब्ध ही लेने चाहिये। यथा—

"गोल बध्वा परीक्षेत विक्षेपं ध्रुवकं स्फुटम्॥१२"

अन्य ग्रंथकारों ने अपने-अपने वेध से प्राप्त ध्रुवक एवं शर कहे हैं।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में लुब्धक तारा के ध्रुवक व शर आचार्योक्त कहे हैं। यथा—

"षड्विंशे मिथुनांशेंऽशक चत्वारिंशता मृगव्याधः।
तत्क्रान्तेर्दक्षिणतो विक्षिप्तोऽगस्त्यवच्छेषम्॥४०॥"

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही लुब्धक के ध्रुवक तथा शर कहे हैं। यथा—

"उत्कृत्यांशैर्लुब्धको वैणिकर्क्षे विक्षिप्तोंऽशैर्दक्षिणे चाभ्रवेदैः।"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भग्रयोगाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। लेकिन अगस्त्य का दक्षिण शर ८०° कहा है। ये सब वेधोक्त हैं। यथा—

"अगस्त्यनामा मिथुनेंऽशकैस्त्रिभिर्विवर्जिते योगमुपैति खेचरैः॥७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चतुर्भिरंशैर्मृगयुर्विवर्जितैस्त्रिभिश्च भागैरभिजिच्च कार्मुकैः।
क्रमाच्छरांशा खगजाः खसागरा यमस्य दिश्युत्तरतः कृतर्तव॥८॥"

अथेष्टघटिका आह—

अगस्त्यस्य नाडीद्वयं प्रोक्तमिष्टं सषड्भागनाडीद्वयं लुब्धकस्य।
त्रिभागाधिकं स्थूलभानामणूनां ततश्चाधिकं तारतम्येन कल्प्यम्॥८॥

इष्ट घटियाँ—

सूर्य-प्रभा टीका— अगस्त्य की इष्ट नाडी दो कही गई हैं तथा लुब्धक की २$\frac{१}{६}$ नाडी कही गई हैं। इनसे अधिक स्थूल ताराओं की २$\frac{१}{३}$ नाडी होती है और इनसे अधिक स्थूल ताराओं के लिए तारतम्य से कल्पित करे।

उपपत्ति— इष्टनाडी सूर्य तथा इष्ट तारा के उदय के मध्य का समयांतर होता है। अगस्त्य की इष्टनाडी दो कही हैं अतः उसका कालांश १२ होता है। लुब्धक की इष्टनाडी २$\frac{१}{६}$ से कालांश १३ होता है। जिनकी इष्टनाडी २$\frac{१}{३}$ है उनके कालांश १४ हैं। इनसे अधिक के १५ कालांश आदि मानें। स्थूलतारा सूर्योदय से अल्प कालान्तर में उदित होता है। अतः ग्रह व ताराओं के कालांश स्थूल सूक्ष्मता के अनुसार तारत्म्य से होते हैं। सूक्ष्म तारा सूर्योदय से अधिक कालांतर के उदित होते हैं। ६ अंश की एक नाडी होती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"नवतेरुनैर्दृश्यो घटिकाद्वितयेन तदुदयविलग्नम्।
उदयैरधिकं कृत्वातदुदय सूर्योऽस्तमय लग्नम्॥३६॥
षडभयुतमूनमुदयेः षड्राशियुतं तदस्तमय सूर्यः।
घटिका द्वितयेनैवं षड्भागयुतेन मृगहर्त्तुः॥३७॥
एवं नक्षत्राणां घटिका द्वितयेन सत्रिभागेन।
उदयार्कोऽस्तमयार्काद्यस्योनस्तत् सदा दृश्यम्॥३८॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त इष्टघटी कही है। यथा—

"घटिका द्वितयेनैव षड्भागयुतेन मृगहर्त्तु।
षडदलाढये च नाडयौ शेषंकर्मागस्त्यवत् तस्य सर्वम्।"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भग्रह योगाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"त्र्यंशान्वितं तु घटिकाद्वितयं तदिष्टं षड्भागयुङ्मृगरिपोर्घटजस्य युग्मम्॥१६॥"

भग्रहयुतौ पूर्वकर्तव्यतामाह—

विधेयमायनं ग्रहे स्वदृष्टिकर्म पूर्ववत्।
स्फुटश्च खेटसायको ग्रहर्क्षयोगसिद्धये॥९॥

नक्षत्रग्रह युति पूर्व कर्तव्य कर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त प्रकार से ग्रह में अयन दृक्कर्म करके युति काल ज्ञात करे। नक्षत्रों के ध्रुवों में दृक्कर्म करके उनके शर स्फुट करे। इस प्रकार ध्रुव प्रोत वृत्तीय ग्रह तथा तारा ज्ञात करे।

विशेष— सूर्य सिद्धान्त के नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ग्रहवद द्युनिशे भानां कुर्याद् दृक्कर्म पूर्ववत्।
ग्रहमेलकवच्छेशं ग्रहभुक्त्या दिनानि च॥१४॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कृत्वापि दृष्टिकर्म श्रीषेणार्यभटविष्णुचन्द्रोक्तम्।
प्रतिदिनमुदयेऽस्ते वा न भवति दृग्गणितयोरैक्यम्॥१३॥
भमुनि मृगव्याधानां यतस्ततो दृष्टिकर्म वक्ष्यामि।
दृग्गणितसमं देयं शिष्याय चिरोषितायेदम्॥१४॥"

अथ युतिकालज्ञानार्थमाह—

ग्रहध्रुवान्तरे कला नभोगभुक्तिभाजिताः।
गतागताप्तवासरैर्युतिर्ग्रहेऽधिकोनके॥१०॥
विलोमगे नभश्चरे गतैष्यताविपर्ययः।
ग्रहर्क्षदक्षिणोत्तरान्तरं नभोगयोगवत्॥११॥

युतिकाल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस नक्षत्र की ग्रह से युति ज्ञात करनी हो उसके ध्रुव तथा ग्रह की अन्तर कला में ग्रह भुक्ति से भाग देने से प्राप्त लब्धि युति के गत दिन होते हैं, यदि ध्रुव से ग्रह अधिक हो। यदि अल्प हो तो युति होना शेष होता है। यदि ग्रह वक्रि हो तो गत एवं ऐष्य युति विपरीत होती है। ग्रह तथा नक्षत्र का दक्षिणोत्तर अन्तर के अनुसार उनकी युति होती है।

उपपत्ति— नक्षत्रध्रुव की गति शून्य मानकर ग्रह की एक दिन की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गतिकला से भाग देने से जो समय प्राप्त होता है उसका आनयन यहाँ किया गया है। यहाँ यह सब ग्रह युति असकृत प्रकार से करना चाहिये।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त के नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"एष्यो हीने ग्रहे योगो ध्रुवकादधिके गतः।
विपर्ययाद् वक्रगते ग्रहे ज्ञेयः समागमः॥१५॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कृतदृक्फले ध्रुवकादूने वक्रग्रहे गतो योगः।
गम्योऽधिकेऽन्यथा स्यादृजुगे दिवसादिकं च खगगत्या॥९॥"

अथ युतिप्रसङ्गेन भानामुदयास्तकालमाह—

दृक्कर्मणा पलभवेन तु केवलेन भानां मुनेर्मृगरिपोरुदयास्तलग्ने।
कृत्वा तयोरुदयलग्नमिनं प्रकल्प्य लग्नं ततो निजनिजे पठितेष्टकाले॥१२॥
यत् स्यादसावुदयभानुरथास्तलग्नाद्व्यस्तं विभार्धमपि लग्नकमस्तसूर्यः।
इष्टोनषष्टि ६० घटिकास्वथ वास्तलग्नल्लग्नं क्रमेण भदलोनितमस्तसूर्यः॥१३॥
स्यादुद्गमो निजनिजोदयभानुतुल्ये सूर्येऽस्तभास्करसमेऽस्तमयश्च भानाम्।
अत्राधिकोनकलिका रविभुक्तिभक्ता यातैष्यवासरमितिश्च तदन्तरे स्यात्॥१४॥

युति प्रसङ्ग में नक्षत्रों के उदयास्त काल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— अगस्त्य तथा लब्धक के उदयास्त लग्न केवल अक्ष-दृक्कर्म करके ज्ञात करे। क्योंकि नक्षत्रों के ध्रुवों में अयन दृक्कर्म पहले से ही किये जा चुके हैं अतः दुबारा न करे। उदय लग्न को सूर्य मान कर पूर्वोक्त पठित इष्ट काल नाडी का लग्न साधन करे। यह साधित लग्न उदयसूर्य होता है (अर्थात् तारा के उदय के समय सूर्य की स्थिति है) जब तारा उदित होता है। अब अस्तलग्न साधित करके उसको सूर्य मान कर अपने-अपने पूर्वोक्त इष्टनाडी काल के विलोम लग्न (विपरीत दिशा में) साधन करे। इसमें से (१८०°) छः राशि घटाने से अस्त सूर्य प्राप्त होता है, अथवा इष्ट घटी को ६० घटी में घटा कर अस्त लग्न प्रकार से लग्न साधित करके उसमें से छः राशि घटाने से अस्त सूर्य प्राप्त होता है जब तारा अस्त होता है। जब उदय सूर्य के तुल्य सूर्य होता है तब नक्षत्र का उदय होता है और जब अस्त सूर्य के तुल्य सूर्य होता है तब नक्षत्र अस्त होता है। सूर्य तथा उदयऽर्क अथवा अस्तऽर्क के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तर को सूर्य की दैनिक भुक्ति से विभक्त करने से अगस्तोदयास्त के गत अथवा गम्यदिन प्राप्त होते हैं। यदि उदयऽर्क अधिक हो तो ऐष्य दिन होते हैं और यदि अल्प हों तो गत होते हैं।

उपपत्ति— पूर्व कथित प्रकार से उदयास्त लग्न साधन करे। उदय लग्न पर नक्षत्र उदय होता है उस उदय लग्न के समान यदि रवि हो तो रवि के साथ नक्षत्र भी उदित होता है। उस उदय से, पूर्व पठित घटियों के तुल्य काल तक नक्षत्र रवि की प्रभा से आहत होने से क्षितिज के ऊपर स्थित होकर भी दिखाई नहीं देता है। पठित इष्टकाल पर क्रमलग्न जिस स्थान पर होता है वही रवि उदयऽर्क तुल्य होता है तथा अस्त सूर्य के बाद दृश्य घटी तुल्य काल में नक्षत्रास्त लग्न का अस्त होता है। कल्पना करते हैं कि नक्षत्रोदय लग्न के उदय के बाद द्विगुणित दृश्य घटी से अधिक काल में सषड्भास्तलग्न का उदय है, नक्षत्रोदय लग्न और उदयार्क के मध्य में रवि है तब पूर्व क्षितिज में नक्षत्रोदयानन्तर दृष्य घटी से अल्पकाल में अर्कोदय से पूर्व क्षितिज में नक्षत्र दर्शन का अभाव होता है। नक्षत्र बिंबोदय के बाद दृश्य घटी तुल्य काल में उसके उदयार्क चिन्ह का उदय होता है। सषड्भास्त लग्न के उदय से पहले दृश्य घटी तुल्यकाल में सषड्भास्त सूर्य चिन्ह का उदय होता है। इसलिए उदयार्क से सषड्भार्क अधिक तथा आचार्योक्त अस्तसूर्य उदयार्क से अल्प है, यह स्थिति है। इस स्थिति से पूर्व क्षितिज में दर्शनाभाव है, परन्तु पश्चिम क्षितिज में सूर्यास्त के बाद उदयसूर्य चिन्ह का उसके बाद अस्त सूर्य चिन्ह का, उसके बाद अस्त लग्न का अर्थात् नक्षत्र बिम्ब का अस्तमय होता है। इसलिए पश्चिम क्षितिज में नक्षत्र बिंब का दर्शन होता है एवं यदि पश्चिम क्षितिज में नक्षत्रास्त सूर्य और अस्तलग्न के मध्य में सूर्य के रहने के कारण नक्षत्र बिम्ब दर्शनाभाव हो तो उसी दिन में पूर्वक्षितिज में रात्रिशेष में नक्षत्र बिंब दर्शन होता है। इसलिए इस तरह की स्थिति में रवि सान्निध्यवश से नक्षत्र बिंब का अदृश्यत्व नहीं होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"नवतेरुनैर्दृश्यो घटिकाद्वितयेन तदुदयविलग्नम्।
उदयैरधिकं कृत्वा तदुदयसूर्योऽस्तमयलग्नम्॥३६॥
षड्भयुतमूनमुदयैः षड्राशियुतं तदस्तमयसूर्यः।
घटिकाद्वितयेनैवं षड्भागयुतने मृगहर्तुः॥३७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवं नक्षत्राणां घटिका द्वितयेन सत्रिभागेन।
उदयार्कोऽस्तमयार्काद्यस्योनस्तत् सदा दृश्यम्॥३८॥
उदयास्तसूर्यारन्तरे रवौ दृश्यतेऽन्यथाऽस्तमितम्।
ऊनाधिका रविकला रविभुक्त्या भाजिता दिवसाः॥३९॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भग्रहयोगाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''उदयलग्नमभीष्टफलाधिकं भवति यस्य समं पटुरश्मिना।
सममुदेति विभार्धमपीतरद्विफलमस्तमुपैति च यस्य सः॥१७॥
उदयास्तमयार्कमध्यगेऽर्के दृश्यः स्याद् ध्रुवकः स्फुटोपमश्चेत्।
फलहीन युतोऽन्यतुल्य दिक्स्थो लघुतामेति गृहत्रयांशकेभ्यः॥१८॥''

अथ विशेषमाह—

यस्योदयार्कादधिकोऽस्तभानुः प्रजायते सौम्यशरातिदैर्घ्यात्।
तिग्मांशुसान्निध्यवशेन नास्ति धिष्ण्यस्य तस्यास्तमयः कथञ्चित्॥१५॥

विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि नक्षत्र का उदयार्क से अस्तार्क दीर्घ उत्तर शर के कारण अधिक हो तो नक्षत्र सूर्य के सान्निध्य के कारण अस्त नहीं होता।

उपपत्ति— जिस नक्षत्र का उत्तर शर दीर्घ होगा उसका पलोद्भव असु अधिक होगा। उससे विलोम लग्न ज्ञात करने से उदयलग्न अल्प होता है तथा अस्तलग्न अधिक होता है जिनसे उदयऽर्क व अस्तऽर्क साधित करने से अस्तऽर्क न्यून होता है। अस्तऽर्क के समान (तुल्य) रवि होने पर नक्षत्र अस्त होना आंरभ करता है और दिन में अन्य समय दृश्य रहते हुए उदयऽर्क के समान (तुल्य) रवि के रहने से वह नक्षत्र उदित होता है। अतः उदयऽर्क से अस्त लग्न अधिक होता है। इस प्रकार सूर्य के सान्निध्य के कारण वह उदय-अस्त होता है। जैसे-जैसे उत्तर शर दीर्घतर होता जाता है वैसे-वैसे उदयास्त अर्क का अन्तर अल्प होता जाता है। अल्प अंतर होने से अल्प दिनों के लिए ही वह नक्षत्र अदृश्य होता है। इस प्रकार जिन देशों में उदयास्त अर्क तुल्य होता है वहाँ उस नक्षत्र का सूर्य के सान्निध्य में रहते हुए अदृश्य नहीं होता।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भग्रहयोगाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"उदयसवितुर्यस्यास्तार्को ध्रुवस्य महान् भवेद्।
दिन कर वशादस्तं गच्छत्यसौ न कदाचन॥१९$\frac{१}{२}$॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"उदयार्कोऽस्तमयार्काद्यस्योनस्तत् सदा दृश्यम्॥३८॥

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अस्तादित्यो महान्स्यादुदय दिनकराद्यस्य धिष्ण्य ध्रुवस्य
तन्नक्षत्रं कदाचिद् दिवसपतिवशान्नास्तमायाति नूनम्।"

अथान्यं विशेषमाह—

यस्य स्फुटा क्रान्तिरुदक् च यत्र लम्बाधिका तत्र सदोदितं तत्।
न दृश्यते तत् खलु यस्य याम्या भं लुब्धकः कुम्भभवो ग्रहो वा॥१६॥

विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि किसी तारे या ग्रह की उत्तर क्रांति लंब (९०° – अक्षांश) से अधिक हो तो वहाँ वह सदा उदित रहता है और यदि दक्षिण क्रांति लंब (९०° – अक्षांश) से अधिक हो तो लुब्धक, अगस्य, तारा अथवा ग्रह उस स्थान पर कभी भी दृश्य नहीं होता।

जहाँ पर अक्षांश ३७° से अधिक हो वहाँ अगस्त्य तारा दृश्य नहीं होता और जहाँ ५२° से अधिक अक्षांश हो वहाँ अभिजित नक्षत्र सदा उदित रहता है। आचार्य ने स्वकृत टीका में ये दो उदाहरण दिये हैं।

उपपत्ति— लंबांश विषुवन्मंडल के दक्षिण क्षितिज से जितना ऊपर होता है उतने ही अंश वह उत्तर क्षितिज से नीचा होता है। अतः लंब से अधिक उत्तर क्रांति विषुवमण्डल में देने से उसके आगे जहाँ अहोरात्र वृत्त निबध्य होता है वह उत्तर क्षितिज के ऊपर होता है। अब दक्षिण क्रांति देने से उसके आगे जहाँ अहोरात्रवृत्त निबध्य होता है वह दक्षिण क्षितिज से नीचे होता है। अतः जहाँ क्षितिज के नीचे स्थित अहोरात्र वृत्त में (ग्रह-तारा) परिभ्रमण करता है वहाँ वह सतत अदृश्य होता है और जहाँ क्षितिज के ऊपर स्थित होता है वहाँ सतत दृश्यमान होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

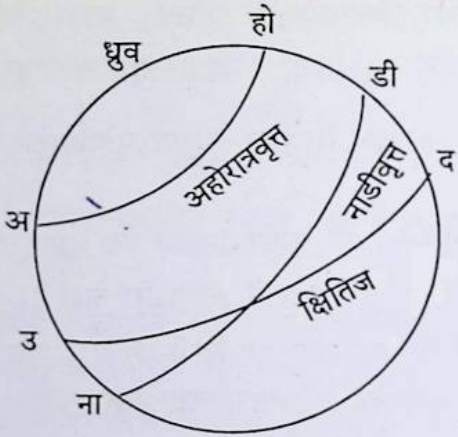

चित्र में अहो = तारे अथवा ग्रह का अहोरात्र वृत्त है। उ ध्रु = स्थान का अक्षांश है, ध्रु अ = ९० – क्रांति है।

अतः यदि तारा कभी भी अस्त न हो उसके लिए आवश्यक है ध्रु अ सदा ध्रुउ से अल्प हो। अर्थात्

ध्रु अ < ध्रु उ

९० – क्रां < अक्षांश

अथवा ९० – अक्षांश < क्रांति

लंबांश < क्रांति

अर्थात् क्रांति यदि लंबांश से अधिक हो तो वह सदा उदित रहता है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद् ग्रंथ के भग्रहयोगाधिकार में अदृश्य स्थिति की परिस्थिति बताई है। यथा—

"यदपमधनुः क्षेपस्पष्टं पलेन च संस्कृतं
त्रिभवनमहद् यस्मिन् देशे स तत्र न दृश्यते॥२०॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"लम्बांशेभ्योऽभ्यधिकाः स्फुटापमांशाः स्युरुत्तरा यस्य।
दृश्यस्तत्र सदा स्याद् धिष्णयं खेटोऽन्यथाऽदृश्यः॥१२॥"

अथ देशान्तरवशेन विशेषमभिधायेदानीं कालान्तरवशेन विशेषमाह—

इत्यभावेऽयनांशानां कृतदृक्कर्मका ध्रुवाः।
कथिताश्च स्फुटा बाणाः सुखार्थं पूर्वसूरिभिः॥१७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अयनांशवशादेषामन्यादृक्त्वं च जायते।
शरज्या अस्फुटाः कार्याः स्फुटीकृतिविपर्ययात्॥१८॥
ताभिरायनदृक्कर्म मुहुर्व्यस्तं ध्रुवेष्वथ।
अयनांशवशात् कार्यं तद्दृक्कर्म यथोदितम्॥१९॥
एवं स्युर्ध्रुवकाः स्पष्टाः शरज्याश्च ततः स्फुटाः।
यथोक्तविधिना कार्यास्तच्चापानि स्फुटाः शराः॥२०॥
ततो भग्रहयोगादि स्फुटं ज्ञेयं विजानता।
इत्याधिक्येऽयनांशानामल्पत्वे त्वल्पमन्तरम्॥२१॥

देशांतर के वश विशेष कहकर अब कालांतर वश विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वाचार्य जब अयनांश का अभाव था उस समय दृक्कर्म के द्वारा ध्रुवक तथा स्फुट शर बताते थे। लेकिन अयनांश के कारण इनमें अन्तर पड़ता है। अस्फुट शरज्या से स्फुट शर विपरीत विधि से ज्ञात करे। इनकी सहायता से अयन दृक्कर्म का विपरीत विधि से संस्कार करके स्फुट ध्रुवक ज्ञात करे। अब अयनांश वशाद शुद्ध दृक्कर्म ज्ञात करके ध्रुवकों में संस्कार करके शुद्ध ध्रुवाँक तथा शर ज्ञात करे। इनके द्वारा नक्षत्र ग्रह योग (युति) स्फुट ज्ञात करे। यह विधि तब उपयोग में लेवें जब अयनांश अधिक हो। अल्प अयनांश होने पर अन्तर अल्प होता है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के भग्रहत्यधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१२

अथ पाताधिकारः

अथ पाताध्यायो व्याख्यायते। तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह—

भावाभावे गतैष्यत्वे पातस्य विदुषां भ्रमः।
पूर्वेषां यत्र वक्ष्येऽहं तत्साधनमपि स्फुटम्॥१॥

पाताध्याय के आरंभ करने का प्रयोग—

सूर्य-प्रभा टीका— पात होने अथवा न होने के संबंध में जानने में पूर्व विदुषि भी भ्रमित हो जाते हैं। उस पात के साधन की विधि भास्कराचार्य बता रहे हैं।

अथार्कस्य गोलायनसन्धिप्रतिपादनार्थमाह—

चक्रे १२ चक्रार्धे ६ च व्ययनांशेऽर्कस्य गोलसन्धिः स्यात्।
एवं त्रिभे च ३ नवभे ९ ऽयनसन्धिर्व्ययनभागेऽस्य॥२॥

सूर्य की गोल संधि-अयन संधि का प्रतिपादन—

सूर्य-प्रभा टीका— १२ राशि तथा ६ राशि अयनांश रहित पर सूर्य की गोल संधि तथा ३ राशि तथा ९ राशि अयन रहित पर अयन संधि होती है।

स्पष्टीकरण— यहाँ ये संधियाँ आचार्य ने अपने समय के ११° अयनांश के कारण १२ राशि – ११° = ११ राशि १९ अंश तथा १८०° = ६ राशि – ११° = ५ राशि १९ अंश गोल संधियाँ कही हैं। तथा ३ राशि – ११° = २ राशि १९° तथा ९ राशि – ११° = ८ राशि १९ अंश अयन संधियाँ बताइ हैं।

उपपत्ति— क्रांतिमंडल का मेषारंभ से पश्चिम की ओर अयनांश तुल्य अन्तर पर विषुवन्मण्डल के साथ संपात होता है वहाँ रवि गोल संधि होती है। विषुवन्मण्डल में ही याम्योत्तर गोल विभाग की संधि होती है। इस प्रकार संपात से तीन राशि अंतर पर उत्तर परम क्रांति होती है, वहाँ रवि अयन संधि होती है। यहाँ से ही सूर्य की दक्षिण की ओर गमन प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार संपात

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से पीछे के ओर तीन राशि अन्तर पर परम दक्षिण क्रांति होती है, वहाँ से सूर्य की उत्तर गमन प्रवृत्ति होती है। यह इस प्रकार अयन संधि उपपन्न होती है।

समान की गई भूमि पर कर्कटक (गोला प्रकार) से एक वृत्त बनावे उस पर ३६०° अंकित करे। ध्रुव को देखकर सम्यग् दिशायें अंकित करे। इन दिशाओं के मध्य (वृत्त के मध्य केंद्र पर) एक सूक्ष्म सीधा कीलक (शंकु) गाडे। प्रातः काल में पश्चिम भाग में स्थित होकर दृष्टा हाथ से कीलक (शंकु) से बंधे हुए सूत्र को अर्धोदित सूर्य को वेध्य करे तथा त्रिज्यावृत्त में पूर्व भाग में वहाँ चिन्ह लगावे। इस प्रकार विध्य करते हुए जिस दिन ठीक पूर्व दिशा में सूर्य उदित होता हुआ दिखाई देवे वह दिन विषुवद्दिन होता है। उसय दिन का गणित से स्फुट सूर्य ज्ञात करे। वहाँ पर सूर्य मेषारंभ से जितने अंतर पर हो वह अयनांश होता है। यहाँ से सूर्य का उत्तर गमन होता है अर्थात् रोजाना उत्तर की ओर उदित होता हुआ होता है। इस प्रकार वह तुलारंभ से अयनांश तुल्य दूरी से दक्षिण की ओर जाता है। इस प्रकार प्रतिदिन वेध करने से जिस दिन परम उत्तर दिशा में सूर्य उदित हो वह दिन तथा परम दक्षिण दिशा में उदित हो वह दिन अयन दिन होता है। इन दोनों के मध्य सूर्य की दक्षिण गमन प्रभृति होती है तथा जहाँ से परम दक्षिण की ओर उदित होता है वहाँ से परम उत्तर की ओर उदित होने के स्थान तक (उत्तरायन) उत्तर गमन प्रभृति होती है।

इसी प्रकार चंद्रमा की गोल तथा अयन संधियाँ वेध से ज्ञात करे।

विशेष— आचार्योक्त बात सिद्धान्त ग्रंथों की मूल भूत बात है जो सभी आचार्यों ने मानी तथा कही हैं। अतः यहाँ उसके लिए उद्धरण नहीं दिये जा रहे हैं।

अथ चन्द्रस्य विशेषमार्याचतुष्टयेनाह—

अयनांशोनितपादाद्वोः कोटिज्ये लधुज्यकोत्थे ये।
ते गुणसूर्यैः १२३ अश्वैः ७ गुणिते भक्ते कृतैः ४ सूर्यैः १२॥३॥
अयनांशोनितपाते मृगकर्क्यादिस्थिते द्विषड्रामैः ३६२।
कोटिफलयुतविहीनैर्बाहुफलं भक्तमाप्तांशैः॥४॥
मेषादिस्थे गोलायनसन्धी भास्करस्योनौ।
तौ चन्द्रस्य स्यातां तुलादिषड्भस्थिते तु संयुक्तौ॥५॥
गोलायनसन्ध्यन्तं पदं विधोरत्र धीमता ज्ञेयम्।
रविगोलवदस्पष्टा स्पष्टा क्रान्तिः स्वगोलदिक् शशिनः॥६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चन्द्रमा की चारों संधियों के लिए विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— अयनांश ऊनित पात की ज्या तथा कोटिज्या लघुज्या प्रकार से ज्ञात करके उनको क्रमशः १२३ से तथा ७ से गुणा करके क्रमशः ४ व १२ से विभक्त करने से प्राप्तफल क्रमशः बाहुफल तथा कोटिफल होते हैं। अयनांश रहित पात यदि मकरादि में (मकर से कर्कारंभ तक) स्थित होने अथवा कर्क्यादि (कर्क से मकरांभ) स्थित होने पर ३६२ में कोटिफल क्रमशः युत तथा हीन करके प्राप्तफल से बाहुफल को विभक्त करे। प्राप्तफल के अंशादि ग्रहण करे। यदि अयनांश उनित पात मेषादि छः राशि में हो तो पूर्व प्राप्त अंशादि फल को रवि की गोल व अयन संधियों में से घटाने से चंद्रमा की गोल तथा अयन संधियाँ होती हैं तथा तुलादि छः राशि में स्थित होने पर युत करने से चंद्रमा की गोल तथा अयन संधियाँ होती हैं। प्रथम गोल संधि से लेकर अयन संधि तक तीन राशि तक प्रथम पद कहते हैं। उससे आगे तीन राशि तक द्वितीय गोल संधि अन्त तक द्वितीय पद कहते हैं। इसी प्रकार तृतीय तथा चतुर्थ पद होता है। चंद्रमा की क्रांति सूर्य क्रांतिवत् साधित करे। प्राप्त क्रांति की दिशा रवि गोल वश होती है न कि स्वगोल वशाद। उसमें शर का संस्कार करने से वह स्वगोल दिशा की होती है।

उपपत्ति— यहाँ सूर्य की गोल, अयन संधि के द्वारा जो चंद्रमा की अयन-गोल संधि कही गई हैं उसका कारण बताते हैं। सूर्य का क्रांतिवृत्त तथा विषुवत् वृत्त का संपात, गोल संधि होती है और चंद्रमा की गोल संधि विषुवन्मण्डल तथा विमण्डल का संपात होता है। चंद्रमा विमण्डल में भ्रमण करता है उसके संपात पर वह पूर्व दिशा में उदित होता है तब वहाँ स्थित चंद्रमा की स्फुट क्रांति में शर का संस्कार करने से शून्य होता है, इसका यह अर्थ हुआ। इसके आगे तथा पीछे तीन राशि अंतर पर स्फुट परम क्रांति होती है। इन्हीं स्थानों पर चंद्रमा की यथा संख्या उत्तर-दक्षिण परम सीमा होती है। अतः ये चंद्रमा की अयन संबंधि स्थान उपपन्न होते हैं।

अब पहले आचार्य द्वारा गोलाध्याय के प्रश्नाध्याय में कथित उदाहरण को यहाँ लेते हैं। यथा—

"युक्तायनांशोंऽशशतं १०० शशी चेदशीति ८० रर्कोद्विशती २०० विपातः।
चन्द्रस्तदानीं वद पातमाशु धीवृद्धिदं त्वं यदि बोबुधीषि॥"

इस श्लोक का अर्थ यह है कि 'यदि तुम लल्लाचार्य ने अपने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में जो कुछ कहा है वह जानते हो तो चंद्रमा १००°, सूर्य ८०° तथा राहु से चंद्रमा २००° पर यदि हो तो पात होने का समय ज्ञात करके कहो ?

अयनांश ११ अंश है अतः रवि २ राशि ९ अंश, चंद्रमा २ राशि २९ अंश तथा पात ३ राशि २१ अंश हुआ। प्रश्न में जो विपात चंद्र कहा गया है वह धीवृद्धिद ग्रंथ के अभिप्रायानुसार कहा है। वहाँ 'चक्राच्छोधितः पात' कहा है। अतः वहाँ का विपात यहाँ के सपात के तुल्य है। यहाँ अयनांश उनित पात ३।१० राश्यादि है इसकी ज्या, कोटिज्या लघुज्या प्रकार से ११८ और २१ है। यहाँ ज्या के मान को १२३ से गुणा करके ४ से विभक्त करने से ३६२८।३० भुजफल तथा कोटिज्या को ७ से गुणा करके १२ से विभक्त करने से १२।१५ कोटिफल प्राप्त होता है। ३६२ में से कोटिफल को घटाने से ३४९।४५ प्राप्त हुआ। अयनांश ऊनित पात ३।१० कर्क्यादि में स्थित है अतः कोटिफल को घटाये हुए से बाहुफल को विभक्त करने से लब्धि १०।२२।२८। इसको रवि की गोलसंधि व अयन संधि में से घटावे क्योंकि अयनांश ऊनित पात, मेषादि छः राशियों में स्थित है। इस प्रकार करने से चन्द्रमा की गोल-अयन संधि ११।८।३७।३२;२।८।३७।३२ तथा अन्य ५।८।३७।३२;८।८।३७।३२ है।

यहाँ स्वगोल संधिस्थ चंद्रमा की स्फुटशर, स्फुट क्रांति पूर्ण होती है।

गोल में कहे गये अनुसार क्रान्तिवृत्त में बद्ध मेषादि से विलोम चन्द्र पात के राश्यादि ज्ञात करके चिन्ह लगावे। इसी प्रकार विमण्डल में भी करे। विमण्डल का वहाँ संपात करके उससे पूर्व में तीन राशि अंतर पर ४।३० अंश पर क्रांतिमंडल के उत्तर की ओर तथा पश्चिम में तीन राशि अंरत पर इतने ही अंशों पर दक्षिण की ओर विमण्डल को विन्यास करके स्थिर कर देवे। इस प्रकार करने से विमंडल विषुवन्मण्डल से जहाँ संपात करे वहाँ चंद्रमा की गोल संधि होती है। इससे रवि गोल संधि कितने अंतर पर स्थित है यह ज्ञात नहीं है, लेकिन रवि गोल संधि का जो विक्षेप है वह ज्ञात है। रविगोल संधि में से अयनांश घटाने से ११।१९ राश्यादि हुआ। यहाँ पर स्थित चंद्र का शर साधन करने के लिए चंद्रमा से चंद्र का पात जितना होता है उतना ही अयनांश अनित पात होता है। उसकी ज्या को परमशर २७० से गुणा करके त्रिज्या (१२०) से विभक्त करे। इस प्रकार करने से गुणक भाजक को ३० से अपवर्तित करने से गुणक स्थान पर ९ तथा हार स्थान पर ४ प्राप्त होता है। इस प्रकार प्राप्तफल उस स्थान

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पर चंद्र का शर होता है। इतनी ही वहाँ उसकी स्फुट क्रांति होती है। अस्फुट क्रांति होती है इतनी स्फुट क्रांति कितने भाग पर होती है यह ज्ञात कर सकते हैं। क्रांति साधन के लिए १५° के खंडों की स्थूल क्रांति बह्मगुप्तादि ने कही है। यथा–

"क्रान्तिकला द्विरसगुणास्त्रिखमुनयो द्विखदिशो वसुत्र्यर्काः।
वसु वसुविश्वे च खकृतमनवश्च क्षेपयुतवियुताः। इति।"

अर्थात् ६ खंडों की क्रांति कला ३६२।७०३।१००२।१२३८।१३८८।१४४० होती है, यदि त्रिज्या ३४३८ हो।

तथा शर खण्ड इस करण में इस प्रकार कहे हैं–

"खश्वा बाणर्तवोऽङ्गाक्षास्त्र्यब्धयो भानि खेचराः। इति।"

७०।६५।५६।४३।२७।९।

अर्थात् छः खंडों की शर कला ७०।१३५।१९१।२३४।२६१।२७० होती है।

अर्थात् परम क्रांति २४° की ज्या = १४४० तथा शर = २७० होती है। अतः ३६२ में तत्स्थानीय शर खंड से संस्कृत करने से जितना होता है वह स्फुट क्रांति खंड होता है। अब तत्स्थानीय शरखण्ड कितना है यह ज्ञात करने का उपाय बताते हैं।

यदि त्रिज्या तुल्य १२० कोटिज्या में प्रथम शर खण्ड ७० कला तुल्य होता है तो अयनांश ऊनित पात की कोटिज्या में कितनी होगी?

अर्थात् $\frac{\text{कोज्या (पात} - \text{अयनांश)} \times ७०}{१२०} = \frac{\text{कोज्या (पात} - \text{अयनांश)} \times ७}{१२} =$

तत्स्थान का शरखंड प्राप्त होता है। इसको भास्कराचार्य ने कोटिफल कहा है। यदि अयनांश ऊनित पात मकरादि छः राशियों में स्थित हो तो वहाँ स्थिति से तीन राशि आगे चन्द्र की स्फुट परम क्रांति २४° से अधिक होती है तथा कर्क्यादि छः राशि में स्थित होने पर कम होती है। स्फुट खंड के लिए अनुपात किया कि यदि इतने खण्ड में १५° चाप विमण्डल में या क्रांतिमंडल में चाप गत प्राप्त होते हैं तो पूर्वप्राप्त शर तुल्य में कितना होगा? पूर्व में शरसाधन में ज्या को ९ से गुणा तथा ४ से भाग दिया गया है, तब यह प्राप्त किया है। अब यहाँ १५ से गुणा तथा (३६२ – कोटिफल) हार है। इस प्रकार दोनों गुणा के अंकों का गुणा १५×९=१३५ होता है। इससे स्फुट शर ज्ञात करे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार तीन राशि युक्त ग्रह की द्युज्या को त्रिज्या से गुणा करने से स्फुट शर होता है। वहाँ स्थित चंद्र सायन अंश पूर्ण होता है। यहाँ तीन राशि युत करने से द्युज्या परमद्युज्या होती है। अतः १३५ से परमद्युज्या को गुणा करके त्रिज्या से भक्त करने से $\frac{१३५ \times ११०}{१२०}$ = १२३ प्राप्त होता है। इस प्रकार अयनांश ऊनित पात की ज्या को १२३ से गुणा करके ४ से विभक्त करे। इस भुजफल को ३६२ में कोटिफल कम-अधिक करके प्राप्तफल से विभक्त करने से प्राप्त अंशादि फल को रवि की अयनांश ऊनित गोल तथा अयन संधि में से कम करने से चंद्र की गोल तथा अयन संधि होती है। क्योंकि पात विलोम गति से उस स्थान से विषुवदमण्डल से दक्षिण की ओर क्रांतिवृत्त में होता है। वहाँ स्थित विमण्डल का पूर्वार्ध जितना उत्तर की ओर परम विक्षेप अंश पर होता है उतने ही अंश पर रवि गोल संधि पश्चिम की ओर होती है, उसका विषुवन्मण्डल के साथ संपात होता है। इसी प्रकार तुलादि में स्थित होने पर इससे विपरीत होता है।

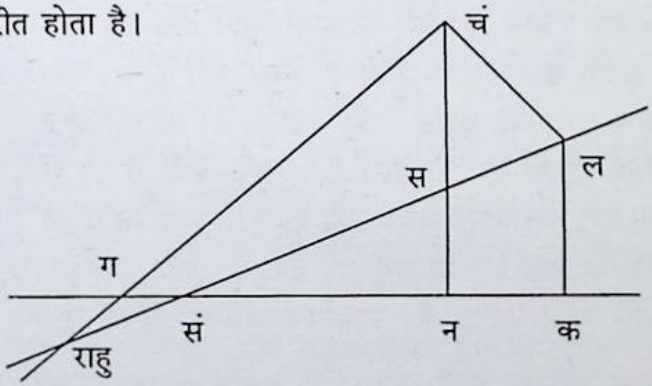

चित्र में ग सं न क = नाडीवृत्त। रा सं स ल = क्रांतिवृत्त। ग = चंद्रगोल संधि। ग चं = चंद्र पाथ। सं = सूर्य गोल संधि। ल क = चं की अस्फुट क्रांति। चं ल = चंद्र का अस्फुट विक्षेप। चं न = चंद्र की स्फुट क्रांति।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के पाताधिकार में चन्द्र के स्पष्टपात आनयन की रीति बताई है। यह आचार्योक्त के स्वल्पांतर से तुल्य है। श्री सुधाकर द्विवेदी ने महासिद्धान्त की स्वकृत टीका में यह गणना की है। वहाँ इसका अवलोकन कर सकते हैं।

"व्यस्तायनांशसंस्कृतपातज्या कोटिज्या मसै भक्ता।
गनधै तद्युतहीनैस्तत्पाते मृगकुलीराद्ये ॥२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोर्ज्यां विभजेदंशैर्व्यस्तायनसंस्कृताः पदविरामाः।
भार्धोनाधिकपाते हीनाढ्यास्ते भवन्ति शीतांशोः॥३॥''

पं. सुधाकर द्विवेदी जी के अनुसार श्लोक में 'गनधै' के स्थान पर 'गलधै' होना चाहिये।

अथ साधरण्येन क्रान्तिसाम्यसंभवज्ञानमाह—

स्वायनसन्धाविन्दोः क्रान्तिस्तत्कालभास्करक्रान्तेः।
ऊना यावत् तावत् क्रान्त्योः साम्यं तयोर्नास्ति॥७॥

साधारण प्रकार से क्रांतिसाम्य संभव ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस दिन जितनी घटी पर स्फुट चंद्र स्वअयन संधि पर हो उसकी स्फुट क्रांति साधित करे तथा उतने काल पर जहाँ रवि हो उसकी क्रांति साधित करे। यदि सूर्य क्रांति से चंद्र क्रांति अल्प हो तो इसका अर्थ है जितनी अल्प है उतने समय में उनकी क्रांतिसाम्य होने की संभावना नहीं है।

उपपत्ति— स्वअयन संधि पर स्थित चंद्रमा की जो क्रांति होती है वह उसकी परम क्रांति होती है। उस स्थान से आगे तथा पीछे चन्द्रमा के चलने पर उसकी क्रांति इससे अन्य होती है इतनी नहीं होती। अतः इससे आगे रविक्रांति के साथ उसकी क्रान्ति साम्य नहीं होती। यह उपपन्न हुआ।

आचार्य इसको एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं कि जितना अल्प है उतनी अथवा तब तक क्रांति साम्य नहीं होती का क्या अभिप्राय है? अयनांश कम छः राशि पर पात है तथा सूर्य चंद्र क्रमशः २।१९ तथा २।१९ हैं जिससे वे अयन संधि तुल्य २।१९ हैं। स्वअयन संधि पर स्थित चन्द्रमा की क्रांति ११७० है तथा रवि की क्रांति १४४० है अर्थात् चंद्र क्रांति $२४^\circ - ४\frac{१^\circ}{२} = १९\frac{१}{२}$ = ११७० तथा सूर्य की क्रांति २४° है, क्योंकि यहाँ चंद्र विमण्डल नाडीवृत्त तथा क्रांतिवृत्त के मध्य में है। अतः चंद्र की क्रांति जब अधिकतम हो तब वह सूर्य क्रांति से अल्प होती है तथा तब उनका क्रांति साम्य नहीं होता। उतने काल आगे १३।४० दिवस पर रवि चंद्र तथा पात अपनी मध्यम गति से चलते हुए सूर्य ३ रा.२अं.२८क.१२वि०' चंद्र ८रा.१९ अं.४क.२६वि. तथा राहु ६ रा. ११अं.४३क.२८ वि. होते है। यहाँ चंद्रमा द्वितीय अयन संधि पर ८ रा. १९अं.९क.३५ वि. होता है तथा यहाँ इसकी अधिकतम क्रांति ११६९ होगी। वहाँ उस समय पर सूर्य की क्रांति १३९८ होगी। यहाँ भी चंद्र

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की क्रांति सूर्य की क्रांति से अल्प है अतः क्रांन्ति साम्य नहीं है। फिर १३।४० दिवस आगे भी क्रांति साम्य का अभाव होता है। इस प्रकार प्रथम काल से दो मास तक क्रांति साम्य का अभाव रहता है। यदि गोल संधि (बापूदेव शास्त्री के अनुसार तुलादि) पर पात हो तथा सूर्य दक्षिणायन या उत्तरायन संधि पर हो तब तक क्रांतिसाम्य का अभाव रहता है।

आचार्य ने यहाँ जो कहा है वह आगामी श्लोकोक्त की पृष्ठ भूमि के रूप में कहा है।

अथ व्यतिपातवैधृतयोर्लक्षणमाह—

व्यतिपातोऽयनभेदे गोलैकत्वेऽर्कचन्द्रयोः क्रान्त्योः।
साम्ये वैधृत एकायनेऽन्यदिगपक्रमसमत्वे॥८॥

व्यतिपात वैधृति लक्षण—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि सूर्य चंद्र विपरीत अयन में हो लेकिन एक ही गोल में स्थित हो तथा उनकी क्रांति तुल्य हो तो व्यतिपात योग होता है और यदि सूर्य चंद्र दोनों एक ही अयन में हो तथा विपरीत गोल में हो और उनकी क्रांति तुल्य हो तब वैधृति योग होता है।

पूर्व श्लोक में जो आचार्य ने क्रांतिसाम्य होने न होने के लक्षण कहे हैं यहाँ उन लक्षण विशेष का नाम व्यतिपात तथा वैधृति बताया है।

शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में लल्लाचार्य ने व्यतिपात वैधृत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"तुल्येऽयने भिन्नदिशो रविन्द्वोः स्याद् वैधृश्चक्रसमें समासे।
भिन्नेऽयने तुल्यदिशोस्तु योगे चक्रार्धतुल्ये व्यतिपात योगः॥१॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"चक्रार्धेऽर्कशशियुतौ भिन्नायनयोरपक्रमसमत्वे।
रविशशिनोः सममधुधृत योगाद्विषदो व्यतीपातः॥३३॥
चक्रे वैधृतमेकायनस्थयोः क्रान्तिजीवयो साम्ये।
इन्धनरविमणियोगादग्निवदूनाधिककलाभ्यः॥३४॥
व्यतिपातोऽपक्रमोर्दिक् साम्यो वैधृतो दिगन्यत्वे।
अधिको न्यून कल्पयोदिग्भेदे ऽपक्रमः शशिनः॥३७॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"भवनदलसमासे क्रान्तिसाम्ये रवीन्द्वोर्नियतमयनभेदे गोलयोर्दिक् समत्वे।
दिनमणिमणिनीलात् सोमसूर्याश्मयोगादपि दहन इवाशु स्याद् व्यतीपातनामा॥
अयनकृत समत्वे गोलयोर्भिन्नदिक्त्वेदिनकर शशियोगे चक्रतुल्ये च जाते।
तदपमसमतायां मङ्गलोन्मूलनार्थ विषमिव मधुसर्पित्साम्यतो वैधृतः स्यात्॥
नयति शशिशरश्चेत् स्वां दिशं क्रांतिचापं समधिकतनुरन्यक्रांतिसीम्नस्तदानीम्।
अधिकतरपीह न्यूनमेव प्रकल्पं तुहिनकिरणमर्त्तेस्तत् स्फुटं क्रांतिचापम्॥"

सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा।
तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः॥१॥
विपरीतायनगतौ चद्रार्कौ क्रान्तिलिप्तिकाः।
समास्तदा व्यतीपातो भगणार्धे तयोर्युतौ॥२॥"

अतस्तज्ज्ञानार्थं संभवमाह—

सायनरविशशियोगो भार्धं ६ चक्रं १२ यदा तदासन्नः।
तत्संभवस्तदूनाधिकलिप्ता भुक्तियोगहृताः॥९॥
लब्धदिनैरेष्यगतैस्तात्कालिकयोरपक्रमौ साध्यौ।

पात का गत-गम्य ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस दिन रवि तथा चन्द्र के पृथक्-पृथक् सायन अंशों का योग छः राशि हो अथवा १२ राशि हो तो उस काल के आसन्न आगे अथवा पीछे क्रमशः व्यतिपात अथवा वैधृति योग होने की संभावना होती है। यदि उनका योग छः राशि अथवा १२ राशि पूर्ण न हो तो उसमें जितना कम हो उतनी कला में और यदि छः राशि या १२ राशि से अधिक हो तो जितना अधिक हो उतनी कला में सूर्य-चंद्र की स्फुट गति योग का भाग देने से प्राप्तफल दिनादि होते हैं। यदि कम कलाओं को विभक्त किया है तो पात होने में ऐष्य दिन प्राप्त होते हैं और यदि अधिक कलाओं को विभक्त किया है तो इतने दिवस पूर्व पात गत हो चुका होता है।

पूर्वोक्त न्यूनाधिक कलाओं तथा दोनों के गति योग से अनुपात करे कि रवि और चंद्र के गति योग में एकदिन पाते हैं तो न्यूनाधिक कला में क्या? इस प्रकार करने से जो लब्ध दिन प्राप्त हो उनको अपने चालन फलों के न्यून में रवि चंद्र और पात में जोड़ना चाहिये तथा अधिक में हीन करना चाहिये। तब चक्रार्ध तथा चक्र कालिक रवि चंद्र तथा पात प्राप्त होते हैं। इससे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तात्कालिक रवि क्रान्तिज्या साधित करे। उसका चाप रवि क्रांति तात्कालिक होती है। चंद्र क्रांति चाप में उसके शर को युक्त-हीन करने से उनकी क्रांति होती है।

उपपत्ति— यदि सूर्यचंद्र की क्रांति का योग छः राशि अथवा बारह राशि हो तो उनकी आसन्न क्रांतिसाम्य होती है। जब इनका योग छः अथवा बारह राशि होता है तब उनके भुज तुल्य होते हैं। भुज के तुल्य होने से चंद्र तथा सूर्य की स्फुट क्रांति तुल्य होती है।

विशेष— **ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"भुजैक्यलब्धदिवसैरवीन्दुपाता युतोनकाः स्वफलैः।
अर्कक्रान्तिज्या धनुरिन्दोर्विक्षेपयुक्तोनम्॥३५॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है लेकिन क्रांतिसाधन नहीं कहा है। यथा–

"तपनशशिसमासे चक्रचक्रार्धहीनाधिकतरकलिकास्तद्भुक्ति योगेन भक्ताः फलमिह दिवसाद्यं स्यात् क्रियन्ते अनुपातात् स्वफलयुतविहीनाः सूर्यशीतांशुपाताः॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के व्यतीपात वैधृति अधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"चक्रार्धचक्राधिकहीनलिप्ताः खषडगुणा भुक्तिसमासभक्ताः।
भवन्ति नाडयो गतगम्यसंज्ञास्तात्कालिकौ तौ च तमश्च कुर्यात्॥२॥
तयोरपि क्रान्तिकलाः समाश्चेत् तदा भवेन्मध्यमपातकालः।$\frac{१}{२}$।"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दत्तायनयोर्योगे चक्र चेद्वैधृतिस्तदार्केन्द्वोः।
भार्धतद्यपि पातः कालोऽसौ मध्यपाताख्यः॥१॥"

इदानीं तस्मात् कालात् क्रान्तिसाम्यस्य गतैष्यत्वप्रतिपादनार्थमाह—

ओजपदेन्दुक्रान्तिर्महति सूर्यापमाल्लघुः समजा॥१०॥
यदि भवति तदा ज्ञेयो यातः पातस्तदन्यथा गम्यः।

पूर्वोक्तकाल से क्रांति साम्य का गतऐष्य प्रतिपादन—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि विषम पद में स्थित चन्द्र की क्रांति सूर्य क्रांति से अधिक हो तो पात गत होता है। यदि सम पद में स्थित चंद्र की क्रांति सूर्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रांति से अल्प हो तब भी पात गत होता है। इनसे विपरीत होने पर पात ऐष्य होता है।

उपपत्ति— विषम पद में स्थित चंद्र की क्रांति उपचित होती है। जैसे-जैसे ग्रह आगे बढ़ता है वैसे-वैसे उसकी क्रांति विषम पद में उपचित होती है। प्रथम तथा तृतीय पाद की गोलसंधि के आंरभ से तीन राशि आगे अन्तर पर क्रांति परम होती है। अतः विषमपद में स्थित होकर जैसे-जैसे आगे बढ़ता है (चंद्रमा) वैसे-वैसे क्रांति उपचित होती है। वहाँ से तीन राशि अंतर पर आगे द्वितीय गोल संधि तक समपद होता है वहाँ पर स्थित होकर जैसे-जैसे ग्रह आगे बढ़ता है वैसे-वैसे क्रांति का अपचय होता है। यह द्वितीय तथा चतुर्थ पद में होता है। अतः ओज पद में स्थित चंद्रमा की क्रांति यदि सूर्य की क्रांति से अधिक हो तो उससे आगे चलने पर उसकी क्रांति और भी अधिक होगी और जैसे-जैसे चन्द्रमा पीछे चलेगा वैसे-वैसे उसकी क्रांति कम होगी। इस प्रकार कम होते हुए रवि क्रांति के तुल्य (साम्य) होगी, जो गत हो चुकी है। अब सम पद में स्थित चंद्र की क्रांति सूर्य क्रांति से अल्प हो तो वहाँ चंद्रमा के पीछे चलने से उसकी क्रांति बढ़ेगी तथा इस प्रकार बढ़ते हुए एक स्थान पर उसकी क्रांति सूर्य क्रांति के तुल्य (साम्य) होगी, जो गत हो चुकी है। इन लक्षणों के विपरीत लक्षण होने पर क्रांति साम्य ऐष्य होगा, यह ज्ञात होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुट गत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"मेष तुलादाविन्दोरपक्रमेरव्यपक्रमादूने।
एष्यत्यधिकोऽतीतो विपरीतः कर्कमकरादौ॥३८॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय ८ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"विषमपदसमुत्थेऽपक्रमे शीतरश्मेर्महति खलु गतोऽर्कक्रान्तितः पातकालः।
लघुवपुषि च भावी कर्कनक्रादिजाते स भवति भविता चेत् स्याल्लधीयस्यतीतः॥"

सूर्य सिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अथौजपदगस्येन्दोः क्रान्तिर्विक्षेपसंस्कृता।
यदि स्यात अधिका भानोः क्रान्तेः पातो गतस्तदा॥७॥
ऊना चेत् स्यात् तदा भावी वामं युग्मपदस्य च।
पदान्यत्वं विधोः क्रान्तिर्विक्षेपाच्चेद्विशुद्धयति॥८॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के व्यतिपातवैधृत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''अयुगग्मजश्चान्द्रमसोऽपमश्चेदपक्रमाद् भानुमतोऽधिकः स्यात्।
समोद्भवो वापि लघुस्तदेतो विपातकालो भवितान्यथातः॥५॥''

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''स्पष्टे क्रान्ती साध्ये रव्यपमादैन्दवोऽल्प ओजस्थः।
समजोऽपमोऽधिको वा गम्यः पातस्तदाऽन्यथा पातः॥४॥''

अथ तस्मात् कालाद्गतगम्यस्य क्रान्तिसाम्यकालस्य परिज्ञानमार्योत्तरार्धादारभ्य सार्धेनार्यात्रयेणाह—

तत्क्रान्त्योरेकदिशोरन्तरमैक्यं विभिन्नदिशोः॥११॥
कार्यं व्यतिपाताख्ये तदन्यथा वैधृते प्रथम एवम्।
गतगम्येष्टघटीभी रवीन्दुपातान् प्रचाल्य साध्योऽन्यः॥१२॥
आद्यान्यकालयोरपि यदि गम्यं लक्षणं गतं यदि वा।
आद्यान्ययोस्तदान्तरमतोऽन्यथैक्यं च तेन हृताः॥१३॥
आद्यगुणा नाड्योऽसकृदिष्टाः स्पष्टाः स्युरेवमेतासु।
चक्रार्धचक्रकालाद्गतगम्यं पातमध्यमाद्यवशात्॥१४॥

पूर्वोक्त क्रांति के द्वारा क्रांतिसाम्य के गत गम्य काल, उत्तरार्ध तथा आरंभ से अर्ध काल तीनों का परिज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— व्यतिपात काल में दोनों क्रांति यदि एक दिशा में हो तो उनका अन्तर तथा भिन्न दिशा में हो तो योग ज्ञात करे और वैधृति काल में इससे विपरीत करे। इस योग अथवा अन्तर को 'आद्य' कहे। इसी प्रकार इष्ट घटी कल्पित करके उससे चन्द्र-रवि-पात की गतियों को गुणा कर के साठ से विभक्त करने से जो कलादि प्राप्त हो, गत-गम्य पात काल में उसको रवि-चंद्र और पात में धन-ऋण करके रवि-चंद्र की क्रांति ज्ञात करे। इनसे पूर्ववत द्वितीय राशि 'अन्य' ज्ञात करे।

इस प्रकार प्राप्त 'आद्य' और 'अन्य' दोनों, पात ऐष्य अथवा गत दर्शाये तो दोनों का अंतर करे अन्यथा योग करे अर्थात् दोनों में से एक ऐष्य तथा दूसरी गत हो तो दोनों का योग करे। यह छेद है। 'आद्य' राशि तथा कल्पित इष्ट समय के गुणा में इस छेद का भाग देने से प्राप्तफल घटी पातमध्य होता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। यह पात के समय सूर्य-चंद्र के छः राशि अथवा बारह राशि योग के पूर्व का समय है। यदि प्रथम प्राप्त क्रांतिद्वय से गत पात का बोध होता है और पश्चात् का समय है यदि इनसे (प्रथम प्राप्त दोनों क्रांति से) पात एष्य का बोध होता है।

उदाहरण— यहाँ आचार्योक्त सूत्र को पूर्व श्लोक ३ से ६ की व्याख्या में कथित उदाहरण के द्वारा ही प्रदिर्शत करते हैं। वहाँ चंद्रमा १००, सूर्य ८० तथा पात २०० आदि कहा गया है। अतः चंद्र २।२९, सूर्य २।९ तथा पात ३।२१ है। इनको तात्कालिक कल्पित करते हैं तो इन सायन सूर्य-चंद्र का योग छः राशि होता है। रवि २।२०+ चंद्र ३।१०= ६।० राशि। अतः यहाँ व्यतिपात संभव है। यहाँ रवि की गोल व अयन संधि ११।१९ तथा २।१९ है तथा चंद्र की ११।८।३७।३२ तथा २।८।३७।३२ है। यहाँ चंद्रमा २।२९ है। इसके आसन्न अयन संधि है उसको ग्रहण किया है। चंद्रमा को अयन संधि तुल्य मान कर स्फुट क्रांति साधन करने से १४१७ होती है।

अब तात्काल सूर्य की क्रांति ज्ञात करते हैं। जिस समय चंद्रमा स्वअयन संधि तुल्य होगा उस समय पर जो सूर्य होगा वह तत्काल सूर्य है। अभी अयनसंधि चन्द्र से कम है तब अयनसंधि से आगे वह कितने समय में गया? चन्द्र की स्व अयन संधि से उसकी अन्तर कला को चन्द्र की भुक्ति से विभक्त करने से प्राप्त दिन संख्या में वह स्वअयन संधि पर स्थित होगा यह ज्ञात होता है। यहाँ उदाहरण में चंद्रमा का स्वसंधि से अन्तर २०।२३ अंशादि (२।२९ – २।८।३७) है। इसकी कलाओं को चंद्र भुक्ति से विभक्त करे। यहाँ सरलता के लिए चंद्र भुक्ति (गति) ७८० मान लेते हैं तथा रवि की भुक्ति ६० मान लेते हैं। २०।२३ अंशादि की १२२३ कला में चंद्र भुक्ति ७८० का भाग देने से १।३४ दिनादि प्राप्त होते हैं। इतने काल में चंद्रमा अपने पूर्व स्थान से अयन संधि पर आ जावेगा। इतने काल में रवि चलेगा तब तत्काल रवि २।७।२६ होता है। इसकी क्रांति १४१० होती है। इससे चंद्र की स्वअयन संधि की क्रांति १४१७ क्रांति साम्य से अधिक है।

शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के 'सूर्यापमादोजपदोद्भव' इत्यादि में कथित लक्षणों से क्रांति साम्य का अभाव है। तथा ब्रह्मगुप्त के पक्ष से 'त्रिनवगृहेन्दुक्रान्ति' इत्यादि अनुसार लक्षण होने से और सिद्धान्त शेखरोक्त 'त्रिनव भवनजाता क्रांन्ति' इत्यादि लक्षणों से एवं माधवाचार्य के सिद्धान्त चूडामणि ग्रंथोक्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'खेरोजपदक्रान्तेश्चन्द्रयुग्मपदोद्भवा। स्वल्पा चेन्न तयोः क्रान्त्योः साम्यं स्यादन्यथा भवेत् ॥'' में कथित लक्षणों के अनुसार क्रांतिसाम्य का यहाँ अभाव है।

भास्कराचार्य ने स्वकृत उपपत्ति में जो दो उदाहरण देकर यह दिखाने का प्रयास किया है कि उनके कथन के अनुसार तो पात होता है जो सही है लेकिन अन्य आचार्य जैसे लल्ल, ब्रह्मगुप्त, श्रीपति, माधवाचर्य आदि के कथनों के अनुसार पात का अभाव होता है। लेकिन उनका यह कहना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि अन्य आचार्यों ने, भास्कराचार्य स्वयं के द्वारा उक्त श्लोक ९ तथा के $९\frac{१}{२}$ अनुरूप ही अपने श्लोकों में कहा है जिनको भास्कराचार्य ने उद्धृत किया है। यथा–

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के व्यतिपात वैधृत्यधिकार में–

''सूर्यापमादोजपदोद्भवाच्चेद्युग्मादिजश्चन्द्रमसो लघीयान्।
अपक्रमः स्यान्न तदास्ति पातस्तदन्यथात्वेऽपमयोः समत्वम्॥४॥
अयुग्मजश्चन्द्रमसोऽपमश्चेदपक्रमाद्भानुमतोऽधिकः स्यात्।
समोद्भवो वानधिकस्तदेतो निपातकालो भवितान्यथातः॥५॥''

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के अध्याय १४ में—

''त्रिनवगृहेन्दुक्रान्तिर्मेषतुलादौ दिवाकरक्रान्तेः।
ऊना यावदभावस्तावद्भावोऽन्यथा चेति॥३५॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय ८ में—

''त्रिनवभवनजाता क्रान्तिरिन्दोर्यदाल्पा दिनकृदपमतः स्यान्मेषजूकादिजातात्।
नहि भवति तदा च क्रान्तिसाम्यं रविन्द्वोर्नियतमितरथात्वे जायते सम्भवोऽस्य॥३॥''

माधवाचार्य द्वारा उक्त श्लोक पूर्व में यहाँ उद्धृकर दिया है।

भास्कराचार्य द्वारा उद्धृत इन पूर्वोक्त श्लोकों में हम देखते हैं कि इनमें सभी आचार्यों ने चंद्रमा के शर के बारे में कुछ भी नहीं कहा है। अतः आचार्यों द्वारा कथित ये श्लोक पात होने न होने के लिए अनुमान ही दर्शाते हैं निष्कर्ष नहीं; जैसे कि भास्कराचार्य ने इनके अनुरूप ही अपना श्लोक कहा है। अतः भास्कराचार्य का आक्षेप न्यायसंगत नहीं हो सकता। यही विचार डॉ. डी. अर्कसोमायजी के हैं। इसकी उपपत्ति अग्रिम श्लोक की उपपत्ति में देखें।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के व्यतिपातवैधृत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"क्रान्त्योर्युतिरेकदिक्कयोर्विवरं भिन्नदिशोस्तु वैधृते।
विवरं समदिक्कयोस्तयो(र्व्यतिपातेऽन्यदिशोः समागमः॥६॥
प्रथमः स तथापरो युतै रहितैष्टघटीफलेन तैः।
गतयोरथवापि गम्ययोर्विवरं संयुतिरन्यथा तयोः॥७॥
प्रथमेष्टघटीवधेऽमुनाविहृते लब्धघटीमितेऽन्तरे।
पातः प्रथमेगतागते गतगम्यः प्रथमारव्यकालतः॥८॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"क्रान्त्योर्युतिरन्यदिशोरेकदिशोरन्तरं व्यतीपाते।
एक दिशोर्युतिरन्तरमन्यदिशोर्वैधृते प्रथमः॥३९॥
एवं द्वितीय राशिर्युतहीनैरिष्ट नाडिका स्वफलैः।
एष्यादतीतं वा यदि राशिद्वयमपि तदन्तरकम्॥४०॥
छेदोऽन्यथा तदैक्यं घातस्येष्टघटिका प्रथमराश्योः।
फलघटिकाभिर्मध्यं द्वयोरपि प्रथमराशिवशात्॥४१॥"

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में अध्याय ८ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"क्रांत्योर्योगो विसदृशदिशोरन्तरं चैकदिक्त्वे पूर्वो राशिर्भवति नियतं स व्यतिपातयोगे। आशैत्वे युतिरपमयोर्वैधृते भिन्नदिक्त्वे भेदो यः स्यात् सच कथितवत् यातयेयोऽवधार्य॥ अभिमतघटिकाप्त्या चानुपाताद्युतोनैरिनहिमकरपातैः प्राग्वदन्योऽपि साध्यः। द्वितयमिदमतोतंभाविवास्यात् तदा तद्विवरमपरथा चेत् संयुतिश्छेदकः स्यात्॥ प्रथममथ घटीनामाहतेः पातमध्यं भवति फलघटीभिः पूर्वराशेर्वशेन। विगतमथ भविष्यत् तद्वदेवेष्टनाडी फलरहित युतैस्तैश्चासकृत्कर्मणैव॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

तत्क्रान्त्योर्भिन्नदिशोरैक्यं तुल्याशयोर्विवरमाद्यः।
व्यतिपातेऽथ व्यस्तो ज्ञेयोऽसौ वैधृतेपाते॥५॥
लक्षणवद्यातैष्येषूट घटीभिरिनामृतांशुशशिपातान्।
सङ्क्रान्त्यादौ साध्यौ प्राग्वत् स्यादुत्तरस्ताभ्याम्॥६॥
आद्योत्तरयोस्तुल्ये चिन्हे भेदाद्धरोऽन्यथा योगात्।
आद्यप्रागिष्टघटीघात तेनोद्धरेत् फलघटीभिः॥७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मध्यमकालादाद्यवदेष्यगतो मध्यमः पातः।
कथितवदस्मात् साध्ये ह्युत्तर आद्यस्त्विहाद्यश्च॥८॥

एवं पातमध्यमभिधायेदानीं पाताद्यन्तकालपरिज्ञानार्थमाह—

मानैक्यार्धं गुणितं स्पष्टघटीभिर्विभक्तमाद्येन।
लब्धघटीभिर्मध्यादादिः प्रागग्रतश्च पातान्तः॥१५॥
तात्कालिकैः पृथक् पृथगाद्यं प्राग्वत् प्रसाध्य तेन भजेत्।
मानैक्यार्धेन हता असकृत् स्थितत्यर्धनाडिकाः स्पष्टाः॥१६॥

पातमध्य ज्ञात करके अब पातका आदि अन्त काल ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य-चंद्र के मानैक्यार्ध (ग्रहण की भांति) को स्पष्ट घटी (श्लोक ११ से १४ में कहे अनुसार प्राप्त) से गुणा करके पूर्व प्राप्त 'आद्य' संज्ञक से विभक्त करने से प्राप्त घटी पात मध्य काल से पूर्व पात आरंभ काल तथा पातमध्य से पात अन्त काल को दर्शाती है अर्थात् प्राप्त होती है। इस प्रकार ये स्थित्यर्ध घटियाँ होती हैं। आदि और अंत कालिक पृथक-पृथक् तात्कालिक चन्द्रसूर्य पात ज्ञात करे। पुनः इनसे प्राप्त स्थिति अर्ध को साठ से विभक्त करके भुक्ति से गुणा करने से प्राप्त स्व-स्व फल को पातमध्य कालिक घटि में एक स्थान पर घटावे तथा दूसरे स्थान पर योग करे। फिर इन तात्कालिक चंद्र-सूर्य की क्रांति ज्ञात करके पूर्ववत् उनका अन्तर 'आद्य' संज्ञक कल्पित करे। इस आद्य से मानैक्यार्ध गुणित इष्ट घटी में भाग देने से स्थिति अर्ध नाडियाँ स्पष्ट होती हैं। इस प्रकार असकृत कर्म करे जब तक स्थित्यर्ध नाडियाँ स्थिर हो जावे। इस प्रकार पृथक्-पृथक् प्राप्त इष्ट काल से दूसरा ज्ञात करके स्फुट स्थित्यर्ध ज्ञाते करे।

उपपत्ति— श्लोक १५-१६ की उपपत्ति इस प्रकार है। व्यतिपात होने पर जब चंद्र-सूर्य के अहोरात्रवृत्तों का अंतर समाप्त हो जाता है तब व्यतिपात मध्य होता है। जब तक चंद्र-सूर्य मंडल केन्द्रों का उत्तर-दक्षिण अन्तर उनके बिंब मानार्ध से अल्प होता है (ग्रहण स्थित वत) तब तक पात (काल) होता है। पूर्वोक्त श्लोक ११ से १४ से जो समय ज्ञात किया जाता है वह पातकाल का मध्य होता है और जब तक किसी एक के बिंब के उच्चतम बिन्दु की क्रांति दूसरे के बिंब के नीचतम बिंदु की क्रांति बराबर रहती है और जब से एक के नीचतम बिंदु की क्रांति दूसरे के उच्चतम बिंदु की क्रांती तुल्य होती है। इन दोनों स्थितियों के मध्य के काल को पात का काल (ग्रहणकाल वत) कहते हैं अर्थात् वह समय जब तक पात रहता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अतः पात का यह काल ज्ञात करने के लिए अनुपात किया कि यदि दोनों की क्रांति का योग अथवा अंतर (उनकी दिशानुसार) (पूर्वोक्त श्लोक ११ से १४ अनुसार) तुल्य दूरी पूर्व प्राप्त स्पष्ट घटी में शून्य होता है तो उनके बिंबमान योगार्ध तुल्य दूरी कितने समय में शून्य होगी?

$$\text{प्राप्तफल} = \frac{\text{इष्टघटी} \times \text{मानैक्यार्ध}}{\text{आद्य}} = \text{पातकाल}।$$ यही आचार्य ने श्लोक में कहा है।

अब श्लोक ११ से १४ की उपपत्ति कहते हैं। माना कि व्यतिपात होने के पश्चात हमने सूर्य-चंद्र की क्रांति ज्ञात की जिनसे पूर्वोक्त प्रकार से यह पता चला कि व्यतिपात हो चुका है। माना कि चंद्र की क्रांति सूर्य की क्रांति से अधिक है तथा वह लगातार कम होती हुई सूर्य क्रांति के तुल्य हो जावेगी तब व्यतिपात होगा भविष्य में। लेकिन यदि चंद्र क्रांति सूर्य क्रांति से अल्प हो तथा लगातार कम हो रही हो तो इसका अर्थ है व्यतिपात हो चुका है। इस प्रकार यह ज्ञात करके कि व्यतिपात हो चुका है अथवा आगे होगा किसी इष्ट समय पश्चात् सूर्यचंद्र की क्रांति ज्ञात करे तथा योग अथवा अंतर पूर्वोक्त प्रकार से करे। यह योग अथवा अन्तर उन दोनों के अहोरात्र वृत्तों के बीच की दूरी के तुल्य होता है। माना पहली दूरी जो ज्ञात की है वह 'आद्य' है तथा दूसरी इष्ट समय पश्चात् दूरी जो ज्ञात की है वह 'अन्य' है। हमको व्यतिपात आगे होने की स्थिति का अध्ययन करना है अतः आद्य से अन्य अल्प होगा क्योंकि उनका अन्तर शून्य हो जावेगा। आद्य और अन्य का अन्तर ज्ञात किया तथा अनुपात किया कि यदि आद्य और अन्य के बीच में कल्पित इष्ट समय में सूर्यचंद्र के अहोरात्र वृत्त का अन्तर आद्य-अन्य के तुल्य होता है तो आद्य तुल्य अन्तर को समाप्त होने में कितना समय लगेगा?

$$\text{प्राप्तफल} = \frac{\text{आद्य} \times \text{इष्ट समय}}{\text{आद्य} - \text{अन्य}} = \text{पात होने में शेष समय}।$$

इस प्राप्त समय के पश्चात पुनः क्रांतियाँ ज्ञात करे तथा असकृत कर्म पुनः पुनः करके पात होने का स्फुट समय ज्ञात करे।

विशेष— ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"तात्कालिकैर्ग्रहैरसकृद्दिष्टघटिकाफलोनयुक्तैस्तैः।
प्राग्वत्प्रथमश्छेदः प्रमाणयोगर्धलिप्तानाम्॥४२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इष्ट घटिका गुणानामसकृत फलनाडिकाभिराद्यन्तौ।
व्यतिपातवैधृतानयनमन्यतन्त्रेषु न ब्राह्यात्॥४३॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''स्थितिरभिमतनाडीताडिते मानयोगे प्रथमविभजिते स्यात् तन्निवृत्तिः प्रवृत्तिः।
स्थितिदलयुतहीने मध्यकालेऽथ तस्मिन् फलमुदित मनन्तं दानहोमादिषुज्ञैः॥''

सूर्य सिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''रविन्दुमानयोगार्धं षष्ट्या संगुण्य भाजयेत्।
तयोर्भुक्त्यन्तरेणाऽऽप्तं स्थित्यर्धं नाडिकादि तत्॥१४॥
पातकालः स्फुटोमध्यः सोऽपि स्थित्यर्धवर्जितः।
तस्य सम्भवकालः स्यात् तत्संयुक्तोऽन्त्यसंज्ञितः॥१५॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के व्यतिपातवैधृत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''तात्कालिकैरसकृदिष्टघटीफलोनयुक्तैस्तथा प्रथम राशिरनेन भक्तंम्।
मानैक्यमिष्टघटिकाहतमाप्तनाडयः पातस्थितिर्ग्रहणवत् प्रथमान्त्यकालौ॥९॥
चन्द्र सहस्रकरमण्डलमेकर्गाद्येन प्रयाति समयेन समस्तमेव।$\frac{१}{२}$।''

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''तत्स्थिरकाले मध्यं स्फुटघटिकामानयोगदलघातः।
हरभक्तः स्थितिघटिका ग्रहणवदत्रापि सुस्थिरात् कालात्॥११॥''

अथ स्थित्यर्धोपपत्तिरूपं श्लोकमाह—

तावत् समत्वमेव क्रान्त्योर्विवरं भवेद्यावत्।
मानैक्यार्धादूनं साम्याद्बिम्बैकदेशजक्रान्त्योः॥१७॥

स्थित्यर्ध उपपत्ति रूप श्लोक—

सूर्य-प्रभा टीका— जब तक क्रान्त्यन्तर मानैक्यार्ध से अल्प होता है उस स्थिति में बिम्ब के एक प्रदेश जनित क्रांति का साम्य (तुल्य) होता है। तावत्काल पर्यन्त उसका फल (पात जनित) फलादेश करने वाले मुनियों ने कहा है।

अर्थात् जब तक रवि और चन्द्र का मण्डलान्तर एक स्थानगत होता है यानि समान क्रान्तिजनक मण्डल स्पर्शरूप, केन्द्राभिप्रायिक क्रान्त्यान्तर मानैक्यार्ध

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के बराबर होता है तब तक ही यह संभव होता है क्योंकि बिम्बैक देशज क्रान्ति बराबर है।

विशेष— यहाँ जो बात कही गई है। यही बात हमने पूर्व श्लोकों की उपपत्ति में सिद्ध की है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने **ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त** के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त ही कही है। यथा–

"रवि बिम्बमेकमार्गच्छशि बिम्बापक्रमे भवति यावत्।
तावत्फलं तदुक्तं तदभावे तत्फलाभावः॥४४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"भानोर्बिम्बंतुहिनकिरणापक्रमेणैकमार्गे यावत्तावन्मुनिभिरुदितः सम्भवस्तत्फलस्य। तस्याभावे भवति नियतं तत्फलस्याप्यभावो यत्रोद्वाहादिषु पुनरिह द्युत्रयंनैवदुष्टम्॥"

सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"एकायनगतं यावदर्केन्द्वोर्मण्डलान्तरम्।
सम्भवस्तावदेवास्य सर्वं कर्मविनाशकृत्॥१७॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के व्यतिपातवैधृत्यधिकार में कहा है कि जब तक चंद्रमा तथा सूर्य का अहोरात्रवृत्त एक ही होता है तब तक का काल पात काल होता है। इसका अर्थ आचार्योक्त कथन ही है। पूर्व श्लोकों की उपपत्ति से ये स्पष्ट हो जाता है। अतः लल्ल ने भी आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"चन्द्रसहस्रकरमण्डलमेकमार्गाद्येन प्रयाति समयेन समस्तमेव।१९$\frac{१}{२}$।"

अथ विशेषमार्यात्रयेणाह—

स्वायनसन्धाविन्दोः क्रान्तिस्तत्कालभास्करक्रान्तेः।
ऊना तयोस्तु विवरं मानैक्यार्धाद्यदाल्पकं भवति॥१८॥
ज्ञेयं तदैव मध्यं पातस्यापक्रमान्तरं चाद्यः।
तस्मादिष्टघटीभिः प्राक् पश्चाच्चापरौ साध्यौ॥१९॥
आद्यान्यान्तरभक्तं मानैक्यार्धाद्ययोस्तदा विवरम्।
इष्टघटीभिः क्षुण्णं स्थित्यर्धे स्तः पृथक् पृथक् स्पष्टे॥२०॥

तीन श्लोकों में विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— पातभावाभाव लक्षणोक्त अनुसार स्वअयन संधि पर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थित चंद्र की क्रांति यदि तात्कालिक सूर्य की क्रांति से अल्प हो तो क्रांति साम्य का अभाव होता है। अर्थात् पात का अभाव होता है (श्लोक ७) यही यहाँ विशेष है, जब तक उनकी क्रांति का अन्तर भी उनके मानैक्यार्ध से अल्प हो तब तक पात होता है यह ज्ञात होता है। उस पात का मध्य कब होता है उसके लिए कहते हैं; जिस समय पर चंद्रमा स्वअयन संधि पर होता है वह काल पात मध्य होता है। उनकी क्रांति के अन्तर को 'आद्य' कल्पित करे। फिर उस काल से आगे तथा पीछे किसी इष्ट घटी पर चलित उनकी पृथक-पृथक क्रांति का अन्तर साधित करे उसकी 'अन्य' संज्ञा है। इस आद्य तथा अन्य के अन्तर से मानैक्यार्ध और आद्य के अंतर को इष्टघटी से गुणा करके भाग देवें। वह एक स्थिति अर्ध है। इसी प्रकार अन्य से दूसरा ज्ञात करे।

उपपत्ति— इष्ट घटी में सूर्यचंद्र की क्रांति का अन्तर इतना होता है। आद्य और अन्य के अन्तर तुल्य इष्ट घटी में संबंधित क्रांति अंतर होता है। इतने क्रांति अंतर में इष्ट घटी प्राप्त होते हैं तो आद्य ऊनित मानैक्यार्ध तुल्य अंतर में कितनी होगी? इस प्रकार आचार्योक्त उपपन्न होता है।

यहाँ चन्द्रमा के अहोरात्रवृत्त तथा अयनान्त में जो अंतर है वह आद्य ऊनित मानैक्यार्ध तुल्य होता है। अतः आचार्योक्त "आद्यान्यान्तरभक्तं मानैक्यार्धाद्ययोस्तदा विवरम्" उपपन्न हुआ।

इदानीं पातप्रयोजनमाह—

पातस्थितिकालान्तर्मङ्गलकृत्यं न शस्यते तज्ज्ञैः।
स्नानजपहोमदानादिकमत्रोपैति खलु वृद्धिम्॥२१॥

पात प्रयोजन—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि पात स्थिति काल में मंगल कार्य नहीं करने चाहिये उनका त्याग करना चाहिये क्योंकि उनका नाश हो जाता है। लेकिन तीर्थादि स्नान, जप, होम, दान आदि कर्म इस काल में करने से उनके पुण्य की वृद्धि होती है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुटगत्युत्तराध्याय में आचार्योक्त बात ही कही है। यथा–

"रवि बिम्बमेकमार्गच्छशि बिम्बापक्रमे भवति थावत्।
तावत्फलं तदुक्तं तदभावे तत्फलाभावः॥४४॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"भानोर्बिम्बं तुहिन किरणापक्रमेणैकमार्गे यावत्तावन्मुनिभिरुदितः सम्भवस्तत्फल्स्या। तस्याभावे भवति नियतं तत्फलस्याप्यभावो यत्रोद्वाहादिषु पुनरिह द्युत्रयं नैवदुष्टम्॥"

सूर्यसिद्धान्त के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"आद्यन्तकालर्योर्मध्यः कालो ज्ञेयोऽतिदारुणः।
प्रज्वलज्ज्वलनाकारः सर्वकर्मसु गर्हितः॥
एकायनगतं यावदर्केन्द्वोर्मण्डलान्तरम्।
सम्भवस्तावदेवास्य सर्वकर्म विनाशकृत्॥
स्नानादान जपश्राद्धव्रत होमादिकर्मभिः।
प्राप्यते सुमहच्छ्रेयस्तत्कालज्ञानतस्तथा॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महाभास्करीय के पाताधिकार में आचार्योक्त कहा है—

"एषा पातदिगुक्तोत्सर्गनिषेधादिहान्यदूह्यं च।
क्रान्त्योः साम्य नेष्टं मङ्गलकार्ये जपादिके शस्तम्॥१२॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के वैधृति व्यतिपाताधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"चन्द्रः सहस्रकरमण्डलमेकमार्गाद्येन प्रयाति समयेन समस्तमेव।
पुण्यः स दानजंपहोमविधावनिष्टो यात्रादिकेषु हि दिनत्रयमत्र दुष्टम्॥१०॥"

समाप्तोऽयं ग्रहगणिताध्याः

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय के पाताधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोलाध्यायः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ गोलप्रशंसा

गोलाध्याये निजे या या अपूर्वा विषमोक्तयः।
तास्ता बालाव बोधाय संक्षेपाद्विवृणोम्यहम्॥

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य गोलाध्याय आरंभ करने के पहले इसको लिखने का प्रयोजन बताते हुए कहते हैं कि उन्होंने पूर्व में अर्थात् सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ के गणिताध्याय में जो बातें बताई हैं उनमें जो विशेष कठिन बातें हैं जिनका और स्पष्टीकरण करना आवश्यक है वे बातें यहाँ उनके लिए बतायेंगे जिनकी बुद्धि ज्योतिष शास्त्र में परिपक्व नहीं है अर्थात् जो ज्योतिष शास्त्र को सीख रहे हैं।

तत्रादौ तावदभीष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं गोलं ब्रवीमीत्याह—

सिद्धिं साध्यमुपैति यत्स्मरणतः क्षिप्रं प्रसादात् तथा
यस्याश्चित्रपदा स्वलङ्कृतिरलं लालित्यलीलावती।
नृत्यन्ती मुखरङ्गेव कृतिनां स्याद्भारती भारती
तं तां च प्रणिपत्य गोलममलं बालावबोधं ब्रुवे॥१॥

गोलाध्याय आरंभ करने से पूर्व इष्टदेवता को नमस्कार कर रहे हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जिनको स्मरण करने मात्र से तथा जिन वाणी की देवी भगवती सरस्वति के प्रसाद से, जो माधुर्यगुण सम्पन्न हैं, गद्यपद्यमयी हैं, चतुरजनों के मन के चमत्कारों को वाणी रूप में प्रकट करने वाली हैं, जो विद्वानों के मुख में (वाणी में) सदा नृत्य करती हैं, ज्ञानी लोगों के अभीष्ट को सिद्ध करती हैं, उन सरस्वति तथा गणेश के चरणों में सिर झुकाकर नमस्कार करके ज्योतिष शास्त्र में जिनकी बुद्धि बाल रूप में है उनके लिए सरल रूप में (समझने) बोधगम्य इस गोलाध्याय को आचार्य अब कहते हैं।

विशेष— यहाँ आचार्य ने विद्या अर्थात ज्ञान की देवी सरस्वती को उनके पैरों में गिरकर साष्टांग प्रणाम किया है तथा विद्या की प्राप्ति में सभी विघ्नबाधाओं का नाश करने के लिए विघ्न विनायक तथा सिद्धिदायक गणेश को भी इसी प्रकार प्रणाम किया है। आचार्य ने यहाँ सरस्वती का विद्वानों के मुख में अर्थात् वाणी में ही वास बताकर, पौराणिक बात कही है। विद्वान की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पहचान उसकी वाणी से ही होती है। सरस्वती क्योंकि नर्तक भी है अतः वह जहाँ निवास करती है वहीं नृत्य करती रहती है अर्थात् विद्वानों के मुख में तथा उस विद्या की सिद्धि प्रदान करते हैं।

लल्लाचार्य ने शिष्यधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय-१४ में इसी प्रकार परमेश्वर तथा सरस्वति की प्रार्थना की है। यथा—

"जगदिदमखिलं समस्तसिद्धं द्रुतमधिगच्छति यत्प्रसादतस्तम्।
वदनसरसिजे मनीषिणां या वसति च तां प्रणिपत्य वच्मि गोलम्॥१॥"

अथ गोलग्रथनकारणमाह—

मध्याद्यं द्युसदां यदत्र गणितं तस्योपपत्तिं विना
प्रौढ़िं प्रौढसभासु नैति गणको निःसंशयो न स्वयम्।
गोले सा विमला करामलकवत् प्रत्यक्षतो दृश्यते
तस्मादस्म्युपपत्तिबोधविधये गोलप्रबन्धोद्यतः॥२॥

इस गोल रचना का कारण कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— सदा भ्रमणशील ग्रहों के मध्य, स्पष्ट आदि की गणित की जो यहाँ विधियाँ कही गई हैं उनकी उपपत्ति को जाने बिना ज्ञानि लोग (प्रौढ़) ज्ञानियों की सभा में निःसंशय पूर्वक दृढ़ता से तथ्यों पर आधारित अपनी बात दक्षता पूर्वक नहीं कह सकते। आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार हथेली में आंवले का फल रखकर ही कोई व्यक्ति निश्चय तथा दृढ़ता पूर्वक कह सकता है कि मेरे हाथ में आँवले का फल है, उसी प्रकार गणित क्रिया की उपपत्ति गोल के ज्ञान से ही स्पष्ट रूप से समझ में आ सकती है। अतः आचार्य गोल के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाले ग्रंथ का निर्माण करने के लिए उद्यतः होते हैं।

विशेष— प्रायः ज्योतिष के सभी सिद्धान्त ग्रंथ गणितखण्ड तथा गोल खण्ड में विभक्त हैं। गणितखण्ड में ग्रहसाधन, ग्रहण, युति आदि की गणितीय विधियों का वर्णन होता है, जबकि गोलखण्ड में उनकी उपपत्ति अथवा वासना का वर्णन होता है। अतः आचार्य यहाँ अब पूर्व कथित विधि खण्ड के पश्चात् उन विधियों के उपपत्ति खण्ड की रचना कर रहे हैं। क्योंकि कोई भी ज्योतिर्गणित का ग्रंथ गोल विवेचन के विना पूर्ण नहीं हो सकता, गोल में ही ज्योतिर्गणित की गणना संभव है। अतः ग्रहग्रणित में दक्षता के लिए गणकों को गोल के विषय में भी प्रवीण होना आवश्यक है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गोलाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"ग्रहनक्षत्र भ्रमणं न समं सर्वत्र भवति भूस्थानाम्।
तद्विज्ञानं गोलाद्यतस्ततो गोलमभिधास्ये॥१॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उडुग्रहाणां भ्रमणं न तुल्यं सर्वत्र भूगोलनिवासिनां हि।
तत्तत्त्वबोधावगतिस्तु गोलादतः स्फुटं गोलमिहाभिधास्ये॥
मध्यमानयनपूर्वकं हियत् किञ्चिदत्र गणिते प्रकीर्तितम्।
गोल एव सकलं विलोक्यते हन्त तत् करतलामलोपमम्॥ अ.१५ श्लो.५॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के चौदहवें अध्याय में आचार्योक्त बात ही कही है। यथा–

"न किमपि गोलविवर्जितं च तन्त्रम्॥२॥
सङ्ख्ययनशास्त्रविद एव वदन्ति गोलं
गोलागमे पटुधियो ग्रहचेष्टितज्ञाः॥३$\frac{१}{२}$॥"

इदानीं गोलप्रशंसया गोलानभिज्ञगणकोपहासं श्लोकद्वयेनाह—

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राजविवर्जितं च।
सभा न भातीव सुवक्तृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथा च॥३॥
वादी व्याकरणं विनैव विदुषां धृष्टः प्रविष्टः सभां
जल्पन्नल्पमतिः स्मयात् पटुबटुभ्रूभङ्गवक्रोक्तिभिः।
ह्रीणः सन्नुपहासमेति गणको गोलानभिज्ञस्तथा
ज्योतिर्वित्सदसि प्रगल्भगणकप्रश्नप्रपञ्चोक्तिभिः॥४॥

गोल प्रशंसा तथा गोल अनभिज्ञ गणक का उपहास—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस प्रकार सभी छः रसों से युक्त भोजन की घी के बिना, बिना राजा के जिस प्रकार राज्य की, अच्छे वक्ताओं के बिना सभा की जो स्थिति होती है उसी प्रकार गोल के ज्ञान से अनभिज्ञ गणक की भी स्थिति होती है।

विदुषियों की सभा में व्याकरण के ज्ञान के बिना कोई (विद्वान) बुद्धिमान व्यक्ति निर्लज्जता से प्रवेश करके घमंड पूर्वक व्यर्थ का प्रलाप करता है तब बुद्धिमान व व्याकरणादिशास्त्र कुशल बालकों द्वारा कही शुद्ध प्रमेयों को न समझ पाने के कारण वे उसका भोहों की विभिन्न मुद्राओं के साथ उसको मूर्ख जान

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर उसका उपहास करते हैं जिससे उसको लज्जित होना पड़ता है। उसी प्रकार गोल के ज्ञान से अनभिज्ञ गणक भी ज्योतिषज्ञान में प्रगल्य विद्वान ज्योतिषियों के अनेक कठिन प्रश्नों का सही प्रकार से उत्तर नहीं दे पाने के कारण विद्वान ज्योतिर्विदों की सभा में उपहास तथा लज्जा का पात्र बनता है।

विशेष— यहाँ आचार्य ने गोल प्रशंसा के साथ गोल से अनभिज्ञ ज्योतिर्विद की लज्जाजनक स्थिति का होना बताया है। अन्य आचार्यों ने भी कुछ इसी प्रकार गोल ज्ञान की प्रशंसा करते हुए उसकी प्रशंसा की है। यथा–

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय १५ में इसी प्रकार कहा है—

"यद्वदिन्दुरहिता न शर्वरी माति शीलरहिता न चाङ्गना।
ब्राह्मणश्च न चरित्रवर्जितस्तद्वदेव गणको ह्यगोलवित्॥२॥
अविदितपदलक्ष्यो बावदूकोऽपि यातश्चतुरबुधसभायां यद्वदायाति हास्याम्।
ग्रहगणितविदेवं गोलतत्त्वानभिज्ञो गणकसदसि विद्वच्चक्रवक्रोक्तिदीनः॥३॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद् ग्रंथ के अध्याय १४ में आचार्योक्त कहा है–

"शशधरकिरणैर्विना प्रदोषः कुचरहितं ललनाजनस्य वक्षः।
मधुरस विवर्जितं च भोज्यं न किमपि गोलविवर्जितं च तन्त्रम्॥२॥
वादी यथाऽव्याकरणो न भाति श्रुतिस्मृतिभ्यां रहितश्च यज्वा।
भिषग् यथा सम्यगदृष्टकर्मा सांवत्सरस्तद्वदगोलवेदौ॥३॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के अध्याय २२ यन्त्राध्याय में आचार्योक्त गोल की प्रशंसा की है। यथा–

"मध्याद्यमिह यदुक्तं तत् प्रत्यक्षमिव दर्शयति यस्मात्।
तस्मादाचार्यत्वं गोलविदो भवति नान्यस्य॥१॥"

अथ गोलस्वरूपमाह—

दृष्टान्त एवावनिभग्रहाणां संस्थानमानप्रतिपादनार्थम्।
गोलः स्मृतः क्षेत्रविशेष एष प्राज्ञैरतः स्याद्गणितेन गम्यः॥५॥

गोल का स्वरूप—

सूर्य-प्रभा टीका— पृथ्वी, नक्षत्र तथा ग्रहादि की स्थिति तथा उनके मान के प्रत्यक्ष प्रमाण के प्रतिपादन के लिए उनका निरूपण गोल रूप क्षेत्र विशेष में किया जा सकता है तथा इस गोल को गणित के द्वारा (रेखागणित आदि) बुद्धिमान लोग जान सकते हैं अर्थात् गोल गणित क्षेत्र की परिधि में है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— जो गणित जानते हैं वे गोल को भी जानते हैं क्योंकि गोल गणित का ही क्षेत्र है। जो गोल को जानते हैं वे ग्रह गति को भी जानते हैं क्योंकि वे गणित को जानते हैं। लेकिन जो गोल और गणित दोनों को नहीं जानते वे ग्रहगति को किसी भी प्रकार नहीं जान सकते। ये बात भास्करोक्त श्लोक से स्फुट होती है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के यन्त्राध्याय में यही बात कही है। यथा—

"गणितज्ञो गोलज्ञो गोलज्ञो ग्रहगतिं विजानाति।
यो गणितगोलबाह्यो जानाति ग्रहगतिं स कथम्॥३॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धि ग्रंथ के अध्याय १४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"यो वेत्ति सम्यगमुमर्कपुरः सराणां नानाप्रकारवरचारुविचारचारुम्।
प्रत्यक्षवत सकलमेव स वेत्ति विश्वं धर्मार्थमोक्षयशसामपि भाजनं स्यात्॥५॥
यन्मध्यादिकमुक्तं तत् प्रत्यक्षं च दृश्यते गोले।
छेद्यक विधौ ग्रहाणां विशेषतस्तद्विदाचार्यः॥६॥"

श्रीपति ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के गोलाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ग्रहनक्षत्रधरित्री संस्थानस्येह दर्शनोपायः।
गोल इति कथ्यतेऽसौ क्षेत्रविशेषो गणितगम्यः॥६॥"

इदानीं गणितप्रशंसामाह—

ज्योतिश्शास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते
नूनं लग्नजलाश्रितः पुनरयं तत् स्पष्टखेटाश्रयम्।
ते गोलाश्रयिणोऽन्तरेण गणितं गोलोऽपि न ज्ञायते
तस्माद्यो गणितं न वेत्ति स कथं गोलादिकं ज्ञास्यति॥६॥

गणित की प्रशंसा—

सूर्य-प्रभा टीका— वराहमिहिर आदि प्राचीन आचार्यों ने ज्योतिष शास्त्र के तीनों स्कन्धों, संहिता-जातक-गणित का प्रयोजन भूत भविष्य तथा वर्तमान का शुभाशुभ निरूपण के लिए फल का आदेश करना कहा है। होरास्कन्ध रूप ज्योतिष शास्त्र का फलादेश निश्चित रूप से लग्न बल के ऊपर आश्रित होता है तथा पुनः वह शुद्ध ग्रह स्पष्ट पर आश्रित होता है और ग्रह

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्पष्ट गोल में निरूपित ग्रहादि की गणना की उपपत्ति द्वारा सिद्धि पर आधारित होते हैं। ग्रहण, शृङ्गोन्नत्यादि गणित स्कन्ध के द्वारा साक्षात होती है और वह स्पष्ट ग्रहों के अधीन होती है। ग्रह गणित ज्ञान बिना, गोल ज्ञान नहीं हो सकता। अतः जो पहले गणित ज्ञान प्राप्त नहीं करेंगे वे गोल का ज्ञान किस प्रकार करेंगे। अतः आचार्य ने गोलाध्याय की रचना के पूर्व गणिताध्याय की रचना इस 'सिद्धान्त शिरोमणि; ग्रंथ में की है, जो उपरोक्त अनुसार युक्तियुक्त है।

इदानीं ज्योतिश्शास्त्रश्रवणाधिकारिलक्षणमाह—

द्विविधगणितमुक्तं व्यक्तमव्यक्तयुक्तं तदवगमननिष्ठः शब्दशास्त्रे पटिष्ठः।
यदि भवति तदेदं ज्योतिषं भूरिभेदं प्रपठितुमधिकारी सोऽन्यथा नामधारी॥७॥

ज्योतिश्शास्त्र को श्रवण करने के अधिकारी के लक्षण बता रहे हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— गणित दो प्रकार की कही गई है एक व्यक्त तथा दूसरी अव्यक्त। व्यक्त गणित पाटीगणित अर्थात् अंक गणित है तथा अव्यक्त गणित बीज गणित है। आचार्य ने इन दोनों ही गणित का उपयोग इस ग्रंथ में किया है। इन दोनों ही गणित का ज्ञान जिसने पूर्ण निष्ठा से प्राप्त किया है अर्थात् जिसको इन दोनों ही गणित का बहुत अच्छा ज्ञान है तथा जो शब्दशास्त्र अर्थात् व्याकरण शासत्र का भी अच्छा ज्ञान रखता है वह अनेक रहस्यों व भेदों से युक्त गोलयन्त्र के तत्व के ज्ञान को पूर्ण रूप से पढ़ने (जानने) का अधिकारी है। जो इन योग्यताओं (गणित तथा व्याकरण का ज्ञान) से रहित होता है वह व्यक्ति इनको पढ़ने का अधिकारी नहीं है वह नाममात्र का ही ज्योतिषि है।

अथ व्याकरणवर्णनमाह—

यो वेद वेदवदनं सदनं हि सम्यग्ब्राह्म्याः स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम्।
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य धीमान् शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी॥८॥

व्याकरण ज्ञान के महत्व का वर्णन—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने गणिताध्याय में मध्यमाधिकार के कालामानाध्याय के श्लोक १० में व्याकरण (शब्दशास्त्र) को वेदों का मुख बताया है। तदनुसार आचार्य यहाँ कहते हैं कि जिस व्याकरण के ज्ञान के द्वारा कठिन वेदों को ठीक प्रकार से जाना, पढ़ा जा सकता है उस शब्द शास्त्र-व्याकरण का जिसे वेदों का मुख कहा गया है तथा जो वेदों की अधिष्ठात्रि देवी सरस्वति का निवास स्थान है, सर्वप्रथम अच्छी प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर लेने से सभी अन्य शास्त्रों का ज्ञान सरलता से हो जाता है। अतः व्याकरण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के अतिरिक्त सर्वप्रथम किसी अन्य शास्त्र का अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि व्याकरण के ज्ञान से सर्वशास्त्रों के शास्त्र वेदों का अध्ययन सरलता से हो जाता है।

इस प्रकार सर्वप्रथम व्याकरण शास्त्र का सम्यग् प्रकार से ज्ञान करके ही कोई अन्य शास्त्रों के अध्ययन का अधिकारी होता है। यहाँ आचार्य ने जो व्याकरण के ज्ञान के लिए संकेत किया है उसके महत्वता को यहाँ विस्तृत रूप में प्रतिपादित किया है।

अथात्मनो गोलग्रन्थस्य प्रवृत्त्यर्थमन्योक्तिप्रकारेणाह—

गोलं श्रोतुं यदि तव मतिर्भास्करीयं शृणु त्वं
नो संक्षिप्तो न च बहुवृथाविस्तरः शास्त्रतत्त्वम्।
लीलागम्यः सुललितपदः प्रश्नरम्यः स यस्माद्-
विद्वन् विद्वत्सदसि पठतां पण्डितोक्तिं व्यनक्ति॥९॥

आचार्य अपने इस गोलाध्याय को पढ़ने के लिए प्रवृत्त करने के लिए इसकी विशिष्टता अन्योक्ति प्रकार से बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि चतुर विद्वान यदि आपकी गोल को पढ़ने, जानने की मन में इच्छा है तो आप मेरे द्वारा रचित इस गोलाध्याय को पढ़िये। यह बहुत संक्षिप्त भी नहीं है तथा न ही बहुत विस्तार से कहा गया है। इसमें शास्त्र का तत्त्व कहा गया है। इसमें सभी आवश्यक बातें कही गई हैं तथा वृथा इसको बहुत विस्तार से नहीं कहा गया है। यह कठिन न होकर लीलागम्य है अर्थात् इसमें उपदेश नहीं दिये गये हैं इसको प्रश्नों के आधार पर रुचिकर व मनोरंजक बनाया है जिससे यह सरलता से समझ में आ सकता है। अतः जो विद्वान् इस गोलाध्याय का अध्ययन करता है उसका पण्डितों के बीच पाण्डित्य प्रकाशित होता है। क्योंकि वह इस का अध्ययन करने के पश्चात् पण्डितों (विद्वानों) की भांति इसके बारे में बोलता है।

भास्कराचार्य की भांति ही आर्यभट द्वितीय ने महासिद्धान्त में गोलाध्याय की रचना प्रश्नों के आधार पर ही की है। उसी का अनुसरण आचार्य भास्कर ने किया है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलप्रशंसा अध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ गोलस्वरूपप्रश्नाध्यायः

अथ भूसंस्थानप्रश्नं श्लोकद्वयेनाह—

भ्रमद्भचक्रचक्रान्तर्गगने गगनेचरैः।
वृता धृता धरा केन येन नेयमियादधः॥१॥
किमाकारा कियन्माना नानाशास्त्रविचारणात्।
कीदृग्द्वीपकुलाद्रीन्द्रसमुद्रैर्मुद्रितोच्यताम्॥२॥

पृथ्वी की स्थिति से संबंधित प्रश्नों के दो श्लोक—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि आकाश चक्र में ग्रह नक्षत्रों के चक्र में भ्रमणशील गगनचर ग्रहों से ढकी हुई अर्थात् इनके मध्य में इस पृथ्वी का आधार क्या है? किस कारण से यह न नीचे गिरती है न इधर-उधर जाती है? इसका आकार क्या है? इसका मान (प्रमाण) क्या है?

इसकी परिधि कितनी है? द्विप, पर्वत, अन्य श्रेष्ठ पर्वत, समुद्र आदि से मुद्रित अर्थात् इनसे व्याप्त पृथ्वी कैसी दिखती है? इन सब प्रश्नों का उत्तर (निर्णय) विभिन्न शास्त्रों द्वारा विचार करके दीजिये।

इदानीं ग्रहस्फुटीकरणोपपत्तिप्रश्नान् श्लोकद्वयेनाह—

संसिद्धाद्युगणाद्युगादिभगणैः खेटोऽनुपातेन यः
स्यात् तस्यास्फुटता कथं कथमथ स्पष्टीकृतिर्नैकधा।
किं देशान्तरमुद्रमान्तरमहो बाह्वन्तरं किं चरं
किं चोच्चं मृदु चञ्चलं च तदिदं कस्तात पातः स्मृतः॥३॥
किं केन्द्रं किमु केन्द्रजं किमु चलं किं वाचलं तत्फलं
कस्मात् तत्सहितः कुतश्च रहितः खेटः स्फुटो जायते।
किं दृक्कर्म तथोदयास्तसमये द्वेधा विदध्युर्बुधाः
सर्वं मे विमलं वदामलमलं गोलं विजानासि चेत्॥४॥

ग्रह स्फुटीकरण के लिए उपपत्ति रूप प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण को सिद्ध करके ग्रहों के कथित कल्प भगणों से अनुपात करने से प्राप्त मध्यम ग्रहों को स्फुट करने के लिए किस प्रकार अनेक प्रकार की गणित की जाती है, वह यहाँ बताओ? उस गणित क्रिया में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देशान्तर क्या है? उदयान्तर क्या है? भुजान्तर क्या है? चर क्या है? तथा मन्दोच्च और शीघ्रोच्च क्या है? उनके पात का स्वरूप क्या है? केन्द्र क्या है? केन्द्र से उत्पन्न भुज कोटिज्या क्या है? शीघ्र केन्द्र क्या है? मन्दफल-शीघ्रफल क्या है? इन सब का कब ऋण तथा कब धन करते हैं, जिससे ग्रह स्फुट होते हैं? उदयास्त लग्न साधन में दो प्रकार के दृक्कर्म कौन से हैं? यदि तुम पूर्वार्ध भाग में प्रतिपादित इन सब को ठीक प्रकार से (स्पष्ट रूप में) जानते हो तो इन सबको गोल में निर्दोष रूप से अर्थात बिना भ्रमित हुए तथा बिना त्रुटियों के कहो।

अथ त्रिप्रश्ने दिनमानभेदप्रश्नं श्लोकद्वयेनाह—

महदहः किमहो रजनी तदुर्दिनमणौ गणकोत्तरगोलगे।
ननु तनुर्दिवसो महती निशा वद विचक्षण दक्षिणदिग्गते॥५॥
भवति किं द्युनिशं द्युनिवासिनां द्युमणिवर्षमितं च सुरद्विषाम्।
पितृषु किं शशिमासमितं तथा युगसहस्रयुगं द्रुहिणस्य किम्॥६॥

दिनमान में अन्तर संबंधि तीन प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— हे गणितज्ञ! सूर्य के उत्तरगोल में रहने पर दिन बड़े तथा रातें छोटी क्यों होती हैं? और सूर्य के दक्षिण गोल में रहने पर दिन छोटे तथा रातें बड़ी क्यों होती हैं? इनके पदार्थ स्वरूप कारणों को हे बुद्धिमान परुष कहो।

देवताओं तथा दैत्यों का एक सौरवर्ष तुल्य एक दिनरात क्यों होता है? पितरों का एक चान्द्रमास तुल्य तथा ब्रह्मा का एक-एक सहस्र महायुग तुल्य एक दिन तथा रात्रि क्यों होती है?

अथ राश्युदयभेदप्रश्नमाह—

भवलयस्य किलार्कलवाः समाः किमसमैः समयैः खलु राशयः।
समुपयान्त्युदयं किमु गोलवित्र विषयेष्वखिलेष्वपि ते समाः॥७॥

राश्युदय मान में अंतर संबंधि प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— नक्षत्रवलय (चक्र) के बारह भाग समान मान के होते हैं। भचक्र साठ घटी में बारह राशि भ्रमण करता है तो एक राशि परिवर्तन अर्थात् उदयकाल, उसका बारहवाँ भाग अर्थात् पांच घटी नहीं होता। इस प्रकार भचक्र प्रदेश में प्रत्येक राशि समान मान की होते हुए भी सभी प्रदेशों में पृथ्वी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पर उनके उदयमान समान क्यों नहीं होते? हे गोल तत्व को जानने वाले ज्ञाता बताओ इसका कारण क्या है?

इदानीं द्युज्याकुज्यादि संस्थान प्रश्नं वृत्तार्धेनाह—

द्युज्याकुज्यापमसमनराग्राक्षलम्बादिकानां
विद्वन् गोले वियति हि यथा दर्शय क्षेत्रसंस्थाम्।

द्युज्या, कुज्यादि की गोल में स्थिति संबंधि प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— हे विद्वान्! खगोल में द्युज्या, कुज्या, क्रांतिज्या, समसङ्कु, अग्रा, अक्ष व लंब ज्या आदि जहाँ स्थित होती है उसके क्षेत्र की स्थिति को उस ही स्थान पर दर्शाओ।

इदानीं चन्द्रार्कग्रहणयोर्दिक्कालभेदाद्युपपत्तिप्रश्नान् सार्धश्लोकेनाह—

तिथ्यन्ते चेद्ग्रह उडुपतेः किं न भानोस्तदानी-
मिन्दोः प्राच्यां भवति तरणेः प्रग्रहः किं प्रतीच्याम्॥८॥
लम्बनं बत किं का च नतिर्मतिमतां वर।
तत्संस्कृतिस्तिथौ बाणे किं ते सिद्धे कुतः कुतः॥९॥

चंद्र तथा सूर्य ग्रहण में दिशा तथा काल में अंतर की उपपत्ति संबंधि प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्रग्रहण में भूभा ग्रहण कर्त्री होती है। पौर्णमास्यन्त में भूभा चंद्रमा के तुल्य होती है जब उनकी युति होती है। इसी प्रकार सूर्य ग्रहण में चन्द्रमा छादक होता है। दर्शान्त में इनके तुल्य होने पर इनका योग होता है। अतः आचार्य ने श्लोक में 'तिथ्यन्ते चेद्ग्रह उडुपते....' आदि कहा है। चंद्र ग्रहण में तिथ्यन्त में मध्यग्रहण होता है तो सूर्य का मध्य ग्रहण क्यों नहीं कहा गया? चन्द्रग्रहण पूर्व की ओर से होता है तो सूर्य ग्रहण पश्चिम की ओर से क्यों होता है? हे श्रेष्ठबुद्धि विद्वान! बताओ लंबन क्या होता है और नति क्या होती है? यहाँ जब ग्रहण मध्य में भेद कहा है तो फिर लंबन के लिए कहने का क्या कारण है? चन्द्रग्रहण में लंबन क्यों नहीं होता और उसमें लंबन युक्त नहीं करते। सूर्य ग्रहण में वह आवश्यक होता है यह प्रतिपादित किया जा चुका है। अतः आचार्य के स्वउक्ति में असंगति को संगत बनाने के लिए उन्होंने यहाँ 'वत' शब्द के द्वारा खेद व्यक्त किया है। यहाँ नति के स्वरूप के लिए कहा गया है। तिथि अर्थात अमान्त और शर में लंबन तथा नति का संस्कार कब करते हैं? तिथि में लंबन का संस्कार करते हैं और नति में बाण (शर) का, क्यों? लंबन और नति का साधन कहाँ-कहाँ से करते हैं?

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लंबन और नति का साधन किस कारण से और पृथ्वी में कहाँ से साधित करते हैं?

अथ शृङ्गोन्नतौ चन्द्रशुक्लस्य क्षयवृद्धिप्रश्नमाह—

शुक्लस्य द्विजराज एष महसो हान्या कुवृत्तः कुतः
सद्वृत्तत्वगतोऽप्यहो भ्रमभवादोषातिसङ्गादिव।
संप्राप्याथ पुनस्त्रयीतनुमतस्तस्याश्रयेणैव किं
शुक्लस्य क्रमशस्तथैव महसो वृद्ध्यैति सद्वृत्तताम्॥१०॥

शृंगोन्नति में चन्द्रमा के शुक्ल भाग के क्षय वृद्धि संबंधि प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— हे गणक! यह द्विजराज चन्द्रमा गोलाकार होकर पौर्णमासी को पूर्णवृत्ताकार होकर किस कारण से कुत्सित वृत्त मंडल होता है? यहाँ 'अपि' शब्द भ्रमसूचक है। यह भ्रम, दोष के अतिसंग से है, और वह दोष रात्रि है। पौर्णमासी को पूर्ण चन्द्रमा इस दोष के अतिसंग में रहते हुए भी पूर्ण रहता है और इस अतिसंग के अनन्तर इसके शुक्ल भाग के तेज की हानि होती जाती है तथा इस प्रकार हानि होते हुए वह कुत्सित वृत्त वाला हो जाता है?

जिस प्रकार सद्वृत्त-सदाचारी ब्राह्मण द्विज के चंचल चित्त में भ्रम उत्पन्न होने से उनसे उत्पन्न दोषों के कारण पापों से अतिसंग होने पर उसके उज्जवल शुद्ध तेज की हानि होती है, उसी प्रकार चंद्रमा कुत्सित वृत्त हो जाता है। फिर पुनः सूर्य से थोड़ा-थोड़ा प्रकाश पाकर इसके अनन्तर उसके शुक्ल-तेज की वृद्धि होती है। यहाँ 'त्रयी' शब्द का अर्थ तीनों वेदों में वर्णित धर्म तथा सूर्य होता है। अतः यहाँ तेजहीन ब्राह्मण के तेज की वृद्धि भी पुनः (वेद) त्रयी ब्राह्मण के अनुग्रह से इसी प्रकार होती है। इस प्रकार चंद्रमा वृद्धि तथा क्षीणता को प्राप्त होता रहता है। आचार्य का प्रश्न यह है कि सूर्य से प्राप्त प्रकाश से किस प्रकार चन्द्रमा के शुक्लभाग की वृद्धि तथा ह्रास होता है?

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के गोलस्वरूपप्रश्नाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ भुवनकोशः

अथ प्रथमप्रश्नस्य पृथ्वीसंस्थानोपपत्तेरुत्तरं विवक्षुरादिसर्गे पृथिव्यादीनां तत्त्वानामादितत्त्वं निखिलजगज्जननैकबीजं परं ब्रह्म मनसा प्रणिपत्यादौ तावत् तज्जयमाह—

यस्मात् क्षुब्धप्रकृतिपुरुषाभ्यां महानस्य गर्भेऽ-
हंकारोऽभूत् खकशिखिजलोर्व्यस्ततः संहतेश्च।
ब्रह्माण्डं यज्जठरगमहीपृष्ठनिष्ठाद्विरञ्चे-
र्विश्वं शश्वज्जयति परमं ब्रह्म तत् तत्त्वमाद्यम्॥१॥

पृथ्वी की स्थिति संबंधि प्रथम प्रश्न के उत्तर भूत यह भुवनकोश अध्याय व्याख्या है। पृथ्वी आदि तत्त्वों के आदि तत्त्व अखिल जगज्जनक एक बीज परब्रह्म को मनसा प्रणाम करके प्रश्न की व्याख्या करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— परब्रह्म का प्रथम रूप पुरुष है, अव्यक्त (प्रकृति) तथा व्यक्त (महदादि) उसके अन्य रूप हैं। सबको क्षुब्ध करने वाला होने से काल उसका परमरूप है। वही इन सब व्यक्त (कार्य) और अव्यक्त (कारण) जगत के रूप से तथा इसके साक्षी पुरुष और महाकारण काल के रूप में स्थित है। प्रधान पुरुष व्यक्त काल में परब्रह्म के रूप पृथक्-पृथक्, संसार की उत्पत्ति, पालन और संहार के प्रकाश तथा उत्पादन में कारण हैं।

इनमें से अव्यक्त कारण को जो कारण शक्ति विशिष्ट और नित्य सदा एकरस है, श्रेष्ठ जन प्रधान तथा सूक्ष्म प्रकृति कहते हैं। वह रज, सत और तम रूप त्रिगुणमय और जगत् का कारण हैं तथा स्वयं अनादि एवं उत्पत्ति और लय से रहित है। श्रुति के मर्म को जानने वाले, श्रुतिपरायण ब्रह्मवेत्ता इसी अर्थ को लक्ष्य करके प्रधान के प्रतिपादक इस श्लोक को कहते हैं—

"नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमिर्नासीत्तमोज्योतिरभूच्च नान्यत्।
श्रोत्रादिबुद्ध्यानुपलभ्यमेकं प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत्॥वि.पु."

अर्थात् उस समय (प्रलयकाल में) न दिन था, न रात्रि थी, न प्रकाश था, न आकाश था, न पृथ्वी थी, न अन्धकार था और न ही इनके अतिरिक्त कुछ और ही था। बस, श्रोत्रादि इन्द्रियों और बुद्धि आदि का अविषय एक प्रधान ब्रह्म और पुरुष ही था।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विष्णु परम रूप से प्रधान और पुरुष– ये दो रूप हुए। उसी के जिस अन्य रूप के द्वारा वे दोनों सृष्टि और प्रलय काल में संयुक्त और वियुक्त होते हैं, उस रूपान्तर का ही नाम काल है। बीते हुए प्रलयकाल में यह व्यक्त प्रपञ्च प्रकृति में लीन था, इसलिए प्रपञ्च के इस प्रलय को प्राकृत प्रलय कहते हैं। प्रलयकाल में प्रधान (प्रकृति) के साम्यावस्था में स्थित हो जाने पर और पुरुष के प्रकृति से पृथक् स्थित हो जाने पर ब्रह्म का कालरूप इन दोनों को धारण करने के लिए प्रवृत्त होता है। तदन्तर सर्गकाल उपस्थित होने पर उन परब्रह्म ने अपनी इच्छा से विकारी प्रधान और अविकारी पुरुष में प्रविष्ट होकर उनको शोभित किया। परमेश्वर अपनी सन्निधि मात्र से ही प्रधान और पुरुष को प्रेरित करते हैं।

सर्गकाल के प्राप्त होने पर गुणों की साम्यावस्थारूप प्रधान, जब ब्रह्म के क्षेत्रज्ञरूप से अधिष्ठित हुआ तो उससे महत्तत्व की उत्पत्ति हुई। उत्पन्न हुए महान को प्रधान तत्त्व ने आवृत्त किया। महत तत्त्व सात्त्विक, राजस और तामस भेद से तीन प्रकार का है। किन्तु यह त्रिविध महत्तत्व प्रधान तत्त्व से सब ओर व्याप्त है। फिर त्रिविध महत्तत्व से ही वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और तामस भूतादि तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न हुआ। वह त्रिगुणात्मक होने से भूत ओर इन्द्रिय आदि का कारण है। प्रधान से जैसे महत्तत्व व्याप्त है वैसे ही महत्तत्व से वह अंहकार व्याप्त है। भूतादि नामक तामस अहंकार ने विकृत होकर शब्द-तन्मात्रा और उससे शब्द गुण वाले आकश की रचना की तथा उसे व्याप्त किया। फिर आकाश ने विकृत होकर स्पर्श-तन्मात्रा को रचा जिससे बलवान वायु हुआ उसका गुण स्पर्श माना गया है। शब्द रूप आकाश ने वायु को आवृत्त किया है। फिर वायु ने विकृत होकर रूप-तन्मात्रा सृष्टि की रचना की। वायु से तेज उत्पन्न हुआ उसका गुण रूप कहा जाता है। वायु ने तेज को आवृत्त किया। फिर (रूप) तेज ने भी विकृत होकर रस-तन्मात्रा की रचना की जिससे रस-गुणवाला जल उत्पन्न हुआ। जल को (रूप)तेज ने आवृत किया। जल के विकार से गन्ध-तन्मात्रा की रचना की। उससे पृथ्वी उत्पन्न हुई जिसका गुण गन्ध माना गया।

इन-इन आकाशादि भूतों में तन्मात्रा अर्थात् केवल उनके गुण शब्द ही हैं। इसलिए वे गुणरूप (तन्मात्रा) ही हैं इनमें विशेष भाव नहीं हैं इसलिए उनकी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवशेष संज्ञा है। उनका सुख-दुःख या मोहरूप से अनुभव नहीं हो सकता। इस प्रकार तामस अहंकार से यह भूत तन्मात्रारूप सर्ग हुआ है।

दस इन्द्रियाँ तैजस अर्थात राजस अहंकार से और उनके अधिष्ठाता देवता वैकारिक अर्थात सात्त्विक अहंकार से उत्पन्न हुआ कहते हैं। इस प्रकार इन्द्रियों के अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवाँ मन वैकारिक (सात्त्विक) है। ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ तथा पांचों भूत इस प्रकार बने हैं। भूतों की पृथक् पृथक् शक्तियाँ अधिष्ठित देवता हैं। इसलिए एक-दूसरे के आश्रय रहने वाले और एक ही संघात की उत्पत्ति के लक्ष्यवाले महत्तत्व से लेकर विशेष पर्यन्त प्रकृति के इन सभी विकारों ने पुरुष से अधिष्ठित होने के कारण परस्पर मिलकर प्रधान तत्त्व के अनुग्रह से अण्ड की उत्पत्ति की। जल के बुल-बुले के समान भूतों से बढ़ा हुआ गोलाकार और जलपर स्थित महान अण्ड (हिरण्यगर्भ)ब्रह्म रूप अति उत्तम प्राकृत आधार हुआ। उसमें वे अव्यक्त स्वरूप जगत्पति विष्णु व्यक्त हिरण्यगर्भ रूप से स्वयं ही विराजमान हुए। उन महात्मा हिरण्यगर्भ का सुमेरु उल्व, अन्य पर्वत, जरायु, तथा समुद्र गर्भाशयस्थ था। उस अण्ड में ही पर्वत और द्वियादि के सहित समुद्र, ग्रहों के सहित सम्पूर्ण लोक तथा देव, असुर और मनुष्य आदि विविध प्राणिवर्ग प्रकट हुए। यह अण्ड इन पूर्वोक्त सात प्राकृत आवरणों से घिरा हुआ है।

उसमें स्थित हुए स्वयं विश्वेश्वर भगवान विष्णु ब्रह्मा होकर रजोगुण का आश्रय लेकर इस संस्कार की रचना में प्रवृत्त होते हैं।

विशेष— सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में आचार्योक्त बातों को ही भिन्न प्रकार से कहा गया है—

सृष्टिक्रमनिरूपणम्—

"वासूदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्तिः पुरुषः परः।
अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पञ्चविंशात् परोऽव्ययः॥१२॥
प्रकृत्यन्तर्गतो देवो बहिरन्तश्च सर्वगः।
सङ्कर्षणोऽपः सृष्ट्वादौ तासु वीर्यवासृजत्॥१३॥
तदण्डमभवद् हैमं सर्वत्र तमसावृतम्।
तत्रानिरुद्धः प्रथमं व्यक्तीभूतः सनातनः॥१४॥
त्रयीमयोऽयं भगवान् कालात्मा कालकृद्विभुः।
सर्वात्मा सर्वगः सूक्ष्मः सर्वमस्मिन् प्रतिष्ठितम्॥१८॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ सृष्ट्यां मनश्चक्रे ब्रह्माऽहङ्कारमूर्तिभृत्॥२१$\frac{१}{२}$॥
मनसः खं ततोवायुरग्निरापो धरा क्रमात्।
गुणैकवृद्धया पञ्चेति महाभूतानि जज्ञिरे॥२३॥
ततश्चराचरं विश्वं निर्ममे देवपूर्वकम्।
ऊर्ध्वमध्याधरेभ्योऽथ स्रोतोभ्यः प्रकृतीः सृजन्॥२६॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय २० में आचार्योक्त प्रकार ही पुराणोक्त कथन किया है। यथा–

"आसीद्ध्वान्तमिदं ततोऽम्भसि बभूवाण्डं स्वरूपदिलं
तस्मिन् विश्वकृदर्कचन्द्रनयनो ब्रह्मा किलाभूत् पुरा।
द्रव्यादीन् कणभुक् प्रधानपुरुषौ साङ्ख्यौऽवदत् कारणं
विश्वस्यास्य तथा स्वभावमपरे कर्मार्थकालं जगुः॥४७॥
रजोगुणसमन्वितात् कमलजन्मनः प्राणिनो
भवन्ति भगवानवत्यपि च सत्ययुक्तो हरिः।
हरो हरति तामसीं समवलम्ब्य वृत्तिं परे
जगुस्त्रितयमप्यजः क्रियत इच्छयैवैककः॥४८॥"

इदानीं भूमेः स्वरूपमाह—

भूमेः पिण्डः शशाङ्कज्ञकविरविकुजेज्यार्किनक्षत्रकक्षा-
वृत्तैर्वृत्तो वृतः सन् मृदनिलसलिलव्योमतेजोमयोऽयम्।
नान्याधारः स्वशक्त्यैव वियति नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे
निष्ठं विश्वं च शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात्॥२॥
सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः।
कदम्बकुसुमग्रन्थिः केसरप्रसरैरिव॥३॥

भूमि का रूप बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— मिट्टी, वायु, जल, आकाश से युक्त यह तेजोमय वृत्ताकार पृथ्वी चंद्र, बुध, शुक्र, सूर्य, भौम, गुरु, शनि तथा नक्षत्र की वृत्ताकार कक्षाओं से आवृत्त होकर बिना किसी अन्य आधार के स्वशक्ति से आकाश में स्थित है। उसके पृष्ठ के ऊपर जगत विद्यमान है। इस पर दानव, मानव, देव, असुर सहित विश्व सदा स्थित हैं। सभी ओर पर्वत, उद्यान, ग्राम, देवस्थान आदि स्थित हैं, जिस प्रकार कदम्ब पुष्प ग्रंथि में तिर्यक (उर्धव) केसरं लगी रहती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद् ग्रंथ के भूगोलाध्याय १७ में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"गगनमरुदग्निजलमृण्मयो महाभूतगुणयुतः खस्थः।
कक्षाभिरावृतोऽयं भपञ्जरान्तश्च भूगोलः॥१॥
मध्येऽयस्कान्तानां यथा स्थितोऽयोगुडः खमध्यस्स्थः।
तद्वदनाधारोऽपि हि सर्वाधारो महीगोलः॥२॥"
तरुनगनगरसुरासुरनरैरयं केसरैरिव समन्तात्।
गोलः कादम्बो मधुकरीभिरिव सर्वतः प्रचितः॥६॥

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गोलाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"शशिबुधसितार्क कुजगुरु शनि कक्षा वेष्टितो भ कक्षान्तः।
भूगोलः सत्त्वानां शुभाशुभैः कर्मभिरुपात्तः॥२॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"विधुबुधसित सूर्योरिज्यपातङ्गि कक्षावलयपरिवृत्तोऽ
सावृक्ष कक्षोदर स्थं....."
आदर्शोदरसन्निभा भगवती विश्वम्भरा कीर्त्तिता,
कैश्चित् कूर्मपृष्ठसदृशी कैश्चित् सरोजा कृतिः॥अ.१५श्लो.८।
अस्माकं तु कदम्ब पुष्पनिचथग्रन्थेः समा
सम्मता सर्वत्रासुमतां चयेन निचिता तोयस्थस्थापिनाम्॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. के भूगोल ५ अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"कुर्मभिर्मृदुभुजां शुभाशुभैः व्योमवायुशिखितोयमृण्मयः।
भग्रहैस्सुपरिवेष्टितोऽम्बरे निर्मितस्त्ववनिगोलकोऽचलः॥१॥
लोहकान्तपरिवेष्टितो यथा खस्थितोऽपि न पतत्ययोगुडः।
तद्वदेव भखगैर्निवारिता नो पातत्यविधृताऽपि भूरियम्॥२॥
केसरैरिव समन्ततश्चितं स्यात्कदम्बकुसुमं यथा तथा।
सर्वतोऽमरनरोरगादिभिः जन्तुभिः परिवृता स्थिताधरा॥१२॥"

वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका के त्रैलोक्यसंस्थानम–१३ अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"पञ्चमहाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोलः।
खेऽयस्कान्तस्थो लोह इवाऽवस्थितो वृत्तः॥१॥
तरुनगनगरारामसरित्समुद्रादिभिच्चितः सर्वः।
विबुधनिलयः सुमेरुस्तन्मध्येऽधः स्थिता दैत्याः॥२॥
चन्द्रादूर्ध्वं बुधसितरविकुजजीवाऽर्कजास्ततो भानि।
प्राग्गतयस्तुल्यजवा ग्रहास्तु सर्वे स्वमण्डलगाः॥३९॥"

सूर्यसिद्धान्त में भी भूगोलाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"मनसः खं ततोवायुरग्निरापो धराक्रमात्।
गुणैकवृद्धया पञ्चेति महाभूतानि जज्ञिरे॥२३॥
गुणकर्म विभागेन सृष्ट्वा प्राग्वदनुक्रमात्।
विभागं कल्पयामास यथास्वं वेददर्शनात्॥२७॥
ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाऽभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा॥३०॥
मन्दामरेज्य - भूपुत्र - सूर्य - शुक्रेन्दुजेन्दवः
परिभ्रमन्त्यधोऽधः स्थाः सिद्धा विद्याधरा घनाः॥३१॥
मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
विभ्राणः परमा शक्तिं ब्रह्मणो धारणाक्तिकाम॥३२॥"

आर्यभट (प्र.) ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"यद्वत् कदम्बपुष्पग्रन्थिः प्रचितरसमन्ततः कुसुमैः।
यद्वद्धि सर्वसत्त्वैर्जलजैस्स्थलजैश्च भूगोलः॥७॥"

इदानीं पुराणेषु भूमेराधारपरंपरा या पठिता तां निराकुर्वन्नाह—

मूर्तो धर्ता चेद्धरित्र्यास्ततोऽन्यस्तस्याप्यन्योऽस्यैवमत्रानवस्था।
अन्त्ये कल्प्या चेत् स्वशक्तिः किमाद्ये किं नो भूमेः साष्टमूर्तेश्च मूर्तिः॥४॥

पुराणो में भूमि के आधार की जो परंपरा बताई गई है उसका निराकण—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि हम यह मानें कि मूर्त (कठोर, भारी) रूप पृथ्वी को कोई धारण करने वाला धर्ता है तो उस धर्ता को भी धारण करने वाला अन्य दूसरा धर्ता होगा, इसी प्रकार उसको भी धारण करने वाला कोई और अन्यधर्ता होगा। इस प्रकार धारक और धार्य की स्थिति की कल्पना में अंत में यही मानना पड़ेगा कि कोई अवस्था की स्थिति है जहाँ अंतिम धारक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वशक्ति से ही स्थित है तथा उसको धारण करने वाला कोई नहीं है। अतः धारण करने वाली कल्पना सही नहीं है। भूमि का कोई अन्य आधार नहीं है ऐसा मानने से उसका निराधार स्थिति रहना ही भाव है। शेष (नाग) आदि नामक ईश्वर अंश की अंतरिक्ष में अवस्थित होने के लिए युक्ति कल्पित की है। भूमि भी उसी भाव से युक्त होने से भगवान अष्टमूर्ति शिव की भांति शक्ति कल्पित की गई है जो स्वयं शक्ति का केंद्र है। अतः यह भूमि, पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश सूर्य और चंद्र के साथ यजमानात्मक महेश्वर की मूर्ति के समान शरीर धारण करके ईश्वर मूर्ति की भांति अंतरिक्ष में अवस्थित है। इस प्रकार शक्ति कल्पना की युक्ति का भाव है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मिथ्याज्ञानाधिकार २० में आचार्योक्त बात को ही अन्य प्रकार से कही है। यथा—

"सलिले विलयो मृदो भवेदिति गोरप्सु न युज्यते स्थितिः।
अथ पात्रगतेति तत् कथं न भवेद्यावदिलैव पार्थिवम्॥३६॥
यदि वाम्भसि संस्थिता मही सलिलं तद् द्युवदप्रतिष्ठितम्।
गुरुणोऽम्भसि चेत् स्थितिर्भवेत् क्षितिगोलस्यन किं विदायसि॥४०॥
कमठादिभिरुद्धृता मही यदि ते केन धृता नभः स्थिताः।
अत एषां वियति स्थितिर्यदि क्षितिगोलस्य तु केन वार्यते॥४१॥
परमात्मवशेन स्वस्थितिर्ग्रहचक्रस्य परिभ्रमस्तथा॥४६॥"

सूर्यसिद्धान्त के भगोलाध्याय में पृथ्वी को ब्रह्मा की धारणात्मक परम शक्ति से आकाश में अवस्थित बताया है। यह भास्करोक्त ही है। यथा—

"मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
विभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम्॥३२॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"धर्ता धरित्र्या यदि हन्त मूर्त्तस्तस्यापरस्तस्य परस्ततो ऽन्यः।
एवं हि तेथामनवस्थितिः स्यादतोऽत्र युक्ता भुव एव शक्तिः॥२०॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त ही पृथ्वी की स्थिति कही है। यथा—

"निलाधाराः केचित् केचिल्लोका वसुन्धराधाराः।
वसुधा नान्याधारा तिष्ठति गगने स्वशक्तयै॥४॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं कथमियं भूमेः स्वशक्तिरित्याशङ्कां परिहरन्नाह—

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि।
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्रा बत वस्तुशक्तयः॥५॥
आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे॥६॥

'पृथ्वी स्वशक्ति से स्थित है', इस कथन की शंका का परिहार—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस प्रकार अग्नि और सूर्य में उष्णता, चंद्रमा में शीतलता है, जल में तरलता है, पाषाण में कठोरता है, वायु में गति है, ये सब स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। उसी प्रकार पृथ्वी में अचलता अर्थात स्थिरता का गुण स्वाभाविक (प्राकृतिक) है। इस विचित्र गुण के कारण यह स्थिर रह सकती है।

पृथ्वी में अपनी आकर्षण शक्ति के कारण, आकाश में स्थित भारी पदार्थ पृथ्वी की और स्वशक्ति से आकर्षित होकर उस पर गिरते हुए दिखाई देते हैं। लेकिन यह पृथ्वी चारों ओर से आकाश से घिरी हुई होने के कारण कहाँ पर गिरेगी? अर्थात यह अपने ही स्थान पर स्थित है, अपने विचित्र स्वाभाविक गुण के कारण। अतः पृथ्वी की इस आकर्षण शक्ति से भूमि का अधपतन और आकाश के नीचे स्थिति से नीचे गिरने की शङ्का निराधार है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर अध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"उष्णत्वमर्कशिखिनो शिशरत्वमिन्दो काठिन्यमश्मनि नभस्वति चञ्चलत्वम्।
नैसर्गिकी च पयसि द्रवता तथेह निर्हेतुरेवमवनेः स्थितिरन्तरिक्षे॥२१॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भूगोलाधिकार १७ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"..... गुरुमेदिनीं व्रजति यद्वदिहास्मदवस्थितौ।
तलगतामितरेष्वषि तत्तथा न तलमस्ति भुवः क्व पतत्वसौ॥८॥
शिशिरता शशिनोऽर्कहविर्भुजोराशिशिरत्वममार्दवमश्मनाम्।
सततगस्य चलत्वमपांपतेः प्रकृतिरेव कुजादिनभःस्थितिः॥९॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. भूगोल ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"खं प्रयाति शिखिनः शिखा यथा खात् क्षितिं च गुरु संस्थितावहि।
सर्वतः कुवलयंस्थितौ तथा नास्त्यधस्तलमतः क्व यात्वसौ॥७॥
उष्णताऽर्कशिखिनोरपां गतिः शीतता शिशिरगोरमार्दवम्।
अश्मनां सुनियतं निसर्गतः खस्थितिः खलु महीवियत्सदाम्॥९॥"

इदानीं बौद्धादियुक्तिमाह—

भपञ्जरस्य भ्रमणावलोकादाधारशून्या कुरिति प्रतीतिः।
खस्थं न दृष्टं च गुरु क्षमातः खेऽधः प्रयातीति वदन्ति बौद्धाः॥७॥
द्वौ द्वौ रवीन्दू भगणौ च तद्वदेकान्तरौ तावुदयं व्रजेताम्।
यदब्रुवन्नेवमनम्बराद्या ब्रवीम्यतस्तान् प्रति युक्तियुक्तम्॥८॥

बौद्धमत की युक्ती —

सूर्य-प्रभा टीका— बौद्धों का मानना है कि नक्षत्र अधिष्ठित गोल तथा ग्रहों का भूमि के चारों ओर भ्रमण करते हुए देखने से यह अनुभव से प्रतीत होता है कि भूमि आधार रहित है अर्थात वह किसी अन्य चीज पर टिकी हुई नहीं है। अन्यथा इनका (ग्रह नक्षत्रों) उदयास्त सिद्ध भ्रमण पृथ्वी का आधार होने से सिद्ध नहीं होता क्योंकि उनके उदयास्त और भ्रमण में पृथ्वी के आधार के कारण रुकावट होती।

और दूसरा यह मानना है कि कोई भी भारी वस्तु आकाश में स्थित क्यों नहीं दिखाई देती। क्योंकि पृथ्वी इतनी भारी होने पर यदि आकाश में बिना आधार के रह सकती है तो अन्य किसी भी भारी वस्तु को भी आकाश में स्थिर रहना चाहिये। ये अनुभव से सिद्ध है। अतः ब्रह्माण्ड के मध्य स्थित आकाश में स्थित भूमि प्रतिक्षण नीचे गिरती रहती है, जो भूमि पर स्थित प्राणियों को दिखाई नही देती।

उनके यह कहने से कि पृथ्वी लगातार गिर रही है उन्होंने आकाश के आवरण (की सीमा) को नकार दिया अर्थात आकाश को सीमा रहित मान लिया।

बौद्धों का यह भी मानना है कि दो सूर्य तथा दो चन्द्रमा दो-दो ही अश्विन्यादि नक्षत्र तथा ग्रह हैं। ये एकान्तर से अर्थात् एक अहोरात्र में एक उदित होता है और दूसरी अस्त होता है फिर दूसरे दिन दूसरा उदय होता है और पहला अस्त होता है। इस प्रकार पुनः पुनः होता रहता है। इस प्रकार उनके कहने से वे अम्बर आवरण को न मानने से वे दिगम्बर कहलाते हैं। बौद्धों में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिगम्बर भेद के मुखिया होने के कारण वे पहले बौद्ध कहलाते हैं जो युक्तियुक्त है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अधः पतन्त्याः स्थितिरस्ति नोर्व्या नभस्यनन्तेऽत्र वदन्ति जैनाः।
द्वौ द्वौ रवीन्दु द्विगुणं भसंस्थां चतुर्भुजस्तम्भनिभं च मेरुम्॥
दो चन्दा दो सुज्जा जैनवाक्यम्॥११॥"

वराहमिहिर ने पं.सि. के अध्याय १३ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अर्हत्प्रोक्तेऽर्केन्दू द्वौ द्वावेकान्तरौ किलतौ।
यद्येवमर्कसूत्रात् किं ध्रुवचिन्हं भ्रमत्यह्ना॥८॥"

इदानीं तेषां युक्तिभङ्गमाह—

भूः खेऽधः खलु यातीति बुद्धिर्बौद्ध मुधा कथम्।
जाता यातं तु दृष्ट्वापि खे यत् क्षिप्तं गुरु क्षितिम्॥९॥

बौद्धों की युक्ति का खण्डन—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि भूमि नीचे गिरती जाती है तो तीर आदि भारी वस्तु को ऊपर की ओर बलपूर्वक ऊपर फेंका जाता है वे वापस पृथ्वी पर नहीं आ सकते क्योंकि दोनों ही नीचे की ओर गमन करते हुए होते हैं, और यदि यह कहा जावे कि पृथ्वी की मन्द गति होती है और तीर की अधिक होती है तो यह संभव नहीं हो सकता क्योंकि जैसे भारी चीज शीघ्रता से गिरती है वैसे ही वह ऊपर भी अधिक जाती है तथा तीर आदि जो हल्के होते हैं वे अति लघु दूरी तक जाते हैं। अतः आचार्य बौद्ध मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि हे बौद्ध! पृथ्वी पर गिरती हुई वस्तुओं को प्रत्यक्ष देखकर भी तुम्हारी बुद्धि में यह वृथा कल्पना किस प्रकार उत्पन्न हो गई?

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"शरादिरुर्ध्व निहितः कदा चिदायाति भूमिं न तदीयपक्षे।
विहङ्गमा न स्वकुलायमापुरसत् प्रलापो हि तदुक्तिरस्मात्॥१२॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय २० में आचार्योक्त कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"यदि च भ्रमति क्षमा तदा स्वकुलायं कथमाप्नुयुः खगाः।
इषवोऽभिनभः समुज्झितानिपतन्तः स्युरपांपतेर्दिशि॥४२॥
पूर्वाभिमुखे भ्रमे भुवो वरुणाशाभिमुखो व्रजेद् घनः।
अथ मन्दगमात्तदा भवेत् कथमेनेक दिवा परिभ्रमः॥४३॥"
"यदि गच्छति भूरधोमुखी गगने क्षिप्तमुपैति नो महीम्।
यदि चोर्ध्वमुपैति सा तदा निकटं किं न भवेत् भपञ्जरः॥३८॥"

अध्याय १७ भूगोलाधिकार में—

शिखिशिखा गगनं गुरुमेदिनीं व्रजति यद्वदिहास्मदवस्थितौ।
तलगतामितरेष्वपि तत्तथा न तलमस्ति भुवः क्व पतत्वसौ॥८॥

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. के भूगोल ५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"खं प्रयाति शिखिनः शिखा यथा खात् क्षितिं च गुरु संस्थितावहि।
सर्वतः कुवलयस्थितौ तथा नास्त्यधस्तलमतः क्व यात्वसौ॥७॥"

इदानीं जैनयुक्तिभङ्गमाह—

किं गण्यं तव वैगुण्यं द्वैगुण्यं यो वृथाकृथाः।
भार्केन्दूनां विलोक्याह्ना ध्रुवमत्स्यपरिभ्रमम्॥१०॥

जैन मत का खण्डन—

सूर्य-प्रभा टीका— जब भरणी नक्षत्र में सूर्य रहता है तब उसके अस्त समय काल पर ध्रुवतारे की मत्स्य तिर्यक स्थित होती है। उसका उस समय पर मुख तारा पश्चिम की ओर रहता है और पुच्छ तारा पूर्व की ओर रहता है। इस प्रकार तब मुखतारा के सूत्र में रवि स्थित होता है और रात्रि के समाप्ति के समय पर मुखतारा परिवर्तित होकर पूर्व की ओर आ जाता है और पुच्छतारा पश्चिम की ओर आ जाता है। अतः तब मुखतारा गत सूत्र में सूर्य उदित होता हुआ दृश्य होता है। अतः दो-दो सूर्यों के होने की बात प्रमाणित (उपपन्न) नहीं होती। अतः आचार्य कहते हैं कि जैन मत में दो सूर्यों (आदि) के कहने में किस प्रकार किस एक की गणना में त्रुटि की गई है? इस प्रकार ध्रुव तारे की मत्स्य के परिभ्रमण को देखकर भी सूर्य चंद्र को दो-दो होना किस प्रकार अंगीकार (स्वीकार) किया गया है?

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय २० में अन्य ताराओं की स्थिति से जैन मत का खण्डन किया है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"द्वितयं दिनरात्रिनाथयोः कथमेकान्तरितं तदुद्व्रजेत्।
यदि किं ध्रुवतारकातिमेर्दिवसेनैव भवेत् परिभ्रमः॥४४॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के यन्त्र परीक्षाध्याय में आचार्योक्त कहा है—

"भानि चतुष्पञ्चाशत् द्वौ द्वौ वर्केन्दवौ जिनोक्तं यत्।
ध्रुवमत्स्यस्यावर्त्तो भवति यतोऽह्ना ततस्तदसत्॥३॥"

इदानीं भूगोलस्य समतां निराकुर्वन्नाह—

**यदि समा मुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणी तरणिः क्षितेः।
उपरि दूरगतोऽपि परिभ्रमन् किमु नरैरमरैरिव नेक्ष्यते॥११॥
यदि निशाजनकः कनकाचलः किमु तदन्तरगः स न दृश्यते।
उदगयं ननु मेरुरथांशुमान् कथमुदेति च दक्षिणभागके॥१२॥**

भूमि के समतल होने की बात का निराकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— पुराणों में पृथ्वी को दर्पण के समान समतल कहा गया है। उसके मध्य में मेरु पर्वत कहा है तथा उसके चारों ओर जम्बू द्वीप एक लाख योजन व्यास का कहा गया है तथा उसके बाहर चारों ओर एक लाख योजन प्रमाण का क्षार सागर कहा है और उसके चारों ओर दो लाख योजन का अन्यदीप कहा गया है। उसके बाहर समुद्र फिर अन्य द्वीप, फिर उस द्वीप से दुगुणा द्वीप, फिर समुद्र से दुगुणा समुद्र। इस प्रकार सातवें पुस्कर द्वीप के मध्य में वलयाकार मानस उत्तर पर्वत है, उसके शिखर के ऊपर रवि के रथ का चक्र एक लाख योजन दूरी पर विषुवद्दिन में उत्तर गोल में उत्तर की ओर तथा दक्षिण गोल में दक्षिणी की ओर भ्रमण करता है।

ऊपरोक्त पुराणोक्त कथन का आचार्य युक्ति-युक्त खण्डन करते हुए कहते हैं कि यदि दर्पण के समान भूमि समतल होती और उसके ऊपर से बहुत दूर से सूर्य भ्रमण करता तो सूर्य सदा उदित अवस्था में ही प्राणियों को दर्श होता जैसे देवताओं को मेरु से सूर्य सदा उदित दिखता है। यदि मेरु पर्वत से अन्तर्हित (आच्छादक) रवि होता तो मेरु क्यों नहीं दिखाई देता अर्थात् वह दिखाई देना चाहिए। यदि मेरु के तट (किनारे-पास) से रवि उदित होता है तो पूर्व दिशा से उत्तर की ओर ही सूर्योदय होगा तो फिर मेरु के दक्षिण के भाग में वह उदित होता हुआ दिखाई कैसे देगा।

अतः भूमि के समतल होने की बात इस प्रकार उपपन्न (सिद्ध) नहीं होती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय २० में आचार्योक्त कहा है—

"यदुदेति रविः समन्ततः कथमाशास्तदमर्त्यभूभृतः।
प्राची प्रथमोदयेन चेत् तत्रैवास्तमयेन का भवेत्॥१४॥
केषां चिदुदग् दिवाकरः पुरतः पृष्ठगतः परस्य च।
इतरस्य तदैव दक्षिणः परमार्थात् ककुभो न कुत्रचित्॥१५॥
ककुभश्च सुमेरुभूभृतो युगलं चन्द्रमसोस्तथार्कयोः।४$\frac{१}{२}$।
अमितामवनीं प्रचक्षते सुसमां केचन दर्पणोपमाम्।५$\frac{१}{२}$।"

श्लो ३४ से ३७ में भी आचार्य से भिन्न तर्क भूमि के समतल होने के खण्डन रूप में दिये गये हैं।

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में भूमि के समतल होने का खण्डन किया है। यथा—

"आदेर्शोदरसंनिभा भगवती विश्वंभरा कीर्तिता
कैश्चित् कैश्चन कूर्मपृष्ठसदृश[illegible]श्चित सरोजाकृतिः॥८॥
मुकुरतलसमा चेत् सर्वते मेदिनायं कनकगिरिरयं तद्दृष्टियोग्या भवेन्नः॥९॥"

सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में भी आचार्योक्त बात का सार कहा है। यथा—

"अल्पकायतया लोकाः स्वस्थानात् सर्वतो मुखम्।
पश्यन्ति वृत्तामप्येनां चक्रकारां वसुन्धराम्॥५४॥"

अथ प्रत्यक्षविरोधशङ्कां परिहरन्नाह—

समो यतः स्यात् परिधेः शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्।
नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा॥१३॥

प्रत्यक्ष विरोध से शंका का निवारण—

सूर्य-प्रभा टीका— गणितज्ञों का कहना है कि किसी वृत्त का सौवाँ भाग समतल वत दृष्टिगोचर होता है। अतः पृथ्वी परिधि का भी सौवाँ भाग इसी प्रकार समतलवत दिखाई देता है। इसी प्रकार मनुष्य उसके पृष्ठ पर स्थित होकर सामने देखते हैं तो उन्हें पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग दूर तक समतल ही दिखता है। अतः उन्हें पृथ्वी के समतल होने का आभास होता है लेकिन वह समतल नहीं होती।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय २० में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"प्रगुणः परिधे शतांशको गणितज्ञाः कथयन्ति दृश्यते।
प्रतिभाति तदा समा महीविषये यत्र तथैव गम्यते॥३५॥"

इदानीं स्वोक्तस्य भूपरिधिप्रमाणस्योपपत्तिमाह—

पुरान्तरं चेदिदमुत्तरं स्यात् तदक्षविश्लेषलवैस्तदा किम्।
चक्रांशकैरित्यनुपातयुक्त्या युक्तं निरुक्तं परिधेः प्रमाणम्॥१४॥

स्व उक्त भूपरिधि प्रमाण से उपपत्ति—

सूर्य-प्रभा टीका— निरक्ष देश से स्वदेश स्थान पृथ्वी पर जैसे-जैसे दक्षिण की ओर होता है वैसे-वैसे ख स्वस्तिक विषुवद् वृत्त से नत होता जाता है। उन दोनों अर्थात निरक्षदेश तथा स्वस्थान का अन्तर अक्षांश होता है। यह निरक्षदेश से पृथ्वी पर पसरी हुई योजन दूरी, अनुपात से प्राप्त होती है। किसी स्थान के अक्षांश ज्ञात करके उससे उत्तर की ओर अन्य एक स्थान ज्ञात करे। फिर उनके अंतरांशों के पुरान्तर योजन का अनुपात करे कि यदि इतने अंतरांश में इतने पुरान्तर योजन प्राप्त होते हैं तो चक्रांश (३६०°) में कितने होंगे? प्राप्त फल भूपरिधि योजन होंगे।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय २० में आचार्योक्त प्रकार से ही कहा है। यथा—

"खरखषट्कुयमैर्मिताः कला ग्रहचक्रे वलये व्यवस्थिताः।
स्वफलस्य कुवृत्तयोजनैरनुपातादमिता कथं मही॥३२॥
यदि वृत्तवशेन गच्छताममिता भात्यथ भूरियोजना।
परितस्तु तदा तथाविद्या परिमाणं त्विदमेव नापरम्॥३३॥"

अथ तदेव दृढीकुर्वन्नाह—

निरक्षदेशात् क्षितिषोडशांशे भवेदवन्ती गणितेन यस्मात्।
तदन्तरं षोडशसंगुणं स्याद्भूमानमस्माद्बहु किं तदुक्तम्॥१५॥
शृङ्गोन्नतिग्रहयुतिग्रहणोदयास्तच्छायादिकं परिधिना घटतेऽमुना हि।
नान्येन तेन जगुरुक्तमहीप्रमाणप्रामाण्यमन्वययुजा व्यतिरेककेण॥१६॥

इस बात को दृढ़ करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— निरक्ष देशे से भूपरिधि का सोलहवें भाग तुल्य गणित के द्वारा अवन्ति प्रदेश का स्थान प्राप्त होता है। अर्थात्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

३६०÷१६=२२।३० अंशादि अवन्ति के अक्षांश। अक्षांश को १६ से गुणा करने से (२२।३०×१६) योजन भूमान प्राप्त होता है।

आचार्य कहते हैं कि यह मेरे द्वारा कथित मान है। अब इसके अतिरिक्त मैं (आचार्य) और क्या कहे अर्थात् क्या प्रमाण देवें।

शृंगोन्नति, ग्रहयुति, गहण, ग्रहउदयास्त तथा ग्रहच्छाया आदि प्रत्येक की आचार्योक्त गणित का, उज्जयनि के उक्त अक्षांश के आधार पर आचार्य द्वारा साधित भूपरिधि के मान से, साधन करने से सही मान प्राप्त होते हैं। किसी अन्य मान से इनमें से कोई भी गणना सही नहीं होती। अतः आचार्योक्त भूपरिधि मान ही सही है। इससे आचार्योक्त बात दृढ़ होती है कि पृथ्वी दर्पण के समान चपटी न होकर गोलाकार है तथा सीमित प्रमाण की है।

विशेष— **लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ** के अध्याय २० में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"अमिता यदि भूरियोजना वा क्षितिरह्ना परिवर्त्यते कथं भैः।
परिधेः खलु षोडशे स्थितांशे न च लङ्काविषयाद् भवत्यवन्ती॥३०॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गोलाध्याय में आचार्योक्त अवन्ति की स्थिति कही है—

"भूपरिधि चतुर्थभागे लङ्काभूमस्तकान क्षितितलाच्च।
लङ्कोउत्तरतोऽवन्ती भूपरिधेः पञ्चदश भागे॥९॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय १९ भुवनकोष में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"भूपरिधेरष्टयंशेऽवन्ती स्यात् सौम्यादिग्भागे॥४०॥"

इदानीं भूगोले पुरनिवेशमाह—

लङ्का कुमध्ये यमकोटिरस्याः प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च।
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः सौम्येऽथ याम्ये वाडवानलश्च॥१७॥
कुवृत्तपादान्तरितानि तानि स्थानानि षड्गोलविदो वदन्ति।
वसन्ति मेरौ सुरसिद्धसङ्घा और्वे च सर्वे नरकाः सदैत्याः॥१८॥
यो तत्र तिष्ठत्यवनीं तलस्थामात्मानमस्या उपरि स्थितं च।
स मन्यतेऽतः कुचतुर्थसंस्था मिथश्च ये तिर्यगिवामनन्ति॥१९॥
अधः शिरस्काः कुदलान्तरस्थाश्छायामनुष्या इव नीरतीरे।
अनाकुलास्तिर्यगधः स्थिताश्च तिष्ठन्ति ते तत्र वयं यथात्र॥२०॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूगोल में स्थानों का निवेश—

सूर्य-प्रभा टीका— पृथ्वी के मध्य में लङ्का, इसके ९०° पूर्व में यमकोटि और ९०° पश्चिम में रोमकपतन नाम का पुर है। इसके १८०° नीचे सिद्धपुर और ९०° उत्तर में सुमेरु उत्तर ध्रुव है तथा ९०° दक्षिण में वाडवानल पुर (दक्षिण ध्रुव) है। ये सब स्थान भूमध्यस्थ लङ्का के सापेक्ष कहे गये हैं।

भूगोल के पादों (चतुर्थ भाग) को अंतरित करने वाले स्थानों को छः गोल वाले कहे जाते हैं। मेरु पर देवता सिद्ध पुरुषों के साथ रहते हैं तथा दक्षिण ध्रुव पर सभी नर्क तथा दैत्यगण निवास करते हैं। जो लोग पृथ्वी पर जहाँ पर भी स्थित है वे अपने आप को पृथ्वी के ऊपर उसके ऊपरी भाग पर ही स्थित समझते हैं तथा दूसरों केा अपने नीचे स्थित अनुभव करते हैं। पृथ्वी के चतुर्थ भाग (पाद) में स्थित सभी लोग पृथ्वी पर आश्चर्य रूप से तिरछे स्थित होते हैं (यद्यपि पृथ्वी के धरातल पर तो वे उर्ध्व ही होते हैं)। पृथ्वी के आधे भाग के अन्तर पर स्थित मनुष्य परस्पर नीचे सिर करके स्थित होते हैं, जैसे किसी जलाशय के किनारे पर खडे होकर जल में देखने से जल में छाया में खड़ा दिखाई देने वाला व्यक्ति बिना किसी परेशानी के स्थित रहता है, उसी प्रकार बिना परेशानी के मनुष्य एक दूसरे के पृथ्वी के अधः भाग में एक दूसरे से नीचे की ओर सिर करके भी स्थित रहते हैं।

विशेष— वराहमिहिर ने पं.सि. के अध्याय १३ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"सलिलतटासन्नानां अवाङ्मुखी दृश्यते यथा छाया।
तद्वद् गतिरसुराणां मन्यन्ते तेऽप्यधो विबुधान्॥३॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"क्षिति परिधिचतुर्थे प्राचि लङ्कानगर्या निवसति यमकोटिः पश्चिमे रोमकश्च।
उदगमरगिरिन्द्रो दक्षिणे वाडवाग्निः क्षितिपरिधिदलेऽधः पत्तनं सिद्धपुरम्॥३०॥"

सूर्यसिद्धान्त में भी भूगोलाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

उपरिष्टात् स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः
अधस्तादसुरास्तद्वद् द्विषन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः॥३५॥
समन्तान्मेरुमध्यात् तु तुल्य भागेषु तोयधेः।
द्विपेषु दिक्षु पूर्वादिनगर्यो देवनिर्मिताः॥३७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता।
भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकारतोरणा॥३८॥
याम्यायां भारते वर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता॥३९॥
उदक् सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रकीर्तिता।
तस्यां सिद्धा महात्मानो निवसन्ति गतव्यथाः॥४०॥
भूवृत्तपादविवरास्ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठताः।
ताभ्यश्चोत्तरगो मेरुस्तावानेव सुराश्रयः॥४१॥
सर्वत्रैव महिगोले स्वस्थानमुपरी स्थितम्।
मन्यन्ते खे यतो गोलस्तस्य क्वोर्ध्वं क्ववाप्यधः॥५३॥
अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽधः परस्परम्।
भद्राश्वकेतुमालस्था लङ्कासिद्धपुरस्थिताः॥५२॥
उपर्यात्मानमन्योऽन्यं कल्पयन्ति सुरासुराः॥५१॥''

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भुगोलाध्याय १७ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''लङ्काप्राग् यमकोटिः पश्चाद्रोमकमधश्च सिद्धपुरम्।
मेरुः स्थित उत्तरतो दक्षिणतो दैत्यनिलयः स्यात्॥३॥
कुपरिधि पादान्तरगा मन्यन्ते तिर्यगन्योऽन्यम्॥४॥''
भूपरिधिदलान्तरगाः के नृच्छाये तथा तथोर्ध्वमधः।
सर्वेषामुपरि नभस्तदधो भूरुपरिते भूमेः॥५॥

आर्यभट (द्वि) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''लंकाया यमकोटिः प्राक् पश्चाद्रोमकं तलस्थं च।
सिद्धपुरं भगणोऽयं भ्रमति पुराणां सदा शिरसि॥१४॥
क्षोणीं भित्वा मेरुर्निर्गत उभयत्र तन्मूले।
निवसन्त्यसुरा दनुजाः शिरोविभागे सदा देवाः॥६॥
मध्यन्तेऽन्योन्यं ते ह्यधः शिरस्कान् पुरः स्थितांस्तिर्यक्।
सुखगे कुन्दकपृष्ठे चरन्ति सर्वे यथाऽत्र वयम्॥७॥
अम्बरसंस्थित भूमे कोऽधोभागः क उर्ध्व उत्पार्श्वः।
सा कल्पनावधेः स्याल्लङ्का गोलोपरिस्थितोक्ताऽतः॥८॥''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. के भूगोल ५ अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

लङ्काधः सिद्धपुरं प्राग्यमकोटी सुरोमकं पश्चात्।
याम्ये दैत्यावसतिः सुरनिलयो मेरुरुत्तरतः॥१०॥
दैत्यालयो जलस्थो मेरुः स्थलगः नराश्च तत्सीम्नि।
क्षितिपरिधिचरणसंस्थास्तिर्यग्गतांश्च मन्यन्तेऽन्योन्यम्॥११॥
दिनकरास्तमयोदययोर्दिशौ वरुणवज्रभृतोर्यमसोमयोः।
ध्रुववशात् कुरवास्तदधस्थितौ उपरि भानि भुवो नभसस्ततिः॥४॥''

यहाँ पूर्वादि चारों दिशाओं तथा उत्तरी तथा दक्षिणि ध्रुवस्थ स्थानों के बारे में विशेष व्याख्या की गई है। दक्षिण ध्रुव के लिए अन्योक्ति रूप में लंका का नाम कहा है जो भी पृथ्वी पर राक्षसों का ही स्थान था।

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गोलाध्याय में उत्तर तथा दक्षिण ध्रुवों पर दैवों तथा दैत्यों का स्थान आचार्योक्त प्रकार ही कहा है–

''खे भूगोलस्तदुपरि मेरौ देवाः स्थितास्तले दैत्याः।
खे भगणाक्षाग्रस्थावुपर्यधश्च ध्रुवौ तेषाम्॥३॥''

श्रीपति ने भी सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त प्रकार ही ध्रुवादि कहे हैं। यथा—

''स्वमूर्धंग मेरुगतास्तमुत्तरं तथेतरं वाडवासिनो
जनाः वडवानलवासिनः दैत्याः।''

आर्यभट (प्रथम) ने आर्यभटीय के गोलपद में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''स्वर्मेनू स्थलमध्ये नरको वडवामुखश्च जलमध्ये।
अमरामरा मन्यन्ते परस्परमधःस्थितान्नियतं॥१२॥
उदयो यो लङ्कायां सोऽस्तमस्सवितुरेव सिद्धपुरे।
मध्यान्हो यवकोट्यां रोमकविषयेऽर्धरात्रस्स्यात्॥१३॥
स्थलजलमध्याल्लङ्का भूकक्ष्याया भवेच्चतुर्भागे।
उज्जयिनि लङ्कायास्तच्चतुरंशे समोत्तरतः॥१४॥''

आर्यभट (प्रथम) ने आर्यभटीय के गोलपाद में उत्तरी ध्रुव में मेरुस्थान पर देवता तथा दक्षिण ध्रुव को दैत्यों का स्थान वडवानल आचार्योक्त प्रकार कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"देवाः पश्यन्ति भगोलार्धमुदङ्मेरुसंस्थितास्सव्यं।
अपसव्यगं तथार्धं दक्षिणवडवामुखे प्रेताः॥१६॥"

इदानीं द्वीपानां समुद्राणां च स्थानमाह—

भूमेरर्धं क्षारसिन्धोरुदक्स्थं जम्बूद्वीपं प्राहुराचार्यवर्याः।
अर्धेऽन्यस्मिन् द्वीपषट्कस्य याम्ये क्षारक्षीराद्यम्बुधीनां निवेशः॥२१॥
लवणजलधिरादौ दुग्धसिन्धुश्च तस्मादमृतममृतरश्मिः श्रीश्च यस्माद्बभूव।
महितचरणपद्मः पद्मजन्मादिदेवैर्वसति सकलवासो वासुदेवश्च यत्र॥२२॥
दध्नो घृतस्येक्षुरसस्य तस्मान्मद्यस्य च स्वादुजलस्य चान्त्यः।
स्वादूदकान्तर्वडवानलोऽसौ पाताललोकाः पृथिवीपुटानि॥२३॥
चञ्चत्फणामणिगणांशुकृतप्रकाशा एतेषु सासुरगणाः फणिनो वसन्ति।
दीव्यन्ति दिव्यरमणीरमणीयदेहैः सिद्धाश्च तत्र च लसत्कनकावभासैः॥२४॥
शाकं ततः शाल्मलमत्र कौशं क्रौञ्चं च गोमेदकपुष्करे च।
द्वयोर्द्वयोरन्तरमेकमेकं समुद्रयोर्द्वीपमुदाहरन्ति॥२५॥

द्वीप तथा समुद्रों के स्थान—

सूर्य-प्रभा टीका— भूमि के उत्तरार्ध भाग में क्षार समुद्र के उत्तर दिशा में जम्बू द्वीप आचार्यों ने कहे हैं। इसके दूसरे अर्धभाग में अर्थात जहाँ क्षीर सागर तथा जम्बूद्विप के दक्षिण की ओर छः द्वीप स्थित हैं, लवण (नमकीन) समुद्र से आगे दुग्ध समुद्र हैं जिसमें से अमृत (सदा स्थित) और अमृत रश्मि चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है। यहीं पर क्षीर सागर पर पद्म चरण पूज्य भगवान पद्म जन्मा ब्रह्मा तथा अन्य देवता और सर्वत्र वासि भगवान परब्रह्म विष्णु भी विराजमान रहते हैं।

दधि, घृत, इक्षु (ईख-गन्ना) रस, मद्य और स्वाद (मधुर) जल के अन्य सागर हैं। (पाँच ये तथा छठा दुग्ध सागर व सातवाँ क्षीर सागर मिलाकर सात सागर आचार्य ने कहे हैं।) स्वादु जल सागर के अन्दर वडवानल स्थित रहता है। पाताल लोग पृथ्वी के अन्दर स्थित हैं। फणों को हिलाने वाले (मणिधारी) नाग अपने फणों में प्रकाश से युक्त मणियों को धारण करके दैत्यों के समूह के साथ यहाँ रहते हैं जिनकी मणियों से पाताल में प्रकाश रहता है। शाक, शाल्मल, कौश, क्रौञ्च तथा गोमेदक और पुष्कर द्वीप (पूर्वोक्त) दो-दो समुद्रों के बीच में स्थित है। इस प्रकार पृथ्वी पर सात द्वीप स्थित है।

मेरु पृष्ठ पर स्थित देवता, मेरु पर रात्रि के अभाव के समय जब उनकी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संभोगेच्छा होती है तब स्वर्णक्रान्ति युक्त रमणीय देह वाली बालायें तथा वे सिद्ध गण तथा देवता परस्पर क्रीड़ा में रत होते हैं। ये बालायें निज काम भाव की शांति के लिए स्वर्ग से आकर क्रीडा करती हैं।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। अध्याय १५ यथा—

"लवणजलधिराद्यो दुग्धसिन्धुर्द्वितीयस्तदनु दधिसमुद्रस्सर्पिरब्धिश्चतुर्थः।
अथ रसनिधिरिक्षोः पञ्चमोऽन्य सुराया जलधिरथ तदन्ते सप्तमः स्वादुतोयः॥३६॥"
जम्बूद्वीपोलवणजलधेर्मध्यतो मेरुमध्यः शाकस्तस्माद्बहिरथ कुशः क्रौञ्चनामा ततश्च।
शाल्मल्याख्यो भवति परितश्चाथ गोमेद संज्ञस्तस्माद्बाह्ये मुनिभिरुदितः सप्तमः पुष्कराव्य॥३३॥

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय १६ भुवनकोशाधिकार में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"क्षाराम्भोधिर्दक्षिणे व्यक्षगानां जम्बूद्वीपं तस्य सौम्ये मही या।
क्षाराम्भोधेर्दक्षिणे क्षीरसिन्धुः शाकद्वीपं मध्यमाहुस्तयोश्च॥१॥
क्षीराम्भोर्दक्षिणे ऽब्धिश्च दध्नः कौशद्वीपं मध्यभूमिस्तयोर्या।
दध्नः सर्पिर्दक्षिणे क्रौञ्चमन्तः शाल्मल्याख्यं स्यात् ततोऽब्धी रसोदः॥२॥
गोमेदं स्याद् द्वीपमस्मात् सुराब्धिस्तस्माद् याम्ये पुष्करं पुष्कराख्यात्।
स्वादूदःस्याद् दक्षिणे वाडवोऽस्मिन् दैत्यावासो यातना दुष्कृतीनाम्॥३॥
भूगोलान्तः सप्त पातालदेशास्ते चावासा दानवानामहीनाम्।५$\frac{१}{२}$।
लङ्कादेशात् क्षारसिन्धोश्च सौम्ये जम्बद्वीपे ज्यावदम्भोधितज्ज्यः।७$\frac{१}{२}$।"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है—

"दुग्धक्षरोद्ध्योः शाकद्वीपं यदन्तेर तस्य॥१०॥
दधिदुग्धोदधिमध्ये कुशं दधिस्नेहयोस्तथा क्रौञ्चम्।
इक्षुरसस्नेहजयोर्मध्ये स्याच्छाल्मलीद्वीपम्॥११॥
इक्षरसमद्यमध्ये गोमेदं पुष्करं सुरोदध्योः।
तदुदकमध्ये वहिनर्दैत्यास्तत्तीरमेरुमूलस्थाः॥१२॥"

इदानीं जम्बूद्वीपमध्ये गिरिनिवेशवशेनं नव खण्डान्याह—

लङ्कादेशाद्धिमगिरिरुदग्हेमकूटोऽथ तस्मात्
तस्माच्चान्यो निषध इति ते सिन्धुपर्यन्तदैर्घ्याः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एवं सिद्धादुदगपि पुराच्छृङ्गवच्छुक्लनीला
वर्षाण्येषां जगुरिह बुधा अन्तरे द्रोणिदेशान्॥२६॥
भारतवर्षमिदं ह्युदगस्मात् किन्नरवर्षमतो हरिवर्षम्।
सिद्धपुराच्च तथा कुरु तस्माद्विद्धि हिरण्मयरम्यकवर्षे॥२७॥
माल्यवांश्च यमकोटिपत्तनाद्रोमकाच्च किल गन्धमादनः।
नीलशैलनिषधावधी च तावन्तरालमनयोरिलावृतम्॥२८॥
माल्यवज्जलधिमध्यवर्ति यत् तत् तु भद्रतुरगं जुगुर्बुधाः।
गन्धशैलजलराशिमध्यगं केतुमालकमिलाकलाविदः॥२९॥
निषधनीलसुगन्धसुमाल्यकैरलमिलावृतमावृतमाबभौ।
अमरकेलिकुलायसमाकुलं रुचिरकाञ्चनचित्रमहीतलम्॥३०॥

जम्बू द्वीप में पर्वत निवेश के नौ खण्ड—

सूर्य-प्रभा टीका— भूगोलार्ध के उत्तर की ओर जम्बूद्वीप है इससे क्षीर सागर की संधि निरक्षदेश है। वहाँ पर रोमक, सिद्धपुर, यमकोटि (तथा लंका) आदि चार नगर भूपरिधि के चतुर्थांश अन्तर पर अर्थात चारों दिशाओं में कहे गये हैं। इन सभी चारों नगरों के उत्तर दिशा की ओर मेरु है। लंका के उत्तर में हिमवान नामक पर्वत पूर्व से पश्चिम तक समुद्र में फैला हुआ है। इसके उत्तर में हेमकूट पर्वत है जो समुद्र पर्यंत तक फैला हुआ है। इसके उत्तर में निषध नामक पर्वत है। इन पर्वतों के मध्य में द्रोणि देश, वर्ष संज्ञक है जिसके आरम्भ में भारत वर्ष है जिसके उत्तर में किन्नवर्ष संज्ञक तथा इसके उत्तर में हरिवर्ष संज्ञक प्रदेश है। इसी प्रकार सिद्धपुर के उत्तर की ओर शृङ्गवान नाम का पर्वत है, उससे उत्तर में श्वेत गिरि पर्वत, उससे उत्तर में नीलगिरि पर्वत है। इन सभी का विस्तार समुद्र पर्यंत है। इन पर्वतों के मध्य सर्वप्रथम कुरुवर्ष है इसके उत्तर में हिरण्मय है, इसके उत्तर में रम्यक वर्ष है।

उस यमयोटि पुर के उत्तर की ओर माल्यवान नाम का पर्वत है। यह निषध और नील पर्वत तक फैला हुआ है। इसके और समुद्र के मध्य में भद्राश्व वर्ष है। इसी प्रकार रोमक पर्वत के उत्तर में गन्धमादन है, इसके तथा समुद्र के बीच में केतुमाल नगर है।

इसी प्रकार निषध, नील, माल्यवद, गन्धमादन, ऐरावत और इलावृत नाम के नौ खण्ड हैं। ये स्वर्गभूमि हैं, अतः यह देवताओं का क्रीड़ाघर है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गालाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"उत्तरायतगिरिश्च माल्यवान् कीर्तितः स यमकोटिपत्तने।
रोमके च खलु गन्धमानो नीलशैल निषधावधी च तौ॥३८॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद् ग्रंथ के भूगोलाध्याय १७ तथा भुवनकोशाध्याय १६ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"लङ्का यमकोटिः पश्चाद्रोमकमधःश्च सिद्धपुरम्।
मेरु स्थितः उत्तरतो दक्षिणतो दैत्यनिलयः स्यात्॥३॥" भूगो.॥

भुवनकोशाध्याय १६

लंकादेशात् क्षारसिन्धोश्च सौम्ये जम्बूद्वीपे ज्यावदम्भोधितज्ज्यः।
प्रालेयाद्रिः संगलस्तत्पयोर्ध्योर्मध्येखण्डं चापरं भारताख्यम्॥८॥
हेमकूटउदगायतो नगात् किंमनुष्यमनर्योयदन्तरम्।
उत्तरे च निषधस्ततो नगादन्तरे च हरिसंज्ञितं तयोः॥९॥
शृंगवानपि तु सिद्धपत्तनादुत्तरस्तुहिनशैलवत् स्थितः।
क्षारवारिनिधिशृंगमध्यगं चापवच्च कुरुखण्डमुच्यते॥१०॥
श्वेतशैलमपि चौतरे ततः प्राहुरन्तरनयोर्हिरण्मयम्।
नीलशैलमत उत्तरस्थितं रम्यमूचुरनयोर्यदन्तरम्॥११॥
नीलशैलनिषधान्तरोपगां गामुशन्ति शकलत्रयीकृताम्।
गन्धशैल उदगत्र रोमकान् माल्यवांश्च यमकोटिपत्तनात्॥१२॥
गन्धशैलजलराशिमध्यगं केतुमालमिह खण्डमीरितम्।
माल्यवज्जलधिमध्यवर्ति यत् तच्च भद्रयुतमश्वमुच्यते॥१३॥
माल्यवन्नगसुगन्धशैलयोर्मध्य संस्थितमिलावृत्ताह्वयम्।$\frac{१}{२}$॥

सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में कुछ बातें आचार्योक्त कही हैं। यथा—

"समतान्मेरुमध्यात् तु तुल्यभागेषु तोयधेः।
द्वीपेषु दिक्षु पूर्वादिनगर्यो देव निर्मिताः॥३७॥
भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता।
भद्राश्ववर्ष नगरी स्वर्णप्राकारतोरणा॥३८॥
याम्यायां भारते वर्षे लङ्का तद्वन्महापुरी।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता॥३९॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उदक् सिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रकीर्तिता।
तस्यां सिद्धा महात्मानो निवसन्ति गतव्यथाः॥४०॥
भूवृत्तपादविवरास्ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठिताः।
ताभ्यश्चोत्तरगो मेरुस्तावानेव सुराश्रयः॥४१॥''

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम अध्याय में में आचार्योक्त कहा है—

''हिमहेमकूटगिर्योर्मध्ये किंपुरुषकं खण्डम्॥१६॥
निषधाद्रिहेमकूटाचलयोर्मध्ये स्थितं च हरिवर्षम्।
शृंग्यद्रिसिद्धपुरयोः कुरुखण्डं चापवन्ध्ये॥१७॥
शृंडिश्चेताचलयोर्यदन्तरं तद्विरण्मण्यं वर्षम्।
श्वेताद्रिनीलगिर्योर्मध्ये रम्याह्वयं वर्षम्॥१८॥
तेऽप्यचलाः पूर्वापरजलराश्यन्तास्तु विज्ञेयाः॥
मेरोर्याम्यो निषधः सौम्यो नीलस्तदन्तरं तुल्यम्॥१९॥
प्राग् माल्यवान् सुराद्रेर्दीर्घो नीलाद्रिनिषधपर्यन्तः।
तद्वन् पश्चाद्गन्धाचलस्तयोरन्तरं तुल्यम्॥२०॥''
यमकोटेर्भद्राश्वं माल्यवदवसानकं वर्षम्।
रोमकगन्धाचलयोर्यदन्तरं केतुमालाख्यम्॥२१॥
मेरुतलेचतरस्रं तदिलावृतसंज्ञकं ज्ञेयम्।
भद्राश्वकेतुमाले ज्ञेये चतुरस्रके खण्डे॥२२॥
इतराणि तु वर्षाणि क्षेत्रफलैस्तुल्यरुपाणि।

इदानीं मेरुसंस्थानमाह—

इह हि मेरुगिरिः किल मध्यगः कनकरत्नमयस्त्रिदशालयः।
द्रुहिणजन्मकुपद्मजकर्णिकेति च पुराणविदोऽमुमवर्णयन्॥३१॥
विष्कम्भशैलाः खलु मन्दरोऽस्य सुगन्धशैलो विपुलः सुपार्श्वः।
तेषु क्रमात् सन्ति च केतुवृक्षाः कदम्बजम्बूवटपिप्पलाख्याः॥३२॥
जम्बूफलामलगलद्रसतः प्रवृत्ता जम्बूनदी रसयुता मृदभूत् सुवर्णम्।
जाम्बूनदं हि तदतः सुरसिद्धसङ्घाः शश्वत् पिबन्त्यमृतपानपराङ्मुखास्तम्॥३३॥
वनं तथा चैत्ररथं विचित्रं तेष्वप्सरो नन्दननन्दनं च।
धृत्याह्वयं यद्धृतिकृत् सुराणां भ्राजिष्णु वैभ्राजमिति प्रसिद्धम्॥३४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरांस्यथैतेष्वरुणं च मानसं महाह्रदं श्वेतजलं यथाक्रमम्।
सरःसुरामारमणश्रमालसाः सुरा रमन्ते जलकेलिलसाः ॥३५॥
सद्रत्नकाञ्चनमयं शिखरत्रयं च मेरौ मुरारिकपुराणिपुराणि तेषु।
तेषामधः शतमखज्वलनान्तकानां रक्षोऽम्बुपानिलशशीशपुराणि चाष्टौ॥३६॥

अब पर्वतों के स्थान बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— इस (पूर्वोक्त) इलावृत के मध्य में स्वर्ण तथा रत्नमय कर्णाभूषण की जैसे मेरु पर्वत है। इस पर्वत के तीन शिखर हैं जहाँ पर देवताओं के रहने का स्थान है। इन शिखरों पर विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव के रहने के स्थान हैं। इन (शिखरों) का वर्णन पुराणविदों (व्यासादि) ने किया है। द्रुहिण ब्रह्मा का उत्पत्ति स्थान विष्णु भगवान का नाभी कमल है तद्रूप पृथ्वीपद्म है जिससे संबंधित है। कर्णिका कमल के अन्दर स्थित पीतवर्णा केसर की आवृत्ति है जो प्रसिद्ध है। इस प्रकार मेरु के ऊपर जहाँ ब्रह्मा अवस्थित है उसका नाम 'द्रुहिजन्मेति' है। उत्पत्ति काल में जिस प्रकार विष्णु के नाभी कमल में ब्रह्मा स्थित थे उसी प्रकार सृष्टिकाल में पृथ्वीकमल कर्णिका में ब्रह्मा स्थित है यह द्योतित होता है। कर्णिका से यहाँ केसर युक्तमूल देश है।

इन शिखरों के नीचे समन्तादि इन्द्रीलोक पालों के पुर स्थित हैं। मेरुपर्वत के चारों ओर पर्वतों के आधार हैं जो यमकोटि की दिशा से क्रमशः मन्दर पर्वत, सुगन्ध पर्वत, विपुलपर्वत तथा सुपार्श्व पर्वत हैं। इन पर्वतों में क्रमशः कदम्ब, जम्बू, वट तथा पीपलिका के ध्वज वृक्ष हैं। जम्बू वृक्षों के पके हुए फलों के रस की जम्बू नदी बहती है जिससे इलावत वर्ष की मिट्टी स्वर्णमय हो जाती है। अतः स्वर्ण को जम्बूनद भी कहते हैं। वहाँ पर रहने वाले देव सिद्ध गणों के समूह सभी नित्य उस जम्बूफल के अमृत से भी उत्तम रस को पीते हैं। इस वृक्षों के आश्रय भूत पुरोक्त प्रसिद्ध सर्वअवगत वन, मन्दर पर्वत पर चैत्ररथ नामक आश्चर्यकारक है और गन्धमादन पर्वत पर अप्सराओं को आनन्द देने वाला नन्दन उद्यान है। विपुल पर्वत पर धृति नामक वन है। दैत्यों के द्वारा किये जाने वाले उपद्रवों से त्रस्त देवता यहाँ पर सर्वतो भद्र कल्याण के लिए घृत एकत्रित करते थे। अतः उससे उत्पन्न नाम का यह वन है। सुपार्श्व पर्वत में वैभ्राज नामक देदीप्तमान प्रसिद्ध वन है। यहाँ मयूर, हंस, शुक (तोता), सारिका (मैना) तथा अनेक प्रकार के कूजना (कूकना) करने वाले पक्षी शोभायमान होते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार चैत्ररथ, नन्दनक, धृति तथा वैभ्राज वन हैं।

लेकिन वन सरोवर के बिना अच्छे नहीं लगते हैं, अतः इनमें सरोवर भी हैं। ये यथा क्रम अरुण, मानस, महाह्रद तथा श्वेतजल हैं। इनके होने का पुराण प्रमाण है। इन सरोवरों में देवता लोग अप्सराओं के साथ मनोविनोद की कामना से जल क्रीडा करते हैं।

रत्न काञ्चन से युक्त मेरुपर्वत पर स्थित विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव के तीनों शिखरों के (जिनके नाम क्रमशः वैकुण्ठ धाम, शातकुम्भा तथा शिवलोक हैं) नीचे पुराणोक्त, आठ दिशाओं में आठ और अन्य नगर स्थित हैं जिनके नाम पूर्व में इन्द्र की अमरावति नगरी, आग्नेय में वह्न की तेजोवत नगरी, दक्षिण में यम की संयमिनि नगरी, नैर्ऋत्य में राक्षसों की कृष्णाङ्गना नगरी, पश्चिम में वरुण की श्रद्धावती नगरी, वायव्य में वायुदेव की गन्धवति नगरी, उत्तर दिशा में कुबेर (शशीनः) की महोदया नगरी, ईशान दिशा में महेश्वर भगवान (शिव) की नगरी यशोवती है (ये पुराणोक्त हैं)। इनके नीचे आठो दिक्पालों की आठों दिशाओं में नगरियाँ हैं। इनके मध्य भाग में सिद्ध महात्माओं की नगरी है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्यय १५ में आचार्योक्त कहा है—

"हरिविरिञ्चमहेश्वर मन्दिरै कनकरत्नमयैस्त्रिदशालयः।
त्रिशिखरो गिरिरेष विराजते शतमखादिदिगीशपुरावृतः॥४५॥
तेषूद्यानं चैत्रपूर्वरथं च गीर्वाणस्त्री नन्दनं नन्दनं च।
अन्यद्धृत्याख्यं च वैभ्राजसंज्ञं विभ्राजन्ते तानि कल्पद्रुमैश्च॥४३॥
सरोरुणा भाह्वयमेषु मानसं महाह्रदं चापि सितोदसंज्ञितम्।
व्रजन्ति येषु प्रतिवासरं स्त्रियः सहाप्सरोभिर्जैलकेलिलालसाः॥४२॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भुवनकोशाधिकार १९ में आचार्योक्त कहा है—

"मेरुत्र शकले प्रतिष्ठितो रत्नकाञ्चनमयः सुरालयः॥१४॥
माल्यवत् ककुभि तस्य मन्दरोगन्धयुक्तनिषधस्य मादनः।
नीलदिश्यय सुपार्श्वपर्वतः पर्वतश्च विपुलोऽन्यदिग्गतः॥१५॥
अरुणाख्यमथैषु मानसं क्रमशश्चापि महाह्रदं सरः।
ससितोदममुनि बिभ्रति श्रियमब्तेर्विहगैश्च काञ्चनैः॥१६॥
कदम्बजम्बूवटपिप्पलाह्वयान् वदन्ति तेष्वेन तरुन मनीषिणः।
वनं तथा चैत्ररथं सुनन्दनं धृत्याह्वयं भ्राजमतीव सुन्दरम्॥१८॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रिभिः सुमेरुः शिखरैर्विराजिते सुरालयै काञ्चनतारनिर्मितैः।
महेशपद्मासनविष्णुधामभिः सविस्तृतैर्योजनमुच्छ्रितैरपि॥१६॥
महेन्द्रवह्नयन्तकरक्षसामधो जलेशवाताधिपशूलिनां क्रमात्।
पुराणि शेषामरमन्दिराणि च त्रिविष्टपं शास्ति च पाकशासनः॥२०॥"

सूर्य सिद्धान्त के भूगोलाध्याय में जो थोड़ा सा कहा है वह आचार्योक्त ही है। यथा—

"अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः।
भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः॥३४॥
उपरिष्टात् स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः।
अधस्तादसुरास्तद्वद् द्विषन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः॥३५॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

धत्तूरपुष्पतुल्यो ह्युपरि विभागोऽमराचलस्यास्ति।
तत् प्राच्यामाधार स्तम्भवदचलोऽस्ति मन्दरोनाम॥२५॥
तद्वच्च गन्धमादन संज्ञो याम्ये विभागेऽस्ति।
विपुलः पश्चिमभागे सुपार्श्वसंज्ञस्तथोत्तरतः॥२६॥
एषु च कदम्बजम्बूवटपिप्पलसंज्ञकाः क्रमाद्वृक्षाः।
सन्त्यथ तज्जम्बूफलरसतो जम्बूनदी जाता॥२७॥
चैत्ररथं नन्दनकं धृतिवैभ्राजे वनानि च क्रमशः।
अरुणं मानससंज्ञं महाहदं श्वेतकं सरांस्येषु॥२८॥
भद्रतुरगभारतवर्षकेतुमालककुरुन् याता॥२९॥
ब्रह्माच्युतगौरीशा मेरोः शिखरत्रये वसन्त्येते।
तदधः शक्रप्रमुखा वसन्ति देवाः स्वकाष्ठासु॥४२॥

आर्यभट ने आर्यभटीय के गोलपाद में मेरु तथा नन्दनवन के लिए कहा है। यथा—

"मेरुर्योजनमात्रः प्रभाकरो हिमवता परिक्षिप्तः।
नन्दनवनस्य मध्ये रत्नमयस्सर्वतोवृत्तः॥११॥"

तत्रान्यं विशेषमाह—

विष्णुपदी विष्णुपदात् पतिता मेरौ चतुर्धास्मात्।
विष्कम्भाचलमस्तकशस्तसरः संगतागता वियता॥३७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सीताख्या भ्रदाश्वं सालकनन्दा च भारतं वर्षम्।
चक्षुश्च केतुमालं भद्राख्या चोत्तरान् कुरुन् याता॥३८॥
याकर्णिताभिलषिता दृष्टा स्पृष्टावगाहिता पीता।
उक्ता स्मृता स्तुता वा पुनाति बहुधापि पापिनः पुरुषान्॥३९॥
यां चलिते दलिताखिलबन्धो गच्छति वल्गति तत्पितृसङ्घः।
प्राप्ततटे विजितान्तकदूतो याति नरे निरयात् सुरलोकम्॥४०॥

अन्य विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— भगवान् विष्णु के पदों (पैरों) से निकल कर आकाशमार्ग से गंगा नदी चारों ओर स्थित विष्कम्भ रूप चारों पर्वतों पर स्थित मेरुपर्वत पर गिरती हुई भूगोल पर गिरती है। इससे नरक में गये हुए पितृगण यम पाश के बंधन से छूट जाते हैं। यह मेरु पर्वत से इस पर चारों दिशाओं में स्थित सरोवरों में गिरती है। गंगा अरुणसरोवर से मिलकर सीता नाम की हुई इलावत प्रदेश को पवित्र करती हुई भद्राश्ववर्ष में आती है तथा अलकनन्दा नाम से भारत वर्ष में आती है। चक्षु, केतुमाल और उत्तर की ओर से भद्राश्व तथा उत्तर में कुरु प्रदेश होती हुई जाती है।

इस के नाम श्रवणमात्र से, इच्छा करने मात्र से, आदरपूर्वक दर्शन मात्र से शरीर के स्पर्श मात्र से, समस्त शरीर के सभी अंगों पर जल डालने से और पीने से, उच्चारणमात्र से, ध्यान करने मात्र से और कई प्रकार से स्तुति करने से पापियों के पापों का नाश करके उनको पापमुक्त करके शुद्ध कर देती है। जिससे हमारे मन में हर्ष उत्पन्न होता है कि अब हमारी ऊर्ध्व गति अर्थात् उच्च गति (स्वर्गप्राप्ति आदि) हो जावेगी।

इस प्रकार गंगा के प्रति उपक्रम करने से उस मनुष्य के सभी पितृगण (पूर्वज) दलित और अखिल बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं तथा उनकी सद्गति हो जाती है। गंगा तीर पर बैठकर गंगा के बल से (यमराज के दूतों को मुष्टि घात से भगाकर) मनुष्य कुल सहित नरक लोक से स्वर्ग लोग में जाते हैं। अर्थात गंगा तीर बैठकर मनुष्य जब धार्मिक मोक्ष देने वाली क्रियायें करता है तो उनके बल से यमराज के दूत उस मनुष्य के कुल सहित पितृगणों को नरक से स्वर्ग में भेज देते हैं।

आर्यभट्ट (द्वि) ने भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में नदियों के लिए आचार्योक्त नाम बताये हैं। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"सीता नन्दा चतुर्भद्रा नद्यो विनिः सृतास्तेभ्यः॥२८$\frac{१}{२}$॥

इदानीं भारतस्यापि मध्ये नवखण्डानि सप्त कुलाचलांश्चाह—

ऐन्द्रं कशेरुशकलं किल ताम्रपर्णमन्यद्गभस्तिमदतश्च कुमारिकाख्यम्।
नागं च सौम्यमिह वारुणमन्त्यखण्डं गान्धर्वसंज्ञमिति भारतवर्षमध्ये॥४१॥
वर्णव्यवस्थितिरिहैव कुमारिकाख्ये शेषेषु चान्त्यजजना निवसन्ति सर्वे।
माहेन्द्रशुक्तिमलयर्क्षकपारियात्राः सह्याः सविन्ध्य इह सप्त कुलाचलाख्याः॥४२॥

भारत के अन्दर नो खण्ड तथा सात कुलाचल (पर्वत)—

सूर्य-प्रभा टीका— भारत के अन्दर नो खण्ड क्रमशः (१) ऐन्द्र (२) कशेरु (३) ताम्रपर्ण (४) गभस्तिमद (५) कुमारिका (६) नाग (७) सौम्य (८) वारुण और अन्तिम (९) गान्धर्व नामक खण्ड हैं।

इनमें से एक कुमारिका नामक खण्ड में वर्णव्यस्था प्रचलित है तथा शेष में अन्य सभी नीच जातियाँ रहती हैं।

भारत वर्ष में सात पर्वत क्रमशः (१) माहेन्द्र (२) शुक्ति (३) मलय (४) ऋक्ष (५) पारियात्रा (६) सह्य तथा (७) विन्ध्या हैं।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भुवनकोशाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ऐन्द्रं कशेरुश्च सताम्रपर्ण गभस्तिमत् खण्डमतश्च कन्या।
ससौम्यनागाह्वयवारुणं च गान्धर्वमेतान्यथ भारताख्ये॥२४॥
माहेन्द्रशुक्त्याह्वयसह्यविन्ध्याः सपारियाता मलयर्क्षसंज्ञौ।
कुलाचला वर्णचतुष्कयुक्ते कुमारिकाख्येऽन्त्यजवन्त्यथाष्टौ॥२५॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"माहेन्द्रपारियात्रर्क्षमलयविन्ध्याः सशुक्तिसह्याश्च॥२३॥
भारतवर्षे गिरयो मैनाकश्चाष्टमोऽम्भोधौ।
ऐन्द्रादिकानि खण्डान्यन्यान्यपि सन्ति भारते वर्षे॥२४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ऐन्द्रं कशेरुकमत खलु ताम्रवर्ण खण्डं गभस्तिदमनं च कुमारिकाख्यम्।
सौम्ये च नागमथ वारुणनामधेयं गान्धर्व संज्ञमिति भारतमेव वर्षे॥४६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुलाचल सप्त महेन्द्र शुक्ति सह्यर्क्षविन्ध्या मलयाचलश्च।
स पारियात्रोऽत्र च कन्यकाख्ये वर्णव्यवस्था नहि सेतुरत्र॥४७॥''

इदानीं लोकव्यस्थामाह—

भूर्लोकाख्यो दक्षिणे व्यक्षदेशात् तस्मात् सौम्योऽयं भुवः स्वश्च मेरुः।
लभ्यः पुण्यैः खे महः स्याज्जनोऽतोऽनल्पानल्पैः स्वैस्तपः सत्यमन्त्यः॥४३॥

लोकव्यवस्था—

सूर्य-प्रभा टीका— निरक्षदेश से दक्षिण गोलार्ध भूर्लोक, तथा उत्तरी गोलार्ध भुवः और मेरु स्वर्गलोक है। अर्थात् जम्बू द्वीपात्मक भूर्लोक भुवर्लोक है। भूर्लोक के निरक्षदेश की तह में दक्षिण की ओर जलसंज्ञक है। जम्बूद्वीप भूवर्लोक में निरक्षदेश के उत्तर में स्थित है। यह लघुवशिष्ट सिद्धान्तोक्त अनुसार है। बड़े पुण्य करने से इनकी तथा आकाश में स्थित इनसे ऊपर के लोक क्रमशः महः, जनः, तपः तथा अन्तिम सत्य लोक की प्राप्ति होती है। आचार्य कहते हैं यह सब पुराणों पर आधारित कहा गया है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भूवनकोशाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''विषुवद्यम्ये लोकः पातालगतश्च भूरिति प्रथितः।
भुव इति मानव गम्यः स्वरिति सुमेरुः सुकृतिनां धाम॥२८॥
उपरि महस्तदनु जनस्ततस्तपः सत्यलोक उपरिष्टात्।
अधिकाधिकपुण्यवतां क्रमशः स्थानान्यमी लोकाः॥२९॥''

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''भवति विषुवद्याम्यो लोको रसातल(ग) श्च
भूषयमपि भुवो मेरुः स्वः स्यान्महश्च तथोपरि॥४८॥''

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''व्यक्षाद्दक्षिणभागे भूर्लोकोऽयं भुवः सौम्ये।
स्वर्गो मेरुर्गगने ऽप्युपर्युपरि संस्थिताश्चान्ये॥४१॥
तदुपरि नियतः प्रवहो वायुर्विचरति भमण्डलव्यापी।
तेन भ्रमणं भानां तदुपरि तु महर्जनतपः सत्याः॥४५॥''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं दिग्व्यवस्थितिमाह—

लङ्कापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात् तदा दिनार्धं यमकोटिपुर्याम्।
अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः स्याद्रोमके रात्रिदलं तदैव॥४४॥
यत्रोदितोऽर्कः किल तत्र पूर्वा तत्रापरा यत्र गतः प्रतिष्ठाम्।
तन्मत्स्यतोऽन्ये च ततोऽखिलानामुदक्स्थितो मेरुरिति प्रसिद्धम्॥४५॥

दिशा व्यवस्था बता रहे हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— लङ्कापुर में सूर्य का यदि उदय हो तो दिनार्ध यमकोटि में पूरा होता है तथा उसके नीचे सिद्धपुर में अस्तकाल और रोमक प्रदेश में रात्रि का आधा भाग होता है। पृथ्वी के जिस स्थान पर सूर्य उदित होता है वह वहाँ की पूर्व दिशा है तथा उससे पीछे जहाँ सूर्य गत (अस्त) होता है वह पश्चिम दिशा है। इन दोनों बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा के दोनों ओर मत्स्य बिन्दुओं पर अन्य दिशायें हैं। उत्तर की ओर के बिन्दु का नाम मेरु प्रसिद्ध है तथा दक्षिण में कुमेरु बिन्दु होता है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रकश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"लंकाया रव्युदये दिनावसानं हि सिद्धपुरे।
यमकोट्यां दिवसार्धं रोमकनगरेऽर्धरात्रं स्यात्॥३९॥
उदितो यत्रार्कः सा पूर्वाऽस्तं याति पश्चिमा तत्र।
सर्वत्र तद्विचिन्त्यं दिक्सिद्धै मेरुरुत्तरवान्॥४०॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के भूगोलाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उदयमेति यदा पुरि रक्षसां व्रजति सिद्धपुरेऽस्तमयं तदा।
दिनदलं यमकोटिपुरे रवी रजनिम्यमुपैति च रोम के॥१२॥"

सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय १२ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"भद्राश्वोपरिगः कुर्याद् भारते तूदयं रविः।
रात्र्यर्धे केतुमाले तुं कुरावस्तमयं तदा॥७०॥"

अर्थात् जब भद्राश्व वर्ष में यमकोटि नगर के खमध्य पर सूर्य होता है उस समय भारतवर्ष में लंका क्षितिज पर सूर्योदय होता है। उस समय केतुमाल वर्ष अर्थात् रोमक पत्तन में मध्यरात्रि तथा कुरुवर्ष अर्थात् सिद्धपुर में सूर्यास्त होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आर्यभट (प्र.) ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"उदयो यो लङ्कायां सोऽस्तमयस्सवितुरेवसिद्धपुरे।
मध्यान्हो यवकोट्यां रोमकविषये ऽर्धरात्रस्यात्॥१३॥"

इदानीं विशेषमाह—

यथोज्जयिन्याः कुचतुर्थभागे प्राच्यां दिशि स्याद्यमकोटिरेव।
ततश्च पश्चान्न भवेदवन्ती लङ्कैव तस्याः ककुभि प्रतीच्याम्॥४६॥
तथैव सर्वत्र यतो हि यत् स्यात् प्राच्यां ततस्तन्न भवेत् प्रतीच्याम्।
निरक्षदेशादितरत्र तस्मात् प्राचीप्रतीच्यौ च विचित्रसंस्थे॥४७॥

विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— जैसे उज्जयनी से पृथ्वी के चतुर्थांश भागतुल्य पूर्व में यम कोटी होती है तो यमकोटि से पश्चिम में उज्जयिनी नहीं होती जिस प्रकार यमकोटि से पृथ्वी के चतुर्थांश भाग तुल्य में लङ्का होती है।

इष्ट प्रदेश से उत्तराभिमुख मेरु स्थान तथा निरक्षाभिमुख दक्षिण स्थान को मिलाने वाली रेखा बनाकर उसकी मत्स्य से पूर्वापर साधित करे। इस प्रकार करने से जहाँ पूर्व भाग पर वह काटे वहाँ से पुनः उत्तर-दक्षिण साधित करके इसका पूर्वापर साधित करने से वह उस पूर्वापर (पूर्वसाधित) पर पतित नहीं होता, उसका अलग स्थान आता है। अर्थात् इससे यह पता चलता है कि उत्तर-दक्षिण रेखा बदलने से पूर्वापर रेखा बदल जाती है। इस प्रकार सर्वत्र उत्तर-दक्षिण रेखा से यदि यमकोटि पूर्व में है तो यमकोटि से उत्तर दक्षिण रेखा पर सर्वत्रस्थान पश्चिम दिशा में नहीं होते। क्योंकि निरक्षदेश पर स्थित विभिन्न स्थानों से होकर जाने वाली उत्तर-दक्षिण रेखाओं के प्रत्येक स्थान की पूर्वापर रेखा भिन्न-भिन्न होती है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"मेरौ रविभ्रमति भुजगतः समन्तादाशा न काचिदपि तत्र विचारणीया।
पूर्व हि दर्शनमुपैति स चेह पूर्वा तत्रास्ततो भवति सैव कथं प्रतीची॥"

इदानीं चक्रभ्रमणव्यवस्थामाह—

निरक्षदेशे क्षितिमण्डलोपगौ ध्रुवौ नरः पश्यति दक्षिणोत्तरौ।
तदाश्रितं खे जलयन्त्रवत् तथा भ्रमद्भचक्रं निजमस्तकोपरि॥४८॥
उदग्दिशं याति यथा यथा नरस्तथा तथा खान्नतमृक्षमण्डलम्।
उदग्ध्रुवं पश्यति चोन्नतं क्षितेस्तदन्तरे योजनजाः पलांशकाः॥४९॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योजनसंख्या भांशैर्गुणिता स्वपरिधिहृता भवन्त्यंशाः।
भूमौ कक्षायां वा भागेभ्यो योजनानि च व्यस्तम्॥५०॥

चक्र भ्रमण व्यवस्था—

सूर्य-प्रभा टीका— निरक्ष देशस्थ प्राणियों को अपने क्षितिज मण्डल में ही उत्तर तथा दक्षिण ध्रुव स्थित दिखाई देते हैं तथा उनके ऊपर का आकाश जलयंत्र के समान तथा अपने मस्तक के ऊपर (नक्षत्र) भचक्र भ्रमण करता हुआ दिखाई देता है।

उत्तर दिशा की ओर वहाँ से जैसे-जैसे जाते है, वैसे-वैसे ही अक्ष मण्डल में नक्षत्रचक्र नत होता हुआ दिखाई देता है और उत्तर ध्रुव उन्नत दिखाई देता है। अपने स्थान के अक्षांश निरक्ष देश से जितने अंतर पर होते हैं उतने योजन पलांश होते हैं। योजन संख्या को ३६० से गुणा करके भूपरिधि योजन से विभक्त करने से स्वस्थान के अक्षांश प्राप्त होते हैं। यदि भूपरिधि योजन में ३६० अंश प्राप्त होते हैं तो अभीष्ट (अपसार) योजन दूरी में कितने अंश होंगे? इस प्रकार अनुपात करने से यह प्राप्त होता है। और यदि अनुपात करें कि ३६० अंश परिधि में भूपरिधि प्राप्त होती है तो अभीष्ट अक्षांश में कितनी होगी? इस प्रकार प्राप्तफल निरक्ष देश और स्वदेश के अन्तर योजन प्राप्त होते हैं। अर्थात

$$\text{अपसार योजन (स्व तथा निरक्ष स्थान अन्तर योजन)} = \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{अक्षांश}}{३६०}$$

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"याम्योत्तरस्थौ क्षितिजाश्रितौ ध्रुवौ सदैव पश्यन्ति निरक्षदेशजाः।"५४॥

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"क्षितिलग्ने ध्रुवतारे पश्यति पुरुषो निरक्षदेशस्थः।२९$\frac{१}{२}$।
अक्षांशका ध्रुवोन्नतिभाग भूमेर्निरीक्षकस्थाने॥३१॥
अक्षांशैः संगुणितं मध्यं परिधिं भजेद्भचक्रांशैः॥३३॥
लब्धो योजननिचयो निरक्षनिजदेशयोर्मध्ये।
याम्योत्तरनगरान्तरयोजनगणितं तदक्षविश्लेषम्॥३४॥
गतनै विभेजल्लब्धं मध्यमपरिधेर्भवेन्मानम्।$\frac{१}{२}$।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय १२ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"निरक्षदेशसंस्थानामुभये क्षितिजाश्रये॥४३॥

अतो नाक्षोच्छ्रयस्तासु ध्रुवयोः क्षितिजस्थयोः॥$\frac{१}{२}$॥

ध्रुवोन्नतिर्भचक्रस्य नतिर्मेरुं प्रयास्यतः।

निरक्षाभिमुखं यातुर्विपरीते नतोन्नते॥७२॥

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गालाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अन्यत्र सर्वतो दिशमुन्नमति भपञ्जरो ध्रुवो नमति।

लङ्कायामुडुचक्रं पूर्वापरगंध्रुवौ क्षितिजे॥५॥

अक्षांश कुपरिधिवधान्मण्डलभागाप्त योजनैर्विषुवत्।

नतभागयोजनैरवेमुपरि सूर्योऽन्यदनुपातात्॥१०॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहभ्रमसंस्थानाधिकार १८ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"निरक्षदेशोपरिगौ ध्रुवावुभौ स्वदक्षिणोदक्क्षितिजप्रसक्तौ।

सदात्र पश्यन्ति तदुत्तरं सुराः स्वमूर्ध्वगं दक्षिणमिन्द्रशत्रवः॥४॥

सदैव दैत्यैस्तनयैस्तथादितेर्भचक्रमुर्वीजगतं प्रदृश्यते।

न दृश्यतेऽपक्रमवृत्तदक्षिणं दलं सुरैर्नान्यदपीतरै क्वचित्॥५॥

सुरासुराणां विषयाद् यतो यतो यथा यथा गच्छति यश्च कश्यन।

स तत्र तत्रोन्नतमृक्षमण्डलं तथा तथा पश्यति खान्नतं ध्रुवम्॥६॥

भवेत् खमध्याद् ध्रुवकस्य या नतिर्भञ्जरस्योन्नतिरेव साथवा।$\frac{१}{२}$।"

अतस्तत्र ध्रुवर्क्षसंस्थानमाह—

सौम्यं ध्रुवं मेरुगताः खमध्ये याम्यं च दैत्या निजमस्तकोर्ध्वे।

सव्यापसव्यं भ्रमदृक्षचक्रं विलोकयन्ति क्षितिजप्रसक्तम्॥५१॥

ध्रुव तथा भचक्र की स्थिति—

सूर्य-प्रभा टीका— उत्तरीध्रुव, मेरुपृष्ठस्थ मनुष्य के अपने खमध्य में तथा दक्षिण ध्रुव दैत्यों के अपने मस्तक के ऊपर होता है। उत्तरी ध्रुव से देखने से भचक्र सव्य तथा दक्षिण ध्रुव से देखने पर अपसव्य क्रम से अपने क्षितिज में घूमता हुआ दिखाई देता है।

विशेष— सूर्य सिद्धान्त के भूगोलाध्याय में आचार्योक्त कहा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथा—

"सव्यं भ्रमति देवानामपसव्यं सुरद्विषाम्।
उपरिष्टाद् भगोलोऽयं व्यक्षे पश्चान्मुखः सदा॥५५॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गोलाध्याय में आचार्योक्त कहा है।

यथा—

"सौम्यमपमण्डलार्धे मेषाद्यं सव्यगं सदा देवाः।
पश्यन्ति तुलाद्यर्धं दक्षिणमपसव्यगं दैत्याः॥७॥"
ध्रुवयोर्बद्धं सव्यगममराणां क्षितिजसंस्थमुडुचक्रम्।
अपसव्यगमसुराणां भ्रमति प्रवहानिलक्षिप्तम्॥४॥"

श्रीपति ने सिद्धान्तशेखर में गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है।

यथा—

"सौम्यं हि मेषाद्यपमण्डलार्धं पश्यन्त्यमी सव्यगमेव देवाः।
तुलादिकं दक्षिणमन्यदर्धं सदैव दैत्यास्त्वपसव्यवर्ति॥५५॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहभ्रमसंस्थानाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"सदैव नित्यं प्रहवहेण वायुना निरक्षदेशोत्परिगो भपञ्जरः।
स्वपश्चिमाशाभिमुखोऽपि नीयतेऽसुरामराणामपसव्यसव्यगः॥३॥"

आर्यभट (प्र.) ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है।

यथा–

"देवाः पश्यति भगोलार्धमुदंमेरु संस्थितास्सव्यं।
अपसव्यगं तथार्धं दक्षिण बडवामुखि प्रेताः॥१६॥"

इदानीं भूपरिधिमानं प्राक्कथितमपि विशेषार्थमनुवदति स्म—

प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धय-४९६७
स्तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवः सिद्धांशकेनाधिका १५८१$\frac{१}{२४}$।
पृष्ठक्षेफलं तथा युगगुणत्रिंशच्छराष्टाद्रयो ७८५३०३४
भूमेः कन्दुकजालवत् कुपरिधिव्यासाहतेः प्रस्फुटम्॥५२॥

पूर्वकथित भूपरिधिमान से विशेष अर्थ कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्व में भूपरिधि का मान ४९६७ योजन तथा व्यास १५८१$\frac{१}{२४}$ योजंन कहा है। भूपृष्ठफल ७८५३०३४ गेंद के ऊपर जाल के समान होता है। यह भूपरिधि को व्यास से गुणा करने से प्राप्त होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्योक्त व्यासमान १५८१$\frac{१}{२४}$ के पूर्णांक को व्यास मानकर वृत्त की परिधि के १००वें भाग से ज्या उत्पत्ति की विधि से ज्या साधन करे। जितने संख्यक विभाग की ज्या हो उसको उतनी संख्या से गुणा करने से परिधि का मान प्राप्त होता है। अतः वृत का १०० वाँ भाग सरल रेखावत होता है और २०००० व्यास में ६२८३२ परिधि का मान आर्यभट ने स्वीकार किया है। इसी प्रकार श्रीधराचार्य और ब्रह्मगुप्तादि आचार्यों ने व्यास के वर्ग को दश के वर्गमूल से गुणा करके परिधि का मान स्थूल स्वीकार किया है।

$$\text{पृष्ठ क्षेत्रफल} = \frac{३९२७}{१२५०} \times \text{व्यास} \times २ \text{ त्रिज्या}$$

$$= \frac{३९२७}{१२५०} \times (१५८१)^२ = ७८५३०३४ \text{ वर्गयोजन प्राप्त}$$

होता है। अर्थात् पृष्ठ क्षेत्रफल = परिधि × व्यास सूत्र प्राप्त होता है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवन कोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त सूत्र दिया है। जिसमें अपनी-अपनी भूपरिधि मान से उसका पृष्ठ क्षेत्रफल ज्ञात कर सकते हैं। यथा—

"परिधिघ्नो व्यासः स्यात् कन्दुकजालोपमं कुपृष्ठफलम्॥३८॥"

अन्य आचार्यों ने भी यही सूत्र कहा है।

लल्लोक्तस्य नगशिलीमुखबाणभुजङ्गमेत्यादेर्भूपृष्ठफलस्य दूषणमाह—

दुष्टं कन्दुकपृष्ठजालवदिलागोले फलं जल्पितं
लल्लेनास्य शतांशकोऽपि न भवेद्यस्मात् फलं वास्तवम्।
तत् प्रत्यक्षविरुद्धमुद्धतमिदं नैवास्तु वा वस्तु वा
हे प्रौढा गणका विचारयत तन्मध्यस्थबुद्ध्या भृशम्॥५३॥

लल्लोक्तभूपृष्ठफल २,८५,६३,३८,५५७ वर्गयोजन में दूषण कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— लल्लाचार्य ने गेंद के पृष्ठ के समान पृथ्वी गोल का जो दोष युक्त मान कहा है वह केवल व्यर्थप्रलाप (बकवास) है। वह वास्तविक पृष्ठफल के शतांश तुल्य भी शुद्ध नहीं है। गणित की प्रत्यक्षता के विरुद्ध यह मान लल्ल ने कहा है जो वास्तव में नहीं है। अतः आचार्य कहते हैं कि हे प्रौढ़गणक! आप अपनी बुद्धि से इस पर गहराई से विचार करेंगे कि कौन सी गणना सही है? इस प्रकार आचार्य ने विद्वानों से आग्रह किया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ सद्युक्तिः—

यत् परिध्यर्धविष्कम्भं वृत्तं कृतं किलांशुकम्।
तेनार्धश्छाद्यते गोलः किंचिद्वस्त्रेऽवशिष्यते॥५४॥
गोलक्षेत्रफलात् तस्माद्वस्त्रक्षेत्रफलं यतः।
सार्धद्विगुणितासन्नं तावदेवापरे दले॥५५॥
एवं पञ्चगुणात् क्षेत्रफलात् पृष्ठफलं खलु।
नाधिकं जायते तेन परिधिघ्नं कुतः कृतम्॥५६॥
वृत्तक्षेत्रफलं यस्मात् परिधिघ्नं न युक्तिमत्।
दुष्टत्वाद्गणितस्यास्य दुष्टं भूपृष्ठजं फलम्॥५७॥

पूर्वोक्त के साधन की सही विधि—

सूर्य-प्रभा टीका— गोल की परिधि के आधे के तुल्य व्यास मान के वृत्त तुल्य वस्त्र को उस गोल पर लपेटने से उस गोलार्ध के ढक जाने पर भी कुछ वस्त्र शेष रह जाता है। इस प्रकार करने से गोल व्यास के वृत्त वस्त्र क्षेत्रफल से गोलार्ध का पृष्ठफल $२\frac{१}{२}$ गुणित के लगभग होता है और इतना ही दूसरे गोलार्ध के लिए होगा। इस प्रकार वस्त्र के वृत्त के क्षेत्रफल से पांच गुणा से अधिक गोल का पृष्ठफल नहीं होता, न्यून ही होता है। तब फिर वृत्तफल तथा गोल परिधि के गुणा के तुल्य गोलपृष्ठ फल कैसे होगा? जैसा कि लल्लाचार्य ने 'वृत्तक्षेत्रफलं परिधिघ्नं समंततो भवति गोलपृष्ठफलम्' कहा है। गणित में गहन त्रुटि होने से भूपृष्ठफल जो लल्लाचार्य ने साधित किया है वह भी त्रुटिपूर्ण है।

लेकिन वृत्त के क्षेत्रफल का चार गुणा गोल का पृष्ठफल होता है अर्थात् गोल के व्यास और परिधि के गुणा के तुल्य होता है।

अथान्यथा प्रतिपाद्यते—

गोलस्य परिधिः कल्प्यो वेदघ्नज्यामितैर्मितः।
मुखबुध्नगरेखाभिर्यद्वदामलके स्थिताः॥५८॥
दृश्यन्ते वप्रकास्तद्वत् प्रागुक्तमपरिधेर्मितान्।
ऊर्ध्वार्धः कृतरेखाभिर्गोले वप्रान् प्रकल्प्येत्॥५९॥
तत्रैकवप्रकक्षेत्रफलं खण्डैः प्रसाध्यते।
सर्वज्यैक्यं त्रिभज्यार्धहीनं त्रिज्यार्धभाजितम्॥६०॥
एवं वप्रफलं तत् स्याद्गोलव्याससमं यतः।
परिधिव्यासघातोऽतो गोलपृष्ठफलं स्मृतम्॥६१॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्य प्रकार से प्रतिपादन—

सूर्य-प्रभा टीका— आँवले के फल के समान किसी गोलाकार पृष्ठ पर उसके मुख से तल तक रेखायें खींचने से उनके बीच का क्षेत्र वृत्ताकार अर्थात् वलयाकार दिखाई देता है। गोल की संख्या के तुल्य इन वलयाकार भागों को कल्पित करके उनमें से एक क्षेत्र का क्षेत्रफल साधित करके सभी के योग तुल्य गोलपृष्ठ क्षेत्रफल होता है। धीवृद्धिदग्रंथ में कहे अनुसार एकपाद में २४ ज्यायें कल्पित की हैं। अतः गोल की परिधि २४×४=९६ कल्पित करके एक एक हाथ दूरी पर ऊपर से नीचे रेखायें खींचने से ९६ वप्राकार क्षेत्र बनावें। उस एक वप्र के आधे में एक-एक हाथ दूरी पर तिर्यग्रेखा खेंचने से ज्या संख्या तुल्य (२४) खण्ड कल्पित करे। यहाँ प्रत्येक जीवा में प्रथक्-प्रथक् त्रिज्या से भाग देने से प्राप्तफल तिर्यग्रेखा के मान के तुल्य होता है और नीचे की ओर खड़ी रेखा एक हस्त तुल्य होती है और ऊपरीगत रेखायें ज्यावशात कहीं-कहीं कुछ न्यून होती है लेकिन शेष सर्वत्र लम्ब एक हाथ तुल्य मान का होता है। लीलावति में क्षेत्रव्यवहार अध्याय में चतुर्भुजों के फल आनयन के श्लोक २५ में आचार्य ने कहा है कि 'चतुर्भुजेऽन्यत्र समानलम्बे लम्बनं निघ्नं कुमुखैक्यखण्डम्'' अर्थात जिन चतुर्भुजों में भुजायें असमान हों लेकिन लम्ब समान हो वहाँ चतुर्भुज का क्षेत्रफल मुख और आधार के योग के आधे को लंब से गुणा करने से प्राप्तफल होता है। इस सूत्र द्वारा सभी खंडों के फलों का योग करने से उस वप्रकार्ध का क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इसका दुगुणा करके एक वप्र का क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इसके साधन के लिए आचार्य ने सूत्र दिया है।

$$\text{एक वप्र का क्षेत्रफल} = \frac{\text{सर्व ज्याओं का योग} - \frac{\text{त्रिज्या}}{२}}{\frac{\text{त्रिज्या}}{२}}$$

यहाँ सर्वज्या योग = ५४२३३ होता है। इसमें से त्रिज्यार्ध = १७१९ घटाने से शेष ५४२३३ − १७१९ = ५२५१४ प्राप्त हुआ। इसमें त्रिज्यार्ध = १७१९ का भाग देने से प्राप्तफल ३०।३३ गोल के व्यास तुल्य एक वप्रका का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस ३०।३३ व्यास से परिधि का मान = $\frac{३०।३३ \times ३९२७}{१२५०}$ = ९६।

यही हमने प्रारंभ में परिधि का मान माना था।

इस प्रकार सभी (९६) वप्रका क्षेत्रों का क्षेत्रफल = व्यास × परिधि

यही सूत्र भास्कराचार्य ने लीलावति के वृत्तव्यवहार में श्लोक ४३ में कहा है। लेकिन यह सूत्र भास्कराचार्य का स्वयं का नहीं है।

पूर्व श्लोक ५२ की व्याख्या में हमने आर्यभट (द्वि.) द्वारा कहा हुआ यही सूत्र उद्धृत किया है वह भी ध्यान रखें।

इदानीं भूमेः प्रलयभेदौ प्रलयांश्चाह—

वृद्धिर्विधेरह्नि भुवः समन्तात् स्याद्योजनं भूभवभूतपूर्वैः।
ब्राह्मे लये योजनमात्रवृद्धेर्नाशो भुवः प्राकृतिकेऽखिलायाः॥६२॥
दिने दिने यन्म्रियते हि भूतैर्दैनंदिनं तं प्रलयं वदन्ति।
ब्राह्मं लयं ब्रह्मदिनान्तकाले भूतानि यद्ब्रह्मतनुं विशन्ति॥६३॥
ब्रह्मात्यये यत् प्रकृतिं प्रयान्ति सर्वाण्यतः प्राकृतिकं कृतीन्द्राः।
लीनान्यतः कर्मपुटान्तरत्वात् पृथक् क्रियन्ते प्रकृतेर्विकारैः॥६४॥
ज्ञानाग्निदग्धाखिलपुण्यपापा मनः समाधाय हरौ परेशे।
यद्योगिनो यान्त्यनिवृत्तिमस्मादात्यन्तिकं चेति लयश्चतुर्धा॥६५॥

पृथ्वी के प्रलयभेद—

सूर्य-प्रभा टीका— प्राणियों का प्रतिदिन होने वाला नाश मृत्यु आदि दैनंदिन प्रलय है। एक हजार चतुर्युग बीतने पर जब ब्रह्मा जी का एक दिन समाप्त हो जाता है उस समय तीनों लोकों सहित सृष्टि का जो संहार (लय) होता है वह ब्राह्मलय अथवा नैमित्तिक प्रलय है। इस समय पुण्यक्षीण तथा पापी यह लोक कालवश ब्रह्मशरीर में प्रवेश कर जाता है। ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख में, बाहों में क्षत्रिय, दोनों ऊरुओं में वैश्य तथा दोनों पैरों में शूद्र प्रवेश कर जाते हैं। इसके पश्चात् ब्रह्मा की रात्रि पूर्ण हो जाने पर पुनः ब्रह्मा द्वारा सृष्टि रचना के लिए चिंतन करने पर उनके मुखादि स्थानों से चारों वर्ण ब्राह्मण आदि अपने अपने कर्मों से उत्पन्न होते हैं। इस प्रलय में भुवलोक के योजन मात्र वृद्धि का विलय होता है, समस्त का नहीं। और जब ब्रह्मा की आयु के अन्त में प्रलय होती है तब वह महाप्रलय कहलाती है।

इस प्रलय में ब्रह्मामें ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्ड में पञ्च भौतिक, भूमि का जल

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में, जल का तेज में, तेज का वायु में, वायु का आकाश में, आकाश का अहंकार में तथा अहंकार का महत्तत्व में, महत्त्व का प्रकृती में इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति से भिन्न विपरीत क्रम में प्रलय हो जाती है। इसी प्रकार सभी सात आवरण रूप भुवन लोक के हैं वे सब भी परस्पर लीन हो जाते हैं। न्यूनाधिक से रहित जो सत्वादि तीनों गुणों की साम्यावस्था है उसी को प्रकृति कहते हैं और इसी का नाम प्रधान है। यह प्रधान ही सम्पूर्ण जगत का परम कारण है। यह प्रकृति व्यक्त और अव्यक्त रूप से सर्वमयी है, इसलिए अव्यक्त में व्यक्त रूप लीन हो जाता है।

आध्यात्मिक, अधिदैविक और अधिभौतिक तीनों प्रकार के पापों को जानकर ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होने पर पण्डित जनों द्वारा इनके द्वारा (ज्ञान और वैराग्य) इस सृष्टि का आत्यन्तिक प्रलय होता है।

विशेष— **श्रीपति ने सिद्धान्त शिरोमणि** के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है–

"दिने विरिञ्चस्य विवृद्धिरुर्व्याः स्याद्योजनं जन्तु तृणाभिवृद्धया।
तस्यैव रात्रौ खलु कृत्रिमाया मृदो विनाशः प्रलयाम्बुवृष्ट्या॥२६॥"

अथ ब्रह्माण्डगोलमाह—

भूभूधरत्रिदशदानवमानवाद्या ये याश्च धिष्ण्यगगनेचरचक्रकक्षाः।
लोकव्यवस्थितिरुपर्युपरि प्रदिष्टा ब्रह्माण्डभाण्डजठरे तदिदं समस्तम्॥६६॥

ब्रह्माण्डगोल—

सूर्य-प्रभा टीका— बर्तन रूपी ब्रह्माण्ड के गर्भ में भूमि, पर्वत, देवता, दानव, मानव आदि तथा नक्षत्र ग्रह तथा इनकी भ्रमण कक्षायें, एक के ऊपर एक अवस्थित भू, भुव, स्वः से ऊपर सत्यलोक आदि सभी अपने-अपने स्थान पर अवस्थित है।

विशेष— **श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर** के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ब्रह्माण्डभाण्डोदरवर्तिकृत्स्नमेतद्यदुक्तं क्रमशो यथाऽत्र।
तस्यैव बाह्यः परिधिः खकक्षा विवस्वतः सा महसां च सीमा॥४१॥"

इदानीमन्योदितं ब्रह्माण्डमानं पूर्वं कथितमपि प्रसङ्गादनुवदति स्म—

कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभूभृद्भुजङ्गेन्दुभि-१८७१२०६९२०००००००
ज्योतिश्शास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तद्ब्रह्माण्डकटाहसंपुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनं
केचित् प्रोचुरदृश्यदृश्यकगिरिं पौराणिकाः सूरयः ॥६७॥
करतलकलितामलकवदमलं सकलं विदन्ति ये गोलम्।
दिनकरकरनिकरनिहततमसो नभसः स परिधिरुदितस्तैः ॥६८॥
ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा कल्पे ग्रहः क्रामति योजनानि।
यावन्ति पूर्वैरिह तत्प्रमाणं प्रोक्तं खकक्षाख्यमिदं मतं नः ॥६९॥

पूर्व कथितब्रह्माण्ड मान आदि का प्रसङ्गवश पुनः कथन—

सूर्य-प्रभा टीका— इसी ग्रंथ के गणिताध्याय के मध्यमाधिकार के कक्षाध्याय के श्लोक १ से ३ की व्याख्या देखें। यहाँ ६७ से ६९ तक आचार्य ने उन्हीं तीन श्लोकों को पुनः कहा है।

इति गोलाध्याये भुवनकोशः

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के भुवनकोशाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ मध्यगतिवासना

इदानीं भूमेरुपरि सप्तवायुस्कन्धास्तानाह—

भूवायुरावह इह प्रवहस्तदूर्ध्वः स्यादुद्वहस्तदनु संवहसंज्ञकश्च।
अन्यस्ततोऽपि सुवहः परिपूर्वकोऽस्याद्वाह्याः परावह इमे पवनाः प्रसिद्धाः॥१॥
भूमेर्बहिर्द्वादशयोजनानि भूवायुरत्राम्बुदविद्युदाद्यम्।
तदूर्ध्वगो यः प्रवहः स नित्यं प्रत्यग्गतिस्तस्य तु मध्यसंस्था॥२॥
नक्षत्रकक्षाखचरैः समेतो यस्मादतस्तेन समाहतोऽयम्।
भपञ्जरः खेचरचक्रयुक्तो भ्रमत्यजस्रं प्रवहानिलेन॥३॥

भूमि के ऊपर सात प्रकार की वायु की परतें—

सूर्य-प्रभा टीका— भूमि गोल के ऊपर क्रमशः सात प्रकार की वायु की परतें एक के ऊपर एक भुवायु, प्रवह इसके ऊपर उद्वह, इसके ऊपर संवह, इसके ऊपर सुवह, इसके ऊपर परिवह तथा सबसे ऊपर परावह हैं। ये सात प्रकार की वायु एक एक के ऊपर एक विचरण करती हैं ऐसा पुराणों में प्रसिद्ध हैं।

भूमि के बाहर चारों ओर बारह (१२) योजन दूरी तक भुवायु का गोल है जिसमें बादल, विद्युत आदि भी स्थित हैं। इस भुवायु गोल के ऊपर प्रवह वायु का गोल है जो पश्चिमाभिमुख पृथ्वी के चारों ओर नित्य (विचरण) संचारित रहती हैं। इसकी गति मध्यम गति मानी गई है अर्थात इसकी गति नियत है न तो अनियत गति है और न ही अनियत इस की दिशा है, सदा पश्चिमाभिमुख रहती है।

भपञ्जर में नक्षत्र तथा अपनी अपनी कक्षा क्रम में सप्त ग्रह ऊर्ध्वक्रम में स्थिति सहित समाहित होकर प्रवह वायु के द्वारा भ्रमण करते रहते हैं। नक्षत्रों की (स्वयं की) गति नहीं होती है। वे सदा स्थिर रहते हैं जब कि ग्रहादि प्रवह वायु वश पश्चिमाभिमुख निरंतर स्वस्वकक्षा में भ्रमणशील रहते हैं।

आचार्य ने श्लोक २ में 'आद्यम्' शब्द को अन्य आचार्योक्त 'उल्का, इन्द्र धनुष, गन्धर्व नगर' आदि के लिए प्रयुक्त किया है, जो पुराणोक्त भी हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के भुवनकोश प्रश्नोत्तरम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"कठयोजनानि भूमेर्भूवायुर्भ्रमति सर्वकाष्ठासु।
तत्रैवाम्बुदकार्मुकनिर्घातपुरादयः सन्तिः ॥४४॥
तदुपरि नियतः प्रवहो वायुर्विचरित भमण्डलव्यापी।$\frac{१}{२}$।"

लल्लाचार्य ने शिष्धीवृद्धिद ग्रंथ के ग्रहभ्रमसंस्थानाधिकार १८ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"आवहः प्रवह उद्वहस्तथा संवहः सुपरिपूर्वकौ वहौ।
सप्तमस्तु पवनः परावहः कीर्तितः कुमरुदावहोऽपरैः ॥१॥
सदैव नित्यं प्रवहेण वायुना निरक्षदेशोपरिगो भपञ्जरः।
स्वपश्चिमाशाभिमुखोऽपि नीयतेऽसुरामराणामपसव्यसव्यगः ॥३॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"निर्घातोल्काघनसुरधनुर्विद्युदन्तः कुवायोः सन्दृश्यन्ते खनगरपरीवेषपूर्व तथान्यत्॥५२॥
नौस्थोऽनुलोमगमनादचलं यथा न चामन्यते चलति नैवमिलाभ्रमेण।
लङ्कासमापरगतिप्रचलद्भचक्रमाभाति सुस्थिरमपीति वदन्ति केचित्॥१५॥
यद्येवमम्बरचरा विहगाः स्वनीडमासादयन्ति न खलु भ्रमणे धरित्र्याः।
किञ्चाम्बुदा अपि न भूरिपयोमुचः स्युर्देशस्य पूर्वगमनेन चिराय हन्त॥१६॥
भूगोलवेगजनितेन समीरणेन केत्वादयोऽप्यपरदिगतयः सदा स्युः।
प्रासादभूधरशिरांस्यपि सम्पतन्ति तस्माद्भ्रमत्युडुगणस्त्वचलाऽचलैव॥२७॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के गोलाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ध्रुवयोर्बद्धं सव्यगममराणां क्षितिजसंस्थमुडुचक्रम्।
अपसव्यगमसुराणां भ्रमति प्रवहानिलाक्षिप्तम्॥४॥"

आर्यभट (प्र.) ने आर्यभटीय के गोलपाद में भपञ्जर का पश्चिमाभिमुख भ्रमण कहा है। यथा–

"उदयास्तमयनिमित्तं नित्यं प्रवहेण वायुनाक्षिप्तः।
लङ्कासमपश्चिमगो भपञ्जरस्सग्रहो भ्रमति॥१०॥"

इदानीं ग्रहाणां पूर्वगतिमनुपलक्षितामपि दृष्टान्तेन दृढीकुर्वन्नाह—

यान्तो भचक्रे लघुपूर्वगत्या खेटास्तु तस्यापरशीघ्रगत्या।
कुलालचक्रभ्रमिवामगत्या यान्तो न कीटा इव भान्ति यान्तः॥४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रहों की पूर्वाभिमुखगति अनुपलक्षित होने से दृष्टान्त द्वारा इसको दृढ़ता से कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रहों की पूर्वाभिमुख गति लघु तथा उसके विपरीत पश्चिमाभिमुख गति शीघ्रतर होती है। अतः जिस प्राकर कुम्हार का चक्र शीघ्रगति से भ्रमण करता है और उस पर बैठा एक कीट यदि उसके विपरीत दिशा में गतिमान हो तो कीट सहित चक्र की शीघ्रगति के कारण कीट की विपरीत लघु गति दृष्टिगोचर नहीं होती है, उसी प्रकार ग्रहों की पूर्वाभिमुख लघु गति दृष्टि को दृष्ट नहीं होती।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"ज्योतिश्चक्रं प्रवहमरुता भ्राम्यते प्रत्यगेतत्
तत्स्थाः शश्वद्गगनगतयो यान्ति यान्तस्तथैव॥५३।"

इदानीं मध्यगतिवासनां विवक्षुरादौ तावद्भदिनपूर्वकं रवेः स्फुटसावनदिनमाह—

समं भसूर्यावुदितौ किलाक्ष्यां षष्ट्या घटीनामुदितं पुनर्भम्।
रविस्ततः स्वोदयभुक्तिघातात् खाभ्रष्टभू १८०० लब्धसमासुभिश्च॥५॥
समागतासुसंयुता रवेस्तु षष्टिनाडिकाः।
स्फुटं द्युरात्रमुद्गमाद्द्युभुक्तितश्च तच्चलम्॥६॥
षष्ट्या घटीनां भदिनं सदाक्ष्यां तद्भुक्तितुल्यासुयुतं खराशोः।
स्यान्मध्यमं सावनमेवमब्दे तत्संख्यका भभ्रमतो निरेका॥७॥

मध्यगतिवासना आरंभ करने से पहले सूर्य के नक्षत्र दिन से स्फुट सावन दिन ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— किसी दिन सूर्य तथा किसी नक्षत्र (तारा) के एक साथ उदय होने के पश्चात् दूसरे दिन पुन साठ (६०) घटी पश्चात नक्षत्र के उदय हो जाने पर भी सूर्य का उदय नहीं होता वरन कुछ समय पश्चात होता है। इस समय अन्तराल को रविस्थित राशि के स्वादेय मान से गुणा करके राशिकला मान १८०० से विभक्त करने से अनुपात द्वारा प्राप्त फल सूर्य की स्फुट गति कला क्रांतिवृत्त में पूर्वाभिमुख गति होती है। इस प्रकार प्राप्त असु तुल्य सयम पश्चात् नक्षत्र के उदय के बाद सूर्य का उदय होता है। अतः नक्षत्र उदय के साठ घटियों से इतने समय अधिक तुल्य स्फुट दिनरात (अहोरात्र) होता है। इस प्रकार पूर्व (पीछे) में उदित होते हुए पूरी राशि का उदय होता है। इसी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकार अन्य ग्रहों के लिए भी होता है। पुनः साठ घटी सूर्य की मध्यम भुक्ति तुल्य सावन दिनरात कहते हैं यह मध्यमगति है। इस प्रकार वर्ष के अन्त में जितने स्फुट सावन दिन होते हैं वे मध्यमान से होते हैं। गति में ह्रास तथा वृद्धि तुल्य हो जाती है। इसीलिए कहा जाता है कि नित्य रवि की गति लिप्ता नक्षत्र गति से जितनी लिप्ता अधिक होती है उतना अधिक एक सावन दिन होता है। अतः नक्षत्र दिवस संख्या में से एक दिवस कम करने से सूर्य (आदि ग्रहों) के सावन दिनसंख्या एक वर्ष में होती है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"चन-घटिकमहोरात्रं तन्नाक्षत्रं यतोधिष्ण्यम्॥५४॥
प्रवहानिलवेगवशात् पुनरुदयं याति वा निजस्थानम्।
उदयात् पुनरुदयः स्यात् सावनदिवसेन भेषु नित्योऽसौ॥५५॥"
भदिनं सूर्यादीनां निजगति लिप्तासुभिः सहितम्।
सावनदिनं तु चित्रं स्फुटभुक्तेश्चञ्चलत्वेन॥५६॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मध्यगतिवासनाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"नित्यं रविगति लिप्तासमासुभिः सावनो भावः।
यस्माद्रविभगणदिनान्यतः सरूपाणि भाहाः स्युः॥१॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. के गोलवासना ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सूर्यभुक्तिकलिकासमासुभिः सावनो भदिवसाद्यतोऽधिकः।
तेन सूर्यपरिवर्तसावना भोदयाः स्युरिनपर्ययैर्युताः॥१॥"

इदानीं वर्षमध्ये सावनसंख्यामाह—

पञ्चाङ्गरामास्तिथयः खरामाः सार्धद्विदस्राः कुदिनाद्यमब्दे।
अस्यार्कमासोऽर्कलवः प्रदिष्टस्त्रिंशद्दिनः सावनमास एव॥८॥

वर्ष में सावन दिन संख्या—

सूर्य-प्रभा टीका— एक सौर वर्ष में ३६५ सावन दिन १५ घटी ३० पल २२ विपल तथा ३० प्र.वि. होते हैं। इसका बारहवाँ भाग सौर मास होता है तथा ३० सावन दिनों का सावन मास होता है।

इसकी उपपत्ति पूर्व में गणिताध्याय के मध्यमाधिकार में बता दी गई है—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मध्यगतिवासनाध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"चैत्रादिः खाग्निदिनैः षड्विंशतिनाडिकाधिकैरेकः।
मासः सहस्ररश्मेर्धृतिविघटीसंयुतैर्भवति॥३॥"

यहाँ आचार्य ने भास्करोक्त वर्ष मान ही मान कर उसमें १२ मास संख्या का भाग देकर प्राप्त मास का मान यहाँ कह दिया है जिस बात को भास्कराचार्य ने ज्ञात करने के लिए छात्रों पर छोड़ दिया था।

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि.के गोला. के गोलवासना ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"धृतिः पलाधिकषड्भुज नाडिकाभ्यधिकसावनमासि रवेर्यतः।२$\frac{१}{२}$।"

(१८) (२६)

इदानीं चान्द्रमासमाह—

कालेन येनैति पुनः शशीनं क्रामन् भचक्रं विवरेण गत्योः।
मासः स चान्द्रोऽङ्कयमाः कुरामाः पूर्णेषव २९।३१।५० स्तत्कुदिनप्रमाणम्॥९॥

सूर्य-प्रभा टीका— दर्शांत काल अर्थात अमावस्यान्त काल पर सूर्य तथा चंद्रमा की युति होती है। उसके पश्चात् दोनों पूर्व की ओर गमन करते हैं। चन्द्रमा की पुनः सूर्य से जितने समय पश्चात् चक्रकला २१६०० तुल्य भचक्र में गति करते हुए युति होती है उतने समय अन्तराल को चान्द्रमास कहते हैं। यह २९ दिन.३१ घटी ५० पल तुल्य सावन दिनों के मान का होता है।

उपपत्ति प्रमाण—

अनुपात के द्वारा चान्द्रमास का मान ज्ञात कर सकते हैं, कि यदि चंद्र सूर्य के गतिअंतर कला में एक सावनदिन प्राप्त होता है तो चक्र कला २१६०० तुल्य अन्तर में कितना समय लगेगा? प्राप्तफल चान्द्र मास का मान होता है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"यावत्कालेन शशी प्रविशति सूर्यं स शीतगोर्मासः।४०$\frac{१}{२}$।"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मध्यगतिवासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"घटिकाष्टाविंशत्या दशपलयुतयोनिते सावने मासे।
रविचन्द्रमसोर्योगो भवति स मासस्तु चान्द्रमासः॥२॥"

आर्यभट (प्र.) ने आर्यभटीय के काल क्रिया पाद में सौरवर्ष, चांद्रमास, सावन दिन तथा नक्षत्र दिन को परिभाषित किया है। यथा–

"रविभगणाख्यब्दा रविशशियोगा भवन्ति शशिमासाः।
रविभूयोगा दिवसा भावर्ताश्चापि नाक्षत्राः॥१५॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. के गोलवासना ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"नाडिकाभिरिभबाहु (२८) भिर्यतो दिक् (१०) पलैस्समधिकाभिरुनिते।
मासि सावन इनेन्दुसङ्गमो दृश्यतैणधरमासकश्च सः॥२॥"

इदानीमधिमासोपपत्तिमाह—

चान्द्रोनसौरेण हृतात् तु चान्द्रादवाप्तसौरैर्दशनैर्दलाढयैः ३२।१६।
मासैर्भवेच्चान्द्रमसोऽधिमासः कल्पेऽपि कल्प्या अनुपाततोऽतः॥१०॥
सौरान्मासादैन्दवः स्याल्लघीयान् यस्मात् तस्मात् संख्यया तेऽधिका स्युः।
चान्द्राः कल्पे सौरचान्द्रान्तरे ये मासास्तज्ज्ञैस्तेऽधिमासाः प्रदिष्टाः॥११॥

अधिमास की उपपत्ति—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने श्लोकों का क्रम यहाँ विपरीत दिया है। ग्यारहवें श्लोक का अर्थ स्वकृत वा.भा. में प्रथम दिया है तदन्तर श्लोक १० की व्याख्या की है।

सौरमास के मान से चान्द्रमास का मान लघुत्तर होने से कल्प में चांद्रमासों की संख्या सौरमासों की संख्या से अधिक होती है। अतः कल्प के चांद्र और सौर मासों का अन्तर जितना होगा तत्तुल्य चान्द्र अधिमास संख्या होगी। इन्हें ही अधिमास कहते हैं।

अतः चान्द्र तथा सौर मासों के अंतर से चान्द्र मास के मान तथा सौर मासों की संख्या के गुणनफल में भाग देने से प्राप्तफल ३२।१६ सौर मासों में एक चान्द्र अधिक मास होता है। कल्प में अधिमास संख्या ज्ञात करने के लिए अनुपात से ज्ञात करेंगे।

प्रमाण—

एक सौरमास की सावन दिन संख्या तथा चांद्रमास की सावन दिवसंख्या का अन्तर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$= \frac{\text{सौरवर्ष मान सावन दिन संख्या}}{१२} - \text{चान्द्रमास सावन दिन संख्या}$$

$$= \frac{३६५।१५।२२।३०}{१२} - २९।३१।५० = ०।५४।२७।३१।५२।२०$$

अतः अनुपात किया कि चांद्र सूर्य मास के ०।५४।२७।३१।५२।२० सावन दिन तुल्य अन्तर में यदि एक सौर मास होता है तो २९।३१।५० सावन दिन तुल्य चान्द्रमास में कितने सौर मास होंगे?

$$\text{प्राप्तफल} = \frac{२९।३१।५०}{०।५४।२७।३१।५२।३०} = ३२।१५।३१।२८ = ३२।१६$$

स्वल्पांतर से, सौरमास संख्या हुई।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"रविशशिमासवियोगेऽधिकमासाः स्युर्विधोर्मासाः।
सौरेभ्यो बहवोऽतः सौरान्मासाल्लघुश्चान्द्रः॥४२॥
तस्माद्दर्शविरामादुपरिष्टाद्येन कालेन्।
मध्योऽर्कसंक्रमः स्यात सोऽधिकमासाग्रजः कालः॥४३॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के गोलाध्याय १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"सौरान्मासादैन्दवः स्याल्लघीयान् यस्मात्तेनोन्मीयमानास्तु सौराः।
यान्त्याधिक्यं तेषु ये चातिरिक्तास्तज्ज्ञैस्तस्मात्तेऽधिमासाः प्रदिष्टाः॥६५॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के मध्यगति वासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"चान्द्रान्मासात् पातज्ञोमासो यस्मात् सदाभ्यधिकः।
अधिमासकस्ततः स्यात् पञ्चरसैः शीतगोः पक्षैः॥४॥"

यहाँ आचार्य ने ६५ पक्ष कही हैं तथा भास्कराचार्य ने ३२।१५।३१ को स्वल्पांतर से ३२।१५ मास कह दिया है। बात एक ही है।

आर्यभट (प्र.) ने आर्यभटीय के कालक्रिया पाद में अधिमास कहे हैं। यथा—

"अधिमासका युगे ते रविमासेभ्योऽधिकास्तु ये चान्द्राः।५$\frac{१}{२}$।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सि. के गोला. के गोलवासना ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''विधुभवादधिकोऽयमतोऽर्कजैः षडगनन्द (९७६) दिनैरधिमासकः॥३॥''

इदानीमवमोपपत्तिमाह—

शशाङ्कमासोनितसावनेन ०।२८।१०
त्रिंशद्धृता लब्धदिनैस्तु चान्द्रैः।
रुद्रांशकोनाब्धिरसैः ६३।५४।३३ क्षयाहः
स्यात् सावनोऽतश्च युगेऽनुपातात्॥१२॥

अब इस की उपपत्ति कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— युग के चान्द्रमास के चान्द्रदिन (तिथि) तथा सावन दिनों का अन्तर अवमदिन कहा जाता है। अतः एक चान्द्रमास के ३० कुदिन तथा सावन दिन २९।३१।५० का अन्तर ०।२८।० सावन दिनादि अवम दिन में ३० चान्द्र तिथि प्राप्त होती है तो पूरा एक अवम दिन कितने चान्द्र तिथि दिनों में प्राप्त होगा? प्राप्तफल = चान्द्रतिथि = $\frac{१ \times ३०}{०।२८।०}$ = ६३।५४।३३ होता है।

अर्थात् ६३।५४।३३ चान्द्र तिथियों में पूरा एक अवम दिन प्राप्त होता है। यह सावनात्मक दिन संख्या है क्योंकि खण्ड (०।२८।०) का स्वरूप सावनात्मक कल्पित किया है। इससे अनुपात द्वारा कल्प के लिए मान ज्ञान कर सकते हैं।

विशेष— आर्यभट (प्र.) ने आर्यभटीय के कालक्रियापाद में अवम (क्षय) दिन को परिभाषित किया है। यथा—

''शशिदिवसा विज्ञेया भूदिवसोनास्तिथिप्रलयाः॥६॥''

इदानीमधिमासस्य चान्द्रत्वमवमस्य सावनत्यमभिधायाहर्गणात् कल्पगतमानेतुं विलोमविधिना यान्यवमान्यानीतानि ये चाधिमासास्तेषां विशेषमाह—

सौरेभ्यः साधितास्ते चेदधिमासास्तदैन्दवाः।
चेच्चान्द्रेभ्यस्तदा सौरास्तच्छेषं तद्वशात् तथा॥१३॥
सावनान्यवमानि स्युश्चान्द्रेभ्यः साधितानि चेत्।
सावनेभ्यस्तु चान्द्राणि तच्छेषं तद्वशात् तथा॥१४॥

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गसाधन द्वारा साधित सौर दिवस से (चान्द्र)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अधिमास साधित करने से जो अधिमास प्राप्त होते हैं वे चांद्रमास शेष रहने से चान्द्रमास होते हैं और चान्द्रदिन से (सौर) अधिमास साधित करने से सौर मास शेष रहने से सौर मास होते हैं तथा इस प्रकार प्राप्त अधिमासों के शेष भी तदवत् ही होते हैं।

प्रमाण— अहर्गण से प्राप्त इष्ट चान्द्र दिन से साधित अधिमास में—

$$\frac{\text{कल्प सौरमास} \times \text{गत चान्द्र दिन}}{\text{कल्प चान्द्र दिन}} = \text{अधिमास} + \frac{\text{अधिशेष}}{\text{क. चा. दि.}}$$

यहाँ प्राप्त अधिमास सौरमास हैं तथा अधिशेष भी सौरात्मक ही है।

अहर्गण से प्राप्त इष्ट सौर दिन से साधित अधिमास में—

$$\frac{\text{कल्प चांद्राधिमास} \times \text{गत सावन दिन}}{\text{कल्प कुदिन}} = \text{अधिमास} + \frac{\text{अधिशेष}}{\text{क. कु.}}$$

यहाँ प्राप्त अधिमास चान्द्रमास हैं तथा अधिशेष भी चान्द्रात्मक ही है।

विशेष— आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कल्पेन्दुदिवसयाताधिमासघातोऽधिशेषयुतः ॥३५॥
कल्पाधिमासभक्तो लब्धं तुहिनांशुदिवसाः स्युः।
कल्पार्कदिवसयाताधिमासघातोऽधिमासशेष युतः॥३६॥
कल्पाधिमासभक्तो लब्धं याता दिनेशदिवसाः स्युः।
एभिः कल्पगतावममासद्युगणादयः साध्याः॥३७॥"

आर्यभट ने यहाँ निम्नलिखित सूत्र कहे हैं जो पूर्वोक्त से प्राप्त किये जा सकते हैं—

क.अधिमा × इ.चा.दि = गअधिमा. × क.चा.दि + अधि.शे.

$$\text{इष्ट चांद्र दि.} = \frac{\text{गत अधिमास} \times \text{कल्प चां. दि.} + \text{अधिशे}}{\text{कल्प अधिमास}}$$

इदानीं विशेषः प्रश्नाध्याये—

अहर्गणस्यानयनेऽर्कमासाश्चैत्रादिचान्द्रैर्गणकान्विताः किम्।
कुतोऽधिमासावमशेषके च त्यक्ते यतः सावयवोऽनुपातः॥१५॥

अस्यप्रश्नस्योत्तरमाह—

दर्शावधिश्चान्द्रसमो हि मासः सौरस्तु संक्रान्त्यवधिर्यतोऽतः।
दर्शाग्रतः संक्रमकालतः प्राक् सदैव तिष्ठत्यधिमासशेषम्॥१६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दर्शान्ततो याततिथिप्रमाणैः सौरैस्तु सौरा दिवसाः समेताः।
यतोऽधिशेषोत्थदिनाधिकास्ते त्यक्तं तदस्मादधिमासशेषम्॥१७॥
तिथ्यन्तसूर्योदययोस्तु मध्ये सदैव तिष्ठत्यवमावशेषम्।
त्यक्तेन तेनोदयकालिकः स्यात् तिथ्यन्तकाले द्युगणोऽन्यथातः॥१८॥

अब विशेष प्रश्नाध्याय—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण आनयन करने में सौरमासों में चैत्रादि चान्द्रमास युक्त करके गणना क्यों की गई है? और अधिमास अवशेष को क्यों त्याग दिया गया है? और सावयव अनुपात क्यों किया गया है?

इस प्रश्न का उत्तर–

मध्यममान से जब अमावस्या का अंत होता है तो चांद्रमास का भी अंत (समाप्त) होता है और मध्यम सूर्य की जिस दिन संक्रान्ति होती है तब संक्रांति काल पर सौर मास की समाप्ति होती है। रविमासों तथा चान्द्रमासों के अन्तर के अनन्तर जितनी तिथियाँ सावयव होती है वह अधिमास शेष तिथियाँ होती हैं क्योंकि सौर चान्द्रमासों का अन्तर अधिमास संज्ञक हेाता है। अहर्गण आनयन में गताब्द को बारह (१२) से गुणा करने से सौरमास प्राप्त होते हैं। इनमें चैत्रादि से गत चान्द्रमासों को सौर मास तुल्य मान कर उनमें जोड़ने से वे भी संक्रांति युक्त मास हो जाते हैं। इनको ३० से गुणा करके गत तिथि तुल्य सौर दिवस मान कर इनमें युक्त करते हैं। अतः सौर चांद्र के अन्तर में जितना अधिक होता है वह अर्थात् उतना अन्तर तुल्य अधिमास शेष के दिन प्राप्त होते हैं। इसलिए सौर चान्द्र के अंतर तुल्य, अधिमास शेष में से कम करते हैं। अतः अधिमास आनयन में अनुपात से प्राप्त अधिमास के दिन बना कर अधिशेष दिनों को उनमें युक्त करने से वे सौर से चांद्र दिवस हो जाते हैं। इस प्रकार यहाँ अधिमास शेष दिनों को अधिक युक्त कर दिया है। अतः उनको घटाना होगा। इसी कारण से अधिमास शेष को त्याग दिया जाता है।

उपरोक्त को गणित सूत्र रूप में करके बताते हैं। गताब्द तथा गत चान्द्रमास एवं इष्ट गत तिथि द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से सौर दिवस (गव.×१२+गत चान्द्रमास तुल्य सौर मास) × ३० + गत तिथि = इष्ट सौर दिन प्राप्त करके अनुपात किया कि यदि युग सौर दिनों में युगाधिमास पाते हैं तो इष्ट सौर दिन में क्या? इस प्रकार प्राप्त फल–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\frac{\text{युगाधिमास} \times \text{इष्ट सौर दिन}}{\text{युसौर दिन}} = \text{गताधिमास} + \frac{\text{अधिशेष}}{\text{युसौर दिन}}$$

यहाँ पहले गत सौर मास में चैत्रादि गत चान्द्रमास तुल्य सौर मास जोड़े थे इसलिए सौर-चाँद्र के अन्तर तुल्य अधिशेष अधिक जोड़ा गया था। अतः अनुपातगत अधिशेष को यदि छोड़ देते हैं तो उस त्रुटि, जो पहले अधिशेष तुल्य अधिक लेने से हुई थी, का निराकरण हो जायेगा। अतः केवल गताधिदिन को इष्ट सौर दिन में जोड़ने से तिथ्यन्तकालिक चान्द्र अहर्गण होगा। इष्ट सौर दिन + गताधिदिन = तिथ्यन्त कालिक चान्द्र अहर्गण।

अब अवमशेष त्याग का कारण बताते हैं। तिथ्यन्त के अनन्तर जितनी घटियाँ सूर्योदय के पूर्व रहती हैं वह अवम शेष घटियाँ होती हैं। क्योंकि चान्द्रसावन का अन्तर अवम दिन होता है। यदि अवमशेष का त्याग न करके लब्ध अवमशेष घटियों को तिथियों में से कम करते हैं तो तिथ्यन्त के काल का अहर्गण प्राप्त होता है, लेकिन हमें अहर्गण सूर्योदय कालिक साधित करना होता है। अतः तिथ्यन्त काल के अहर्गण में अवमशेष घटी युक्त करने से उदय काल का अहर्गण प्राप्त होता है। लेकिन अवमशेष को पहले ही हम जोड़ चुके हैं, अतः यहाँ दुबार नहीं जोड़ कर उसको त्याग दिया जाता है।

इसको गणित क्रिया द्वारा व्यक्त करके बताते हैं। पूर्वप्राप्त तिथ्यन्त कालिक चान्द्र अहर्गण से अनुपात किया कि यदि युग चान्द्र दिन में युग अवम दिन प्राप्त होते हैं तो इष्ट चान्द्र दिन में क्या? प्राप्तफल–

$$\frac{\text{युग अवम} \times \text{इष्ट चांद्र दिन}}{\text{युग चांद्र दिन}} = \text{गत अवम} + \frac{\text{अवशेष}}{\text{यु.चां.}}$$

इसको इष्ट चान्द्र अहर्गण में से घटाने से तिथ्यन्त कालिक अहर्गण =

$$\text{इष्ट चांद्र अहर्गण} - \text{गत अवम} - \frac{\text{अवशेष}}{\text{यु.चां}}$$

इसमें इष्ट अवमशेष जोड़ने से सूर्योदय कालिक अहर्गण =

$$\text{इष्ट चांद्र अहर्गण} - \text{गत अवम} - \frac{\text{अवशेष}}{\text{यु.चां}} + \frac{\text{अवशेष}}{\text{यु.चां}}$$

= यु.चां.अ – गतावम = सूर्योदय कालिक अहर्गण।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"चैत्र सितादेरिन्दोर्वर्षादिर्भास्करस्य मेषादेः।
प्र-घ्नोऽब्दौघो यद्यपि चैत्राद्यातैर्युतः कृतो मासैः॥४४॥
सौरस्तथापि जातो मासौघो मध्यमार्कमासान्ते।
यस्मादधिमासाप्त्यै भास्करमासव्रजच्छेदः॥४५॥
रविमासान्तभवाः स्युस्ततोऽधिमासास्तग्रदिवसाश्च।
तैरधिमासाग्रभवैर्दिवसैर्हीनोऽर्कमासौघः॥४६॥
दर्शान्ते स भवेदिनमासव्रातस्त्वयं युक्तः।
अधिमासैः साग्रदिनैर्दर्शान्ते स्याच्छशाङ्कःमासगणः॥४७॥
तस्मादृणधनसाम्यादधिमासाग्रं परित्यक्तम्।
एतदभीष्टतिथौ वा ज्ञेयस्तत्रार्कवासराश्छेदः॥४८॥"
तिथयश्चान्द्रा दिवसा रव्युदया मेदिनीदिवसाः।
कल्पे बहवश्चान्द्रस्ततो लघीयान् क्वहाच्चान्द्रः॥५०॥
क्षितिदिन शशिदिन विवरं क्षयदिवसाः सयुस्ततस्तिथिविरापात्।
येन समयेन भास्करउदयं कुरुतेऽवमाग्रजः सभवेत॥५१॥
शशिदिवसास्त्रेराशिकतः स्यादवमादिकं यस्मात्।
तस्मात् साग्रैरवमै रहितस्तिथिसञ्चयो द्युगणः॥५२॥
तिथ्यन्तजोऽवमाग्रेण विना स्याद्भास्करोदयजः।
गततिथि सूर्योदययोरन्तरमवमाग्रकं यस्मात्॥५३॥
तस्मात् क्षयदिनसिद्धै युताः क्रियन्ते गतास्तिथयः।$\frac{१}{२}$।"

अथोदयान्तराख्यकर्मोपपत्तिमाह—

अहर्गणो मध्यमसावनेन कृतश्चलत्वात् स्फुटसावनस्य।
तदुत्थखेटा उदयान्तराख्यकर्मोद्भवेनोनयुताः फलेन॥१९॥
लङ्कोदये स्युर्न कृतास्तथाद्यैर्यतोऽन्तरं तच्चलमल्पकं च।

उदयान्तर कर्म की उपपत्ति—

सूर्य-प्रभा टीका— जो अहर्गण साधन किया जाता है वह मध्यम मानीय सावन अहर्गण होता है क्योंकि स्फुट सावन दिन चलायमान होते हैं। अतः उनको अनुपात विधि के द्वारा साधित (स्फुट) नहीं कर सकते। युगारंभ से वर्तमान वर्षादि के पूर्व तक जो अहर्गण के मध्यम सावन दिन हैं वे स्फुट

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सावन होते हैं। किंतु वर्तमान रवि वर्षादि के आगे के जितने सावन दिन हैं वे स्फुट नहीं होते। अतः मध्यम सावन अहर्गण से उत्पन्न (साधित) ग्रहों में मध्यम तथा स्पष्ट सावन दिनों के अन्तर से प्राप्त (साधित) ग्रहों की अल्प चाल ऊन युक्त करने से वे लङ्का पर सूर्योदय कालिक प्राप्त होते हैं। लङ्का पर सूर्य मध्यम सूर्योदय होता है।

(उदयान्त असु के मध्य में भी ग्रह की कुछ गति होती है। उस गति को भास्कराचार्य ने ग्रहण नहीं किया है। अतः भास्करोक्त उदयान्तर आनयन कितना शुद्ध है विद्वान् विचार करें।)

अथोदयान्तरकर्माह—

मध्यार्कभुक्ता असवो निरक्षे ये ये च मध्यार्ककलासमानाः॥२०॥
तदन्तरं यत् स्फुटमध्ययोस्तद्द्युपिण्डयोः स्याद्विवरं गतिघ्नम्।
हृतं द्युरात्रासुभिराप्तलिप्ताहीना ग्रहाश्चेदसवोऽल्पकाः स्युः॥२१॥
तदन्यथाढ्यास्तु निजोदयैश्चेत् भुक्तासुपूर्वं विहितं तदानीम्।
कृतं तथा स्याच्चरकर्ममिश्रं कर्म ग्रहाणामुदयान्तराख्यम्॥२२॥

उदयान्तर कर्म—

सूर्य-प्रभा टीका— सायन सूर्य के मेषादि से आरंभ राश्यादि के भुक्त असुओं के निरक्षोदय मानों १६७०, १७९५, १९३५ आदि का योग करके उनमें सूर्य की वर्तमान राशि के भुक्त अंशादि को उस राशि के उदयमानों से गुणा करके ३० से विभक्त करके प्राप्तफल को युक्त करने से मध्यम सूर्य के भुक्त असु होते हैं। नक्षत्र दिनान्त मान के पश्चात् इतने असु पश्चात् लङ्का में मध्यमसूर्योदय होता है और इसी सूर्योदय कालिक ग्रहों का साधन किया जाता है तथा अहर्गण आनयन के सिद्धान्त से साधित अहर्गण मध्यम सूर्य कला तुल्य असुकाल तक के नक्षत्र दिनान्त के आगे तक का होता है। अतः असु तथा कला मानों में जितना अन्तर होता है उतना सूर्योदय में अन्तर होता है। अतः इसको उदयान्तर काल कर्म कहते हैं।

इन उदयान्तर असुओं को ग्रह गति से गुणा करके सूर्य के सावन अहोरात्र असु २१६५९ से विभक्त करने से प्राप्त लब्धि कला को ग्रह में यदि कला से असु अल्प हो तो ऋण करे तथा अधिक हो तो धन करे। इस प्रकार करने से ग्रह निरक्ष देश में स्पष्ट होते हैं। यदि स्वदेश के लिए अर्थात् निरक्ष देश के अनन्तर किसी अन्य स्थान के ग्रह स्पष्ट करें तो वे स्वदेश के राशि उदयमानों

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वारा पूर्ववत करें तथा इस प्रकार क्रिया करने से प्राप्त ग्रह स्पष्ट चर कर्म युक्त ही प्राप्त होते हैं स्पष्ट सूर्य के लिए भुक्त असु, स्वयोदय असु लिए गये हैं तथा पूर्वोक्त कर्म किये गये हैं तो वह सूर्य (ग्रह) स्पष्ट उदयान्तर, भुजान्तर तथा चर कर्म तीनों कर्मों से युक्त होता है।

उदयान्तर कर्म जो यहाँ कहा गया है वह यदि नहीं किया जावे तो जितना उसका अन्तर एक पाद के मध्य में पड़ता है वह एक पाद अन्त (३ माह) में विपरीत अल्प होकर शून्य हो जाता है अर्थात् वर्ष के एक चरण अर्थात् ३ माह के अन्त में घटते-घटते शून्य हो जाता है। यह ३ माह (एक पाद) के मध्य तक बढ़कर परम हो जाता है तथा उसके पश्चात घटते हुए ३ माह (एक पाद) के अंत में पुनः शून्य हो जाता है। क्योंकि सूर्य एक माह में एक राशि चलता है अतः तीन माह में तीन उदित राशियों के उदय असुमानों का योग १६७०+ १७६५+१६३५=५४०० होता है तथा तीन राशियों की उदयकला ३×६०'×३०° = ५४०० होती है। अतः प्रत्येक पदान्त में उदयान्तर काल शून्य हो जाता है।

श्रीपति ने सि.शे. ग्रंथ में उदयान्तर कर्म को ही दृष्टि में रखकर सर्वप्रथम दृग्गणितैक्य के लिए चन्द्रमा में संस्कार विशेष करने के लिए कहा था। यह आचार्योक्त उदयान्तर संस्कार ही है। यथा–

"त्रिभविरहितचद्रोच्चेन भास्वद् भुजज्या
गगननृपविनिघ्नी भत्रयज्याविभक्ता।
भवति चर फलाख्यं तत् पृथक्स्थं शरघ्नं
हतमुडुपतिकर्ण त्रिज्यायोरन्तरेण॥१॥
परमफलमवाप्तं तद्धनर्णं पृथक्स्थे
तुहिनकिरणकर्णे त्रिज्यकोनाधिकेऽथ।
स्फुटदिनकर हीनादिन्दुतो या भुजज्या
स्फुट परमफलघ्नी भाजिता त्रिज्जया ऽऽप्तम्॥२॥
शशिनि चरफलाख्यं सूर्यहीनेन्दुगोलात्
तदृणमुत धनं चेन्दुच्चहीनार्क गोलम्।
यदि भवति हि साम्यं व्यस्तमेतद्विधेयं
स्फुट गणित दृगैक्यं कर्तुमिच्छभिरत्र॥३॥

मुञ्जालाचार्य ने लघुमानस में चंद्रमा में इसी प्रकार के संस्कार को कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"इन्दुच्चोनार्ककोटिघ्ना गत्यंशा विभवाविधोः।
गुणो व्यर्केन्दुदोः कोट्योरूप पञ्चाप्तयोः क्रमात्॥
फले शशाङ्कतद्गत्योर्लिप्ताद्ये स्वर्णयोवेधे।
ऋणं चन्द्रे धनं भुक्तो स्वर्णसाम्यवधेऽन्यथा॥"

म.म. सुधाकर द्विवेदी के अनुसार उदयान्तर भुजान्तर संस्कार से जो ग्रह स्पष्ट होते हैं वे वस्तुतः स्पष्ट ग्रह नहीं होते। यह विषय ब्र.गु. के नतकर्म के कहने से तथा नतकर्म साधन कारक भास्करोक्त लेख से ज्ञात होता है। आकास्थ ग्रहादि भूवायु गोल में परिणत होकर हम लोगों को स्पष्ट (प्रत्यक्षीभूत) होते हैं। इसलिए स्पष्टीकरण से जो स्पष्ट ग्रह आते हैं उनमें जितना संस्कार करने से भूवायु गोल परिणत स्पष्टग्रह हो उसी को नतकर्म कहना उचित है। ब्र.गु. से पूर्ववर्ति आचार्यों ने इस विषय में कुछ नहीं कहा। नतकर्म संस्कार की आवश्यकता शायद अधिक है।

इदानीं देशान्तरस्वरूपमाह—

येऽनेन लङ्कोदयकालिकास्ते देशान्तरेण स्वपुरोदये स्युः।
देशान्तरं प्रागपरं तथान्यद्याम्योत्तरं तच्चरसंज्ञमुक्तम्॥२३॥

देशान्तर का स्वरूप—

सूर्य-प्रभा टीका— इस प्रकार उदयान्तर कर्म के द्वारा जैसे ग्रह लंका में सूर्योदय कालिक होते हैं वैसे ही देशान्तर कर्म के द्वारा ग्रह स्वस्थान के क्षितिज पर सूर्योदय कालिक होते हैं। देशान्तर दो तरह का होता है एक पूर्वापर जिसको यहाँ देशान्तर कहा गया है तथा दूसरा याम्योत्तर होता है, यह चर संज्ञक है।

यत्र तावत् पूर्वापरमाह—

यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः।
आदौ प्रागुदयोऽपरत्रविषये पश्चाद्धि रेखोदयात्
स्यात् तस्मात् क्रियते तदन्तरभवं खेटेष्वृणं स्वं फलम्॥२४॥

इनमें से यहाँ पूर्वापर का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जो लंका, उज्जयनि के ऊपर से होते हुए कुरुक्षेत्रादि देशों को स्पर्श करता हुआ सूत्र मेरु स्थान तक जाता है, उसको भुव की मध्य रेखा कहते हैं। इस रेखास्थ देशों में सूर्योदयास्त से पूर्व दिशा में स्थित

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देशों में सूर्य का उदय तथा अस्त पहले होता है तथा पश्चिम में स्थित देशों में बाद में होता है। इनके सूर्योदयास्तों का काल उनके, मध्य रेखा से अन्तर योजन स्पष्ट भूवेष्ट के अनुपात द्वारा ज्ञात कर लेते हैं कि यदि स्फुट परिधि योजन में ६० घटियाँ प्राप्त होती हैं तो मध्य रेखा तथा स्वस्थान के मध्य योजन अन्तर में कितनी होगी? प्राप्तफल घटी अन्तर होता है। मध्यगति से चलते हुए ग्रह का इससे अनुपात करते हैं कि यदि ६० घटी में ग्रह की गतिकला प्राप्त होती है तो देशान्तर घटी में कितनी होगी? यह अनुपात अन्य प्रकार से योजन से भी कर सकते हैं कि यदि स्फुट परिधि योजन में ग्रह गतिकला प्राप्त होती है तो देशान्तर योजन में कितनी होगी? दोनों प्रकार से प्राप्त कला फल को ग्रह में, इष्ट स्थान पूर्व में हो तो ऋण तथा पश्चिम में हो तो धन कर देते हैं। इस प्रकार उस स्थान पर, मध्य रेखा पर सूर्योदय के पश्चात्, सूर्योदय कालिक ग्रह होते हैं।

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के प्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"रेखार्कोदयकालाद् प्राक्प्राच्यां दृश्यते यतः सूर्यः।
रेखार्कोदयतोऽसौ तस्माद्देशान्तरफलमृणमुक्तम्॥६१॥
रेखा पश्चिमतोऽर्क पश्चाद्दृश्यस्ततो धनं तत्र।
एवं सर्वखगानां देशान्तर संस्कृतिः कार्या॥६२॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के मध्यगतिवासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"पश्चात् पश्चादर्कः प्राक् प्राक् च यतोऽभ्युदेति रेखायाः।
तद्देशान्तरजातं तेन स्वमृणं ग्रहे क्रियते॥६॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"लंकासमयाम्योत्तररेखायां भास्करोदये मध्याः।
देशान्तरोनयुक्त रेखायाः प्रागपरदेशेषु॥३५॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"लेखा स्वपुरान्तर्योजनसंख्या श्रुतिस्तु लोकोक्ता।
तद्दोः कृतिविवरपदं कोटिदेशान्तरं प्रोक्तम्॥५॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देशान्तरगतिघातात्कुवृत्तलब्धं विशोध येत्पुरतः।
देयं कलादिपश्चाल्लेखाया मध्यमे द्युचरे॥६॥''

''प्राक् प्रागुदेति द्युमणिः कुमध्यात् पश्चाच्च पश्चात्फलमप्यतोऽस्मात्।
ग्रहेक्षयः स्वं क्रियतेऽत एव उक्तो ध्रुवक्षिप्तिरिहाद्यकालात्॥५॥ गोला.४॥''

इदानीं भूगोले स्फुटपरिधिप्रदेशं स्फुटतानुपातं चाह—

स्वदेशमेर्वन्तरयोजनैर्यल्लम्बांशजैर्मेरुगिरेः समन्तात्।
वृत्तं स्फुटो भूपरिधिर्यतः स्यात् त्रिज्याहतो लम्बगुणः कृतोऽस्मात्॥२५॥

भूगोल की स्फुट परिधि से स्वदेशीय स्फुट परिधि का अनुपात—

सूर्य-प्रभा टीका— स्वस्थान से मेरुगर्भ तक का अन्तर योजन लंबांश है और निरक्ष देश से स्वस्थान का अन्तर योजन अक्षांश होता है। मेरु से लंबांश योजन पर जो वृत्त बनता है व स्फुट भू परिधि है तथा मध्य परिधि निरक्षदेश पर बनने वाले वृत्त की परिधि है। इससे स्वस्थान की स्फुट परिधि कुछ न्यून होती है। उसका आनयन करते हैं। मध्य परिधि की त्रिज्या तुल्य व्यासार्ध है तथा उतने व्यासार्ध से स्वस्थान पर जितनी लंबज्या है उतनी स्फुट परिधि की व्यासार्ध है। इनसे त्रैराशिक किया कि यदि त्रिज्या तुल्य व्यासार्ध में मध्यम परिधि प्राप्त होती है तो लंबज्या में कितनी?

$$\text{प्राप्तफल} = \frac{\text{मध्यम परिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}} = \text{स्वदेशीय स्पष्ट भूपरिधि होती है।}$$

सूर्यसिद्धान्त के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

''लम्बज्याघ्नस्विजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः।
तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता॥६०॥
कलादि तत्फल प्राच्यां ग्रहेभ्यः परिशोधयेत्।
रेखाप्रतीचीसंस्थाने प्रक्षिपेत् स्युः स्वदेशजाः॥६१॥''

इति गोलभाष्ये मध्यगतिवासना

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के मध्यमगतिवासनाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ छेद्यकाधिकार

इदानीं गोलं विवक्षुरादौ ज्योत्पत्तिकथने कारणमाह—

पटो यथा तन्तुभिरूर्ध्वतिर्यग्यूपैर्निबद्धोऽत्र तथैव गोलः।
दोः कोटिजीवाभिरमुं प्रवक्तुं ज्योत्पत्तिमेव प्रथमं प्रवक्ष्ये॥१॥

गोल के लिए कुछ कहने से पूर्व सर्वप्रथम ज्योत्पत्ति के लए कहने का कारण—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस प्रकार से वस्त्र ऊर्ध्व तथा तिर्यक धागों के द्वारा बना हुआ होता है उसी प्रकार गोल भी ऊर्ध्वतिर्यक रूप कोटिज्या तथा ज्या की स्थिति के द्वारा ग्रहादियुक्त गोल के स्वरूप का प्रतिपादित करते हुए सर्वप्रथम आचार्य जीवा साधन के द्वारा ग्रहों की स्थिति को सिद्ध करने के लिए स्पष्टीकरणवासनात्मक गोलाधारित शोधन सूक्ष्म में कह रहे हैं। बिना तन्तुस्वरूप के ज्ञान के वस्त्र के स्वरूप का ज्ञान तथा बिना ज्या स्वरूप के ज्ञान के गोल का ज्ञान नहीं हो सकता, अतः आचार्य सर्वप्रथम ज्योत्पत्ति के लिए कह रहे हैं।

इदानीं जीवाक्षेत्रसंस्थानं तावदाह—

इष्टा त्रिज्या सा श्रुतिर्दोर्भुजज्या कोटिज्या तद्वर्गविश्लेषमूलम्।
दोः कोट्यंशानां क्रमज्ये पृथक् ते त्रिज्याशुद्धे कोटिदोरुत्क्रमज्ये॥२॥
ज्याचापमध्ये खलु बाणरूपा स्यादुत्क्रमज्या त्रिभमौर्विकायाः।
वर्गार्धमूलं शरवेदभागजीवा ततः कोटिगुणोऽपि तावान्॥३॥
त्रिभज्यकार्धं खगुणांशजीवा तत्कोटिजीवा खरसांशकानाम्।
क्रमोत्क्रमज्याकृतियोगमूलाद्दलं तदर्धांशकशिञ्जिनी स्यात्॥४॥
त्रिज्योत्क्रमज्यानिहतेर्दलस्य मूलं तदर्धांशकशिञ्जिनी वा।
तस्याः पुनस्तद्दलभागकानां कोटेश्च कोट्यंशदलस्य चैवम्॥५॥
एवं त्रिषट्सूर्यजिनादिसंख्या अभीष्टजीवाः सुधिया विधेयाः।
त्रिज्योत्थवृत्ते भगणाङ्किते वा ग्राह्या अभीष्टा विगणय्य जीवाः॥६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीवा का क्षेत्र संस्थापन—

सूर्य-प्रभा टीका— वृत्त की इष्ट त्रिज्या कर्ण तथा ज्या भुज होती है। इनके वर्गों के अन्तर का मूल कोटिज्या होती है। जीवा तथा कोटि के अंशों की क्रमज्या अर्थात् ज्या को पृथक्-पृथक् त्रिज्या में से घटाने से क्रमशः कोटि तथा ज्या की उत्क्रमज्या होती है।

ज्या तथा चाप के मध्य जो बाणरूप भाग होता है व उत्क्रमज्या होती है। त्रिज्या के वर्ग के आधे का मूल ४५ अंश की ज्या होती है और इतना ही ४५° की कोटिज्या का मान होता है। त्रिज्या के आधे के तुल्य ३० अंश की ज्या का मान होता है और इतना ही ३० अंश की कोटि ६०° की ज्या का मान होता है। अर्थात् कोटि ज्या ६०° = $\frac{\text{त्रिज्या}}{२}$ होता है।

ज्या तथा उत्क्रमज्या के वर्गों के योग के मूल का आधा उसके आधे अंशों की ज्या होती है। त्रिज्या तथा उत्क्रमज्या के गुणा के आधे का मूल उसके आधे आधे अंशो की ज्या होती है। इससे उनके आधे अंशों की और कोटि ज्या से कोटि के अंशों के आधे की ज्या होती है। इस प्रकार २४ वीं के आधे ४५° की १२ वीं, इसके आधे अंश २२°३०' की छठी तथा इसके आधे अंश ११°१५' की तृतीय संख्यक ज्याओं के मान ज्ञात कर सकते हैं और इनकी कोटि अंश से कोटि अंश के आधे की ज्या ज्ञात कर सकते हैं। इस प्रकार त्रिज्या मान से उत्पन्न वृत्त जिस पर चक्र अंश अर्थात् ३६०° अंकित हो के द्वारा अभीष्ट संख्यक जीवट का मान ज्ञात कर सकते हैं।

उपपत्ति— आचार्योक्त बात को चित्र द्वारा व्यक्त करते हैं। इष्ट व्यास का एक ३६० अंश अंकित करके अ ब स द वृत्त बनावें। इस का चौथाई-चौथाई प्रत्येक भाग ९० अंश का होता है। इसका एक ऐसा चौथाई भाग अ ज द के लिया। के इस वृत्त का केंद्र है। माना अभीष्ट अंश θ है जिसकी ज्या का मान ज्ञात करना है अतः वृत्त पर कोण ज के प = θ लिया तथा ज से व्यास रेखा ब के द पर लंब ल ज डाला इसी प्रकार दूसरी लम्ब रेखा अ प के स पर ज से लंब ज प डाला।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

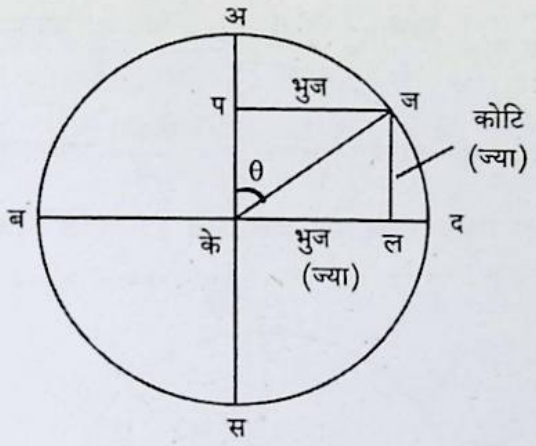

इस प्रकार समकोण त्रिभुज ज ल के में प ज = के ल =भुज, ज ल = प के = कोटि तथा के ज =त्रिज्या =कर्ण है। अभीष्ट चाप अ ज का कोटि चाप ज द है। अभीष्ट चाप अ ज की ज्या =पज=के ल है तथा कोटि चाप ज द की ज्या = ज ल= प के है। यह अभीष्ट चाप की ज्या तथा कोटिज्या समकोण त्रिभुज ज ल के तथा ज प के की भुज तथा कोटि है तथा त्रिज्या कर्ण है। अतः समकोण त्रिभुज में भुज^{२}+कोटि^{२} = कर्ण^{२} अतः चित्र द्वारा भुजज्या^{२} + कोटिज्या^{२} = त्रिज्या^{२}

चित्र में त्रिज्या अ के – कोटि प के = अ प बाण रूप है। यह भुज ज्या की उत्क्रमज्या कहलाती है। इसी प्रकार ल द= के द – के ल = कोटि उत्क्रमज्या है।

माना कि अभीष्ट वृत्त में ३० अंश का चाप क द है जिसकी ज्या = क ल का मान ज्ञात करना है। त्रिभुज क के ल तथा के ल व तुल्य हैं अतः रेखागणित द्वारा क ल = ल व = ज माना। अतः क के = २ ज।

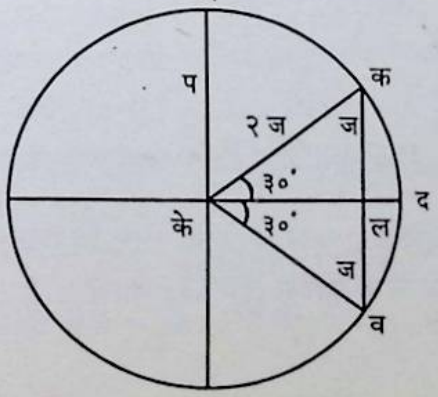

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{अतः क ल} = \frac{\text{क के}}{२} = \frac{\text{क व}}{२} = \frac{९०^\circ \text{ की ज्या का मान}}{२}$$

$$\text{अतः } ३०^\circ \text{ की ज्या} = \frac{२ \text{ ज}}{२} = \text{ज} = \frac{\text{त्रिज्या}}{२} \text{ उपपन्न हुआ।}$$

इसी प्रकार ४५° की ज्या का मान ज्ञात करते हैं। अगले चित्र द्वारा–

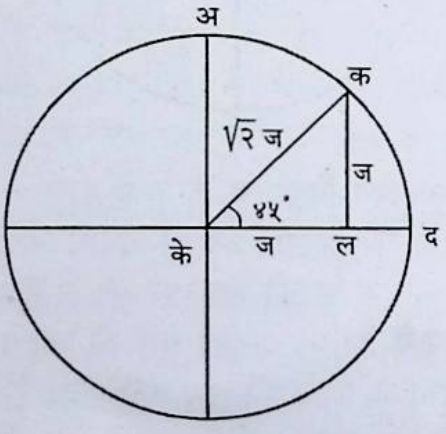

$$\text{क के} = \sqrt{\text{क ल}^२ + \text{के ल}^२} = \sqrt{\text{ज}^२ + \text{ज}^२} = \sqrt{२}\text{ज}$$

चाप क द = ४५° की ज्या = क ल = ज

$$= \frac{\sqrt{२}\,\text{ज}}{\sqrt{२}} = \frac{\text{क के}}{\sqrt{२}}$$

$$\text{ज्या } ४५^\circ = \frac{९०^\circ \text{ की ज्या}}{\sqrt{२}}$$

$$(\text{ज्या } ४५^\circ)^२ = \frac{(\text{ज्या } ९०^\circ)^२}{२}$$

$$\text{अतः ज्या } ४५^\circ = \sqrt{\frac{(\text{ज्या } ९०^\circ)^२}{२}} \text{ उपपन्न हुआ।}$$

इसी प्रकार ६०° की ज्या ज्ञान करने के लिए चित्रानुसार यदि म क = ज = ज्या ३०° है तथा म के = कोज्या ३०° है; क के = २ ज होता। उपरोक्त की भांति।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

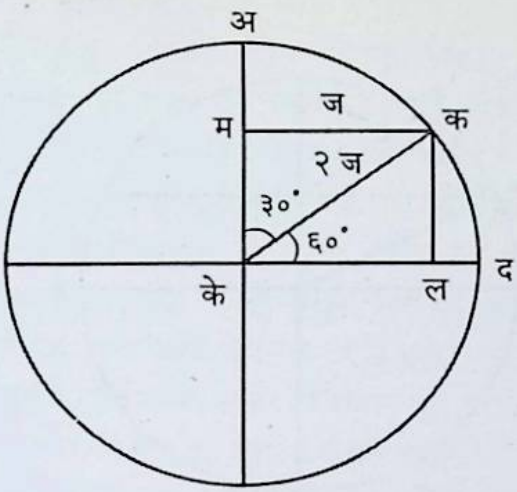

अतः क ल = $\sqrt{\text{क के}^२ - \text{के ल}^२}$

क ल = ज्या ६०° = म के = $\sqrt{(\text{त्रिज्या})^२ - (\text{ज्या ३०°})^२}$

= $\sqrt{(\text{कोटिज्या ३०°})^२}$ = कोज्या ३०°

अथवा चित्र द्वारा क ल = ज्या ६०° = म के = कोज्या ३०° है। उपपन्न हुआ।

किसी वृत्त में समषड भुज स्थित हो तो उसकी एक भुजा के तुल्य उस वृत्त का व्यासार्ध होता है। इस प्रकार बनने वाले समषडभुज की प्रत्येक भुजा के द्वारा वृत्त केंद्र पर ६०° का कोण बनता है। अतः उस ६०° के आधे की ज्या का मान इसकी एक भुजा का आधा है जो वृत्त के व्यासार्ध अर्थात् त्रिज्या के तुल्य होती है।

इसके लिए श्रीपति ने भी सि.शे. के अध्याय १६ में कहा है। यथा–

"क्षेत्रे षडस्रे हृदयाख्यरज्जुर्बाहोः गोलविदो वदन्ति।
वृत्ते परीणाहषडंशजीवा विष्कम्भखण्डेन समोपलब्धे॥११॥"

भुजांश के आधे की ज्या का मान साधन करते हैं। चित्र में अ क म कोई भुजांश है। इसकी ज्या भु = अ च तथा उत्क्रमज्या भुज = च म है।

अतः समकोण त्रिभुज अ च म में—

अच^२ + चम^२ = अ म^२ = क्रमज्या^{२} + उ.क्र.ज्या^{२} = अ म^२

या $\sqrt{\text{अ च}^२ + \text{च म}^२}$ = अम = २ अन = २ नम या $\frac{\text{अ म}}{२}$ = अन = नम

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

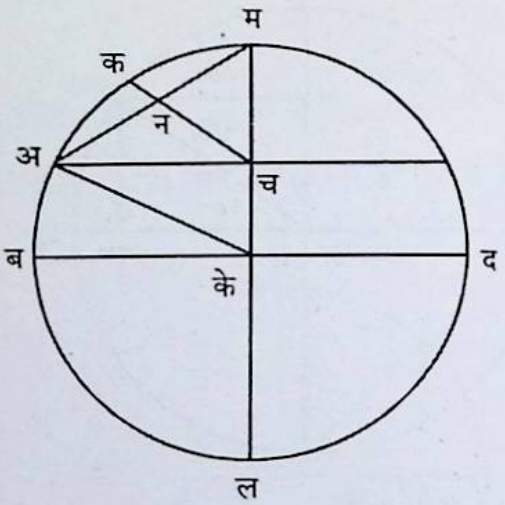

माना न अम का मध्य बिन्दु है।

अतः अ म $\frac{१}{२}$ = अ क

अतः ज्या अ क = $\frac{१}{२}$ अ म = $\frac{\sqrt{\text{क्रमज्या}^२ + \text{उ.क्र.ज्या}^२}}{२}$ उपपन्न हुआ।

उपरोक्त चित्र में ही क्योंकि मच × चल = अ च^२ रेखागणित प्रमेय से।

अतः म च (त्रि − मच) = अच^२

या मच × त्रि − मच^२ = अ च^२

या म च × त्रि = अ च^२ + म च^२

या म च × त्रि = अम^२

अ च म समकोण त्रिभुज है।

या $\frac{\sqrt{\text{उ.क्र.} \times \text{त्रिज्या}}}{२}$ = $\frac{\text{भुज}}{२}$ = $\frac{\text{अम}}{२}$ = अ न = न म उपरोक्त द्वारा।

अ न = अर्धांश कीज्या = $\frac{\text{भुज}}{२}$ = $\frac{\sqrt{\text{उ.क्र.} \times \text{त्रिज्या}}}{२}$ उपपन्न हुआ।

इस सूत्र द्वारा आचार्योक्त प्रकार से ८ वीं से आधी अंश की ४ थी, इससे आधे अंश की दूसरी ज्ञात कर सकते हैं। इसी प्रकार २० वीं से १० वीं, १० वीं से ५ वीं ज्ञात कर सकते हैं। इत्यादि।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं स्पष्टीकरणे फलस्योत्पत्तिमाह—

भूमेर्मध्ये खलु भवलयस्यापि मध्यं यतः स्याद्-
यस्मिन् वृत्ते भ्रमति खचरो नास्य मध्यं कुमध्ये।
भूस्थो द्रष्टा नहि भवलये मध्यतुल्यं प्रपश्येत्
तस्मात् तज्ज्ञैः क्रियत इह तद्दोः फलं मध्यखेटे॥७॥

फल की उत्पत्ति का स्पष्टीकरण—

सूर्य-प्रभा टीका— भूमध्य (केन्द्र) भचक्र गोल का तो केंद्र है लेकिन जिस वृत्ताकार कक्षा में ग्रह भ्रमण करते हैं उसका केन्द्र भूकेंद्र नहीं होता। अर्थात् ग्रह अपनी कक्षा में भ्रमण करते समय भूकेंद्र से समान दूरी पर नहीं रहते। इस कारण से भूस्थ दृष्टा भचक्र में ग्रह को उसके मध्यम स्थान पर नहीं देख पाते किन्तु वे अन्यत्र दिखाई देते हैं। इस प्रकार दिखाई देने से उसका अन्तर होता है अर्थात् जितने अन्तर पर वह ग्रह दिखाई देता है वह उस ग्रह का भुजफल कहा जाता है। अतः इस भुजफल को ज्ञात करके मध्यग्रह में संस्कार करते हैं तब वह ग्रह गणितागत स्पष्ट स्थान पर दिखाई देता है।

एवमेकेनैव श्लोकेन संक्षेपाच्छेद्यकसर्वस्वमुक्त्वेदानीं किंचित् सविस्तरं छात्रान् प्रत्याह—

पूर्वापरायतायां तद्भित्तावुत्तरपार्श्वके।
दर्शयेच्छिष्यबोधार्थं लिखित्वा छेद्यकं सुधीः॥८॥

इस प्रकार एक श्लोक में संक्षेप में आचार्य ने सब कुछ कह दिया है। अतः उसको किंचित विस्तृत रूप में छात्रों को बताये जाने के लिए—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वापर गत किसी समतल दीवार पर किसी योग्य आचार्य के द्वारा उसके उत्तर तथा पीछे (दक्षिण दिशा) की ओर समतल भाग पर छेद्यक लिखकर छात्रों को समझाया जाना चाहिये।

इदानीं कालविलम्बेन प्रतारणपरं वाक्यमिति ज्ञात्वा शिष्यैः पुनः पृष्टः सन्नाह—

दिव्यं ज्ञानमतीन्द्रियं यदृषिभिर्ब्राह्मं वसिष्ठादिभिः
पारंपर्यवशाद्रहस्यमवनीं नीतं प्रकाश्यं ततः।
नैतद्द्वेषिकृतघ्नदुर्जनदुराचाराचिरावासिनां
स्यादाहुः सुकृतक्षयो मुनिकृतां सीमामिमामुज्झतः॥९॥

सूर्य-प्रभा टीका— बहुत काल तक शिष्य की सभी प्रकार से परीक्षा करके सुशिष्य को जान कर उसको अंत में इस (शास्त्र) के ज्ञान

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से सम्पन्न करे— यह दिव्य ज्ञान अतीन्द्रिय है अर्थात् इसको इन्द्रियों के द्वारा नहीं जाना जा सकता। ऋषिमुनियों, ब्रह्मा, वसिष्ठ आदि ने अपनी परम्परा द्वारा इसके रहस्य को भली भांति व्यवहार किया तथा जाना और प्रकाशित किया है। अतः इसके ज्ञान को किसी द्वेषि, कृतघ्न, दुर्जन, दुराचारी तथा अधिक काल तक गुरुकुल में रहने वाले को नहीं दिया जाना चाहिये। वे इसको जानने के योग्य नहीं होते। ऐसे लोगों को इस का ज्ञान देने से सुकृतों का क्षय होता है। मुनिकृत नियम सीमाओं का उल्लंघन उचित नहीं होता है।

विशेष— श्रीपति ने सि.शे. के अध्याय २० में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"भक्ताय शिष्याय चिरोषिताय गुणोपपन्नाय च देयमेतत्।
भ्रात्रे च मित्राय च सूनवे च सुदुर्लभं छेद्यकगोलतन्त्रम्॥२७॥
प्रतिकश्चुककृत्कृतघ्नविद्द्विड्वपिताधार्मिकमूर्खदुर्जनेभ्यः।
इह तन्त्ररहस्यमप्रमेयं ददतः स्यात् सुकृतायुषोः प्रणाशः॥२६॥"

इदानीं विलिख्य छेद्यकमाह—

त्रिभज्यकासंमितकर्कटेन कक्षाख्यवृत्तं प्रथमं विलिख्य।
तन्मध्यतो मध्यमखेटभुक्तितिथ्यंशमानेन महीं सुवृत्ताम्॥१०॥
कक्षाख्यवृत्ते भगणाङ्कितेऽत्र दत्त्वोच्चखेटौ क्रियतोऽथ रेखा।
कुमध्यतुङ्गोपरिगा विधेया तिर्यक् ततोऽन्या सुधिया कुमध्ये॥११॥
उच्चोन्मुखीमन्त्यफलज्यकां च दत्त्वा कुमध्याद्विलिखेत् तदग्रे।
त्रिभज्ययैव प्रतिमण्डलाख्यं सैवोच्चरेखा त्वपरात्र तिर्यक्॥१२॥
तुङ्गोर्ध्वरेखा खलु यत्र लग्ना तत्रोच्चमस्मिन् प्रतिमण्डलेऽपि।
ततो विलोमं खलु तुङ्गभागैर्मेषादिरस्मात् खचरोऽनुलोमम्॥१३॥
देयस्तदुच्चान्तरमत्र केन्द्रं दोर्ज्योच्चरेखाखगयोश्च मध्ये।
तिर्यक्स्थरेखाखगयोस्तु कोटिः सोर्ध्वाधरा बाहुगुणस्तु तिर्यक्॥१४॥

छेद्यक को लिखकर बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या तुल्य व्यासार्ध का कर्कटक की सहायता से सर्व प्रथम इष्ट छेद्यक ग्रह का एक कक्षा वृत्त बनावें और इसके मध्य में ग्रह की मध्यम गति के पन्द्रहवें अंश तुल्य दूरी पर उक्त वृत्त के केन्द्र से एक बिन्दु लेकर उस पर एक (छोटा सा) वृत्त बनावे, यह भूमि संज्ञक वृत्त है। लम्बन तथा नति दर्शन के लिए यही भूमि है तथा अन्य सभी के लिए वह बिन्दु रूप

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही भूमि है। उस कक्षा वृत्त में ३६० अंश अंकित करे तथा इसमें ग्रह के अभीष्ट स्थान और मेष राशि के आरम्भ बिंदु मानकर मध्यम ग्रह के उच्च स्थान पर चिन्ह लगावें। भू बिन्दु से ग्रह के उच्च बिंदु तक एक रेखा खेंचे यह उच्च रेखा है। इस भूमध्य उच्च रेखा पर दोनों और मत्स्य बिन्दु द्वारा एक अन्य तिर्यक् (लंबवत्) रेखा भूमध्य से खेंचे। ग्रह की अन्त्यफलज्या तुल्य भूमध्य बिंदु से उच्च रेखा पर एक बिंदु लेकर उस पर त्रिज्यातुल्य अर्धव्यास कर कर्कटक की सहायता से एक वृत्त बनावे, यह प्रतिमण्डल वृत्त हैं। इस पर भी उच्च रेखा को आगे बढ़ाकर मिलावे तथा इस पर भी प्रति वृ.केंद्र से पूर्व की भांति लंबवत रेखा खेंचे। प्रतिमण्डल में भी ३६० अंश के निशान लगावे। इस वृत्त में जहाँ उच्च रेखा स्पर्श करती है वहाँ प्रतिमण्डल का उच्च बिन्दु कल्पि करे। इससे उच्च राशि के अंश तुल्य विलोम अर्थात पीछे की ओर मेष का आरंभ बिन्दु कल्पित करे तथा ग्रह का स्थान भी इसी अनुलोम भाग में मेषारंभ से चिन्हित करे। यहाँ इस प्रकार ग्रह तथा उच्च स्थानों का अन्तर केन्द्र संज्ञक है। उच्च रेखा से ग्रह तक लम्बवत रेखा ज्या संज्ञक हैं। प्रतिमण्डल के मध्य में इस लंबवत रेखा तथा ग्रह का अन्तर कोटिज्या है। यह ऊर्ध्वरेखा होती है यह बाहु अर्थाज ज्या (भुज) के लंबवत होती है।

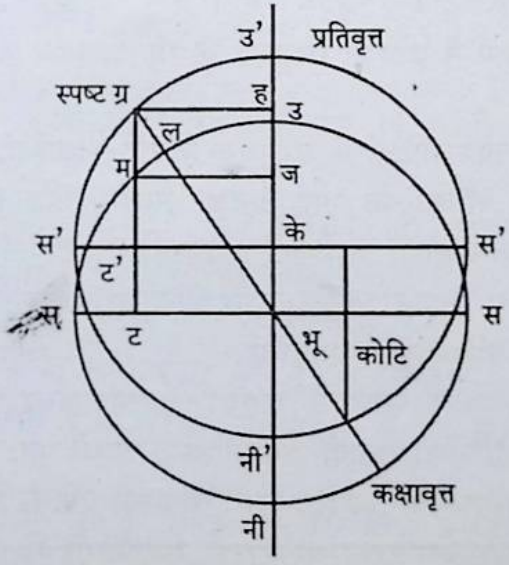

चित्र में प्रतिमण्डल वृत्त का केन्द्र के तथा कक्षा वृत्त का केंद्र भू है। म कक्षा वृत में स्थित मध्यम ग्रह है। म ज रेखा के उ उ' उच्च रेखा पर लम्ब

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रूप है यह ज्या है तथा प्रतिवृत्तस्थ ग्रह ग्र की इस लम्ब रूप रेखा से ऊर्ध्वाधर दूरी ज ह=अं.फ. ज्या है। ग्र ह रेखा उच्च रेखा पर लम्ब है। कोण म भू उ उ' ग्रह का केन्द्र संज्ञक है। सस तथा स' स' रेखायें उच्च रेखा के लम्बवत रेखायें हैं। के भू=ट ट' अन्त्यफलज्या है। उ तथा उ' कक्षावृत्त तथा प्रतिमण्डल वृत्त के क्रमशः उच्च स्थान हैं। ट ग्र = कोटि है।

लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय १४ छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

निजकक्षावृत्तं यत्तस्माद् व्यासार्धमण्डलं विलिखेत्।
तद् द्वादशराश्यङ्कयं तस्योर्वी मध्यतः कल्प्या॥७॥
द्युचरस्यान्त्यफलज्यासमानमपि वर्धितं नयेत् सूत्रम्।
भूमध्यात् स्वाभिमुखं त्रिभज्यया केन्द्रवृत्तमत्र लिखेत्॥८॥
परमफलजीवया स्वोच्चनीचवृत्तं लिखेत् स्वकक्षाग्रे।
स्वोच्चसमानो मध्यो यदा तदोच्चे ग्रहस्थानम्॥९॥
भवति सदा बाहुज्या ग्रहनीचोच्चरेखान्तः॥१८॥

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त के स्फुटगति वासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कक्षा मण्डलमध्यं भूमध्ये मध्यमः स्वकक्षायाम्॥२३$\frac{१}{२}$॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के गो. छेद्यकम् में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"गृहभागकलाङ्कितां हि स्वांकक्ष्यां व्यासदलादथालिखेत्।
द्युसदां परिकल्पयेत क्षमां तन्मध्ये नृमुखोद्धृतिक्षमाम्॥१॥
खचरान्त्यफलस्य शिञ्जिनीं भूकेन्द्रान्निजतुङ्गगामिनीम्।
प्रवितत्य तदग्रकादलं कक्ष्यामण्डलमालिखेत स्वकम्॥२॥"

इदानीं फलानयन इतिकर्तव्यतोपपत्तिमाह—

मद्यस्थरेखे किल वृत्तयोर्ये तदन्तरालेऽन्त्यफलस्य जीवा।
तदूर्ध्वतः कोटिगुणो मृगादौ कर्क्यादिकेन्द्रे तदधो यतः स्यात्॥१५॥
अतस्तदैक्यान्तरमत्र कोटिर्दोर्ज्या भुजस्तत्कृतियोगमूलम्।
कर्णः कुमध्यप्रतिमण्डलस्थखेटान्तरे स्पष्टखगो हि दृश्यः॥१६॥
कक्षाख्यवृत्ते श्रुतिसूत्रसक्ते फलं च मध्यस्फुटखेटमध्ये।
मध्येऽग्रगे स्पष्टखगादृणं तत्पृष्ठस्थिते स्वं क्रियते ततश्च॥१७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्य-प्रभा टीका— इन कक्षावृत्त तथा प्रतिवृत्त के मध्यस्थ जो आड़ी रेखायें हैं उनका सर्वत्र अन्तर अन्त्यफलज्या तुल्य होता है। अन्त्यफलज्या के अग्रबिन्दु के ऊपर की ओर प्रतिवृत्त में जो कोटिज्या है वह मकरारंभ केन्द्र पर होती है और कर्क्यादि केंद्र पर अधःगत होती है। अतः कोटिज्या में अन्त्यफलज्या का योग-वियोग करने से ग्रह कक्षा मध्यगत तिर्यग (खडी) रेखा कोटि होती है। कोटि के तल तथा भूमध्य का अन्तर ज्या है वह भुज है। इस भुज तथा कोटि के वर्गों के योग का मूल कर्ण होता है। ग्रह तथा भूमध्य के अन्तर सूत्र को कर्ण कहते हैं। यह सूत्र कक्षा मंडल में जहाँ लगता है वहाँ स्फुट ग्रह होता है। स्फुट और मध्य ग्रह का अन्तर फल संज्ञक होता है। भूमध्य तथा प्रतिमण्डलस्थ ग्रह अन्तर पर ही स्पष्ट ग्रह कक्षा वृत्त में दिखता है। मध्यम ग्रह से स्पष्ट ग्रह आगे रहने से फल को मध्यम ग्रह में धन तथा पीछे रहने पर फल को ऋण करते हैं। इस प्रकार मन्दफल ग्रह मन्दस्फुट तथा शीघ्रफल से स्फुट ग्रह प्राप्त होता है।

पूर्व श्लोक के चित्र में ग्रह = मज = केंद्रज्या।

भू ग्र = कर्ण। म ट = कोटिज्या = भू ज। म ल = फल संज्ञक है।

श्लोक १० से १७ तक की व्याख्या के लिए गणिताध्याय के स्पष्टाधिकार के श्लोक २७ से २९ की व्याख्या देखें। ये दोनों श्लोक पुञ्ज एक ही हैं।

विशेष— श्रीपति ने सि.शे. के अध्याय १६ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ग्रहपरफलमौर्व्या दत्तयोर्ध्वे कुमध्यात् प्रतिवलयमिदं स्याद्व्यासखंडेन वृत्तम्।
भवति हि निजकक्षामण्डलाग्रे यदन्यत् परफलगुणवृत्तं स्वोच्चनीचाख्यमेतत्॥२॥"
ऊनाधिकं पश्यति मध्य माच्च स्फुटं नरस्तद्विवरं फलं हि।
ऋणंधनं च क्रियतेऽत एव मध्यग्रहे स्पष्टबुभुत्सुभिस्तत्॥"

लल्लाचार्य ने शिष्याधी. वृ. ग्रंथ के अ १४ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्पष्टं पश्यति यस्मात् मध्यादूनाधिकं नरस्तस्मात्।
विवरं तयोः फलमृणं धनं च मध्यग्रहे क्रियते॥१५॥"
कोटिफलमुपरि यस्माद् वान्त्ये प्रथमे पदे भवेत् त्रिगुणात्।
मध्यमयोश्च यतोऽधस्ततो युतिर्वान्तरं कोटिः॥१७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूग्रहमध्ये कर्णः स्वकर्णमध्यग्रहान्तरे च फलम्।
भवति सदा बाहुज्या ग्रहनीचोच्चरेखान्तः॥१८॥

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु. सि. के स्फुटगतिवासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"कोटिफलं व्यासार्धात् पदयोराद्यन्तयोर्भवत्युपरि।
द्वितृतीययोर्यतोऽधस्तद्युक्तोनं ततः कोटिः॥२७॥
अनुलोमं मध्यसमं भूस्थः पश्यति यतो न कक्षायाम्।
स्पष्टं तन्मध्यान्तरमृणं धनं वा ग्रहे मध्ये॥२६॥"

आर्यभट ने आर्यभटीय के काल क्रियापाद में आचार्योक्त कहा है।

"कक्ष्याप्रतिमण्डलगा भ्रमन्ति सर्वे ग्रहास्स्वचारेण।१६$\frac{१}{२}$।
कक्ष्यामण्डलतुल्यं स्वं-स्वं प्रतिमण्डलं भवत्येषां।
प्रतिमण्डलस्य मध्यं घनभूमध्यादतिक्रान्तं॥१८॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"त्रिज्यकायां पदैस्तत् फलमथखलु कोटेः कोटिसिद्धयै विधेयम्।
कोटिबाहु फल्वर्ग समासाद्यत्पदं तदिह कर्णमवेहि।
नीचोच्चसंज्ञकवलयस्य च विस्तारार्ध कोटिज्यका ऽन्त्यफलजेन गुणेन कार्या।
युक्तो हीन सहिता च पदक्रमेणेति.....॥"

सूर्यसिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"शीघ्रं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम्।
संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्क्यादौ कोटिजं फलम्॥४०॥
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः।$\frac{१}{२}$।"

ब्र.गु. ने ब्र. स्फु. के स्फुटगत्य उत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अन्त्यफलज्याग्रात् स्यात् पदयोराद्यन्तयोरुपरि कोटिः।
द्वितृतीययोरधस्तात् तदन्तरैक्यं ततः कोटिः॥१३॥"

इदानीं मन्दस्फुटं मध्यमं प्रकल्प्य शीघ्रफलं यत् साध्यते तदुपपत्तिमाह—

मध्यो हि मन्दप्रतिमण्डले स्वे मन्दस्फुटो द्राक्प्रतिमण्डले च।
भ्रमत्यतश्चञ्चलकर्मणीह मन्दस्फुटो मध्यखगः प्रकल्प्यः॥१८॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्दस्फुट ग्रह को मध्यम ग्रह मान कर शीघ्र फल साधन की उपपत्ति—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यमग्रह अपने प्रतिमण्डल वृत्त में तथा मन्दस्फुट ग्रह अपने शीघ्रपतिमण्डल में भ्रमण करता है।

पूर्वप्राप्त मन्दस्फुट ग्रह में, उसको मध्यम ग्रह मान कर, पूर्वोक्त मंद कर्म प्रकार से शीघ्रकर्म का संस्कार करे।

इदानीमुच्चोपपत्तिमाह—

भ्रमन् ग्रहः स्वे प्रतिमण्डले नृभिः स यत्र कक्षावलये विलोक्यते।
स्फुटो हि तत्रास्य फलोपपत्तये प्रकल्पितं तुङ्गमिहाद्यसूरिभिः॥१९॥
यः स्यात् प्रदेशः प्रतिमण्डलस्य दूरे, भुवस्तस्य कृतोच्चसंज्ञा।
सोऽपि प्रदेशश्चलतीति तस्मात् प्रकल्पिता तुङ्गगतिर्गतिज्ञैः॥२०॥
उच्चाद्भषट्कान्तरितं च नीचं मध्यः स्वनीचोच्चसमो यदा स्यात्।
कक्षास्थमध्योपरि कर्णसूत्रपातात् स्फुटो मध्यसमस्तदानीम्॥२१॥

सूर्य-प्रभा टीका— अपने प्रतिवृत्त में भ्रमणशीलग्रह को मनुष्य उसके कक्षावृत्त में जहाँ देखता है वह स्फुट होता है। वहाँ फल की उत्पत्ति होने से पूर्वाचार्यों ने एक ग्रह-उच्च स्थान की कल्पना की है। यह ग्रहप्रतिमण्डल में पृथ्वी से बहुत दूर एक स्थान माना है जिसकी उच्च संज्ञा कही गई है। यह उच्चं स्थान भी चलायमान है अतः इसको चलायमान मानकर इस उच्च स्थान की गति ज्ञात की गई है। इस उच्च स्थान से छः राशि अन्तर पर नीच स्थान होता है। मध्यग्रह के स्व नीच-उच्च बिन्दुओं पर मध्य ग्रह तथा स्पष्ट ग्रह समान होते हैं और कक्षा के मध्य में कर्णसूत्र पतित स्थान पर मध्यम ग्रह से स्फुट ग्रह प्राप्त होता है।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"मध्यः स्वकक्षा परिधौ स्फुटस्तु स्वकेंद्रवृत्ते भ्रमतिद्युचरी।
द्रष्टा स्फुटं पश्यति मध्यतुल्यं भान्तस्थिते भार्धगते च केन्द्रे।
यस्मादभावोऽत्र फलस्य तस्मात भवेद् ग्रहस्योर्ध्वमधः स्थितस्य॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के अध्याय १४ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"कक्षावृत्ते मध्यः स्वकेन्द्रवृत्ते ग्रहः स्पष्टः॥१२॥
मध्यतुल्यं स्पष्टं भान्तगते भार्धगेऽपि वा केन्द्रे।
द्रष्टा पश्यति यस्मात् मध्यस्यातः फलाभावः॥१४॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के स्फुटगति वासना में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रतिपादनार्थमृच्चं प्रकल्पितं ग्रहगतेस्तथा पातः।
भुक्तेरुनाधिकता मानस्य च भवति कर्णवशात्॥३०॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. छेद्यकम् में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यमैव भवति स्फुट भुक्तिः खेचरे वलयसङ्गमुपेते।
मध्यमः स्फुटसमः परमोच्चे मन्दनीय नीकटत्वमुपेते॥७॥"

इदानीमन्यदाह—

उच्चस्थितो व्योमचरः सुदूरे नीचस्थितः स्यान्निकटे धरित्र्याः।
अतोऽणुबिम्बः पृथुलश्च भाति भानोस्तथासन्नसुदूरवर्ती॥२२॥

अन्य बात—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह उच्च स्थान पर स्थित होने के कारण भूमि से अति दूर स्थित होता है अतः उसका बिंब भूमि पर स्थित मनुष्यों को लघु दिखाई देता है तथा नीच स्थान पर स्थित होने के कारण ग्रह भूमि के अति निकट स्थित होता है अतः उसका बिंब मनुष्यों को वृहद दिखाई देता है। इसी प्रकार सूर्य बिंब भी पृथ्वी के समीप तथा दूरवर्ति रहने पर वृहद तथा लघु दिखाई देता है।

विशेष— **लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ** के अध्याय १४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अत एव द्युचरणामगुता भवति क्रमान्महत्वं वा।
सवितुश्चासन्नानां दूरगतानां क्रमेणैव॥११॥
स्वोच्चात् षड्भाभ्यधिको यदा तदा भवति स्वनीचस्थः।
दूरेणोच्चग उर्व्याः कर्णवशान्नोच्चगो निकटे॥१०॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के गोलाध्याय के छेद्यकाध्याय २ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"धाम्नि स्वतुङ्गसदृशो द्युचरो यदोच्चे नीचे तथैव भदलाभ्यधिके च मध्यः।
दूरे क्षितेः निकटगः श्रुतिमानतोऽसौ सौक्ष्म्यं महत्त्वमत एव भवेद् ग्रहाणाम्॥६॥'

इदानीमन्यद्वक्तुं प्रकारान्तरमाह—

उक्ता मयैषा प्रतिवृत्तभङ्ग्या युक्तिः पृथक् श्रोतुरसंभ्रमार्थम्।
स्पष्टीकृतेस्तां पुनरन्यथाहं नीचोच्चवृत्तस्य च वच्मि भङ्ग्या॥२३॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्न बातों को दूसरे प्रकार से कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि उन्होंने जो पूर्व में नीचोच्च प्रतिवृत्त की घुमावदार विधि बताई है उसको अब वे आसानी से समझ में आने वाली विधि से पुनः स्पष्ट कर रहे हैं।

इदानीं तां भङ्गिमाह—

कक्षास्थमध्यग्रहचिह्नतोऽथ वृत्तं लिखेदन्त्यफलज्यया तत्।
नीचोच्चसंज्ञं रचयेच्च रेखां कुमध्यतो मध्यखगोपरिस्थाम्॥२४॥
कुमध्यतो दूरतरे प्रदेशे रेखायुते तुङ्गमिह प्रकल्प्यम्।
नीचं तथासन्नतरेऽथ तिर्यङ्नीचोच्चमध्ये रचयेच्च रेखाम्॥२५॥
नीचोच्चवृत्ते भगणाङ्कितेऽस्मिन् मान्दे विलोमं निजकेन्द्रगत्या।
शैघ्र्येऽनुलोमं भ्रमति स्वतुङ्गादारभ्य मध्यद्युचरो हि यस्मात्॥२६॥
अतो यथोक्तं मृदुशीघ्रकेन्द्रं देयं निजोच्चाद्द्युचरस्तदग्रे।
दोर्ज्योच्चरेखावधि खेटतः स्यात्तिर्यक्स्थरेखावधि कोटिजीवा॥२७॥

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त प्रकार से ग्रह कक्षावृत्त में ३६० अंश अंकित ग्रह अंकित करे। उप पर मध्यम ग्रह (क) चिन्हित करके उस ग्रह चिन्ह को केंद्र मान अन्त्यफलज्या प्रमाण (क उ) का एक वृत्त (उ अ नी ब) बनावे। इस वृत्त का नाम नीचोच्च वृत्त है। भूमध्य से ग्रह तक जाने वाली उर्ध्वाधः रेखा ग भू नी क को थोड़ा सा और ऊपर की ओर बढ़ावे जो नीचोच्च वृत्त को ऊपर की ओर (उ) बिन्दु पर काटे। (क उ) रेखा उच्च रेखा कहलाती है।

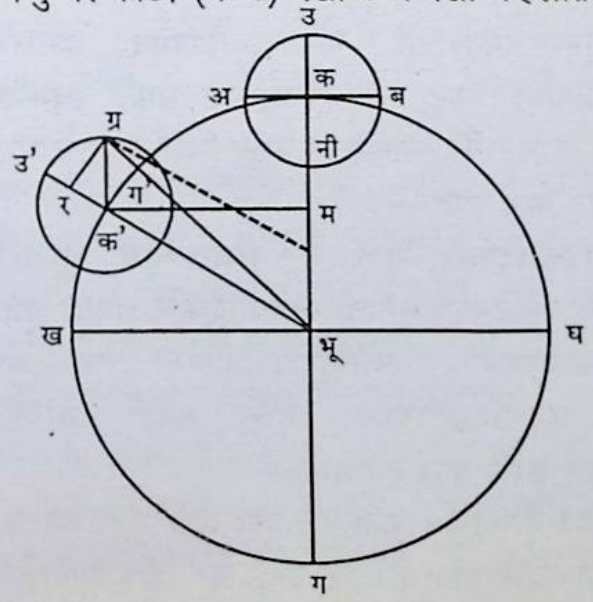

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नीचोच्च वृत्त में भूमि से जो दूरतर बिन्दु (उ) है जहाँ भूमध्य से उर्ध्व रेखा नीचोच्च वृत्त को काटती है वह उच्च बिंदु माना जाता है तथा जो आसन्न बिन्दु (नी) है वह नीच बिन्दु माना जाता है। इन नीचोच्च बिन्दुओं से मत्स्य रेखा द्वारा नीचोच्च रेखा के लम्बवत एक रेखा नीचोच्च वृत्त केंद्र से खेंचे। इस नीचोच्च वृत्त में केन्द्र गत उच्च स्थान (उ) से आरम्भ होकर मध्यम ग्रह भ्रमण करता है। मन्द का विलोम तथा शीघ्र का अनुलोम भ्रमण होता है। अतः मन्द केन्द्र उच्च स्थान से विलोम तथा शीघ्र केन्द्र अनुलोम हेाता है तथा उसके अग्र भाग पर ग्रह होता है। ग्रह का उच्च रेखा से अंतर दोज्या (ज्या) होता है तथा ग्रह का लंबवत रेखा से अन्तर कोटिज्य होता है।

(पूर्व श्लोक १० से १४ तथा यहाँ बताई विधि दोनों एक ही हैं। इसकी और स्पष्टता के लिए लेखक की 'दीर्घवृत्त लक्षणम' की हिन्दी टीका देखें।)

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के छेद्यकाधिकार १४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

परमफलजीवया स्वोच्चनीचवृत्तं लिखेत् स्वकक्षाग्रे।
स्वोच्चसमानो मध्यो यदा तदोच्चे ग्रहस्थानम्॥९॥
अनुलोमं निजमन्दात् प्रतिलोमं गच्छति स्वशीघ्रोच्चात्।
कक्षावृत्ते मध्यः स्वकेन्द्रवृत्ते ग्रहः स्पष्टः॥१२॥

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के गो.छेद्यकम् में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रतिमण्डलमेतदीरितं वलयं केन्द्रभवं निरक्षजम्।
अनुलोममिदं स्फुट ग्रहः स्फुटभुक्त्या भ्रमति स्वमन्दतः॥३॥"

पूर्व श्लोक २२ की व्याख्या में उद्धृत विशेष श्लोक भी देखें।

इदानीं कर्णानयनं फल चाह—

ये केन्द्रदोःकोटिफले कृते ते नीचोच्चवृत्ते भुजकोटिजीवे।
त्रिज्योर्ध्वतः कोटिफलं मृगादौ कर्क्यादिकेन्द्रे तदधो यतः स्यात्॥२८॥
अतस्तदैक्यान्तरमत्र कोटिर्दोर्दोःफलं भूग्रहमध्यसूत्रम्।
कर्णोऽथ मध्यग्रहकर्णमध्ये फलं धनर्णं तदिहोक्तवच्च॥२९॥

कर्ण का आनयन करके फल का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— केन्द्र की ज्या तथा कोटिज्या का फल नीचोच्च वृत्त में भुज तथा कोटि होता है। ग्रह कक्षा वृत्त का व्यासार्ध त्रिज्या तुल्य है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस त्रिज्या के (आगे) ऊपर कोटि फल मकारादि केन्द्र होने पर होता है तथा कर्क्यादि केन्द्र होने पर त्रिज्या के नीचे होता है। इस प्रकार त्रिज्या तथा कोटिफल का इन केन्द्रों में योगान्तर स्पष्ट कोटि होती है। त्रिभुज (पूर्वचित्र में) भू ग्र र में भुजफल (ग्र र) बाहु है, भूमि तथा ग्रह का अन्तर (भू ग्र) सूत्र कर्ण है (तथा भू र कोटि है)। हम जानते हैं कि बाहु तथा कोटि के वर्गों के योग $\left[\sqrt{(\text{ग्र र})^2 + (\text{भू र})^2} = \text{भूग्र} = \text{कर्ण}\right]$ का मूल कर्ण होता है। कक्षा वृत्त में कर्ण सूत्र जहाँ मिलता है (ग्र) वहाँ स्फुट ग्रह होता है। अतः मध्यम ग्रह क' (=र) तथा स्फुट ग्रह (ग्र) के मध्य अन्तर फल तुल्य होता है जिसका धन-ऋण मध्यम ग्रह में करने से स्पष्ट ग्रह प्राप्त होता है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्पष्टं पश्यति यस्मात् मध्यादूनाधिकं नरस्तस्मात्।
विवरं तयोः फल्मृणं धनं च मध्यग्रहे क्रियते॥१५॥
अन्त्यफलज्याग्रात् कोटिरुपरि केन्द्रे मृगादिगे यस्मात्।
कीटागिदते चाधस्तत्र तदैक्यान्तरं कोटिः॥१६॥
कोटिफलमुपरि यस्माद् वान्त्ये प्रथमे पदे भवेत् द्विगुणात्।
मध्यमयोश्च यतोऽधस्ततो युतिर्वान्तरं कोटिः॥१७॥
भूग्रहमध्ये कर्णः स्वकर्णमध्यग्रहान्तरे च फलम्।
भवति सदा बाहुज्या ग्रहनीचोच्चरेखान्तः॥१८॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के गो.छेद्यकम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्पष्टखगं क्षयगं त्वधिकं वा पश्यति येन नरोऽन्तरलिप्ताः।
मन्दफलं त्वनयोः क्षयवृद्धी मध्यखगे चलजं विपरीतम्॥८॥
परमफलगुणादधः कुलीरादुपरि मृगादित एव कोटि जीवा।
वियुतियुतिरतोऽग्रकाऽनयोस्तद्भुजगुणवर्गयुतेः पदं श्रुतिः स्यात्॥९॥
उपरि कोटिफलं त्रिगुणान्मृगाच्छशिगृहात्तदधः स्वमृणं ततः।
त्रिभगुणं क्रियते ग्रहकोटिजं भुजफलाग्रकयोः श्रुतिरुक्तवत्॥१०॥
भूग्रहान्तरमिहोच्यते श्रुति कर्णमध्यखगयोर्यदन्तरम्।
तत्फलं दिविचरे पुरःस्थिते मध्यमे धन ऋणं च पृष्ठतः॥१५॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्य-सिद्धान्त के स्पष्टाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"शैघ्र्यं कोटिफलं केन्द्रे मकारादौ धनं स्मृतम्।
संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्क्यादौ कोटिजं फलम्॥४०॥
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः।$\frac{१}{२}$।"

अथ मिश्रभङ्गिमाह—

मन्दोच्चतोऽग्रे प्रतिमण्डले प्राग्ग्रहोऽनुलोमं निजकेन्द्रगत्या।
शीघ्राद्विलोमं भ्रमतीव भाति विलम्बितः पृष्ठत एव यस्मात्॥३०॥
नीचोच्चवृत्ते पुनरन्यथा ते तस्यानुलोमप्रतिलोमयाने।
एका गतिः सा प्रतिभानमन्यत् प्राज्ञैः फलार्थं प्रविकल्पितं तत्॥३१॥
भङ्गिद्वयं चेल्लिखितं विमिश्रं वृत्तद्वयेऽप्यत्र यथोक्तदत्तः।
नीचोच्चवृत्तप्रतिवृत्तयोगे भवत्यवश्यं द्युचरस्तदानीम्॥३२॥
यथा भवेत् तैलिकयन्त्रमध्ये काष्ठभ्रमो गोभ्रमतो विलोमः।
नीचोच्चवृत्तभ्रमणं तथान्यत्स्याद्गच्छतोऽपि प्रतिमण्डलेन॥३३॥

इन दोनों विधियों का मिश्रण—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह पूर्व की ओर प्रतिमण्डल में भ्रमण करता है। इसी प्रकार गणक ग्रह को नीचोच्च वृत्त में फलज्ञात करने के लिए कल्पित करता है। प्रतिमण्डल में ग्रह विलोम गति से चलता हुआ प्रतीत होता है। मन्दोच्च के आगे प्रतिमण्डल में ग्रह निज केन्द्र गति से विलोम घूमता हुआ दिखाई देता है और शीघ्रोच्च से विलोम गति से तथा शीघ्रोच्च से पीछे (धीरे) गति करता है। नीचोच्च वृत्त में ये अन्यथा अनुलोम प्रतिलोम गति करते हैं। एक गति जो अन्य की गति के अपेक्षा प्रतीत होती है उसको आगे फलज्ञान के लिए कल्पित करते हैं।

इन दोनों प्रकार की ग्रह भ्रमण विधियों को लिखकर दोनों वृत्तों को मिश्रित करके जैसा यहाँ कहा गया है वैसा करे। नीचोच्चवृत्त और प्रतिवृत्त जहाँ योग करते है वहाँ अवश्यय ही ग्रह होता है जिसको ज्ञात करते हैं।

आचार्य ने पूर्वोक्त विलोम गति किस प्रकार दिखती है उसको एक दृष्टांत के द्वारा समझाया है कि जैसे तैल निकालने के यंत्र (घाणी) के मध्य में तिल को पीसने के लिए एक ऊर्ध्व काष्ठ दंड प्रक्षेपित किया जाता है जिस दिशा में गौर (बैल) भ्रमण करता हुआ उसको घुमाता है उससे वह विपरीत भ्रमण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करता हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार गौर (बैल) अपसव्य भ्रमण करता है तथा ऊर्ध्व काष्ठ दंड संपूर्ण भागों सहित सव्य भ्रमण करता हुआ दिखता है। इसी प्रकार नीचोच्च वृत्त में ग्रह विपरीत दिशा में भ्रमण करता हुआ प्रतीत होता है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के अध्याय १४ छेद्यकाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अनुलोमं निजमन्दात् प्रतिलोमं गच्छति स्वशीघ्रोच्चात्।
कक्षावृत्ते मध्यः स्वकेन्द्रवृत्ते ग्रह स्पष्टः॥१२॥
वेगः स्वकेन्द्रवृत्ते य : कक्षामण्डलेऽपि स एव।
मध्यैव गतिः स्पष्टा वृत्तद्वययोगगे द्युचरे॥१३॥"

वटेश्वराचाय्र ने वटे.सि. के गोला. के छेद्यकम् अध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"प्रतिमण्डलमेतदीरितं वलयं केन्द्रभवं निरक्षजम्।
अनुलोममिदं स्फुट ग्रहः स्फुट भुक्त्या भ्रमति स्वमन्दतः॥३॥
शीघ्रात् प्रतिलोमसादितः कक्ष्यामण्डल चारतः क्रमात्।
नीचोच्चवृत्तमलिखेत् केन्द्रं तस्य खगे विधीयते॥४॥"
स्पष्टखगो भ्रमति प्रतिलोमगस्त्विह निजोच्चगतश्च बृहदगतिः।
लघुगतिस्त्वनुलोमगतिर्यदा वलययोरुभयोः समयोजनः॥१५॥

ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में ब्र.गु. ने स्पष्ट गतिवासना में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"नीचोच्चवृत्तमध्यं मध्ये तद् भ्रमति मध्यगः स्वोच्चात्।
तत्परिधौ प्रतिलोमं मन्दोच्चाद् भ्रमति शीघ्रोच्चात्॥२५॥"

इदानीं मन्दशीघ्रकर्मद्वयेन स्फुटत्वे कारणमाह—

मध्यगत्या स्वकक्षाख्यवृत्ते व्रजेन्मन्दनीचोच्चवृत्तस्य मध्यं यतः।
तद्वृतौ शीघ्रनीचोच्चमध्यं तथा शीघ्रनीचोच्चवृत्ते स्फुटः खेचरः॥३४॥
शीघ्रनीचोच्चवृत्तस्य मध्यस्थितिं ज्ञातुमादौ कृतं कर्म मान्दं ततः।
खेटबोधाय शैघ्र्यं मिथः संश्रिते मान्दशैघ्र्ये हि तेनासकृत् साधिते॥३५॥

मन्द तथा शीघ्र दोनों कर्मों को स्फुट करने का कारण—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्य गति से ग्रह स्वकक्षावृत्त में तथा मन्द नीचोच्च प्रतिवृत्त में मध्यमस्फुट ग्रह भ्रमण करता है। इसी प्रकार अन्य शीघ्रोच्च से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शीघ्रनीचोच्च वृत्त में मध्यमस्फुट ग्रह तथा शीघ्र नीचोच्च प्रतिवृत्त में स्फुट ग्रह भ्रमण करता है। मन्द फल का संस्कार मध्यम ग्रह में करने से मंद स्फुट ग्रह होता है तथा उसको मध्यम ग्रह मान कर उसी प्रकार शीघ्रफल का संस्कार करने से शीघ्रस्फुट ग्रह होता है। जब ग्रह अपने प्रतिवृत्त में भ्रमण करते हैं तब उनकी स्थिति भचक्र में उस समय स्फुट स्थिति होती है।

इदानीं मन्दकर्मणि कर्णः किं न कृत इत्याशङ्क्योत्तरमाह—

स्वल्पान्तरत्वान्मृदुकर्मणीह कर्णः कृतो नेति वदन्ति केचित्।
त्रिज्योद्धृतः कर्णगुणः कृतेऽपि कर्णैः स्फुटः स्यात् परिधिर्यतोऽत्र॥३६॥
तेनाद्यतुल्यं फलमेति तस्मात् कर्णः कृतो नेति च केचिदूचुः।
नाशङ्कनीयं न चले किमित्थं यतो विचित्रा फलवासनात्र॥३७॥

मन्दकर्ण में कर्ण का कुछ भी क्यों नहीं किया गया? इस शंका का उत्तर—

सूर्य-प्रभा टीका— यहाँ शीघ्रफल ज्ञात करने में कर्ण का अनुपात किया गया है लेकिन मन्दकर्म में कर्ण का अनुपात प्राप्त फल में स्वल्पान्तर होने के कारण नहीं किया गया है। मन्दफल तथा कर्ण से अनुपात द्वारा साधित मन्दफल में स्वल्पान्तर ही रहता है। मन्दकर्म में मन्दकर्ण तुल्य व्यासार्ध से जो वृत्त उत्पन्न होता है वह कक्षामण्डल ही होता है जिसमें ग्रहभ्रमण करता है। पाठ पठित मन्द परिधि त्रिज्याग्र में परिणत है। उसको कर्ण व्यासार्ध में परिणत करते हैं, यदि त्रिज्यावृत्त में यह पाठ-पठित मन्द परिधि पाते हैं तो कर्णवृत्त में क्या? इससे स्फुट परिधि प्रमाण प्राप्त होता है। इसको भुजज्या से गुणा करके ३६० भांश से भाग देने से जो फल प्राप्त होता है उसको त्रिज्या से गुणाकर कर्ण से भाग देना चाहिए तब उसका स्वरूप =

$$\frac{\text{परिधि} \times \text{कर्ण} \times \text{भुज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{त्रिज्या} \times ३६० \times \text{कर्ण}} = \frac{\text{परिधि} \times \text{भुज्या}}{३६०}$$

यह पूर्वफल तुल्य ही आता है। यह आचार्य ब्रह्मगुप्त का मत है।

यदि इस तरह कर्ण से परिधि का स्फुटत्व होता है तब शीघ्रकर्ण में क्यों नहीं किया गया इसके लिए चतुर्वेदाचार्य कहते हैं कि शीघ्रकर्ण में इस तरह क्यों नहीं किया गया? यह आशङ्का नहीं करनी चाहिए क्योंकि फलोपपत्ति विचित्र है। शुक्र की परिधि अन्यथा स्फुट होती है और भौम की अन्यथा होती है तब बुध की इस तरह क्यों नहीं की यह शंका नहीं करनी चाहिये। यहाँ ब्रह्मगुप्त ने जो कही है वही बहुत सुन्दर है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— उपरोक्त व्याख्या में जो ब्रह्मगुप्त कथन का संदर्भ कहा गया है वह **ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त के स्फुट गतिवासना** में इस प्रकार कहा है। यथा–

"त्रिज्याभक्तः परिधिः कर्णगुणो बाहुकोटिगुणकारः।
असकृतन्मान्दे तत्फलमाद्यसमं नात्रकर्णोऽस्मात्॥२६॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"त्रिज्याहृतः श्रुतिगुणः परिधिर्यतो
दोः कोटयोर्गुणो मृदुफलानयनेऽसकृत् स्यात्।
स्यान्मान्दमाद्यसममेव फलं ततश्च
कर्णः कृतो न मृदुकर्मणि तन्त्र करैः।" अ.१५ श्लो४५।

इदानीं नतकर्मवासनामाह—

**प्राक् पश्चात् प्रतिमण्डलस्थखचरं द्रष्टा कुमध्यस्थितः
कक्षायां खलु यत्र पश्यति नतं नो तत्र भूपृष्ठगः।
मध्याह्ने तु कुमध्यपृष्ठगनरौ तुल्यं यतः पश्यत-
स्तेनोक्तं नतकर्म लम्बनविधौ या युक्तिरत्रापि सा॥३८॥**

नतकर्म वासना—

सूर्य-प्रभा टीका— भूमध्य स्थित दृष्टा प्रतिमण्डल स्थित ग्रह को उसकी कक्षा में पूर्व अथवा पश्चिम कपाल में जिस स्थान पर देखता है उसी स्थान पर, भूपृष्ठस्थ दृष्टा उसको वहाँ पर ग्रह के नत होने के कारण नहीं देख पाता। मध्यान्ह में भूपृष्ठ तथा भूमध्य एक सीध में होने के कारण अपने खमध्य में ग्रह को देखने से उसमें नत न होने से वह दोनों स्थानों से एक ही स्थान पर दिखाई देता है। अतः ग्रहों में नतकर्म संस्कार लम्बन संस्कार की भांति करना चाहिये।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी. वृ. ग्रंथ के अध्याय १६ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"भूदलं मध्यस्थस्य द्रष्टुर्भूपृष्ठगस्य वा दृष्टिः।
स्वाभिमुखं याति समं न लम्बनं तेन मध्याह्ने॥२६॥
पूर्वापरं कुवृत्ते लम्बन लिप्तोपपत्तिरुक्ता या।
याम्योदक्क्षितिजवशात् सा ज्ञेयाऽवनतिलिप्तानाम्॥२७॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलाध्याय के गो.वासना में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"प्रागपरकपालयोः कुदल कला लम्बनं क्षयमतः स्वम्।
भूदलपृष्ठगनरयोर्दृक्साम्याल्लम्बनं न मध्याह्ने॥२१॥
उपपत्तिर्या प्रोक्ता प्रागपरे लम्बनेऽवनति विरहे।
लम्बनविरहेऽवनतौ याम्योत्तरे सा तथैवास्ति॥२२॥"

इदानीं गतिफलाभावस्थानमाह—

कक्षामध्यगतिर्यग्रेखाप्रतिवृत्तसंपाते।
मध्यैव गतिः स्पष्टा परं फलं तत्र खेटस्य॥३९॥

गतिफलाभाव का स्थान—

सूर्य-प्रभा टीका— कक्षावृत्तगत (लंब) तिर्यग्रेखा प्रतिवृत्त पर जहाँ संपात करती है वहाँ ग्रह की मध्यम तथा स्पष्ट गति समान होती है। वहाँ पर गतिफल का अभाव होता है लेकिन वहाँ पर ग्रह का फल परम होता है। जहाँ ग्रह का फल परम होता है वहाँ उसके गतिफल का अभाव होता है क्योंकि अद्यतन (आज का) तथा श्वस्तन (कल का) ग्रह का अंतर ही गति होती है तथा फल का अन्तर गतिफल होता है। ग्रह की गति के फलाभाव का स्थान धन-ऋण संधि होती है। आचार्य कहते हैं कि लल्लाचार्य द्वारा यह कहना कि "वृत्तद्वययोगगे.....फलाभावः' सही नहीं है क्योंकि दोनों वृत्तों के योग स्थान पर ग्रह का परमफल नहीं होता।

विशेष— लल्लाचार्य ने शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ के छेद्यकाधिकार में इस प्रकार कहा है। यथा–

"मध्यैव गतिः स्पष्टाः वृत्तद्वययोगगे द्युचेर॥१३॥
दृष्टा पश्यति यस्मात् मध्यस्यातः फलाभावः।$\frac{१}{२}$।"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के गोलाध्याय के छेद्यकम २ में लल्लाचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यमैव भवति स्फुटभुक्तिः खेचरे वलनसङ्गमुपेति।६$\frac{१}{२}$।"

लेकिन क्योंकि लल्लोक्त बात ही वटेश्वराचार्य ने कही है अतः वटेश्वराचार्य की बात को भास्कराचार्य की बात से अधिक महत्व देकर विचार करना होगा। क्योंकि वटेश्वर के कथन को बिना समझे काटना त्रुटिपूर्ण हो सकता है उनकी गणित में महानता को देखते हुए। विद्वान लोग इस पर गहनता से विचार करें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं ग्रहस्य वक्रत्वं छेद्यके यथा शीघ्रं दृश्यते तदर्थमाह—

वंशोद्भवाभिः प्रतिमण्डलाद्यं कृत्वा शलाकाभिरिदं यथोक्तम्।
प्रचाल्य तुङ्गं खचरं च गत्या वक्रादि सर्वं खलु दर्शयेद्द्राक्॥४०॥

छेद्यक से ग्रह का वक्रत्व यथा शीघ्रत्व देखना—

सूर्य-प्रभा टीका— बांस की शलाखा से कक्षावृत्त, प्रतिमण्डल वृत आदि पूर्वोक्त प्रकार से छेद्यक बनाकर उसमें स्पष्ट ग्रह का स्थान पहले दिन अंकित करे इसी प्रकार दूसरे (अगले) दिन फिर स्पष्ट ग्रह का स्थान अंकित करे। यदि दूसरे दिन का स्पष्ट ग्रह स्थान प्रथम दिन से पीछे हो तो ग्रह की वक्र गति होना ज्ञात होता है।

इदानीं केन्द्रसंज्ञां स्फुटकक्षां चाह—

वृत्तस्य मध्यं किल केन्द्रमुक्तं केन्द्रं ग्रहोच्चान्तरमुच्यतेऽतः।
यतोऽन्तरे तावति तुङ्गदेशान्नीचोच्चवृत्तस्य सदैव केन्द्रम्॥४१॥
ग्रहस्य कक्षा चलकर्णनिघ्नी स्फुटा भवेद्व्यासदलेन भक्ता।
तद्व्यासखण्डान्तरितः कुमध्यात्स भ्राम्यते हि प्रवहानिलेन॥४२॥

केन्द्र संज्ञा से स्फुट कक्षा का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— वृत्त के मध्य के स्थान को केन्द्र कहते हैं तथा ग्रह तथा उच्च के अन्तर को भी केंद्र कहते हैं। जितना यह केन्द्र होता है तथा नीचोच्च ग्रह का केन्द्र मध्यम ग्रह होता है अतः इस अन्तर को केंद्र कहते हैं। ग्रह की कक्षा (योजन) को शीघ्रकर्ण से गुणा करके व्यासार्ध से विभक्त करने से केन्द्र का मान स्फुट होता है। भूव्यासार्ध द्वारा भूकेन्द्र से इसके तुल्य जो कोण अन्तरित होता है उतना ग्रह प्रवह वायु वश अपनी कक्षा में भ्रमण करता है।

विशेष— आचार्योक्त बात को ही लल्लाचार्य ने अन्य प्रकार से कहा हैं यथा गोलाध्याय के छेद्यकाधिकार में—

"भूग्रहमध्ये कर्णः स्वकर्णमध्यग्रहान्तरे च फलम्।
भवति सदा बाहुज्या ग्रहनीचोच्चरेखान्तः ॥१८॥"

अर्थात् भूकेन्द्र तथा स्फुट ग्रह के मध्य की दूरी कर्ण होती है।

जहाँ प्रतिवृत्त में यह कर्ण मिलता है उस बिन्दु तथा मध्यम ग्रह के बीच के कक्षावृत्त चाप को फल कहते हैं।

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. के छेद्यकम २ में आचार्योक्त ही लल्लाचार्य की भांति कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"भूग्रहान्तरमिहोच्यते श्रुतिः कर्णमध्यखगयोयदिन्तरम्।
तत्फलं दिविचरे पुरः स्थिते मध्यमे धनंमृणं च पृष्ठतः॥१५॥"

इदानीं भुजान्तरकर्मोपपत्तिमाह—

मध्यमार्कोदयात् प्राक् स्फुटार्कोदयः स्यादृणे तत्फले स्वे यतोऽनन्तरम्।
तेन भास्वत्फलोत्थासुजातं क्षयः स्वं फलं युक्तियुक्तं निरुक्तं ग्रहे॥४३॥

भुजान्तर कर्म की उपपत्ति–

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यम सूर्य के उदय के पूर्व स्पष्ट का उदय होने पर फल ऋण होता है और यदि पश्चात् स्पष्ट सूर्य का उदय होता है तो फल को धन करते हैं। इस प्रकार धन अथवा ऋण फल के असु तुल्य समय के बाद अथवा पूर्व में सूर्योदय होता है। यह युक्ति-युक्त रूप में ग्रह में धन अथवा ऋण करने के लिए कहा गया है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के अध्याय १६ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"मध्यस्योदयकालो यः स रवेः स्वेचिरेण शीघ्रमृणे।
तत्फलकलासुभिरतः स्वगति त्रैराशिकं स्वर्णम्॥७॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलवासना में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यमात् स्फुटरवेस्समुद्गमः प्रागृणेर्विफलासुभिर्यतः।
स्वेचिरात्तदनुपातजं फलं खेचरेष्वृणमतो धनं भवेत्॥६॥"

श्रीपति ने सि.शे. के अध्याय १६ के श्लोक २३ में आचार्योक्त कहा है।

"रविफलगतिघातात् चक्रलिप्ताभिराप्तं स्वमृणमिह विमध्यादर्कवत् खेचरेषु।"

सूर्यसिद्धान्त में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रह भुक्ति र्विभाजिता।
भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ताः कार्याग्रहेऽर्कवत्॥"

ब्र.गु. ने ब्र.स्फु. सि. के स्फुटगत्युत्तराध्यय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मध्यस्फुटान्तरकला बाहुफलं तीक्ष्णकिरणस्य।
स्फुटभुक्त्याऽर्कादिनां भुजान्तरं क्षयधनं रविवत्॥१९॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं छेद्यकोपसंहारेण गणकप्रज्ञां वर्णयन्नाह—

ये दर्भगर्भाग्रधियोऽत्र तेषां स्याच्छेद्यकार्थः परमाणुरूपः।
येऽन्ये जडाः कुण्ठधियश्च तेषां स्यादिन्द्रवज्राहतपक्षतुल्यः॥४४॥

छेद्यक के उपसंहार में गणक की बुद्धि का वर्णन—

सूर्य-प्रभा टीका— कुश के अग्रभाग (धार) के समान जिन गणकों की पैनी बुद्धि है उनके लिए इस छेद्यक का अर्थ (समझना) परमाणु रूप है अर्थात् इस छेद्यक का अर्थ अत्यन्त सरल एवं सूक्ष्म है। लेकिन जिन की बुद्धि जड़ है तथा जो मंद बुद्धि है उनके लिए यह इन्द्र के वज्र से आहत करने के समान है अतः वे इसको नहीं समझ सकते।

यहाँ 'इन्द्रवज्राहतपक्षः' शब्द का अर्थ 'पर्वत तुल्य छेद्यक' कठोर तथा जड़ वत है। इन्द्रवज्रा छन्द जो पुराणोक्त है, यह बात सूचित करता है। इस छन्द में कहा गया है कि पर्वतों के दो हाथ तथा दो पंख थे जिनके द्वारा वे पृथ्वी पर इधर उधर उड़ते हुए गिरते रहते थे जिससे पृथ्वी का संतुलन बिगड़ने से पृथ्वी चलायमान रहती थी। लेकिन भगवान ने उनको इन्द्र के वज्र के प्रहार से खण्डित (तोड़) कर दिया जिसके पश्चात वे पृथ्वी पर अचल होकर रहने लगे जिससे पृथ्वी भी अचल हो गई तथा उसका नाम अचला पड़ा।

इति छेद्यकाधिकारः

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के छेद्यकाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ गोलबन्धाधिकारः

इदानीं गोलबन्धाधिकारमाह—

सुसरलवंशशलाकावलयैः श्लक्ष्णैः सचक्रभागाङ्कैः।
रचयेद्गोलं गोले शिल्पे चानल्पनैपुणो गणकः॥१॥

सूर्य-प्रभा टीका— अच्छी सीधी तथा चिकनी बांस अथवा किसी धातु की सलाखाओं की सहायता से शिल्पि के गुण युक्त तथा अच्छे गोल ज्ञान में निपुण गणक के द्वारा गोल की रचना की जावे तथा वह गोल चक्र कला अर्थात् ३६० अंश कला के चिन्हों से युक्त हो।

आचार्य का यहाँ वंश शब्द से तात्पर्य केवल बांस ही से नहीं है वरन यह किसी भी धातु वाचक उपलक्षण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.द ग्रंथ के यन्त्राधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"इष्टं सुवृत्तवलयं लघुशुष्कदारुनिर्मापितं विविधशिल्पवदावदाततक्ष्णा।
गोलं समं सलिलतैलवृषाङ्कबीजैः कालानुसारिण्ममुं भ्रमयेत् स्वबुद्धया॥१॥"

अथ गोलबन्धमाह—

कृत्वादौ ध्रुवयष्टिमिष्टतरुजामृज्वीं सुवृत्तां ततो
यष्टीमध्यगतां विधाय शिथिलां पृथ्वीमपृथ्वीं बहिः।
बध्नीयाच्छशिसौम्यशुक्रतपनारेज्यार्किभानां दृढान्
गोलांस्तत्परितः श्लथौ च नलिकासंस्थौ खदृग्गोलकौ॥२॥

गोल बन्द करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— ठोस देवदारु अथवा अन्य मजबूत एवं दीर्घकाल तक स्थाई रहने वाले वृक्ष की लकड़ी से एक ध्रुव यष्टि बनाकर उसको ध्रुवस्थानों की दिशा में नियत करके उसके मध्य में अर्धभाग पर सूक्ष्म आकार की पृथ्वी (रूप) ढीली सी बाँध देवे। उसके ऊपर क्रमशः चंद्र, बुध, शुक्र, गुरु, मंगल तथा शनि को भी इसी प्रकार उनकी कक्षा क्रम से कस कर दृढ़ता से बांध देवे। इनके ऊपर नलिका पर स्थित एक खगोल दृग्गोल स्थिर करे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— वराहमिहिर ने पं.सि. के अध्याय १४ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"समवृत्तपृष्ठमानं सूक्ष्मं गोलं प्रसाध्य धातुमयम्।२२$\frac{१}{२}$।
अक्षोत्क्षिप्तस्योदक् तिर्यग्वेधप्रकाशहरिजस्थाः।
या नाड्यता याता षडंशकसमन्विता मध्ये॥२५॥"

इदानीं सविशेषमाह—

पूर्वापरं विरचयेत् सममण्डलाख्यं याम्योत्तरं च विदिशोर्वलयद्वयं च।
ऊर्ध्वाध एवमिह वृत्तचतुष्कमेतदावेष्ट्य तिर्यगपरं क्षितिजं तदर्धे॥३॥

विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्व तथा पश्चिम बिन्दुओं से होता हुआ पूर्वापर वृत्त बनावे जिसको सममण्डल कहते हैं तथा उत्तर दक्षिण बिन्दु से एक वृत्त बनावे जिसको याम्योत्तर वृत्त कहते हैं इस प्रकार ये दो वलय बनावे। इन दोनों वृत्तों के ऊर्ध्व तथा अधः मिलान बिन्दुओं से होकर जाने वाले तथा इन चारों दिशाओं के कोणों (मध्यभाग) से होकर जाने वलो दो वृत्त बनावे। इस प्रकार ये चार वृत्त बनावे। इन चारों ऊर्ध्वाधर वृत्तों के (मध्य) अर्ध भाग से एक वृत्त इनके क्षितिज के रूप में इनके लम्बवत बनावे। यहाँ याम्योत्तर वृत्त पर उत्तर क्षितिज के ऊपर अक्षांश तुल्य अंतर पर एक ध्रुव चिन्ह बनावे तथा इसी प्रकार दक्षिण क्षितिज के नीचे बनावे।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी. वृ. ग्रंथ के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"पूर्वापरमूर्ध्वमधः प्रथमं सममण्डलं जगुर्वृत्तम्।
याम्योत्तरं च तद्वत् तथैव वृत्तद्वयं च विदिशोः॥१॥
आवेष्ट्यमानमेतान्यर्धच्छेदेन यद् भवेद् वृत्तम्।
तत् क्षितिजमण्डलं स्यादुदयास्तमयाविह द्युसदाम्॥२॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोला. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ऊर्ध्वमधोऽपरपूर्वमिहाद्यं प्राहुरिदं सममण्डलमन्यत्।
तद्वदिहोत्तरदक्षिणदिक्स्थं वृत्तयुगं विदिशोरपि तद्वत्॥१॥
आवेष्टमानमथ तानि दलप्रवृत्या यद्वृत्तमत्र हरिजं क्षितिजं तदाहुः।
यस्मिन् भवेत् समुदयोऽस्तमयोऽखिलानां प्राच्यां क्रमादपर दिश्युडुखेचराणाम्॥२॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"प्राच्यपरं सममण्डलमन्यद्याम्योत्तरं क्षितिजमन्यत्।
परिकरवत् तन्मध्ये भूगोलस्तत्स्थितद्रष्टुः॥४६॥"

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"श्रीपरार्यादिससारदारुघटितैः श्लक्ष्णैः समैर्मंडलै-
र्गोलज्ञो दृढ़सन्धिबन्धरुचिरं गोलं विनिर्मापयेत्।
तत्र प्रागपरं विधाय वलयं याम्योत्तरं चापरं
तिर्यक् तद द्वितयार्धसक्तमभितः कुर्यातृतीयं पुनः॥"

आर्यभट ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"पूर्वापरमधऊर्ध्वं मण्डलमथ दक्षिणोत्तरच्चेव।
क्षितिजं समपार्श्वस्थं भानां यत्रोदयास्तमयौ॥१८॥"

इदानीमुन्मण्डलमाह—

पूर्वापरक्षितिजसङ्गमयोर्विलग्नं याम्ये ध्रुवे पललवैः क्षितिजादधःस्थे।
सौम्ये कुजादुपरि चाक्षलवैर्ध्रुवे तदुन्मण्डलं दिननिशोः क्षयवृद्धिकारि॥४॥

उन्मण्डल वृत्त बनाना बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वापर तथा क्षितिज के दो मिलान बिन्दु तथा दक्षिण ध्रुव से अक्षांश तुल्य क्षितिज से नीचे स्थित बिन्दु तथा उत्तरिध्रुव से अक्षांश तुल्य क्षितिज से ऊपर स्थित बिन्दु से होकर जाने वाला वृत्त उन्मण्डल वृत्त कहलाता है। यह दिन तथा रात्रि के क्षय तथा वृद्धिकारी होता है अर्थात् इसकी स्थिति के अनुसार दिन तथा रात्रि में क्षय तथा वृद्धि होती है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी. वृ. ग्रंथ के गोलबन्धाधिकार १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"वृत्ते प्रागपरे कुजाक्षभवयोः सक्यं द्वयो संज्ञयोः
सौम्यक्ष्माभववृत्तयोगजनितादङ्काद् ध्रुवे चोपरि।
स्वाक्षांशाङ्कगतेऽथ याम्यकुजयोर्योगादधोऽक्षांशकै-
र्वृद्धिर्हानी विधाय वासरनिशोरुन्मण्डलं मण्डलम्॥३॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त के गोला. के गोलबन्ध ३ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"पूर्वापरक्षितिज सङ्गम योर्गतश्च याम्यादधः पललवैः क्षितिजाद्विलग्नम्।
सौम्यादथोपरि समध्रुवमार्ग संस्थमुन्मण्डलं दिननिशोः क्षयवृद्धिकृत्तत्॥३॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"संसक्तं समवृत्तभूजवलय प्राक्पश्चिमासङ्गयोर्याम्योदक्
क्षितिजाधरोत्तरगतं स्वाक्षांश तुल्यान्तरे।
स्यादुन्मण्डलमेतदप्यवनिजं देशे निरक्षे
स्मृतं जायेते तमस्विनी दिवसयोर्वृद्धिर्क्षयो तद्वशात्॥"

इदानीं विषुवन्मण्डलमाह—

**पूर्वापरस्वस्तिकयोर्विलग्नं खस्वस्तिकाद्दक्षिणतोऽक्षभागैः।
अधश्च तैरुत्तरतोऽङ्कितं च षष्ट्यात्र नाडीवलयं विदध्यात्॥५॥**

विषुववृत्त की स्थिति बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वापर स्वस्तिक से होकर जाने वाला तथा ख स्वस्तिक से दक्षिण में एवं अधः स्वस्तिक से उत्तर में अक्षांश तुल्य अन्तर पर जो वृत्त होता है वह विषुवद्वृत्त होता है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"समवृत्तादक्षांशैर्दक्षिणतो भवति नाडिकावृत्तम्।
खस्वस्तिकाद्यस्तादुत्तरतोऽक्षांशकैरेव॥५॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"खस्वस्तिकाद दक्षिणतोऽक्षभागैः पाताल संज्ञाच्च तथोत्तरेण।
नाड्यकिङ्कतं वैषुवतं तदुक्तं वृत्तं भगोलस्य खगोलमध्ये॥५॥"

यह श्लोक उपरोक्त दोनों ही आचार्यों ने स्वकृत ग्रंथ के 'भगोलबन्ध' भाग में दिया है।

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विषुवन्मण्डलमूर्ध्व सममण्डलतः स्थितं स्वकाक्षांशैः।
याम्येनोत्तरतोऽधः क्षितिजे प्राच्यपरयोर्लग्नम्॥५१॥"

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"नतमथ समवृत्ताद्दक्षिणेनाक्षभागैर्विषुवदुपपतन्तं मण्डलं नाडिकाख्यम्।
उदगपि पलभागैः स्यादधस्तात्तदेतद् गगन रसमिताभिर्लाञ्छितं नाडिकाभिः॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं दृङ्मण्डलमाह—

ऊर्ध्वाधरस्वस्तिककीलयुग्मे प्रोतं श्लथं दृग्वलयं तदन्तः।
कृत्वा परिभ्राम्य च तत्र तत्र नेयं ग्रहो गच्छति यत्र यत्र॥६॥

दृग्मण्डल की स्थिति बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— ख स्वस्तिक तथा अद्यः स्वस्तिक (से होकर जाता हुआ) एवं ग्रह केंद्र से जाता हुआ वृत्त दृग्मण्डल होता है। यह पूर्वोक्त वृत्त से थोड़ा न्यून होता है। यत्र-तत्र जो ग्रह भ्रमण करते हैं उनमें से होकर जाने वाला इस प्रकार का प्रत्येक ग्रह का एक दृग्वृत्त होता है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के गो.बन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"दृग्मण्डलार्धमूर्ध्वं यत् तत् परिधिस्थितं दृष्टा।
पश्यति यतः क्षितिस्थस्तद्भमति ततो ग्रहाभिमुखम्॥५५॥"

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"द्रष्टुर्ग्रहाभिमुखमभ्रमवृत्तसक्तं दृग्मण्डलं प्रतिपलं भ्रमति ग्रहाणाम्।"

आर्यभट ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"पूर्वापरदिग्रेखाधश्चोर्ध्वा दक्षिणोत्तरस्था च।
एतासां संपातो दृष्टा यस्मिन भवेद्देशे॥२०॥
उर्ध्वमद्यस्ताद्रष्टुर्ज्ञेयं दृङ्मण्डलं ग्रहाभिमुखं।$\frac{१}{२}$।"

अथ विशेषमाह—

ज्ञेयं तदेवाखिलखेचराणां पृथक् पृथग्वा रचयेत् तथाष्टौ।
दृङ्मण्डलं वित्रिभलग्नकस्य दृक्क्षेपवृत्ताख्यमिदं वदन्ति॥७॥

अब विशेष कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— इस प्रकार सभी ग्रहों के पृथक-पृथक आठों दृग्मण्डलों की रचना करें।

वित्रिभ लग्न के दृग्मण्डल को दृक्क्षेप वृत्त कहते हैं।

विशेष— वटेश्वरावार्च ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ऊर्ध्वाधरं ग्रहसमाभिमुखं च यत्तद् दृङ्मण्डलं त्रिगृहहीनविलग्न लग्नम्।
दृक्क्षेपवृत्तमपि तद्वदमूनि चाष्टौ भांशाङ्कितानि वलयानि खगोलबन्धे॥४॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्राग्लग्नमत्र भवनत्रितयेन हीनं दृक्क्षेपमण्डलमुशन्ति कुशाग्रधीराः।"

आर्यभट ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"दृक्क्षेपमण्डलमपि प्राग्लग्नं स्यात्त्रिराश्यूनं॥२१॥"

इदानीमेवं खगोलमुक्त्वा दृग्गोलमाह—

बद्ध्वा खगोले नलिकाद्वयं च ध्रुवद्वये तन्नलिकास्थमेव।
बहिः खगोलाद्विदधीत धीमान् दृग्गोलमेवं खलु वक्ष्यमाणम्॥८॥
भगोलवृत्तैः सहितः खगोलो दृग्गोलसंज्ञोऽपममण्डलाद्यैः।
द्विगोलजातं खलु दृश्यतेऽत्र क्षेत्रं हि दृग्गोलमतो वदन्ति॥९॥

खगोल कहने के बाद अब दृग्गोल कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस खगोल में ध्रुव चिन्ह के रूप में दो नलिकाएँ बांधी गई हैं उन नलिकाओं के आधार से खगोल से बाहर तीन अंगुल अंतर पर दृग्गोल की रचना करें। जो खगोलवृत्त में कहा और वक्ष्यमाण भगोलवृत्त में कहा क्रान्तिविमण्डल आदि में जो निबद्ध रहता है वह सब दृग्गोल है। भगोल संबन्धी वृत्तों से युक्त खगोल की दृग्गोल संज्ञा होती है। इस प्रकार मिश्र गोल (खगोल तथा भगोल) को ही पूर्वाचार्य दृग्गोल कहते हैं। तथा गोल क्षेत्र गोल में प्रत्यक्ष है तथा भगोल में भगोल क्षेत्र प्रत्यक्ष है। इनका उभय क्षेत्र जो अदृश्य रहता है उसको दिखाने (दर्शनार्थ) के लिए गोलबन्ध की कल्पना करके इसको दृग्गगोल संज्ञक कहा गया है।

अग्रा, कुज्या, समशंकु आदि क्षेत्र द्विगोल जाति है। भगोलवृत्त और खगोल वृत्त कथित मिलकर जो उत्पन्न होता है वह इनसे भिन्न गोलबन्ध से सम्यग् उपलक्षित नहीं होता अतः दृग्गोल किया गया है।

विशेष— लल्लाचार्य तथा वटेश्वराचार्य ने स्वकृत ग्रंथों में गोलबन्ध अध्याय में परिभाषायें इत्यादि को चार भागों में विभक्त किया है। (१) खगोल बन्ध (२) भगोल बन्ध (३) सामान्य गोल बंध तथा (४) ग्रह गोल बंध।

भास्कराचार्य ने भी इन सबमें कहा हुआ इन प्रथक्-प्रथक् शीर्षकों में ही कहा है। सब कुछ इन्हीं शीर्षकों के कह कर इन ८ तथा ९ वें श्लोकों में आचार्य कहते हैं कि इन सब में जो कुछ पूर्वाचार्यों ने कहा वह दृग्गोल है। यह नाम उन्होंने अपनी ओर से नया दिया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं भगोलबन्धमाह—

याम्योत्तरक्षितिजवत् सुदृढं विदध्यादाधारवृत्तयुगलं ध्रुवयष्टिबद्धम्।
षष्ट्यङ्कमत्र सममण्डलवत् तृतीयं नाड्याह्वयं च विषुवद्वलयं तदेव॥१०॥

अब भगोल बन्ध कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— खगोल की भांति ही क्षितिज और याम्योत्तर के समान उसी आकार के परमाधार दो वृत्त ध्रुवयष्टि पर बनावे और उसके ऊपर तीसरा वृत्त सममण्डल वत बनावे जिस पर (६०) साठ घटी तक के अंक लिखे हुए हों। इसको विषुवद्वृत्त अथवा नाडी वृत्त कहते हैं।

विशेष— आचार्य ने यह नाडी वृत्त भगोलबन्ध में कहा है और लल्लाचार्य ने खगोल में इसको कहा है।

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के गोल बन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"षडमूनि नभोगोले भगणांशैरङ्कितानि षष्ट्यङ्कम्।
विषुवदवृत्तं नाड्याह्वयं भगोले स्थितमस्याधः॥४॥"

इदानीं क्रान्तिवृत्तमाह—

क्रान्तिवृत्तं विधेयं गृहाङ्कं भ्रमत्यत्र भानुश्च भार्धे कुभा भानुतः।
क्रान्तिपातः प्रतीपं तया प्रस्फुटाः क्षेपपाताश्च तत्स्थानकान्यङ्कयेत्॥११॥

क्रांतिवृत्त का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— इस नाडीवृत्त के प्रमाण का ही एक अन्य वृत्त बनावे जो मेष राशि के आरंभ बिन्दु से आरम्भ होता हो तथा उस पर बारह राशियाँ अंकित हों। इस वृत्त पर सूर्य भ्रमण करता है। रवि से भार्ध (छै राशि) अन्तर पर भूछाया भी इस पर भ्रमण करती है। भूभा तथा क्रांतिवृत्त का मेषादि पर संपात बिन्दु, विलोम दिशा में भ्रमण करते है, इसी प्रकार ग्रहों के स्फुट पात तथा विक्षेप इस पर विलोम भ्रमण करते हैं। अतः क्रांति व संपात आदि के स्थान इस पर अंकित होते हैं।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"भ्रमति रविरत्र वलये ग्रहाश्च चन्द्रादयः स्वपातयुताः।
भूभा भार्धे भानोः स्वशीघ्रवृत्ते ज्ञसितपातौ॥८॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"भ्रमत्यजस्रं रविस्र वृत्ते भूभा भखण्डे दिननाथ राशेः।
पाता ग्रहाणां च विलोमगत्या विमण्डले स्वे मृगलाञ्छनाद्याः॥८॥"

सूर्यसिद्धान्त ज्यौतिषोपनिषदध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–
"तदाधारयुतेरुर्ध्वमयनेविषुवद्द्वयम्। विषुवत्स्थानतो भागैः स्फुटैर्भगणसञ्चरात्॥१०॥ क्षेत्राण्येवमजादीनां तिर्यग्ज्याभिः प्रकल्पयेत्। अयनादयनं चैव कक्षा तिर्यक् तथाऽपरा॥११॥

क्रांति संज्ञा तया सूर्यः सदा पर्येति भासयत्।$\frac{१}{२}$।"

आर्यभट ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा–
"मेषादेः कन्यान्तं सममुदगपमण्डलार्धमपयातं।
तौल्यादिर्मीनान्तं शेषार्धं दक्षिणेनैवः॥१॥
ताराग्रहेन्दुपाता भ्रमन्त्यजस्रमपण्डलेऽर्कश्च।
अर्काच्च मण्डलार्धे भ्रमति हि तस्मिन् क्षितिच्छाया॥२॥"

वराहमिहिर ने पं.सि. के अध्याय १४ में आचार्योक्त कहा है। यथा–
"समवृत्तपृष्ठमानं सूक्ष्मं गोलं प्रसाध्य धातुमयम्।
स्थगितार्कसमङ्कितकालभोगरेखाद्वये परिधौ॥२३॥
याम्योदग्रेखायां झषानसंध्युभयतो न्यसेद्वेधात्।
अपमांशकाङ्कतुल्यांस्तिर्यग्वेधप्रकाशकरान्॥२४॥"

इदानीं क्रान्तिवृत्तस्य निवेशनमाह—

क्रान्तिपाते च पाताद्भषट्कान्तरे नाडिकावृत्तलग्नं विदध्यादिदम्।
पाततः प्राक् त्रिभे सिद्धभागैरुदग्दक्षिणे तैश्च भागैर्विभागेऽपरे॥१२॥

क्रांतिवृत्त का निवेष—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिवृत्त के संपात बिंदु मेषारंभ से छःराशि अंतर पर क्रांति वृत्त में चिन्ह लगावे उस स्थान पर क्रांति वृत्त से नाडी वृत्त मिलता है। इस संपात स्थान से आगे तीन राशि अंतर पर दक्षिण की ओर २४ अंश की दूरी (नाडी वृत्त से) पर इस वृत्त का एक भाग रहता है तथा इतने ही अंशदूरी पर उत्तर की ओर इस का दूसरा भाग होता है। इस प्रकार इस क्रांतिवृत्त को गोल रचना करने में बाँधे।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के गो.बन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"मेषतुलादौ लग्नं नाडीवृत्तेऽपमण्डलं तदुदक्।
जिन भागैः कर्क्यादौ याम्यैस्तैरेव मकरादौ॥७॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"नाड्याह्वृत्तेऽजतुलादिलग्नं जिनांशकैर्दक्षिणतो मृगादौ।
सौम्ये तथा शीतगुमन्दिरादावपक्रमाख्यं तदुशन्ति वृत्तम्॥७॥"

मुञ्जालाचार्य ने स्वकृत किसी ग्रंथ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उत्तरतो याम्यदिशं याम्यान्तात् तदनु सौम्यदिग्भागम्।
परिसरतां गगनसदां चलनं किञ्चिद्भवेदपमे॥
विषुवदपक्रममण्डलसंपाते प्राचि मेषादिः।
पश्चात् तुलादिरनयोरपक्रमासम्भवः प्रोक्तः॥
राशित्रयोन्तरेऽस्मात् कर्कादिरनुक्रमान्मृगादिश्च।
तत्र च परमा क्रान्तिर्जिनभागमिताथ तत्रैव॥"

इदानीं विमण्डलमाह—

नाडिकामण्डले क्रान्तिवृत्तं यथा क्रान्तिवृत्ते तथा क्षेपवृत्तं न्यसेत्।
क्षेपवृत्तं तु राश्यङ्कितं तत्र च क्षेपपातेषु चिह्नानि कृत्वोक्तवत्॥१३॥
क्रान्तिवृत्तस्य विक्षेपवृत्तस्य च क्षेपपाते सषड्भे च कृत्वा युतिम्।
क्षेपपाताग्रतः पृष्ठतश्च त्रिभे क्षेपभागैः स्फुटैः सौम्ययाम्ये न्यसेत्॥१४॥
शीघ्रकर्णेन भक्तास्त्रिभज्यागुणाः स्युः परक्षेपभागा ग्रहाणां स्फुटाः।
क्षेपवृत्तानि षण्णां विदध्यात् पृथक् स्वस्ववृत्ते भ्रमन्तीन्दुपूर्वा ग्रहाः॥१५॥

अब विमण्डल बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— नाडीमण्डल से जिस प्रकार क्रांतिवृत्त न्यास किया है, क्रांतिवृत्त से भी उसी तरह क्षेपवृत्त का न्यास करे। क्षेपवृत्त में भी राश्यादि अंकित करे तथा उसका मेषारंभ बिन्दु पर संपात करे तथा उस स्थान पर चिन्ह लगावे। फिर क्रांतिवृत्त तथा विमण्डल का इस प्रकार क्षेपसंपात चिन्ह लगा कर स्थातिप करके उससे छः राशि अन्तर पर उसका फिर दूसरे स्थान पर संपात करे। क्षेपसंपात के आगे तीन राशि अन्तर पर क्रांतिवृत्त के उत्तर की ओर स्फुट क्षेप तुल्य अंशों पर तथा पीछे दक्षिण की ओर स्थित करके विमण्डल का निवेश।

पठित (परम) विक्षेप अंशों को त्रिज्या से गुणा करके शीघ्रकर्ण से विभक्त करने से ग्रहों के स्फुट विशेष अंश प्राप्त होते हैं। इस प्रकार चंद्रादि के छः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विमण्डल बनावे जिनमें अपने-अपने विमण्डल में ग्रह भ्रमण करते हैं। यह गणना भास्कराचार्य ने ही करना बताया। पूर्वाचार्यों ने पठित शर को ही विमण्डल रचना में ग्रहण किया है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के गो. बं.धिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विक्षेपमण्डलदलं पूर्वं क्षेपांशकैरुदक् पातात्।
षड्भयुताद् दक्षिणतो दिङ्मण्डलार्धं द्वितीयं स्यात्॥६॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विमण्डलार्धं निजपातसङ्गादुदक् स्वविक्षेपलवैर्द्वितीयम्।
सभार्धपाताच्च विमण्डलार्धं विक्षेपभागैर्दिशि दक्षिणस्याम्॥६॥"

सूर्य सिद्धान्त के ज्योतिषोपनिषदध्याय में आचार्योक्त बात सूक्ष्म में कही है। यथा—

"चन्द्राधाश्च स्वकैः पातैरपमण्डलमाश्रितैः॥१२॥
ततोऽपकृष्टा दृश्यन्ते विक्षेपान्तेष्वपक्रमात्।$\frac{१}{२}$।"

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु. सि. के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"सौम्यं विमण्डलार्धं प्रथमं याम्यं द्वितीयमेतेषु।
चन्द्रकुजजीवमन्दा भ्रमन्ति शीघ्रेण बुध शुक्रौ॥५४॥"

सिद्धान्तशेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"विमण्डलार्धं प्रथमं निजेषुभागैरुदक् चोत्तरपातचिन्हात्।
सषड्गृहाद दक्षिणतो द्वितीयमर्धं तथापक्रमवृत्तवच्च॥
एतेषु च स्वस्व विमण्डलेषु चन्द्रार जीवार्कसुता भ्रमन्ति।
निजोच्चवृत्तेन चलाभिधेन किलोशनश्चान्द्रमसायिनी च॥"

आर्यभट ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अपमण्डलस्य चन्द्रः पाताद्यात्युत्तरेण दक्षिणतः।
गुरुकुजकोणाश्चैवं शीघ्रोच्चेनापि बुध शुक्रौ॥३॥"

इदानीं क्रान्ति विक्षेपं चाह—

नाडिकामण्डलात् तिर्यगत्रापमः क्रान्तिवृत्तावधिः क्रान्तिवृत्ताच्छरः।
क्षेपवृत्तावधिस्तिर्यगेवं स्फुटो नाडिकावृत्तखेटान्तरालेऽपमः॥१६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रान्ति तथा विक्षेप ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— नाडीवृत्त से (ध्रुवामि मुख) लंबवत (क्रां.वृ.स्थ ग्रह) दूरी क्रांति (ग्रह की) होती है तथा क्रान्तिवृत्त से (वि.मं.स्थ ग्रह की) लम्बवत् दूरी शर (ग्रह का) होता है। विमण्डलस्थ ग्रह की क्रांतिवृत्त से लम्बवत दूरी (अंतर) विक्षेप होता है तथा विमण्डलस्थ ग्रह की नाडीवृत्त से लम्बवत दूरी (अंतर) स्फुट क्रांति होती है।

इदानीं क्रान्तिपातमाह—

विषुवत्क्रान्तिवलययोः संपातः क्रान्तिपातः स्यात्।
तद्भगणाः सौरोक्ता व्यस्ता अयुतत्रयं कल्पे॥१७॥
अयनचलनं यदुक्तं मुञ्जालाद्यैः स एवायम्।
तत्पक्षे तद्भगणाः कल्पे गोऽङ्गर्तुनन्दगोचन्द्राः १९९६६९॥१८॥
तत्संजातं पातं क्षिप्त्वा खेटेऽपमः साध्यः।
क्रान्तिवशाच्चरमुदयाश्चरदललग्नागमे ततः क्षेप्यः॥१९॥

सूर्य-प्रभा टीका— विषुवद्वृत्त तथा क्रांतिवृत्त का संपात बिन्दु क्रांतिपात होता है। इसका भगण सौरसिद्धान्त में कहे अनुसार विपरीत दिशा में होता है। मुञ्जालाचार्य ने अयनचलन में जैसा कहा है उसके अनुसार अयन चलन के एक कल्प में १९९६६९ भगण होते हैं। इनसे प्राप्त अयन चलन युक्त करके ग्रहों की क्रांति साधित करनी चाहिये। क्रांति के कारण चर, उदयास्त, चरार्ध, लग्न प्राप्त हो उनमें इस अयन चलन को युत (क्षेप) करे।

विशेष— आचार्य ने स्वकृत टीका में अयन चलन के संबंध में कुछ विशेष बातें कही हैं। क्रांतिसंपात चलन नहीं होता, यह प्रत्यक्ष उपलब्ध है अतः ऐसा नहीं कह सकते। आचार्य कहते हैं कि ब्रह्मगुप्तादि निपुण गणकों ने भी इसके लिए क्यों नहीं कहा जबकि उनके समय में इसकी स्वल्प उपलब्धि हो चुकी थी? इसके लिए वे स्वयं कारण कहते हुए कहते हैं कि उस समय पर अयन चलन स्वल्प मात्रा में उपलब्ध होने के कारण स्पष्टता से ज्ञात नहीं हो सका इस लिए (शायद) उन्होंने नहीं कहा। लेकिन अब यह बहुत अधिक हो जाने के कारण उपलब्ध होता है, अतः उसकी गति का ज्ञान करना चाहिये। गणित स्कन्ध में उपपत्ति से प्राप्त मान तथा आगम प्रमाण होता है तो मन्दोच्चपात के भगण आगम प्रमाण से इनको कैसे कहा है यह नहीं बताया गया है। ग्रहों के मन्दफलाभाव स्थान प्रत्यक्ष उपलब्ध होते हैं। भगण से उपलब्ध स्थान गणित

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के द्वारा प्राप्त होते हैं उससे भगण के द्वारा वार्षिक तथा दैनिक गति ज्ञात होती है। यदि भगण से प्राप्त स्थान की अपेक्षा अन्य स्थान प्राप्त होता है तो इनमें से गति का प्रमाण कौन-सा होगा। तो आचार्य के समय में प्राप्त तात्कालिक अयन की उपलब्धि में कौन सी गति स्वीकार की जावे। यदि पुनः लम्बे समय पश्चात इसमें बड़ा अन्तर होगा तब ब्रह्मगुप्तादि आचार्यों के समान महान बुद्धि वाले आचार्य इसको ज्ञात करेंगे। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार एक महायुग में नक्षत्र चक्र ६०० बार पूर्व दिशा में परिलम्बित होता है तथा मुञ्जालाचार्य के अनुसार एक कल्प में१९९६६९ भगण होते हैं। आचार्य कहते हैं कि यदि अयन चलन अंश इनके द्वारा उपलब्ध होते हैं तो वहाँ क्रान्तिपात होगा। क्रान्तिपात की गति विलोम होने के कारण उसके तुल्य अंश ग्रह में युक्त करके क्रान्ति साधित करे। इस सब आचार्योक्त कथन कहकर भी आचार्य ने स्वयं अयन चलन के विषय में अपनी कोई निश्चित गणना अथवा सूत्र नहीं कहा, और न ही किसी अन्य आचार्य के कथन को सही अथवा गलत कहा। वे स्वयं भी इस के लिए कोई निर्णय नहीं कर सके। मुञ्जालाचार्य ने स्वकृत किसी ग्रंथ में इस प्रकार कहा है। यथा–

"उत्तरतो याम्यदिशं याम्यान्तात् तदनु सौम्यदिग्भागम्।
परिसरतां गगनसदां चलनं किंचिद्भवेदपमे॥
विषुवदपक्रममण्डलसंपाते प्राचि मेषादिः।
पश्चात् तुलादिरनयोरपक्रमासम्भवः प्रोक्तः॥
राशित्रयोन्तरेऽस्मात् कर्कादिरनुक्रमान्मृगादिश्च।
तत्र च परमा क्रान्तिर्जिनभागमिताथ तत्रेव॥
निर्दिष्टोऽयन सन्धिश्चलनं तत्रेव सम्भवति।
तद्भगणाः कल्पे स्युर्गोरसरसगोऽङ्कचन्द्रमिताः॥"

ये श्लोक म.म. सुधाकर द्विवेदी तथा बापूदेव शास्त्री ने उद्धृत किये हैं। लेकिन ये अभी तक मुञ्जालाचार्य कृत किसी उपलब्ध ग्रंथ में नहीं देखे गये हैं, ऐसा विद्वानों का मत है।

ब्रह्मसिद्धान्त में अयन चलन के लिए इस प्रकार कहा है। यथा–

"कर्कादिस्थाः मृगादिस्थाः सृष्टेरुदगवाङ्मुखम्।
प्रत्यब्दे यान्ति याम्योदग्गमने विहितेऽपि यत्॥
तत्पश्चाच्चलितं चक्रमुपचारोऽयमित्यपि।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं विक्षेपपातानाह—

एवं क्रान्तिविमण्डलसंपाताः क्षेपपाताः स्युः।
चन्द्रादीनां व्यस्ताः क्षेपानयने तु ते योज्याः॥२०॥
मन्दस्फुटो द्राक्प्रतिमण्डले हि ग्रहो भ्रमत्यत्र च तस्य पातः।
पातेन युक्ताद्गणितागतेन मन्दस्फुटात् खेचरतः शरोऽस्मात्॥२१॥
पातेऽथवा शीघ्रफलं विलोमं कृत्वा स्फुटात् तेन युताच्छरोऽतः।
चन्द्रस्य कक्षावलये हि पातः स्फुटाद्विधोर्मध्यमपातयुक्तात्॥२२॥

विक्षेप पात कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— इस प्रकार क्रांतिवृत्त तथा ग्रह विमण्डल के संपात को क्षेपपात कहते हैं। मन्दस्फुट ग्रह शीघ्रप्रतिमण्डल में भ्रमण करता है तथा वहीं उसका पात स्थित होता है। विक्षेप पातयुक्त मन्दस्पष्ट ग्रह का शर साधन करे। पात में शीघ्रफल का विलोम संस्कार करने से स्पष्ट पात प्राप्त होता है। स्पष्ट पात के द्वारा स्पष्ट शर ज्ञात होता है। चंद्रमा में शीघ्र प्रतिमण्डल का अभाव होने से चन्द्र की कक्षा वलय ही पात होने से मन्दस्पष्ट चन्द्रमा ही स्पष्ट चन्द्रमा होता है। अतः पात सहित मध्यम चन्द्रमा के द्वारा चन्द्र का शर साधन करना चाहिये।

विशेष— पात का अर्थ पतन से है तथा पतन का अर्थ मिलने से है। जिस प्रकार क्रांतिमण्डल तथा नाडीमण्डल के मिलान बिन्दु को क्रांतिपात (मेषारंभ) कहा है उसी पर क्रांतिवृत्त तथा शरमण्डल (ग्रह मंडल) का संपात शर पात कहलाता है। स्पष्ट ग्रह में क्रांतिपात युक्त करके (सायन ग्रह) जिस प्रकार क्रांतिसाधन करते हैं उसी प्रकार स्पष्ट ग्रह में शरपात युक्त करके शर साधन क्यों नहीं कर सकते? इसका उत्तर कहते हैं– कि मन्द स्फुट ग्रह शीघ्र प्रतिवृत्त में रहता है। शर, पात के शीघ्रप्रतिमण्डल में भ्रमण से उत्पन्न होता है। क्रमण के अर्थ से क्रांति शब्द होता है। यह क्रमण किस प्रकार होता है? नाडीमण्डल से लंबवत् दूरी क्रांति होती है। यह पूर्व में कहा गया है। इसी प्रकार क्रांतिवृत्त को क्रमण करे वह चंद्रादि की (क्रांति) मध्यम शर होती है।

अतः क्रांतिमण्डल से क्षेपवृत्त (ग्रह मण्डल) की दूरी शर होती है। नाडीमण्डल से क्षेपवृत्त की दूसरी चन्द्रादि ग्रह नक्षत्रों की स्पष्ट क्रांति होती है। क्रांतिपात स्थान पर स्थित स्पष्ट ग्रह की स्पट क्रांति नहीं होती और शरपात स्थान पर स्थित मंद स्पष्ट ग्रह का शर नहीं होता। क्रांतिपात अंकित स्थान

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(मे.तु.) से तीन राशि अन्तर पर पीछे की ओर परम मध्यम क्रांति २४ अंश होती है। शरपात अंकित स्थान से आगे तथा पीछे तीन राशि अन्तर पर शीघ्रकर्ण से पठित ग्रह के परम शर अंशों को विभक्त करके त्रिज्या से गुणा करने से प्राप्तफल तुल्य दूरी पर उस ग्रह का शर होता है। यह बात सरल है।

उच्च ग्रह मेषारंभ से अनुलोम चलता है अतः ग्रह तथा उच्च के अंतर का फल साधित करे। एक दिशा में होने से उनके गति अन्तर तुल्य उनके बीच में अन्तर होता है, यह स्पष्ट है। मेषादि से अनुलोम गतिक ज्ञात ग्रह की राश्यादि और प्रतिलोम गतिक ज्ञात पात की राश्यादि का अन्तर पात तथा ग्रह के योग करने से प्राप्त होगा। जैसे नन्दकान से पश्चिम दिशा में आठ योजन दूरी पर प्रयाग स्थित है तथा वाराणसी से पंद्रह योजन पूर्व की ओर कुसुम पुर स्थित है तो इन के मध्य में अन्तर २३ (तेईस) योजन होता है। वक्रि शनी से (विलोम गति) उसके गतपात को चक्र (३६०°) में घटाने से प्राप्त शेष राश्यादि अवयव तुल्य दूरी पर मेषारंभ से अनुलोम होते हुए पात चिन्ह ज्ञात होता है। इस पात तथा ग्रह के एक दिशा में (गति) स्थित होने से इनका अन्तर करे। वक्रि ग्रह के आज के ग्रह चिन्ह के स्पष्टग्रह राश्यादि अवयव दूसरे दिन के ग्रह चिन्ह से अनुलोम होते हैं। अतः धन अयनांश युत स्पष्ट ग्रह से वक्रिग्रह की विपरीत जाकर ग्रह की क्रांति साधन करे।

क्रांतिपात स्थानों पर स्पष्ट ग्रह की स्पष्ट क्रांति नहीं होती क्योंकि वहाँ क्रां.वृत्त तथा नाडीवृत्त का सम्पात होता है। स्पष्ट क्रांति अभाव दूसरे प्रकार से भी हो सकता है। जब मध्यम क्रांति शर रूप में हो। क्रांतिपात युत स्पष्ट ग्रह से स्पष्ट क्रांति साधन करके शरपात युत मन्दस्पष्ट ग्रह से शर साधन करके क्रांतिपात तथा शरपात गति विपरीत होने से अर्थात असमानता होने से मन्दस्पट और स्पष्ट का अन्तर न हो सकने से सभी का एक साथ न होना संभव नहीं होता। मध्यम क्रांति न होने से स्पष्ट ग्रह नाडिवृत्त पर होता है। प्रतिदिन स्पष्ट क्रांति न होने से मध्यम क्रांति की उत्पत्ति को बाधित करता है। मध्यम क्रांति और शर के तुल्य होने से विपरीत दिशा में होने से उनको घटाना संभव नहीं होता। इस प्रकार मध्यम क्रांति नहीं होने पर वहाँ शर भी नहीं होता।

ग्रह अपने विमण्डल में भ्रमण करता है। ग्रह के विमण्डल के अवयव नाडी मण्डल से यदि सम्पात करते हैं तो तब स्पष्ट क्रांति का अभाव होता है। क्रांतिवचृत्तस्थ स्पष्ट चिन्ह यदि नाडी मण्डल में हो तो वहाँ मध्यम क्रांति का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अभाव होता है। ग्रह शराग्र पर स्थित हो तो स्पष्ट क्रांति का अभाव नहीं होता।

यन्त्रादि से यदि शर उपलब्ध न हो तो उसका ग्रहाभाव ग्रहण करे। शराभाव होने से गणितागत पात चिन्ह पर अवश्य ग्रह होता है। मेषादि से गणितागत भ आरंभ से पात विलोम दिशा में चिन्ह करे। उस चिन्ह से छः राशि अन्तरित स्थान पर मेषारंभ से भचक्र की दिशा में अनुलोम गति करता हुआ ग्रह अवश्य होता है। वहाँ यदि भोमादि का शराभाव दृष्ट हो तो मन्दस्पष्ट पात चिन्ह पर दृष्ट होता है। अतः शीघ्रपतिमण्डल में भ्रमण करता हुआ मन्दस्फुट ग्रह होता है। इत्यादि। यह उचित कहा है।

इससे गणितागत पात मन्दस्फुट में युक्त करना सिद्ध होता है। विलोम शीघ्रफल संस्कृत पात युत स्पष्ट ग्रह से पातसाधन कर के फल से विशेष युक्ति कही है– 'पातेऽथवेति'।

भौमादि के पात मन्दस्पष्ट स्थान से शीघप्रतिमण्डल में स्थित होते हैं तो चन्द्र का पात कहाँ होता है? क्योंकि चन्द्र का शीघ्रप्रति मण्डल नहीं होता। चन्द्र का पात उसकी कक्षा वलय में ही स्थित होता है। अतः ''स्फुटाद्विधोर्मध्यमपात युक्तादि'' कहा है।

ब्र.गुप्त ने ब्र.स्फु. सि. के ग्रहयुत्यधि. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''मन्दफल स्फुटशशिनो विक्षेपो भौमजीवरविजानाम्।
मन्दफलाव्यस्फुट शीघ्राद् बुधशुक्रयोरथवा॥९॥''

सि.शे.में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

मृदुफल स्फुट गुर्विनजासृजांशशधरस्य च बोधन शुक्रयोः।
अपरथा कृत मन्दे फलाच्चलात् कथितवत् क्रियते शरसाधनम्॥''

इदानीं ज्ञशुक्रयोर्विशेषमाह—

ये चात्र पातभगणाः पठिता ज्ञभृग्वोस्ते शीघ्रकेन्द्रभगणैरधिका यतः स्युः।
स्वल्पाः सुखार्थमुदिताश्चलकेन्द्रयुक्तौ पातौ तयोः पठितचक्रभवौ विधेयौ॥२३॥
चलाद्विशोध्यः किल केन्द्रसिद्ध्यै केन्द्रे सपाते द्युचरस्तु योज्यः।
अतश्चलात् पातयुताज्ज्ञभृग्वोः सुधीभिराद्यैः शरसिद्धिरुक्ता॥२४॥

स्फुटोनशीघ्रोच्चयुतौ स्फुटौ तयोः पातौ भगोले स्फुट एव पातः।

बुध शुक्र के लिए विशेष कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— बुध शुक्र के शीघ्रोच्चों में पात जोड़कर उनके केन्द्र

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्ञात करके उससे उनके विक्षेप ज्ञात करने से वे शीघ्रोच्च स्थान के शर होते हैं। वे ग्रह स्थान के शर नहीं होते क्योंकि ग्रह तो शीघ्रोच्च से अन्यत्र स्थित होते हैं। बुध शुक्र के जो पात भगण कहे गये हैं उनमें उनके शीघ्रकेन्द्र के भगण भी सम्मिलित होते हैं क्योंकि पात के भगण अल्प होते हैं। शीघ्रोच्च में से ग्रह को घटाने से केन्द्र (शीघ्र) होता है। अतः पात को मंदस्पष्ट में जोड़ने से शरसाधनार्थ केंद्र होता है क्योंकि तुल्य पदार्थ जोड़ने तथा घटाने से शीघ्रो. पात योग शेष रहता है।

किंतु शीघ्रच्च में से मन्दस्फुट ग्रह घटाने से प्रतिमंडल में शीघ्र केन्द्र होता है। इसको पात में जोड़ देते हैं। इस प्रकार करने से विक्षेप केन्द्र मन्दफल के अन्तर्वर्ति हो जाता है। ग्रहच्छायाधिकार में बुध शुक्र पात स्फुट करने में उनके शीघ्रकेंद्र युक्त किये गये हैं। अतः शीघ्रोच्च में से मन्दस्फुट घटाने से शीघ्रकेन्द्र में पातयुक्त होता है। अतः वहाँ मन्दफल अन्तर स्वीकारते हैं। मंदफल में पात घटावे। भगोल में कक्षा वृत्त ही क्रांतिवृत्त होता है। जहाँ विमण्डल है वहीं पर स्फुट ग्रह होता है। अतः उस स्फुट ग्रह में पात युक्त करने से विक्षेप केन्द्र होता है। अतः स्फुट पात स्थान पर इनके संपात करके वहाँ से तीन राशि अन्तर पर, परमविक्षेप अंश से स्फुटित शर पूर्ववत उत्तर तथा दक्षिण की ओर विन्यास करे।

इस प्रकार विमण्डल में स्फुट ग्रह का स्थान न्यास करने से ग्रह स्थान पर विक्षेप, स्फुट विक्षेप तथा गणितागत विक्षेप तुल्य दृश्य होते हैं।

ब्र.स्फु.सि. के ग्रहयुत्यधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"बुधसितपातेऽव्यस्तं मन्दफलमुपान्त्यशीघ्रफलम्।
शेषाणां स्फुटपाताद्विक्षेपो मध्यमायोगात्॥८॥"

इदानीं ग्रहगोले विशेषमाह—

ग्रहस्य गोले कथितापमण्डलं प्रकल्प्य कक्षावलयं यथोदितम्॥२५॥
निबध्य शीघ्रप्रतिवृत्तमस्मिन् विमण्डलं तत् पठितैः शरांशैः।
मध्योऽत्र पातो द्युसदां ज्ञभृग्वोः स्वशीघ्रकेन्द्रेण युतस्तु देयः॥२६॥

ग्रह गोल में विशेष—

सूर्य-प्रभा टीका— भगोल को ग्रहगोल कल्पित करे। वहीं पर पात स्फुट होता है। ग्रह कक्षावृत्त को क्रांतिवृत्त समझ कर पूर्वोक्तनुसार शीघ्रप्रतिवृत्त में पठित शर के अंशों के अनुरूप विमण्डल निबद्ध करना चाहिये। बुध शुक्र

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के गणितागत पात में उनके मध्यम शीघ्र केन्द्र को युत करके मध्यमपात सिद्ध करके उसको मन्दस्पष्ट ग्रह में युत करे।

विशेष— कक्षावृत्त को क्रांतिवृत्त समझ कर वहाँ छेद्यकोक्त विधि से शीघ्रप्रतिवृत्त बद्ध करके प्रतिमण्डल में गणितागत पात मेषादि से विलोम गणना करके चिन्ह लगावे तथा त्रिज्या व्यासार्ध का एक अन्यवृत्त राश्यादि अंकित करके विमण्डलनामक वृत्त बनावे तथा वहाँ भी मेषादि से विलोम गणना कर पाताग्र पर चिन्ह लगावे। प्रतिमण्डल तथा विमण्डल के एक संपात चिन्ह से छः राशि अन्तर पर दूसरा संपात चिन्ह करे। पात से आगे-पीछे तीन राशि अन्तर पर पठित परम विक्षेप अंश तुल्य प्रतिवृत्त के उत्तर तथा दक्षिण में विमण्डल का विन्यास करे। वहाँ मन्दस्फुट गति से ग्रह स्वतन्त्र रूप से भ्रमण करता है। फिर मेषादि से अनुलोम मन्दस्फुट ग्रह विमण्डल में बनावे। उस स्थान से प्रतिमण्डल जितने अन्तर पर रहता है उतना उस स्थान पर विक्षेप नहीं होता क्योंकि वृत्त संपात स्थान पर ग्रह का विक्षेप नहीं होता, और तीन राशि अन्तर पर परम विक्षेप होता है। इनके मध्य में अनुपात से होता है। अब वृत्त संपात तथा ग्रह का अन्तर ज्ञात करे। यह अन्तर पात और ग्रह के योग के तुल्य होता है क्योंकि पात की विलोम गति होती है। यह योग शर ज्ञात करने के लिए केन्द्र होता है। अनुपात किया कि यदि त्रिज्या तुल्य केन्द्रज्या में परमशर होता है तो अभीष्ट केन्द्र में क्या होगा? प्राप्तफल प्रतिमण्डल तथा विमण्डल का लम्बवत अन्तर होता है। विमण्डलस्थ ग्रह से भूमध्य गत सूत्र भूग्रहान्तर तुल्य है यह शीघ्र कर्ण है। अनुपात किया कि यदि भूमध्य से शीघ्र कर्णाग्र पर इतना विक्षेप होता है तो त्रिज्याग्र पर कितना होगा? अर्थात

$$\text{विक्षेप} = \frac{\text{विक्षेप परम} \times \text{त्रिज्या}}{\text{ग्र. शीघ्रकर्ण}}$$

पूर्व अनुपात से,

$$\text{इष्टशर} = \frac{\text{परमशर} \times \text{इष्टकेंद्रज्या}}{\text{त्रिज्या}} = \text{प्र.मं. तथा वि.मं. का लंबवत अंतर।}$$

इन दोनों से कक्षावृत्त तथा प्रतिमण्डल सूत्र का लम्बवत् अंतर

$$= \frac{\text{केन्द्रज्या} \times \text{परमशर}}{\text{ग्र. शीघ्रकर्ण}} \text{ यह स्फुट शर है।}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीमहोरात्रवृत्तमाह—

ईप्सितक्रान्तितुल्येऽन्तरे सर्वतो नाडिकाख्यादहोरात्रवृत्ताह्वयम्।
तत्र बद्ध्वा घटीनां च षष्ट्याङ्कयेदस्य विष्कम्भखण्डं द्युजीवा मता॥२७॥

अब अहोरात्र वृत्त कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— नाडीवृत्त के उत्तर व दक्षिण की ओर इष्ट क्रांति तुल्य अंतर पर जो वृत्त निबद्ध होते हैं वे अहोरात्र वृत्त होते हैं। ये वृत्त नाडीवृत्त के समानान्तर हाते हैं, यह स्पष्ट है। इन वृत्तों में उन-उन दिन में रवि भ्रमण करता है। इन वृत्तों के व्यासार्ध को द्युज्या कहते हैं। इनमें घटियों के साठ भाग अंकित होते हैं।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के गो.बंध १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"इष्टक्रान्तेरग्रे तद्द्युज्यामण्डलं च बध्नीयात्।
मध्येऽस्य ग्रहगोला भवन्ति वृतैर्भगोलस्य॥११॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गो. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"नाडीवृत्तात् क्रान्तिभागैरजादौ भान्तद्युज्यामण्डलानां त्रयं स्यात्।
कर्क्यादौ वा व्यस्तमेवं तुलादौ षण्णामिष्टैः क्रान्तिभागैर्यथेष्टम्॥१०॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"मेषाद् वृत्त त्रितयमपमांशैर्गृहाणां त्रयाणां
नाडीवृत्तादिदमुदगपि व्यत्ययात् कर्कटाच्च।
षण्णां जूकात् कथितमनुदक् चैवमिष्टा-
पमांशैः स्वाहोरात्राह्वयमभिहितं मण्डलं गोलविद्भिः।"

ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्म.स्फुट.सि. के गो.बं. में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"दिषुवदुवग्बध्नीयात् क्रान्त्यंश समान्तरेष्वजादीनाम्।
वृत्तत्रितयं व्यस्तं कर्क्यादीनां तुलादिनाम्॥५७॥
विषुवद्दक्षिणतोऽन्यन्मकरादीनां तदेव विपरीतम्।
स्वाहोरात्राण्येषां व्यासाः पृथगेवमिष्टमपि॥५८॥"

इदानीमन्यदाह—

अथ कल्प्या मेषाद्या अनुलोमं क्रान्तिपाताङ्कात्।
एषां मेषादीनां द्युरात्रवृत्तानि बध्नीयात्॥२८॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाडीवृत्तोभयतस्त्रीणि त्रीणि क्रमोत्क्रमात् तानि।

अब अन्य बात कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिपात अंकित स्थान से मेषारंभ कल्पित करके क्रांतिवृत्त पर मेषादि से तीस-तीस अंश की दूरी पर पूर्वोक्त प्रकार से अहोरात्रवृत्तों को बांधे। इनके नाडीवृत्त में तुल्य स्थान तीन-तीन होते हैं। इस प्रकार क्रमउत्क्रम से सायन सूर्य की बारह राशि होती है।

विशेष— वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। पूर्व श्लोक की व्याख्या में उद्धृत श्लोक देखें।

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दिषुवदुदग् बघ्नीयात् क्रान्त्यंश समान्तरेष्वजादीनाम्।
वृत्तत्रितयं व्यस्तं कर्क्यादीनां तुलादिनाम्॥५७॥
विषुवद्दक्षिणतोऽन्यन्मकरादीनां तदेव विपरीतम्।
स्वाहोरात्राण्येषां व्यासाः पृथगेवमेष्टमपि॥५८॥"

लल्लाचर्य ने शि.धी. वृ. ग्रंथ को गो.बंधाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"वृत्तत्रयमपमांशैर्नाडीवृत्ताद् भवत्यजादीनाम्।
व्यस्तं कर्क्यादीनामेवं षण्णां तुलादीनाम्॥१०॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"मेषाद् वृत्तत्रितयमपमांशैर्गृहाणां त्रयाणां
नाडीवृत्तादिदमुदगपि व्यत्ययात् कर्कटाच्च।
षण्णां जूकात् कथितमनुदक् चैवमिष्टाममांशैः
स्वहोरात्राह्वयमभिहितं मण्डलं गोलविद्भिः॥"

इदानीमस्योपसंहारमाह—

एष भगोलः कथितः खेचरगोलोऽयमेव विज्ञेयः॥२९॥
अत्रापमण्डले वा सूत्राधारैरधश्च तस्यैव।
शन्यादीनां कक्षा बध्नीयादूर्णनाभजालाभाः॥३०॥
बद्ध्वा भगोलमेवं यष्ट्या यष्टिं खगोलनलिकान्तः।
प्रक्षिप्य भ्रमयेत् तं यष्ट्याधारं स्थिरौ खदृग्गोलौ॥३१॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अब इस अध्याय का उपसंहार करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस प्रकार से ये सब भगोल में कहा है उसी प्रकार ग्रह गोल में भी सभी वृत्तादि को बांधे। स्थापित करे। यहाँ भगोल में जहाँ क्रांतिवृत्त है उससे नीचे क्रमशः एक के नीचे एक शनि, गुरु आदि ग्रहों की कक्षा, सूत्र के आधार से मकडी के जाले के सदृश बांधे।

उक्त प्रकार से भगोल को यष्टि के बांध कर यष्टि के आगे के दोनों सिरों को दो नलिकाओं में पिरोकर खगोलदृग्गोल बनाकर भगोल का भ्रमण दर्शावे।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के गोलबन्धाधिकार की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ त्रिप्रश्नवासना

तत्रादौ चरस्थानमाह—

उन्मण्डलक्ष्मावलयान्तराले द्युरात्रवृत्ते चरखण्डकालः।
तज्ज्यात्र कुज्या चरशिज्जिनी स्याद्व्यासार्धवृत्ते परिणामिता सा॥१॥

सर्वप्रथम चर स्थान कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— क्षितिज तथा उन्मण्डल के मध्य अहोरात्रवृत्त का जितना काल होता है उसको चर खण्डकाल कहते हैं। उन्मण्डल में चर तुल्य चिन्ह करके उससे निबद्धसूत्र का अर्ध कुज्या होती है। इसको त्रिज्यावृत्त में परिणत करने से चरज्या होती है। अर्थात्

$$\text{चर} = \frac{\text{उन्मण्डल तथा क्षितिज के मध्य अ.रा.वृत्त का चाप} \times \text{त्रिज्या}}{\text{ध्रुव से उन्मंडल में चर चिन्ह की दूरी}}$$

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के गो.बन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"क्षितिजोन्मण्डल योर्यत्स्वाहोरात्रातरं चरदलं तत्।"

सूर्यसिद्धान्त के ज्योतिषोपनिषदध्याय १३ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"ज्ञेया चरदलज्या च विषुवत्क्षितिजान्तरम्॥१४॥
कृत्वोपरि स्वकं स्थानं मध्ये क्षितिजमण्डलम्॥१५॥"

इदानीं लङ्कास्वदेशार्कोदययोन्तरं चरकालमाह—

निरक्षदेशे क्षितिजाख्यवृत्तमुन्मण्डलं तज्जगुरन्यदेशे।
स्वे स्वे कुजेऽर्कस्य समुद्गमोऽस्माच्चरार्धमर्कोदययोस्तु मध्ये॥२॥

सूर्य-प्रभा टीका— लंका तथा स्वस्थान के सूर्योदय का अन्तर चरकाल— अन्यसभी देशों के लिए निरक्ष देश का क्षितिजवृत्त उन्मंडल होता है। स्व स्व देश क्षितिज और उन्मण्डल में सूर्योदय के मध्य अन्तर चरार्ध तुल्य होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं चरफलस्य धनर्णवासनामाह—

आदौ स्वदेशेऽथ निरक्षदेशे सूर्योदयो ह्यस्तमयोऽन्यथातः।
ऋणं ग्रहेऽस्मादुदये स्वमस्ते फलं चरोत्थं रविसौम्यगोले॥३॥
याम्ये विलोमं खलु यत्र यस्मादुन्मण्डलं स्वक्षितिजादधस्तात्।
नाड्याह्वयादुत्तरयाम्यभागौ गोलस्य तावुत्तरयाम्यगोलौ।४॥

चरफल का धनर्ण करना—

सूर्य-प्रभा टीका— (उत्तरगोल में) सर्वप्रथम स्वदेश में (क्षितिज) उसके पश्चात् निरक्ष देश (क्षितिज) में सूर्योदय होता है तथा सूर्यास्त इसके विपरीत होता है अर्थात निरक्षदेश में सूर्यास्त प्रथम तथा स्वदेश में सूर्यास्त तत्पश्चात् होता है। चरफल को स्वदेश के उदित ग्रह में ऋण तथा अस्तकालिक ग्रह में धन करने से उत्तर गोल में रवि होता है। दक्षिण गोल में इसके विलोम क्रिया करते है क्योंकि वहाँ उन्मण्डल स्वक्षितिज के नीचे होता है। गोल के उत्तर दक्षिण भाग में अंशों के अनुसार असु होते हैं।

विशेष— लल्लाचार्य शि.धी.वृ० ग्रंथ के मध्यगति वासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उन्मण्डलादधस्तात् क्षितिजमुदग् दक्षिणे तदुपरिष्टात्।
तेन प्रागुदयोऽस्तमयः स्यात् तेन रविचारेण॥९॥
याम्ये गोले व्युदयश्चिरेण शीघ्रं भवेद् यतोऽस्तमयः।
तेन तदन्तरभूतं कालफलमृणधने स्वमृणम्॥१०॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. गोलवासना में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उन्मण्डलादुदगधः क्षितिजं तदूर्ध्वं याम्ये उदगत इनः प्रथमं चरेण।
दृष्टं समेत्य चिरमस्तमुपैति याम्ये पश्चादुदेति विवरासुभिरेतयोश्च॥८॥
निजभुक्त्यनुपातः फलं क्षयवृद्धयाह्नमतो दिवौकसाम्।$\frac{१}{२}$।"

इदानीं दिननिशोर्लघुत्वमहत्त्वे हेतुमाह—

अतश्च सौम्ये दिवसो महान् स्याद्रात्रिर्लघुर्व्यस्तमतश्च याम्ये।
द्युरात्रवृत्ते क्षितिजादधःस्थे रात्रिर्यतः स्याद्दिनमानमूर्ध्वे॥५॥
सदा समत्वं द्युनिशोर्निरक्षे नोन्मण्डलं तत्र कुजाद्यतोऽन्यत्।

दिन-रात्रि का बड़ा छोटा होने का कारण—

सूर्य-प्रभा टीका— अतः उत्तर गोल में दिन बड़े तथा रातें छोटी होती है तथा दक्षिण गोल में विपरीत होता है। अहोरात्र वृत्त जितना क्षितिज के नीचे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थित होता है उतनी रात्रि होती है तथा जितना ऊपर रहता है उतना दिन होता है। निरक्ष देश में दिन-रात्रि सदा समान रहते हैं क्यों उन स्थानों पर अन्य दूसरा उन्मण्डल नहीं होता, जैसे अन्य स्थानों पर होता है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के म.ग.वा. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अतएव महान दिवसस्तनीयसी रात्रिरुत्तरे गोले।
व्यस्तं याम्ये स्पष्टं विकारणं छेद्यकेऽभिहितम॥११॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलवासना में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"अतएव दिनक्षयार्धयोर्बृहदल्पत्वमणूरुता क्रमात्॥९॥"

इदानीं विशेषमाह—

षट्षष्टिभागाभ्यधिकाः पलांशा यत्राथ तत्रास्त्यपरो विशेषः॥६॥
लम्बाधिका क्रान्तिरुदक् च यावत् तावद्दिनं सन्ततमेव तत्र।
यावच्च याम्या सततं तमिस्रा ततश्च मेरौ सततं समार्धम्॥७॥

अब विशेष बात कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस देश के ६६ अंश से अधिक अक्षांश हो वहाँ विशेष बात है। सूर्य की उत्तरा क्रांति वहाँ पर जब तक लंबांश से अधिक होती है तब तक वहाँ लगातार दिन रहता है और जब तक दक्षिण क्रांति इतनी रहती है तब तक वहाँ सतत रात्रि रहती है और मेरु स्थान पर लगातार वर्षार्ध तक दिन तथा रात्रि होती है।

विशेष— क्योंकि दक्षिण क्षिज के ऊपर नाडीवृत्त लंबांशअन्तरित रहता है और लंबांश अन्तरित पर ही उत्तर क्षितिज के नीचे रहता है। अतः नाडीवृत्त से लंबांश से अधिक उत्तर क्रांति होने पर उसके अग्र में जो अहोरात्र वृत्त होता है वह उत्तर क्षितिज से ऊपर ही रहता है। नाडीवृत्त से उतनी ही दक्षिण क्रांति पर उसके अग्र जो अहोरात्र वृत्त होता है वह दक्षिण क्षितिज से नीचे रहता है। अतः क्षितिज के ऊपरस्थित अहोरात्रवृत्तों में भ्रमण करते हुए रवि सर्वदा दृश्य ही रहता है और क्षितिज के अधः स्थित अहोरात्रवृत्तों में भ्रमण करते हुए रवि सतत उदृश्य रहता है।

आचार्य ने स्वकृत वासना भाष्य में एक उदाहरण देकर यह बात समझाई है। जहाँ अक्षांश ७० अंश है वहाँ लंबांश २० अंश होगा। उस देश में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषुवद्वृत्त दक्षिण क्षितिज के ऊपर २० अंश तुल्य रहता है तथा उत्तर क्षितिज के नीचे इतना ही रहता है। यदि रवि की उत्तर क्रांति २० अंश हो तो उत्तर क्षितिज से रवि का बिम्बार्ध उदित होकर मध्यान्ह में दक्षिण क्षितिज के ऊपर याम्योत्तर मंडल में ४० अंश उन्नत होगा। तब ३० घटी का दिनार्ध होगा अतः ६० घटी का दिन होगा और रात्रि शून्य होगी। इसके अगले दिन में क्रांति अधिक होने से रवि उत्तर क्षितिज को स्पर्श नहीं कर सकेगा। इस प्रकार प्रतिदिन भ्रमण करते हुए जब वह उसकी परमक्रांति तुल्य ऊपर भ्रमण करेगा तब मिथुनांत पर उत्तरिक्षितिज से ४ अंश ऊपर रहेगा (२४–२०=४)। पुनः इसी क्रम से अवरोहि होते हुए २० अंश से अधिक क्रांति रहने तक वह सतत दृश्य रहेगा जिससे सदा दिन रहेगा। इसी युक्ति से इतने काल तक सूर्य दक्षिण गोल में क्षितिज के नीचे रहने से सदा तब तक वहाँ रात्रि रहेगी। इसी प्रकार मेरु पर ६ माह तक दिन रहता है।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त बात को ही दूसरे प्रकार से कह दिया है। यथा–

"स्वाहोरात्रसमा यत्राक्षज्याऽवलम्बकः क्रान्त्या।
मेषादिगस्य तावत् यावत् कर्क्यादिगस्य रेवः॥५५॥
नास्तमयस्तत्र तुलामकरादिस्थस्य नोदयोऽर्कस्य।
मन्मध्यान्तरलिप्ता मध्यमभुक्त्या हृता दिवसाः॥५६॥"

श्रीपति ने सि.शे. में इसी प्रकार से आचार्योक्त बात कही है। यथा–

"यत्राऽक्षज्यादिनगुणसमालम्बकः क्रान्ति-
तुल्यस्तस्मिन् मेषप्रभृतिषु रविः कर्कटाद्येषु यावत्।
नास्तं गच्छत्युदयति तुलानक्रपूर्वेषुनासौ
तनमध्यार्कान्तरभवकला भुक्तिभक्ता दिनानि॥"

इदानीं मेरुसंस्थानमाह—

विषुवद्वृत्तं द्युसदां क्षितिजत्वमितं तथा च दैत्यानाम्।
उत्तरयाम्यौ क्रमशो मूर्धोर्ध्वगतौ ध्रुवौ यतस्तेषाम्॥८॥
उत्तरगोले क्षितिजादूर्ध्वे परितो भ्रमन्तमादित्यम्।
सव्यं त्रिदशाः सततं पश्यन्त्यसुरा असव्यगं याम्ये॥९॥

मेरु की स्थिति के लिए कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— विषुवद् वृत्त देवताओं तथा दैत्यों के लिए क्षितिज

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वृत्त वत स्थित रहता है। देव दानव स्थित ध्रुव स्थान इससे क्रमशः उत्तर-दक्षिण की ओर ऊर्ध्व-ऊर्ध्व स्थित होते हैं। उत्तर गोल में क्षितिज के ऊपर सूर्य जब भ्रमण करता है तब देवता (त्रिदशाः) उसको सव्य क्रम में परिभ्रमण करते हुए सतत् (छः माह तक) देखते हैं तथा दक्षिण गोल में असुर इसी प्रकार असव्य क्रम में भ्रमण करते हुए देखते हैं।

इदानीं दिनरात्रिस्वरूपे पितृदिनं चाह—

दिनं दिनेशस्य यतोऽत्र दर्शने तमी तमोहन्तुरदर्शने सति।
कुपृष्ठगानां द्युनिशं यथा नृणां तथा पितॄणां शशिपृष्ठवासिनाम्॥१०॥

दिन-रात्रि स्वरूप पितृदिन कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जब सूर्य का दर्शन होता है अर्थात् जब सूर्य उदित रहता है तब तक वहाँ अन्धकार नाश होता है और दिन रहता है। भूपृष्ठ पर स्थित मनुष्यों के जिस प्रकार दिन-रात्रि होते हैं उसी प्रकार चन्द्रमा के पीछे के भाग पर निवास करने वाले पितृगणों के भी दिन-रात्रि होते हैं।

विशेष— श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा अध्याय १५—

"सकृदुदगतो दिनकरः सुरासुरैरपि वत्सरार्धमवलोक्यते स्फुटम्।
पितृभिश्च मासदलमिन्दुगोलगैर्ध्रुदलं महीतलगतैश्च मानवै॥५८॥"

इदानीं संहितोक्तस्याभिप्रायमाह—

दिनं सुराणामयनं यदुत्तरं निशेतरत् सांहितिकैः प्रकीर्तितम्।
दिनोन्मुखेऽर्के दिनेमेव तन्मतं निशा तथा तत्फलकीर्त्तनाय तत्॥११॥
द्वन्द्वान्तमारोहति यैः क्रमेण तैरेव वृत्तैरवरोहतीनः।
यत्रैव दृष्टः प्रथमं स देवैस्तत्रैव तिष्ठन् न विलोक्यते किम्॥१२॥

संहिता ग्रंथों में इसका अभिप्राय—

सूर्य-प्रभा टीका— संहिताकारों का कहना है कि उत्तर अयन देवताओं का दिन होता है तथा दूसरा अर्थात दक्षिण अयन उनकी रात्रि होती है। उनके अनुसार दिनोन्मुख सूर्य अर्थात अर्धरात्रि से मध्यान्ह तक, के रहने तक दिन रहता है तथा उसके पश्चात् (रात्रि उन्मुख सूर्य के रहने तक अर्थात मध्यान्ह से अर्धरात्रि पर्यंत) रात्रि होती है। संहिताकारों का यह अभिप्राय न हो तो मेषारंभ से आगे मिथुनान्त तक जो वृत्त है, वे आरोहि हैं तथा बाद में अवरोहि होते हैं। यदि देवता अपने स्थान पर बैठकर पहले आरोहि को देखते तो वहाँ बैठकर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवरोहि को क्यों नहीं देखते हैं? अर्थात् मकरारंभ से मिथुनान्त तक देवताओं का दिन तथा कर्कारम्भ से मिथुनान्त तक देवताओं की रात्रि तथा दैत्यों का दिन होता है।

विशेष— श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा अध्याय १५ —

"दिन प्रवृत्तिर्मरुतामजादौ तुलाधरादौ च निशाप्रवृत्तिः।
ते कल्पिते यैर्मृगकर्कटाद्यैरत्रोपपत्तिं न च ते ब्रुवन्ति॥
द्वन्द्वान्तयातं कनकाद्रियाताः पश्यन्ति पङ्के रुहिणीपतिं चेत्॥श्लो.५८।"

इदानीं पितृदिवसस्योदयास्तादिकालानाह—

विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्तः स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति।
पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे दर्शे यतोऽस्माद्द्युदलं तदैषाम्॥१३॥
भार्धान्तरत्वान्न विधोरधःस्थं तस्मान्निशीथः खलु पौर्णमास्याम्।
कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेति शुक्लेऽस्तमेत्यर्थत एव सिद्धम्॥१४॥

अब पितृ दिवस का उदयास्त काल—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्रमा के ऊपरी (मनुष्य दृष्ट स्थान से पीछे) भाग पर पितगृण रहते हैं वे अपने सिर के ऊपर पृथ्वी को उसी प्रकार देखते हैं जैसे पृथ्वी वासी चंद्रमा को अपने सिर के ऊपर देखते हैं। वे सूर्य को अपने मस्तक के ऊपर उसी प्रकार देखते हैं जैसे हम दिनार्ध काल में हमारे सिर के ऊपर सूर्य को देखते हैं। आकाश अर्धभाग में अवरोध न होने के कारण पितृगणों (पृथ्वी पर अमावस्या के समय) का दिन होता है तथा पृथ्वी पर पूर्णमासी के दिन चन्द्रमा का अवरोध होने के कारण वहाँ रात्रि होती है। अतः पृथ्वी पर कृष्ण पक्ष में रवि, चन्द्रमा के पृष्ठ (ऊपरी) भाग पर उदित होता है और शुक्ल पक्ष में वहाँ अस्त होता है, यह सिद्ध होता है।

विशेष— पूर्वोक्त श्लोक १० से उपरोक्त श्लोकोक्त बातों को अन्य आचार्यों ने सूक्ष्म में कहा है। यथा—

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सि. में इस प्रकार कहा है। यथा मध्यमाधिकार–

"क्षितिशशिनोर्दिवसान्तरमाहुस्तिथिविलयान् नृसमां रविवर्षम्।
पितृदिवसं विधुमासमिनाब्दं दितितनयामरवासरसंज्ञम्॥४॥"

ब्र.गु. ने भी ब्र.स्फु.सि. के मध्यमाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"सावनमुदयादुदयं भानांचार्क्षनृवत्सरोऽर्काब्दः।
पितृदिवसाः शशिमासादिव्यानि दिनानि रवि भगणाः॥२५॥"

सूर्य सिद्धान्त के मानाध्याय १४ में आचार्योक्त पितृमान कहा है। यथा—

"त्रिंशतातिथिभिर्मासश्चान्द्रः पित्र्यमहः स्मृतम्।
निशा च मासपक्षान्तौ तयोर्मध्ये विभागतः॥१४॥"
पितरः शशिगाः पक्षं स्वदिनं च नरा भुवि॥७४॥ अ.१२॥"

अथ ब्रह्मदिनोपपत्तिमाह—

यदतिदूरगतो द्रुहिणः क्षितेः सततमाप्रलयं रविमीक्षते।
भवति तावदयं शयितश्च तद्युगसहस्रयुगं द्युनिशं विधेः॥१५॥

ब्रह्मदिन की उपपत्ति कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— अनन्त दूरी पर बैठा हुआ ब्रह्मा प्रलय न होने तक सतत रवि को देखता है। एक सहस्र युग तुल्य ब्रह्मा के एक दिन तक वह सूर्य को देखता है तत्पश्चात् इतने तुल्य ही एक रात्रि तक वह विश्राम करता है तब प्रलय काल रहता है उस समय रव्यादी समस्त सृष्टि का वह संहार कर के अपने में समेट लेता है। इस प्रकार एक दिन रात का ब्रह्मा का एक अहोरात्र होता है।

इदानीमुदयवासनामाह—

यो हि प्रदेशोऽपममण्डलस्य तिर्यक्स्थितो यात्युदयं तथास्तम्।
सोऽल्पेन कालेन य ऊर्ध्वसंस्थोऽनल्पेन सोऽस्मादुदया न तुल्याः॥१६॥
य उद्गमे याम्यनता मृगाद्याः स्वस्वापमेनापि निरक्षदेशे।
याम्याक्षतस्तेऽतिनतत्वमाप्ता उद्यन्ति कालेन ततोऽल्पकेन॥१७॥
कर्क्यादयः सौम्यनता हि येऽच ते यान्ति याम्याक्षवशादृजुत्वम्।
कालेन तस्माद्बहुनोदयन्ते तदन्तरे स्वं चरखण्डमेव॥१८॥

अब राशि उदय बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— लंका से क्रांतिवृत्त का जो राशि प्रदेश जितना तिर्यक् (तिरछा) स्थित होता है वह लंका में उतने ही अल्प समय में उदित होता है और जो उर्ध्व स्थित होता है वह देरी से उदित होता है अतः उनका उदय मान समान नहीं होता। मकरादि से मिथुनान्त तक अपनी अपनी-अपनी क्रांतिवश दक्षिण में नत होती हुई उत्तर नत होती है। दक्षिण क्षितिज से अति

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नत होने के कारण उनके उदय काल स्वदेश में अल्प होते हैं। इसी प्रकार कर्क्यादि से स्व स्व क्रांतिवश उत्तर की ओर नत होने से दक्षिण क्षितिज से तिरछी होती है तथा उनका उदय काल अधिक होता है। इसी प्रकार निरक्षदेश में भी उदयकाल समान नहीं होते हैं। लङ्का तथा स्वदेश में उदय काल का अन्तर अपना चर खण्ड होता है। यह वहाँ के क्षितिज पर उदय का अन्तराल है।

स्वदेश में भी क्रांति तथा अक्षांश वश उन राशियों के उदयकाल समान नहीं होते।

विशेष— लङ्का से विषुवद अहोरात्र समान रूप से पश्चिम गामि होता है। राशिवलय मकरादि पर परमक्रान्ति तुल्य रहते हुए विषुवन्मण्डल के दक्षिण से मिथुनान्त तक उत्तर की ओर लगता हुआ तिरछा होता है। वहाँ मेष राशि स्वक्रांतिवश अधिक तिरछी उदित होती है। अतः वह अल्पकाल में उदित हो जाती है। वृषभराशि उससे अल्प तिरछी होने से उससे कुछ अधिक काल में उदित होती है। और मिथुन राशि उससे. अल्प तिरछी होने के कारण उससे अधिक काल में उदित होती है। इसी प्रकार निरक्ष देश में भी वे समान काल में उदित नहीं होती हैं। इसी प्रकार मकरादि से दक्षिण की ओर नत होने से दक्षिण क्षितिज पर अतिनत होकर उदित होती है, स्वदेश से अल्पकाल में उदित होती हैं।

कर्क्यादि स्वक्रान्ति से उत्तर की ओर नत होकर याम्य (दक्षिण) क्षितिज से तिरछी जाती हुई उदित होती है। अतः इनका उदयकाल बड़ा होता है।

राशि के आदि बिन्दु पर ध्रुवप्रोतवृत्त तथा राश्यन्त पर ध्रुवप्रोत वृत्त नाडीवृत्त में जहाँ लगते हैं उनके अन्तर्गत नाडीवृत्त चाप उस राशि का निरक्षदेशीय उदय मान होता है। राशि उदय में भिन्नता चित्र से स्पष्ट है।

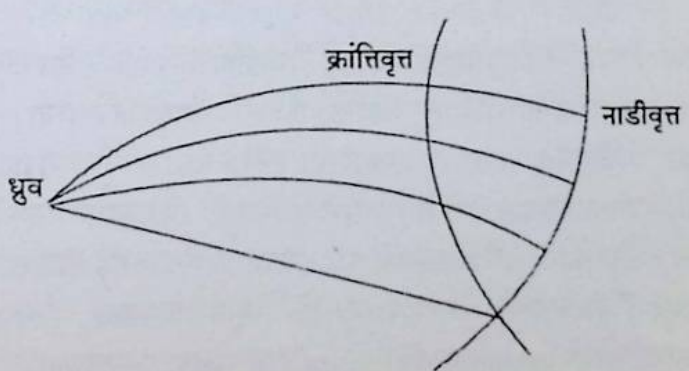

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के मध्यगतिवासना में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"लङ्कावृत्ते मध्यस्थिते भुवो यत्कुजं तदुदवृत्तम्।
तेन न तत्र चरदलं सदा समत्वं च दिवसनिशोः॥१२॥
तत्राक्षाभावेऽपि स्वस्वक्रान्त्या स्थितौ तिरश्चीनौ।
ज्यायस्या मेषवृषौ यतौ ऽल्पकालोदयौ तेन॥१३॥
मिथुनान्तोऽल्पक्रान्त्या पदान्तगत्वादृजुस्थितो यस्मात्।
तस्माच्चिरोऽसावक्षवशाच्चान्यविषयेषु॥१४॥
आद्यान्त्यचक्रपादौ द्युनिशचतुर्थेन चरदलोनेन।
उद्गच्छतः पलवशाद् भ्रमाच्च युक्तेन मध्यस्थौ॥१५॥
प्रागायतं कुलीरान्मकरादुदगायतं यतः षट्कम्।
अक्षे भ्रमवशगत्वादधिकन्यूनोदयं तस्मात्॥१६॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलवासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"उन्मण्डलमेवः भूमिजं लङ्कायां चरकर्म नास्त्यतः।
तुल्यत्वमहर्निशोस्ततः तस्यामक्षलवेष्वसत्स्वति॥१०॥
तिर्यक्स्थितौ मेषवृषौ स्वकीयक्रान्त्या यतोऽल्पाभ्युदयौ ततस्तौ।
क्रान्तेर्लघुत्वेऽपि पदान्तकं भं कालेन दीर्घेण ऋजुस्थितत्वात्॥११॥
प्रथमान्त्यभचक्रपादयोश्चरखण्डोनदिनाङ्घ्रिनोदयः।
द्वितृतीयकयोश्च तद्युजाद् विषये साक्षगुणे क्रमोत्क्रमात्॥१२॥
मकरादुदयगायतं कुलीरात् प्रागायतं षट्कमस्मात्।
अहनि भपञ्जरभ्रमणात् चिरस्वल्पसमुद्गमो भानाम्॥१३॥"

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

"या द्वादशांशोऽपममण्डलस्य राशिः स ते द्वादश मेषपूर्वाः।
तिर्यक्तया क्रान्तिवशान्निरक्षेऽप्युशन्ति कालेन समेन नैव॥
निरक्षतायामपि हन्त यस्मात् तिर्यक् स्थितौ मेषवृषौ महत्या।
क्रान्त्या भवेतामत एव चाल्पकोदयौ तौ पुरि रावणास्य॥
मिथुनोऽल्पतयाऽपमस्य तेषामृजुरास्ते नियतं पदान्तगत्वात्।
अतएव चिरोदयोऽन्यदेशेष्वपि वाऽक्षस्य वशेन तद्वदेवम्॥
याम्यायतं कर्कटकाद् भषट्कं यतो मृगादेरुदगायतं हि।
भवेत्ततस्तच्चिरतुच्छकालमुद्गमि स्वाक्षवशभ्रमेण॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्र.गुप्त ने ब्र.स्फु. सि. के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"लङ्का समपश्चिमगं प्राणेन कलां भमण्डले भ्रमति।
अपमण्डलस्य राशिद्वार्दशभागः क्षितिजलग्नाः ॥५६॥
यान्त्युदयं मेषाद्या यतस्तदुदया न कालसमाः।
क्रान्तिवशाल्लंकायां तदूनताधिक्यमक्षवशात् ॥६०॥"

अथ चरखण्डैरूनाधिकत्वं गोलभ्रमणोपरि यथा प्रतीयते तथाह—

भचक्रपादास्तिथिनाडिकाभिः पृथक् समुद्यन्ति निरक्षदेशे।
चक्रार्धमाद्यं च तथा द्वितीयं सर्वत्र पूर्णाग्निमिताभिरेव ॥१६॥
मेषादेर्मिथुनान्तो नाडीभिस्तिथिमिताभिरुद्वृत्ते।
लगति कुजे तदधः स्थे प्रथमं ताभिश्चरोनाभिः ॥२०॥
कन्यान्ताद्धनुषोऽन्तस्तिथिमितनाडीभिरुद्वलये।
लगति कुजे चोर्ध्वस्थे पश्चात् ताभिश्चराढ्याभिः ॥२१॥
तद्रहितत्रिंशद्भिः कन्यान्तो वा झषान्तो वा।
चरखण्डैरूनाढ्यास्तेन निरक्षोदयाः स्वदेशे स्युः ॥२२॥
क्षितिजेऽजादिं कृत्वा गोलं भ्रमयन् प्रदर्शयेत् सर्वम्।
उक्तमनुक्तं चान्यच्छिष्याणां बोधजननार्थम् ॥२३॥

चरखण्ड के ऊन अधिकत्व गोल भ्रमण में जैसी प्रतीति है उसके अनुसार—

सूर्य-प्रभा टीका— निरक्षदेश में भचक्र के प्रत्येक चतुर्थांश भाग में स्थित (तीनों) राशियाँ पृथक्-पृथक् पन्द्रह घटी में उदित होती है और प्रथम चक्रार्ध भाग अर्थात् छः राशियाँ तथा उत्तरार्ध भाग की छः राशियाँ तीस घटी में उदित होती हैं। मेषारम्भ से मिथुनान्त तक की राशियाँ निरक्ष क्षितिज में पन्द्रह घटी में उदित हेाती है उनके उदय मानों में स्व क्षितिज निरक्ष क्षितिज (उन्मंडल) से अधः स्थित होने से प्रथम तीन राशियों में उनके चरखण्ड मान कम करने से स्व क्षितिज में उनके उदयमान होते हैं। कन्यान्त से तीन राशि धनु अंत तक की राशियाँ भी पन्द्रह घटी में उदित होती हैं। उनके उदय मानों में स्वक्षितिज निरक्ष क्षितिज (उन्मंडल) से ऊपर स्थित होने से चर खण्ड मान युक्त करने से स्व क्षितिज में उनके उदयमान होते हैं। इस प्रकार इन मिथुनान्त (मेषवृषभ तथा मिथुन) राशियों के प्राप्त उदय मानों को तीस घटी में से कम करने से कन्यान्त तक (कर्क, सिंह, कन्या) की तीन राशियों के उदयमान प्राप्त होते हैं और

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कन्यारंभ से धनुनान्त तक की राशियों के प्राप्त उदय मानों को तीस घटी में से घटाने से धनुनान्त से मीनान्त तक की तीन राशियों के उदय मान प्राप्त होते हैं। ये उदयमान निरक्षोदय मानों में क्रमशः स्वचरमान जोड़ने तथा घटाने से भी प्राप्त हो जाते हैं।

आचार्य कहते हैं कि ये सब स्वक्षितिज में मेषारंभ से सर्व राशि उदय का प्रदर्शन गोल को घुमाकर प्रदर्शित करना चाहिये। यहाँ जो भी कहा गया है वह तथा जो नहीं कहा गया है वह तथा अन्य सभी बातों का शिष्यों को बोध कराना चाहिये।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के मध्यगतिवासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"आद्यान्त्यचक्रपादौ द्युनिशचतुर्थेन चरदलोनेन।
उद्गच्छतः पलवशाद् भ्रमाच्च युक्तेन मध्यस्थौ॥१५॥
प्रागायतं कुलीरान्मकरादुदगायतं यतः षट्कम्।
अक्षे भ्रमवशगत्वादधिकन्यूनोदयं तस्मात्॥१६॥
स्वचारार्धेनोनयुता ये दृश्या राशयो भवन्त्यत्र।
तेन युतोनाः क्रमशस्तेऽक्षवशादस्तमुपयान्ति॥१८॥"

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सि. के गोलवासना में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रथमान्त्यभचक्रपादयोश्चरखण्डोनदिनाङ्घ्रिनोदयः।
द्वितृतीयकयोश्च तद्युजाद् विषये साक्षगुणे क्रमोत्क्रमात्॥१२॥
मकरादुदगायतं कुलीरात् प्रागायतं षटकमस्मात।
अहनि भपञ्जर भ्रमणात् चिरस्वल्पसमुद्गमोभानाम्॥१३॥
स्वचरार्धोनसंयुताः प्राक्कुजे ये समुदयन्ति तेऽपरे।
तेन युतोनात् क्रमात् पुनर्भूमिजेऽस्तमुपयान्ति राशयः॥१५॥"

पूर्व श्लोक की व्याख्या के विशेष विवरण में उद्धृत लल्ल तथा श्रीपति एवं वटेश्वरादिके श्लोक भी देखें।

अथास्तमयानाह—

योऽभ्युदेति समयेन येन तत्सप्तमोऽस्तमुपयाति तेन च।
राशिरूर्ध्वमपमण्डलं कुजादर्धमेव सततं यतः स्थितम्॥२४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अब दो राशियों के उदय अस्तमानों का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— जो राशि जितने काल में उदित होती है उससे सप्तम राशि उतने ही समय में अस्त होती है। इस प्रकार तुला आरंभ से जितने समय में तुलापूर्ण उदित होती है उतनी देर में मेष आरंभ बिंदु से मेष राशि पूर्ण अस्त होती है क्योंकि अपमण्डल क्षितिज से ऊपर आधा रहता है तथा आधा उससे नीचे रहता है। अतः इस प्रकार कहा हुआ राशियों का उदय तथा अस्त मान उपपन्न होता है।

इदानीं विशेषमाह—

यत्र लम्बजलवा जिनोनकास्तत्र नोदयचराद्यमुक्तवत्।
नान्यसंस्थिततयान्यथोदितं येन नैष विषयो नृगोचरः॥२५॥

अब विशेष बात—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस देश में अक्षांश ६६ से अधिक होते हैं वहाँ पर कुछ राशियाँ सदा उदित रहती हैं, कुछ राशियाँ सदा अस्त रहती हैं तथा कुछ राशियाँ उदित तथा अस्त होती रहती हैं। जो राशियाँ सदा उदित रहती हैं उनके अहोरात्र में रहता हुआ सूर्य उन स्थानों के क्षितिज को स्पर्श नहीं करता। अहोरात्रवृत्त में क्षितिज तथा उन्मण्डल का अन्तर ही चर होता है। अतः वहाँ कुज्या, अग्रा, चरज्या आदि का अंभाव रहता हैं अतः पूर्वोक्त (श्लोक में) कथितानुसार राशियाँ उदय-अस्त नहीं होती है।

इदानीं लग्नशब्दव्युत्पत्त्योदयास्तमध्यलग्नस्थानान्याह—

यत्र लग्नमपमण्डलं कुजे तद्गृहाद्यमिह लग्नमुच्यते।
प्राचि पश्चिमकुजेऽस्तलग्नकं मध्यलग्नमिति दक्षिणोत्तरे॥२६॥

लग्न शब्द की व्युत्पत्ति से उदय, अस्त तथा मध्य लग्न का स्थान—

सूर्य-प्रभा टीका— जहाँ अपमण्डल स्व क्षितिज से मिलता है वह बिंदु उस स्थान का लग्न कहलाता है। इस प्रकार यह पूर्व क्षितिज पर उदयलग्न तथा अस्त क्षितिज पर अस्तलग्न होता है। दक्षिणोत्तर वृत्त जहाँ मिलता है वह बिन्दु मध्यलग्न कहलाता है।

अथ लग्नार्थमर्कस्य तात्कालिकीकरणवासनामाह—

लग्नार्थमिष्टघटिका यदि सावनास्ता-
स्तात्कालिकार्ककरणेन भवेयुराक्ष्यः।
आक्षोदया हि सदृशीभ्य इहापनेयास्ता-
त्कालकत्वमथ य क्रियते यदाक्ष्यः॥२७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्य का लग्न साधन करने के लिए तात्कालिकीकरण का कारण—

सूर्य-प्रभा टीका— लग्न साधन करने के लिए इष्ट घटियाँ नाक्षत्रिक हो या सावनात्मक हो जिससे सूर्य को तात्कालिक स्पष्ट किया जावे? यदि वे सावनात्मक होंगी तो उनको नाक्षत्रात्मक राशि उदयमान में विपरीत जाति की होने से कैसे घटाया जा सकेगा? अतः उनको नाक्षत्र मानात्मक होनी चाहिये। तथा भोग्य साधन करने के लिए सूर्य को तात्कालिक कैसे किया जावेगा? क्योंकि उदयावधि इष्टघटियों तथा सूर्योदय काल के अन्तर में से राशियों के भोग्य(काल) अंश क्रम से उदित होते हैं। अतः तब औदयिक सूर्य का ही भोग्य गृहण करके उपयोग करना चाहिये न कि तात्कालिक सूर्य से करना चाहिये।

अतः आचार्य ने कहा है कि यदि इष्ट घटी सावनात्मक हो तो उनसे सूर्य को तात्कालिक करने से वे नाक्षात्मक हो जाती हैं।

विशेष— आचार्य एक उदाहरण देते हैं कि जहाँ पाँच अंगुल पलभा हो वहाँ मेषारम्भ पर सूर्य स्फुट होता है। वहाँ अहोरात्र का मान ६०।७।२ घटि आदि है। अब उदयान्तर तुल्य अहोरात्र ६०।७।२ घटि पर यदि तात्कालिक लग्न साधन करे तो उससे (लग्न) सूर्य अधिक होता है और यदि औदयिक सूर्य से लग्न साधन करते हैं तो वह सूर्य के तुल्य ही आता है। अतः विधायक और निषेधात्मक प्रतिज्ञा (अन्वयव्यतिरेक) युक्ति से सूर्य को तात्कालिक करके उपयोग में लेने की युक्ति अयुक्ति ज्ञात होती है। लेकिन 'लग्नार्थमिष्टघटिका....' इत्यादि कहा है यहाँ श्लोक में।

यहाँ इष्ट घटियाँ सावनात्मक हों तो आचार्य उसको स्वीकार करके उनको नाक्षत्रात्मक करने के लिए कहते हैं। वे कहते हैं कि पूर्वकथित अहोरात्र संबंधी जो गति कलायें है उनको सूर्य स्थित राशि के स्व उदयमान से गुणा करके राशि कला (१८००) से विभक्त करने से प्राप्त फल असु तुल्य अधिक (युक्त) सावन मान तुल्य नाक्षत्र ६० घटी अहोरात्रवृत्त की नाक्षत्र घटियाँ होती है। अतः इष्ट घटी संबंधी गतिकला का स्वउदय असुओं से गुणा करके राशिकला से विभक्त करके प्राप्त फल असु को इष्ट सावन घटि में युक्त कर देवें। इस प्रकार वे सावनात्मक हो जाती है। इसमें से औदयिक सूर्य के भोग्य असु घटावे।

इस प्रकार सत्याचार्य के अनुसार लाघवार्थ इष्ट घटी संबंधी गतिकला सूर्य में युक्त करके जो भोग्य असु प्राप्त हो वे इन भोग्य असु औदयिक सूर्य के भोग्य असुओं से न्यून हों तो जितने इष्ट घटि में से घट सके उतने इष्टघटी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संबंधी गतिकला असु अधिक तुल्य होते हैं। इस प्रकार उन सावनात्मक को नाक्षत्रात्मक करने के लिए सूर्य को तात्कालिक करना उपपन्न होता है।

आचार्य कहते हैं कि यदि यह ऐसा है तो क्यों सावनात्मक को गृहण करके उसको नाक्षत्रात्मक किया जावे? उनको नाक्षत्र मान में ही क्यों नहीं स्वीकार कर लिया जावे? इसके लिए कहते हैं कि त्रिप्रश्नाधिकार में छाया प्राप्त करने में ग्रहों के स्वस्व सावन उदय मान ग्रहण किये हैं। अतः इष्टकाल पर स्वहोरात्र वृत्त में जहाँ ग्रह स्थित होता है वहाँ तथा जहाँ क्षितिज उससे संपात करता है वहाँ का अन्तर जितना होता है, वह घटि विभाग से सावन नाड़ियों में ही क्षेत्र विभागात्मक होता है।

उदय काल में जहाँ ग्रह स्थित होता है उसके तथा क्षितिज के मध्य जितना स्थान है वह नाक्षत्र मान का कालविभागात्मक है। जैसे पूर्णमासी को छाया कर्ण के लिए चन्द्र की असकृत विधि से उदित नाडियाँ उसके छयाकर्ण के लिए उपयोग में नहीं लाई जाती। तो फिर, छायार्थ किस प्रकार असकृत विधि से उसको प्राप्त करते हैं? इसके लिए आचार्य ने कहा है—

चन्द्र प्रभार्थमसकृद्विधिनोदितं यत् कैश्चित् कृत खलु न सत् तदसावनत्वात्।
जानन्ति ये न निपुणं गणितं सगोल तेषां तु तन्त्रकरणव्यसनं वृथैव॥

यह इसी अध्याय का श्लोक ३५ है।

छाया को क्षेत्रात्मक होने से सावन रूप में साधित करे। इसके लिए त्रिप्रश्न में व्याख्या की गई है। अतः इस प्रकार सावन घटियों के प्रसङ्ग में लग्नसाधनार्थ भी सावन अङ्गीकार करे।

इदानीं देश विशेषेण राशीन् सदोदितानुदितांश्चाह—

त्र्यंशयुङ्नवरसाः $\frac{६६}{२०}$ पलांशका यत्र तत्र विषये कदाचन।
दृश्यते न मकरो न कार्मुकं किंच कर्किमिथुनौ सदोदितौ॥२८॥
यत्र साङ्घ्रिगजवाजिसंमिता $\frac{७८}{१५}$ स्तत्र वृश्चिकचतुष्टयं न च।
दृश्यतेऽथ वृषभाच्चतुष्टयं सर्वदा समुदितं च लक्ष्यते॥२९॥
यत्र तेऽथ नवतिः पलांशकास्तत्र काञ्चनगिरौ कदाचन।
दृश्यते न भदलं तुलादिकं सर्वदा समुदितं क्रियादिकम्॥३०॥

देश विशेष के लिएं किसी राशि का सदोदित तथा अनुदित रहने की स्थिति—

सूर्य-प्रभा टीका— जिस स्थान के ६६।२० अंश तुल्य अक्षांश होते

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं वहाँ धनु तथा मकर राशियाँ कभी उदित नहीं होती तथा मिथुन एवं कर्क राशियाँ सदा उदित रहती हैं।

जिस स्थान के अक्षांश ७८।१७ अंश तुल्य होते हैं वहाँ वृश्चिक आदि चार (धनु, मकर, कुंभ भी) राशियाँ कभी भी उदित नहीं होती है और वृषभ से चार राशियाँ (मिथुन, ककर्म, सिंह भी) सदा उदित रहती हैं।

और जहाँ अक्षांश ९० अंश तुल्य होते हैं वह मेरु स्थान होता है तथा वहाँ तुलादि छः राशियाँ दृश्य नहीं होती तथा मेषादि छः राशियाँ सदा उदति रहती हैं।

जो राशियाँ क्षितिज के सदा नीचे रहती है वे उदित न हो पाने के कारण अदृश्य रहती हैं तथा जो राशियाँ क्षितिज के सदा ऊपर रहती हैं वे सदा उदित रहती हैं।

इदानीं लल्लोक्तस्य दृश्यादृश्यत्वलक्षणस्य दूषणमाह—

राशेर्वस्य निरक्षजोदयसमाः स्वीयाश्चरार्धासवो
दृश्यस्तत्र सदा स राशिरिति यन्निर्युक्ति लल्लोदितम्।
यद्येवं रसषट् ६६ पलांशविषये सर्वेऽप्यमी सर्वदा
दृश्याः स्युर्युगपच्चरोदयघटीसाम्यादसत् तत् ततः॥३१॥

सूर्य-प्रभा टीका— लल्लाचार्य कथित राशि दृश्य-अदृश्य लक्षण दोषयुक्त हैं—

लल्लाचार्य का यह कथन की जिस राशि के निरक्षोदय (पल या) असु, स्वस्थान के चरार्ध असु के समान होते हैं वह राशि उस स्थान पर सदा उदित रहती है, आचार्य भास्कर के अनुसार युक्ति युक्त नहीं है। आचार्य कहते हैं कि यदि ऐसा है तो ६६ अंश अक्षांश स्थानों पर सभी राशियों के निरक्षोदय मान स्वस्थान के चरार्ध के तुल्य होते हैं अतः वहाँ पर सभी राशियाँ सदा उदित होनी चाहिये। लेकिन पूर्व में बताये अनुसार ऐसा नहीं होता। अतः लल्लाचार्य का कथन दूषित हैं।

विशेष— लल्लाचार्य ने निम्नलिखित श्लोक इस संबंध में शि.धी.वृ. ग्रंथ के अध्याय १६ में कहा है। यथा–

"यस्य स्वचरार्धसमा निरक्षविषयोदयासवो राशेः।
दृश्यः स सदा तस्मिन् दृश्योऽदृश्योऽन्यथा भवति॥१६॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीपति ने भी सि.शे. के अध्याय १६ के श्लोक ५६ में लल्लोक्त ही कहा है।

वटेश्वराचार्य ने भी वटे.सि. के गोलवासना में लल्लोक्त कहा है। यथा–

"लङ्कोदयो यस्य चरार्धतुल्यो राशिस्स तस्मिन्नियमेन दृश्यः॥१५ $\frac{१}{२}$॥"

इदानीमन्यद्दूषणमाह—

षट्षष्टिः सदला लवाः पलभवा यस्मिन् न तस्मिन् धनु-
र्नक्रश्चापि न वृश्चिको न च घटः पश्चाद्रयो ७५।० यत्र च।
दृश्यः स्यादिति यत् सदा प्रलपितं लल्लेन गोले निजे
गोलज्ञ त्रिलवोनितास्त उदिताः केनोच्यतां हेतुना॥३२॥

लल्लाचार्य कथित अन्य मत का भी दोष युक्त होना—

सूर्य-प्रभा टीका— लल्लाचार्य के अनुसार ६६।३० अंश तथा ७५ अंश अक्षांश पर क्रमशः धनु, मकर तथा वृश्चिक, धनु, मकर तथा कुंभ राशियाँ दृश्यमान नहीं होती। आचार्य कहते हैं कि यह बात लल्लाचार्य ने किस आधार पर कही है? क्योंकि वहाँ इन राशियों के निरक्षोदय मान तुल्य स्वचरखण्ड नहीं है, फिर भी? वहाँ चरज्या से अधिक त्रिज्या नहीं होती त्रिज्या से अधिक चरज्या होती है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के मध्यगतिवासना १६ में यह श्लोक कहा है। यथा–

"पंचभिरधिकाः सप्ततिरंशा यस्मिन् पलस्य विषये स्युः।
तत्र न वृश्चिककार्मुकमकरघटा दृश्यतां यान्ति॥२०॥"

श्रीपति ने भी सि.शे. में अध्याय १६ के श्लोक ५७ में लल्लोक्त ही कहा है। वास्तव में यहाँ कथित लल्लाचार्य तथा श्रीपति के वचन सही है लेकिन आचार्य का कहना यह है कि पूर्व में श्लोक १६ में जो लल्लाचार्य ने नियम कहा है वह यहाँ सही नहीं उतरता। आचार्य ने यहाँ कहा हुआ लल्लाचार्य का श्लोक २० गलत नहीं बताया है, यह बात ध्यान में देने की है।

वटेश्वराचार्य ने भी वटे.सि. के गोलवासना अध्याय में लल्लोक्त कहा है। यथा–

"यस्मिन पलांशा रसकोष (६६°) तुल्यान तत्र दृश्यो मकरो धनुश्च।
पले शरागांश (७५°) मिते ह्यदृश्याः कुम्भालिसप्ताब्जमृणाः सदैव॥१७॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथाक्षलम्बज्ञानार्थमाह—

यन्त्रवेधविधिना ध्रुवोन्नतिर्या नतिश्च भवतोऽक्षलम्बकौ।
तौ क्रमाद्विषुवदह्न्यहर्दले येऽथवा नतसमुन्नता लवाः॥३३॥

अक्षांश तथा लम्बांश का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— यन्त्र वेध (चक्र यन्त्र) के द्वारा ध्रुव का वेध करने से प्राप्त उन्नतांश उस स्थान का अक्षांश तथा नतांश लम्बांश होता है। अथवा विषुवद् दिनार्ध पर यन्त्र वेध से सूर्य का वेध करने से सूर्य का नतांश वहाँ का अक्षांश तथा उन्नतांश लंबांश होता है। यहाँ आचार्य ने दो विधियाँ बताई हैं।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"विषुवद्दिवसे द्युदले पलो नतांशाः समुन्नता लम्बः।
उन्नतनतभागज्ये तदावलम्बाक्षजीवे स्तः॥२४॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"विषुवद्दिवसे द्युमध्यजे नरदृग्ज्ये अवलम्बकाक्षजे।
अवनौ विवरं नराग्रकं नृतलास्तोदयसूत्रयोर्भवेत्॥१८॥"

इदानीं शङ्क्वानयनवासनां संक्षिप्तामाह—

उन्नतं द्युनिशमण्डले कुजात् सावनं द्युतिविधौ हि तज्ज्यका।
तिर्यगक्षवशतोऽक्षकर्णवच्छेदको न तु नरः स लम्बवत्॥३४॥

शंकु आनयन विधि—

सूर्य-प्रभा टीका— क्षितिज तथा अहोरात्रवृत्त के सम्पात बिन्दु से अहोरात्र वृत्तस्थ ग्रह पर्यन्त चाप की ज्या को शंकु कहते हैं। यह ग्रह बिंब से क्षितिज धरातल गत लम्बवत सूत्र रूप में होता है। ग्रह बिंब तथा ग्रह के उदयास्त सूत्रगत (लम्बवत) सूत्र अक्षांश वश लम्बवत् होता है। यह लम्बरूप सूत्र (इष्ट हृति) साक्षदेश में लम्बवत होने पर भी वह शंकु नहीं होती।

त्रिप्रश्नाधिकार में इसकी व्याख्या की जा चुकी है।

इदानीं केषांचिद्दूषणमाह—

चन्द्रप्रभार्थमसकृद्विधिनोदितं यत्
कैश्चित् कृतं खलु न सत् तदसावनत्वात्।
जानन्ति ये न निपुणं गणितं सगोलं
तेषां तु तन्त्रकरणव्यसनं वृथैव॥३५॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुछ अन्य दूषण—

सूर्य-प्रभा टीका— किन्हीं आचार्यों द्वारा चन्द्रछाया के लिए जो असकृत विधि को कहा है वह सावनात्मक गणना नहीं होने से सत्य नहीं है। अतः वे आचार्य गोलगणित में निपुण नहीं हैं, इसलिए उन्होंने जो तन्त्रकरण ग्रंथों की रचना की है वह वृथा ही की है। अर्थात् उन्हें इनकी रचना करने का अधिकार नहीं है।

इदानीं शङ्कुस्थानमाह—

दृष्टिमण्डलभवा लवाः कुजादुन्नता गगनमध्यतो नताः।
शङ्कुरुन्नतलवज्यका भवेद्वग्गुणश्च नतभागशिञ्जिनी॥३६॥
भस्करेऽत्र सममण्डलोपगे यो नरः स समशङ्कुरुच्यते।
कोणशङ्कुरथ कोणवृत्तगे मध्यशङ्कुरिति दक्षिणोत्तरे॥३७॥
कुपृष्ठगानां कुदलेन हीनं दृङ्मण्डलार्धं खचरस्य दृश्यम्।
कुच्छन्नलिप्तानुरतो विशोध्याः स्वभुक्तितिथ्यंशमिताः प्रभार्थम्॥३८॥

शंकु का स्थान—

सूर्य-प्रभा टीका— दृग्मण्डल में क्षितिज से ऊपर ग्रहपर्यन्त उन्नतांश होते हैं तथा खमध्य से नीचे ग्रह तक नतांश होते हैं। उन्नतांशों की ज्या शंकु होती है तथा नतांश की ज्या दृग्ज्या होती है। कोणवृत्त में इसी प्रकार कोणशंकु तथा दक्षिणउत्तर वृत्त में मध्यशंकु होता है। दृग्मण्डलार्ध में से भूव्यासार्ध घटाने से भूपृष्ठस्थ लोगों का दृश्यखण्ड होता है। शंकु में से भूव्यासार्धकला घटाने से दृष्टा के लिए पृष्ठीय अहोरात्रवृत्त का ऊपर का भाग पृष्ठीय शंकु होता है। यह ग्रह गतियोजन का पंद्रह (१५)वाँ भाग होता है।

ग्रहच्छायाधिकार में इसकी व्याख्या की जा चुकी है।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के गोलबन्धाधिकार में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्वाहोरात्रे क्षितिजाद्दिनगतशेषोच्चता रवे शंकुः।
तस्माद्दिनगत शेषं शंकुक्रमध्यान्तरं दृग्ज्या॥६२॥
दृग्मण्डले नतांशज्या दृग्ज्या शंकुरुन्नतांशज्या।
अर्कोदयास्तसूत्राद्दिनशंकोर्दक्षिणेनतलम्॥६३॥
दृश्यादृश्यं दृग्गोलार्ध भूव्यासदलविहीन युतम्।
दृष्टा भूगोलोपरि यतस्ततो लम्बनावनती॥६४॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लल्लाचर्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के गोलबन्धाधिकार १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"पूर्वापरकुजवृत्तादुन्नतलवशिञ्जिनी शङ्कुः।
तस्याग्रे दिन करो नरोऽर्कबिम्बावलम्बो खे॥२१॥
अम्बरमध्यांशुमतो मध्यांशज्या भवेन्नतज्या रवे।
शङ्कोर्मूलाद् दिङ्मध्यगामिनी भूतले दृग्ज्या॥२३॥
दृग्मण्डलमुपरिष्टाद् दृष्टः स्यात्तद्वृत्तौ खचरः॥१६॥"

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"पूर्वापरक्षितिजवृत्तत उन्नतांशज्याशंकुरत्र कथितः स्फुटभिष्टभायाम्।
तस्याग्रतो दिनकरोऽम्बररत्नबिंबमध्यावलंबकमुत प्रवदन्ति शंकुम॥
दृग्मण्डलार्घ यदि होर्ध्ववर्त्तिग्रहं यतस्तत्परिणाहसंस्थम्।
दृष्टा प्रपश्यत्यवनीतलस्थो भ्रमत्यतः खेचरसंमुखं तत्॥"

वटेश्वराचार्य ने वटे.सि. के गोलबन्ध में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"समदिग्विदिग्जवलये दृक्क्षेपवृत्ते तथा
याम्योदग्वलये खमध्यखगक्षोणीजयोरन्तरम्।
भागा उन्नतसंज्ञितानतलवाः तत्खाङ्कभागान्तरं
सर्वत्रैव नरा समुन्नतगुणा दृग्ज्या नतज्याः क्रमात्॥१७॥"

इदानीमग्रामुदयास्तसूत्रं चाह—

क्ष्माजे द्युरात्रसममण्डलमध्यभागजीवाग्रका भवति पूर्वपराशयोः सा।
अग्राग्रयोः प्रगुणमत्र निबद्धसूत्रं यत् तद्वदन्ति गणका उदयास्तसूत्रम्॥३६॥
सूत्राद्दिवाशङ्कुतलं यमाशं याम्यां गतं हि द्युनिशं कुजोर्ध्वे।
अधश्च सौम्यां निशि सौम्यमस्मात् सद्युक्तियुक्तं नृतलं निरुक्तम्॥४०॥
सौम्याग्रकाग्रान्नृतलं हि याम्यं याम्याग्रकाग्रात् पुनरेव याम्यम्।
तदन्तरैक्यं समवृत्तखेटमध्यांशजीवां भुवि बाहुमाहुः॥४१॥
दृग्ज्यां श्रुतिं चाथ तयोस्तु कोटिं पूर्वापरां वर्गवियोगमूलम्।

अग्रा तथा उदयास्त सूत्र—

सूर्य-प्रभा टीका— क्षितिज तथा स्वअहोरात्र वृत्त के संपात द्वय को मिलाने वाली रेखा को उदयास्त सूत्र कहते हैं। ग्रह स्थान से लम्बवत रेखा शंकु है। दिन में इसका तल उदयास्त सूत्र से दक्षिण की ओर होता है क्योंकि क्षितिज के ऊपर अहोरात्रवृत्त दक्षिण की ओर झुका होता है तथा क्षितिज के नीचे उत्तर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की ओर नत होता हुआ होता है। अतः रात्रि में क्षितिज के नीचे शंकु तल उत्तर की ओर होता है।

क्षितिज में अहोरात्रमण्डल तथा सममण्डल के मध्यगत जीवा का नाम अग्रा है। अग्रा के दोनों (पूर्व तथा पश्चिम) बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा सूत्र स्वउदयास्त सूत्र होता है। शंकुमूल से स्वोदयास्त सूत्र के ऊपर लम्ब शंकुतल है तथा पूर्वापर सूत्र पर लंब भुज है। स्वोदयास्त सूत्र और पूर्वापर सूत्र का अन्तर अग्रा है। अतः अग्रा में से शंकु तल को घटाने से बाहु होती है। यदि अग्रा शंकुतल से अल्प हो तो उनका अन्तर करने से दक्षिण शंकुतल बाहु होता है। रवि तथा सममण्डल के अंतर की ज्या बाहु होती है तथा दृग्ज्याकर्ण होता है। अतः इनके वर्गों का (कर्ण तथा बाहु) अन्तर पूर्वापर सूत्र में कोटि होती है।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"द्युदले शंकुनतज्ये प्राच्यपराया यदि स्थितः शंकुः।
उदगूना दक्षिणतस्तदन्तरेणाधिकाऽर्काग्रा॥४६॥
उत्तर गोलेऽग्रोनं तदन्तरं याम्यगोले सूर्ये।
शंकुतलं शंकुहतं विषुवच्छाया द्विषट्कगुणाम्॥४७॥
बाहुक्रांतिः कोटिः क्षितिजां तद्वर्ग्ययुतिपदं कर्णः।
अग्रोदयास्तसूत्राद्दक्षिणतो दृश्यशंकुतलम्॥५१॥"

इदानीं क्रान्तिक्षेत्राण्याह—

क्षेत्राणि वक्ष्येऽपमसंभवानि संक्षेपतोऽक्षप्रभवाणि चातः॥४२॥
भुजोऽपमः कोटिगुणो द्युजीवा कर्णस्त्रिभज्या त्रिभुजेऽपमोत्थे।
मेषादिजीवाः श्रुतयोऽपवृत्ते तद्भूमिजे क्रान्तिगुणा भुजाः स्युः॥४३॥
तत्कोटयः स्वद्युनिशाख्यवृत्ते व्यासार्धवृत्ते परिणामितानाम्।
चापेषु तासामसवस्ततो ये तेऽधो विशुद्धा उदया निरक्षे॥४४॥

क्रांति क्षेत्रों की उत्पत्ति—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या भुज, दुज्या कोटि तथा त्रिज्या कर्ण से बनने वाले त्रिभुज से क्रांति ज्ञात होती है। मेषादि राशियों की ज्या अर्थात् भुजांशज्या कर्ण तथा क्रांतिज्या भुज होता है। इन की स्वअहोरात्र वृत्त में कोटि अर्थात् द्युज्या को व्यासार्धवृत्त में परिणामित करने से प्राप्त चाप के असुओं को

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अधोअधः घटाने से निरक्ष देश में राशियों के उदय असु होते। अर्थात्—

$$\frac{\text{विषुवांश ज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} = \text{नाडीवृत्त में राशियों के उदय असु।}$$

तीन राशि चाप के उदय असु – दो राशि चाप के उदय असु
=(मिथुन) तृतीय राशि के उदय असु।
दो राशियों के चाप के उदय असु – एक राशि चाप के उदय असु
= द्वितीय राशि के उदय असु।
तथा एक राशिचाप उदय असु = प्रथम राशि के उदय असु।

अथाक्षक्षेत्राण्याह—

भुजोऽक्षभा कोटिरिनाङ्गुलो ना कर्णोऽक्षकर्णस्त्रिभुजं यथेदम्।
तथाक्षलम्बौ भुजकोटिरूपौ त्रिज्या श्रुतिर्दक्षिणसौम्यवृत्ते॥४५॥
उन्मण्डले प्रागपरोत्थसूत्रात् क्रान्तिज्यका कोटिरथ द्युरात्रे।
कुज्या भुजोऽग्रा क्षितिजे च कर्णः क्षेत्रं तथेदं त्रिभुजं प्रसिद्धम्॥४६॥
अग्रा भुजः स्वे समना च कोटिर्द्युरात्रके तद्धृतिरत्र कर्णः।
भुजोऽपमज्या समना च कर्णः कुज्योनिता तद्धृतिरेव कोटिः॥४७॥
उद्वृत्तना दोरपमः श्रुतिः स्यादग्रादिखण्डं खलु तत्र कोटिः।
उद्वृत्तना कोटिरथाग्रकाग्रखण्डं भुजस्तच्छ्रवणः क्षितिज्या॥४८॥
कोटिर्नरः शङ्कुतलं च बाहुश्छेदः श्रुतिस्त्र्यस्त्रसहस्त्रमेवम्।
उत्पाद्य सद्यः स्फुटगोलविद्यैश्छात्राय शास्त्रं प्रतिपादनीयम्॥४९॥

अक्ष क्षेत्र—

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य ने गणिताध्याय के त्रिप्रश्नाधिकार में श्लोक १३ से १७ तक में अक्ष क्षेत्रों की उपपत्ति बताई हैं उन्हीं अक्ष क्षेत्रों को यहाँ फिर दुबारा बताया है। इसके लिए वहाँ की गई व्याख्या भी देखें। यहाँ निम्न लिखित अक्ष क्षेत्र कहे हैं।

(१) पलभा भुज, बारह अंगुल शंकु कोटि तथा अक्षकर्ण तुल्य कर्ण से एक मूलभूत अक्षक्षेत्र बनता है।

(२) अहोरात्रवृत्त तथा उन्मण्डल के संपात का पूर्वापर सूत्र से अंतर क्रांतिज्या कोटि है, कुज्या भुज तथा अग्रा कर्ण है यह एक प्रसिद्ध क्षेत्र है।

(३) दक्षिणोत्तर वृत्त में त्रिज्या कर्ण, लम्बरूप सूत्र कोटि तथा अक्षज्या भुज है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

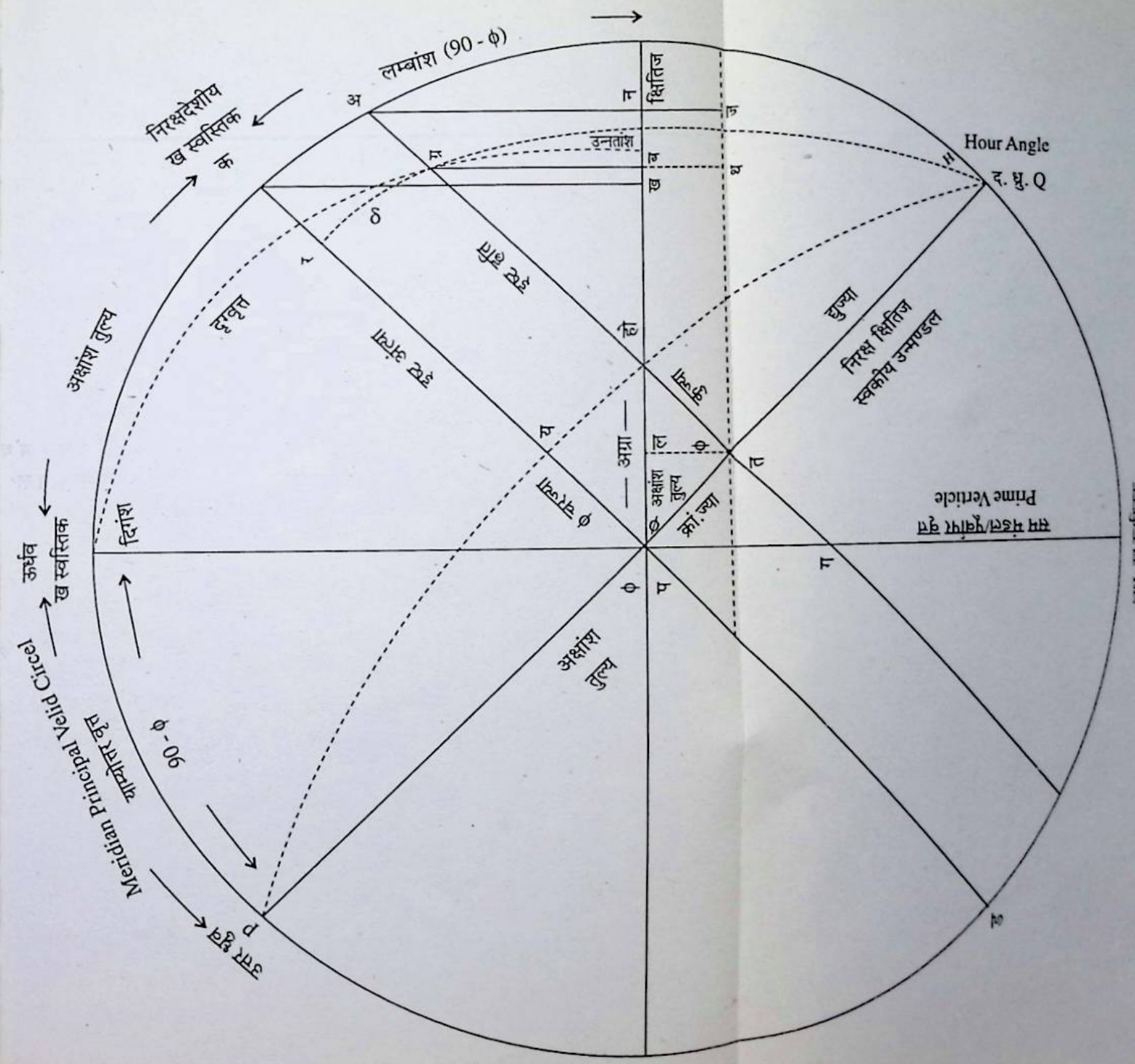

क प = अन्त्या
र च = इष्ट अन्त्या
अ त = कला
ग्र त = इष्ट कला
क प = सूत्र
र प = इष्ट सूत्र
अ न = महाशंकु
ग्र ब = इष्ट शंकु, यही ग्रह की उन्नतांश ज्या है।
ग्र थ = इष्ट षष्टि = ग्र ब + ब थ
ब थ = उन्मण्डल शंकु = त ल
अ ज = षष्टि
त ल = उन्मण्डल शंकु

(1) Δ क ख प
क ख = लम्बज्या
प ख = अक्षज्या
प क = त्रिज्या

(2) Δ प हो त
प हो = अग्रा
त हो = कुज्या
प त = क्रा.ज्या

114-B

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(४) अग्रा भुज, समशंकु कोटि तथा अहोरात्रवृत्त में तद्धृति कर्ण है, यह एक अक्षक्षेत्र है।

(५) क्रांतिज्या भुज, समशंकु कोटि तथा कुजा का तद्धृति में से घटाने से ज्यार्ध कोटि है। यह एक अक्ष क्षेत्र है।

(६) उन्मण्डल में क्रांतिज्या कर्ण, अग्रादिखण्ड कोटि तथा उन्मण्डल शंकु भुज है। यह एक अक्ष क्षेत्र है।

(७) उन्मण्डल शंकु कोटि, अग्राग्रखण्ड भुज तथा क्षितिज्या अर्थात् कुज्या कर्ण है। यह एक अक्ष क्षेत्र है।

(८) समशंकु का ऊर्ध्व खण्ड कोटि, अग्रादि खण्ड बाहु तथा तद्धृति का उर्ध्व खण्ड कर्ण है। यह एक अक्षक्षेत्र है।

इस प्रकार सहस्रों अक्ष क्षेत्र बनते हैं। इस प्रकार उनको बनाकर छात्रों को बताना चाहिए तथा शास्त्र का प्रतिपादन करना चाहिए।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के त्रिप्रश्नवासनाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ ग्रहणवासना

चन्द्रार्कग्रहणयोः स्पर्शे मोक्षे च दिग्व्यत्ययस्योपपत्तिमाह—

पश्चाद्भागाज्जलदवदधः संस्थितोऽभ्येत्य चन्द्रो
भानोर्बिम्बं स्फुरदसितया छादयत्यात्ममूर्त्या।
पश्चात् स्पर्शो हरिदिशि ततो मुक्तिरस्यात एव
क्वापिच्छन्नः क्वचिदपिहितो नैष कक्षान्तरत्वात्॥१॥

सूर्य-चंद्र ग्रहण में स्पर्श-मोक्ष की दिशा की उपपत्ति कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्र कक्षा सूर्य कक्षा के नीचे (स्थित) होती है। जिस प्रकार सूर्य से नीचे स्थित बादल रवि केा आच्छादित करते हैं, उसी प्रकार चन्द्रमा भी सूर्य को उसके नीचे स्थित होने से शीघ्रगति से रवि को पश्चिम भाग से जाता हुआ आच्छादित करता है। इस प्रकार चन्द्रमा सूर्य को पश्चिम की ओर से सूर्यग्रहण करता हुआ पूर्व दिशा की ओर निकलता हुआ उसका (रवि) मोक्ष करता है। इस प्रकार सूर्य-चंद्र दोनों की भिन्न कक्षायें होने से चन्द्रमा सूर्य को पृथ्वी पर से देखने पर पृथ्वी के किसी स्थान से ढकता हुआ दिखता है तथा किसी स्थान से ढकता हुआ नहीं दिखता जिस प्रकार से रवि से नीचे स्थित बादलों से पृथ्वी के कुछ भागों से देखने से रवि ढका हुआ दिखता है तथा कुछ स्थानों से ऐसा नहीं दिखता।

इदानीं नतिलम्बनयोः कारणमाह—

पर्वान्तेऽर्कं नतमुडुपतिच्छन्नमेव प्रपश्येत्
भूमध्यस्थो न तु वसुमतीपृष्ठनिष्ठस्तदानीम्।
तद्वक्सूत्राद्धिमरुचिरधो लम्बितोऽर्कग्रहेऽतः
कक्षाभेदादिह खलु नतिर्लम्बनं चोपपन्नम्॥२॥
समकलकाले भूभा लगति मृगाङ्के यतस्तया म्लानम्।
सर्वे पश्यन्ति समं समकक्षत्वान्न लम्बनावनती॥३॥
पूर्वाभिमुखो गच्छन् कुच्छायान्तर्यतः शशी विशति।
तेन प्राक् प्रग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽस्य निःसरतः॥४॥
भानोर्बिम्बपृथुत्वादपृथुपृथिव्याः प्रभा हि सूच्यग्रा।
दीर्घतया शशिकक्षामतीत्य दूरं बहिर्याता॥५॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुपातात् तद्दैर्घ्यं शशिकक्षायां च तद्बिम्बम्।
भूभेन्दोरन्यदिशि व्यस्तः क्षेपः शशिग्रहे तस्मात्॥६॥

नति तथा लम्बन का कारण—

सूर्य-प्रभा टीका— भूमध्य में स्थित दृष्टा द्वारा दर्शान्तकाल अर्थात् अमान्त काल में सूर्य को पूर्व अथवा पश्चिम की ओर नत होकर ढकता हुआ चन्द्रमा दिखाई देता है क्योंकि दर्शान्त काल में वे दोनों समान स्थिति में होते हैं। लेकिन भूपृष्ठ पर स्थित दृष्टा इस प्रकार से सूर्य को ढका जाता हुआ नहीं देखता। वह अपने दृष्टि सूत्र की सीध से चन्द्रमा को नीचे लंबित होता हुआ देखता है। अतः सूर्य चंद्र के कक्षाभेद होने से लम्बन तथा नति का उत्पन्न होने का कारण सिद्ध होता है। चन्द्रग्रहण में लम्बन तथा नति उत्पन्न नहीं होती क्योंकि समकलकाल में भूभा चन्द्र को आच्छादित करती हुई उस पर लगती है अतः दोनों की एक ही कक्षा होने के कारण पृथ्वी के ऊपर स्थित सभी स्थानों से चन्द्रमा को समान देखते हैं, क्योंकि वहाँ पर छाद्य चन्द्र तथा छाद्यक भूभा की एक ही कक्षा है। भूभा पूर्वाभिमुख होकर सूर्य की गति तुल्य गति से ही चलती है और चन्द्रमा अपनी स्वगति से चलता है तथा वह भूभा से भी शीघ्रगति से पूर्वाभिमुख गमन करता हुआ भूभा में स्वयं प्रवेश करता है। अतः इस प्रकार उसका चन्द्र ग्रहण के समय पूर्व की ओर से स्पर्श होता है तथा भूभा में से बाहर निकलते समय उसके पश्चिम की ओर से मुक्ति होती है। रवि का बिंब बड़ा होता है तथा पृथ्वी का लघु होता है अतः भूभा सूचिकाकार होती है। वह दीर्घ (लंबी) होने के कारण चन्द्रकक्षा तक होते हुए दूर तक जाती है। उसकी दैदर्ध्यता अनुपात से साधित करते हैं। चन्द्रकक्षा प्रदेश पर भूभा चन्द्र बिंब तुल्य होने पर चन्द्रमा का पूर्ण ग्रहण होना प्रतिपादित होता है।

विशेष— लल्ल ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के अध्याय १६ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"जलदवदिन्दुर्दिनयं छादयति समागतो यतः पश्चात्।
प्रग्रहणमतः पश्चात् प्राग्भागे दिनकरे मोक्षः॥२९॥
प्रविशतितद् भूच्छायावृत्तं त्रैराशिकात् स्वकक्षस्थम्।
तेन न लम्बनमिन्दोर्नावनतिस्तुल्यकक्षत्वात्॥३१॥
प्रत्यङ्मुखं व्रजन्त्यां पूर्वाभिमुखो व्रजति शशी यस्मात्।
तस्मात् प्राक् प्रग्रहणं पश्चान्मोक्षः शिशिररश्मे॥३२॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं छादकनिर्णयमाह—

छादकः पृथुतरस्ततो विधोरर्धखण्डिततनोर्विषाणयोः।
कुण्ठता च महती स्थितिर्यतो लक्ष्यते हरिणलक्षणग्रहे॥७॥
अर्धखण्डिततनोर्विषाणयोस्तीक्ष्णता भवति तीक्ष्णदीधितेः।
स्यात् स्थितिर्लघुरतो लघुः पृथक् छादको दिनकृतोऽवगम्यते॥८॥
दिग्देशकालावरणादिभेदान्नच्छादको राहुरिति ब्रुवन्ति।
यन्मानिनः केवलगोलविद्यास्तत् संहितावेदपुराणबाह्यम्॥९॥
राहुः कुभामण्डलगः शशाङ्कं शशाङ्कगच्छादयतीनबिम्बम्।
तमोमयः शंभुवरप्रदानात् सर्वागमानामविरुद्धमेतत्॥१०॥

अब छादक निर्णय कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— आधा आच्छादित चन्द्र का शृङ्ग कुण्ठ (भोंथ) होता है अतः चन्द्र का छादक बड़ा होता है। आधे आच्छादित सूर्य की शृङ्ग तीक्ष्ण (नुकीले) होते हैं अतः सूर्य का छादक लघु होता है। साथ ही चन्द्र ग्रहण की स्थिति दीर्घ तथा सूर्य ग्रहण की अल्प होती है। इस कारण से सूर्य का छादक दूसरा होता है यह उपपन्न होता है तथा वह लघु होता है। क्योंकि लघुपरिधि को बृहद् परिधि से कोटने से परिधि के योग बिन्दुरूप शृङ्द्वय की कुण्ठता होती है तथा विपरीत स्थिति में शृंगों की कुण्ठता नहीं होती है।

चन्द्रग्रहण पूर्व में स्पर्श होता है तथा सूर्य ग्रहण का स्पर्श पश्चिम में हेाता है। इस प्रकार दोनों ग्रहणों में भिन्नता होने का कारण क्या सूर्य और चन्द्र ग्रहण के लिए भिन्न राहु का होना है? सूर्यग्रहण में ग्रास की भी भिन्नता होती है। रवि ग्रहण पृथ्वी पर कहीं से दृश्य होता है तथा कहीं से नहीं होता। अतः इन सब कारणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रहण राहुकृत नहीं होता।

पूर्णान्त काल में चन्द्र बिंब को ब्रह्मा के वरदान से भूभा को आश्रयण कर के अर्थात भूभा में राहु प्रविष्ठ होकर (उसी चन्द्र बिंब को) आच्छादित करता है। एवं ब्रह्मवरदान से राहु चन्द्र बिंब में प्रविष्ठ होकर उसी सूर्य बिंब को आच्छादित करता है। इस प्रकार भास्कराचार्य ने भी अन्य आचार्यों की भांति ही संहिता-वेद-स्मृति-पुराणों के मत के साथ ज्योतिष सिद्धान्त का समन्वय किया है। आचार्य ने स्वकृत भाष्य में पुराण वाक्य उद्धृत किये हैं। यथा—

"सर्वगङ्गासमं तोयं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः। सर्व भूमिसमं दानं राहुग्रस्ते दिवाकरे।"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्य कहते हैं कि खगोल ज्ञाता अभिमानी गणितज्ञों का उक्त मत सही है फिर भी वेद पुराण तथा संहिता शास्त्रों के अनुसार उक्त कथन सही नहीं है।

विशेष ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के ग्रहणवासनाध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"महदिन्दोरावणं कुण्ठविषाणो यतोऽर्धसञ्छन्नः।
अर्धच्छन्नो भानुस्तीक्ष्ण विषाणस्ततोऽस्याल्पम्॥३६॥
यदि राहुः प्राग्भागादिन्दुं छादयति किं तथा नार्कम्।
स्थित्यर्ध महदिन्दोर्यथा तथा किं न सूर्यस्य॥३७॥
किं प्रतिविषयं सूर्यो राहुश्चान्यो यतो रविग्रहणे।
ग्रासान्यत्वं न ततो राहुकृतं ग्रहणकर्मेन्द्वोः॥३८॥
एवं वराहामिहिर श्रीषेणार्यभट विष्णु चन्द्राद्यैः।
लोक विरुद्धमभिहितं वेदस्मृति संहिताबाह्यम्॥३९॥"
स्वर्भानुरासुरिनं तमसा दिव्याध वेदवाक्यमिंदम्।
श्रुति संहितास्मृतीनां भवति यथैक्यं तदुक्तिरतः॥४३॥
राहुस्तच्छादयति प्रविशति यच्छुक्लपञ्चदशयन्ते।
भूछाया तमसीन्दोर्वरप्रदानात् कमलयोनेः॥४४॥
चन्द्रोऽम्बुमयोऽधः स्थो यदग्निमयभास्करस्य मासान्ते।
छायति शमिततापो राहुश्छादरयति तत् सवितुः॥४५॥

वराहमिहिर ने संहिता में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"आवरणं महदिन्दोः कुण्ठविषाणस्ततोऽर्धसञ्छन्नः।
स्वल्पं रवेर्यतोऽतस्तीक्ष्णविषाणौ रविर्भवति॥"

श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"राहुणा यदि पिधीयते ग्रहस्तिग्मशीतमहसोः स्वतृप्तये।
नैकरूपमवलोक्यते कथं स्पर्शमोचनविमर्दपूर्वकम्॥
सर्वं च गङ्गासममम्बु राहुग्रस्ते दिनेशे यदि वा शशाङ्के।
राहुपलब्धेरपरत्र कुर्यात स्नानं न रात्रौ स्मृतिषुक्तमेवम्॥
स्वर्भानुरासुरिरिनं तमसा घनेन विव्याध वेदवचने तदपि प्रसिद्धम्।
प्रोक्तानि भानुशशिनोरसुरेश्वरेण सञ्छन्नयोरपि च सांहितिकैः फलानि॥
विष्णुलूनशिरसः किल पद्मोर्दत्तवान् वरमिमं परमेष्ठी।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हेमदानविधिना तव तृप्तिस्तिग्मशीतमहसोरुपरागे।
भमेश्छायां प्रविष्टः स्थगयति शनिनं शुक्ल-
-पक्षावसाने राहुर्ब्रह्मप्रसादात् समधिगतवरस्तत्तमो व्यासतुल्यः।
ऊर्ध्वस्थं भानुबिम्बं सलिलमयतनोरप्यधोवत्ति बिम्बं
संसृत्यैवं च मासव्युपरति समये स्वस्य साहित्यहेतोः॥''अ.१६।

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के मिथ्याज्ञानाधिकार २० में आचार्योक्त कहा है। यथा–

''प्रथमं रविमण्डलं यतो न ततः खण्डितमिन्दुमण्डलम्।
न समाकृतिरीक्ष्यते स्थितिर्यदतो राहुकृतो न स ग्रहः॥२५॥
सवितुश्च यदन्यथाऽन्यथा प्रतिदेशं सकलं समीक्ष्यते।
न च कुत्रचिदित्यवेत्य कः कुरुते राहुकृते ग्रहे ग्रहम्॥२६॥
ग्रहणे कमलासनानुभावाद्धुतदत्तांशभुजोऽस्य सन्निधानम्।
यदतः स्मृतिवेदसंहितासु ग्रहणं राहुकृतं गतं प्रसिद्धम्॥२७॥''
छादक बिम्बमहत्वाद् विषाणयोः कुण्ठतार्धसंच्छन्ने।
चन्द्रे स्थितिश्च महती भवति न च ग्रासवैचित्र्यम्॥३३॥''
ग्रहणे ग्रहमोक्ष दिशो रविशशिनोः खण्डकालवैचित्र्यात्।
शशिभूच्छाये कारणमकरणं राहुरिति सिद्धम्॥३४॥''

इदानीं ते लम्बनावनती कुतो हेतोः कृत इति कुदलेन साध्येते इत्यस्य प्रश्नस्योत्तरमाह—

यतः क्रर्धोच्छ्रितो द्रष्टा चन्द्रं पश्यति लम्बितम्।
साध्यते कुदलेनातो लम्बनं च नतिस्तथा॥११॥

लम्बन तथा नति का कारण तथा इसको दिनार्ध से क्यों साधित करते हैं? प्रश्न का उत्तर कहते हैं—

(यहाँ श्लोक-११ से २९ तक द्वारा आचार्य ने गणिताध्याय के सूर्यग्रहणाधिकार में कथित श्लोक-७ में उक्त लम्बन की उपपत्ति भी कही है।)

सूर्य-प्रभा टीका— क्योंकि भूपृष्ठ द्रष्टा भूकेन्द्र से भूव्यासार्ध तुल्य दूरी पर ऊपर स्थित होता है, अतः वह चन्द्रमा को वहाँ से नत देखता है। अतः दिनार्ध के समय लम्बन तथा नति का अभाव होता हैं।

विशेष— सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने आचार्योक्त कहा है। यथा–

''दृग्मण्डलार्धं यदि होर्ध्ववर्त्तिग्रहं यतस्तत्परिणाहसंस्थम्।
द्रष्टा प्रयश्चत्यवनीतलस्थो भ्रमत्यतः खेचरसंमुखं तत्॥''

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के गो.बन्ध. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दृश्यादृश्यं दृग्गोलार्धं भूव्यासदलविहीनयुतम्।
द्रष्टा भूगोलोपरि यतस्ततो लम्बनावनती॥६४॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रं. के गो.बन्ध १५ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दृङ्मण्डलमुपरिष्टाद् दृष्टः स्यात् तद्वृत्तौ खचरः॥१६॥"

इदानीं बालावबोधार्थं छेदद्यकप्रकारेण लम्बनमाह—

इष्टापवर्तितां पृथ्वीं कक्षे च शशिसूर्ययोः।
भित्तौ विलिख्य तन्मध्ये तिर्यग्रेखां तथोर्ध्वगाम्॥१२॥
तिर्यग्रेखायुतौ कल्प्यं कक्षायां क्षितिजं तथा।
ऊर्ध्वरेखायुतौ खार्धं दृग्ज्याचापांशकैर्नतौ॥१३॥
कृत्वार्केन्दू समुत्पत्तिं लम्बनस्य प्रदर्शयेत्।
एकं भूमध्यतः सूत्रं नयेच्चण्डांशुमण्डलम्॥१४॥
द्रष्टुर्भूपृष्ठगादन्यद्दृष्टिसूत्रं तदुच्यते।
कक्षायां सूत्रयोर्मध्ये यास्ता लम्बनलिप्तिकाः॥१५॥
गर्भसूत्रे सदा स्यातां चन्द्रार्कौ समलिप्तिकौ।
दृक्सूत्रालम्बितश्चन्द्रस्तेन तल्लम्बनं स्मृतम्॥१६॥
दृग्गर्भसूत्रयोरैक्यात् खमध्ये नास्ति लम्बनम्।

छात्रों के समझने के लिए छेद्यक प्रकार से लम्बन ज्ञात करना—

सूर्य-प्रभा टीका— इष्टमान से अपवर्तित करके पृथ्वी बिंब तथा सूर्य-चंद्र की कक्षा की रचना एक दीवार पर करे। उसके मध्य में एक ऊर्ध्व रेखा तथा उसके लम्बवत् रेखा बनावे। लम्बवत रेखा सू.चं. की कल्पित कक्षाओं को जहाँ से काटते हुए जावे उसको क्षितिज माने तथा ऊर्ध्व रेखा जहाँ काटते हुए जावे वहाँ खमध्य माने। सू.चं. कक्षाओं में ३६० अंश भगणांश अंकित करे तथा चन्द्रसूर्य दृग्मण्डल में दर्शान्तकाल में सूर्य की दृग्ज्या तुल्य चापांश खमध्य से नत एक बिन्दु लगावें और इसी प्रकार चंद्र कक्षा में दर्शान्त कला में नतांश तुल्य एक बिन्दु लगावें। इन बिन्दुओं पर क्रमशः सूर्य तथा चन्द्रमा को कल्पित करें। अब भूमध्य बिन्दु से रवि बिन्दुगत रेखा खेंचे यह रेखा चन्द्रमा से होती हुई सूर्य तक जाती है। फिर भूपृष्ठ द्रष्टा स्थान से एक दूसरी रेखा सूर्य बिंदु तक खेंचे यह चन्द्रबिन्दु को नहीं छूती है। इन दोनों सूत्रों का अन्तर चन्द्रकक्षा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में जितने कला दिखाई देती है वह लम्बलिप्ता हैं। अथवा दृष्टास्थान से चन्द्रबिंदु के ऊपर होती हुई रेखा सूर्य कक्षा में जहाँ पर लगती है वहाँ इन सूत्रों का अन्तर जितने कला दिखाई देता है वह लम्बन लिप्ता के तुल्य होता है। भूगर्भ से होकर जाने वाला सूत्र गर्भसूत्र कहलाता है तथा सूर्य व चन्द्रमा वहाँ पर (उस सूत्र में) समान कला स्थान में रहते हैं। तथा जो रेखा दृष्टास्थान से रवि या चन्द्र तक जाती है उसको दृक्सूत्र कहते हैं। दृक्सूत्र से चन्द्रमा लंबित रहता है। इसको उसका लम्बन कहते हैं। जब चन्द्र तथा सूर्य खमध्य में होते हैं तब गर्भसूत्र तथा दृष्टी सूत्र एक ही हो जाने के कारण लम्बन का अभाव होता है।

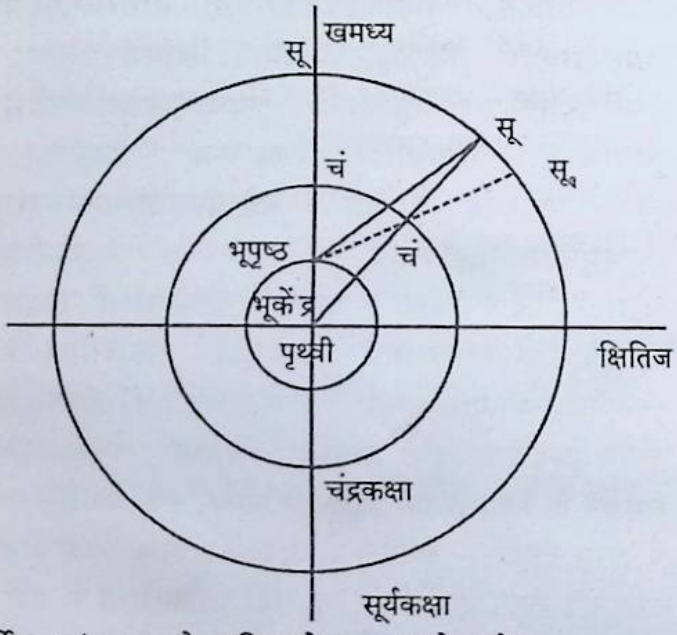

पूर्वोक्त वृत्तांन्त उपरोक्त चित्र से सुस्पष्ट होता है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के अध्याय १६ में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"द्रष्टा समकलकाले भूदलमध्यस्थितः सूर्यम्।
पश्यति शशिना पिहितं न तदा भूगोलपृष्ठस्थः॥२३॥
भूप्रष्टमतो द्रष्टा पूर्वनतं पूर्वमेव तिथ्यन्तात्।
पश्यति समुच्छित्त्वाच्छशिनारविमण्डलं पिहितम्॥२४॥
पश्यति समकलकालात् परयोऽन्तरधीयते गतं नीचम्।
तेन प्राक् पश्चिमयोः कुदलकलालम्बनमृणं स्वम्॥२५॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूदलमध्यस्थस्य द्रष्टुर्भूपृष्ठगस्य वा दृष्टिः।
स्वाभिमुखं याति समं न लम्बनं तेन मध्याह्ने॥२६॥
पूर्वापरे कुवृत्ते लम्बनलिप्तोपपत्तिरुक्ता या।
याम्योदक्क्षितिजवशात् सा ज्ञेयाऽवनतिलिप्तानाम॥२७॥"

इदानीं नत्युपपत्तिमाह—

अथ याम्योत्तरायां तु भित्तौ पूर्वोक्तमालिखेत्॥१७॥
ये कक्षामण्डले तत्र ज्ञेये दृक्क्षेपमण्डले।
त्रिभोनलग्नदृग्ज्या या स दृक्क्षेपो द्वयोरपि॥१८॥
तच्चापांशैर्नतौ बिन्दू कृत्वा वित्रिभसंज्ञकौ।
तल्लम्बनकलाः प्राग्वज्ज्ञेयास्ता नतिलिप्तिकाः॥१९॥
कक्षयोरन्तरं यत् स्याद्वित्रिभे सर्वतोऽपि तत्।
याम्योत्तरं नतिः सात्र दृक्क्षेपात् साध्यते ततः॥२०॥

नति की उपपत्ति कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— पूर्वोक्त प्रकार से ही याम्योत्तर दिशा में नति को दर्शाये। जहाँ पहले कक्षामण्डल बताया गया वहाँ दृक्क्षेप मण्डल जाने। दर्शान्त में सूर्य तथा चन्द्र के त्रिभोनलग्न की जो दृग्ज्या है वह दृक्क्षेप है। ब्रह्मगुप्त मतानुसार उसके चापांश के वित्रिभ लग्न का शर संस्कार करने से चन्द्र का दृक्क्षेप चापांश होता है। उनके वृत्तों में खमध्य से स्वस्व दृक्क्षेप चापांश तुल्य सूर्य तथा चन्द्र के नत बिन्दु बनावे, इनकी वित्रिभ संज्ञा है। फिर पूर्ववत् जैसे सूर्यचंद्र का लम्बन कहा गया है। उसको ही यहाँ पर याम्योत्तर अन्तर नति के नाम से समझना चाहिये। अर्थात् जैसे पूर्व में भूमध्य और भूपृष्ठ से जो सूत्र बनाये गये हैं उनसे जैसे लम्बन कला कही है उसको यहाँ नतिकला कहते हैं। नति का अर्थ चन्द्रसूर्य का अपनी कक्षा में याम्योत्तर अंतर होता है। वित्रिभ लग्न स्थान पर जो याम्योत्तर अन्तर चंद्र सूर्य में होता है वही अन्तर सर्वत्र होता है। इस अन्तर को दृक्क्षेप के द्वारा साधित करने से नति का मान ज्ञात होता है।

दृक्क्षेपमण्डल, त्रिभोन लग्न दृङ्मण्डल को कहते हैं। ब्रह्मगुप्त ने त्रिभोन लग्न से लम्बन तथा नति साधन करने में त्रिभोन लग्न की दृग्ज्या को दृक्क्षेप चंद्र तथा सूर्य दोनों के लिए कहा है। उसके चापांश के लिए यहाँ आचार्य ने कहा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विशेष— पूर्व श्लोकों की व्याख्या विशेष में देखें।

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के अध्याय १६ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अथवा नतिः खमध्यान्मध्यज्याग्रं तदुत्थनत भागैः।
याम्यमुदग् वा यद्वद्ग्रहयोः कक्षान्तरं नद्वद्॥२८॥"

इदानीं स्फुटलम्बनार्थमाह—

यत्र तत्र नतादर्कादधश्चन्द्रावलम्बनम्।
तद्वृग्वृत्तेऽन्तरं चन्द्रभान्वोः पूर्वापरं तु तत्॥२१॥
पूर्वापरं च याम्योदग्जातं तेनान्तरद्वयम्।
अत्रापमण्डलं प्राची तत्तिर्यग्दक्षिणोत्तरा॥२२॥
यत् पूर्वापरभावेन लम्बनाख्यं तदन्तरम्।
यद्याम्योत्तरभावेन नतिसंज्ञं तदुच्यते॥२३॥
नतिलिप्ता भुजः कर्णो दृग्लम्बनकलास्तयोः।
कृत्यन्तरपदं कोटिः स्फुटलम्बनलिप्तिकाः॥२४॥
परलम्बनलिप्ता $\frac{४८}{४६}$ घ्नी त्रिज्याप्ता रविदृग्ज्यका।
दृग्लम्बनकलास्ताः स्युरेवं दृक्क्षेपतो नतिः॥२५॥
गत्यन्तरस्य तिथ्यंशः परलम्बनलिप्तिकाः $\frac{४८}{४६}$।
गतियोजनतिथ्यंशः कुदलस्य $\frac{७९०}{३५}$ यतो मितिः॥२६॥
स्युर्लम्बनकला नाड्यो गत्यन्तरलवोद्धृताः।
प्रागग्रतो रवेश्चन्द्रः पश्चात् पृष्ठेऽवलम्बितः॥२७॥
शीघ्रेऽग्रगे युतिर्याता गम्या पृष्ठगते यतः।
प्रागृणं तद्धनं पश्चात् क्रियते लम्बनं तिथौ॥२८॥
याम्योत्तरं शरस्तावदन्तरं शशिसूर्ययोः।
नतिस्तथा तया तस्मात् संस्कृतः स्यात् स्फुटः शरः॥२९॥

अब स्फुट लम्बन का अर्थ कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जहाँ कही सूर्य से नीचे चन्द्रमा जितना नत दिखाई देता है वह वहाँ पर दोनों दृग्वृत्तों (गर्भीय सूत्र तथा भूपृष्ठीय सूत्र) का अन्तर चन्द्र-सूर्य का पूर्वापर अन्तर होता है॥२१॥

पूर्वापर तथा दक्षिणोत्तर में ये दोनों अन्तर अपमण्डल में पूर्व दिशा में तथा उसके लम्ववत दक्षिणोत्तर में क्रमशः होते हैं॥२२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्वापर में होने वाले अन्तर को लम्बन कहा है तथा दक्षिणोत्तर में होने वाले अन्तर को नति के नाम से कहते हैं॥२३॥

नति लिप्ता तुल्य भुज, दृग्लम्बन कला तुल्य कर्ण तथा इनके वर्गों के अन्तर का मूल कोटि रूप स्पष्ट लम्बन लिप्तिका होता है॥२४॥

परमलम्बन लिप्ता ४८।४६ को रविदृग्ज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से दृग्लम्बन कला प्राप्त होते हैं, और दृक्क्षेप के द्वारा इसी प्रकार नति का मान प्राप्त होता है॥२५॥

सूर्य चन्द्र की गति के अन्तर का पन्द्रहवाँ (१५) भाग परमलम्बन लिप्ता ४८।४६ होता है और गति योजन ११८ ५८।४५ का पन्द्रहवाँ (१५) वाँ भाग भूव्यासार्ध ७९०।३५ तुल्य होता है॥२६॥

जो लम्बकला प्राप्त होती है उनको सू चं. के गति अन्तर से विभक्त करने से लंबन काल घटियाँ प्राप्त होती हैं। अर्थात् $\frac{\text{लम्बनकला} \times ६०}{\text{गति अन्तर}}$ लंबन काल (घटियाँ) होती हैं। पूर्वकपाल में सूर्य से चन्द्रमा आगे रहता है तथा पश्चिम कपाल में लंबित (पीछे) रहता है॥२७॥

अतः पूर्व कपाल में लंबन काल ऋण तथा पश्चिम कपाल में धन होता है क्योंकि शीघ्रगति ग्रह यदि मन्दगति ग्रह से आगे रहता है तो इसका अर्थ है दोनों की युति हो चुंकि तथा यदि पीछे रहता है तो इसका अर्थ है कि गति अब आगे होगी॥२८॥

याम्योत्तर में जो शर है वह सूर्य चंद्र का अन्तर है और नति भी वही है अतः शर में नति का संस्कार (धन ऋण) करने से स्फुट शर प्राप्त होता है॥२९॥

अथ वलनवासनामाह—

तुलाजाद्यो र्हि संपाते विषुवत्क्रान्तिवृत्तयोः।
स्यातां याम्योत्तरेभिन्ने परक्रान्त्यन्तरे च ते॥३०॥
आयनं वलनं तत्र जिनांशज्यासमं ततः।
एकैवाऽयनसंधौ तु तयोः स्याद्दक्षिणोत्तरा॥३१॥
एकैव तद्वशात् प्राची तत्र नो वलनं ततः।
तदन्तरेऽनुपातेन खेटकोटिक्रमज्यका॥३२॥
जिनज्याघ्नी द्युजीवाप्तायनदिग्वलंन भवेत्।
एवमेव हि संपाते विषुवत्समवृत्तयोः॥३३॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उन्मण्डलं भवेत् तत्र विषुवद्दक्षिणोत्तरा।
क्षितिजं समवृत्तस्य पलज्या च तदन्तरम्॥३४॥
क्षितिजेऽक्षज्यया तुल्यमक्षजं वलनं ततः।
तयोरेकैव याम्योदङ्न मध्ये वलनं ततः॥३५॥
नतक्रमज्यया साध्यमन्तरे त्वनुपाततः।
नतं खाङ्काहतं भक्तं द्युदलेनाप्तभागकैः॥३६॥
क्रमज्याक्षज्यया क्षुण्णा द्युज्याभक्ताक्षजं भवेत्।
प्राक् सौम्यं पश्चिमे याम्यं तच्चापैक्यान्तरात् स्फुटम्॥३७॥
एवमेव च संपातो यः क्रान्तिसमवृत्तयोः।
परमं तत्र तत्कालवनैक्यान्तरं स्फुटम्॥३८॥
अग्रतः पृष्ठस्तस्मात् क्रान्तिवृत्ते त्रिभेऽन्तरे।
तयोर्याम्योत्तरैकत्वात् तत्र नो वलनं स्फुटम्॥३९॥
न स्पष्टवलनाभावस्तत्र स्यादुत्क्रमज्यया।
क्रमज्यया ततः कार्यं दार्ढ्यार्थं कथ्यते पुनः॥४०॥
सर्वतः क्रान्तिसूत्राणां ध्रुवे योगो भवेद्यतः।
विषुवन्मण्डलप्राच्या ध्रुवे याम्या तथोत्तरा॥४१॥
सर्वतः क्षेपसूत्राणां ध्रुवाज्जिनलवान्तरे।
योगः कदम्बसंज्ञोऽयं ज्ञेयो वलनबोधकृत्॥४२॥
तत्रापमण्डलप्राच्या याम्या सौम्या च दिक् सदा।
कदम्वभ्रमवृत्तं च बध्नीयात् परितो ध्रुवात्॥४३॥
गोले तु जिनतुल्यांशैस्तत्र ज्या क्रान्तिशिञ्जिनी।
सर्वतः समवृत्ताच्च याम्योदक्कुजसंगमे॥४४॥
तत्तिर्यग्गतसूत्राणां योगः स समसंज्ञकः।
समध्रुवकदम्बानामुपरि द्युचरान्नयेत्॥४५॥
सूत्राणि वृत्तरूपाणि वलनानि तदन्तरे।
अक्षजं वलनं मध्ये स्यात् समध्रुवसूत्रयोः॥४६॥
कदम्बध्रुवसूत्रान्तरायनं च त्रिभे ग्रहात्।
कदम्बसमसूत्रान्तः स्फुटं सर्वदिशां च तत्॥४७॥
अथवा परितः खेटात् खाङ्कभागान्तरे न्यसेत्।
त्रिज्यावृत्तं ततस्तत्र विषुवत्समवृत्तयोः॥४८॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मध्येऽक्षवलनं विद्याद्विषुवत्क्रान्तिवृत्तयोः।
अन्तरं चायनं क्रान्तिसमवृत्तान्तरे स्फुटम्॥४९॥
तत्रापमण्डलं प्राची तस्या याम्योत्तरः शरः।
वलनानयने क्षेपः क्षिप्तो यैस्ते कुबुद्धयः॥५०॥
नक्रादिश्च कदम्बश्च स्यातां याम्योत्तरे समम्।
आयनं वलनं तस्मान्नायनादौ प्रजायते॥५१॥
ततो भ्रमति गोले स मकरादिर्यथा यथा।
तथा तथा भ्रमत्येष कदम्बो निजमण्डले॥५२॥
कुम्भादावथ मीनादौ याम्योदग्वलयस्थिते।
जायते वलनं तद्यत् सौम्यसूत्रकदम्बयोः॥५३॥
अन्तरं शिञ्जिनीरूपं कदम्बभ्रममण्डले।
अयनाद्गतकालांशक्रमक्रान्तिज्यका हि सा॥५४॥
उत्क्रमज्या यतो बाणः शिञ्जिनी तु क्रमज्यका।
सत्रिभार्कात् क्रमक्रान्तिज्यातो वलनमायनम्॥५५॥
यैरुक्तमुत्क्रमक्रान्त्या भ्रान्त्या तैर्नाशितं हि तत्।
युक्त्यानयैव विक्षेपमक्षजं च क्रमज्यया॥५६॥
परोक्तेरन्यथा ब्रूयाद्यः परान् न प्रदूषयेत्।
तस्यैव दूषणं तद्धि न दोषोऽतोऽन्यदूषणे॥५७॥
उत्क्रमज्यानिरासोऽयमन्यथा वाथ कथ्यते।
जिनांशैर्जिनवृत्ताख्यं कदम्बात् परितो न्यसेत्॥५८॥
क्रान्तियाम्योत्तरं वृत्तं कदम्बद्वयकीलयोः।
प्रोतं कृत्वा चलं न्यस्तं द्वन्द्वान्ते स्याद्ध्रुवोपरि॥५९॥
द्वन्द्वान्ताच्चाल्यतेंऽशैर्यैस्तैरेव चलति ध्रुवात्।
जिनवृत्ते तदंशानां तत्र ज्या क्रान्तिशिञ्जिनी॥६०॥
आयनं सैव वलनं द्युज्याग्रे जायते ग्रहात्।
ग्रहध्रुवान्तरे यस्माद्द्युज्याचापांशकाः सदाः॥६१॥
त्रिज्यावृत्ते यतो देयं तत्रातः परिणाम्यते।
एवमक्षांशकैर्वृत्तं समाख्यात् परितो न्यसेत्॥६२॥
समकीलकयोः प्रोतं तथा याम्योत्तरं चलम्।
तत्तत्खेटोपरि न्यस्तं यैरंशैः खार्धतो नतम्॥६३॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समवृत्तेऽक्षवृत्ते च तैरेव स्यान्नतं ध्रुवात्।
समवृत्तनतांशज्याक्षज्यापरिणताक्षजम्॥६४॥
द्युज्याग्रे वलनं प्राग्वत् त्रिज्याग्रे परिणाम्यते।
उपपत्त्यानया सम्यक् समवृत्तनतांशजम्॥६५॥
वलनं स्यात् तथा वक्ष्ये स्वाहोरात्रनतादपि।
अग्रानृतलयोर्योगः समदिक्त्वेऽन्यथान्तरम्॥६६॥
तत्त्रिज्यावर्गविश्लेषपदभक्ताक्षशिञ्जिनी।
नतासुदोर्ज्यया क्षुण्णा वलनं पलजं स्फुटम्॥६७॥
नतं खाङ्काहतं भक्तं द्युदलेनाप्तभागकैः।
क्रमज्याक्षज्यया क्षुण्णा स्थलं वा द्युज्यया हृता॥६८॥
द्युज्यावृत्तापवृत्तैक्ये न्यसेद्वा रविमण्डलम्।
बिम्बाग्रे वलनं तद्यदन्तरं वृत्तयोस्तयोः॥६९॥
बिम्बान्तबिम्बमध्योत्थक्रान्तिमौर्व्योस्तदन्तरम्।
अर्कदोर्भोग्यखण्डघ्नं बिबार्धं तत्त्वदस्रहृत्॥७०॥
जिनज्याघ्नं त्रिभज्याप्तमेवं स्यादन्तरं हि तत्
बिम्बार्धहृत् त्रिभज्याघ्नमेवं त्रिज्यागतं भवेत्॥७१॥
गुणहारकबिम्बार्धत्रिज्यानाशे कृते सति।
भोग्यखण्डं जिनांशज्यागुणं तत्त्वाश्विभाजितम्॥७२॥
सत्रिभार्कात् क्रमक्रान्तेस्तत् तुल्यं जायतेऽथवा।
क्रमक्रान्तेरिदं वीक्ष्य भ्रान्तिं त्यजत बालिशाः॥७३॥
नामितं छत्रवद्विम्बं तिर्यक् क्रान्तिस्तु सा समा।
अत्र द्युज्यानुपातो यस्तत्तिर्यक्करणाय सः॥७४॥

अब वलन वासना कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— विषुवतवृत्त तथा क्रान्तिवृत्त का संपात मेषारंभ तथा तुलारंभ बिन्दुओं पर होता है तथा उनके बीच याम्योत्तर अंतर भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होता है तथा यह परम अंतर परम क्रांति तुल्य होता है। इन पर परम अयन वलन २४ अंश की ज्या तुल्य होता है। वहाँ एक अयन संधि तो दक्षिणोत्तर है और उसके कारण एक पूर्व दिशा में है। वहाँ पर वलन नहीं होता। उसके बाद अनुपात से ग्रह की कोटिक्रमज्या को २४ अंश (जिनांश) की ज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से वलन (दिग्वलन) ज्या होती है। इसी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकार विषुवद्वृत्त से दक्षिणोत्तर क्षितिज में समवृत्त की अक्षांश ज्या तुल्य अन्तर होता है। क्षितिज में अक्षज्या के तुल्य अक्षवलन होता है। इन दोनों, अक्षवलन तथा अयनवलन का योग याम्योत्तर मध्य (स्फुट) वलन होता है। नतक्रमज्या साधित करके उसका अनुपात करने से नत को (९०) से गुणा करके (सूर्य या चन्द्र के जिसका ग्रहण हो) दिनार्ध से विभक्त करने से नतांश ज्या होती है। नतांश क्रमज्या को अक्षक्रमज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से स्थूल अक्ष वलन ज्या होती है। पूवनत में उत्तर, पश्चिम नत में दक्षिण अक्षवलन चापों का योगान्तर करने से स्फुट अक्षवलन होता है।

इसी प्रकार क्रांतिवृत्त और समवृत्त का जहाँ संपात परम होता है वहाँ तात्कालिक वलन का योगान्तर स्फुट वलन होता है॥३८॥

उसके आगे तथा पीछे क्रांतिवृत्त में तीन राशि अन्तर पर उनका याम्योत्तर अन्तर एक ही हो जाने से वहाँ वलन स्फुट नहीं होता।

स्पष्ट वलन का वहाँ अभाव होने से वहाँ क्रमज्या, उत्क्रमज्या नहीं होती। वहाँ उन्हें ज्ञात करने के लिए पुनः कहते हैं।

क्रांतिसूत्रों से सब ओर ध्रुव को योग करने से विषुवद्मण्डल के पूर्व (सामने) से ध्रुव उत्तर व दक्षिण होते हैं।

सब ओर क्षेत्र सूत्र (सभी) ध्रुव से २४ अंश अन्तर पर योग करे तो वह बिन्दु कदम्ब संज्ञक होता है और वह वलन का बोध कराता है।

अपमण्डल के पूर्व से उत्तर व दक्षिण दिशा में कदम्ब भ्रमण वृत्त सदा ध्रुवों के चारों ओर बंधे हुए घूमते हैं। गोल में जहाँ २४ अंश के तुल्य ज्या क्रांतिज्या होती है। सब जगह पर समवृत्त से क्षितिज याम्योत्तर में मिलता है। उसके लम्बवत् सूत्र जहाँ योग करते हैं वह सम संज्ञक स्थान है। सम, ध्रुव और कदम्ब के ऊपर के अतिरिक्त अन्य स्थान पर ग्रह भ्रमण करते हें। वृत्तरूप सूत्रों के वलनों (घुमाव) के अन्तर पर अक्षवलन तथा अयनवलन के मध्य समध्रुव सूत्र होता है।

कदम्ब ध्रुव सूत्रों के अन्तर आनयन करके उससे तीन राशि दूरी पर कदम्ब-सम सूत्रान्त पर वे सभी दिशाओं में स्फुट होते हैं।

अथवा क्रांति वृत्तस्थ ग्रह के चारों ओर ९० अंश दूरी पर एक त्रिज्यावृत्त न्यास करके वहाँ विषुवद्समवृत्त के मध्य अन्तर के द्वारा अयन वलन ज्ञात करके

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषुवद और क्रांतिवृत्त का अन्तर ज्ञात करके क्रांतिवृत्त समवृत्त का अन्तर स्फुट वलन होता है।

अपमण्डल के पूर्व में उसका याम्योत्तर शर होता है उसको वलन आनयन के लिए क्रांति में योग करने के लिए कुबुद्धि लोग कहते हैं।

मकरादि से याम्योत्तर वृत्त यदि कम्बद से होकर जावे तो विषुवद् और क्रांतिवृत्त के एक हो जाने से ऐसा होता है। वहाँ अयन वलन नहीं होता तथा वहाँ कदम्ब और ध्रुवप्रोत वृत्तों का अन्तर नहीं रहता है।

गोल अर्थात् क्रांतिवृत्त में मकर के आदि स्थान उपलक्षण द्वारा अयन संधि कही है। वह जैसे-जैसे स्वअहोरात्रवृत्त में भ्रमण करती है वैसे-वैसे पूर्व प्रतिपादित प्रकार से कदम्ब अपने मण्डल में भ्रमण करता है।

याम्योत्तर वृत्त जो ध्रुवप्रोत में स्थित कुंभादि तथा मीनादि से होकर जाता है उसमें वलन होता है क्योंकि सौम्य (उत्तर) सूत्र का कदम्ब से अंतर शिञ्जिनीरूप में कदम्ब भ्रमण मंडल में अयन से गत कालांश क्रम क्रान्तिज्या ही वलन होता है।

उत्क्रमज्या बाणरूप होती है तथा त्रिज्या क्रमज्या होती है। सत्रिम सूर्य की क्रांति क्रमज्या से वलन आयन करे।

जिन आचार्यों ने (श्रीपति तथा लल्लाचार्य आदि) जो उत्क्रमज्या से क्रांतिज्या तुल्य कहा है व भ्रम वश कहा है। उस भ्रांति के नाश के लिए ही आचार्य ने नतकाल की क्रमज्या ज्ञात करने के लिए कहा है न कि उत्क्रमज्या। और इसी युक्ति से विक्षेप तथा अक्षांश क्रमज्य से ज्ञात करने के लिए कहा है।

दूसरों के कहे हुए के विपरीत कहना दूसरे को दूषण देना नहीं है। अतः अपने ग्रंथ को शुद्ध करने के लिए दूसरों के कहे हुए के विपरीत कहना कोई दोष युक्त नहीं है यदि उसके द्वारा दूसरों को दूषित न किया जावे। लौकिक रूप से यह निन्दा पाप है। लेकिन यहाँ आचार्य ने परनिन्दा नहीं की है अतः दूसरों की बात के विपरीत कहकर कोई पाप नहीं किया है। वे कहते हैं लल्लादि ने जो उत्क्रमज्या का प्रयोग किया है वह भ्रान्तिवश किया है।

उत्क्रमज्या को हटाने के लिए आचार्य कहते हैं कि वे अन्य प्रकार से इसके लिए कहते हैं कि जिस प्रकार ध्रुव से २४ अंश की दूरी पर कदम्ब से निबद्ध एक वृत्त गोल में भ्रमण करता है उसी प्रकार कदम्व से २४ अंश की दूरी पर चारों ओर घूमने वाले वृत्त का न्यास करे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रान्ति याम्योत्तर वृत्त दोनों कदम्बों पर कीलित होकर चलता है। यह अयन सन्धि बिन्दु पर ध्रुव के ऊपर से होकर भी जाता है। यहाँ अयन संधि मिथुनान्त बिन्दु है।

अयन संधि से पूर्वोक्त कदम्ब प्रोत वृत्त क्रांतिवृत्त में जितने अंश (न्यूनाधिक) चलता है उतने ही ध्रुवासक्त प्रदेश से कदम्ब प्रोत वृत्त चलता है। (२४°)जिन वृत्त का क्रांतिवृत्त से जितना अंतर होता है उतने अंश की ज्या क्रांतिज्या होती है।

ग्रह चिन्ह से द्युज्या (व्यासार्ध वृत्त में) के अग्र बिंदु पर अयन वलन होता है। ग्रह चिन्ह के चारों ओर द्युज्या व्यासार्ध से भ्रमण करते हुए ग्रह एवं ग्रह क्षितिज का जहाँ कटाव (मिलान) होता है उस वृत्त में कदम्ब प्रोत और जिन वृत्त के संपात का ध्रुव से अन्तर, उस प्रदेश की अर्धज्या होती है। ग्रह चिन्ह व ध्रुव के मध्य अनवरत द्युज्या के धनुतुल्या अंशो पर परमता होती है।

सत्रिभ सूर्य क्रांतिज्या से अयन वलन ज्ञात करके अर्थात् सत्रिभग्रह क्रांतिज्या = $\frac{\text{सत्रिभ ग्रहज्या} \times \text{जिनज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ होती है। यह ध्रुवप्रोत वृत्त में होती है। इसको क्षितिज वृत्त में परिवर्तित करने पर क्षतिज में

अयन वलन ज्या = $\frac{\text{सत्रिभ ग्रह क्रांति ज्या} \times \text{त्रि.}}{\text{द्युज्या}}$ अथवा

अयनवलन ज्या = $\frac{\text{सत्रिभ. ग्र.ज्या} \times \text{जिन.ज्या} \times \text{त्रि.}}{\text{त्रि.द्युज्या}} = \frac{\text{खेट कोज्या} \times \text{जिनज्या}}{\text{द्युज्या}}$

इस कारण से आचार्य ने वलन को त्रिज्यावृत्त में परिणामित किया है। ग्रह क्षितिजवृत्त में सत्रिभ क्रांतिज्या रूप में द्युज्या प्रमाण सिद्ध करने से वलन त्रिज्या में परिणामित हो जाता है। कदम्बध्रुव द्वय याम्योत्तर वृत्त का ग्रह क्षितिज से संपात के अन्तरस्थ ग्रहक्षितिज प्रदोश की अर्धज्या अयनवलनज्या त्रिज्या प्रमाण से होती है। कदम्ब भ्रमवृत्त से उसकी विषुवदवृत्त की अनुरूपता के कारण पूर्वोक्त युक्ति में आर्ष आचार्यों ने स्वल्पान्तरता होने के कारण द्युज्या से अनुपात नहीं कहा है। इसके अतिरिक्त अन्य युक्ति से अक्षवलन तथा इसकी क्रमज्या ज्ञात करें जैसे कि पूर्व में कही गई है।

अक्ष वलन = $\frac{\text{सममण्डल नतज्या} \times \text{अक्षज्या}}{\text{ग्रह द्युज्या}}$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\text{द्युज्या वृत्त में अक्षज्या} = \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{सममण्डल में नतज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

$$\text{अक्ष वलन ज्या} = \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{सम. नतज्या}}{\text{द्युज्या}}$$

सम स्थान से दीवाल पर अक्षांश वृत्त और अक्षवृत्त को ३६० अंशों से अंकित कर के निबंधित करे।

जैसे कदंब प्रोत चलवृत्त है वैसे ही क्रांतिवृत्त याम्योत्तर वृत्त हैं। सम स्थान जहाँ कीलित है उससे प्रोत वृत्त चलवृत्त है यह समवृत्त याम्योत्तर वृत्त होता है। इसी प्रकार ग्रह चिन्ह के ऊपर से होकर निवेशित वृत्त समवृत्त खमध्य स्थान से लेकर जितने अंश तक नत संलग्न होता है उतने अंश या उससे न्यूनाधिक उत्तर ध्रुव स्थान से अक्षवृत्त नत संलग्न होता है और दक्षिण ध्रुव स्थान से अक्ष वृत्त उन्नत संलग्न होता है।

समवृत्त के संबंध में कहते हैं कि नतांश की ज्या उस वृत्त में त्रिज्या अनुरुद्ध (सम) अक्षज्या परिणत होती है। अक्ष से उत्पन्न वलन द्युज्या अग्र पर द्युज्यावृत्त में होती है। पूर्वोक्तानुसार सत्रिभ रवि क्रांतिज्या तुल्य अयन वलन में द्युज्या वृत्त में तथा अक्षवृत्त में अक्षज्या के परमज्या होने पर त्रिज्या से परिणत उन्नतांश ज्या अक्षवृत्त में वह नतांशज्या द्युज्या व्यासार्ध से ग्रह चिन्ह से होकर क्षितिज वृत्त से अनुरुद्ध (सम) वृत्त ध्रुव सम प्रोत अक्षवृत्त संपात से लग्न के अन्तराल अंश अर्धज्या तुल्य द्युज्या प्रमाण के होते हैं। ग्रह क्षितिज वृत्त में वहाँ के चापांश ज्ञात करने के लिए परिणामित करते हैं। ग्रह क्षितिजवृत्त में ध्रुव कदम्ब प्रोतवृत्त में ग्रह चिन्ह सक्त अन्तराल के अंशों की अर्धज्या अयन वलन क्रमज्या जिस प्रकार होती है उसी प्रकार उस वृत्त में ध्रुव समप्रोत वृत्त में ग्रह चिन्ह सक्त अंतराल के अंशों की अर्धज्या होती है। नत उत्क्रमज्या उक्त रीति से अक्षवलन अंशों की क्रमज्या सिद्ध होती है। समवृत्त नतांश ज्या पूर्वापर वृत्तस्थ नतांश से अक्षवलन उत्पन्न होना सम्यक् है। यह निर्दूषण सिद्ध है।

ग्रहण काल में सूर्य का शंकु तथा शंकुतल एवं अग्रा का साधन करे। अग्रा तथा शंकुतल एक दिशा में हो तो उनका योग और अन्यथा होने पर अन्तर पूर्व में प्रतिपादित किये अनुसार बाहु (भुज) होता है। ग्रह समवृत्त का अंतर ज्या रूप दक्षिणोत्तर बाहुतुल्य होता है तथा विषवद् वृत्त के उत्तर-दक्षिण व क्रान्तिज्या अन्तर पर द्युज्यावृत्त तथा समवृत्त को बाहुवशाद उत्तर-दक्षिण की ओर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बाहु तुल्य अंतर पर उपवृत्त कल्पित करे। इनको ३६० अंश अंकित करे। बाहु वर्ग को त्रिज्या वर्ग में से घटा कर उसका मूल उस वृत्त का द्युज्या वृत्त व्यासार्ध होता है। अब द्युज्या वृत्त तथा उपवृत्त का जो आगे-पीछे संपात है उसमें जीववत सूत्र बांध कर उसका आधा उपवृत्त में नतांश की ज्या होती है। यह अहोरात्रवृत्त नतांश की भुजज्या है।

यदि दिनार्ध में सूर्य नत करके समस्थान से सूर्यगत सूत्र सममण्डल में जहाँ लगता है वहाँ से खस्वस्तिक मध्य से जितने अंश है उतने ही अंश अक्षवृत्त में समसूत्र और ध्रुव के मध्य होता है। अक्षवलय के जितने अंश हैं उनकी जितनी ज्या है उतनी समसूत्र और ध्रुव का अन्तर होता है। क्षितिजस्थ सूर्य का क्षितिज ही सम सूत्र है। वहाँ अक्षवृत्त व समवृत्त में ९० अंश होते हैं जिससे अक्षवलय ज्या अक्षज्या तुल्य होती है। अतः सम मण्डल गत नत अंश से वलन साधित कर सकते हैं। इससे बहुत लम्बी विधि से ज्ञात होता है सरलता से नहीं होता। अतः उसको ज्ञात करने के लिए स्थूल अनुपात सरलता के लिए करते हैं कि यदि दिनार्ध तुल्य स्वअहोरात्र नत में ९० अंश तुल्य सममण्डलीय नतांश प्राप्त होते हैं तो इष्ट नतांश में कितने होंगे? फल–

नतांश क्रमज्या को अक्षज्या वृत्त में परिणामित करते हैं–

$$\text{नतांश ज्या} = \frac{९०^\circ \times \text{इष्ट नतांश}}{\text{दिनार्ध}}$$

$$\text{वलन ज्या} = \frac{\text{इष्ट नतांश क्रमज्या} \times \text{अक्षज्या वृत्त}}{\text{दिनार्ध} \times \text{त्रिज्या}} ;$$

अतः यहाँ पुनः अनुपात किया है कि यदि त्रिज्यावृत्त में इतनी वलनज्या तो अक्षज्या वृत्त में कितनी? प्राप्तफल वलन ज्या हुआ। यह द्युज्याग्र में प्राप्त हुई है त्रिज्याग्र में नहीं। क्योंकि यह समसूत्र ध्रुव का अन्तर है। ग्रहध्रुव के मध्य द्युज्या चापांश होते हैं। अनुपात किया कि यदि द्युज्यावृत्त में इतनी होती है तो त्रिज्या वृत्त में कितनी होगी? फल–

$$\text{स्थूल वलन ज्या} = \frac{\text{नतांश ज्या} \times \text{अक्षज्या} \times \text{त्रि.}}{\text{द्युज्या} \times \text{त्रिज्या}}$$

$$= \frac{\text{नतांश ज्या} \times \text{अक्षज्या}}{\text{द्युज्या}} ।$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्युज्या व क्रांतिवृत्त संपात चिन्ह पर ग्रह (रवि) बिंब कल्पित करे। इस प्रकार उपवृत्त अहोरात्र वृत्त का ग्रह बिंब परिधि का अंतर अक्षवलन होता है, जब उपवृत्त समवृत्त के अनुरूप होता है। क्रांतिवृत्तानुरूप जब उपवृत्त होता है तब वह सूत्रान्तर स्फुट वलन होता है।

इस स्थल पर सूर्य की क्रांति में ग्रह (सूर्य) बिंबार्ध कला युक्त सूर्य की क्रांतियों का जो अन्तर है वह तात्कालिक क्रान्ति अन्तर है। इसके साधन के लिए सूर्य का तात्कालिक भुज का जो भोग्य खण्ड है उससे बिंबार्ध को गुणा करके २२५ से विभक्त करना होगा। इससे सूर्य की तात्कालिक भुजज्याओं का अन्तर प्राप्त होता है।

$$\frac{\text{स्फुट भोग्य खंड} \times \text{बिंबार्ध} \times २२५}{२२५ \times \text{त्रि}} = \text{दोर्ज्या अन्तर।}$$

$$\frac{\text{स्फुट भोग्य खंड} \times \text{बिंबार्ध}}{\text{त्रि}} = \text{दोर्ज्यान्तर}$$

क्रांन्तिंतर ज्ञात करने के लिए, यदि त्रिज्या में जिनज्या प्राप्त होती है तो दोर्ज्यांतर में कितनी?

$$\text{क्रान्त्यन्तर} = \frac{\text{जिनज्या} \times \text{दोर्ज्यान्तर}}{\text{त्रि}}$$ यह बिंबव्यासार्ध में वलन है।

यह बिंब व्यासार्ध में है इसको त्रिज्या व्यासार्ध में करने के लिए–

$$\frac{\text{जिनज्या} \times \text{दोर्ज्यान्तर} \times \text{त्रि}}{\text{त्रि.} \times \text{बिंब व्यासार्ध}} = \text{कोटि क्रम क्रांतिज्या}$$

यह त्रिज्या वृत्त में वलन है। इस प्रकार जब विषुवद्वृत्त में गह स्थित हो भूमध्य से लेकर ख स्वस्तिकस्थ बिंबमध्य तक जो सूत्र जाता है वह त्रिज्यासूत्र दण्डवत है। उसके ऊपर स्थित बिंब छत्रवत् छाया हुआ होता है। वहाँ पर त्रिज्या वृत्त में वलन दान देवे। यह भूमध्य में स्थित होकर करे। यदि मेषान्त राशि पर ग्रह स्थित हो तो उसकी क्रांति तुल्य खस्वस्तिक से उत्तर में ग्रह बिंब नत होता है। तब त्रिज्या सूत्र कर्ण है, बिंब मध्य से लम्बसूत्र ध्रुवयष्ट्यन्त तक द्युज्या है यह कोटि है, क्रांतिज्या भुज है। कुछ कर्ण रूप स्थिति दण्ड पर स्थित छत्र की है अर्थात् बिंब गत सूत्र कर्णाकार है। वहाँ वलन ज्या कर्ण रूप में होती है। क्योंकि पूर्वप्राप्त क्रांतिन्तर लम्बरूप वहाँ कोटिरूप में होती

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। उसका कर्ण करने के लिए अनुपात किया कि यदि द्युज्या कोटि में त्रिज्या कर्ण हो तो इतने में कितना होगा?

$$\frac{\text{कोटि अन्तर} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}} \times \frac{\text{जिनज्या} \times \text{दोर्ज्यान्तर}}{\text{बिंब व्यासार्ध}} = \text{वलन ज्या}$$

$$\text{अतः वलन ज्या} = \frac{\text{जिनज्या} \times \text{दोर्ज्यान्तर} \times \text{त्रि.}}{\text{बिंब व्यासार्ध}} \quad ||$$

$$\frac{\text{भोग्य खण्ड} \times \text{जिनांश ज्या}}{२२५} = \text{सत्रिभ ग्रह की क्रम क्रांतिज्या होती है।}$$

अथवा क्रम क्रांति यहाँ जो दिखती है वह बालकों की भ्रांति दूर करती है।

छत्रवद् बिम्ब के लिए जो कहा गया है वह तिर्यक (लंबरूप) क्रांति के समान कही है। उसका द्युज्या से अनुपात उसको तिर्यक करने के लिए किया है।

आचार्य ने स्वकृत वासना भाष्य में दो दृष्टांत दिये जिसके द्वारा यह सिद्ध किया है कि उत्क्रमज्या उपयोग वलन साधन के लिए जो पूर्वाचार्यों ने किया है वह क्यों सही नहीं है। यथा–

एक दृष्टांत— जिस देश में वृषभ राशि के अंत २०°।३८ तुल्य जहाँ अक्षांश होते है वहाँ वृषभ राशि के अंत में स्थित सूर्य खमध्य पर स्थित होता है। उस समय क्रांतिवृत्त ही दृग्मंडल रूप में होता है। वह उसके लिए क्षितिज होगा। वहाँ पूर्वापर अंतर क्षितिज में प्रत्यक्ष वलन दृश्य होगा। वह सिंहान्त की अग्रा तुल्य होता है। तो किस प्रकार सत्रिभ ग्रह सूर्य की उत्क्रमज्या क्रांति वलन होगी? आचार्य कहते हैं कि उनके आनयन विधि के अतिरिक्त कोई अन्य विधि नहीं है जिससे अग्रा तुल्य रूप में वलन उत्पद्य होता हो।

इसके अतिरिक्त एक और महान (बड़ा) दृष्टान्त आचार्य ने दिया है। यथा–

जिस देश में ६६ अंश अक्षांश हो वहाँ मेष राशि के आरंभ से लेकर सभी राशियाँ समान काल में क्षितिज में स्थित है अर्थात वहाँ क्रांतिवृत्त ही क्षितिज वृत्त होता है। वहाँ मेषादि, वृषभादि तथा मिथुनादि में स्थित सूर्य का परम स्फुट वलन त्रिज्या तुल्य होता है। क्योंकि क्रांतिवृत्त से पूर्वदिशा उत्तर की

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तरफ होती है तथा विक्षेप अभाव की स्थिति में सूर्यग्रहण का दक्षिण दिशा की ओर से स्पर्श होता है और चन्द्र ग्रहण में उत्तर की ओर से स्पर्श होता है। अतः उस स्थान पर उस काल पर उसकी त्रिज्या तुल्य वलन की स्थिति अन्यथा प्रकार से उपपत्त्य होने से क्रमज्या प्रकार से वलन (आचार्योक्त प्रकार से) आनयन समीचीन है।

जिस देश में अक्षज्या ३१४० है वहाँ मेषादि गत सूर्य की द्युज्या ३४३८, चरज्या उसु शून्य ०। क्षितिजस्थ सूर्य की नतघटियाँ १५ अयन वलन का चापांश २४°, अक्षवलन चापांश ६६°, तो स्फुट वलन का चापांश ६६+२४=९०°

वृषादि गतसूर्य की द्युज्या ३३६६, चरज्या असु १६७०, नतघटि १९।३८ अयन वलन का चापांश २१।४, अक्ष वलन चापांश ६८।५६, तो स्फुट वलन का चापांश ९०° (=६८।५६+२१।४)।

मिथुनादि रवि की द्युज्या ३२१८, चरासु ३४६५, नतघटि २४।३७, अयन वलन चाप के अंश १२।३२, अक्षवलनांश ७७।२८ तो स्फुट वलन ७७।२८+१२।३२ = ९० इसी प्रकार सर्वत्र होता है।

विशेष— आचार्य ने जो दो प्रकार के वलन के संबंध में कहा वे दोनों प्रकार के वलन पूर्वाचार्यों ने भी कहे थे। सिर्फ अन्तर यह था कि उन्होंने वलन ज्ञात करने के सूत्र में क्रमज्या के स्थान पर उत्क्रमज्या को प्रयुक्त किया। क्या सभी आचार्यों को जो भास्कराचार्य ने स्थितियाँ बताई हैं का बोध नहीं था? ऐसा हो नहीं सकता। लेकिन कमी यही रही कि उन्होंने सूत्र को पूर्ण रूप से परिभाषित नहीं किया।

भास्कर (प्रथम) ने महाभास्करीय के अध्याय ५ में इस संबंध में कहा है।

"मध्यतिथ्यन्तरासूनामुत्क्रमज्याक्षसङ्गुणा।
विष्कम्भार्धेन भक्तव्या लब्धकाष्ठस्य दिग्विधि॥४२॥
व्यासार्धादधिकासूनां क्रमज्यां त्रिज्यया युताम्।
कृत्वैवमेव दिक्कल्प्या मध्ये प्राग्ग्रासवद्दिशा॥४३॥
उदग्दक्षिणतः प्राह्णे बिम्बप्राक्पश्चिमार्धयोः।
नभसः पश्चिमे व्यस्तमक्षस्य वलनं सदा॥४४॥"

यहाँ आचार्य ने अक्षवलन का निम्नलिखित सूत्र दिया है—

अक्षवलनज्या = उत्क्रमज्या (घटीकोण) × अक्षांशज्या

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह सूत्र तर्क द्वारा निर्णय के अनुमानों पर आधारित था।

आचार्य ने अयन वलन के लिए भी इसी प्रकार अध्याय ५ चंद्र ग्रहणाधिकार में कहा है—

"त्रिराशिसहितेन्द्वर्कविपरीतगुणापमः।
अयनाद्विक्तु पूर्वार्ध बिम्बस्यैवापरैऽन्यथा॥४५॥
नानाशयोस्तयोर्विद्धि विश्लेषः धनुषों सदा।
संयोगोऽन्यत्र तज्जीवा सम्पर्कार्धहता हता॥४६॥
विष्कम्भार्धेन यल्लब्धमाशासाम्ये युतं नतौ।
विश्लेषो व्यत्यये कार्यो वलनं यत्र शिष्यते॥४७॥"

आचार्य ने यहाँ अयन वलन को श्लोक ४५ में कहा है।

अयनवलनज्या = ज्या ε × उत्क्रमज्या (ग्रह के सायन अक्षांश+९०)

यहाँ ε क्रांतिवृत्त तथा नाडीवृत्त का परस्पर झुकाव कोण है। यह सूत्र भी पूर्व सूत्र की भाँति ही तर्क द्वारा निर्णयों के अनुमानों पर आधारित है।

आचार्य ने श्लोक ४६ व ४७ में स्पष्ट वलन का मान तथा दिशा ज्ञात करने का नियम बताया है।

सिद्धान्त शेखर में भी अक्षवलन तथा अयन वलन के यही सूत्र कहे हैं।

ब्रह्मगुप्ताचार्य ने ब्र.स्फु.सि. के अध्याय ४ में इस सूत्र को सही किया है। इसी ग्रंथ के पूर्वखण्ड गणिताध्याय के चंद्र ग्रहणाधिकार में इस सब विषय की विस्तार से व्याख्या की गई है। कृपया वहाँ देखें।

चन्द्रग्रहणाधिकार जो गणिताध्याय में कहा है उसमें वलन के सम्बन्ध में जो कहा है उसकी उपपत्ति स्वरूप यह अध्याय आचार्य ने कहा है।

ऊपर जो कहा गया है उसको सरल तथा सूक्ष्म रूप में यहाँ पुनः समझाते हैं—

अयन तथा अक्षांश (रवि तथा चन्द्र का) के कारण रवि और चन्द्र ग्रहण में वलन (संस्कार) कला प्रभावों के कारण आकाश के पूर्व पश्चिम कपाल में ग्रहण के स्पर्श, मध्य और मौक्ष की दिशा का ज्ञान होता है। जिस दिशा में पूर्व कपाल या पश्चिम कपाल में ग्रहण होता है उसी दिशा में यह वलन होता है। सूर्य तथा चन्द्र, सूर्य ग्रहण में समान होने के कारण केवल चन्द्रमा द्वारा दोनों ग्रहों का आयन वलन निकाला जा सकता है। चन्द्रग्रहण में चन्द्र दिनार्ध से नत और सूर्यग्रहण में सूर्य दिनार्ध से नत निकाल कर उसकी पल बना लेवें। उसको

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

९० से गुणा करके अपने दिनार्ध पल से भाग देने पर अंशादि फल प्राप्त होता है। यह पूर्व-पश्चिम दिनार्ध के अनुसार उसी दिशा में नत होता है। नत को अपने देश के अक्षांश से गुणा करके ९० से भाग देकर जो प्राप्त होगा वह पूर्वनत में उत्तर और पश्चिम नत में दक्षिण वलन होता है। अक्षवलन तथा अयन वलन की एक ही दिशा होने पर दोनों का योग तथा भिन्न दिशा होने पर अन्तर किया जाता है। प्राप्तफल चन्द्रग्रहण में चन्द्र का और सूर्यग्रहण में सूर्य का अंशादि दिग्वलन होता है। यह स्पष्ट वलन प्राप्त होता है। स्पर्श, मोक्ष आदि किस दिशा में किस प्रकार होगा इससे यह ज्ञात होता है।

स्पष्ट वलन, ग्रसितग्रह के पूर्व अथवा पश्चिम बिन्दु का क्रान्तिवृत्त से कोण होता है वह होता है। इस कोण के दो भाग होते हैं। स्व स्थान के अक्षांश के कारण अर्थात विषुवत वृत्त से दूरी के कारण क्रांति वृत्त, क्षितिज को पूर्व कपाल में पूर्व बिन्दु से उत्तर की दिशा में काटता है। अतः क्रांतिवृत्त ग्रहगोल के पूर्व बिन्दु से पूर्वकपाल में उत्तर की ओर है तथा पश्चिम कपाल में दक्षिण की ओर है। यह अक्ष वलन कहलाता है।

क्रांतिवृत्त तथा विषुवत वृत्त के मध्य कोण के कारण (अयन उत्पत्ति) क्रांतिवृत्त जब सायन मकर याम्योत्तर पर होता है तब उत्तर की ओर और भी अधिक झुका होता है। जब सायन कर्क याम्योत्तर वृत्त पर (±९०°) होता है तब यह पूर्व कपाल में दक्षिण की ओर खिसक जाता है। पश्चिम कपाल के लिए दिशायें विपरित होती है। वलन का यह भाग अयन वलन कहलाता है।

अब अयन वलन तथा अक्ष वलन को चित्र के द्वारा ओर स्पष्ट करते हैं।—

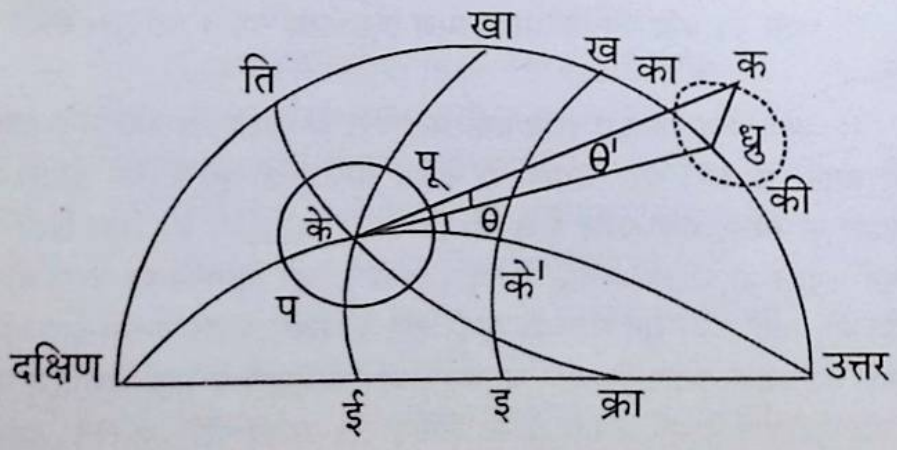

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चित्र में उ ध्रु ख ति द इष्ट स्थान पर याम्योत्तर वृत्त है।

उ इ द क्षितिज का पूर्व अर्ध भाग है।

ख = खस्वस्तिक है।

ख इ = सममण्डल है (इ = पूर्व दिशा है) तथा खा ई इसके समानान्तर है।

पू तथा प = ग्रह गोल की पूर्व तथा पश्चिम बिन्दु हैं, क्रमशः।

के = (ग्रहण) द्राद्य ग्रह का केन्द्र हैं।

उ के द = समप्रोत वृत्त ग्रह बिन्ब केन्द्र 'के' का है।

क = उत्तर कदम्ब बिंदु

क का की = वह कदम्ब वृत्त है जिस पर प्रतिदिन कदम्ब क उत्तरी ध्रुव ध्रु के चारों ओर भ्रमण करता है।

ख क' = नत अंश (घटीसमयमें) के का है।

की = कदम्ब है जब सायन कर्क ति बिन्दु (याम्योत्तर वृत्त में) है।

का = कदम्ब है जब सायन मकर क्रा पर है।

के ध्रु = ग्रह गोल की ध्रुव से दूरी।

के क = ग्रह गोल की कदम्ब से दूरी।

$\angle$ उ के ध्रु = θ = अक्ष वलन

$\angle$ क के ध्रु = θ = अयन वलन

$\angle$ उ के क = $\theta+\theta'$ = स्फुट वलन = $\angle$ क्रा के ई

चित्र में कदम्ब 'क', 'की' + ९०° तथा –९०° दूरी के बीच स्थिति होने पर अयन वलन θ' भी उत्तर की दिशा में है। अतः स्फुट वलन $\theta+\theta'$ होता है, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। इसी प्रकार 'क', 'की' + ९०° और –९०° के बीच स्थित होने पर θ' दक्षिण दिशा में होगा अतः स्फुट वलन $\theta-\theta'$ होगा। जब ग्रह पश्चिम कपाल में होगा तब इन वलन की दिशा विपरीत होगी।

गोलीय त्रिभुज उ के ध्रु में—

$$\frac{\text{ज्या उ के ध्रु}}{\text{ज्या उ ध्रु}} = \frac{\text{ज्या के उ ध्रु}}{\text{ज्या के ध्रु}} = \frac{\text{ज्या ख के'}}{\text{ज्या (ध्रुव से दूरी)}}$$

क्योंकि उ ख तथा उ के' दोनों ९० अंश हैं। अतः इन दोनों के मध्य कोण ख के' है। यह ग्रह का नतांश है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अतः ज्या (ध्रुव से दूरी) = कोज्या क्रांति (ग्रह)
= द्युज्या अथवा अहोरात्र वृत्त की त्रिज्या।
ज्या उ ध्रु = ज्या अक्षांश ; यहाँ अक्षांश ग्रह के हैं।

$$\text{ज्या उ के ध्रु} = \frac{\text{ज्या ग्रह अक्षांश} \times \text{ज्या नतकाल}}{\text{द्युज्या}}$$

ये समीकरण सूर्य सिद्धान्त तथा भास्कराचार्य दोनों ने ही दिया है।

उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव से जानने वाले महद वृत्त पर क्रान्ति वृत्त का केन्द्र 'कदम्ब' बिन्दु उत्तरी ध्रुव से २३°३०' दक्षिण की ओर स्थित होता है। यह क्रान्तिवृत्त का इसी प्रकार दक्षिण क्षेत्र बिन्दु 'कलम्ब' होता है। यह दक्षिण ध्रुव से उत्तर की ओर २३°३०' कोण पर होता है। कदम्ब प्रोत वृत्त पर ग्रह का शर ज्ञात किया जाता है। इस पर यह की क्रांति वृत्त से दूरी होती है।

चन्द्रमा क्योंकि सभी ग्रहों से तीव्रतम गति से भ्रमण करता है। अतः इसकी अयन प्रोत वृत्त तथा कदंब प्रोत वृत्त पर स्थिति का अन्तर लेते हैं। चन्द्रमा का ध्रुव प्रोत वृत्त पर ध्रुव से दूरी तथा कदम्ब प्रोत वृत्त पर कदम्ब से दूरी ज्ञात की जाती है तथा उनके अन्तर (कोणीय) को ३६० से गुणा करके चन्द्रमा के (कोणीय) गोल की परिधि से विभक्त करते हैं। इस प्रकार प्राप्त फल अयन वलन होता है। जब चन्द्रमा उत्तर अयन में होता है तब यह उत्तर वलन होता है तथा जब दक्षिण गोल में होता है जब दक्षिण वलन होता है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के ग्रहवासनाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथोदयास्तवासना

तत्रादावुदयेऽस्ते च दृक्कर्मकारणमाह—

क्रान्तिवृत्तग्रहस्थानचिह्नं यदा स्यात् कुजे नो तदा खेचरोऽयं यतः।
स्वेषुणोत्क्षिप्यते नाम्यते वा कुजात् तेन दृक्कर्म खेटोदयास्ते कृतम्॥१॥
नैव बाणः कुजेऽसौ कदम्बोन्मुखस्तत्समुत्क्षेपणं नामनं च द्विधा।
आयनं चाक्षजं तेन कर्मद्वयं तत्प्रपञ्चः पुनः संविविच्योच्यते॥२॥

ग्रह का उदय अस्त तथा उसके दृक्कर्म का कारण—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिवृत्त में ग्रह बिंबोपरिगत कदम्ब प्रोत वृत्त जहाँ क्रांतिवृत्त को काटता है वह क्रांतिवृत्त पर ग्रह का **स्थान चिन्ह** होता है। उस स्थान चिन्ह के क्षितिज में उदय होते समय वह वास्तविक ग्रह उदित नहीं होता अर्थात् वह उस समय क्षितिज में स्थित नहीं होता है वह या तो क्षितिज के नीचे अथवा ऊपर होता है। ग्रह अपने शराग्र में कदम्बवृत्ताभिमुख रहता है अतः ग्रहस्थान के उदय शर से पहले या पश्चात अयन और अक्ष वलन संस्कारों से संस्कृत ग्रह के स्थान गत राश्यादि जनित काल के पहले अथवा पश्चात् में ग्रह बिम्ब क्षितिज में उदय होता है।

ग्रह स्थान चिन्ह से ग्रह बिम्बकेन्द्र तक ग्रह का मध्यम शर है। स्थान चिन्ह ऊपरीगत तथा बिम्बोपरीगत ध्रुव प्रोत्त वृत्त करे। स्थानीय अहोरात्र वृत्त और बिम्बीय अहोरात्र वृत्त बनावे। तब स्थानोपरिगत ध्रुवप्रोत्त वृत्त और स्थानोपरिगत कदम्बप्रोत वृत्त के अन्तर्गत बिंबोपरिगत ध्रुवप्रोत वृत्त के अन्तर्गत नाडीवृत्तीय चाप अयन दृक्कर्म असु है। स्थानगत कदम्ब प्रोतवृत्त और ध्रुवप्रोतवृत्त से उत्पन्न कोण स्थानीय अयनवलन है। द्युज्याग्रीय अयनवलन सत्रिभग्रह की क्रांति के बराबर होता है।

अतः यहाँ पर पुनः ग्रह स्थानीय राश्यादि बिंदु में अयन तथा अक्ष दृक्कर्म संस्कार करना आवश्यक हो जाता है।

अथ तत्कर्माह—

क्षितिजे वलने ये स्तस्तद्वशादिषुणा ग्रहः।
याम्येन नाम्यते क्ष्माजात् सौम्येनोन्नाम्यते तथा॥३॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तद्वयस्तं वलने याम्ये व्यस्तं प्रत्यक्कुजेऽप्यतः।
आयनं त्रिज्यया चेत् स्यादस्पष्टेन शरेण किम्॥४॥
लम्बज्ययाक्षजं चेत् स्याद्वलनं किं स्फुटेषुणा।
इति त्रैराशिकाल्लब्धे त्रिज्याघ्ने द्युज्ययोद्धृते॥५॥
तच्चापैक्यान्तरप्राणैः कुजात् खेटो नतोन्नतः।
तैः प्राणैर्यत् क्रमाल्लग्नं नतात् खेटात् प्रजायते॥६॥
उत्क्रमेणोन्नताद्यच्च तद्ग्रहोदयलग्नकम्।
उक्तव्यत्ययतः प्रत्यगस्तलग्नं सषड्ग्रहात्॥७॥
शरे महति भानां तु चरार्धं मध्यमापमात्।
शरस्फुटात् तथा कृत्वा तच्चापैक्यान्तरासुभिः॥८॥
विभिन्नैकदिशोर्विद्यादक्षजेन नतोन्नतम्।
आयनाक्षजयोर्योगवियोगाल्लग्नमुक्तवत्॥९॥

उपरोक्त कर्मों को करना—

सूर्य-प्रभा टीका— ग्रह क्षितिज में पूर्व में साधित अक्ष तथा अयन वलन संस्कृत स्पष्ट वलन काल से अन्तरित समय में यदि दक्षिण शर है तो शराग्र में स्थित ग्रह नमित अर्थात् नीचे झुका हुआ दिखता है तथा उत्तर शर है तो शराग्र में स्थित ग्रह बिंब ऊपर उठा हुआ दृश्य होता है। इसके विपरीत, दक्षिण वलन में पश्चिम क्षितिज में ग्रह स्थान के पूर्व और पश्चिम में ग्रह बिंब दर्शन होता है। त्रिज्या तुल्यवृत्त में अयन वलनज्या इतनी होती है तो स्पष्ट शर में कितनी होगी? यह अनुपात करने से—

$$\text{अयन वलन} = \frac{\text{स्पष्ट शर} \times \text{अयन वलन ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

इसी प्रकार लंबज्या में अक्षवलन इतना होता है तो स्फुट शर में कितना होगा?

$$\text{अक्ष वलन} = \frac{\text{अक्ष वलन} \times \text{स्पष्ट शर}}{\text{ज्या लंब}}$$

द्युज्या वृत्त में इतना अयन वलन होता है तो त्रिज्यावृत्त में कितना?

$$\text{त्रिज्यावृत्तीय अयन वलन} = \frac{\text{अयन वलन} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथा त्रि.वृत्त में–

$$\text{अक्ष वलन} = \frac{\text{अक्ष वलन} \times \text{त्रिज्या}}{\text{द्युज्या}}$$

इन दोनों संस्कारों के संस्कार से स्फुट वलन (काल) होता है। ग्रह बिंब इतने संस्कार युक्त काल से ग्रहक्षितिज से नत अथवा उन्नत दिखता है। स्पष्ट वलन असु से नत ग्रह से जो क्रम लग्न तथा उन्नत ग्रह से जो उत्क्रम लग्न होता है वही ग्रहोदय लग्न होता है। यहाँ इष्टकाल स्पष्ट वलनासु के तुल्य होता है। इससे विपरीत सूर्य में छः राशि जोड़ने से प्राप्त लग्न ग्रह का अस्त लग्न है।

शर यदि अधिक हो तो मध्यम क्रांति व चरार्ध से स्फुट शर ज्ञात करके उसके चाप से योगान्तर करे। इस प्रकार साधित अयनांश और वलन असुओं से ग्रह स्थान से ग्रह बिंब को नत उन्नत जान कर अयन व अक्षवलन के योगान्तर संस्कृत काल में उक्त कथित प्रकार से लग्न साधन करके ग्रह बिंब के दर्शन का काल ज्ञात करे।

अथ शरस्य स्पष्टीकरणमाह—

सत्रिराशिग्रहद्युज्यानिघ्नस्त्रिज्योद्धृतः शरः।
स्फुटोऽसौ क्रान्तिसंस्कारे दृक्कर्मण्यक्षजे तथा॥१०॥

शर के स्पष्टीकरण को कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— विशुवदवृत्त से स्पष्ट क्रांति ध्रुवाभिमुख होती है। क्रांतिग्र पर शर कदम्बाभिमुख होता है। अतः इनके संस्कार करने के लिए क्रांतिग्र पर जो द्युज्यावृत्त है उसके और शराग्र का जो ऋजु अन्तर है उससे संस्कृत करने से स्फुट होता है। अर्थात् शर और मध्यम क्रांति एक वृत्ती धरातल में नहीं होते। अतः उसका अन्तर कोटिरूप में है। शर कर्ण रूप है। इनके वर्गान्तर का मूल द्युज्यावृत्त में भुज है। इस प्रकार तीन राशि युक्त ग्रह क्रांति ध्रुव कदम्ब के सूत्रों का अन्तर होता है। इसकी ज्या भुज है। इसकी द्युज्या कोटि है तथा त्रिज्या कर्ण है। अतः यदि त्रिज्या में इतनी कोटि होती है तो शर में कितनी होगी?

$$\frac{\text{कोटि} \times \text{शर}}{\text{त्रिज्या}}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अतः कोटि रूप शर की ध्रुवोन्मुख ज्या से अक्षकर्म तथा दृक्क करते हैं।

अथ ब्रह्मगुप्तादिभिः किं स्पष्टो नोक्त इत्याशङ्क्याह—

ब्रह्मगुप्तादिभिः स्वल्पान्तरत्वान्न कृतः स्फुटः।
स्थित्यर्धपरिलेखादौ गणितागत एव हि॥११॥
नक्षत्राणां स्फुटा एव स्थिरत्वात् पठिताः शराः।
दृक्कर्मणाऽयनेनैषा संस्कृताश्च तथा ध्रुवाः॥१२॥

ब्रह्म गुप्तादि ने स्फुट शर आनयन क्यों नहीं कहा? शंका—

सूर्य-प्रभा टीका— ब्रह्मगुप्तादि आचार्यों ने मध्यम तथा स्फुट शर में स्वल्पान्तर होने के कारण शर को स्फुट नहीं किया। ग्रहण में स्थित्यर्ध परिलेखनादी अर्थात् स्पर्श मोक्ष आदि की स्थिति में भी गणितागत मध्यम शर (कदम्बाभिमुख शर) को ही स्वीकार किया है और नक्षत्रों की स्थिरता के कारण उनका भी ध्रुवप्रोतीय शर ब्रह्मगुप्त ने स्फुट शर कहा है और अयन दृक्कर्म में भी इसी का संस्कार करके ध्रुवाँक कहे हैं।

अथ सदूषणानुपहसन्नाह—

क्रान्तिसूत्रे शरं केचिन्मन्यते ते कुबुद्धयः।
यद्येवमायनं तैश्च दृक्कर्मान्यैश्च किं कृतम्॥१३॥
किं स्पष्टे वालने सूत्रे दत्तो मध्यशरश्च तैः।
कोटिवद्वालनात् सूत्रात् स्पर्शमुक्तिशरौ च किम्॥१४॥
किंच कृत्वा शरं कोटिं स्थित्यर्धानयनं कृतम्।
तादृक् चेत् स शरस्तेन नानुपातेन सिध्यति॥१५॥

दूषण सहित उस पर विचार—

सूर्य-प्रभा टीका— कुछ आचार्य शर को क्रांतिसूत्र में अर्थात् ध्रुवाभिमुख मानते हैं। उनकी कुबुद्धि है। यदि ऐसा है तो अयन दृक्कर्म का दृश्य ग्रह साधन में गणित क्यों करते हैं। उसकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिये क्योंकि ध्रुवाभिमुख शर होने पर शराग्र स्थित ग्रह तब क्षितिज से नमित अथवा उन्नत ही होगा। परिलेख में बिंब केन्द्र से स्पष्ट वलनाग्र के ऊपरीगत सूत्र क्रांतिवृत्त प्राची है। तव उसमें कोटि रूप में शर का क्यों दान किया जाता है? यह शर दान ध्रुव सूत्र में ही करना चाहिये। ऐसी स्थिति में शर को स्थित्यर्ध आनयन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो किया जाता है तब स्पर्श मोक्ष आदि की स्थिति अनुपात से सिद्ध नहीं होती।

निरक्ष देश में ध्रुव क्षितिज में स्थित होता है। ध्रुवाभिमुख शराग्र स्थित ग्रह क्षितिज का त्याग नहीं करता। अतः वह क्षितिज से नमित अथवा उन्नत नहीं होता अतः तब अयन दृक्कर्म की आवश्यकता नहीं रहती यदि शर की कल्पना ध्रुवाभिमुख की जावे।

अथोत्क्रमज्यानिवृत्तिमाह—

दृष्टिकर्म वलनं च केनचिद्भ्रान्तितः कथितमुत्क्रमज्यया।
तत् कृतं तदनुगैस्ततोऽपरैरन्धपूरुषपरंपरोपमैः ॥१६॥
ब्रह्मगुप्तकृतिरत्र सुन्दरी सान्यथा तदनुगैर्विचार्यते।
नोद्धता कृतिरथोद्धतास्तु वा मामिका सुगणका विचार्यताम्॥१७॥

अब उत्क्रमज्या से निवृत्ति कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— ब्रह्मगुप्त का कथन अतिसुन्दर होते हुए भी अन्य आचार्यों (चतुर्वेदाचार्यादि) ने अन्यथा कहा है। दृक्कर्म तथा वलन का साधन कुछ आचार्यों ने भ्रांति से उत्क्रमज्या के द्वारा किया है (जैसे लल्लाचार्य आदि) तथा उन्हें देख कर अन्य आचार्यों ने भी ऐसा ही करके उसी अन्ध परम्परा को आगे बढ़ाया है उसके दोष को नहीं देखा। आचार्य कहते हैं कि हे गणक लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया है। मैंने जो क्रमज्या द्वारा ब्रह्मगुप्त की भांति जो वलन दृक्कर्म किया है उसको सुगणक विचार करके स्वीकार करेंगे ऐसा आचार्य का विश्वास है।

विशेष— गणिताध्याय में इस संबंधि में काफी कुछ विशेष व्याख्या में कह दिया गया है। कृपया वहाँ इसका अवलोकन करें।

अथ व्यभिचारमाह—

उत्क्रमज्याविधानेन दृक्कर्म वलनं तथा।
यत् तैरुक्तं न तत् तथ्यं व्यभिचारोऽत्र कथ्यते॥१८॥
जिनाल्पकाक्षांशगुणत्रिभज्याघातो जिनज्याविहृतोऽस्य चापम्।
तेन त्रिभोनेन समः प्रतीच्यां प्राक् सत्रिभेण द्युचरः कुजे चेत्॥१९॥
दृङ्मण्डलाकारतयापवृत्तं तद्याम्यसौम्यं क्षितिजं तदा स्यात्।
क्षिप्तोऽपि खेटः परमेषुणात्र याम्योत्तरत्वात् क्षितिजं न जह्यात्॥२०॥
दृक्कर्मसंभूतफलद्वयस्य नाशो भवेदत्र धनर्णसाम्यात्।
नैवोत्क्रमज्याविधिनाऽत्र साम्यं दृक्कर्म कार्यं क्रमजीवयातः॥२१॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तथैव नाशो वलनद्वयस्य साम्याद्दिगन्यत्ववियोजनेन।
न साम्यमत्रोत्क्रमजीवया स्यात् क्रमज्यया तो वलनं विधेयम्॥२२॥

उत्क्रमज्या के प्रयोग से व्यभिचार—

सूर्य-प्रभा टीका— उत्क्रमज्या का उपयोग करके जो दृक्कर्म वलन साधन कहा गया है वह तथ्यों के अनुरूप नहीं है अतः उनके व्यभिचार को आचार्य कह रहे हैं। चौबीस अंश से अल्प अक्षांश वाले प्रदेशों में अक्षज्या तथा त्रिज्या के गुणा में जिनांश ज्या का भाग देने से प्राप्तफल का जो चाप होता है उतने भुज की क्रांतिज्या उत्तर अक्षांश की ज्या के तुल्य होती है। आचार्य उदाहरण देकर बताते हैं कि जैसे २०।३८ अंश अक्षांश की ज्या १२१० होती है। इसको त्रिज्या से गुणा करके २४ अंश की ज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल का चाप दो राशि होता है। इसका सत्रिभ तुल्य ग्रह पांच राशि पूर्व क्षितिज में होता है तथा वित्रिभ तुल्य मीन राशि तुल्य पश्चिम क्षितिज में ग्रह रहता है। ऐसा तब होगा जब वृषभान्त राशि ख स्वस्तिक में होगी। तब क्रांतिमंडल दृग्मण्डलाकार हो जाता है और क्रान्तिवृत्त के प्रदेश का क्षितिजवृत्त (क्षितिज) उसके लम्बरूप दक्षिणोत्तर वृत्त ही होता है। जिससे कदम्ब बिंदु भी क्षितिज में ही होता है। अतः क्षितिजस्थ ग्रह का परम शर कदम्बाभिमुख से विक्षिप्त होने पर भी क्षितिज का त्याग नहीं करेगा, क्षितिज में ही रहेगा।

क्रांतिवृत्त में ग्रह स्थान तथा उदयलग्न यहाँ तब लग्न होता है। यह दृक्कर्म फल की धनऋण साम्यता होने पर ही होगा। उत्क्रमज्या विधि से यह साम्यता नहीं हो सकती। अतः क्रमज्या से करने से यह संभव हो जाता है। वलनों की भिन्न दिशा में साम्यता होने से वर्तमान सूर्य के वलन का भी अभाव होता है। उत्क्रमज्या के उपयोग से साम्यता नहीं होती।

अथ तन्मतिभ्रमे कारणमाह—

गर्वाद्रसराभस्यात् परविश्वासात् प्रमादतश्चापि।
मुह्यन्त्यपि मतिमन्तः किं मन्दोऽन्यैस्तथा चोक्तम्॥२३॥
गणयन्ति नापशब्दं न वृत्तभङ्गं क्षयं न चार्थस्य।
रसिकत्वेनाकुलिता वेश्यापतयः कुकवयश्च॥२४॥

उक्तमतिभ्रम होने का कारण कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— गुरु मुख के द्वारा ठीक प्रकार से मन लगाकर अध्ययन न करने से विषय समझ में नहीं आते हुए भी विषय के ज्ञान के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मिथ्यागर्व से, रस के अतिशय लाभ से, दूसरों के विश्वास से अथवा अति प्रमाद से बुद्धिमान छात्र भी अशुद्ध सिद्धान्त को शुद्ध मान लेता है तो मंदबुद्धि छात्र की तो बात ही क्या है?

कुत्सित काव्य के रचने वाले मंदबुद्धि कुकवि (गणक) व्याकरण शुद्ध शब्द के महत्व को नहीं जानने से काव्य रचना करके उससे संतोष तो अनुभव करते हैं लेकिन उस अभाव के कारण दूसरे आचार्यों द्वारा कहे गये अर्थपूर्ण शब्दों को भी नहीं जान पाते हें। जैसे वैश्याओं से सेवित रसिक होने के कारण मिथ्या अभिमान के कारण, सज्जन लोगों द्वारा की गई उसकी निंदा का भी वह ध्यान नहीं रखता, उसकी उपेक्षा ही करता है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के उदयास्तवासना अध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ शृङ्गोन्नतिवासना

तत्र शुक्लत्वे कृष्णत्वे च कारणमाह—

तरणिकिरणसङ्गादेष पीयूषपिण्डो दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति।
तदितरदिशि बालाकुन्तलश्यामलश्रीर्घट इव निजमूर्तिच्छाययैवातपस्थः ॥१॥
सूर्यादधः स्थस्य विधोरधःस्थमर्धं नृदृश्यं सकलासितं स्यात्।
दर्शेऽथ भार्धान्तरितस्य शुक्लं तत् पौर्णमास्यां परिवर्तनेन ॥२॥
कक्षाचतुर्थे तरणेर्हि चन्द्रकर्णान्तरे तिर्यगिनो यतोऽब्जात्।
पादोनषट्काष्ट $\frac{८५}{४५}$ लवान्तरेऽतो दलं नृदृश्यस्य दलस्य शुक्लम् ॥३॥
उपचितिमुपयाति शौक्ल्यमिन्दोस्त्यजत इनं व्रजतश्च मेचकत्वम्।
जलमयजलजस्य गोलकत्वात् प्रभवति तीक्ष्णविषाणरूपतास्य ॥४॥
यद्याम्योदक् तपनशशिनोरन्तरं सोऽत्र बाहुः।
कोटिस्तूर्ध्वाधरमपि तयोर्यच्च तिर्यक् स कर्णः।
दोर्मूलेऽर्कः शशिदिशि भुजोऽग्राच्चकोटिस्तदग्रे
चन्द्रः कर्णो रविदिगनया दीयते तेन शौक्ल्यम् ॥५॥

चन्द्रमा में शुक्लत्व तथा कृष्णत्व होने का कारण—

सूर्य-प्रभा टीका— सूर्य की किरणों के संयोग से धवलकान्ति अमृतमय चन्द्रमा का सूर्य की तरफ का भाग चन्द्र की चान्दनी से जगमगाता है। उसके (चंद्र) इससे विपरीत दिशा में रमणीय रमणी के शिर के श्याम वर्ण के केशों की श्यामलता की भांति अथवा सूर्याभिमुख घट के विपरीत दिशा में स्वयं की छाया की श्यामलता के सदृश्य चन्द्रमा श्याम रंग का दिखाई देता है। यहाँ रमणी के शिर की छाया को श्यामलता भी कही है। सूर्य के नीचे (कक्षा में) स्थित चन्द्रमा का आधा भाग मनुष्यों को अदृश्य होता है क्योंकि वहाँ (पूर्वोक्त प्रकार से) अंधेरा रहता है और चन्द्रमा का आधा भाग ही दृश्य होता है जो पूर्णिमा से परिवर्तित होने लगता है। सूर्य से जब चन्द्रमा अपनी कक्षा के चतुर्थ भाग तुल्य स्थान पर चन्द्र कर्णान्तर दूरी पर होता है तब सूर्य से लम्बवत होता है उस समय चं. गोल के आधे भाग का आधा भाग अर्थात् दृश्य चतुर्थांश भाग (८५।४५ भाग) मनुष्यों को शुक्ल दिखाई देता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जलज होने से जलमय चंद्रमा के बिंब की सूर्य के सामने होकर दूर आगे जाते हुए सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से शुक्लता तथा समीप जाते हुए कृष्णता में वृद्धि होती है।

सूर्य तथा चन्द्रमा का याम्योत्तर अन्तर यहाँ बाहु है, उनका ऊर्ध्वाधर अन्तर कोटि है इनका जो तिर्यक अन्तर है वह कर्ण है। भुज के मूल में सूर्य चन्द्र दिशा में भुजाग्र और कोटि के अग्रभाग (तक) के कर्ण मार्ग से शुक्लता देता है।

यहाँ ध्यान देवें यही बातें आचार्य ने पूर्व में गणिताध्याय में कही है। वहाँ भी ऐसी ही व्याख्या की गई है। कृपया वहाँ पर भी अवलोकन करें।

विशेष— श्रीपति ने सिद्धान्त शेखर के अध्याय १० में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"धाम्ना धामनिधेरयं जलमयो धत्ते सुधा दीधितिः
सद्यः कृत्तमृणालकन्दविशदच्छायां विवस्वद्दिशि।
हर्म्ये धर्मघृणेः करैर्घट इवान्यस्मिन् विभागे पुन-
र्बालाकुन्तलकालतां कलयति स्वेच्छां तनोश्छायया॥२॥
अर्धबिम्बसदृशे सिते विधोः खण्डिते वपुषि चार्धजीवया।
रूपमुद्वहति लोललोचना भालपट्टभवमेणलाञ्छनः॥२६॥"

अथाध्य योपसंहारश्लोकमाह—

ईषदीषदिह मध्यगमादौ ग्रन्थगौरवभयेन मयोक्ता।
वासना मतिमता सकलोह्या गोलबोध इदमेव फलं हि॥६॥

अध्याय के उपसंहार श्लोक कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— मध्यमाधिकार से आरंभ करके सभी अधिकारों की ग्रंथ की विस्तृत्ता के भय से आचार्य कहते हैं मैंने अपनी बुद्धि से वासना अर्थात् उपपत्ति कही है। सभी गोलविदों को इन सभी विषयों की व्याख्या करते रहना चाहिये। गोल ज्ञान का यही फल है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के शृङ्गोन्नतिवासना अध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ यन्त्राध्यायः

अथ यन्त्राध्यायो व्याख्यायते। तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनमाह—

दिनगतकालावयवा ज्ञातुमशक्या यतो विना यन्त्रैः।
वक्ष्ये यन्त्राणि ततः स्फुटानि संक्षेपतः कतिचित्॥१॥
गोलो नाडीवलयं यष्टिः शङ्कुर्घटी चक्रम्।
चापं तुर्यं फलकं धीरेकं पारमार्थिकं यन्त्रम्॥२॥

अब यन्त्राध्याय की व्याख्या कर रहे हैं। सर्वप्रथम इसको आरम्भ करने का प्रयोजन कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— दिनगतकाल के अवयवों को यन्त्रों के उपयेाग के बिना नहीं जाना जा सकता। अतः यन्त्रों से देखकर उसको स्फुट करने के संबंध में यहाँ आचार्य संक्षेप में कह रहे हैं। गोल, नाडीवलय, यष्टि, शङ्कु, घटी, चक्र, चाप, तुर्य तथा फलक नामक यन्त्रों के अतिरिक्त एक अलग 'बुद्धि' नामक परमार्थिक यन्त्र होता है। इनका वर्णन आचार्य इस अध्याय में 'बुद्धि' नामक यंत्र की सहायता से करेंगे।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने भी ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त ही कहा है।यथा–

"गोलस्य परिच्छेदः कर्त्तु यन्त्रैर्विना यतोऽशक्यः।
संक्षिप्तं स्पष्टार्थं यन्त्राध्यायं ततो वक्ष्ये॥४॥"

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"शक्यः परिच्छेदविधिर्विधातुर्यन्त्रैर्विना नो समयस्य तज्ज्ञैः।
तेषां स्वयंवाहक पूर्वकाणामतः प्रवक्ष्ये खलु लक्षणानि॥"

ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में निम्नलिखित यन्त्र कहे हैं–

"सप्तदशकाल यन्त्राण्यतो धुनस्तुर्यगोलकं चक्रम्।
यष्टि शङ्कुर्घटिका कपालकं कर्त्तरी पीठम्॥५॥
सलिलं भ्रमोऽवलम्बः कर्णश्छाया दिनार्धमर्कोऽक्षः।
नतकाल ज्ञानार्थ तेषा संसाधनान्यष्टौ॥६॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ प्रथमं गोलयन्त्रमाह—

अपवृत्तगरविचिन्हं क्षितिजे धृत्वा कुजेन संसक्ते।
नाडीवृत्ते बिन्दुं कृत्वा धृत्वाथ जलसमं क्षितिजम्॥३॥
रविचिह्नस्य च्छाया पतति कुमध्ये यथा तथा विधृते।
उडुगोले कुजबिन्द्वोर्मध्ये नाड्यो द्युयाताः स्युः॥४॥

प्रथम गोलयन्त्र कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— इस विधि में खगोल के अन्तर्गत भगोल को बांध कर वहाँ क्रांतिवृत्त में मेषादि से आरंभ करके रवि के भुक्त राशि अंशादि पर चिन्ह लगावें उसको क्रांतिवृत्त पर रवि चिन्ह कहते हैं। भगोल में उस बिंदु को चला कर क्षितिज के साथ मिलावे। पूर्वी क्षितिज में विषुवद्वृत्त जहाँ संपात करता है उस स्थान पर खड़िया (चाक) से निशान लगावे। जल से समान की हुई भूमि में गोल यन्त्र को स्थापित करके भगोल को चलाकर इस प्रकार स्थापित करें कि रवि बिंब की छाया भूगर्भ में पतित हो। इस प्रकार करने से विषुवद वृत्त में क्षितिज वृत्त और बिंदु के मध्य जितनी घटियाँ होती हैं उतना काल सूर्योदय के पश्चात दिन गत का मान ज्ञात होता है और क्रांतिवृत्त में मेषारम्भ बिंदु से आगे क्षितिज वृत्त पर्यन्त जितनी राशि अंशादि होती है व लग्न का मान ज्ञात होता है। यह गोल यन्त्र है।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"धार्य धनुस्तथाऽन्यत् छाया साम्यं यथोन्नता भागाः।
दिनगतशेषाः घटिका स्वलम्बभुक्ता धनुर्मध्या॥८॥"

श्रीपति ने सि.शे. में आचार्योक्त कहा है। यथा अध्याय १९—

"चक्रांशाङ्कं क्रान्तिवृत्तं विधेयं उर्वीवृत्तं याम्यवृत्तं च तद्वत्।
नाडीवृत्तं षष्टिभागाङ्कितं हि याम्योदक्स्था यष्टिरुर्वीजमध्ये॥३॥
कार्य खगोलस्य दृढ़स्य मध्ये भगोलमेतत् परितस्तथा च।
यन्त्रांशके तिग्मकरोऽपवृत्ते क्षिपेच्छलाकामिह तत्र भागे॥४॥
तान्नाडिकावृत्तगतां विधाय समुद्गमात् सूर्यवशेन भूजात्।
तदीयभा केन्द्रगता यथा स्यात् स खम्बुनाड्या भ्रमयेत्तथैव॥५॥
पातङ्कचिन्हक्षितिजान्तरस्थाः समुद्गतांशा गणकैर्निरुक्ताः।
नाडयः शलाका कुजयोस्तु मध्ये समुन्नतास्ता नियतं भवन्तीति॥६॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त कहा है।

"अथ लग्नकालसिद्धयै पूर्वापरपरिकरोत्तरैर्नवभिः।
निर्मापयेद् भगोलं प्राग्विधिना क्रान्तिवृत्तमिह॥३॥
तस्य बहिश्च खगोलं समवृत्तक्षितिजदक्षिणोत्तरगैः।
उन्मण्डलेन च तथा ध्रुवयष्ट्या पूर्ववत् सभुवा॥४॥
षष्ट्याङ्कयेद् भगोलं प्रागपराणीतराणि चक्रांशैः।
कुर्याद् दृढ़ं खगोलं श्लथं भगोलं च नलिकाभ्याम्॥५॥
यस्मिन्नंशे सविता तत्र शलाकां क्षिपेद्पमवृत्ते।
नाडीवृत्तस्थां तामुदये क्षितिजाद्रविवशेन॥६॥
भ्रमयेच्छश्वत् तद्वत् यथा न केन्द्रं त्यजेब्छलाकाभा।
रविचिन्हक्षितिजान्तरमुदितांशस्तृणकुजान्तरा घटिकाः॥७॥"

आर्यभट ने आर्यभटीय के गोलपाद में आचार्योक्त प्रकार कहा है। यथा—

"पूर्वापरमधऊर्ध्वं मण्डलमथ दक्षिणोत्तरञ्चैव।
क्षितिजं समपार्श्वस्थं भानां यत्रोदयास्तमयौ॥१८॥
पूर्वापरादिलग्नं क्षितिजादक्षाग्रयोश्च लग्नं यत्।
उन्मण्डलं भवेत्तत् क्षयवृद्धौ यत्र दिवसनिशोः॥१९॥
काष्ठमयं समवृत्तं समन्ततस्समगुरुं लघुं गोलं।
पारततैलजलैस्तं भ्रमयेत्स्वधिया च कालसमं॥२२॥"

अथ नाडीवलयमाह—

अपवृत्ते कुजलग्ने लग्नं चाथो खगोलनलिकान्तः।
भूस्थं ध्रुवयष्टिस्थं चक्रं षष्ट्या निजोदयैश्चाङ्कयम्॥५॥
व्यस्तैर्वष्टीभायामुदयेऽर्कं न्यस्य नाडिका ज्ञेयाः।
इष्टच्छायासूर्यान्तरेऽथ लग्नं प्रभायां च॥६॥
केनचिदाधारेण ध्रुवाभिमुखकीलकेऽत्र धृते।
अथवा कीलच्छायातलमध्ये स्युर्नता नाड्यः॥७॥

नाडी वलय यन्त्र कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— चारु अथवा दारु वृक्ष की लकडी से इष्ट प्रमाण का वृत्ताकार चक्र बनाकर उसमें साठ (६०) घटिकायें अंकित करके उस यन्त्र को खगोल के मध्य में ध्रुव यष्टि में पृथ्वी के मध्य में ध्रुवप्रोत सूत्र की भांति

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थापित करे तथा राशि स्वोदय मान प्रमाण तुल्य उस वृत्त में चारों ओर पीछे की तरफ में चिन्ह लगावे। इनको इसी प्रकार इस पर विलोम क्रम से भी लगावें। मेष राशि से पश्चिम में वृषभ, वृषभ के पश्चिम में मिथुन इत्यादि (इस प्रकार) लगावें। इस प्रकार यन्त्र बनाकर जिस दिन इससे काल को ज्ञात करना अपेक्षित हो उस दिन सूर्योदय समय में स्पष्ट सूर्य की राश्यादि को मेष आरम्भ से चिन्हित करें तथा वर्तमान भुजमान राशि अंशादि को चक्र में चिन्हित करके उसके अग्रबिंदु पर रवि का चिन्ह लगावे तथा उसी प्रकार यन्त्र को स्थापित करे। इसके अनन्तर रवि जैसे-जैसे ऊपर जायेगा वैसे-वैसे छाया नीचे-नीचे जावेगी। छाया तथा रवि चिन्ह के मध्य जितनी घटियाँ होगी उतना दिन गत ज्ञात होता है तथा यष्टि छाया द्वारा जो राशि क्षेत्र अंश जहाँ-जहाँ लगते हैं वह ज्ञात करे वे षडवर्ग होते हैं। अथवा जिस प्रकार खगोलं के अन्दर यष्टि पिरोई है उसी प्रकार चक्र के अन्दर इष्ट प्रमाण का कीलक पिरोये। वह कीलक ध्रुवाभि मुख जैसे हो वैसे किसी आधार पर चक्र को स्थिर करे। इस प्रकार करके इष्टकाल पर कीलक की छाया जहाँ लगती है उसके तथा यन्त्र के नीचे स्थ चिन्ह के मध्य की घटियाँ ज्ञात होती हैं। इस प्रकार नाडीवलय हुआ।

अथ घटिकामाह—

घटदलरूपा घटिता घटिका ताम्री तले पृथुच्छिद्रा।
द्युनिशनिमज्जनमित्या भक्तं द्युनिशं घटीमानम्॥८॥

घटिका के लिए कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— आधे घट (घड़ा) के सदृश ताम्र का पात्र घटी यन्त्र होता है। इसके तल के मध्य में छोटा छिद्र इस प्रकार करना चाहिये जिससे ज़लपात्रस्थ जल में साठ बार उसके डूबने से अहोरात्र मान हो अर्थात् एक बार डूबने से एक घटी हो।

विशेष— आचार्य ने स्वकृत वासना भाष्य में कहा है कि जिन आचार्य ने ताम्र के दस पल तुल्य पात्र से घटीकाल लक्षण कहा है वह युक्तिशून्य होने से दुर्घट है अर्थात् सही नहीं है। अतः उसकी उपेक्षा की जानी चाहिये। इष्ट प्रमाण के छिद्र वाला पात्र ही घटी संज्ञक स्वीकार किया गया है। यदि दिनरात्रि में डूबने व उसकी निमज्जन संख्या में ३६०० पल पाते हैं तो एक निमज्जन में क्या? इस रीति से घटी यन्त्र प्रमाण निरुपण किया गया है।

सि.शे. में श्रीपति ने इस प्रकार कहा है। यथा अध्याय १९–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"शुल्बस्य दिग्भिर्विहितं पलैर्यत् षडङ्गुलोच्चं द्विगुणायतास्यम्।
तदम्भसा षष्टिपलैः प्रपूर्य पात्रं घटार्धप्रमितं घटी स्यात्॥१९॥
सत्र्यंशमाषत्रय निर्मिता या हेम्नः शलाका चतुरङ्गुला स्यात्।
विद्धं तया प्राक्तनमत्र पात्रं प्रपूर्यते नाडिकयाऽम्बुना तत्॥२०॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"घटिका कलशार्धाकृति ताम्रम् पात्रं तलेऽपृथुच्छिद्रम्।
मध्ये तज्जलमज्जनषष्ट्या धुनिशं यथा भवति॥४१॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ में इस प्रकार कहा है जिसको आचार्य ने गलत बताया है। यथा– यन्त्राध्याय—

"दशभिः शुल्बस्य पलैः पात्रं कलशार्धसन्निभं घटितम्।
हस्तार्धमुखव्यासं समघटवृत्तं दलोच्छ्रायम्॥३४॥
सत्र्यंशमाषकत्रयकृतनलया समसवृत्तया हेम्नः।
चतुरङ्गुलया विद्धं मज्जति विमलेजले नाड्या॥३५॥"

लेकिन आगे के दो श्लोकों में आचार्य ने अन्य विधि भी कही है जो आचार्योक्त प्रकार की ही है। यथा–

"अथवा स्वेच्छाघटितं घटीप्रमाभिः प्रसाधितं भूयः।
त्रैराशिकसिद्धं वाङ्गुलवद् गुरु विपुलरन्ध्रं यत्॥३६॥
इष्टदिनार्धघटीभिः सममथवापं निमज्जति घटी सा।
षष्टैः शतैस्त्रिभिर्वा विंशतिघ्वक्षरासूनाम्॥३७॥"

सूर्यसिद्धान्त में इस यन्त्र को ज्योतिषोपनिषदध्याय में कपालयन्त्र के नाम से कहा है। यथा–

"ताम्रपात्रमधश्छिद्रं न्यस्तं कुण्डेऽमलाम्भसि।
षष्टिर्मज्जत्यहोरात्रे स्फुटं यन्त्रं कपालकम्॥२३॥"

अथ शङ्कुमाह—

**समतलमस्तकपरिधिर्भ्रमसिद्धो दन्तिदन्तजः शङ्कुः।
तच्छायातः प्रोक्तं ज्ञानं दिग्देशकालानाम्॥९॥**

शंकु यन्त्र कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जिसका तल समतल हो तथा मूल स्थान की परिधि के तुल्य अग्र भाग तक की भी जिसकी परिधि हो तथा जो हाथीदाँत

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का बना हो। ऐसा शंकु होना चाहिये। इसकी छाया से दिगदेश तथा काल का ज्ञान करना चाहिये।

विशेष— आचार्य ने ब्रह्मगुप्त, लल्लाचार्य तथा श्रीपति आदि द्वारा कथित शंकु के प्रकार का शंकु कहा है। उन्होंने इन सबको मिलाकर श्लोक कहा है। हाथीदाँत यहाँ पर दारु, सार आदि का उपलक्ष है। श्रीपति ने शाण से निर्मित अर्थात घिसने वाले पत्थर से निर्मित कहा है तथा भाटी, सरलाकार, व्रण रहित कहा है। लल्लाचार्य ने शंकु का प्रकार आचार्योक्त ही कहा है।

लल्लाचार्य ने सि.धी.वृ.ग्रंथ के यन्त्राध्याय में इसी प्रकार कहा है। यथा–

"भ्रमसिद्ध सममूलाग्रपरिधिरतिसुगुरुसारदारुमयः।
ऋजुरव्रणराजिलाञ्छनस्तथा च समतलः शङ्कुः॥३१॥
वृत्तः षडङ्गुलानि द्वादशदीर्घश्चतुर्भिरवलम्बै।
स्याप्यः सुसमः प्रथमे जलेन च सुसमीकृते फलके॥३२॥"

सि.शे. में श्रीपति ने इस प्रकार कहा है। यथा–

"भ्रमविरचित वृत्तस्तुल्य मूलाग्रभागो
द्विरदरदनजन्मा सारदारुद्भवो वा।
गुरु ऋजुरवलम्बादव्रणः षट्कवृत्तः
समतल इह शस्तः शंकुरर्काङ्गुलः स्यात्॥अ.२२ श्लो.३५॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में इस प्रकार कहा है। उन्होंने शंकु का आकार उपरोक्त आचार्यों से कुछ भिन्न कहा है। यथा–

"मूले द्वयङ्गुलविपुलः सूच्यग्रो द्वादशाङ्गुलोच्छ्रायः।
शंकुस्तलाग्रविद्धोऽग्रवेधलम्बादृजुर्जेयः॥३९॥"

अथ चक्रमाह—

चक्रं चक्रांशाङ्कं परिधौ श्लथशृङ्खलादिकाधारम्।
धात्री त्रिभ आधारात् कल्प्या भार्धेऽत्र भार्धं च॥१०॥
तन्मध्ये सूक्ष्माक्षं क्षिप्त्वार्काभिमुखनेमिकं धार्यम्।
भूमेरुन्नतभागास्तत्राक्षच्छायया भुक्ताः॥११॥
तत्खार्धान्तश्च नता उन्नतलवसंगुणीकृतं द्युदलम्।
द्युदलोन्नतांशभक्तं नाड्यः स्थूलाः परैः प्रोक्ताः॥१२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अब चक्र यन्त्र कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— एक चक्र को भ्रमण योग्य आधार बनाकर चक्र में एक छेद करना चाहिये। वृत्ताकार काष्ठ के चक्र में साठ घटी और तीन सौ साठ अंश को अंकित करके मध्य में छिद्र में होकर अवलम्बयष्टि को सूर्याभिमुख इस तरह रखना चाहिये जिससे यन्त्र को बढ़ाने से सूर्य बिम्ब के केन्द्र में चला जाये। इसलिए वह दृग्मण्डलाकार हुआ। इसके केन्द्र में लम्बयष्टि की छाया उसकी परिधि में जहाँ लगती है वह बिन्दु सूर्यकेन्द्र बिंब से षड्भान्तर (छैः राशि अन्तर) पर होता है। सूर्योदय काल में सूर्याधिष्ठित अंश (जिस अंश में सूर्य है) से षड्भान्तर पर पश्चिम बिन्दु ही में अवलम्ब की छाया यन्त्र परिधि में लगती है। उसके बाद ज्यों-ज्यों ऊपर जाते हैं त्यों-त्यों लम्ब की छाया पश्चिम बिन्दु से नीचे जाती है। वही लम्ब से त्यक्त अंश है, वह सूर्याधिष्ठित अंश से लेकर उन्नतांश ही है। यह यन्त्र घटिकाओं से अंकित है अतः यन्त्रमुक्त घटी सूर्योदय से गत घटी है।

पूर्वोक्त में छिद्र में सूक्ष्म रेखा गमनशील लकडी चक्र भ्रमण के लिए (अक्ष) देनी चाहिये। सूर्याभिमुख परिधि जैसे हो वैसे चक्र को आधार पर स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार कील अक्ष की छाया जहाँ पर परिधि में लगे वहाँ से क्षितिज गत चिन्ह तक के अंश सूर्य के उन्नतांश तथा छाया और खमध्य के अन्तर में नतांश होते हैं।

अन्य आचार्यों ने इस यन्त्र के द्वारा नत उन्नत घटियों को भी ज्ञात किया है।

विशेष— लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"वृत्तं कृत्वा फलकं षड्वर्गाङ्कं तथा च षष्ट्यङ्कम्।
मध्यस्थितावलम्बं मध्यस्थित्या प्रविष्टोष्णम्॥२०॥
तदधोलम्बविमुक्तं गृहादि यत्तदुदितं दिनकरांशात्।
नाडयः पूर्वकपाले द्युगतास्ताः पश्चिमे द्युदलात्॥२१॥"
चक्राख्यं यन्त्रमिदं दल धनुर्यन्त्रमाहुरस्यैव।
ज्याकार्मुकभृच्छिद्रप्रविष्टदिनकरकरं धार्यम्॥२२॥
मध्यस्थ लम्बमुक्ताः कोटेरारभ्य नाडिका द्युगताः
उदिताश्च दिन करांशादारभ्य भवन्ति गृहभागाः॥२३॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोक २२-२३ में आचार्य ने धनुर्यन्त्र का उल्लेख किया है।

सिद्धान्त शेखर में श्रीपति ने लल्लचार्य तथा ब्र.गु. के श्लोक को ही अन्य प्रकार से कह दिया है। यथा अध्याय १६—

"कृत्वा सुवृत्तं फलकं हि षष्ट्या चक्रांशकैश्चाङ्कितमत्र मध्ये।
लम्बस्तद्ग्रात् सुषिरेण यद्वत केन्द्रेऽर्करश्मि पततीतिदध्यात्॥१२॥
लम्बेन मुक्ता रविभागतोंऽशास्तत्रोदितास्ते घटिकास्तु याताः।
चक्राख्य मेतद्दलमस्य चापं ज्यामध्यरन्ध्र स्थित लम्बमेतत्॥१३॥"

ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त चक्र यन्त्र कहा है।—

"परिधौ भगणांशाङ्कं मीनान्तं चक्रतोविद्धवा।
चक्रयन्त्रं मध्याल्लम्बोऽत्र फलं धनुस्तुल्यम्॥१८॥"

अथ वेधेन ग्रहज्ञानमाह—

पैत्रर्क्षपुष्यान्तिमवारुणानामृक्षद्वयं नेमिगतं यथा स्यात्।
दूरेऽन्तरेऽल्पेषु भखेचरौ वा तथात्र यन्त्रं सुधिया प्रधार्यम्॥१३॥
नेमिस्थदृष्ट्याक्षगतं प्रपश्येत् खेटं च धिष्ण्यस्य च योगतारम्।
नेम्यङ्कयोरक्षयुजोस्तु मध्ये येंऽशाः स्थिता भध्रुवको युतस्तैः॥१४॥
प्रत्यक् स्थिते भेऽथ पुरः स्थिते तैर्हीनो ध्रुवः स्यात् खचरस्य भुक्तम्।

चक्र यंत्र के द्वारा ग्रहवेध से ग्रह का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— मघा योगतारानक्षत्र (पैत्रर्क्ष), पुष्य योगतारा नक्षत्र, रेवती (अन्तिम) योगतारा नक्षत्र, शततारा (वारुणं) इस प्रकार इन चारों नक्षत्रों के मध्य यन्त्र को नीचे से दृष्टि करके ऊपर की ओर चक्र की परिधि (घेरे) को दो नक्षत्रों के मध्य जिस प्रकार समसूत्र लगे उस प्रकार यंत्र को स्थिर करे तथा चक्र के घेरे में नक्षत्र का स्थान अंकित करे। इसके आगे पीछे दृष्टि को चला कर ग्रह का वेध करे। ग्रह चक्र परिधि में अक्षगत होगा तब ही दिखाई देता है। अक्षमूल और ग्रह के अन्तर तुल्य ग्रह का शर होता है। चक्र परिधि में जहाँ अक्षमूल लगे वहाँ उस स्थान पर भी चिन्ह लगावे। नक्षत्र तथा ग्रह के अंकित अंकों के मध्य जितने अंशादि हो उनमें ग्रह से पश्चिम में नक्षत्र हो तो नक्षत्र के ध्रुवाँक जोड़ने चाहिये और यदि पूर्व में हो तो नक्षत्र के ध्रुवाँक घटाने चाहिये। इस प्रकार करने से स्फुट ग्रह प्राप्त होते हैं। अथवा यदि रोहिणी आदि की तरह अल्प शर वाले नक्षत्र हों तथा उनसे ग्रह दूर स्थित हो तो उन दोनों का वेध करके उक्त प्रकार से ग्रह को ज्ञात करना चाहिये।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ चाप तुर्यगोलं चाह—

दलीकृतं चक्रमुशन्ति चापं कोदण्डखण्डं खलु तुर्यगोलम्॥१५॥

चाप तथा तुर्य गोल यन्त्र कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— चक्र यन्त्र को आधा करने से चाप यन्त्र होता है तथा उसे धनु यन्त्र भी कहते हैं।

विशेष— आचार्य ने गोल यन्त्र श्लोक ३ व ४ में कह कर वहीं पर न कहकर यहाँ चाप यंत्र कहा है। इनके विषय में हमने अन्य आचार्यों के कथन वहीं पर व्याख्या में कह दिये हैं। अतः यहाँ दुबारा नहीं कह रहे हैं। लेकिन इस यन्त्र को कैसे उपयोग में लेते हैं वह यहाँ बताते हैं।

धनुर्यन्त्र को इस तरह धारण करना चाहिये जिससे अन्य छाया साम्य हो अर्थात क्रांतिवश से चरज्या साधन करे तथा इष्ट शंकु से इष्ट हृति का ज्ञान, उससे इष्टान्त्या का ज्ञान कर उसमें चरज्या संस्कार से सूत्रज्ञान कर उससे उन्नत काल का ज्ञान होता है। एवं प्रत्येक घटिकोन्नत काल वश से धनुर्यन्त्र केन्द्र में स्थापित इष्ट प्रमाण कील की छाया साधन कर अपने-अपने उन्नत काल के संमुख अंकित करना। धनुर्यन्त्र को इष्ट दिन में ऐसे धारण करना चाहिये जिससे कील की छाया धनुष के दोनों अग्र के अन्तर में कीलच्छाया सम्बन्धी गणितागत शङ्कु भाग के बराबर भाग (अंश) हो। इस प्रकार धरने से अवलम्ब ही दृक् सूत्राकार लगता है। धनुष के मध्य से अपने लम्बयुक्त भाग रवि के उन्नत भाग (उन्नतांश) होते हैं। वहाँ अंकित उन्नतकाल पूर्व कपाल और पश्चिम कपाल में दिनगत घटी-दिन शेष घटी होती है।

ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में धनुर्यन्त्र की आचार्योक्त परिभाषा ही दी है। यथा—

"घटिका स्वशङ्कुभागैः पृथग्गतैलम्बभूसमज्यार्धात्।
साशीतिशतांशाङ्कं चक्रस्यार्धं धनुर्यन्त्रम्॥१०॥"

इसका अर्थ है— यदि इष्टदिन में इष्टकाल में शङ्कुभाग ही विदित हो तब धनुः कोट्यग्र से उन अंशों को दान देकर उसके अग्र से धनुष की ज्या रूप भूमि के ऊपर लम्ब ही शङ्कु है। उससे त्रिप्रश्नाधिकारोक्त विधि से इष्टान्त्या ज्ञात करके इष्टघटी को ज्ञात करना चाहिये। वृत्तार्ध में एक सौ अस्सी (१८०°) अंशों को अंकित करने से धनुर्यन्त्र होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अंकितमंशनवत्या धनुषोऽर्ध तुर्यगोलकं यन्त्रम्।
घटिकानतोन्नतांश ग्रहान्तराद्यं धनुर्वदिह॥१७॥ यन्त्राध्याय॥"
इस प्रकार आचार्योक्त ही कहा है।

अथ फलकयन्त्रार्थमाह—

दृङ्मण्डलेऽत्र स्फुटकाल उक्तः सुखेन नान्यैर्यतितं मयातः।
सद्गोलयुक्तेर्गणितस्य सारं स्पष्टं प्रवक्ष्ये फलकाख्ययन्त्रम्॥१६॥

अब फलक यन्त्र कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— दृगमण्डल से स्फुट काल आचार्य द्वारा निर्मित यन्त्र के अतिरिक्त किसी अन्य पूर्वोक्त यन्त्र द्वारा प्रयास करने से ज्ञात नहीं हो सकता, ऐसा आचार्य का कहना है। अतः सद्गोल की युक्ति तथा गणित के सार रूप फलक यन्त्र को आचार्य स्पष्टता से कह रहे हैं।

इदानीमभीष्टदेवतानमस्कारपूर्वकमाह—

नित्यं जाड्यतमोहरं सुमनसामुल्लासनं सप्रभं-
चाक्लेशं समयावबोधनविधौ प्रौद्बोधितज्योतिषम्।
सेव्यं मण्डलमध्यगं सुकृतिर्भिर्यत्रं स्फुटं वच्म्यहं
नत्वैतद्गुणमेव देवममलं श्रीभास्करं भास्करः॥१७॥

आचार्य अब अभीष्ट देवता को नमस्कार करके फलक यन्त्र के लिए कह रहे हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— जो अविनाशी तथा नित्य है, अज्ञान तथा अंधकार का नाश करने वाला है, शीतलता को दूर करने वाला है तथा कमलादि को उल्लासित करने वला है। सुप्रकाशित है तथा अक्लेश पूर्वक काल ज्ञान के विधान का उद्बोधक है, तारगण को उल्लासित करने वाला है तथा पुण्यात्माओं से जो सेवित है उन भगवान भास्कर को आचार्य प्रमाण करते हैं।

इसी प्रकार के विशेषणों से आचार्य ने यन्त्र की व्याख्या भी की है कि यंत्र की क्या विशेषताएँ हैं? वे कहते हैं यह अज्ञान के शीत तथा अंधकार का नाश करने वाला है, नित्य अर्थात प्रतिदिन सुमानस तथा विदुषियों को उल्लास देने वाला है, प्रकाश तथा छाया सहित है, सरलता से बिना कष्ट के समय का बोध कराने वाला है, ज्योतिष शास्त्र को अपनी उज्वल ज्योति से उज्ज्वल करने वाला है, सुगणकों से सेवित है, मण्डल के मध्यगत अर्थात यन्त्रमध्य लिखित मण्डल युक्त यंत्र राज 'फलक यन्त्र' को आचार्य भास्कर (स्वयं) नमस्कार करते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं यन्त्रलक्षणमाह—

कर्तव्यं चतुरस्रकं सुफलकं खाङ्का ९० ङ्गुलैर्विस्तृतं
विस्ताराद्द्विगुणा १८० यतं सुगणकेनाय्ममध्ये तथा।
आधारः श्लथशृङ्खलादिघटितः कार्या च रेखा तत-
स्त्वाधारादवलम्बसूत्रसदृशी सा लम्बरेखोच्यते॥१८॥

लम्बं नवत्य ९० ङ्गुलकैर्विभज्य प्रत्यङ्गुलं तिर्यगतः प्रसार्य।
सूत्राणि तत्रायतसूक्ष्मरेखा जीवाभिधानाः सुधिया विधेयाः॥१९॥

आधारतोऽधः खगुणा ३० ङ्गुलेषु ज्यालम्बयोगे सुषिरं च सूक्ष्मम्।
इष्टप्रमाणा सुषिरे शलाका क्षेप्याक्षसंज्ञा खलु सा प्रकल्प्या॥२०॥

षष्ट्यङ्गुलव्यासमतश्च रन्ध्रात् कृत्वा सुवृत्तं परिधौ तदङ्क्यम्।
षष्ट्या घटीनां भगणांश ३६० कैश्च प्रत्यंशकं चाम्बुपलैश्च दिग्भिः॥२१॥

अग्रे सरन्ध्रा तनुपट्टिकैका षष्ट्यङ्गुला दीर्घतया तथाङ्क्या।

अब फलक यन्त्र के लक्षण कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— किसी धातु, श्रीवर्ण्य अथवा दारु आदि वृक्ष की लकड़ी से एक चौकोर फलक यन्त्र बनावे जिसका ९० अंगुल विस्तार (चौड़ाई) तथा इससे द्विगुणित १८० अंगुल की दैर्घ्य (लम्बाई) हो। लम्बाई मध्य किसी आधार पर रख कर यन्त्र को खड़ा (लम्बन) स्थापित करे तथा फलक यन्त्र को जिस आधार पर स्थापित किया है उसके नीचे से एक लम्ब रूप रेखासूत्र बनावे, उसकी लम्ब संज्ञा है। उस लम्ब के नब्बे (९०°) भाग करके प्रत्येक भाग से एक-एक लम्ब रेखा खेंचे जो आधार गत लम्ब रेखा के लम्ब हों। यह रेखायें ज्या संज्ञक होती हैं। आधार के नीचे तीस (३०) अंगुल अन्तर पर जो ज्या है उसके तथा ऊर्ध्वाधर लम्ब के संपात बिन्दु पर एक छिद्र करे। उसमें अभीष्ट प्रमाण की शलाका पिरो देवे यह अक्ष रेखा है। उस छिद्र से तीस अंगुल पर कर्कटक (गोलाप्रकार) से एक वृत्त बनावे। उसमें ६० घटी की गणना के ६० अंश तथा ३६० अंश कलादि के चिन्ह बनावे। प्रत्येक अंश को दश-दश पानीय पल के चिन्ह बनावे। ताम्रादि धातु की या बांस की आधा अंगुल चौड़ी तथा साठ (६०) अंगुल लंबी (जिससे फलक अंगुल नापी गई है) पट्टि लेवे। उसमें एक अग्र भाग पर एक अंगुल चौड़ी कुल्हाड़ी लगावे तथा उस कुल्हाड़ी की चौड़ाई में एक छिद्र बनावे। उक्त अक्ष में पिरोकर इस पट्टी को लम्ब रेखा में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार रखें कि अक्ष रेखा का एक भाग लम्ब रेखा में ही रहे उसका त्याग न करे।

विशेष— आचार्य ने जो फलक यन्त्र कहा है उसकी रचना का स्पष्टीकरण भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त के ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय के निम्नलिखित आदर्श को लेकर किया है। यथा—

"अवलम्बनं शलाकाज्यार्ध यष्टिं प्रकल्प्य वा धनुषि।
भूम्युच्छ्रायाल्लम्बो यष्ट्युक्तैशनयेत् करणै॥१६॥"

अर्थात् धनुर्यन्त्र में केन्द्रगतशलाका को अवलम्बसूत्र, चाप के ज्यार्ध शलाका प्रोत (पहराई हुई) यष्टि मान कर यष्ट्यादि से कथित साधनों से क्षितिज के उच्छ्राय से उन्नतांशादि को गणक लावे।

अतः स्पष्ट है कि आचार्योक्त फलक यन्त्र उनकी मौलिक कृति नहीं कही जा सकती। सब कुछ ब्र.गु. ने कहा है। भास्कराचार्य ने तो उसे एक विशिष्ट नाम देकर एक यन्त्ररूप में कह दिया है।

इदानीं यन्त्रोपकरणमाह—

यत् खण्डकैः स्थूलचरं पलाद्यं तद्गोकु १९ हृत् स्याच्चरशिञ्जिनीह॥२२॥

सूर्य-प्रभा टीका— जो खण्ड के प्राप्त चरार्ध पानीय पलात्मक है उसको उन्नीस से भाग देने से प्राप्त अंशादि यहाँ यंत्र में चरज्या जाने।

विशेष— चरखण्ड बनाने के लिए पलभा को १०।८।$\frac{३}{२०}$ से क्रमशः गुणा करने से चरखण्ड प्राप्त होते हैं। जहाँ पलभा ४।३० हो वहाँ चरखण्ड क्रमशः १० × ४।३० = ४५; ८ × ४।३० = ३६ तथा $\frac{१०}{३}$ × ४।३० = १५ होते हैं।

यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतनी चरज्या होती है तो ३० व्यासार्ध में कितनी होगी?

$$\text{फल} = \frac{६ \times ३०^{\circ}\ \text{चरज्या}}{\text{त्रिज्या} = ३४३८} = \text{चरज्या फल यन्त्र।}$$

$$\text{या चरज्या} = \frac{\text{चरज्या} \times १८०}{३४३८} = \frac{\text{चरज्या}}{१९} = \text{फलक यन्त्र में ज्या}$$

उपपन्न हुआ।

यहाँ स्थूल चरपल × ६ = जीवारूप होती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्योक्त प्रकार से—

$$\text{दिनार्ध में यष्टि} = \frac{(१२+\text{व्यंगुल}) \times \text{पलकर्ण} \times \text{शंकु}}{१२ \times १२}$$

$$= \frac{१२ \times \text{शंकु} \times \text{प.क.}}{१२ \times १२} + \frac{\text{व्यंगुल} \times \text{प.क.} \times \text{शं}}{१२ \times १२}$$

$$= \frac{\text{शं.} \times \text{प.क.}}{१२} + \frac{\text{व्यं.} \times \text{शं} \times \text{प.क.}}{१२ \times १२}$$

$$= \frac{\text{शं.} \times \text{प.क.}}{१२}\left(१ + \frac{\text{व्यं.}}{१२ \times ६०}\right)$$

$$= \frac{३० \times \text{प.क.}}{१२}\left(१ + \frac{\text{व्यं.}}{१२ \times ६०}\right)$$ यहाँ शंकु का मान ३० रखा है।

$$= \frac{१०}{४}\left(\text{प.क.} + \frac{\text{प.क.} \times \text{व्यं.}}{१२ \times ६०}\right) = \frac{१०}{४}(\text{पं.} + \text{इ.अंगुल})$$

इदानीं यष्टिसाधनमाह—

वेदा ४ भवाः ११ शैलभुवो १७ धृतिश्च १८
विश्वे १३ च बाणा ५ पलकर्णनिघ्नाः।
अर्कोद्धृताः स्युः क्रमशः स्वदेशे
राश्यर्धलभ्यानि हि खण्डकानि॥२३॥
तैः क्रान्तिपाताढ्यरवेर्भुजज्या षष्ट्युद्धृताक्षश्रवणेन युक्ता।
दिग्घ्नी कृतात्रा भवतीह यष्टिः सा पट्टिकायां सुषिरात् प्रदेया॥२४॥

यष्टि साधन बनाते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— निरक्ष देश में ४।११।१७।१८।१३।५ इतने चर खण्डों को पल कर्ण से गुणा तथा द्वादश से विभक्त करने से स्वदेश के चरखण्ड होते हैं। (पन्द्रह-पन्द्रह अंशों के एक-एक खण्ड होने से कुल छः खण्ड होते हैं।) एक-एक खण्ड की क्रांति पर सूर्य भुजांश की भुजज्या को ६० से विभक्त करके पलकर्ण में जोड़ने से प्राप्तफल को १० से गुणा करके (४) चार से विभक्त करने से यष्टि का मान ज्ञात होता है। पट्टिका में वह यष्टि तुल्य अंगुल छिद्र से आरम्भ करके गणना के लिए चिन्ह लगावें।

उपपत्ति— छिद्र के ऊपर जो रेखा है वह मध्य रेखा है वह ज्ञात है। यंत्र को दृङ्मण्डलाकार में रखकर उसकी कीलक की छाया उसकी परिधि में जहाँ लगे उसके तथा मध्य रेखा के बीच में जो अन्तर है वह उन्नतांश है। इनकी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्या उन्नत ज्या होती है। इसका अर्थ हुआ कि मध्यरेखा तथा छाया (यंत्र परिधि में) के बीच की अंगुलादि नाप उसकी उन्नत ज्या है। इष्टकाल पर यह उन्नतांश ज्या ही शंकु होती है। इसको पलकर्ण से गुणा करके बारह से विभक्त करने से इष्ट हृति होती है जिसको त्रिज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से इष्ट अन्त्या होती है। सूर्य के उत्तर गोल में रहने पर त्रिज्या में चरज्या युत करने से तथा दक्षिण गोल में घटाने से अन्त्या होती है। अन्त्या में से इष्ट अन्त्या घटाने से जो शेष रहता है वह नतकाल की उत्क्रमज्या होती है। उसका उत्क्रम चाप बनाकर नतकाल ज्ञात करे। यह गोल में कालज्ञान की उपपत्ति आचार्योक्त प्रकार से हुई।

अब (इसको) धूलीकर्म से यष्टि करे। जब आधि राशि तुल्य भुज हो तो द्युज्या ३४१८ होती है। एक राशि भुज की द्युज्या ३३६६ होती है। साअर्ध (डेढ़) राशि की ३२९२ तथा दो राशि की ३२१८ होती है एवं अढ़ाई ($२\frac{१}{२}$) राशि की ३१६१ होती है। तीन राशि की ३१४१ होती है।

यदि बारह अंगुल शंकु को त्रिज्या से गुणा करके इन अभीष्ट द्युज्या मानों से प्रथक्-प्रथक् विभक्त किया जाये तो सर्वत्र बारह अंगुल प्राप्त होते हैं तथा ४, ११, १७ आदि व्यंगुल होते हैं। ऊपर के बारह को त्यागने से तथा अन्य अनुपात करने से कि यदि स्व देश में इतने खण्ड को पलकर्ण से गुणा करके बारह से विभक्त करने से १५ अंश खण्ड प्राप्त होते हैं कल्पित करे यथा $\frac{४ \times \text{पलकर्ण}}{१२}$ = १५ अंश। वे खण्ड सायन अंश सूर्य भुजज्या व्यङ्गुलात्मक होते हैं। अतः १६० से विभक्त किया तथा उसको अक्ष कर्ण में युत किया। ऊपर के बारह त्याग किये को अक्षकर्ण से गुणा करके बारह से विभक्त करने से उतना अक्ष कर्ण प्राप्त होता है। इस प्रकार बारह अंगुल की इष्ट अन्त्या हो जाती है। धूली कर्म के उपसंहारार्थ ३० अंगुल शंकु में इसको परिणत करने के लिए अनुपात किया कि यदि १२ अंगुल शंकु होता है तो इतनी इष्ट अन्त्या होती है। अतः ३० अंगुल शंकु में कितनी होगी?

$$\frac{\text{इष्ट अन्त्या} \times ३०}{१२} = \frac{\text{इष्ट अन्त्या} \times १०}{४}$$ = ३० अंगुलशंकु की इष्ट अन्त्या, इसकी यष्टि संज्ञा है।

पुनः यदि ३० अंगुल शंकु यष्टि में इतनी इष्ट अन्त्या होती है तो इष्ट शंकु में कितनी होगी? यह अनुपात किया।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अतः फल इष्ट अंत्या = $\frac{\text{इष्ट शंकु} \times \text{यष्टि}}{३० \text{ अंश}}$। इसके तुल्य ही यष्टि पट्टिका में देकर उसके आगे चिन्ह लगावें।

इदानीं यष्टिप्रयोजनमाह—

धार्यं तथा फलकयन्त्रमिदं यथैव
तत्पार्श्वयोर्लगति तुल्यमिनस्य तेजः।
छायाक्षजा स्पृशति तत्परिधौ यमंशं
तत्रांशके मतिमता तरणिः प्रकल्प्यः॥२५॥
अक्षप्रोतां रविलवगतां पट्टिकां न्यस्य तस्माद्-
यष्टेरग्रादुपरि फलकेऽधश्च गोलक्रमेण।
यत्नाद्देयश्चरदलगुणस्तत्र या ज्या तयात्र
छिन्ने वृत्ते तलगघटिकाः स्युर्नता लम्बकान्ता॥२६॥

यष्टि का प्रयोजन बताते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— यन्त्र को किसी आधार पर अवलम्बित करके इस प्रकार धारण करना चाहिये जिससे यन्त्र के आगे तथा पीछे दोनों ओर तुल्य काल में सूर्य का प्रकाश पड़े। सूर्योन्मुख परिधि दृग्मण्डलाकार है तथा छिद्र में पिरोये हुए अक्ष की छाया वृत्त परिधि पर जितने अंशों पर लगे उतने अंश पर सूर्य को कल्पित करना चाहिये और अक्षप्रोत पट्टिका को रविचिन्ह पर स्थापित करे तथा पट्टिका को पूर्व में लगाये हुए यष्टि चिन्ह पर रखें। उसके ऊपर उत्तर गोल तथा उसके नीचे दक्षिण गोल में चरज्या तुल्य मान की अंगुलादि फलक पर गणना करके निशान लगावे। उस चिन्ह पर जो ज्यारेखा उस वृत्त में जहाँ लगती है उससे नीचे वृत्त में लम्बरेखा अवधि तक जितनी घटियाँ हैं उतना काल नतकाल होता है। रविचिन्ह यदि रेखा के मध्य में न हो अर्थात दो रेखाओं के मध्य कहीं पर हो तो उसके अनुसार यन्त्र में अन्य रेखा मान कर नत काल को ज्ञात करना चाहिये।

उपपत्ति— आचार्य ने उपपत्ति में कहा है। रवि उत्तरगोल में होने पर छिद्र के ऊपर की ओर तथा दक्षिण गोल में होने पर उसके नीचे चरज्या तुल्य अंगुलादि माप पर चिन्ह लगावे। यह अन्त्या अग्र होता है। इसीलिए वृत्त के व्यासार्ध में चरज्या जोड़ अथवा घटाई जाती है। अतः वह अन्त्या है। वृत्त परिधि पर जहाँ छाया लगती है उसके तथा मध्य रेखा के बीच के मध्य में शंकु

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होता है। छाया के ऊपर न्यासित पट्टि के ऊपर जहाँ यष्टि चिन्ह है उसके तथा मध्यरेखा के मध्य इष्ट अन्त्या है। अब अनुपात किया कि यदि त्रिज्याग्र पर शंकुतुल्य दूरी होती है तो यष्टिग्र पर कितनी होगी? यह दिनार्ध में अन्त्या घटाने से प्राप्त होती है। अन्त्याग्र चरज्या मध्यज्या से उत्तर गोल में ऊपर तथा दक्षिण गोल में नीचे होती है। अतः यष्टिग्र के ऊपर तथा नीचे चरज्या दान दी गई है। उसके आगे जो ज्या रेखा है उससे अवच्छिन्न (काटा गया, अलग किया गया) नीचे के वृत्तखण्ड में अवशेष बाण रूप होता है। इसकी उत्क्रमज्या का चाप नतघटी होता है। ज्यारेखा से लम्बरेखा तक जो नत घटियाँ हैं वह वृत्त में गणना करके गृहण करे।

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त श्लोक की आधारभूत बात इस प्रकार कही है। यथा–

"घटिका स्वशङ्कुभागैः पृथग्गतैर्लम्बभूसमज्यार्धत्।
साशीतिशतांशाङ्कं चक्रस्यार्ध धनुर्यन्त्रम्॥१०॥"

भास्कराचार्य ने जो श्लोक १० से १२ में चक्रयंत्र के लिए कहा है वह फलक यन्त्र से काम लेना चाहिये।

एवं छायादर्शनात् कालज्ञानमुक्त्वेदानीमेतावत्यभीष्टे काले नते क्व छाया लगिष्यतीत्येतदर्थमाह —

लम्बाद्देया विनतघटिकास्तज्ज्यकातश्चरज्या
व्यस्ता देया भवति च तथा यापरा तत्र मौर्वी।
धार्या पट्टी स्पृशति हि यथा तज्ज्यकां यष्टिचिह्नं
पट्टीस्थाने निपतति तदाक्षस्य नूनं प्रभास्य॥२७॥

इस प्रकार छाया देखकर काल ज्ञात करना बता कर अब इष्ट काल नत पर कितनी छाया लगेगी, यह कहते हैं।

सूर्य-प्रभा टीका— नीचे स्थित लम्ब तथा ऊर्ध्ववृत्त के संपात से नत घटियों की गणना करे। उसके आगे जो ज्यारेखा है उससे नीचे उत्तर गोल में और दक्षिण गोल में उससे ऊपर चरज्या तुल्य अंगुल गिन कर वहाँ चिन्ह लगावे। वहाँ जो ज्या रेखा है उससे पट्टिका स्थित यष्टि चिन्ह जैसे लगता है उसी प्रकार अक्षप्रोत (पिरोई) पट्टिका करने से पट्टिस्थान पर जिस समय अक्ष की छाया पड़ती है, यह ज्ञात करे।

उपपत्ति— यहाँ फलक यंत्र में ९० अंगुल चौड़ाई तथा इससे दुगुनि १८० अंगुल लम्बाई जो कही गई है वह सभी प्रदेशों के लिए कही गई है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्यथा जिस स्वदेश के लिए जितनी आवश्यक हो उसके लिए उतनी ही अपनी बुद्धिसे बना लेनी चाहिये। जैसे यदि वृत्तमध्य छिद्र के ऊपर परम चरज्या तुल्य रेखा और नीचे ३८ अंगुल मान लेवे। यह ४६ अंगुल मान तक की विस्तार की हो सकती है। तथा परम यष्टि तुल्य अंगुलादि ३८×२=७६ लेवे। इतने मान तक से कुरुक्षेत्र प्रदेश पर्यन्त तक के काल को ज्ञात किया जा सकता है।

अथ यष्टियन्त्रमाह—

त्रिज्याविष्कम्भार्धं वृत्तं कृत्वा दिगङ्कितं तत्र।
दत्त्वाग्रां प्राक् पश्चाद्द्युज्यावृत्तं च तन्मध्ये॥२८॥
तत्परिधौ षष्ट्यङ्कं यष्टिर्नष्टद्युतिस्ततः केन्द्रे।
त्रिज्याङ्गुला निधेया यष्ट्यग्राग्रान्तरं यावत्॥२९॥
तावत्या मौर्व्या यद्द्वितीयवृत्ते धनुर्भवेत् तत्र।
दिनगतशेषा नाड्यः प्राक् पश्चात् स्युः क्रमेणैवम्॥३०॥

अब यष्टि यन्त्र को कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— समान की हुई पृथ्वी पर त्रिज्या तुल्य अंगुल का कर्कटक (प्रकार) की सहायता से एक वृत्त बनावे तथा उसमें दिशायें अंकित करे एवं तीन सौ साठ समान भाग करे। यह क्षितिज वृत्त है। उसके मध्य (केन्द्र) में अपनी इच्छा से कल्पित त्रिज्या अंगुल संख्या से चिन्हित और सब तरफ से समान छाया हीन अर्थात सूर्याभिमुख यष्टि इस प्रकार रखी जावे जिससे स्वमार्ग में यष्टि को बढ़ाने से वह सूर्य बिंब केन्द्र में चली जाये। यष्टिग्र से नीचे क्षितिज के ऊपर लम्बशंकु होता। इस वृत्त (पूर्वलिखित) में शंकुमूल और केन्द्र के अन्तर दृग्ज्या अर्थात नतांशज्या होती है। शंकुमूल से उदयास्त सूत्र पर्यन्त लम्बरूप अन्तर भुज है। शंकुमूल से उदयास्त सूत्रपर्यन्त लम्बरूप रेखा शंकुवग्र संज्ञक है। यही शंकुतल है। (शलाका) यष्टिग्र और अग्रा के मध्य द्युज्यावृत्त में धनु जितना है वह घटिकायें हैं उतना दिन गत ज्ञात काल होता है तथा पश्चिमग्रा और यष्टि अग्र के मध्य शलाका दिन शेष घटी होता है। दिन शेष को दिनमान में से घटाने से दिनगत नाडियाँ प्राप्त होती है। इन दोनों का योग दिनमान तुल्य होता है। यदि एक दिन में द्युज्या स्थिर मानी जाय अर्थात् क्रांति स्थिर माने तब ही इस विधि से काल ज्ञान शुद्ध हो सकता है।

उपपत्ति— त्रिज्या रूप यष्टि और शंकुरूप लम्ब है का वर्गमूलान्तर नतांशज्या (द्युज्या) शंकुमूल तथा वृत्त केन्द्र का अन्तर होता है। शंकुमूल से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्वापर रेखा के ऊपर लम्ब भुज है। अग्राग्रगत (पूर्व पश्चिम दिगगत अग्राद्वयगत) रेखा उदयास्त सूत्र है। उदयास्त सूत्र और शंकुमूल का लम्बरूप अन्तर शंकुवग्र (शंकुतल) है। तब अनुपात किया कि यदि शंकु में शंकुतल तुल्य भुज प्राप्त होता है तो बारह (१२) अंगुल शंकु में क्या? इससे प्राप्त फल स्फुट पलभा होती है। इसका स्वरूप पहले कहा गया है। यहाँ नतज्या अग्राग्र बिंदु से यष्ट्यङ्गुल मान के अनुसार अंगुलात्मक प्रमाण वाली लानी है। शंकुमूल तथा यष्टिमूल के अन्तर में एक सरल शलाका रखकर उसको अंगुल से माप कर उसका मान जानना चाहिये।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु. सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"परिलिख्य वृत्तमवनौ यष्टि व्यासार्धमन्यदस्यान्तः।
स्वाहोरात्रार्धार्ध घटिका षष्ट्यङ्कितं परिधौ॥२०॥
यष्टि व्यासार्धेऽग्रा यष्ट्यग्रान्तरसमज्यया धनुषि।
घटिका द्वितीयवृत्ते यातः प्रागपरतः शेषाः॥२१॥"

सि.शे. में श्रीपति ने भी आचार्योक्त कहा है। यथा–

"संसाधिताशं कृतचक्रभागं विधाय वृत्तं समभूप्रदेशे।
त्रिज्याङ्गुलाऽङ्कां सुसमां च यष्टिं नष्टद्युतिं तज्जठरे निदध्यात्॥२१॥
तदग्रलम्बः खलु शंकुरुक्तस्तन्मूलकेन्द्रान्तरमत्र दृग्ज्या।
पूर्वापरात्तद्विवरं भुजः स्याच्छङ्क्वग्रमस्तोदयसूत्रमध्यात्॥२२॥
शंक्वग्रमर्कैगुणितं विभक्तं तल्लम्बकेन स्फुटमक्षभा स्यात्।
अग्राग्रभागान्नतभागमौर्वी कार्येह खल्वङ्गुलवृत्तजाता॥२३॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रं. के यंत्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"दिङ्मूध्यस्थितमूला यष्टिर्नष्टप्रभा त्रिगुणतुल्या।
धार्यातदीयलम्बकाष्ठांशा वोदिता भागाः॥४८॥
यष्टिस्त्रिज्या कर्णो लम्बो ना कृतिविशेषपदमनयोः।
दृग्ज्या छाया प्राक्परलम्बनिपातान्तरं बाहुः॥४९॥
प्रागपराग्रासक्तं सूत्रं शंक्वन्तरं हतं सूर्यैः(१२)।
षष्ट्यवलम्बविभक्तं यष्ट्यवलम्बेन विषुवद्भा॥५०॥"

अथान्यदाह—

यष्ट्यग्राल्लम्बो ना ज्ञेया दृग्ज्या नृकेन्द्रयोर्मध्ये।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्य बात करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— क्षितिज वृत्त केन्द्रगत यष्टि को इस तरह रखना चाहिये कि जिससे छाया रहित (नष्ट छाया) यष्टि हो। एवं यष्टिव्यासार्धोत्पन्न गोल में यष्टि के अग्र में रवि होता है। इस प्रकार नष्ट छाया की (स्थित) यष्टि के अग्र बिंदु से अर्थात् रविकेन्द्र से क्षितिज धरातल (नीचे) के ऊपर लम्ब रूप इष्ट शंकु है। यष्टि के मूल से शंकुपर्यन्त अन्तर दृग्ज्या है। शंकुमूल तथा पूर्वापर रेखा का अन्तर भुज (बाहु) है।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यंत्राध्याय में भास्करोक्त तथा विशेष कहा है। यथा–

"यष्टिस्तिर्यग्धार्यां नष्टच्छायावलम्बकः शंकुः।
दृग्ज्यान्तरमनुपातात् स्वहोरात्रार्धमग्रा च॥१६॥"

केवलदिग्ज्ञाने सत्यक्षभामाह—

उदयेऽस्ते यष्ट्यग्रप्राच्यपरामध्यमग्रा स्यात्॥३१॥
शङ्कूदयास्तसूत्रान्तरमर्कगुणं नरोद्धृतं पलभा।

केवल दिशा ज्ञान से पलभा का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— उदयास्त कालों में पूर्वोक्त प्रकार से नष्ट छाया की भांति ही यष्टि स्थापित करने से वह समग्र वृत्त में भूमि लग्न होती है। इस प्रकार यष्टग्र तथा पूर्वापर (उदयास्त) सूत्र का अन्तर त्रिज्या वृत्त में ज्यार्धवत् स्थित होता है। यह अग्रा होती है। पूर्वोक्त प्रकार से उदयास्त सूत्र से इष्ट काल शंकु होता है। शंकु से उदयास्त सूत्र के अन्तर को बारह से गुणा करके शंकु से विभक्त करने से पलभा होती है।

उपपत्ति— त्रैराशिक से यदि इतना शंकु में शंकु उदयास्त सूत्र का अन्तर शंकुतल भुज होता है तो द्वादश अंगुल शंकु में क्या? प्राप्तफल पलभा होती है। अर्थात

$$\text{पलभा} = \frac{\text{शंकुतल} \times १२}{\text{शंकु}}$$

विशेष— पूर्व श्लोक की विशेष व्याख्या देखें।

अथोद्यन्तमर्कमदृष्टवापि—

भुजयोरेकान्यदिशोरन्तरमैक्यं रविक्षुण्णम्॥३२॥
शङ्कन्तरहृत् पलभा प्रागपराशानरान्तरं बाहुः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आद्यन्त का रवि देखकर पलभा ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— एक अथवा भिन्न दिशाओं के भुज के क्रमशः अंतर तथा योग को बाहर से गुणा करके शंकु अन्तर से विभक्त करने से पलभा तथा शंकुमूल एवं पूर्वापर रेखा का अंतर भुज होता है।

उपपत्ति— अग्रा तथा शंकुतल के संस्कार (योगान्तर) से भुज होता है। अतः भुज= अग्रा ± शंकुतल। अर्थात अग्रा$_१$ + शंकुतल$_१$ = भुज$_१$ और अग्रा$_२$ – शंकुतल$_२$ = भुज$_२$ दोनों का अन्तर करने से शंकुतल$_२$ – शंकुतल$_१$ = भुजान्तर। अतः शंकुतलान्तर = भुजान्तर; शंकुअन्तर = कोटी तथा हृत्यान्तर कर्ण। इन तीनों से उत्पन्न अक्षक्षेत्र में–

$$\frac{\text{शंकु तलान्तर} \times १२}{\text{शंकु अंतर}} = \frac{\text{भुजान्तर} \times १२}{\text{शंकु अंतर}} = \text{पलभा}$$

अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

उदाहरण– ४ अंगुल पलभा वाले देश में उत्तर गोल में प्रथम शंकु ३० अंगुल दिखाई देता है तो इसका दक्षिण भुज ५ अंगुल होता है। दूसरा शंकु ३६ अंगुल दिखाईदेता है इसका दक्षिण भुज ७ अंगुल होता है। अग्रा ज्ञान से ही शंकुतल ज्ञात होता है। लेकिन भुजाग्र का जो अन्तर होगा वही शंकुतल का भी अंतर होगा। अत शंकुतल का अंतर = भुजान्तर = ७ – ५ = २ तथा शंकुओं की ऊँचाई का अन्तर = ३६ – ३० = ६ है। अतः अनुपात किया कि यदि इतना शंकु अंतर है तो इतना शंकु तलान्तर होता है। अतः बारह अंगुल में क्या होगा?

$$\frac{\text{शंकु तलान्तर} \times १२}{\text{शंकु अंतर}} = \frac{२ \times १२}{६} = ४$$

अतः पलभा का मान ४ आया। उपपन्न हुआ।

विशेष— ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त कहा है—

"प्राच्यपरशंकुतलान्तर द्वयान्तरयुतिः समान्यदिशोः।
द्वादशगुणिता विषुवच्छाया शंकुवन्तर विभक्ता ॥३०॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ. ग्रंथ के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा–

"प्रागपराग्रासक्तं सूत्रं शंक्वन्तरं हतं सूर्यैः।
षष्ट्यवलम्बविभक्तं यष्ट्यवलम्बेन विषुवद्भा॥५०॥"

सि० ४६–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सि.शे. के अध्याय १९ में श्लोक २३ में आचार्योक्त ही कहा है।

"शंक्वग्रमर्कैर्गुणितं विभक्तं तल्लम्बकेन स्फुटमक्षभा स्यात्।
अग्राग्रभागान्नतरभागमौर्वी कार्ये खल्वङ्गुलवृत्त जाता॥२३॥"

इदानीं दिग्देशकालानामज्ञाने केवलार्कदर्शनादेव सर्वमाह—

यष्ट्या शङ्कुत्रितयं ज्ञात्वा वा कथ्यते सर्वम्॥३३॥
आद्यन्तशङ्कुशिरसोस्तिर्यक् सूत्रं निबध्य तत्सक्ते।
मध्यमशङ्क्वग्राद्द्वे सूत्रे भूमिं पृथङ्नेये॥३४॥
भूचिह्नद्वितयोपरि सूत्रं तत्रोदयास्तसूत्रं स्यात्।
तत्केन्द्रान्तरमग्रा सूत्रादग्रान्तरे ततः प्राची॥३५॥
प्राग्वदतोऽक्षच्छाया तच्छ्रुतिविहताग्रकार्कसंगुणिता।
क्रान्तिज्या त्रिज्याघ्नी जिनभागज्योद्धृता दोर्ज्या॥३६॥

केवल रवि को देखकर दिग्देश तथा काल का ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या वृत्त लिखकर पूर्व की भांति यष्टि से तीन अभीष्ट काल पर शंकु ज्ञात करे। इससे सब कुछ कहे। प्रथम तथा तृतीय शंकु के अग्र को लम्बवत् सूत्र बांधकर मध्यशंकु के अग्र पर दो अन्य सूत्र बांधकर उनको भूमि पर फैलाकर (अलग करके) भूचिन्ह पर बांध देवे वह स्वउदयास्त सूत्र होता है। अर्थात मध्यशंकु के अग्र पर एक सूत्र बांध कर पहले शंकु के अभिमुख नीचे के अग्र (आधार) बिन्दु पर कर्णगत त्रिज्या वृत्त परिधि तक ले जाकर वहाँ पूर्व भाग में चिन्ह लगावे तथा वही सूत्र (या अन्य सूत्र) तीसरे शंकु के अभिमुख नीचे के अग्र (आधार) बिन्दु पर इसी प्रकार ले जाकर वृत्त के पश्चिम भाग में चिन्ह लगावें। इन चिन्हों के ऊपर होकर जाने वाला सूत्र स्व उदयास्त सूत्र होता है तथा सूत्र तथा वृत्त केन्द्र का अन्तर अग्रा होता है। उदयास्त सूत्र से अग्रा तुल्य अंतर पर केन्द्रोपरि पूर्वापर रेखा करे। उसके पश्चात् शंकु उदयास्त सूत्र अन्तर इत्यादि से पलभा ज्ञात करे।

पूर्ववत अक्षच्छाया से उसके पल कर्ण ज्ञात करके अग्रा को १२ से गुणा करके पलकर्ण से विभक्त करने से क्रांतिज्या होती है। फिर अनुपात किया कि क्रांतिज्या में त्रिज्या तुल्य दोर्ज्या होती है तो अभीष्ट क्रांतिज्या में कितनी? इस प्रकार अनुपात करने से सायन सूर्य की दोर्ज्या होती है। अर्थात—

$$\text{सूर्य दोज्या} = \frac{\text{इष्ट क्रांतिज्या} \times \text{त्रिज्या}}{\text{जिनज्या}}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार पलभा ज्ञात करके उस स्थान का ज्ञान करे।

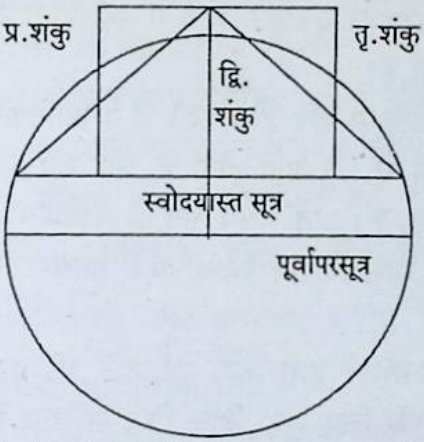

विशेष— श्रीपति ने सि.शे. के अध्याय ४ में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"अपमधनुषो मौर्व्या क्षुण्णा गृहत्रयशिञ्जिनी
जिनलवजया शिञ्जिन्याप्ता भवेद्दिनकृदगुणः।
कृतधनुरसौ तादृग्भार्धाच्च्युतोऽथ सषड्गृहो
भगणपतितः स्पष्टोऽर्कः स्यात् पदेषु चतुर्ष्वपि॥६३॥"

अथ कालज्ञानमाह—

तद्धनुराद्ये चरणे वर्षस्यार्कः प्रजायतेऽन्येषु॥
भार्धाच्च्युतः सभार्धो भगणात् पतितोऽब्दचरणानाम्॥३७॥
ऋतुचिन्हैर्ज्ञानं स्यादृतुचिन्हान्यग्रतस्ततो वक्ष्ये।
भात्रितयाद्भाभ्रमणं न सदस्माद्विक्पलाद्यं च॥३८॥
छायातोऽग्रातो वा भानुः सक्रान्तिपात एव स्यात्।
पातोनः स्फुटभानुः स्फुटभानूनो भवेत् पातः॥३९॥

अब काल ज्ञान कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— क्रांतिज्या को त्रिज्या से गुणा कर के जिनज्या से विभक्त करने से रवि भुजज्या होती है। उसका चाप प्रथम पद में मेषादि तीन राशियों में स्फुट रवि होता है, कर्क्यादि तीन राशियों में द्वितीय पद में उस चाप को छः राशि में घटाने से, तीसरे पद में तुलादि तीन राशियों में चाप में छः राशि जोड़ने से, चतुर्थ पद में मकरादि तीन राशियों में चाप को बारह राशि में से घटाने से स्फुट रवि होता है। इस प्रकार वर्ष के चरण ज्ञात करके ऋतु के चिन्ह लगावें।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्य आचार्यों ने तीन छायाओं से छाया भ्रमण से दिशा ज्ञान बताया है। लेकिन वहाँ छायाभ्रमण वृत्ताकार मार्ग में नहीं होता क्योंकि क्रांति की गति एक समान नहीं रहती है।

अग्रा तथा छाया से रवि ज्ञात करते हैं व क्रांतिपात सहित ही होती है। अतः पात कम करने से रवि प्राप्त होता है और रवि को घटाने से पात प्राप्त होता है। यह युतियुक्त है। अतः स्फुट रवि से मध्यम रवि तथा मध्यम रवि से अहर्गण ज्ञात करके उससे विलोम क्रिया करके कल्पगत वर्षादि काल को ज्ञात कर सकते हैं।

विशेष— आचार्य द्वारा कही गई रीति भी यहाँ पूर्ण सही नहीं है। कमलाकर जी ने इसके लिए शुद्ध विधि सिद्धान्त तत्त्व विवेक में कही है वह ठीक है।

श्रीपति ने सि.शे. में जो कहा है उससे लगता है कि रवि का कमलाकरोक्त शुद्ध ज्ञान श्रीपति का ही कहा हुआ है। यथा–

"आद्ये पदेऽपचयिनी पलभाल्पिका स्यात् छायाल्पिका भवति वृद्धिमति द्वितीये।
छायाधिका भवति वृद्धिमती तृतीये तुर्ये पुनः क्षयवती तदनल्पिका च॥"

ब्र.गु.ने ब्र.स्फु.सि. में आचार्योक्त ही कहा है। यथा–

"क्रांतिर्व्यासार्धगुणा जिनभागज्याहृता धनुरजादौ।
कर्क्यादौ चक्रार्धात् प्रोह्य तुलादौ समार्धेन॥६१॥
चक्रात् प्रोह्य मृगादौ स्फुटोऽसकृद् धनमृणे धनेत्वृणकम्।
अस्माद्देशान्तरयुगयुगतो मध्यमः प्राग्वत्॥६२॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के त्रिप्रश्नाध्याय में भ्राभ्रमण वृत्ताकार में होना कहा है तथा श्रीपति ने भी लल्लाचार्योक्त कहा है। यथा–

"छायात्रयाग्रभवयोर्मुखपुच्छरज्वोर्योगो यमस्य दिगुदग्द्युदलप्रभाग्रे।
यत्र ध्रुवोधनपतेर्दिगसौ भवेद्वा तन्मत्स्यपुच्छमुखरज्जुरसिद्धसिद्धौ॥२॥
यो मत्स्यपुच्छमुखनिर्गतरज्जुयोगस्तस्मात् प्रभात्रितयचिन्हशिरोऽवगाहि।
वृत्तं लिखेन्न विजहाति हितस्य रेखां छाया कुलस्थितिमविमलवंशजा स्त्री॥३॥
अग्रेषु चिन्हानि विधाय वृत्तैर्मिथोऽवगाहैर्लिखितैस्तु तेभ्यः।
तिमी भवेतां मुखपुच्छसक्ते रज्जू प्रसार्यावन योर्युतिर्या॥४४॥
ततश्च चिन्ह त्रयसक्तवृत्तं यल्लिख्यते भाग्रपरिभ्रमः सः।
अतोऽन्यथा बाहुखमध्य भासां न्यासाद्भवेच्छंकुपरिभ्रमः सः॥४५॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शंकोर्दिशां मध्यगतस्य भाग्रं रेखां न जह्यात् खलु भाभ्रमः सः।
शंकुभ्रमेण भ्रमतश्च शंकोश्छायाग्रमाश्रागणयोगचिन्हम्॥४६॥''

श्रीपति ने सि.शे. के अध्याय ४ में—

''छायात्रयग्रोद्भवमत्स्यमध्यस्पृक्सूत्रयोर्यत्र युतिः प्रदेशे।
याम्योत्तरा शंकुतलात् ककुप सा क्रमेण सौम्येतरगोलयोः स्यात्॥४॥
मत्स्योदरद्वयगसूत्र युतेश्च तस्या भाग्रत्रयस्पृगिति यद्भवतीह वृत्तम्।
छाया न तत्परिधिमुज्झति मध्यशङ्कोर्मध्यस्य भागमिव साधुगतिः कथंचित्॥५॥
शंकु प्रभाभ्रमणमण्डलयोस्तु मध्यं मध्यप्रभा भवति दक्षिणमुत्तरं वा।$\frac{१}{२}$।''

इदानीं धीयन्त्रं विवक्षुरादौ तत्प्रशंसामाह—

अथ किमु पृथुतन्त्रैर्धीमतो भूरियन्त्रैः स्वकरकलितयष्टेर्दत्तमूलाग्रदृष्टेः।
न तदविदितमानं वस्तु यद्दृश्यमानं दिवि भूवि च जलस्थं प्रोच्यतेऽथ स्थलस्थम्॥४०॥

धीयंत्र के लिए कहने से पूर्व उसकी प्रशंसा—

सूर्य-प्रभा टीका— वृहद् ग्रंथों में कहे हुए अनेकों यन्त्रों का लाभ बुद्धि तन्त्र के उपयोग से होता है। अतः अपने हस्त में पकड़ी हुई यष्टि के मूल भाग से आगे की ओर दृष्टि करके आकाशस्थ कोई भी वस्तु अविदित नहीं रहती अर्थात् उसका ज्ञान हो सकता है। बुद्धि के उपयोग से (भूलोक) आकाश, पाताल तथा स्थल पर स्थित कोई वस्तु दृश्य होकर उनके बारे में जाना जा सकता है।

अत्र प्रश्नः—

वंशस्य मूलं प्रविलोक्य चाग्रं तत्स्वान्तं तस्य समुच्छ्रयं च।
यो वेत्ति यष्ट्यैव करस्थयासौ धीयन्त्रवेदी वद किं न वेत्ति॥४१॥

प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— बांस के मूल तथा आगे अग्रभाग को देखकर, उससे दृष्टा के बीच (मध्य) की दूरी तथा (बांस) उसकी ऊँचाई अपने हस्तस्थ यष्टि से जो जान सकता है वह क्या नहीं जान सकता?

अथ यष्ट्या ध्रुववेधेन पलभामाह—

यष्ट्यग्रमूलसंस्थं विद्ध्वा ध्रुवमग्रमूलयोर्लम्बौ।
बाहुर्लम्बान्तरभूर्लम्बोच्छ्रायान्तरं कोटिः॥४२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोटिर्द्वादशगुणिता बाहुविभक्ता पलप्रभा ज्ञेया।

यष्टि से ध्रुव के वेध द्वारा पलभा ज्ञान कहते हैं—

सूर्य-प्रभ टीका— समान की हुई भूमि पर स्थित होकर गणक को वेध करना चाहिये। यष्टि के अग्रभाग तथा मूल भाग की सीध में जब ध्रुव लगे ऐसे यष्टि को धारण करना चाहिये। इस स्थिति में यष्टि के मूल तथा अग्रभाग से पृथ्वी पर लम्ब डाले। इन लंबों की ऊंचाई का जो अन्तर है वह कोटि है तथा भूमि पर जो उन लंबों के पात बिन्दुओं का अन्तर है वह भुज है। और यष्टि प्रमाण कर्ण है। अब अनुपात किया कि इतनी बाहु में इतनी कोटि होती है तो बारह अंगल में कितनी होगी? प्राप्तफल पलभा होगी।

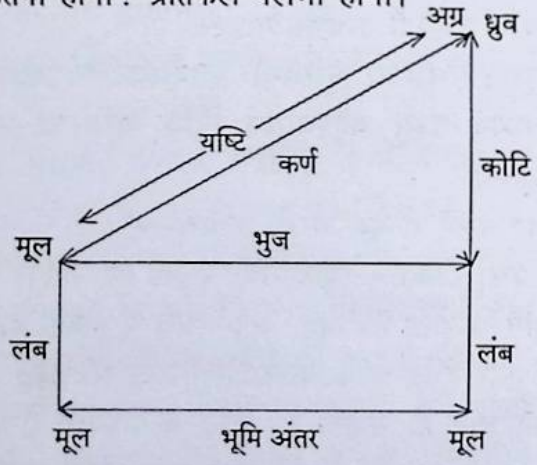

अनुपात से

$$\frac{\text{कोटि}}{\text{भुज}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$$

$$\text{या पलभा} = \frac{\text{कोटि} \times १२}{\text{भुज}}$$

यहाँ कोटि = लम्बान्तर तथा भुज = लम्ब मूलांतर = भूमि अंतर

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के यंत्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"दिङ्मध्य स्थितमूला यष्टिर्नष्ट प्रभा त्रिगुणतुल्या।
धार्या तदीयलम्बकाष्ठांशा वोदिता भागाः॥४८॥
यष्टिस्त्रिज्या कर्णो लम्बो ना कृतिविशेषपदमनयोः।
दृग्ज्या छाया प्राक्परलम्बनिपातान्तरं बाहुः॥४९॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रागपराग्रासक्तं सूत्रं शङ्क्वन्तरं हतं सूर्यैः।
षष्ट्यलम्बविभक्तं यष्ट्यवलम्बेन विषुवद्भा॥५०॥"

इदानीं वंशादिवेधमाह—

विद्ध्वैवं वंशतलं दृष्ट्युच्छ्रायाहताद्बाहोः॥४३॥
कोट्या लब्धं ज्ञेयं स्ववंशमध्ये महीमानम्।
विद्ध्वाथो वंशाग्रं भूमानं कोटिसंगुणं भक्तम्॥४४॥
दोष्णा वंशेच्छ्रायो दृष्ट्युच्छ्रायेण संयुतो ज्ञेयः

उदाहरणम्—

पञ्चशक्राङ्गुला १४५ यष्टिरष्टषष्टिर्दृगुच्छ्रयः।
षट् करास्तलवेधो दोः कोटिः सप्तदशाङ्गुला
अग्रवेधे रसेशा ११६ दोः कोटिस्तुरगकुञ्जराः ८७।
वंशस्य यस्य तन्मानं चात्मवंशान्तरं वद।

अब बांस के वेध को कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— सीधे खड़े हुए बांस के तल को वेध करे। स्वयं तथा बांस के बीच अन्तर भूमि भुज है। दृष्टी की ऊँचाई कोटी है। दृष्टी तथा बांस के मूल से बद्ध सूत्र कर्ण है। इस प्रकार पूर्वोक्त प्रकार से यष्टि से वेध करने से लंबांतर = भुज तथा लम्बोच्चाई = कोटि। यह तलवेध करने से हैं इसी प्रकार अग्रवेध करने से दृष्टा की ऊँचाई जितना बांसमूल से ऊपर बांस पर चिन्ह लगावे। उसका दृष्टि से अन्तर भूत भूमिअंतर है। बांस के ऊपर पूर्वोक्त चिन्ह से ऊपर का भाग कोटि है। दृष्टि तथा बांस के अग्र भाग को बांधने वाला सूत्र कर्ण है। इस प्रकार इनसे अनुपात करे कि यदि वेध भुज में वेध कोटि प्राप्त होती है तो भूमि भुज में कितनी? प्राप्तफल चिन्ह के ऊपर बांस का खंड होगा। उसमें दृष्टा की ऊँचाई जोड़ने से पूरे बांस की ऊँचाई ज्ञात हो जावेगी।

वंशतल वेध करने पर—

$$\frac{\text{बाहु} \times \text{दृष्टा की ऊँचाई}}{\text{अपने तथा बांस के मध्य भूमिगत दूरी}} = \text{कोटि}$$

यहाँ अनुपात किया है कि यदि इतनी कोटि में इतना भुज प्राप्त होता है तो इतने दृग्ऊँचाई कोटि में कितनी होगी?

$$\text{अथवा आत्मवंशांतर} = \frac{\text{बाहु} \times \text{दृष्टा की ऊँचाई}}{\text{कोटि}}$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वंश अग्र का वेध करने से पूर्वोक्त प्रकार से–

$$\text{चिन्होपरि बांस खण्ड} = \frac{\text{वेध कोटि} \times \text{भुज भूमि}}{\text{वेध भुज}}$$

चित्र से स्पष्ट करते हैं। उदाहरण–

यष्टि = १४५, दृष्टा की ऊँचाई = ६८, अतः तल वेध से बाहु = १४४। यहाँ कोटि = १७ होती है।

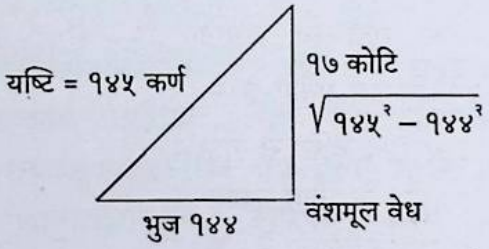

$$\text{कोटि} = \sqrt{१४५^२ - १४४^२} = १७$$

$$\text{चिन्होपरि वंशखंड} = \frac{\text{वेध कोटि} \times \text{भुज भूमि}}{\text{वेध भुज}}$$

$$\text{आत्म वंशांतर} = \frac{१४४ \times ६८}{१७} = ५७६$$

अग्रवेध से भुज = ११६, यष्टि = १४५

$$\text{अतः कोटि} = \sqrt{१४५^२ - ११६^२} = ८७$$

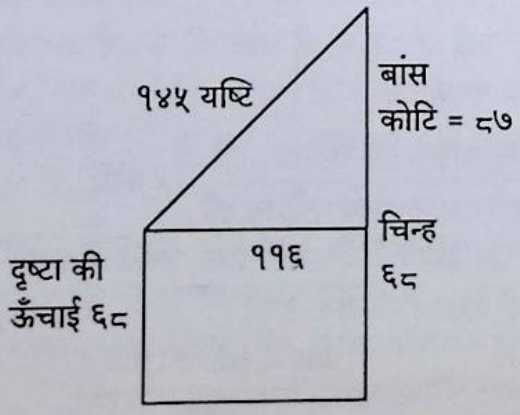

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चिन्होपरिगत बांस खंड = $\frac{५७६ \times ८७}{११६}$ = ४३२

अतः बांस की समस्त लंबाई = ४३२+६८ =५०० हस्त

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यंत्राध्याय में पलभा, गृहोच्चई, वंशोच्चाई ज्ञान की अनेक विधियाँ दी हैं जो यष्टि यंत्र के द्वारा ज्ञात की जा सकती है। आचार्योक्त प्रकार से एक विधि दी है जो इस प्रकार है। यथा–

"लब्धोनो दृग्लम्बो दृग्लम्बादग्रलम्बके हीने।
अधिकेऽधिको गृहौच्च्यं तलाग्रके बिद्धया दृष्ट्या॥३५॥"

ब्र.गुप्तोक्त यह विधि इस प्रकार है—

इष्ट यष्टि की मूलस्थ दृष्टि से गृहादि के अग्र को वेध करना। यष्टि के मूल और अग्र से भूमि के ऊपर लम्ब डालना चाहिये। यष्टि के मूल से जो लम्ब होगा वह दृग्लम्ब कहलाता है। भू को लंबोच्च के अन्तर से गुणा कर लम्ब निपान्तर से भाग देने से जो लब्धि हो उसको दृग्लम्ब में से हीन करे यदि दृग्लम्ब से अग्रलम्ब न्यून हो तब। अग्रलम्व से दृग्लम्ब न्यून हो तब जोड़ने से गृहादि/वंशादि का औच्य (ऊँचाई) प्रमाण होता है। एवं तलवेध से भूमिज्ञान और अग्रवेध से औच्च्यज्ञान होता है।

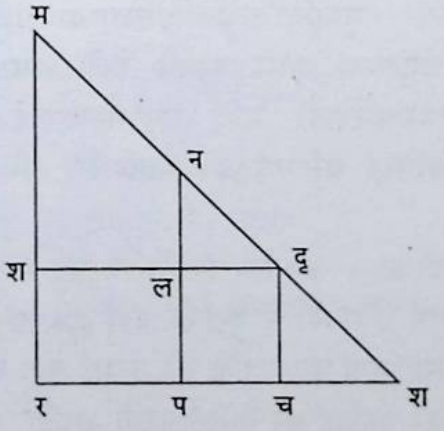

चित्र में दृ न = यष्टि। दृ = दृष्टि स्थान। र म = गृहाद्योच्च। दृच = शर = दृष्ट्युच्छ्राय = दृग्लंब। न प = यष्ट् यग्र से लंब। न ल = लम्ब मूलांतर। प च = लंब निपांतरम् = दृल। तब मशदृ तथा नलदृ दोनों त्रिभुज सजातीय होने से अनुपात किया :—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\frac{\text{लम्बान्तर} \times \text{भू}}{\text{लंब निपांतर}} = \text{म श}।$$

अतः म श + श र = म श + दृग्लंब = म र = गृहोच्च्य।

रच = दृश = आत्मगृहान्तर भूमि = भू।

यहाँ दृग्लंब से अग्रलंब अधिक है।

यह आचार्योक्त प्रकार ही है। अतः आचार्योक्त की उपपत्ति भी है।

अथ केवलाग्रवेधेनाह—

अग्रं विध्वोर्ध्वस्थः पुनरुपविष्टश्च तद्विद्ध्येत्॥४५॥
निजभुजभक्ते कोटी तदन्तरहतो दृगौच्च्यविश्लेषः।
भूमिर्वंशौच्च्यमतः पृथक् पृथक् पूर्ववज्ज्ञेयम्॥४६॥

बांस के केवल अग्रवेध से आत्मवंशान्तर तथा भूमि ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— खड़े होकर बांस का अग्रभाग यष्टि के द्वारा वेध करे पुनः बैठ कर उसका वेध करे। प्राप्त कोटियों में स्व-स्व भुज का भाग देकर फलांतर में दृगोच्च अन्तर से भाग देकर आत्म वंशान्तर भूमि तथा पृथक्-पृथक् खड़े होकर तथा बैठकर वेध से संबंधित भुज कोटि से पूर्ववत् भूमान को कोटि से गुणा इत्यादि के द्वारा वंशोच्चाई वंशमान तुल्य ज्ञात करे।

अत्र प्रश्नः—

ऊर्ध्वस्थस्य गृहादिभिर्व्यवहितस्याप्यग्रमात्रं सखे
वंशस्य प्रगुणस्य यस्य सुसमे देशे समालोक्यते।
अत्रैव त्वमवस्थितो यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं
मन्ये यन्त्रविदां वरिष्ठपदवीं यातोऽसि धीयन्त्रवित्॥४७॥

प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— ऊर्ध्वस्य ग्रहादि के अग्र भाग को सुसमान की हुई भूमि से अलग-अलग स्थितियों में देखकर यहाँ कहे अनुसार अवस्थित होकर यदि कोई उनका अन्तर तथा उस ग्रहादि की ऊँचाई बता दे तो हे मित्र, आचार्य कहते हैं कि वे उसको यंत्रविद की वरिष्ठ पदवी अर्थात 'धीयन्त्रवित्' (यन्त्रविद बुद्धिवाला) से अलंकृत मानेंगे।

उदाहरणम्—

इष्टयष्ट्योर्ध्वसंस्थेन वंशाग्रं विध्यता भुजः।
दृष्टश्चतुष्करोऽथान्ययष्ट्या खाङ्काङ्गुलः सखे॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निविष्टेन तथा कोटिरङ्गुलं वेधयोरपि।
आत्मवंशान्तरं ब्रूहि वंशोच्छ्रायं च वेधवित्॥

उदाहरण—

सूर्य-प्रभा टीका— खड़े होकर (ऊर्ध्व) वेध करने पर भुज ९६, कोटि १ तथा बैठकर वेध करने पर भुज ९०, कोटि १ होता है। इनमें इष्ट दृगुच्चाई ७२ तथा २४ क्रमशः है। आचार्य कहते हैं उक्त प्रकार से करने से भूमान २८८० हस्त तथा बांस की ऊँचाई ३३ हाथ होती है।

आचार्योक्त उदाहरण व्याख्यानुसार माना कि आत्मवंशान्तर भू है। अतः अनुपात किया कि यदि ऊर्ध्व वेध करने पर ९६ भुज में (१) इतनी कोटि प्राप्त होती है तो भु आत्मवंशांतर भुज में कितनी होगी? फल $\frac{\text{भु}}{९६}$। इसी प्रकार बैठकर वेध करने पर फल $\frac{\text{भु}}{९०}$ अतः—

$$७२ + \frac{\text{भु}}{९६} = २४ + \frac{\text{भु}}{९०}$$

$$\frac{६९१२ + \text{भु}}{९६} = \frac{२१६० + \text{भु}}{९०}$$

$$\frac{\text{भु}}{९६} + \frac{६९१२}{९६} = \frac{\text{भु}}{९०} + \frac{२१६०}{९०}$$

$$९०\ \text{भु} + ६२२०८० = ९६\ \text{भु} + २०७३६०$$

$$६\ \text{भु} = ६,२२,०८० - २,०७,३६० = ४,१४,७२०$$

$$\text{भु} = ४१४७२० \div ६ = ६९१२०\ \text{अंगुल}$$

एक हाथ = २४ अंगुल होता है। अतः—

$$\text{भु} = \frac{६९१२०}{२४} = २८८०\ \text{हस्त}।\ \text{आचार्योक्त उपपन्न हुआ।}$$

$$\text{चिन्होपरिगत खण्ड} = \frac{२८८० \times १}{९०} = ३२$$

अतः वंशोच्चाई = ३२+१ = ३३ हस्त आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— आचार्योक्त प्रकार ही का ग्रहोच्चानयन ब्र.गु. ने ब्रु.स्फु. सि. के यन्त्राध्याय में कहा। उसका विशेष रूप आचार्य ने कहा है। ब्रह्मगुप्तोक्त इस प्रकार है—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"मित्वा गृहैएदेशं विद्धेवष्ट शलाकया गृहं सर्वम्।
प्रथमशलाकाभक्तं मितं द्वितीय गुणितमौच्च्यम्॥३७॥"

इसका अर्थ इस प्रकार है—

जिस धरातल में लम्बरूप ग्रहादि है उसी धरातल में ऊर्ध्वाधराकाल अंगुलादि से अंकित एक शलाका स्थापित करे। दृष्टि को उसी धरातल में किसी स्थान पर रखकर नलिका या अन्य यष्टि से ग्रहादि का एक प्रदेश जिसकी ऊँचाई विदित है को वेध करे। नलिका वा अन्य यष्टि शलाका में जहाँ लगती है वहाँ से शलाका मूलपर्यंत प्रथम शलाका संज्ञक है। शलाका मूल दृष्टि स्थान का अन्तर यष्टि समझनी चाहिये। पुनः उसी स्थान स्थित दृष्टि से ग्रहाग्र को एक यष्टि से वेध करे। यह यष्टि पूर्व शलाका में जहाँ लगती है वहाँ से शलाका मूल पर्यन्त द्वितीय शलाका संज्ञक है। गृहादि के एक प्रदेश का प्रथम शलाकावश से गणना कर धारण करे। इष्ट शलाका से गृहोच्च को वेध कर द्वितीय शलाका समझे। तब ग्रह के प्रदेश के औच्च को द्वितीय शलाका से गुणा कर प्रथम शलाका से भाग देने से गृहोच्च होता है।

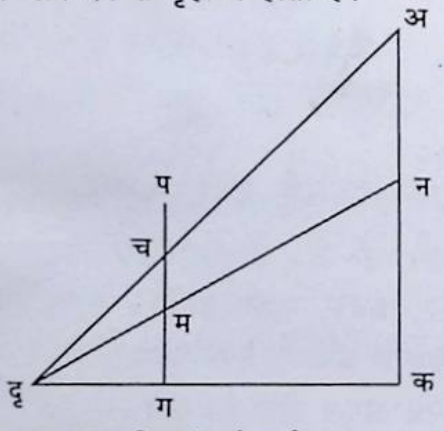

चित्र में– अ क= गृहादि की ऊँचाई। ग प = शलाका। दृ= दृष्टि स्थान। क न = ज्ञात ऊँचाई। क दृ = भूमि= भू। म ग= प्रथम शलाका। च ग= द्वितीय शलाका। ग दृ= दृष्टिसंज्ञक दृ। अब क न दृ तथा ग म दृ दोनों त्रिभुज सजातीय होने से अनुपात किया तो

$$\frac{\text{ज्ञात ऊँचाई} \times \text{दृ}}{\text{प्रथम शलाका}} = \text{भूमि} = \text{भू}$$

इसी प्रकार अकदृ तथा चगदृ दोनों त्रिभुज सजातीय होने से अनुपात किया–

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

$$\frac{\text{द्वितीय शलाका} \times \text{भू}}{\text{दृ}} = \text{गृहोच्च्वाई}$$

$$\text{अतः गृहोच्च्वाई} = \frac{\text{द्वितीय शलाका} \times \text{ज्ञात ऊँचाई} \times \text{दृ}}{\text{प्रथम शलाका} \times \text{दृ}}$$

$$= \frac{\text{द्वितीय शलाका} \times \text{ज्ञात ऊँचाई}}{\text{प्रथम शलाका}}$$

इस उदाहरण के साथ पूर्व श्लोक में कथित ब्र. गुप्तोक्त उदाहरण भी आचार्योक्त यहाँ कथित उदाहरण व श्लोक के अनुरूप है। अतः दोनों की सहायता से समझने का प्रयास करें।

अथ जलान्तर्वेधमाह—

एवं तोयेऽप्यौच्च्यं तत्र दृगौच्च्योनितं भवति।
किंवा यष्ट्या कोटी दृष्ट्युच्छ्रायो जलान्तरे बाहू॥४८॥

जल के अन्दर वेध—

सूर्य-प्रभा टीका— इसी प्रकार जल में खड़े हुए बांस की ऊँचाई में से उसकी दृगोच्चाई को कम करके यष्टि वेध द्वारा जलमध्य में कोटि, दृष्टि ऊँचाई तथा बाहु को ज्ञात करे।

अत्र प्रश्नः—

दूरस्थस्य न दूरगस्य यदि वादृष्टस्य दृष्टस्य वा
वंशस्य प्रतिबिम्बितस्य सलिले दृष्ट्वाग्रमात्रं सखे।
अत्रैव त्वमवस्थितौ यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं
त्वां सर्वज्ञमतीन्द्रियज्ञमनुजव्याजेन मन्ये भुवि॥४९॥

प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— पास खड़ा दृष्टा यदि अपनी दूर दृष्टि पर दिखाई देते हुए अर्थात् बिना व्यवधान के जल में बांस के अग्रभाग को देखता है। हे मित्र! यदि ऐसे में तुम वहाँ स्थित हो तो उनकी अन्तर (दृष्टि तथा बांस की) दूरी तथा बांस की ऊँचाई बता दो तो आचार्य कहते हैं कि तुम मनुष्य शरीरधारी को वे संपूर्ण पृथ्वी पर सर्वज्ञ तथा अति इन्द्रिय ज्ञान से सम्पन्न मानेंगे।

उदाहरणम्—

दृष्टा चेत् त्र्यङ्गुला कोटिर्बाहुश्च चतुरङ्गुलः।
ऊर्ध्वस्थेनोपविष्टेन बाहुरेकादशाङ्गुलः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोटिरष्टाङ्गुला तोये वंशाग्रं विध्यता सखे।
त्र्येकहस्तौ दृगुच्छ्रायौ वंशोच्च्यं चान्तरं वद॥

उदाहरण—

सूर्य-प्रभा टीका— जल में प्रतिबिंबित बांस की ऊर्ध्ववेध से कोटि = ३। भुज = ४ तथा बैठकर वेध करने से कोटि = ८ व भुज = ११ एवं दृष्टी ऊँचाई या क्रमशः ७२ व २४ होती हैं तो आत्मवंशांतर (८८ हस्त) तथा वंशोच्चाई (६३ हस्त) ज्ञात करके बताओ। ऊर्ध्ववेध तथा बैठकर वेध करने से यष्टि के भिन्न मान होते हैं।

उपपत्ति— समातल की हुई भित्ति (दीवार) पर एक लम्ब रेखा खेंचे। वह जल से समतल की हुई भूमि की भांति है। उसके एक छोर पर खड़ी रेखा खेंचे। वह वंश है। बांस के मूल से नीचे की ओर जाति हुई वंश प्रमाण की एक अन्य रेखा खेंचे। वह वंश प्रतिबिंब है। भू रेखा से ऊपरी छोर पर दृष्टि उच्छ्रित तुल्य और एक अन्य रेखा खेंचे। दृष्टि ऊँचाई से वंश प्रतिबिंब तक जाने वाली एक कर्ण रेखा खेंचे। यह कर्ण रेखा भूरेखा से जहाँ लगे (काटे) उस स्थान पर जल में वंशाग्र पर दृष्टा देखता है। इस प्रकार जल के दोनों ओर दो त्रिभुज बनते हैं। वहाँ एक में जल वंशमूल का अंतर बाहु है। वंश प्रतिबिम्ब कोटि है। कर्ण का नीचे का भाग कर्ण है! अन्य त्रिभुज में आत्मजलान्तर बाहु है। दृष्टि ऊँचाई कोटि है। कर्ण का ऊर्ध्वखण्ड कर्ण है। ये दोनों त्रिभुज परस्पर सजातीय है जो यष्टि वेध करने से भुज कोटि से वे सजातीय हैं (तुल्य हैं)। किन्तु यहाँ जितनी दृष्टि की ऊँचाई है उसको बांस की ऊँचाई में से हीन करना युक्तियुक्त है। प्रतिबिंब उसके अधोमुख होने से दृग्गोच्चति सहित वह नाप आती है। अतः दृष्टि ऊँचाई को बांस की ऊँचाई में से घटाना है। इस प्रकार सभी उपपन्न होता है। उदाहरण के अंकों द्वारा पूर्व श्लोक के उदाहरण की भांति गणना करके आत्म वंशांतर ८८ हस्त तथा वंशोच्चाई ६३ हस्त ज्ञात कर सकते हैं।

किंवा यष्ट्येत्यस्योदाहरणम्—

षडङ्कैरमरैस्तुल्यान्यङ्गुलान्यथवा क्रमात्।
आत्मतोयान्तरं दृष्ट्वा वंशौच्च्यं चान्तरं वद॥

सूर्य-प्रभा टीका— ऊर्ध्वस्थान से जलान्तर = ९६। बैठकर वेध करने से जलान्तर = ३३। दृष्टि ऊँचाई क्रमशः ७२ तथा २४। इनसे गणना करने पर भूभान = ८८ हस्त तथा वंशोच्चति = ६३ प्राप्त होती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह आचार्योक्त (धी यंत्र) बुद्धि यंत्र है।

अथ स्वयंवहमाह—

लघुदारुजसमचक्रे समसुषिराराः समान्तरा नेम्याम्।
किंचिद्वक्रा योज्याः सुषिरस्याधः पृथक्ः तासाम्॥५०॥
रसपूर्णे तच्चक्रं द्व्याधाराक्षस्थितं स्वयं भ्रमति।

स्वतः भ्रमण शील (स्व चलित) यंत्र को कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— लघु काष्ठमय गांठ तथा कील रहित खरादी हुई लडकी से चक्र यन्त्र बनावे। जिसके आराओं में समान छिद्र हो तथा समानान्तर हो। उस चक्र यन्त्र के मुद्रित छिद्र हैं तथा आधी पारे से पूर्ण परिधि है। इस यन्त्र के मध्य में एक तिर्यक् कील लगानी चाहिये। चक्र को शाण चढ़ाने वाले चक्र की तरह दो आधार पर रखना चाहिये क्योंकि आराओं के छिद्र में पारा ऊपर और नीचे घूमता है, इसलिए उससे खिंचता हुआ चक्र स्वतः (बराबर) अनवरत भ्रमण करता है।

आचार्य ने चक्र में सम प्रमाण के समछिद्र के समान तौल के समानान्तर पर आराओं को नेमी (परिधि) में जोड़कर नदी के (पानी बहने के घुमाव) हिलोड़ की तरह एक ही ओर सभी को जोड़ने के लिए कहा है। फिर उन आराओं के छिद्रों को पारे से आधा ही भरना चाहिये जिससे मुद्रित आरा के अग्र भाग वाला वह चक्र शाण चढ़ाने के चक्र के सदृश दो आधारों पर स्थित होकर स्वतः घूमता है।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.सफु. सिद्धान्त के यंत्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"लघुदारुमयं चक्रं समसुषिरान्तर पृथगराणाम्।
अर्धोन रसेन पूर्णे परिधौ संश्लिष्टकृतसन्धिः॥५३॥
तिर्यक्कीलोमध्ये द्व्याधारस्थोऽस्य पारदो भ्रमति।
छिद्राण्युर्ध्वमधोऽतश्चक्रमजस्रं स्वयं भ्रमति॥५४॥"

लल्लाचार्य ने शि.धी.वृ.ग्रंथ के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त ही कहा है। यथा—

"श्रीपर्णीदारुमयं चक्रं सदरं सुनेभि सन्नाभि।
अर्धं पारदपूर्णं युक्त्याराणां स्वयं भ्रमति॥१८॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथान्यदाह—

उत्कीर्य नेमिमथवा परितो मदनेन संलग्नम्॥५१॥
तदुपरि तालदलाद्यं कृत्वा सुषिरे रसं क्षिपेत् तावत्।
यावद्रसैकपार्श्वे क्षिप्तजलं नान्यतो याति॥५२॥
पिहितच्छिद्रं तदतश्चक्रं भ्रमति स्वयं जलाकृष्टम्।

अब इस यंत्र के लिए विशेष बात कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— यंत्र की परिधि को सभी ओर से भ्रमयंत्र (खराद यंत्र) से इस प्रकार ठीक करना चाहिये कि छिद्र की ऊँचाई और विस्तार दो अंगुल रह जाय। इसके पश्चात् उस छिद्र के ऊपर ताल पत्रादि को चिपका देवे। चक्र को दो आधार अक्ष (आधार धुरि) पर स्थापित करके ऊपर परिधि में ताल पत्र को वेध कर छिद्र में पारे को तब तक भरना चाहिये जब तक छिद्र का नीचे का भाग पारे से मुद्रित (छिप) हो जाय। फिर एक (बगल) पार्श्व में जल डाले, जल से पारा गुरुत्व के कारण चारों तरफ नहीं निकल सकता। अतः वह चक्र जिसमें छिद्र मुद्रित है जल से खिंच कर स्वयं भ्रमण करता है।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के यन्त्राध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"छिद्रे स्वधिया क्षिप्ता समं यथा पारदं भ्रमति।
कालासममिष्टमानैश्चक्रसमुत्तानमूर्ध्व वा॥५५॥"

अथान्यदाह—

ताम्रादिमयस्याङ्कुशरूपनलमस्याम्बुपूर्णस्य॥५३॥
एकं कुण्डजलान्तर्द्वितीयमग्रं त्वधोमुखं च बहिः।
युगपन्मुक्तं चेत् कं नलेन कुण्डाद्बहिः पतति॥५४॥
नेम्यां बद्ध्वा घटिकाश्चक्रं जलयन्त्रवत् तथा धार्यम्।
नलकप्रच्युतसलिलं पतति यथा तद्घटीमध्ये॥५५॥
भ्रमति ततस्तत् सततं पूर्णघटीभिः समाकृष्टम्।
चक्रच्युतं तदुदकं कुण्डे याति प्रणालिकया॥५६॥

और अन्य विशेष बात कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— ताम्बा आदि धातुमय अंकुशरूप टेढ़ा किये हुए जल से भरे हुए नल के एक सिरे को जल पात्र में तथा दूसरे सिरे को बाहर, यदि एक ही समय में खोल देते हैं तब सम्पूर्ण जल जो पात्र में है नल के द्वारा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बाहर गिर जाता है। जैसे कमल के नल को जलकुण्ड में छोड़ने से जल संपूर्ण छिद्र के एक अग्र को अधोमुख भाण्ड (जलपात्र) से बाहर यदि शीघ्र धरते हैं तो सम्पूर्ण भाण्डस्थित जल नल के द्वारा बाहर चला जाता है। परिधि में घटी को बांध कर जल यन्त्रवत् दो आधाराक्ष संस्थित इस तरह रखना चाहिये जिससे नलक से गिरा हुआ जल उसके घटी मुख में पतित हो। इस प्रकार पूर्ण घटी से खिचे हुए (आकृष्ट) उसके भ्रमण को कौन रोक सकता है।

विशेष— ब्र.गु. ने ब्र.स्फु. सि. के यन्त्राध्याय में आचार्यात्त कहा है। यथा—

"कीलस्योपरिगामिनि तत्पर्यय सूत्रके धृतमलाबु।
प्राग्वन्नलके प्रक्षिप्य नाडिका स्रवति पानीये॥५६॥"

इदानीमन्येषां स्वयंवहमुपहसन्नाह—

यदधोरन्ध्रनलं तत् सापेक्षत्वात् स्वयंवहं ग्राम्यम्।
चतुरचमत्कारकरी युक्तिर्यन्त्रं नहि ग्राम्यम्॥५७॥
एवं बहुधा यन्त्रं स्वयंवहं कुहकविद्यया भवति।
नेदं गोलाश्रितया पूर्वाक्तत्वान्मयाप्युक्तम्॥५८॥

अब स्वचलित अन्य यन्त्रों के लिए कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— नीचे छिद्र से सम्पूर्ण जल समाप्त (निकल जाने) हो जाने पर जल पात्र में जल फिर से भरना पड़ता है अतः यह स्वचालित यंत्र ग्राम्य यंत्र है। यह चमत्कारकारी युक्ति का यंत्र नहीं होने से यह ग्राम्य यंत्र है। इस प्रकार के स्व चलित अनेक यंत्र है जो जादू की विधाओं के हो सकते हैं। लेकिन वे गोलाश्रित नहीं है। उन यंत्रों का उल्लेख आचार्य ने पूर्व में समय-समय पर कर दिया है जिनको अन्य आचार्यों ने पूर्व में स्वग्रंथों में कहा है।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के यन्त्राध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ ऋतुवर्णनम्

आचार्य ने यहाँ अपने काव्य पाण्डित्य का प्रदर्शन जरूर किया है लेकिन इससे ग्रंथ में ऋतुसंबंधी विवेचन आवश्यकता के अनुसार नहीं हो सका है। आचार्य ने ग्रंथ में स्थान-स्थान पर गर्वभरे शब्दों का प्रयोग कर अपने पूर्वज गुरुओं का अपशब्दों द्वारा अपमान किया है। यहाँ भी अपने गर्विले स्वभाव का प्रदर्शन आचार्य ने किया है। श्रीमान कमलाकरभट जी ने भी आचार्य द्वारा प्रदर्शित काव्य पाण्डित्य को उचित नहीं बताया है। उन्होंने स्वकृतग्रंथ 'सिद्धान्त तत्त्व विवेक' में इसके लिए इस प्रकार कहा है–

"त एव कवयो येऽत्र गोलतत्त्वार्थकल्पकाः।
कुकाव्य पाठका एव कवयो न कथञ्चन॥१८॥
शृङ्गारपदलालित्यग्रन्थासक्तया विषंत्विदम्।
वासनाशास्त्रमज्ञानां, चामृतं तद्विदां सताम्॥१९॥
प्राचीनरीतिभिन्नेऽस्मिन् मूर्खो निन्दां करिष्यति।
न दुःखं तेन मे यस्माज्ज्ञातारो कहवो भुवि॥२०॥

– उपसंहाराधिकार

इसकी वासनाभाष्य में श्री गङ्गाधर शर्मा ने कहा है कि जो स्वर्णकार आभूषण निर्माण में तो अनभिज्ञ हो और अन्य शिल्पकला में निपुण हो अथवा अपने आपको निपुण बतावे वह अपने विषय के शिल्प का ज्ञाता नहीं कहा जा सकता है। आचार्य ने इस ऋतुवर्णन के काव्य कला में शार्दूलविक्रीडित पहलापद्य, दूसरापद्य द्रुतविलम्बित, तीसरा मिश्रोपजात्य, चतुर्थ वंशस्थ, पञ्चम मालिनीछन्द, छठा तथा सात्वाँ वसन्ततिलक, आठवाँ मालिन्या, नवाँ वंशस्थ तथा १३ से १५ मालिनीछन्द पद्य कहे हैं। गणित संबंधी विषय तथा उसके ज्ञाता के लिए शृंगाररस की महत्वता नहीं है। गणित में कोई भी बात जितनी स्पष्टता से कही जावे वह उतनी ही प्रशंसनीय होती है। कोई भी गणित शास्त्र पूर्व में शृङ्गाररस की कविताओं के रूप में नहीं रचा गया है।

वसन्त ऋतु से लेकर चैत्रादि मास को ही परिगणित किये जाते हैं। मधु और माधव को लेकर वसन्त ऋतु, शुक्र और शुचि को लेकर ग्रीष्म ऋतु, नभ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और नभस्य को लेकर वर्षा ऋतु, इष और ऊर्ज को लेकर शरत् ऋतु, सह और सहस्य को लेकर हेमन्त ऋतु, तप और तपस्य को लेकर शिशिर ऋतु होती हैं। इन सब वाक्यों में ऋतु शब्द में द्विवचन लगा है। ये सब ऋतु के अवयव के अभिप्राय हैं। ये ऋतुयें क्रमानुसार आवर्तित होती हैं तथापि संवत्सर के उपक्रम के रूप में वसन्त को पहला ऋतु कहा गया है। ऋतुओं का मुख वसन्त है। मनुवाक्यों में वसन्त से ऋतुओं का प्रारम्भ हुआ है। ये वसन्तादि ऋतु दो प्रकार की होती है– चान्द्र तथा सौर। चैत्रमास से लेकर चान्द्र ऋतु होती है। "मधुश्च माधवश्च" वाक्य से यह स्पष्ट है। यहाँ मधु प्रभृति शब्द चैत्र प्रभृति शब्दों का पर्याय है। विद्वान लोग चैत्रमास को मधु, वैशाख को माधव, ज्येष्ठमास को शुक्र, आषाढ़ मास को शुचि, श्रावणमास को नभ, भाद्रपद मास को नभस्य, आश्विन मास को इष, कार्त्तिक मास को ऊर्ज मार्गशीर्ष मास को सह, पौषमास को सहस्य, माघमास को तप, फाल्गुन मास को तपस्य कहते हैं। आचार्य ने इस अध्याय में ऋतुओं के मासों के लिए इन्हीं नामों में से कुछ का प्रयोग किया है।

चैत्र प्रभृति मासों को लेकर वसंत प्रभृति ऋतुओं की प्रवृत्ति होती है। चन्द्रगति के अनुसार चैत्र प्रभृति मासों की प्रवृत्ति होने से उनको चन्द्र कहते हैं।

सौर गतिअनुसार मीन और मेष के सूर्य में वसन्त, वृषभ मिथुन के सूर्य में ग्रीष्म, कर्क-सिंह के सूर्य में वर्षा, कन्या तुला के सूर्य से शरद ऋतु तथा वृश्चिक धनु के सूर्य में हेमन्त ऋतु होती है तथा कुंभ मकर में शिशिर ऋतु होती है।

आचार्योक्त काव्य पद्यों का अर्थ हम करके बताते हैं जिससे स्पष्ट हो जावेगा की आचार्योक्त काव्य पद्यों से ऋतुओं के संबंध में स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सकता।

अथ ऋतुवर्णनमाह—

उत्फुल्लन्नवमल्लिकापरिमलभ्रान्तभ्रमद्भ्रामरे
रे प्रान्थाः कथमव्यथानि भवतां चेतांसि चैत्रोत्सवे।
मन्दान्दोलितचूतनूतनघनस्फारस्फुरत्पल्लवै-
रुद्वेलन्नववल्लरीष्विति लपन्त्युच्चैः कलं कोकिलाः॥१॥

सूर्य-प्रभा टीका— मन्द-मन्द आन्दोलित आम्रवृक्षों के सघन प्रसार से स्फुरित (चमकते) पल्लवों से उद्वेलित (कम्पित) हो रही नव वल्लरियों पर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बैठे कोकिल ऊँचे स्वर में (यही) कूंजन कर रहे हैं कि– 'हे (प्रियाओं से बिछुड़े) पथिकजनों! फूलों से लदी नवमल्लिका के परिमल (पराग) से भ्रान्त होकर उड़ते भ्रमर-समूह से सुशोभित (इस) चैत्रोत्सव (वसन्त ऋतु) में भ तुम लोगों के चित्त व्यथारहित कैसे हैं?

(अनुप्रास अलंकार) (शार्दूलविक्रीडित)

स्वकुसुमैर्मलिनामिव मालतीमवहसन्ति वसन्तजमल्लिकाः।
उपवनं विनिवारयतीव ताः किसलयैर्मलयानिलकम्पितैः॥२॥

सूर्य-प्रभा टीका— वसन्त ऋतु में खिले हुए अपने नव कुसुमों से वासन्ती मल्लिका लताएँ पुष्परहित (हो जाने वाली) मालती लताओं का मानो उपहास कर रही हैं– यह देखकर पुष्पोद्यान मलयानिल से कम्पित हो रहे किसलयों (नव पल्लवों) के बहाने से उन्हें (ऐसा करने से) रोक रहा है।

(उत्प्रेक्षा एवं अनुप्रास अलंकार)

विहाय सौधं तृणकुड्यमण्डपे प्रसिच्यमाने सलिलैः समन्ततः।
शुचौ रमन्ते विरलं विलासिनः प्रियाजनैः सीकरसेचनोन्मुखाः॥३॥

सूर्य-प्रभा टीका— (ग्रीष्म ऋतु में) अपने भवनों को छोड़कर चारों ओर से पानी से सींचे जाते हुए फूस के छप्परों वाले मंडपों में बैठकर विलासी लोग प्रियाओं के साथ (फव्वारों के) जल-बिन्दु-सिंचन की क्रीडा की ओर (अधिक) उन्मुख रहते हैं और (परस्पर) विरल (अनमने) भाव से रमण करते हैं।

(अनुप्रास अलंकार)

निदाघदाहार्तिविघातहेतवे वनाय कामोच्छ्रितचूतकेतवे।
व्रजन्ति वापीजलकेलिलालसाः शुचौ रतिस्वेदगलज्जलालसाः॥४॥

सूर्य-प्रभा टीका— रति-श्रम से टपकते स्वेद-बिन्दुओं के कारण सुस्त हो जाने के कारण बावड़ियों के (शीतल) जल में क्रीड़ा की लालसा रखने वाले विलासी युवक-युवतियाँ विहार के लिए उस वन में चले जाते हैं, जो ग्रीष्म की कड़ी धूप के दाह से उत्पन्न व्याकुलता को नष्ट करने के हेतु (कारण) हैं और अत्यन्त सघन ऊँचे आम्रवृक्ष की पताकाओं (चिह्नों) वाले हैं।

(अनुप्रास ओर पादयमक की शब्दालंकार संसृष्टि)

मदनदहनखिन्नामागतेऽप्येत्य काले
परिमलबहलानां मालतीनां नदीनाम्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अदय दयित सिञ्चस्यात्मदृग्वारिणा किं
परिमलबहलानां मा लतीनां न दीनाम्॥५॥

सूर्य-प्रभा टीका— अत्यधिक परिमल (गंध) से महकती मालती लताओं और अत्यधिक मात्रा में चारों ओर फैले मल से युक्त (उफनती) नदियों का समय (वर्षाकाल) आ जाने पर (परदेस से) भी घर आकर हे दयाहीन प्रियतम (दयित)! तुम काम की ज्वाला से तप्त, विरह दुःख से हीन और सौरभ की बहुलता से महकती मालती जिसे सूर्यकिरणों की तरह जलाती हैं ऐसी मुझको अपने दर्शन रूपी जल से क्यों नहीं सींचते? (मुझ विरहिणी के काम-तप्त हृदय को इस वर्षाकाल में घर आकर अपने दर्शन से ही शीतलता प्रदान क्यों नहीं करते?)

अनुप्रास, चरणयमक एवं शब्दश्लेष की शब्दालंकार संसृष्टि)

उच्चैर्विरौति हि मयूरकुलं यदम्ब
मन्दं कदम्बमकरन्दविमिश्रितश्च।
वातः प्रवाति पतिरेति न तेन मन्ये
निर्घ्राणनिर्घृणविकर्णविहृत्त्वमस्य॥६॥

सूर्य-प्रभा टीका— हे माता! वर्षा ऋतु है। मोरों का झुंड ऊँचे स्वर में झूमकर केका ध्वनि कर रहा है। प्रफुल्लित कदम्ब-पुष्पों के मकरंद-रस से सराबोर (सुगंधित) पवन भी मंद-मंद बह रहा है। फिर भी मेरा पति (परदेस से लौटकर) यदि (घर) नहीं आता है तो मुझे लगता है कि वह गंध-ग्रहण (घ्राण) की शक्ति से रहित है, दयाभाव से रहित (निष्ठुर) है, बहरा है और हृदयहीन है।

(अनुप्रास) (वितर्क)

एवं विधं विरहिणी विरहेण खिन्ना
भिन्नाञ्जनच्छविघने गगने घनर्तौ।
मत्वा प्रियं तमदयं हृदयं प्रविष्टं
ब्रूते सपेशलमलं परिहासमिश्रम्॥७॥

सूर्य-प्रभा टीका— वर्षाकाल है। घुटे हुए अंजन जैसी सघन छवि से युक्त गगन है। ऐसे समय प्रिय-विरह से व्यथित प्रोषित पतिका विरहिणी (परदेस में होते हुए भी अपने निर्दय प्रिय को अपने हृदय में प्रविष्ट मानकर) इस प्रकार के (पिछले श्लोक में कहे गये) वचन बड़े मधुर ढंग से, हँसी-ठिठोली करते

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हुए कहती है (ताकि उसका हृदयास्थित प्रिय कहीं सुन भी ले तो नाराज़ न हो)।

(अनुप्रास अलंकार)

स्वतनुजवनराज्या पुष्पवत्याश्लिषन्त्या
ह्यनुचितकृतसङ्गोऽस्मीति शैलोऽनुतप्तः।
निशि शशिकरचञ्चन्निर्झरैरश्रुकल्पैः
शरदि हृदिजखेदस्वेदवान् रोदितीव॥८॥

सूर्य-प्रभा टीका— 'मेरी ही तनुजा (बेटियाँ) ये लता पंक्तियाँ, जो फूलों से सजी हैं, इस 'पुष्पवती' (रजस्वला) अवस्था में मुझसे ही आलिंगन कर रही हैं, अतः इनसे अनुचित (निन्दनीय/शास्त्रविरूद्ध) संग जैसा पाप मुझसे हो गया है, इस विचार से (पश्चात्ताप के कारण) अनुतप्त और हृदय में उत्पन्न असह्य दुःख से जन्मे स्वेद से सिक्त यह शैल (शिलावान् या शीलवान्) (पर्वत) शरद्ऋतु की रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से प्रतिबिम्बित होकर झलमिलाते झरनों के आँसुओं के समान जल-कणों के बहाने से मानों रूदन कर रहा है।

(अनुप्रास, श्लेष एवं उत्प्रेक्षालंकार)

सहस्यकाले बहुशस्यशालिनीं चितामवश्यायकमौक्तिकोत्करैः।
प्रहृष्टपुष्टाखिलगोकुलामिलां विलोक्य हृष्यन्त्यधिकं कृषीवलाः॥९॥

सूर्य-प्रभा टीका— हेमन्त (सहस्य) ऋतु में तुषार (हिम) कण-रूपी मोतियों की लड़ियों से खचित (आच्छादित) विपुल धान्य से समृद्धिशालिनी और अत्यंत हर्षित, हृष्ट-पुष्ट समस्त गो-समूहों (गाय-बैल-बछड़ों) से भरी-पूरी धरती को देखकर किसान अत्यधिक प्रसन्न हो रहे हैं (खुशी से फूले नहीं समा रहे हैं)।

(अनुप्रास, रूपक अलंकार)

अरुणनीलनिमीलितपल्लवं प्रचुरफुल्लसमुल्लसनैः श्रियम्।
वहति कांचन काञ्चनकाननं नवतरां नितरां शिशिरागमे॥१०॥

सूर्य-प्रभा टीका— शिशिर ऋतु के आगमन पर लाल-नीले रंगों की मिश्रित छटा वाले पल्लवों से सुशोभित कचनारों का कानन (या सुवर्ण का वन) प्रचुर मात्रा में खिले पुष्पों के समुल्लास के कारण कोई अत्यन्त अद्भुत और नूतन शोभा को धारण कर रहा है।

(तृतीय चरण में यमक। अन्यत्र अनुप्रास)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपटुतिग्ममरीचिमरीचिभिर्नहि तथा शिशिरे शिशिरक्षतिः।
निशि यथोष्मलपीनघनस्तनी भुजनिपीडनतः स्वपतां नृणाम्॥११॥

सूर्य-प्रभा टीका— शिशिर ऋतु में ताप देने (या शीत-शमन करने में) असमर्थ (दुर्बल) सूर्य की किरणों से शिशिर (ठंड) की वैसी क्षति नहीं हो पाती, जैसी (ठंडी) रातों में सोये हुए पुरुषों को गरमाहट देने वाले (ऊष्मल), पुष्ट, पीन (स्थूल) और घने उरोजों वाली युवती प्रिया की भुजाओं के प्रगाढ आलिंगन (निपीड़न) से होती है।

पूर्वार्ध में यमक अलंकार।

ऋतुव्यावर्णनव्याजादीषदेषा प्रदर्शिता।
कविता तद्विदां प्रीत्यै रसिकानां मनोहरा॥१२॥

सूर्य-प्रभा टीका— ऋतुओं के स्वरूप-वर्णन के बहाने से मैंने काव्यतत्त्वज्ञों की प्रीति (प्रसन्नता) के लिए रसिकों की मनोहारिणी कविता की यह थोड़ी-सी बानगी ११ पद्यों में प्रदर्शित की है।

सरसमभिलपन्ती सत्कवीनां विदग्धानव-
रतरमणीया भारती कामितार्थम्।
न हरति हृदयं वा कस्य सा सानुरागा
नवरतरमणी या भारती कामितार्थम्॥१३॥

सूर्य-प्रभा टीका— सत्कवियों की सरस और अपरिमित अर्थ का कथन करने वाली, अनवरत (नित्य) रमणीय और सहज विदग्ध (प्रौढ) ऐसी कौन-सी वाणी है जो किसी का हृदय नहीं हर लेती? (अर्थात् सबका मन हर लेती है।) ऐसे ही अनुरागमयी, नव-सुरत में रमणयोग्य ऐसी कौन-सी भरतसंबंधिनी (भारती) नर्तकी है जो सरस और अभीष्ट कथन करके किसी का मन आकर्षित नहीं करती?

(दोनों प्रकार की भारतियाँ (वाणी और नर्तकी) रसिकजनों के हृदय हर लेती हैं।)

न भवति हृतचित्तो वाचमाकर्ण्य रम्यां
परभृतसरसां ना कोमलां सत्कवीनाम्।
सततमुपगतानां साम्बुजैर्वा पयोभिः
परभृतसरसां नाकोऽमलां सत्कवीनाम्॥१४॥

सूर्य-प्रभा टीका— जिस प्रकार कमलों से सुशोभित जल से परिपूर्ण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सरोवरों के निरंतर समीप रहने वाले जल विहंगों की सुकोमल कूंजनमयी बोली को सुनकर किसका चित्तहरण नहीं होता (अर्थात् जलपक्षियों का कलरव सबका चित्त हर लेता है।) उसी प्रकार कौन ऐसा मनुष्य है जो सत्कवियों की रमणीय, कोकिल-कूंजन से भी अधिक सरस और निर्मल (दोषरहित) काव्य-वाणी को सुनकर प्रसन्नचित्त नहीं हो जाता? अर्थात् श्रेष्ठ कवियों की रम्य, सरस और निर्दोष कविता सबका मन हर लेती है।

त्रिदिवमधरयन्तस्तीरपङ्केन नानारुचि-
रसिकतया वाश्लेषिताङ्गैः सुवृत्तैः।
कृतिन इह रमन्ते रम्यसारस्वतौघे रुचि-
रसिकतया वा श्लेषिताङ्गैः सुवृत्तैः॥१५॥

सूर्य-प्रभा टीका— इस लोक में कृती (पुण्यवान्) पुरुष सुरम्य सरस्वती (शास्त्रवाणी) के प्रवाह में, उसके तीर के पंक की अनेक कान्तियों से झिलमिलाती सिकता (बालू) से लिपटे अंगों और अच्छे आचरणों से स्वर्ग को तुच्छ सिद्ध करते हुए क्रीडा करते हैं–

जैसे सुकृती (रससिद्ध) कविगण अपनी मौलिक रुचि-रसिकता के साथ सुन्दर छंदों में निबद्ध तथा श्लेषयुक्त काव्यांगों द्वारा रमणीय सारस्वत प्रवाह (काव्योक्ति-सलिलराशि) में रमण करते हैं।

(१३,१४,१५वें पद्यों में श्लेष, पादयमक एवं अनुप्रास अलंकारों की शब्दालंकार-संसृष्टि। मालिनी छंद)

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के ऋतुवर्णनाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी टीका सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अथ प्रश्नाऽध्यायः

अथ प्रश्नाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादौ तदारम्भप्रयोजनं तत्प्रशंसां चाह—

प्रौढिं प्रौढसभासु नैति गणकः प्रश्नैर्विना प्रायशोऽ-
तस्ताम् वच्मि विचित्रभङ्गिचतुरप्रीतिप्रदानाय यान्।
आकर्ण्यापि सुवर्णवर्णवदनं वैवर्ण्यमेति क्षणात्
तस्याखर्वकुगर्वपर्वतशिरः प्रौढ्याधिरूढोऽत्र यः॥१॥
पाट्या च बीजेन च कुट्टकेन वर्गप्रकृत्या च तथोत्तराणि।
गोलेन यन्त्रैः कथितानि तेषां बालावबोधे कतिचिच्च वच्मि॥२॥

अब प्रश्नाध्याय की व्याख्या करते हैं। आरम्भ में इस अध्याय का प्रयोजन तथा उसकी प्रशंसा के संबंध में कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— ज्योतिष की परिपक्व बुद्धि वाला गणक किसी भी ज्योतिषज्ञों की सभा में प्रश्न ज्ञान के बिना प्रौढ़ ज्योतिष विज्ञ नहीं कहला सकता। इसलिए आचार्य विचित्र-विचित्र प्रकार के प्रश्नों को चतुर बुद्धिवालों को प्रसन्नता प्रदान करने के लिए यहाँ कहेंगे। इन प्रश्नों को सुन कर जिन ज्योतिषविदों के चहरे (तथा शरीर) की कांति सुवर्ण की आभा के समान है उनके चेहरे का रंग (भाव) क्षणभर में क्षीण हो जाता है तथा उनका भी जो ज्योतिष के ज्ञान में अपंग समान तथा छोटे कद के होते हुए भी (जिनका) कुत्सित गर्व अर्थात् घमंड से पर्वत के समान सिर ऊँचा करके प्रौढ़ ज्योतिषि के पद पर आरूढ़ है।

गोल व यन्त्रों, पाटी गणित, बीजगणित और कुट्टक तथा वर्ग प्रकृति से संबंधित कुछ प्रश्नों तथा उनके उत्तरों को यहाँ कहेंगे।

अथ बुद्धमतः प्रशंसामाह—

अस्ति त्रैराशिकं पाटी बीजं च विमला मतिः।
किमज्ञातं सुबुद्धीनामतो मन्दार्थमुच्यते॥३॥
वर्गं वर्गपदं घनं घनपदं संत्यज्य यद्गण्यते
तत् त्रैराशिकमेव भेदबहुलं नान्यत् ततो विद्यते।
एतद्यद्बहुधास्मदादिजडधीधीवृद्धिबुद्ध्या बुधै-
र्विद्वच्चक्रचकोरचारुमतिभिः पाटीति तन्निर्मितम्॥४॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नैव वर्णात्मकं बीजं न बीजानि पृथक् पृथक्।
एकमेव मतिर्बीजमनल्पा कल्पना यतः ॥५॥

अब बुद्धिमान व्यक्ति की प्रशंसा में कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— त्रैराशिक, पाटीगणित, बीज गणित और विमल बुद्धि गणित है। सूर्य सिद्धान्तादि शास्त्रों में पाटी गणित, बीज गणित का प्रतिपादन क्यों नहीं किया है? जो मनुष्यकृत है उसके प्रतिपादन के लिए कहते हैं कि सुबुद्धी वाले के लिए क्या अज्ञात है जो मन्दबुद्धि है उनके लिए कहा जाता है। मयासुर प्रभृति जैसे बुद्धिमानों के लिए क्या अज्ञात होता है? अतः उनके लिए पाटी गणित आदि विषय अज्ञात नहीं थे। अतः आर्ष ग्रंथों में उन विषयों को नहीं कहा गया। इस मूल प्रश्न के प्रतिपादन के लिए कहते हैं कि मनुष्य ऐसे लोगों की अपेक्षा मन्द बुद्धि है अतः उनकी बुद्धि की वृद्धि के लिए पाटी, बीज गणित आदि आचार्य कह रहे हैं। इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है।

वर्ग, वर्गपद, घन, घनपद आदि वर्णात्मक नहीं है अतः बीज से विशुद्ध करते हैं। बीजगणित को बुद्धि के द्वारा विविध वर्णों की सहायता से करते हैं। मनुष्यों के लिए पाटी, बीज, कुट्टक वर्ग प्रकृति, गोल, यन्त्र आदि ग्रंथ विमल बुद्धि के द्वारा प्रश्न श्रवणमात्र से उनके उत्तर प्रतिपादित करते हैं। जो मंद बुद्धि हैं वे जैसा सुनने से ग्रहण करता है उसके अर्थ को उत्तर में प्रतिपादित करता है। पाटी, बीज, वर्ग प्रकृति, कुट्टक आदि के दृष्टांतों के द्वारा ग्रह गणित प्रतिपादित कर अवम शेष आदि राशि से दूसरी राशि ज्ञात करते हैं। ग्रह गणित गोल में जो प्रतिपादित किये हुए प्रश्न हैं उनको पुनः प्रतिपादित करने के लिए केवल प्रश्नाध्याय का यहाँ पाठकों के उपयोग के लिए कहा जा रहा है।

त्रैराशिक अनेक भेद युक्त हैं उनको अन्य किसी गणित के द्वारा ज्ञात नहीं किया जा सकता।

अथ प्रश्नानाह—

अहर्गणस्यानयनेऽर्कमासाश्चैत्रादिचान्द्रैर्गणकान्विता किम्।
कुतोऽधिमासावमशेषके च त्यक्ते यतः सावयवोऽनुपातः ॥६॥

अब प्रश्न करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण आनयन में सौर मासों में चैत्रादि चान्द्रमास

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्यों जोड़े गये हैं और अधिमास अवशेष को क्यों त्याग दिया गया है। सावयव अनुपात क्यों किया गया है?

विशेष— यह श्लोक गोलाध्याय के प्रश्नाध्याय का श्लोक १५ ही है जिसको आचार्य ने दुबारा शब्दशः कह दिया है। कृपया वहाँ पर इसी की पूर्ण व्याख्या देखें।

अथान्यमाह—

चन्द्रश्चन्द्रगुणो रवी रविगुणश्चाङ्गारकोऽङ्गाहत-
स्तद्योगो गुणसंगुणात् सुरगुरो राश्यादिकात् पातितः।
शेषं चापरपर्ययोत्थखचरेणोनं युतं वा शनिः

अन्य प्रश्न करते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— चन्द्र को एक से गुणा करे, रवि को १२ से गुणा करे, मंगल को छः से गुणा करे। इन सबके योग को ३ से गुणा करके सुरगुरु बृहस्पति की राश्यादि में से घटावे। शेष बचे उसको ग्रह कल्पित ग्रह भगण से प्राप्त ग्रह में से घटाने अथवा जोड़ने पर शनि ग्रह प्राप्त होता है। आचार्य कहते हैं (पूछते हैं) कि यदि मिश्रक गणित में तुम्हारी निपुणता है तो बताओ अन्य भगण संख्या कितनी है?

अथास्य भङ्गः—

स्यात् केऽन्ये भगणा वदेति तव चेदस्ति श्रमो मिश्रके॥७॥
उद्देशकालापवदेव कार्यं योगान्तराद्यं ग्रहपर्ययाणाम्।
दृष्टस्य चक्राणि तदूनितानि तैरूनितं तत् क्रमशो विधेयम्॥८॥
अज्ञातखेटः स्मृणं कृतश्चेदज्ञातचक्राणि भवन्ति तानि।
क्वहाः प्रदेया अविशुद्धशुद्धौ क्वहैश्च तक्ष्यं कुदिनाधिकं चेत्॥९॥

इस प्रश्न का समाधान—

सूर्य-प्रभा टीका— उद्देश कालाप में जिस प्रकार ग्रहों का योगान्तर कहा गया है उसी प्रकार उन ग्रहों के युगभगणों का भी योगान्तर करना चाहिये। इस प्रकार यदि राशि युगकुदिन से अधिक हो तो उसको युग कुदिन से भाग देवे। प्रयोजन न होने के कारण प्राप्तफल को छोड़ देवे तथा शेष को ही ग्रहण करे। दूसरे भगण से प्राप्त राश्यादिफल यदि धन हो तो युग कुदिन में से शेष को घटावें। यदि राश्यादिफल ऋण हो तो उसे युगकुदिन में जोड़ देवे। इस प्रकार जो फल प्राप्त हों उनको यदि अन्य भगणफल ऋण हो तो दृष्ट इष्ट ग्रह के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युगभगण से घटा देवे और यदि अन्य भगण फल धन हो तो युग भगण में जोड़ देवे। इस प्रकार अन्य भगण होते हैं। आचार्य ने इसको एक उदाहरण द्वारा समझाया है।

उदाहरण— माना यहाँ रवि के ३ भगण, चन्द्र के ४, मंगल के ५, गुरु के ७ तथा शनि के ९ हैं तथा कल्प कुदिन ६० हैं। अहर्गण २३ है। इस कल्पित अहर्गण से साधित ग्रह इस प्रकार हैं–

रवि १।२४, चंद्र ६।१२, मंगल ११।०, गुरु ८।६, शनि ५।१२।

अब प्रश्नानुसार १२×सूर्य+६×मं.+१×चं. = १२× (१।२४)+६×(११।०) + १×(६।१२) = सू ९।१८+चं. ६।१२+मं.६।०

इन सबका योग ९।१८+६।१२+६।०= २२÷१२=१०।०।०

तीन गुणा गुरु में से इस योग को घटाने से=३×८।६–१०।०=२४।१८ – १०।० = ०।१८ – १०।० = २।१८ प्राप्त हुआ।

अब अज्ञात भगण ज्ञात करने के लिए उक्त प्रकार से योग वियोग करने पर–

र चं मं गु श

३+४+५+७+२–१०=२१–१०=११ प्राप्त हुआ।

इस में से शनि भगण घटाये तो ११ – ९ = २

यदि अन्य भगण ऋण है तो उन २ भगणों में ग्रह स्पष्ट ९।६ है। इसको पूर्व प्राप्त २।१८ में से घटाने से शनि= २।१८ – ९।६ = ५।१२। इसको अज्ञात ग्रह धन है तो शनि भगणों में कुदिन जोड़ने तथा ११ घटाने से अन्य भगण= ९+६०–११=५८

इस प्रकार के भगणों में प्राप्त ग्रह २।२४ होंगे। इनमें पूर्व शेष जोड़ने पर शनि= २।२४+२।१८=५।१२ प्राप्त हुआ।

उपपत्ति— युगग्रह भगण में इष्ट गुणगुणित कुदिन जोड़ने या घटाने से जो प्राप्त होता है उस पर से राश्यादिग्रह वही होता है, क्योंकि युगग्रहभगण को अहर्गण से गुणाकर युगकुदिन से भाग देने से इष्ट समभगण करके युत हीन पूर्व भगण होते हैं और भगण शेष भी पूर्वतुल्य ही होता है। इसलिए यहाँ इष्ट गुणगुणित ग्रह भगणों के योग या अन्तर कुदिन से अधिक हो तो कुदिन से भाग देने से, शेष ही को ग्रह भगण मानना चाहिये जिससे राश्यादिकग्रह अभीष्ट गुणगुणित ग्रहयोग या अन्तर ही उपपन्न होता है। यदि अन्य भगण ग्रहधन है

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तो अन्य भगण युत शेष दृष्टग्रह भगण तुल्य होता है। इसलिए शे+अभ=इभ
अभ = इभ − शे = इभ +युकुदि −शे।

ऐसे ही जब अन्य भगणोत्पन्न ग्रह ऋण हो तब−

शे − अभ = इभ

अभ =शे − इभ = शे+युकुदि − इभ

अतः आचार्योक्त उपपन्न हुआ।

विशेष— आचार्योक्त प्रकार ही ब्र.गु. ने ब्र.स्फु.सि. के मध्यगत्युत्तराध्याय में कहा है। यथा−

"इष्ट गुणकारगुणित ग्रहभगणैक्यान्तरं यथाऽभिहितम्।
कृत्वाकुदिनैर्भजेत् शेषोनयुतानि कुदिनानि॥३४॥
यद्यन्यभगणलब्धं धनर्णमिष्टग्रहस्य युगभगणैः।
अन्यफलमृण धनं चेदूनयुतान्यन्य युगभगणाः॥३५॥"

वटेश्वराचार्य ने व.सि. के प्रश्नविधि अध्याय १० में इसी प्रकार के अन्य प्रश्न कहे हैं। यथा−

"द्वित्रिगुणयो रवीन्द्वोर्योगादष्टोद्धृताज्ञ हीनाद्यात्।
आनयतीष्टद्युचरं करामलकवत्स वेत्सि मध्यगतिम्॥१३॥
नवधी गोहत भूमिज गुरुशनि योगाद् दिगीशगुणिताताभ्याम्।
ज्ञसिताभ्यां युक्ताद् यो वेत्तीष्टखगं स तन्त्रज्ञः॥१४॥
रवि शशि कुज बुधयोगः पृथक् पृथक् त्रिगुणितैश्च तैर्हीनः।
युक्तो वा तद्योगात् स्वधनगुरुं वेत्ति यः स यन्त्रज्ञः॥१५॥
सर्वग्रहयोगो वा सप्तगुणैस्तैः पृथक् पृथग्युक्तः।
हीनो वा तद्योगात् के सर्वे स्वधनगुरवः॥१६॥
दशगुणितः शीतांशुस्त्रिगुणेन युतोऽन्यपर्ययाप्तेन।
विदाहतेन मिश्रः शनिर्विहीनोऽथवान्य भगणाः के॥१७॥
भौमस्त्रिभुजाभ्यस्तस्त्रिगुणगुरुनोऽन्यभगणलब्धेन।
हीनो रविः समतो मन्दो वाऽन्यग्रहभगणाः के॥१८॥"

श्लोक १३ व १४ की युक्ति के लिए आचार्य ने स्वकृत वटेश्वर सि. के मध्यमाधिकार के सर्वतोभद्र नामक अध्याय ४ में इस प्रकार कहा है। यथा−

"द्वयोर्बहुनामथवा यथेच्छया हतोदधृतानां युतिरन्तरं तथा।
सपर्ययाणां हतमिष्ट वर्ययैर्ग्रहस्तथा भूत भसंघ भाजितम्॥४३॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इसका अर्थ है– इष्टगुण गुणित दो भगणादि ग्रहों का योग या अन्तर उद्दीष्ट हो तथा इष्टहर से भक्त दो भगणादि ग्रहों का योग या अन्तर उद्दिष्ट हो अथवा इष्टगुण गुणित बहुत भगणादि ग्रहों का योग या अन्तर उद्दिष्ट हो तथा इष्टहर से विभक्त बहुत ग्रहों का योग या अन्तर उद्दिष्ट हो तो उन सब को इष्टग्रह (साध्य ग्रह) के युग भगण से गुण देना चाहिये और इष्ट गुण गुणित ग्रहद्वय के भगणा योग वा अन्तर से भाग देना चाहिये तथा इष्टहर भक्त ग्रहद्वय के भगणयोग व अन्तर से भाग देना चाहिये इष्टगुण गुणित बहुत भगणादि ग्रह के भगण योग वा अन्तर से भाग देना चाहिये तथा इष्टहर भक्त बहुत ग्रहभगणों के योग या अन्तर से भाग देना चाहिये तब इष्टग्रह होता है।

इष्टगुण गुणित ग्रहद्वय को योग करके स्थापित करे। उस गुणक से इष्टग्रह के युग भगण को गुणा करे और इष्टगुण गुणित दोनों ग्रहों के भगण योग से भाग देने से इष्टग्रह होते हैं। इसी तरह बहुत ग्रहों को भी जानना चाहिये।

इसकी उपपत्ति रूप में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि यदि इष्टगुण गुणित दो ग्रहों के भगण योग या अन्तर में इष्ट ग्रह युगभगण पाते हैं तो उस इष्टगुणक से गुणित ग्रहद्वय योग या अन्तर में क्या? इस अनुपात के द्वारा इष्टग्रह आते हैं। इसी प्रकार बहुत ग्रहों के योगान्तर में भी अनुपात से इष्ट ग्रहसाधन होता है तथा यदि इष्ट हार से विभक्त भगणद्वय के योग या अन्तर में इष्टग्रह युगभगण पाते हैं तो इष्टहार विभक्त ग्रहद्वय के योगान्तर में क्या? इस अनुपात से इष्ट ग्रह आते हैं। इसी प्रकार बहुत से ग्रहों के लिए होगा।

इस प्रकार यह युक्ति आचार्य ने बहुत विस्तार से इस अध्याय में कही है। विस्तारमय से यहाँ सभी को नहीं दे रहे हैं कृपया वटेश्वर सिद्धान्त का अवलोकन करें।

इसी प्रकार ब्र.गु. ने भी ब्र.स्फु.सि. के मध्यगत्युत्तराध्याय में वटेश्वराचार्य तथा भास्कराचार्य की भांति ही कहा है। यथा–

"त्रिगुणः शनिरिन्दुनोऽन्य भगणलब्धैर्गृहादिभिः सहितः।
भौमो हीनोऽर्को गुरुरिन्दुच्चं वाऽन्यभगणाः के॥५॥
द्वित्रिगुणयो रवीन्द्वोर्युतिः कुजोनाऽन्यभगणलब्धेन।
राश्यादिनाऽधिका गुरूना शनिरन्यभगणाः के॥६॥"

ब्रह्मगुप्तोक्त प्रकार ही को श्रीपति ने भी कहा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"त्रिघ्नः पतङ्गतनयो विधुना विहीनश्चक्रादिनाऽन्य भगणोत्थफलेन युक्तः।
भौमः फलेन रहितः सविता गुरुर्वा चन्द्रोच्चमन्यभगणा वद के भवति॥
द्वाभ्यां त्रिभिर्गुणितयो रविशीतरश्म्योर्योगः कुजेन रहितोऽपरचक्रलब्ध्या।
राश्याद्यया समधिको गुरुरुनितः स्यात् पातङ्गिरन्यभगणा गणितज्ञ केते॥"

आर्यभट (द्वि.) ने महासिद्धान्त के गोलाध्याय में आचार्योक्त प्रकार उदाहरण कहा है। यथा–

"चंगुणं चन्द्रं भादिकमर्केण युतं विशोध्य जहतकुजात्।
शेषं सेष्टं बीष्टं वेज्योऽभीष्टस्य कथय चक्राणि॥१८॥"

इस प्रश्न का उत्तर प्रश्नोत्तराध्याय में इस प्रकार दिया है। यथा–

"नानासूत्रभवान्यथ विषमप्रश्नोत्तराणि कथयामि।
चगुणप्रश्नजभगणा ग्लखहरिधमसिमृतुहिर्स्वाख्याः॥८॥"

आचार्य ने ८ भौम– (६ चं.भ.+र.भ) =शेष
अथवा शे.+इभ = गुभ
आचार्य पठित भगणसंख्या से शेष = –३३२४६५३५६०००
तथा गुभ = ३६४२१९६८२ कहा है।
अतः –३३२४६५३५६०००+इभ =३६४२१९६८२
या इष्ट भगण = ३३२८२९५७५६८२ धनसंख्या
यदि शे – इभ = गुभ तो पूर्वप्रकार से साधन करने से ऋण होगा।

अथान्यं प्रश्नमाह—

ये याताधिकमासहीनदिवसा ये चापि तच्छेषके
तेषामैक्यमवेक्ष्य यो दिनगणान् ब्रूतेऽत्र कल्पे गतान्।
संश्लिष्टस्फुटकुट्टकोद्भटबटुक्षुद्रैणविद्रावणे
तस्याव्यक्तविदो विदो विजयते शार्दूलविक्रीडितम्॥१०॥
कृताष्टाष्टिगोब्ध्यब्धिशैलामरर्तु-
द्विप ८६३३७४४९१६८४ घ्ने सशेषाधिमासावमैक्ये।
भवेद्धयेकचन्द्राह १६०२९९८९९९९९९ भक्तेऽवशेषं
गतेन्दुद्युराशिस्ततः सावनाद्यः॥११॥

उदाहरणम्—

ये याताधिकमासहीनदिवसा ये चापि तच्छेषके
तेषामैक्यमवेक्ष्य जिष्णुजकृताच्छास्त्राद्यथैवागतम्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूशैलेन्दुखखाभ्रषट्करयुगाष्टाब्ध्यङ्क ६४८४२६०००१७१ तुल्यं
यदा काले कल्पगतं तदा वदति यः स ब्रह्मसिद्धान्तवित्॥१२॥

अन्य प्रश्न कह रहे हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— अहर्गण आनयन में गत अधिमास, क्षय दिवस तथा इनके शेष इन सब (चारों) के योग के द्वारा जो दिनगण से कल्पगत दिनगण को बता सकता है उसको आचार्य कहते हैं कि मैं उस कुट्टकादि गणित गणना भट्ट (दक्ष) को उन अल्पज्ञानियों पर उसी प्रकार विजय पाने वाला मानता हूँ जिस प्रकार चीता (या सिंह) तुच्छ (नीच) हरिण पर क्रीड़ा करते हुए ही विजय प्राप्त कर लेता है। अर्थात् आचार्य कुट्टकादि गणित विद्या में दक्ष ऐसे व्यक्ति को तुच्छ हिरणों के समान अल्पज्ञानियों पर क्रीड़ा-क्रीड़ा में ही विजय प्राप्त करने वाले चीते (सिंह) के समान दक्ष मानते हैं।

प्रश्न का उत्तर—

सशेष अधिमास अवशेष के योग को ८६३३७४४९१६८४ से गुणा करके फल में १६०२९९८९९९९९९ (क.चां.दि) से विभक्त करने से गत चान्द्र दिन होते हैं। इनसे सावन दिन ज्ञात कर सकते हैं।

उदाहरण—

अहर्गण आनयन में लब्ध अधिमास तथा क्षय दिवस एवं इनके शेष के योग ६४८४२६०००१७१ तुल्य को ८६३३७४४९१६८४ से गुणा करने पर ५५९८३४४६८२९२३२६४२२०७७९६४ होता है। इसको चांद्र दिवस संख्या १६०२९९८९९९९९९ से विभक्त करने से लब्धि ३४९२४१९३२३३६ प्राप्त होती है तथा शेष १०३०० चांद्र दिन होते हैं। इनके पूर्ववत अवम दिन १६१ तथा अवम शेष २६७४२६००००० और सावन अहर्गण १०३०० – १६१ = १०१३९ प्राप्त होता है।

अब इन चांद्र दिनों को अधिमास से गुणा करके युग चांद्र दिनों से विभक्त करने से गताधिमास १० तथा शेष ३८१०००००००० प्राप्त होता है। अधिमास शेष १० के १०×३०=३०० को १०३०० चांद्र दिन गण में से घटाने से सौर अहर्गण १०००० होते हैं। अतः इससे कल्प गत २७ वर्ष ९ मास तथा १० दिन हुए।

उपपत्ति— गताधिमास+अधिशेष = क.धिमा. ×इ.सौ.दिन – गधिमा. × (कसौदि – १) तथा गताधिमास+अधिशेष = क.धिमा. × इ.चां.दि –

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गधिमास (क चांदि – १) होता है अर्थात गत सौर दिनगण में जितने अधिमास और शेष होते हैं, गत चांद्र दिनों में उतने ही चांद्रमास तथा अवमशेष होते हैं। चान्द्रदिनों से अवमदिन तथा अवमशेष साधित होते हैं। अतः –

अधिमास + अधिशेष + चान्द्र अवम दिन + अवम शेष योगफल में युगाधिमास तथा अवम के योग से गुणा करके युग चांद्र दिनों से भाग देने पर लब्धि गत चांद्र दिन मान माना कि = य प्राप्त होते हैं।

इन प्राप्त लब्धि को गुणक से गुणा करके हर से विभक्त करने से जो प्राप्त हो माना वह 'क' है।

$$\text{अर्थात } \frac{\text{य} \times \text{गुणक}}{\text{हर} = \text{युगचांद दिन}} = \text{लब्धि क}$$

$$\frac{\text{क} \times \text{गुणक}}{\text{हर}} = \text{फल तथा य} - \text{फल} = \text{शेष} = \text{अधिमास} + \text{अवमशेष}$$

य २६६७५८५०००० तथा क १६०२९९९०००००० इनके योग को उद्दीष्ट योग से समीकरण करके अधिमास तथा अवम के योग से विभक्त करने से (चान्द्र दिन – १) तुल्य हर तथा उद्दीष्ट योग ऋण क्षेप प्राप्त होता है। अतः

$$\frac{\text{अधिमास} + \text{अवमशेष} - \text{उद्दीष्ट योग}}{\text{चान्द्रदिन} - १}$$

इदानीं महाप्रश्नमाह—

चक्राग्राणि गृहाग्रकाणि च लवाग्राणि ग्रहाणां पृथग्-
यानि स्युः कलिकाग्रकाणि विकलाग्राणीह धीवृद्धिदे।
चन्द्रार्कारगुरुज्ञभार्गवचलच्छायासुतानां तथा
पूर्वं सिद्धमहर्गणागमविधौ न्यूनाहशेषं च यत्॥१३॥
षट्त्रिंशत् सहितानि तानि कुदिनैस्तष्टानि दृष्ट्वाग्रका-
ण्याचष्टे स्फुटकुट्टके पटुमतिः खेटान् दिनौघं च यः।
तं मन्ये गणिताटवीविघटनप्रौढिप्रमत्ताखिल-
ज्योतिर्वित्करिकुम्भपीठलुठनप्रोत्कण्ठकण्ठीरवम्॥१४॥

अथास्य भङ्गः—

उद्दिष्टं क्रह १५७७९७५०० तष्टमम्बुधिहतं शुध्येन्न चेत् तत् खिलं
लब्धं रामनखाद्रिलोचनरसत्र्यङ्कद्वि २९३६२७२०३ निघ्नं ततः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चाद्रित्रिनवाद्रिसागरयुगच्छिद्राग्निभिः ३०४४७९३७५ संभजे-
च्छेषं स्याद्द्युगणो हरेण स युतो यावद्भवेदीप्सितः॥१५॥

अस्योदाहरणम्—

पञ्चत्रिंशदहो सखे दिविषदां चक्रादिशेषाणि या-
न्येषां सावमशेषमैक्यमपि यद्धीवृद्धिदे जायते।
तत् तष्टं कुदिनैः खखेषुभरविच्छिद्रेन्द्र १४९१२२७५०० तुल्यं गुरो-
रिन्दोर्वाह्नि कुजस्य वा वद यदा कीदृग्द्युपिण्डस्तदा॥१६॥

अब महा प्रश्न कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— चं, सू,मं,गु,बु,शु व श के यदि (ग्रहों) भगणशेष तथा राशि शेष का पृथक्-पृथक् ज्ञान शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ (लल्लाचार्य विरचित) के द्वारा ज्ञात करके पूर्व आगम अहर्गण विधि अनुसार यदि शेष ३६ के लगभग होने पर ३६ युक्त करके उनके कुदिनों से विभाजित करके जो पटु गणक ग्रहों तथा अहर्गण को ज्ञात कर सकता है उसको आचार्य गणकों की सभा में सिंह के समान तथा हाथी की पीठ पर कंठ में कंठी धारण करके बैठकर कलोल करने वाले के समान मानते हैं।

आचार्य श्लोक १५ में कहते हैं कि उद्दीष्ट योग (ग्रहों के चक्रादि शेष लल्लोक्त) को यगु कुदिन से तष्टित करने पर यदि नहीं घटे तो उद्दीष्ट योग को ४ से विभक्त करके २९३६२७२०३ से गुणा करके ३९४४७९३७५ से विभाजित करने से प्राप्त शेष को हर में युक्त करने से अहर्गण होता है।

उदाहरण— आचार्य कहते हैं कि हे मित्र ३५ सभी ग्रहों के भगणादि शेष का योग है। इसी को लल्लोक्त धीवृद्धिद ग्रंथ में अवमशेषैक्य कहा गया है। इसको कुदिनों से तष्टित करने पर १४९१२२७५०० के तुल्य होता है तो बताओ गुरु, चन्द्र तथा मंगल के दिन अहर्गण का मान क्या होगा।

हल— लल्लाचार्य के शिष्याधीवृद्धिद ग्रंथ में चक्रादि शेष और सबके अवमशेष ऐक्य १४९१२२७५०० होता है। इसको चार (४) से विभक्त करके लब्धि को २९३६२७२०३ से गुणा करके ३९४४७९३७५ से विभक्त करने से शेष अहर्गण १०००० होता है यह मंगलवार को होता है। इसमें हर का दुगुणा जोड़ने पर सोमवार का अहर्गण ३९४४७९३७५×२+१००००=७८८९६८७५० होता है तथा इसी प्रकार हर का तिगुणा जोड़ने पर गुरुवार को अहर्गण ११८३४४८१२५ होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपपत्ति— आचार्य ने स्वकृत वासना में बताया है कि आचार्य की बीजगणित में "एको हरश्चेद्गुणकौ विभिन्नौ" में "गुणकौ" शब्द द्विवचन उपलक्षण है। यहाँ अधिक गुणक के स्थान पर एक गुणक है। अतः यहाँ गुणकों का योग ही गुणक है। तथा सभी शेष का योग फलैक्या ऋणक्षेप है तथा अहर्गण को एक (१) मान कर ग्रहों के भगणादि शेष ज्ञात करके उनके योगफल में युगअवम जोड़ने से प्राप्तफल को भाज्य कल्पित करे। कुदिन को हर माने। उद्दीष्ट ३६ सभी शेषों का योग है उसको ऋण क्षेप माने।

इन भाज्य, हार तथा क्षेप में चार से अपवर्तित करने से लाघवार्थ शुध एक प्राप्त होता है। कुट्टक से स्थिर करने पर लब्ध गुणक – २९३६२७२०३ होता है।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त प्रकार की विधि ही कही है। यथा प्रश्नोत्तराध्याय–

"ये तान् वक्ष्ये दर्शे कुजाहिन धोधीधधीधिधा धुचयः।
कुजदृढ़वासरवृन्दान्मगुणात्सगणाद् भृगोर्दिने द्युगणः॥१२॥
सद्दृढोऽयं शशिजदिने कौजे जतिधरिगचीरनीसेधा।
ध्रहरे भेधा लिप्ताः सहज धुमदुससिकिनीनना द्युगणः॥१३॥"

यहाँ धोधीधधोधिधाः =९९९९९४ तथा कुज के कुदिन =१५७७९१७५४२
सहजधुमदुससिकिनीननाः = ७८८९५८७७१०००

द्युगणात् पृच्छाद्युसदां चक्राद्यग्राणि संसाध्य।
तद्युतिरधिमासावमयुता क्वहाप्तावशेषको भाज्यः॥६१॥
प्रश्नाग्रैक्ये कुदिनैर्भक्ते शेषं भवेदृणक्षेपः।
क्ष्माहाश्छेदोऽतो यो गुणकोऽसौ वासरौधः स्यात्॥६२॥"

इदानीं निरग्रचक्रादपि ग्रहादहर्गणमाह—

**लिप्तार्धं दशयुग्भवन्ति विकलास्तासां वियोगस्त्रियुग्-
भागा भागदलं गृहाणि शशिनः खत्रीन्दवस्तद्युतिः।
दृष्टा चन्द्रदिने कदा वद पुनस्तादृक् च काव्याहनि
व्यक्ताव्यक्तविविक्तयुक्तिगणितं विद्वन् विजानासि चेत्॥१७॥
राश्यादेर्विकला दृढकुदिनगुणाश्चक्रविकलिकाभक्ताः।
शेषत्यागे लब्धं रूपयुतं भगणशेषं स्यात्॥१८॥**

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शेषोनहरो विकलाशेषं तस्मिन् क्कहाधिके ज्ञेयः।
स खिलः खेटस्त्वखिले विकलाशेषाद् द्युपिण्डो वा॥१९॥
दृढभगणा येन गुणाश्चक्राग्रोना दृढक्कैः शुद्धाः।
स द्युगणो दृढकुदिनयुतस्तावद्यावदीप्सितो वारः॥२०॥

उदाहरणम्—

चक्राग्रं शशिनः खखाभ्रगगनप्राणर्तुभूमिः १६५०००० हृतं
शुध्येच्चेन्न खिलं फलं कृतगुणाष्टाङ्गाहिनागा ८८६८३४ हतम्।
विश्वाग्न्यङ्गशराङ्कके ९५६३१३ श्च विभजेत् स्याच्छेषमह्नां गण-
स्तावत् तत्र हरं क्षिपेदभिमते यावद्भवेद्वासरे॥२१॥

निग्र चक्र भगण से अहर्गण ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— कलार्ध में दश (१०) जोड़ने से विकलायें प्राप्त होती हैं। उनके अन्तर में तीन जोड़ने से अंश तथा अंशों की आधी राशि है। इन सब का योग १३० है। यह किसी दिवस पर चन्द्रमा होता है अर्थात् चन्द्रमा ११।२२।५८।३९ राश्यादि किसी चंद्रवार को है तो व्यक्त अव्यक्त गणित में दक्षता रखते हो तो हे गणक बताओ पुनः ऐसी स्थिति कब होगी?

स्पष्टीकरण— यहाँ आचार्य ने चंद्रमा ११।२२।५८।३९ राश्यादि को इस प्रकार कहा है।

$$\frac{\text{कला} = ५८}{२} + १० = २९ + १० = ३९ \text{ विकला}$$

कला विकला के अंतर ५८ − ३९ = १९ में ३ युक्त करने से १९+३=२२ अंश तथा अंशों की आधी $\frac{२२}{२}$ = ११ राश्यादि है। इन सब का योग १३० है अर्थात् ११+२२+५८+३९ =१३० है।

राश्यादि विकला को दृढ़ कुदिनों से गुणा करके चक्र विकला से विभक्त करने से प्राप्त लब्धि में एक युक्त करने से तथा शेष को त्याग देने से भगण शेष प्राप्त होता है तथा शेष को हर में से घटाने से विकला शेष रहती है। यदि विकला शेष जो रहती है उससे कुदिन जितने अधिक है वह ज्ञात करे कम होने पर प्रश्न त्रुटिपूर्ण होता है।

विकला शेष से अहर्गण या दृढ़भगणों (अपवर्तित भगण) को जिससे गुणा करे उसमें भगण शेष घटाकर (अपवर्तित) दृढ़कुदिन में से घटाने से द्युगण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थात् अहर्गण प्राप्त होता है। इस अहर्गण में अपवर्तित कुदिन जब तक जोड़ते जाना चाहिये जब तक की इष्ट वार प्राप्त न हो जावे।

उदाहरण— यदि चन्द्रमा के भगण शेष को १६५०००० से विभक्त करने से प्राप्त लब्धि यदि अपवर्तित कुदिन संख्या में से न घटे तो समस्त फल को अर्थात् भगणशेष को ८८६८३४ से गुणा करके ९५६३१३ से विभक्त करने से अहर्गण प्राप्त होता है। इस अहर्गण में दृढ़ भाज्य अर्थात हर को जब तक अभीष्ट वार प्राप्त न हो जावे जोड़ते जावे।

दिया हुआ चन्द्रमा ११।२२।५८।३९ राश्यादि है। इसकी विकलायें १२७०७१९ है। कल्पोक्त चन्द्र भगण ५७७५३३००००० तथा रविसावनदिन १५७७९१६४५०००० हैं। इनमें १६५०००० का भाग देने पर ५७७५३३००००० ÷ १६५०००० = ३५००२ दृढ़भगण तथा १५७७९१६४५०००० ÷ १६५०००० = ९५६३१३ दृढ़ कुदिन प्राप्त होते हैं। दृढ़कुदिन की विकला १२१५२०५०९९०४७ को चक्रविकला १२९६००० से विभक्त करने पर लब्धि ९३७६५९ तथा शेष ३३१०४७ प्राप्त होता है। शेष को चक्र विकला में से घटाने से १२९६००० – ३३१०४७ = ९६४९५३। इसमें से दृढ़कुदिन ९५६३१३ घटाने से चक्र विकला शेष ८६४० बची यह शुद्धिदिन है।

उदाहरण में ९५६३१३ को चंद्र ११।२२।५८।३९ की कला १२७०७२० से गुणा करके चक्रविकला १२९६००० से विभक्त करने से फल ९३७६५८ प्राप्त होता है। इसमें एक युक्त करने से फल ९३७६५९ प्राप्त होता है तथा भाग शेष १२८७३६० बचता है। इसको चक्र विकला १२९६०० में से घटाने से विकलाशेष ८६४० बचता है। अहर्गण २५७१५१ प्राप्त होता है। यह शनिवार का है।

दृढ़कुदिन ९५६३१३ के दुगुने को २५७१५१ में जोड़ने से सोमवार का अहर्गण २१६९७७७ होता है। छै गुना जोड़ने पर शुक्रवार का ५९९५०२९, सात गुणा जोड़ने पर सोमवार का २१६९७७७ होता है।

विशेष— आर्यभट (द्वितीय) ने महासिद्धान्त में आचार्योक्त प्रकार की विधि कही है। यथा कुट्टकाध्याय–

"दृढ़दिन भादिखगाभ्यां भगणाग्रं स्याद्यथा तथा कार्यम्।
कुदृढ़खगाभ्यां तस्मादविष्टात् साधयेद्विलिप्ताग्रम्॥४३॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तदुदित विकलाग्रकयोर्विवरं प्रधतिननुनै भजेल्लब्ध्या।
अविनष्टभगणशेषो युक्तः स्यादीप्सितो द्युचयः॥४४॥
राश्यादि व्योमचरं दृढ़कुदिनहतं करै भजेल्लब्धम्।
शेषत्यागे क-युतं भगणाग्रमतो दिनौघभगणाः स्युः॥३९॥"

अथ खिलोदाहरणम्—

राशयः खं० लवाः पञ्च ५ कलाः षड्वर्ग ३६ संमिताः।
विकला गोभुवो १९ नेदृङ्मध्येन्दुरुदये क्वचित्॥२२॥

अशुद्ध प्रश्न का उदाहरण—

सूर्य-प्रभा टीका— यदि चंद्रमा ०।५।३६।१९ राश्यादि है तो इसकी राश्यादि का विकला बनाने इत्यादि द्वारा शेष २७ होता है। शेष को हर में से कम करने से १२९५९७३ होता है। यह संख्या दृढ़कुदिन से अधिक होने से ऐसा चंद्रमा उदयकाल में नहीं हो सकता।

एवमनेकधा खिलत्वं कुट्टकविषयमभिधायेदानीं वर्गप्रकृतिविषयमाह—

स्याद्यस्मिन्नधिमासशेषककृतिर्दिग्घ्नी सरूपा कृति-
र्व्येका शेषकृतिर्हृता च दशभिः स्यान्मूलदा वा यदा।
काले कल्पगतं तदा वदति यस्तत्पादपद्मं बुधाः
सेवन्ते बहुधा प्रमेयवियति भ्रान्ता भ्रमन्तोऽलिवत्॥२३॥
उद्दिष्टं कुट्टके तज्ज्ञैर्ज्ञेयं निरपवर्तनम्।
व्यभिचारः क्वचित् क्वापि खिलत्वापत्तिरन्यथा॥२४॥

कुट्टक विषय संबंधि वर्ग प्रकृति विषयक प्रश्न—

सूर्य-प्रभा टीका— अधिमास शेष के वर्ग को दश से गुणा करके एक युक्त करने से वह संख्या वर्ग संख्या बन जाती है और एक घटा कर शेष के वर्ग को (१०) दश से विभक्त करने पर वह संख्या मूल के लायक अर्थात् वर्गात्मक हो जाती है। इनके द्वारा जो कल्पगत काल को बतादे उसकी विद्वान लोग सेवा करते हैं। खुले आकाश में भौरा जिस प्रकार भ्रमण करता है उस प्रकार की विशेष रूप से बताई गई कुट्टक को जैसा कहा गया है उसमें दूर करने लायक व्यभिचार तो नहीं है लेकिन कहीं-कहीं आपत्ति तो है।

आचार्य ने यहाँ जो कुट्टकविधि बताई है उसको विस्तार से आचार्यकृत वीजगणित में देंखना चाहिये। कुट्टक से कल्पगत वर्षमान २२९६ वर्ष ६ मास ६ दिन होते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं देशविशेषमुद्दिश्य पलांशप्रश्नानाह—

प्राच्यामुज्जयिनीपुरात् कुपरिधेस्तुर्यैंऽशके यत् पुरं
तस्मात् पश्चिमतोऽपि तावति ततोऽप्यन्यत् पुरारेर्दिशि।
नैर्ऋत्यां यदतोऽपि तेषु नगरेष्वाचक्ष्व मेऽक्षांशकान
गोलक्षेत्रविचक्षण क्षणमिदं संचिन्त्य चित्ते मुहुः ॥२५॥

अस्य भङ्ग—

दिग्ज्यापलभाक्षुण्णे त्रिज्यार्कहृते च बाहुकोटिज्ये।
अपसृतियोजनलवजे तदन्तरं दक्षिणे भागे ॥२६॥
ऐक्यं सौम्ये भूमेर्व्यस्तं पादाधिकेऽपसरे।
रविगुणमक्षश्रवसा भक्तं तच्चापमक्षांशाः ॥२७॥

देश विशेष के उद्दिश्य अक्षांश ज्ञान—

सूर्य-प्रभा टीका— उज्जयनी से पूर्व में भूपरिधि के चतुर्थांश दूरी पर जो प्रदेश हैं तथा पश्चिम की ओर चतुर्थांश भाग दूरी में जो प्रदेश हैं तथा उससे नैऋत्य दिशा में तथा भगवान शंकर (त्रिपुरारी) की ईशान दिशा में जो नगर हैं उनके अक्षांश क्या हैं। हे गोल क्षेत्र में विद्वान! अपने मन में (चित्त में) शीघ्र क्षणभर में विचार कर शीघ्र कहो ॥२५॥

अभीष्ट देश की दिग्ज्या को यहाँ की पलभा से गुणा करके पृथक्-पृथक् त्रिज्या तथा १२ (बारह) से गुणा करने से क्रमशः अपसार योजनों के भुज तथा कोटि के मान प्राप्त होते हैं। इनको दक्षिण दिशा के प्रदेशों में अन्तर तथा उत्तर दिशा के प्रदेशों में योग करके भूपरिधि चतुर्थांश से अधिक अपसार योजन में व्यस्त (घटाना) संस्कार से इष्ट स्थान का अक्षांश ज्ञात हो जाता है। दिग्ज्या को १२ से गुणा करके पलकर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल का चाप उस स्थान का अक्षांश होता है।

उदाहरण से स्पष्टीकरण— उज्जयनि से अपसार योजन ९० अंश की ज्या त्रिज्या = ३४३८ होती है। तथा इसकी कोटिज्या = ० शून्य होती है। दिग्ज्या तथा ज्या का गुणा = ० होगा तथा कोटिज्या तथा पलभा का गुणा भी = ० शून्य होगा। अतः इनको क्रमशः त्रिज्या = ३४३८ तथा १२ (बारह) से विभक्त करने से ये शून्य ही होंगे।

$$\frac{\text{दिग्ज्या} \times \text{दोर्ज्या}}{३४३८} = ० \text{ और } \frac{\text{कोटिज्या} \times \text{पलभा}}{१२} = ०$$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इनका योग तथा अन्तर भी शून्य ही होगा। अतः $\frac{१२ \times ०}{\text{पलकर्ण}} = ०$ इसलिए उज्जयनी से ९० अंश दूर यमकोटी के अक्षांश शून्य हैं।

द्वितीय प्रश्न में अक्षांश शून्य हैं अतः यमकोटि से पश्चिम में लंका के अक्षांश भी शून्य हैं।

तृतीय प्रश्न (पुस्तक प्रश्न ४) में दिग्ज्या २४३१ को १२ से गुणा करके पलकर्ण का भाग देने से प्राप्तफल का चाप ३० अंश है। चतुर्थ प्रश्न (श्लोक का तृतीय प्रश्न) में दिग्ज्या २४३१ को अपसार योजन दोर्ज्या जो त्रिज्या तुल्य है से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से अर्थात् $\frac{२४३१ \times ३४३८}{३४३८} = २४३१$

लंका की पलभा = ०; इनको गुणा करके १२ से विभक्त करने से $\frac{२४३१ \times ०}{१२} = ०$। कोटिज्या शून्य हुई। इनका योग ०+२४३१ =२४३१ हुआ। इनको १२ से गुणा करके लंका अक्षकर्ण १२ से विभक्त करने से $\frac{२४३१ \times १२}{१२} = २४३१$ दोर्ज्या हुई। इसका चाप ४५° ।

जहाँ इतने अक्षांश होते हैं वहाँ पलभा १२ होती है और पलकर्ण १६।५८।१४ होता है।

अथान्यदुदाहरणम्—

क्षितिपरिधिषडंशे प्राचि धारानगर्या-
स्त्रिनयनदिशि यद्वा पत्तने चाग्निभागे।
कथय गणक तत्र क्षिप्रमक्षांशकान् मे
क्षितिपरिधितृतीयेऽथांशके तत्र तत्र॥२८॥

अन्य उदाहरण—

सूर्य-प्रभा टीका— भूपरिधि के छठे भाग दूरी पर पूर्व में धारा नगरी है। इससे त्रिनेत्र शंकर की दिशा अर्थात् ईशान कोण में और अग्नि कोण में पड़ने वाले नगरों के तथा भूपरिधि के तृतीयांश भाग पर नगरों के अक्षांश हे गणक कहो।

स्पष्टीकरण व उत्तर—

धारानगरी की पलभा = ५, पलकर्ण = १३, अपसार योजन $\frac{३६०}{६} = ६०$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिसकी दोर्ज्या= २९७७ है तथा कोटिज्या= १७१९ है। दिग्ज्या का पूर्व में अभाव है, अतः कोटिज्या × पलभा ÷अक्षकर्ण—

$$= \frac{\text{कोटिज्या} \times \text{पलभा}}{१२} = \frac{१७१९ \times ५}{१२}$$ प्राप्तफल का चाप अक्षांश है।

इस प्रकार पूर्व दिशा में अक्षांश ११।५।०

ईषान दिशा में दिग्ज्या २४३१ है। अतः $\frac{\text{दोज्या} \times \text{दिग्ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ = अक्षांश।

$\frac{\text{दोनों का योग} \times १२}{\text{पलकर्ण} = १३}$ प्राप्तफल का चाप अक्षांश = ४९।१८।२४ यह ईशान कोण गत हैं।

और अग्निकोण में अक्षांश २१।५४।३४

अब तृतीयभाग के अंश $\frac{३६०}{३}$ = १२०°। इसकी ज्या तथा कोटिज्या के मान क्रमशः २९७७ तथा १७१९ हैं। उपरोक्त प्रकार से करने पर पूर्व नगर के अक्षांश ११।५।०, ईशान के अक्षांश २१।५४।३४ तथा आग्नेय के ४९।१८।२४ प्राप्त हुए।

उपपत्ति— गोल में खस्वस्तिक से छादित चिन्ह पर दृग्मंडल निवेश करे। वहाँ ख स्वस्तिक पर स्वस्थान माने। अपसार योजन अंश अग्र पर दृग्मंडल पर पूर्व में चिन्ह लगावे। ध्रुव से अभीष्ट नगर के चिन्ह तक आने वाला वृत्ताकार सूत्र जहाँ विषुवन्मण्डल पर लगे उससे नगर चिन्ह तक का अन्तर उस नगर के अक्षांश होते हैं। अब उनको ज्ञात करने का उपक्रम बताते हैं—

अपसार योजन अंशों की ज्या, कोटिज्या ज्ञात करके दिग्ज्या दिगंश से ज्ञात करे। फिर अनुपात करे कि यदि त्रिज्या तुल्य दोर्ज्या में दिग्ज्या तुल्य भुज प्राप्त होता है तो अपसार तुल्यज्या में कितनी होगी? प्राप्तफल नगर तथा सममंडल का अंतर ज्यारूप होगा जो भुज है = $\frac{\text{दिग्ज्या} \times \text{अपसार योजन ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$।

पुर तथा विषुवदवृत्त का जो अंतर है उतना अंतर सर्वत्र विषुवदवृत्त के उत्तर की ओर अन्तर पर अन्य अहोरात्र वृत्त हैं। उनका क्षितिज से जहाँ संपात होता है उससे पर्वापर अन्तर अग्रा है। जहाँ उन्मण्डल संपात करता है वहाँ से पूर्वापर अंतर अक्षांश क्रांतिरूप है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अब उनको ज्ञात करने के लिए अपसार येाजन की कोटिज्या, पुर (नगर) चिन्ह से लम्ब शंकु है। शंकु को पलभा से गुणा करके १२ से विभक्त करने से शंकुतल प्राप्त होता है। उत्तर गोल में उत्तर भुज तथा शंकुतल का योग अग्रा होती है। विपरीत संस्कार करने से दूसरे गोल में होती है। अब अनुपात किया कि यदि पलकर्ण में १२ कोटि प्राप्त होती है तो अग्रा में कितनी? प्राप्तफल क्रांतिज्या रूप अक्षज्या = $\frac{१२ \times \text{अग्रा}}{\text{पलकर्ण}}$। इसका चाप अक्षांश होता है। यह उपपन्न हुआ।

भूमि पर चतुर्थांश से अधिक अपसार होने पर घटावें क्योंकि विषुवद् वृत्त के नीचे सममण्डल उत्तर की ओर है।

अथोक्तानपि प्रश्नानेकीकर्तुमाह—

मित्र मित्रस्त्रिनेत्रस्य दिश्युद्गमं याति यत्र त्रिनेत्रर्क्षमध्यस्थितः।
तत्र मे तान्त्रिकाक्षुब्धमक्षप्रभां क्षिप्रमाचक्ष्व दक्षोऽसि गोले यदि॥२९॥
एकद्वित्रिचतुः पञ्चषड्भिर्यत्रोदितो रविः।
मासैरस्तमयं याति तत्राक्षांशान् पृथग्वद॥३०॥

यहाँ कहे गये प्रश्नों को किस प्रकार हल करें—

सूर्य-प्रभा टीका— हे मित्र! ईशान कोण की दिशा में शिव की चक्षु का मध्य आर्द्रा नक्षत्र स्थित है। वहाँ सायन सूर्य २।२० राश्यादि की अक्षप्रभा शीघ्र बताओ, यदि तुम गोल में दक्ष हो।

हल—

आर्द्रा नक्षत्रस्थ सूर्य की क्रांतिज्या ज्ञात करे। यदि अग्रा तुल्य कर्ण में सायन सूर्य क्रांतिज्या कोटि होती है तो त्रिज्या कर्ण में कितनी होगी? यह अनुपात करने से लंबज्या = $\frac{\text{क्रां.ज्या} \times \text{त्रि.}}{\text{अग्रा}}$। अब लंबांश से अक्षांश ज्ञात करे। लंबज्या कोटि में पलज्या भुज है तो कोटि = १२ में कितनी होगी? पलभा = $\frac{\text{पलज्या} \times १२}{\text{लंबज्या}}$।

एक, दो, तीन, चार, पांच, छैः मास जहाँ सूर्य उदित रहता है और उसके पश्चात् अस्त होता है उन स्थानों के अक्षांश पृथक-पृथक कहो?

हल— जहाँ मिथुनार्ध के ऊपर स्थित सूर्य की क्रांति लंबाश से अधिक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होती है वहाँ सतत एक मास का एक दिन होता है तब सूर्य क्षितिज के ऊपर ही रहता है। मिथुन के आदि स्थान पर सूर्य स्थित हो तो जहाँ क्रांति लंबांश से अधिक होती है वहाँ दो मास तुल्य दिन होता है। ऐसा मिथुन अहोरात्र वृत्त तथा अन्य कर्क अहोरात्र वृत्त में होता है।

इसी प्रकार वृषभार्ध के ऊपर सूर्य स्थित हो तब जहाँ क्रांति लंबांश से अधिक होती है वहाँ तीन मास का दिन होता है। जब वृषभारंभ के ऊपर सूर्य स्थित होने पर जहाँ क्रांति लंबांश से अधिक होती है वहाँ चार मास का दिन होता है। जब मेषार्ध के ऊपर सूर्य होता है तथा जहाँ क्रांतिलंबांश से अधिक होती है वहाँ पांच मास का दिन होता है।

जब मेषादि के ऊपर सूर्य स्थित हो तब जहाँ सायन सूर्य की क्रांति लंबांश से अधिक हो वहाँ छः मास का दिन होता है।

यहाँ मिथुनार्द्ध क्रांतितुल्य लंबांश की ९०° से जो शेष है तत्तुल्य अक्षांश पर एक मास का दिन होता है। ऐसा ही उपरोक्त में सर्वत्र जानें।

यदि एक मास के दिन के लंबांश २३°, दो मास के २१°, तीन मास के १७°, चार मास के १२°, पांच मास के ६° तथा छः मास के ०° हो तो इनके क्रमशः अक्षांश ६७°।६९°।७३°।७८°।८४°।९०° होंगे।

श्लोक २९ के उदाहरण रूप में दिग्ज्या तुल्य अग्रा २४३१ क्रांतिज्या के लिए, सूर्य १२।९३।२० की भुजज्या ३२९२।६।४०, क्रांतिज्या १३३७।३७।३९, लंबज्या १८९१।५१।१८, अक्षज्या २८६९।१६, अक्षांश ५६।३६।२२।३०, लंबांश ३३।२३।३३।३० पलभा १८।१०।३०।

वटेश्वराचार्य ने वटेश्वर सिद्धान्त में आचार्योक्त बात कही है। यथा त्रिप्रश्नाधिकार—

"यत्र शून्यतुरगाः पलांशका नोदयं व्रजति तत्र भोनुमान्।
केन नास्तमुपयाति नेहसा कीदृशश्च सविता निगद्यताम॥१०॥"

ब्रह्मगुप्त ने ब्र.स्फु.सि. के त्रिप्रश्नोत्तराध्याय में आचार्योक्त कहा है। यथा—

"स्वाहोरात्रसमा यत्राक्षज्याऽवलम्बकः क्रान्त्या।
मेषादिगस्य तावत् यावत् कर्क्यादिगस्य रवेः॥५५॥
नास्तमयस्तत्र तुलामकरादिस्थस्य नोदयोऽर्कस्य।
मन्मध्यान्तरलिप्ता मध्यमभुक्त्या हृता दिवसाः॥५६॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सि.शि. के गोलाध्याय के त्रिप्रश्नवासनाध्याय के श्लोक ६-७ में आचार्य ने यही बात अलग प्रकार से कही है। वे श्लोक यहाँ कहे गये श्लोक ३० की ही व्याख्या रूप हैं।

द्युज्यकापमगुणार्कदोर्ज्यकासंयुतिं खखखबाणसंमिताम्।
वीक्ष्य भास्करमवेहि मध्यमं मध्यमाहरणमस्ति चेच्छ्रुतम्॥३१॥

द्युज्यापक्रमभानुदोर्गुणयुतिस्तिथ्युद्धृताब्ध्याहता
स्यादाद्यो युतिवर्गतो यमगुणात् सप्तामरा ३३७ म्रोनिताः।
नागाद्र्यङ्गदिगङ्कका: ६१०६७८ पदमतस्तेनाद्य ऊनो भवे-
द्व्यासार्धेऽष्टगुणाब्धिपावकमिते क्रान्तिज्यकातो रविः॥३२॥

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतिमहीजीवाग्रकाणां युति-
र्दृष्टा खाम्बरपञ्चखेचरमिता पञ्चाङ्गुलाक्षप्रभे।
देशे तत्र पृथक् पृथग्गणक ता गोलेऽसि दक्षोऽक्षज-
क्षेत्रक्षोदविधौ विचक्षण समाचक्ष्वाविलक्षोऽसि चेत्॥३३॥

क्रान्तिज्यां विषुवत्प्रभारविहतेस्तुल्यां प्रकल्प्यापराः
कृत्वाग्रासमशङ्कुतद्धृतिमहीजीवा अभीष्टास्ततः।
द्व्याद्यास्तद्युतिभाजिताः पृथगथ प्रोद्दिष्टयुत्या हता
उद्दिष्टा खलु यद्युतिः पृथगिमा व्यक्ता भवन्ति क्रमात्॥३४॥

अग्रापमज्याक्षितिशिञ्जिनीनां योगं सहस्रद्वितयं विदित्वा।
पृथक्पृथक् ता गणक प्रचक्ष्व रूढा सगोले गणिते मतिश्चेत्॥३५॥

सूर्य-प्रभा टीका— ये श्लोक त्रिप्रश्नाधिकार के क्रमशः श्लोक १००, १०१, १०२, १०३ तथा १०४ ही हैं। इनकी व्याख्या कृपया वहाँ पर देखें।

आस्तां तावत् सगोलः सुगणक गणितस्कन्धबन्धप्रसिद्धः
सिद्धान्तो लग्नसिद्ध्यै किमिति बत कृतस्तत्र तात्कालिकोऽर्कः।
नाडीषष्ट्या द्युरात्रं दशपलयुतया भानवीयं किलार्क्ष्या
लग्नं तात्कालिकार्कात् प्रवद किमधिकं तद्द्युरात्रे पलोने॥३६॥

नाक्षत्रा उत सावनास्तनुकृतौ नाड्योऽथ चेत् सावनाः
नाक्षत्रा उदयाः कथं विसदृशास्ताभ्यो विशोध्या वद।
नाक्षत्रा यदि तद्द्युरात्रसदृशे काले गतेऽर्काधिकं
किं लग्नं न समं ततो दिनकरस्तात्कालिकः किं कृतः॥३७॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्य-प्रभा टीका— तात्कालिक सूर्य से लग्न साधन किया जाता है। उसके नाक्षत्र घटीकाल में उदय होने से वह नाक्षत्र कालिक होता है। सूर्य का मध्यम सावन दिन नाक्षत्र घटी में दशपल युक्त करने से होता है। सूर्योदय पर सूर्य तुल्य लग्न होता है अधिक नहीं होता। उस तात्कालिक सूर्य से, दशपल युक्त करने से प्राप्त साठ घटी मान से लग्न साधन करने से लग्न तात्कालिक सूर्य से यदि अधिक हो तो ८-९ पल यदि युक्त करके लग्न साधन करे तो भी लग्न तात्कालिक सूर्य से अधिक होता है तो वह अभीष्ट नहीं है। यह कैसे होता है? यह प्रश्न है। ऐसा नहीं होगा।

हे सुगणक! गोल सहित जो गणक गणित स्कन्ध में प्रसिद्ध सिद्धान्त को भी जानता है वह लग्न सिद्ध करने में किसलिए तात्कालिक सूर्य सिद्ध करते हैं, यह जानता है।

यही प्रसंग त्रिप्रश्नाधिकार में लग्नानयन में गणिताध्याय में बताया जा चुका है। इन श्लोक ३६ व ३७ की व्याख्या के लिए गोलाध्याय के त्रिप्रश्नाध्याय के श्लोक २७ की व्याख्या देखें।

पञ्चाङ्गुला गणक यत्र पलप्रभा स्यात् तत्रेष्टभा नवमिता दशनाडिकासु।
दृष्टा यदा वद तदा तरणिं तवास्ति यद्यत्र कौशलमलं गणिते सगोले॥३८॥
दिनकरे करिवैरिदलस्थिते नरसमा नरभापरदिङ्मुखी।
भवति यत्र पटो पुटभेदने कथय तान्त्रिक तत्र पलप्रभाम्॥३९॥
मार्तण्डः सममण्डलं किल यदा दृष्टः प्रविष्टः सखे
काले पञ्चघटीमिते दिनगते यद्वा नते तावति।
केनाप्युज्जयिनीगतेन तरणेः क्रान्तिं तदा वेत्सि चे-
न्मन्ये त्वां निशितं सगर्वगणकोन्मत्तेभकुम्भाङ्कुशम्॥४०॥

मार्तण्डे सममण्डलं प्रविशतिच्छाया किलाष्ट्यङ्गुला
दृष्टाष्टासु घटीषु कुत्रचिदपि स्थाने कदाचिद्दिने।
अर्कक्रान्तिगुणं तदा वदसि चेदक्षप्रभां तत्र च
त्रिप्रश्नप्रचुरप्रपञ्चचतुरं मन्ये त्वदन्यं नहि॥४१॥

यत्र क्षितिज्या शरसिद्ध २४५ तुल्या
स्यात् तद्धृतिस्तत्त्वकुरामसंख्या ३१२५।
तत्राक्षभार्कौ गणक प्रचक्ष्व
चेदक्षजक्षेत्रविचक्षणोऽसि॥४२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं कुज्योनितां वीक्ष्य यो
विंशत्यश्वरसैः ६७२० मितामथ परां षष्ट्यङ्कचन्द्रैः १९६० मिताम्।
कुज्याग्रापमशिञ्जिनीयुतिमिनं वेत्त्यक्षभां चापि तं
ज्योतिर्वित्कमलावबोधनविधौ वन्दे परं भास्करम्॥४३॥

क्रान्तिज्यासमशङ्कुतद्धृतियुतिं कुज्योनितां वीक्ष्य यः
पूर्णाब्ध्यब्धिमहीमिता १४४० मथ परां खाभ्राष्टभू १८०० संमिताम्।
अग्राज्यापमशङ्कुतद्धृतियुतिं वेत्त्यक्षभार्कौ च तं
ज्योतिर्वित्कमलावबोधनविधौ वन्दे परं भास्करम्॥४४॥

यत्र त्रिवर्गेण ९ मिता पलाभा तत्र त्रिनाडीप्रमितं चरं स्यात्।
यदा तदार्कं यदि वेत्सि विद्वन् सांवत्सराणां प्रवरोऽसि नूनम्॥४५॥

याम्योदक्समकोणभाः किल कृताः पूर्वैः पृथक्साधनै-
र्यास्तद्दिग्विवरान्तरान्तरगता याः पृच्छकेच्छावशात्।
ता एकानयनेन चानयति यो मन्ये तमन्यं भुवि
ज्योतिर्विद्वदनारविन्दमुकुलप्रोल्लासने भास्करम्॥४६॥

दृष्ट्वेष्टभां योऽत्र दिगर्कवेदी छायाद्वयं वा प्रविलोक्य दिग्ज्ञः।
वेक्ष्यक्षभामुद्धतदैववेदिदुर्दर्पसर्पप्रशमे स ताक्ष्यः॥४७॥

भाद्वयस्य भुजयोः समाशयोर्व्यस्तकर्णहतयोर्यदन्तरम्।
ऐक्यमन्यककुभोः पलप्रभा जायते श्रुतिवियोगभाजितम्॥४८॥

सूर्य-प्रभा टीका— उपरोक्त श्लोकों की व्याख्या के लिए त्रिप्रश्नाधिकार गणिताध्याय के निम्नलिखित श्लोकों की व्याख्या यथा स्थान पर देखें।

श्लोक	त्रिप्रश्नाधिकार श्लोक संख्या
३८	८९
३९	७९
४०	८१
४१	८६
४२	९२
४३	९४

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

४४	९६
४५	९८
४६	४४
४७	७४
४८	७६

अक्षाभां तरणिं दिशो युगगतं मासं तिथिं वासरं
यः कूपोद्धृतवन्न वेत्ति सहसा पृष्टो दिगर्कादिकम्।
ब्रूहीत्याशु परैः कथं स कथयत्यस्योत्तरं वक्ति यो
वन्दे तच्चरणावमुष्य गणकाः के वा न सेवापराः॥४९॥

सूर्य-प्रभा टीका— जो गणक अक्षज्या, सूर्य की दिशा, कल्पादिगत मास चैत्रादि मास, तिथि शुक्लादि तिथि, वार रविवार से आरंभ करके वर्तमान वार को स्वयं नहीं जानता वह कूप में से तत्काल निकले हुए उस व्यक्ति के समान है जो भ्रमित रहता है तथा पूछी गई दिशादि को नहीं बता सकता। जो इन सब चीजों को जानता है उसके चरणों की गणितज्ञों का समाज वन्दना करता है तथा सेवा में तत्पर रहता है।

उत्तर— यन्त्र वेध विधि से ध्रुवोन्नति तथा नति से अक्षलम्ब आदि के द्वारा अक्षांश ज्ञात होते हैं। तुरियादि यन्त्र के द्वारा मध्याह्न में रवि के नतांश वेध करके अक्षांश के संस्कार के द्वारा क्रांन्त्यंश होते हैं। क्रांन्त्यंश की ज्या से विलोम विधि से दोर्ज्या ज्ञात करके उसके धनु के अंश वर्ष के प्रथम चरण का सायन सूर्य होता है। दूसरा छः राशि में से कम करके तथा छः राशि में युक्त करके तृतीय एवं बारह राशि में से घटाकर चतुर्थ वर्ष चरण सायन सूर्य होता है। वर्ष के चरण ज्ञात होने से सूर्य क्रांति नक्षत्रादि स्पष्ट ज्ञात हो जाते हैं। ध्रुव के द्वारा दिशा का ज्ञान होता है। इसी प्रकार प्रत्येक मध्याह्न में सूर्य स्पष्ट ज्ञात होता है। प्रथम दिन तथा अगले दिन के सूर्य स्पष्ट का अन्तर प्रतिदिन की स्पष्ट गति ज्ञात होती है। इस प्रकार वर्ष पर्यन्त स्पष्ट गति ज्ञात कर सकते हैं। जिस दिन गति अत्यन्त अल्प हो उस दिन जो सूर्य स्पष्ट हो वह उच्च स्थान है। परमाधिक तथा परमाल्प का योगार्ध मध्यम गति होती है। स्पष्ट सूर्य से विलोम विधि के द्वारा प्रत्येक दिन का मध्यम सूर्य ज्ञात हो जाता है। उससे "राश्यादेर्विकला" आदि श्लोक के द्वारा अहर्गण ज्ञात हो जाता है। अहर्गण से वार ज्ञात हो जाता है। अहर्गण से विलोम विधि के द्वारा कल्पगत ज्ञात होता है। मध्यम सायन सूर्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में से स्थूल अयनांश घटाने से निरयण मध्यम स्थूल सूर्य होता है। इससे अहर्गण साधन करके अयनांश साधन करने से पूर्वापेक्षया सूक्ष्म सायन मध्यम सूर्य होता है। इसमें से सूक्ष्म अयनांश हीन करने से निरयन मध्यम सूर्य किंचित सूक्ष्म होता है। असकृत कर्म से सूक्ष्म अयनांश तथा अहर्गण ज्ञात करते हैं। स्पष्ट अहर्गण से वार ज्ञात होता है। अहर्गण की विलोम विधि से गताब्द, मास, तिथि आदि ज्ञात हो जाता है। अतः इस प्रश्न का उत्तर यंत्रोत्तर संबंध से ज्ञात होता है।

इसी प्रकार गोलादि यंत्र के द्वारा स्पष्ट चन्द्र ज्ञात करे। स्पष्ट सूर्य तथा चंद्र के द्वारा मास, तिथि, नक्षत्र, योग, करण को ज्ञात करे।

इस प्रकार भगण भोग पर्यन्त स्पष्ट चन्द्र के वेध करने से मन्दोच्च ज्ञात करे और मन्दोच्च की गति ज्ञात करे। रात्रि में दृष्ट चन्द्र छाया से चन्द्रदिनगत पर भूपृष्ठस्थ क्षितिज से ऊपर होता है। जिस समय चन्द्र छाया को देखा जावे उस समय का स्पष्ट चन्द्र होता है।

अब चन्द्र में चन्द्र अयन दृक्कर्म दान करके उदय लग्न साधित करे। उदय लग्न तथा इष्ट लग्न का अन्तर घट्यादि, भूगर्भ से क्षितिज ऊपर होता है। अब अनुपात किया कि यदि दिनगत अन्तर में भूव्यासार्द्ध योजन होते हैं तो साठ (६०) घटि में कितने? इससे स्पष्ट कक्षा प्राप्त होती है। परमाधिक तथा परमाल्प कक्षा का योगार्ध मध्यम कक्षा कल्पित करे।

इसी प्रकार सभी ग्रहों को स्पष्ट करके उनकी कक्षा ज्ञात करे तथा उनकी मध्य गति भी ज्ञात करे। इसी प्रकार सबके शर ज्ञात करे। जिस ग्रह का दक्षिण शराभाव होता है वह भगण शुद्ध पात होता है। कालान्तर में पात ज्ञात करके सभी का परम शर ज्ञात करे।

स्पष्ट कक्षा का व्यासार्ध स्पष्ट योजन कर्ण होता है। यदि मध्यम योजन कर्ण में त्रिज्या तुल्य लिप्ताकर्ण होता है तो स्पष्ट योजन कर्ण में कितना होगा? इसके द्वारा चल कर्ण (शीघ्र कर्ण) प्राप्त होता है। क्योंकि शीघ्रकर्ण ग्रह कक्षा के व्यासार्ध तुल्य आचार्य के मत से स्पष्ट होता है। इस प्रकार प्रतिदिन का शीघ्रकर्ण ज्ञात करके परमाधिक चलकर्ण का त्रिज्या से अन्तर करने से शीघ्रान्त्य फलज्या प्राप्त होती है जिसका धनु शीघ्रफलांश होता है।

इस प्रकार प्रत्येक दिन का शीघ्रफल ज्ञात होने से उसका शीघ्रोच्च तथा शीघ्रोच्च गति ज्ञात होती है। उसका विलोम शीघ्रकर्णफल संस्कार करने से मन्द

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्पष्ट ज्ञात होता है। उससे पूर्ववत मन्दोच्च ज्ञात करे। अहर्गण से विभाजित करने से कुट्टक के द्वारा मन्दोच्च पात भगण ज्ञात होता है। इस प्रकार पूर्व पठित सिद्धान्त युक्ति से सब कुछ ज्ञात कर सकते हैं। यही इस प्रश्न का उत्तर है।

वंशस्य मूलं प्रविलोक्य चाग्रं तत्वान्तरं तस्य समुच्छ्रयं च।
यो वेत्ति यष्ट्यैव करस्थयासौ धीयन्त्रवेदी वद किं न वेत्ति॥५०॥

ऊर्ध्वस्थस्य गृहादिभिर्व्यवहितस्याप्यग्रमात्रं सखे
वंशस्य प्रगुणस्य यस्य सुसमे देशे समालोक्यते।
अत्रैव त्वमवस्थितो यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं
मन्ये यन्त्रविदां वरिष्ठपदवीं यातोऽसि धीयन्त्रवित्॥५१॥

दूरस्थस्य न दूरगस्य यदि वादृष्टस्य दृष्टस्य वा
वंशस्य प्रतिबिम्बितस्य सलिले दृष्ट्वाग्रमात्रं सखे।
अत्रैव त्वमवस्थितो यदि वदस्यस्यान्तरं चोच्छ्रयं
त्वां सर्वज्ञमतीन्द्रियज्ञमनुजव्याजेन मन्ये भुवि॥५२॥

सूर्य-प्रभा टीका— उपरोक्त श्लोक इस ग्रंथ के यन्त्राध्याय के श्लोक हैं। इनकी व्याख्या के लिए यन्त्राध्याय के निम्नलिखित श्लोक देखें।

उपरोक्त श्लोक संख्या	यंत्राध्याय श्लोक संख्या
५०	४१
५१	४७
५२	४९

तिग्मांशुचन्द्रौ किल सायनांशौ चतुर्द्विराशी च विपातचन्द्रः।
गृहाष्टकं तत्र वदाशु पातं धीवृद्धिदं त्व यदि बोबुधीषि॥५३॥

युक्तायनांशोंऽशशतं शशी चेदशीतिरर्को द्विशती विपातः।
चन्द्रस्तदानीं वद पातमाशु धीवृद्धिदं त्व यदि बोबुधीषि॥५४॥

असंभवः संभवलक्षणेऽपि स्यात् संभवोऽसंभवलक्षणे किम्।
पातस्य सिद्धान्तमिह प्रचक्ष्व चेत् क्रान्तिसाम्ये प्रसृता मतिस्ते॥५५॥

भागोनयुक्तं त्रिभम $\frac{२}{२९}$। $\frac{३}{१}$र्कचन्द्रौ चेत् सायनांशौ च विपातचन्द्रः।
भागद्वयोनो भगण $\frac{११}{२८}$ स्तदानीं पातं वद त्वं यदि बोबुधीषि॥५६॥

यातेऽपि पाते क्वचिदेष्यलक्ष्म गम्ये न गम्यं वद चित्रमत्र।
यत् संभवासंभववैपरीत्यं सांवत्सराचार्य विचार्य नूनम्॥५७॥

सूर्य-प्रभा टीका— सायन सूर्य ४ राशि, सायन चंद्र २ राशि, तथा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पात ६ राशि पर हो उस स्थान को शीघ्र निश्चित कहो यदि तुमने धी वृद्धिद् ग्रंथ का अध्ययन किया है।

यहाँ अयनांश के अभाव होने से पात भुजज्या का अभाव है तथा सूर्य चन्द्र की गोल संधी की अविकृत भिन्न ३।६।६ होती है। अयन संधी पर चन्द्र हो तो सूर्यपात ज्ञात करने के लिए सूर्य की ६० कला गति तथा चंद्रमा की ७८० कला गति कल्पित की। अयन संधि तुल्य चन्द्र ३, स्वेष्टकाल से इतने कालान्तर में अभीष्ट चं. हो जाता है तो आसन्न अयन संधी अंतर में एक राशि जिसकी १८०० कला होती है। इसको चंद्र गति ७८० से विभक्त करने से फल ऐष्य दिनाद्य २।१८।२८। इतने में सूर्य ४।२।१६ तथा चंद्र ६।०।७।२१ चलता है। यहाँ चंद्र की मध्यम क्रांति उत्तरा २४ अंश है। दक्षिण कलात्मक शर २६६।५६, स्पष्ट क्रांति उत्तरा १६।३०।१। सूर्यक्रांति २०।७।१०। यहाँ स्वायन संधी पर चंद्र की क्रांति में से तात्कालिक रवि की क्रांति घटाने से जितनी होती है उतनी क्रांति साम्य उनकी नहीं होती है जैसा कि पाताधिकार में पात अभाव ज्ञात करने के लिए उदाहरण दिया है।

पूर्व में पाताधिकार के श्लोक ३ से ६ तथा ११ से १४ की व्याख्या तथा उदाहरण में बताया है॥५३॥

अयनांश संस्कृत चंद्र ११० अंश अर्थात् ३।२०, सूर्य २।२०, विपात चं. अर्थात पातवर्जित चंद्र ६।२० है तो तात्कालिक पात कितना होगा कहो?

इसकी व्याख्या के लिए पाताधिकार के श्लोक ३ से ६ तथा ११ से १४ की व्याख्या का उदाहरण देखें॥५४ से ५७॥

आचार्य ने पाताधिकार के इन श्लोकों में जो उदाहरण स्वकृत व्याख्या (वा.भा०) में दिये हैं उन्हीं के लिए यहाँ प्रश्न बनाकर श्लोक कह दिये हैं।

इदानीं सिद्धान्तग्रथनकालमाह—

रसगुणपूर्णमही १०३६ समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः।
रसगुण ३६ वर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणीः रचितः॥५८॥

अब इस ग्रंथ का रचनाकाल कहते हैं—

सूर्य-प्रभा टीका— शक १०३६ में मेरी (आचार्य का) उत्पत्ति हुई अर्थात जन्म हुआ और ३६ वर्ष की उम्र में मैंने सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ को रचा अर्थात यह सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ लिखा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इदानीं विद्वज्जनानुनयादनौद्धत्यप्रतिपादनद्वारेणात्मनः प्रागल्भ्यं प्रार्थयन्नाह—

गणितस्कन्धसंदर्भोऽदभ्रदर्भाग्रधीमतः।
उचितोऽनुचितो यन्मे धाष्ट्यं तत् क्षम्यतां विदः॥५९॥

विद्वद जनों से क्षमा याचना—

सूर्य-प्रभा टीका— संदर्भित गणित स्कन्ध की रचना कुश के मूल से अग्र भाग तक लगातार तीक्ष्णता के सदृश तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा उसके भीतर तक प्रविष्ट होकर की जाती है। आचार्य कहते हैं कि ऐसे इस गणित स्कंध की रचना करने में मुझसे (बुद्धि से) जो भी उचित-अनुचित धृष्टता हुई हो उसके लिए ज्ञानी लोग मुझे क्षमा करे।

इदानीमाद्यदूषणापराधं परिहरन्नाह—

ये वृद्धा लघवोऽपि येऽत्र गणका बद्ध्वाञ्जलिं वाच्मि तान्
क्षन्तव्यं मम तैर्मया यदधुना पूर्वाक्तयो दूषिताः।
कर्तव्ये स्फुटवासनाप्रकथने पूर्वोक्तिविश्वासिनां
तत्तद्दूषणमन्तरेण नितरां नास्ति प्रतीतिर्यतः॥६०॥

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य अपने इस ग्रंथ के रचना काल के नवयुवक तथा प्रौढ़ गणितज्ञों तथा पूर्वकाल में हुए गणितों से हाथ जोड़ कर आचार्य द्वारा पूर्वाचार्यों की (उपपत्तियों) स्फुट वासना में जो दूषण उद्घोषित किये हैं उनके लिए क्षमा मांगते हैं।

आचार्य पूर्वाचायों की स्फुट वासना में दूषण उद्घोषित करने का कारण बताते हुए कहते हैं कि उन पूर्वाचार्यों के कथनों में किसी-किसी स्थान पर दूषण का उल्लेख किये बिना उनके द्वारा की गई उपपत्ति विश्वसनीय नहीं हो सकती थी। अतः ऐसा करने के लिए उन्हें यथा-यथा स्थान पर ऐसा करना पड़ा है।

आसीत् सह्यकुलाचलाश्रितपुरे त्रैविद्यविद्वज्जने
नानासज्जनधाम्नि विज्जडविडे शाण्डिल्यगोत्रो द्विजः।
श्रौतस्मार्तविचारसारचतुरो निःशेषविद्यानिधिः
साधूनामवधिर्महेश्वरकृती दैवज्ञचूडामणिः॥६१॥
तज्जस्तच्चरणारविन्दयुगलप्राप्तप्रसादः सुधी-
मुग्धोद्बोधकरं विदग्धगणकप्रीतिप्रदं प्रस्फुटम्।
एतद्व्यक्तसदुक्तियुक्तिबहुलं हेलावगम्यं विदां
सिद्धान्तग्रथनं कुबुद्धिमथनं चक्रे कविर्भास्करः॥६२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

केचित् पिपठिषन्त्येनं प्रश्नाध्यायं हि केवलम्।
तदर्थं लिखिता अत्र प्रश्नाः प्राग्गदिता अपि॥६३॥

प्रश्नानमून् प्रपठतो गणकस्य गोलकन्दोल्लसत्सरलयुक्तिशतप्रवालैः।
प्रश्नोत्तरार्थपरिचिन्तनवारिसिक्तमूलामला मतिलता समुपैति वृद्धिम्॥६४॥

आचार्य की वंश परंपरा का परिचय—

सूर्य-प्रभा टीका— सह्य नामक कुलाचल पर्वत में स्थित महाराष्ट्र नगर स्थित है उसमें विदर्भ (वराद) नामक देश में गोदावरी नदी के कुछ दूरी पर त्रैविधविद अर्थात त्रिवेदज्ञ जहाँ रहते हैं एक जडविड नामक ग्राम है जिसका आचार्य के समय के पश्चात् वर्तमान में नाम विडम है उसमें शाण्डिल्य गोत्र के एक द्विज (ब्राह्मण) यजुर्वेदशाखाध्यायी महेश्वराचार्य महामहोपाध्याय श्रौतस्मार्त्त के सार को जानने वाले रहते थे उनके श्रीमद् भास्कराचार्य सुपुत्र थे। आचार्य ने उन पिता के चरणारविंद युगल के प्रसाद से वेद-वेदांग आदि को सीखा है तथा इस ग्रंथ की रचना की है जो सुज्ञान का बोध सरलता से कराने वाला है तथा उत्कृष्ट तीक्ष्ण बुद्धि गणकों को भी ज्ञान तथा प्रसन्नता देने वाला है। इस ग्रंथ को सद्युक्तियों के द्वारा अच्छी प्रकार से कहा गया (लिखा गया) है। यह सरलता से बोधगम्य हो सकने वाला है। कुबुद्धियों की बुद्धि का मंथन करके सद्बुद्धि देने वाले चक्र के समान, भास्कराचार्य विरचित यह ग्रंथ है।

कुछ गणक इस प्रश्नाध्याय को ही पढ़ेंगे अतः गणिताध्याय में पहले ही जिन प्रश्नों का उत्तर कह दिया था उनको प्रश्न रूप में यहाँ गोलाध्याय में पुनः कहा गया है। ये प्रश्न पाठक की बुद्धि की वृद्धि करने वाले हैं। यहाँ वृद्धि शब्द का मंगलार्थ उपयोग किया है। यहाँ गणित दो प्रकार की कही गई है। एक ग्रहगणित था दूसरी गोलगणित। वासना की उपयोगिता के लिए व्यक्ताव्यक्त गणित गोल के अन्तर्गत कही गई है।

इन प्रश्नों के जल रूपी उत्तरों के द्वारा उत्कण्ठित गणकों की बुद्धि रूपी लता की बहुत वृद्धि होगी।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय के यन्त्राध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत सोपपत्तिक 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्थ ज्योत्पत्तिः

आचार्याणां पदवीं ज्योत्पत्त्या ज्ञातया यतो याति।
विविधां विदग्धगणकप्रीत्यै तां भास्करो वक्ति॥१॥
इष्टाङ्गुलव्यासदलेन वृत्तं कार्यं दिगङ्कं भलवाङ्कितं च।
ज्यासंख्ययाप्ता नवतेर्लवा ये तदीद्यजीवाधनुरेतदेव॥२॥
द्वित्र्यादिनिघ्नं तदनन्तराणां चापे तु दत्त्वोभयतो दिगङ्कात्।
ज्ञेयं तदग्रद्वयबद्धरज्जोरर्धं ज्यकार्धं निखिलानि चैवम्॥३॥
अथान्यथा वा गणितेन वक्ष्मि ज्यार्धानि तान्येव परिस्फुटानि।
त्रिज्याकृतिर्दोगुणवर्गहीनां मूलं तदीयं खलु कोटिजीवा॥४॥
दोःकोटिजीवारहिते त्रिभज्ये तच्छेषके कोटिभुजोत्क्रमज्ये।
ज्याचापमध्ये खलु योऽत्र बाणः सैवोत्क्रमज्या सुधियात्र वेद्या॥५॥

सूर्य-प्रभा टीका— आचार्य कहते हैं कि वराहमिहिर आदि आचार्यों के समान आचार्य की पदवी वही गणक प्राप्त कर सकता है जो ज्योत्पत्ति को ज्ञात करना जानता है। भास्कराचार्य कहते हैं कि वे तीक्ष्ण बुद्धि गणकों की प्रसन्नता के लिए यहाँ विविध विधियाँ बतायेंगे जिनके द्वारा विभिन्न ज्याओं का मान ज्ञात किया जा सकता है॥१॥

इष्ट अंगुल व्यास का एक वृत्त बनावे तथा उसमें दिशायें तथा ३६० अंश अंकित करे। नब्बे (९०°) में ज्यासंख्या (यहाँ २४) का भाग देकर भागफल के तुल्य प्रथम जीव्रा का धनु दान देवे। उसको दो, तीन आदि से गुणा करके वृत्त पर चाप दोनों ओर काटे। उन दोनों ओर काटे गये चापों के अग्र भागों को मिलाने वाली रेखा के आधे के तुल्य सभी ज्यार्ध ज्ञात करे॥२-३॥

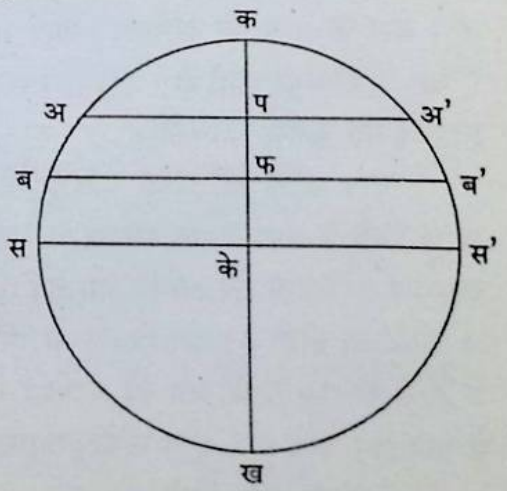

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

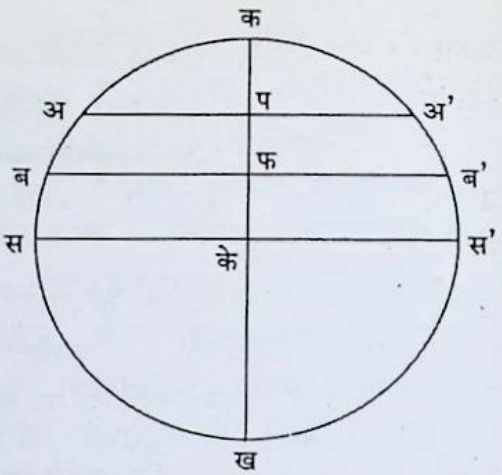

क स ख स' एक वृत्त बनाकर क ख तथा सस' रेखाओं द्वारा उसके चार पाद करे। क के स तथा क के स' दो पाद हैं। ब'अ' तथा ब अ चापाग्र बिन्दु हैं। सस', बब', अअ' इत्यादि चापाग्र बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखायें हैं इनके आधे भाग प अ' तथा फब', के स' हैं ये क्रमशः कअ', कब' तथा कस' चाप की ज्यायें हैं।

विस्तार से देखने समझने के लिए मेरे द्वारा लिखित 'ज्यातत्त्व विवेक' नामक ग्रंथ का अवलोकन करें।

अन्य प्रकार से गणित के द्वारा ज्यार्ध ज्ञात करने की जो विधियाँ आचार्य द्वारा कही गई हैं (यहाँ) उनके (ज्याओं) वर्ग को त्रिज्या के वर्ग में से घटा कर मूल लेने से उन ज्याओं के तुल्य अंशों की कोटिज्या प्राप्त होती है। अर्थात सूत्र रूप में

$\sqrt{\text{त्रिज्या}^2 - \text{ज्या}^2\ \text{अंश}}$ = कोटिज्या अंश।

ज्या तथा कोटिज्या को त्रिज्या में से घटाने से प्राप्त शेष कोटि तथा भुज की उत्क्रमज्या होती है। तथा ज्या तथा चाप के मध्य जो बाणरूप होता है वह उत्क्रमज्या होती है यह जानें। चित्र में यह बताया जा रहा है।

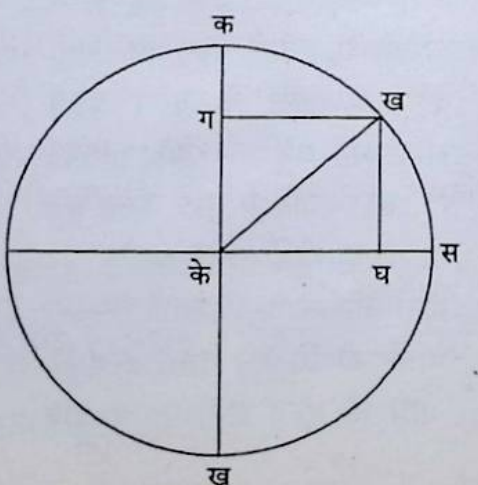

चाप ख स की जीवा (ज्या) ख घ होती है तथा क ख इस ख स चाप का कोटिचाप एवं इसकी ज्या ग ख कोटिज्या होती है। वृत्त त्रिज्या क के में से ख घ= ग के ज्या को घटाने से प्राप्त शेष बाण रूप क ग कोटिज्या ग ख की उत्क्रमज्या होती है। इसी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकार बाण रूप घ स, ज्या ख घ की उत्क्रमज्या होती है। यह वृत्त की त्रिज्या (के स) – कोटिज्या (ग ख = के घ) के तुल्य होती है। अर्थात

क के – के ग = क ग अर्थात बाण क ग = त्रिज्या – भुजज्या = कोटि उत्क्रमज्या। तथा के स – के घ = घ स अर्थात बाण घ स = त्रिज्या – कोटिज्या = उत्क्रमज्या।

त्रिज्यार्धं राशिज्या तत्कोटिज्या च षष्टिभागानाम्।
त्रिज्यावर्गार्धपदं शरवेदांशज्यका भवति॥६॥

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या का आधा एक राशि की ज्या होती है तथा उसकी कोटिज्या साठ अंश की ज्या होती है। अर्थात $\frac{\text{त्रिज्या}}{२}$ = एक राशि (३० अंश) की ज्या। तथा कोटिज्या ३०° = ज्या ६०° होती है। त्रिज्या वर्ग के आधे का मूल ४५ अंश की ज्या होती है। अर्थात $\sqrt{\frac{\text{त्रिज्या}^२}{२}}$ = ज्या ४५°॥६॥

त्रिज्याकृतीषुघातात् त्रिज्याकृतिवर्गपञ्चघातस्य।
मूलोनादष्टहृतान्मूलं षट्त्रिंशदंशज्या॥७॥

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या के वर्ग को पांच से गुणा करने से प्राप्त फल में से त्रिज्या के वर्ग के वर्ग अर्थात $(\text{त्रि}^२)^२ = \text{त्रि}^४$ को पांच से गुणा करके मूल लेने से जो प्राप्त हो उसको घटाकर उसमें आठ का भाग देकर प्राप्तफल का पुनः मूल लेने से ३६ अंश की ज्या होती है। अर्थात सूत्र रूप में–

$$\text{ज्या } ३६^\circ = \sqrt{\frac{५\,\text{त्रि}^२ - \sqrt{५(\text{त्रि}^२)^२}}{८}}$$

गजहयगजेषु ५८७८ निघ्नी त्रिभजीवा वायुतेन १०००० संभक्ता।
षट्त्रिंशदंशजिवा तत्कोटिज्याकृतेषूणाम्॥८॥

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या को ५८७८ से गुणा करके १०००० से विभक्त करने से ३६ अंश की ज्या होती है।

सूत्र $\frac{\text{त्रिज्या} \times ५८७८}{१००००}$ = ज्या ३६°

तथा इसकी कोटिज्या ५४ अंश की ज्या होती हैं अर्थात् कोटिज्या ३६° = ज्या ५४° होती है।

त्रिज्याकृतीषुघातान्मूलं त्रिज्योनितं चतुर्भक्तम्।
अष्टादशभागानां जीवा स्पष्टा भवत्येवम्॥९॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या के वर्ग को पांच से गुणा करके मूल लेने से प्राप्तफल में से त्रिज्या को घटाकर चार से विभक्त करने से अठारह (१८) अंश की ज्या होती है।

$$\text{सूत्र ज्या } १८^\circ = \frac{\sqrt{५\ \text{त्रि}^२} - \text{त्रि.}}{४}$$

क्रमोत्क्रमज्याकृतियोगमूलाद्दलं तदार्धांशकशिञ्जिनी स्यात्।
त्रिज्योत्क्रमज्यानिहतेर्दलस्य मूलं तदर्धांशकशिञ्जिनी वा॥१०॥

सूर्य-प्रभा टीका— किसी कोण की ज्या तथा उत्क्रमज्या के वर्गों के योग के मूल को आधा करने से उस कोण के आधे की ज्या प्राप्त होती है।

$$\text{सूत्र} - \frac{\sqrt{\text{ज्या}^२\theta + (\text{उ.क्र.ज्या}\theta)^२}}{२} = \text{ज्या}\ \frac{\theta}{२}$$ यहाँ θ = दिया हुआ कोण है।

त्रिज्या तथा उत्क्रमज्या के गुणा को आधा करके मूल लेने से उस कोण के आधे कोण की ज्या प्राप्त होती है।

$$\text{सूत्र} - \sqrt{\frac{\text{त्रि} \times \text{उत्क्रमज्या}\ \theta}{२}} = \text{ज्या}\ \frac{\theta}{२}$$

यहाँ θ = दिये हुए (अभीष्ट) कोण के अंश हैं।

तस्याः पुनस्तद्दलभागकानां कोटेश्च कोट्यंशदलस्य चैवम्।
अन्यज्यकासाधनमुक्तमेवं पूर्वैः प्रवेक्ष्येऽथ विशिष्टमस्मात्॥११॥

सूर्य-प्रभा टीका— पुनः उस आधे कोण संख्यक ज्या के कोटि संख्यक ज्या तथा उसके आधे संख्यक की ज्या का मान इसी प्रकार ज्ञात कर सकते हैं। इस प्रकार अन्य ज्याओं के मान ज्ञात किये जा सकते हैं।

२४ ज्याओं से त्रिज्या का आधा ८ वीं ज्या होती है। इसकी कोटि (२४–८) १६ वीं ज्या होती है। ४५ अंश की ज्या, १२ वीं ज्या होती है। अब आठवीं की आधी ४ चोथी इसकी कोटि बीसवीं ज्या होती है। इसी प्रकार चौथी की आधी दूसरी इसकी कोटि २४ – २ = २२ वीं ज्या। दूसरी की आधी प्रथम और इसकी कोटि २३ वीं ज्या।

इस प्रकार बीसवीं से दशवी और चौहदवीं। दशवीं से ५ वीं और १६ वीं। २२ वीं से ग्यारहवीं और तेरहवीं। चौदहवीं से सातवीं और सत्रहवीं। बारहवीं से छठी और अठारहवीं। छठी से तीसरी और २१ वीं। अठारहवीं से नवीं और पंद्रहवीं। त्रिज्या चौबीसवीं है। इस प्रकार अन्य सभी ज्यायें ज्ञात की जा सकती हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रिज्याभुजज्याहतिहीनयुक्ते त्रिज्याकृती तद्दलयोः पदे स्तः।
भुजोनयुक्तत्रिभखण्डयोर्ज्ये कोटिं भुजज्यां परिकल्प्य चैवम्॥१२॥

सूर्य-प्रभा टीका— त्रिज्या तथा भुजज्या को गुणा करके त्रिज्या के वर्ग में से घटा अथवा जोड़कर उसका आधा करके मूल लेने से नब्बे अंश में भुज को घटा अथवा जोड़कर आधा करने से प्राप्तफल की ज्या का मान प्राप्त होता है। इसी प्रकार कोटिज्या के लिए प्राप्त होता है।

सूत्र (१) – $\text{ज्या}\left(\frac{९०^\circ \mp \text{अ}}{२}\right) = \sqrt{\frac{\text{त्रि}^२ \mp \text{त्रि} \times \text{ज्या अ}}{२}}$

सूत्र (२) – $\text{कोज्या}\left(\frac{९०^\circ \mp \text{अ}}{२}\right) = \sqrt{\frac{\text{त्रि}^२ \pm \text{त्रि. ज्या अ}}{२}}$

यद्दोर्ज्ययोरन्तरमिष्टयोर्यत् कोटिज्ययोस्तत्कृतियोगमूलम्।
दलीकृतं स्याद् भुजयोर्वियोगखण्डस्य जीवैवमनेकधा वा॥१३॥

सूर्य-प्रभा टीका— दो भुजों (कोणों) की ज्या तथा कोटिज्या के अन्तर के वर्गों के योग के मूल को आधा करने से उन दोनों भुजों के अन्तर के आधे की ज्या कामान प्राप्त होता है।

सूत्र– $\text{ज्या}\frac{\text{B} - \text{A}}{२} = \sqrt{\frac{(\text{कोज्या A} - \text{कोज्या B})^२ + (\text{ज्या B} - \text{ज्या A})^२}{२}}$

इस प्रकार अनेक प्रकार के भुजों की ज्या का मान ज्ञात किया जा सकता है।

दोःकोटिजीवाविवरस्य वर्गो दलीकृतस्तस्य पदेन तुल्या।
स्यात् कोटिबाह्वोर्विवरार्धजीवा वक्ष्येऽथ मूलग्रहणं विनापि॥१४॥

सूर्य-प्रभा टीका— दो भुज की ज्या तथा कोटिज्या के अन्तर के वर्ग को आधा करके मूल लेने से कोटि तथा बाहु के अन्तर के आधे की ज्या का मान प्राप्त होता है।

सूत्र– $\text{ज्या}\left(\frac{\text{कोटि अंश} - \text{भुजांश}}{२}\right) = \sqrt{\frac{(\text{कोज्या भु} - \text{ज्या भुज})^२}{२}}$

दोर्ज्याकृतिर्व्यासदलार्धभक्ता लब्धत्रिमौर्व्योर्विवरेण तुल्या।
दोःकोटिभागान्तरशिञ्जिनी स्याज्ज्यार्धानि वा कानिचिदेवमत्र॥१५॥

सूर्य-प्रभा टीका— दोर्ज्या के वर्ग को व्यास के आधे के आधे अर्थात् त्रिज्या के आधे से विभक्त करने से प्राप्तफल को त्रिज्या में से घटाने से कोटि तथा भुज के अन्तर की ज्या का मान प्राप्त होता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूत्र – ज्या (कोटि – भुज) = त्रि – $\frac{\text{ज्या}^2 \text{भु}}{\frac{\text{त्रि}}{२}}$

यहाँ (९० – भु) ; भुज = भु की कोटि होती है।

स्वगोऽङ्गेषुषडंशेन ६५६९ वर्जिता भुजशिञ्जिनी।
कोटिज्या दशभिः क्षुण्णा त्रिसप्तेषु ५७३ विभाजिता॥१६॥
तदैक्यमग्रजीवा स्यादन्तरं पूर्वशिञ्जिनी।
प्रथमज्या भवेदेवं षष्टिरन्यास्ततस्तत॥१७॥

सूर्य-प्रभा टीका— नब्बे अंश की ज्या त्रिज्या ३४३८ के तुल्य होती है। मूलभूत ज्या के मध्य जो इष्ट भुजज्या है उसकी कोटिज्या को पृथक से स्थापित करे। भुजज्या को ६५६९ में से घटाये तथा कोटिज्या को दश से गुणा करके ५७३ से विभक्त करे। इन दोनों फलों का योग करने से उससे अग्रिम अंशों की ज्या तथा घटाने से पूर्व अंशों की ज्या का मान ज्ञात होता है। जैसे ३०° की ज्या का मान त्रिज्या अर्ध १७१९ होता है। इससे पूर्वोक्त दोनों भागों का योग करने से ३१ अंश की, इससे ३२ अंश की इत्यादि ज्या ज्ञात कर सकते हैं और अन्तर करने से पूर्व की २९ अंश, २८ अंश की इत्यादि ज्या का मान ज्ञात होता है।

सूत्र– (६५६९ – ज्या भु) + $\frac{१० \times \text{कोटिज्या भुज}}{५७३}$ = (भुज + १) अंश की ज्या का मान है।

लेकिन वास्तव में अग्रिम तथा पूर्व ज्या का मान ज्या भु $\pm \frac{१० \times \text{कोज्या भु}}{५७३}$ के द्वारा प्राप्त होता है।

विद्वान लोग इस पर विचार करें। मेरे द्वारा लिखित 'ज्या तत्त्व विवेक' का अवलोकन करें।

इस प्रकार प्रथम ज्या से अन्य साठ अंश की साठ ज्यायें ज्ञात हो जाती हैं।

व्यासार्धेऽष्टगुणाब्ध्यग्नितुल्ये स्युर्नवतिर्ज्यकाः।
कोटिजीवा शताभ्यस्ता गोदस्रतिथि १५२९ भाजिता॥१८॥
दोर्ज्या स्वाघ्रङ्गवेदांश ४६७ हीना तद्योगसंमिता।
तदग्रज्या तयोश्चापि विवरं पूर्वशिञ्जिनी॥१९॥

सूर्य-प्रभा टीका— नब्बे अंश की ज्या ३४३८ व्यासार्ध तुल्य होती है। किसी कोण (भुज) की कोटिज्या को एक सौ (१००) से गुणा करके १५२९

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से विभक्त करे। और भुजज्या को ४६७ से विभक्त करे। इन दोनों फलों को घटा कर भुजज्या में युक्त करने से अग्रिम ज्या का मान प्राप्त होता है तथा दोनों फलों को जोड़कर भुजज्या में से घटाने से पूर्व की ज्या का मान ज्ञात होता है।

जैसे ८ वीं (ज्या), ३० अंश की ज्या का मान १७१९ तथा उसकी कोटि १६ वीं (ज्या) ६० अंश की ज्या का मान २९७८ होता है। अतः प्रश्नानुसार—

२९७८ × १०० ÷ १५२९ = १९४.७६७८ = १९५ स्वल्पांतर से।

$\frac{१७१९}{४६७}$ = ३.६८ = ४ स्वल्पांतर से।

१९५ − ४ = १९१

ज्या ३०° = १७१९

अन्तर = १९१० = अग्रिम ९वीं ज्या का मान।

तथा १९५ + ४ = १९९

ज्या ३०° = १७१९

अन्तर = १५२० = पूर्व की ७ वीं ज्या का मान।

इसी प्रकार योग द्वारा ९ वीं से दशवीं, दशवीं से ग्यारहवीं इत्यादि तथा अन्तर द्वारा छठी, पांचवीं इत्यादि ज्याओं के मान ज्ञात कर सकते हैं।

त्रिज्या को दोर्ज्या मानकर कोटिज्या शून्य होगी। इनसे २३ वीं, २२ वीं, २१ वीं इत्यादि सभी ज्याओं के मान ज्ञात कर सकते हैं।

तत्त्वदस्रा नगांशोना २२४।५१ एवमत्राद्यशिञ्जिनी।
ज्यापरंपरयैवं वा चतुर्विंशतिमौर्विकाः॥२०॥

सूर्य-प्रभा टीका— प्रथम ज्या का मान २२४।५१ होता है। यहाँ तत्त्व = २५, दस्र = २ तथा नगांश अर्थात एक अंश = ६० कला नग = ७ वाँ भाग कम। ६० ÷ ७ = ९ स्वल्पांतर से। अतः २२५ कला − ९ विकला = २२४।५१ कलादि प्रथम ज्या का सूक्ष्म मान आचार्य ने कहा है। यह आधुनिक मान के अत्यन्त तुल्य है। आचार्य आगे कहते हैं कि इस प्रथम ज्या के मान से परंपरागत चौबीस ज्याओं के मान ज्ञात कर सकते हैं।

चापयोरिष्टयोर्दोर्ज्ये मिथः कोटिज्यकाहते।
त्रिज्याभक्ते तयोरैक्यं स्याच्चापैक्यस्य दोर्ज्यका॥२१॥
चापान्तरस्य जीवा स्यात् तयोरन्तरसंमिता।
अन्यज्यासाधने सम्यगियं ज्याभावनोदिता॥२२॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समासभावना चैका तथान्यान्तरभावना।
आद्यज्याचापभागानां प्रतिभागज्यकाविधिः ॥२३॥

सूर्य-प्रभा टीका— किसी इष्ट दो चापों (दोनों भागों) की एक की दोर्ज्या को दूसरे की कोटिज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करके उनका योग करने से उन चापों के योग की ज्या का मान प्राप्त होता है तथा घटाने से उन चापों के अन्तर चाप की ज्या का मान ज्ञात होता है। इस प्रकार सिद्ध की हुई ज्या के मानों से अन्य ज्याओं के मान ज्ञात कर सकते हैं। योग के द्वारा एक ज्या का मान तथा घटाने के द्वारा दूसरी ज्या का मान ज्ञात कर सकते हैं। आद्य अर्थात प्रथम चाप के अंशों से दूसरे चाप के अंशों की इसी प्रकार प्रति भाग (अंश) की ज्या का मान ज्ञात किया जा सकता है।

या ज्यानुपाततः सेष्टव्यासार्धे परिणाम्यते।
आद्यदोः कोटिजीवाभ्यामेवं कार्या ततो मुहुः ॥२४॥
भावना स्युस्तदग्रज्या इष्टे व्यासदले स्फुटाः।
स्थूलं ज्यानयनं पाट्यामिह तन्नोदितं मया ॥२५॥

सूर्य-प्रभा टीका— अनुपात के द्वारा ज्या का मान ज्ञात हो उसको इष्ट व्यासार्ध में परिणित कर लेवे। प्रथम ज्याखंड की ज्या कोटिज्या से इसी प्रकार बार बार करके ज्ञात कर लेवे। इस प्रकार इष्ट त्रिज्या के अनुसार आगे-आगे की ज्या का मान ज्ञात कर सकते हैं।

स्थूल ज्या का आनयन आचार्य द्वारा कथित पाटि गणित (लीलावती) में बताया है।

इति ज्योत्पतिः

उक्ता संक्षेपतः पूर्वं ज्योत्पत्तिं सुगमा च सा।
सविशेषाधुना तत्र विशेषाद्विवृणोम्यतः ॥१॥

यहाँ ज्या उत्पत्ति की सुगम विधियाँ बताई हैं। जिस विशेष अंश की ज्या ज्ञात करनी हो वह यहाँ कहे गये विवरण से ज्ञात करें।

इस ज्योत्पत्ति अध्याय की विस्तृत व्याख्या एवं उदाहरणों के लिए मेरे द्वारा लिखित 'ज्या तत्त्व विवेक' नामक ग्रंथ का अवलोकन करें।

॥ इति श्रीमद्भास्कराचार्य विरचित सिद्धान्तशिरोमणि ग्रंथ के गोलाध्याय की पण्डितवर्य श्री दामोदरलाल ज्योतिर्विदात्मज पं.सत्यदेव शर्मा कृत 'सूर्य-प्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुबन्ध - I

शुद्ध अहर्गण साधन सूत्र

सिद्धान्त ग्रंथों में अहर्गण, कल्पारंभ से इष्ट दिन तक की सावन दिन संख्या होती है। **तंत्र** ग्रंथों में अहर्गण महायुगारंभ अथवा कभी-कभी कलियुगारंभ से इष्ट दिन तक की सावन दिन संख्या होती है। इसी प्रकार **करण** ग्रंथों में किसी विशेष वर्षारंभ अथवा प्रचलित वर्षारंभ से अभीष्ट दिन तक की सावन दिन संख्या होती है।

इनकी सहायता से किसी ग्रह की अभीष्ट वर्ष तथा मास के इष्ट दिन या तिथि पर स्थिति जानी जाती है। खगोल गणित की समस्त गणनाओं की सर्वप्रथम तथा आधारभूत गणना अहर्गण का साधन ही है। इसकी शुद्धि पर ही समस्त गणनाओं की शुद्धि आधारित होती है।

विभिन्न आचार्यों ने आदिकाल से अहर्गण साधन के सूत्र अपने अपने ग्रंथों में बताये हैं। वातेश्वर अथवा वटेश्वराचार्य ने मध्यमाधिकार के अध्याय-२ में वटेश्वर सिद्धान्त में अहर्गण साधन की अनेक विधियाँ दी हैं। उनमें से श्लोक १२, १३, १४, १५, तथा २७ में बताई गई विधियों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने **वर्षमान को गत वर्ष संख्या से गुणा करने से गत वर्षों (अभीष्ट) की अहर्गण संख्या प्राप्त होना कहा है।** इसमें अभीष्ट मास (गत) तथा इष्ट दिन तक के दिवस (गत) जोड़ देने से अभीष्ट दिवस तक की अहर्गण संख्या प्राप्त हो जाती है। भास्कराचार्य ने वर्षमान ३६५/१५/३०/२२/३० मानकर ऐसा ही सूत्र बताया है। वटेश्वर आचार्य ने वर्ष मान ३६५।१५।३१।१५ ग्रहण करके गत वर्षों का अहर्गण ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र बताये हैं।

भास्कराचार्यानुसार सूत्र = $३६५ \times \text{ग.व} + \frac{\text{ग.व}}{४} + \frac{\text{ग.व}}{१२०} + \frac{\text{ग.व}}{९६००} = ३६५$

$\text{ग.व} + \frac{७७३०}{९६००}\ \text{ग.व}$

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वटेश्वर के सूत्र—

(१) श्लोक १२ तथा $१२\frac{१}{२}$ द्वारा; गत वर्षों की दिन संख्या = ३६०×ग.व. + $\frac{१८९३१३}{३६०००}$ ग.व.

(आधुनिक वर्षमान से यह सूत्र = ३६० ग.व + $\frac{१८९२२९.५}{३६०००}$ ×ग.व. होगा)

(२) श्लोक १३ तथा $१३\frac{१}{२}$ द्वारा; गत वर्षों की दिन संख्या = ३६०×ग.व. + $\frac{९३१३}{३६०००}$ ग.व.

(आधुनिक वर्षमान से यह सूत्र = ३६५ ग.व + $\frac{९२२९.५}{३६०००}$ × ग.व. होगा)

(३) श्लोक १४ तथा $१४\frac{१}{२}$ द्वारा; गत वर्षों की दिन संख्या = ३६४×ग.व. + $\frac{४५३१३}{३६०००}$ ग.व.

(आधुनिक वर्षमान से यह सूत्र = ३६४ ग.व + $\frac{४५२२९.५}{३६०००}$ ×ग.व. होगा)

(४) श्लोक २७ के द्वारा; गत वर्षों की दिन संख्या = + $\frac{१३१४९३१३}{३६०००}$ ग.व.

(आधुनिक वर्षमान से यह सूत्र = $\frac{१३१४९२२९.५}{३६०००}$ ×ग.व. = ३६५.२५६३७५× ग.व. होगा)

इन सभी सूत्रों को वर्ष की दिन संख्या ३६५ तथा १५।३१।१५ घटी पलादि के भिन्न-भिन्न प्रकार से खण्ड करके भिन्न-भिन्न प्रकार से अंश तथा हर को गुणा-भाग करके, प्राप्त किये हैं। इन सभी सूत्रों की संख्याओं को इकट्ठा करके हम वर्षमान् (३६५।१५।३१।१५ आचार्य द्वारा स्वीकृत) को गत वर्ष संख्या से गुणा के रूप में लिख सकते हैं।

वातेश्वर (वटेश्वर) आचार्य की यह युक्ति हम हमारे द्वारा प्रतिपादित सूत्र के आधार के रूप में उपयोग में लेंगे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रह लाघव गंथकर्ता गणेश दैवज्ञ के अनुरूप ही श्रीमद् वेंकटेशकेतकर महोदय ने भी गताब्द के १९ वर्षों के एक-एक चक्र बनाकर अहर्गण साधन का सूत्र प्रतिपादित किया है। श्री केतकर महोदय द्वारा स्वीकृत १९ वर्ष का एक चक्र मैं भी स्वीकार करता हूँ क्योंकि इस चक्र में ली गई वर्ष संख्यायें कुछ विशिष्टता लिए हुए है जो श्री केतकर महोदय ने अपनी टीका में बताई हैं। अब आचार्य वटेश्वर द्वारा बताये पूर्वोक्त अहर्गण साधन के सिद्धान्त के आधार प हम १९ वर्ष के दिनों की संख्या (अहर्गण) ज्ञात करते हैं। हम इस गणना में आधुनिक वर्षमान् ३६५।१५।२२।५७ दिनादि अथवा ३६५ दिन ६ घं. ९ मि. १०.८ सै. लेकर गणना करेंगे क्योंकि यहि आधुनिक वेध शुद्ध वर्षमान है।

३६५ दि. × १९	=६९३५ दिन
६ घं. × १९	=४।४५ दि. घटी
$\frac{१ \text{ मि.} \times २.५}{६०} \times १९$	=७।७।३० घ. प. वि.
$\frac{१०.८ \text{ सै.} \times २.५}{६० \times ६०} \times १९$	=८।३३ प. वि.

(३६५ दि. ६घं. ९ मि. १०.८ सै.)×१९=६९३९।५२।१६।३ दि.घ.प.वि.(A)

यदि हम १९ वर्ष के एक चक्र में अहर्गण संख्या ६९४० माल लें जैसे कि श्री केतकर जी ने माना है तो इस प्रकार हम ७८ घटी अधिक तथा १६ पल ३ विपल कम ले रहे हैं प्रत्येक चक्र में।

८ घटी $७\frac{१}{२}$ चक्रों में $८ \times ७\frac{१}{२}$ = ६० घटी = १ दिन अथवा १५ चक्रों में २ दिन मान हो जाता है।

इसी प्रकार १६ पल को १९ वर्ष के एक चक्र में कम लेने से २२५ चक्रों में २२५×१६ = ३६०० पल हो जाता है। यह १ दिन (६०घ.×६०प. = ३६०० पल) के तुल्य होता है।

अतः ८ घटि अधिक को बराबर करने के लिए अहर्गण सूत्र में $\frac{२ \text{ चक्र}}{१५}$ कम करना होगा तथा १६ पल प्रति चक्र कम लिया है उसको पूरा करने के लिए अहर्गण में से $\frac{\text{चक्र}}{२२५}$ जोडना होगा। शेष ३ विपल के लिए अहर्गण में चक्र ÷ ७५७८९ जोडना होगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार हमारा अहर्गण साधन का सूत्र निम्नलिखित प्रकार से बनता है।

(मध्यम) अहर्गण = (३६५।१५।२२।५७) × चक्र शेष वर्ष + चक्र संख्या की अहर्गण संख्या

$$\text{(मध्यम) अहर्गण} = ३६५ \times \text{चक्र शेष} + \frac{\text{चक्र शेष}}{४} - \frac{२\ \text{चक्र}}{१५} + \frac{\text{चक्र}}{२२५} + \frac{\text{चक्र}}{७५७८९} + \text{चक्र} \times ६९४०$$

इसमें जिन ईसवी वर्षों में ४०० का भाग पूरा न जाने से लीप वर्ष नहीं गिना जाता उसका संस्कार भी करें।

यह सूत्र गताब्द की पूर्ण वर्ष संख्या के लिए प्राप्त होता है तथा क्योंकि प्रत्येक चार वर्ष में वर्षमान की १५ घटी, एक दिवस पूर्ण कर लेती हैं अतः अहर्गण के सूत्र में चक्र शेष ÷ ४ जोड़ दिया है। इस प्रकार चक्र शेष वर्ष की संख्या के अनुसार वर्षमान की १५ घटी की दिन संख्या आ जावेगी। वर्षमान के शेष (२२ पल ५७ विपल) × चक्र शेष को हमने छोड़ दिया है क्योंकि इसका मान सदा एक दिवस के कम ही रहेगा क्योंकि चक्र शेष १९ वर्ष से सदा कम होगा। सूत्र A को देखने से यह स्पष्ट है।

इस सूत्र में प्रचलित वर्ष के गत मास तथा गत तिथि संख्या से क्षय तिथि संख्या ज्ञात करके शेष सावन दिन संख्या ज्ञात करके उपरोक्त मध्यम अहर्गण में जोड़ देने से अभीष्ट दिवस की शुद्ध अहर्गण संख्या ज्ञात हो जावेगी। अतः केतकी ग्रह गणितानुसार—

चैत्रादि से गत चांद्र मास × ३०+गत तिथि = तिथि गण

तिथि गण ÷ ६४ = क्षय तिथि

तिथि गण – क्षय तिथि = शेष सावन दिन संख्या = B

अतः अहर्गण का सूत्र निम्नलिखित प्रकार से बना—

स्पष्ट अहर्गण = मध्यम अहर्गण + B

यदि हम गताब्द की गणना ईस्वी सन् से करते हैं तो B का मान प्रचलित वर्ष की एक जनवरी से अभीष्ट मास की अभीष्ट तारीख तक की दिन संख्या होगी। और यदि शकाब्द से करते हैं तो पूर्व मान के अतिरिक्त हम मेष संक्रान्ति से इष्ट दिवस तक की संख्या भी वटेश्वराचार्य द्वारा बताये अनुसार ले सकते हैं। लेकिन इस स्थिति में शक की गणना मेष संक्रांति से आरंभ कर मेष संक्रांति

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तक ही करनी होगी। वार ज्ञात के लिए अहर्गण ÷ ७ के शेष तुल्य गणनारंभ दिवस से शेष दिवस तक।

१९ वर्ष की चक्र संख्या वराह की पंच सिद्धान्तिका में ली गई है। वहाँ बताया गया है कि २२८ सौर मास में २२५ चांद्रमास (लगभग) पूरे-पूरे होते हैं।

मेरे सूत्र में शुद्धता अधिक है यह बात मैं आगे उदाहरणों द्वारा प्रतिपादित करूँगा। हमारा वर्षमान अधिक सूक्ष्म तथा शुद्ध होने से पूर्वाचार्यों द्वारा साधित अहर्गण मान अधिक लम्बे समय में कभी-कभी भिन्न आता है। लेकिन इन दोनों में से हमारे सूत्र द्वारा साधित अहर्गण ही शुद्ध है। क्योंकि यह वटेश्वर के आधारभूत अहर्गण साधन के सिद्धान्त पर आधारित है।

उदाहरण—

(१) कलि आरंभ से शक आरंभ के ३१७९ गताब्द का अहर्गण ज्ञात करना है।

गताब्द = ३१७९; ३१७९ ÷ १९ = १६७ चक्र ; चक्र शेष = ६

स्पष्ट अहर्गण = ३६५×च.शे. + $\frac{\text{चक्र शेष}}{४}$ − $\frac{२ \text{ चक्र}}{१५}$ + $\frac{\text{चक्र}}{२२५}$ + $\frac{\text{चक्र}}{७५७८९}$

+ चक्र × ६९४० + B =

$$=३६५\times६+\frac{६}{४}-\frac{१६७\times२}{१५}+\frac{१६७}{२२५}+\frac{१६७}{७५७८९}+१६७\times६९४०+०$$

= २१९०+१−२२+०+०+११५८९८०+०

स्प अहर्गण = ११,६१,१४९

वार = ११,६१,१४९ ÷ ७ = ३

कलि आरंभ शुक्रवार से होने से अभीष्ट वार रविवार हुआ।

उदाहरण २—

एक महायुग = ४३२०००० वर्ष का अहर्गण साधन।

१ वर्ष मान आधुनिक ३६५।१५।२२।५७ लेने से अभीष्ट अहर्गण-

३६५×४३२०००० =	१५,७६,८००,०००	सावन दिवस
$\frac{१५}{६०}$ × ४३२०००० =	१,०८०,०००	,,
$\frac{२२.९५}{६०\times६०}$ × ४३२०००० =	२७,५४०	,,
एक महायुग का अहर्गण =	१५,७७,९०७,५४०	,,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुरातन वर्षमान क्योंकि लगभग ८.५ पल अधिक था अतः पूर्वाचार्यों द्वारा साधित महायुग का अहर्गण लगभग ८.३९×४३२०००० = १००६८ दिन अधिक था।

आर्यभट का एक महायुग का अहर्गण मान = १,५७७,९१७,५४२

आधुनिक सूर्य सिद्धान्त द्वारा एक म.यु.का अहर्ग.=१,५७७,९१७,८२८

वराह मिहिर द्वारा एक म.यु. का अहर्गण = १,५७७,९१७,८००

मेरे द्वारा प्रतिपादित सूत्र द्वारा अहर्गण साधनः—

एक महायुग के वर्ष ४३२०००० ÷ १९ = २२७३६८ चक्र ; चक्र शेष = ८

स्पष्ट अहर्गण = ३६५×८+ $\frac{८}{४}$ − $\frac{२×२२७३६८}{१५}$ + $\frac{२२७३६८}{२२५}$ + $\frac{२२७३६८}{७५७८९}$ + २२७३६८ ×६९४०+B

= २९२०+२ − ३०३१५ + १०१० + १५७७९३३९२० + ०

= १५७७९०७५४० यही संख्या हमने पूर्व में प्राप्त की है।

उदाहरण ३—

लघुभास्करीय की अंग्रेजी टीका में प्रो. श्री कृपा शंकर शुक्ल ने अध्याय एक में निम्नलिखित अहर्गण साधन किया है।

१ जनवरी १९६३ ए.डी. का अहर्गण साधन करना है। हिन्दु पंचांग से इस दिन मंगलवार, ६ तिथि, शुक्ल पक्ष, पौष मास शक संवत् १८८४ था।

शक १८८४+३१७९ = ५०६३ गताब्द .....(१)

५०६३×१२+९ (चैत्र से इष्टमास पौष तक गतमास संख्या) = ६०७६५..(२)

६०७६५×१५९३३३६÷५१८४०००(शेष को त्यागने पर) = १८६७..(३)

१८६७ + ६०७६५ = ६२६३५..(४)

६२६३५×३०+५ (प्रचलित मास की गत तिथि संख्या) = १८७८९६५..(५)

१८७८९६५×२५०८२५८०÷१६०३०००८८०(शेष त्यागने) = २९४०००..(६)

१८७८९६५ − २९४०० = १८४९५६५..(७)

अतः स्पष्ट अहर्गण १८, ४९, ५६५ हुआ। वार : १८४९५६५÷७ = शेष ४ अतः १ जनवरी शुक्रवार से गिनने पर ५वें दिन मंगलवार को पडती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेरे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन—

इष्ट गताब्द १८८४ + ३१७९ = ५०६३

५०६३ ÷ १९ = २२६ चक्र ; चक्र शेष = ९

अहर्गण = $९ \times ३६५+\frac{९}{४}-\frac{२\times२२६}{१५}+\frac{२२६}{२२५}+२६६ \times ६९४० + B$

= ३२८५ + २ − ३५ + १ + १८४६०४० + B

= १८४९२९३ + B

गत चांद्रमास ९ × ३० = २७०, गत तिथि = ५

(चै. से वै., ज्ये, षाढ, श्रा., भाद्र.,आश्वि., कार्ति.,मार्ग.,पौष शुक्ल)

तिथिगण = २७०+५ = २७५, क्षय तिथि २७५ ÷ ६४ = ४

B = शेष अहर्गण = २७५ − ४ = २७१

अतः स्प अहर्गण = १८,४९,२९३ + २७१ = १८,४९,५६४+१ = १८,४९,५६५

वार = १८,४९,५६५ ÷ ७ =४; शुक्रवार से गिनने पर १ जनवरी को मंगलवार आता है।

उदाहरण ४—

श्री केदारदत्त जोशी ने अपनी ग्र.ला. टीका में पृ.४१ पर **करण कुतुहल ग्रंथानुसार** अहर्गण साधन किया है।

शक	१४४२	सोमवार
	११०५	शुक्रवार
गताब्द =	३३७	
	×१२	
सौर मास =	४०४४	
४०४४×२ =	८०८८	
	+६६	
	८१५४	
८१५४ ÷ ९०० =	−९	
	८१४५	
८१४५ ÷ ६५ =	१२५	अधिमास
४०४४+१२५ =	४१६९	चांद्रमास
	× ३०	

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चांद्र दिन = १२५०७०

१२५०७० + ३ = १२५०७३ ÷ ७०३ = १७७

१२५०७३ + १७७ = १२५२५० ÷ ६४ = १९५७ क्षयाहा

अहर्गण = १२५०७० − १९५७ = १२३११३

वार = १२३११३ ÷ ७ = ४ शेष सोमवार

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन—

गताब्द १४४२−११०५ = ३३७

३३७ ÷ १९ = १७ चक्र; चक्र शेष = १४

$$\text{अहर्गण} = १४\times३६५ + \frac{१४}{४} - \frac{२\times१७}{१५} + \frac{१७}{२२५} + १७\times६९४०+B$$

= ५११०+३ − २+०+११७९८०+०

अहर्गण = १२३०९१+१ = १२३०९२

वार = १२३०९२ ÷ ७ = शेष ४, सोमवार।

इस प्रकार दोनों अहर्गण में १२३११३ − १२३०९२ = २१ **दिवस का अंतर है।** इसकी शुद्धता की जाँच करते हैं।

वर्षमान ३६५।१५।२२।५७ × ३३७ = अहर्गण

३६५ × ३३७ = १२३००५

$\frac{१५}{६०}$ × ३३७ = ८४

शेष (२२।५७) × ३३७ = २

अहर्गण = १२३०९१

अतः हमारे द्वारा ज्ञात किया गया अहर्गण ही शुद्ध है।

उदाहरण ५—

करण कुतुहल की श्री सुधाकर द्विवेदी कृत टीका में दिये गये उदाहरण अनुसार अहर्गण साधन।

संवत् १६७६ चैत्रादि वर्ष शाके १५४१ चन्द्रे ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष १४ तिथि रविवार का अहर्गण साधन किया है।

१५४१ − ११०५ = ४३६ गताब्द

४३६ × १२ + गतमास १ = ५२३३ गत सौर मास

५२३३ × २ = १०४६६ + ६६ = १०५३२

१०५३२ ÷ ९०० = ११ लब्धि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१०५३२ – ११ = १०५२१ ÷ ६५ = १६१ लब्धि अधिमास

५२३३+१६१ = ५३९४ चांद्रमास

५३९४ × ३० + २८ (गततिथि) = १६१८४८ तिथिगण

$\frac{१६१८४८+३}{७०३}$ = २३० लब्धि

१६१८५१+२३० = १६२०८१ ÷ ६४ = २५३२ तिथि क्षय

अहर्गण = १६१८४८ - २५३२ = १५९३१६

वार = १५९३१६ ÷ ७ = ३ शेष शुक्रवार से गिनने पर रविवार आता है।

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन—

१५४१ - ११०५ = ४३६ वर्षगण ; ४३६÷१९ = २२ चक्र, चक्र शेष = १८

अहर्गण = चक्रशेष × ३६५ + $\frac{\text{चक्र शेष}}{४}$ – $\frac{२ \text{ चक्र}}{१५}$ + $\frac{\text{चक्र}}{२२५}$ + चक्र × ६९४० +B

$१८ \times ३६५ + \frac{१८}{४} - \frac{२ \times २२}{१५} + \frac{२२}{२२५} + २२ \times ६९४० + B$

= ६५७०+४ – २+१५२६८०+B

= १५९२५२+B

B = गतमास १ × ३० + २८ = ५८.

अतः अहर्गण = १५९२५२+५८ = १५९३१०-१ = १५९३०९

वार = १५९३०९ ÷ ७ = शेष ३ शनिवार।

दोनों अहर्गण में अंतर १५९३१९ – १५९३०९ = ७ दिन

शुद्धता की परीक्षाः—

३६५ × ४३७ = १५९१४०

$\frac{१५}{६०}$ × ४३६ = १०९

शेष (२२।५७) × ४३६ = ३

३६५.२५६३७५× ४३६ १५९२५२

B = +५८

शुद्ध अहर्गण = १५९३१०

हमारा अहर्गण इसी के तुल्य है। अतः शुद्ध एवं सही है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उदाहरण ६—

पंच सिद्धान्तिका के अनुसार अहर्गण साधन

शक १८०० चैत्र पूर्णमासी शनिवार का अहर्गण साधन।

१८०० − ४२७ = १३७३ गताब्द

१३७३ × १२ = १६४७६ सौर मास

$\frac{१६४७६\times७}{२२८}$ = ५०५ अधिमास

१६४७६+५०५ = १६९८१ मास योग

१६९८१ × ३०+१४ = ५०९४४४

$\frac{५०९४४४\times११+५१४}{३०३}$ = १८४९६ क्षय तिथि

तिथिगण ५०९४४४ − क्षय तिथि १८४९६ = ४९०९४८ अहर्गण।

यह अहर्गण रोमक तथा पौलिश सिद्धान्तानुसार है।

वार = ४९०९४८ ÷ ७ = ५ शेष; मंगलवार से गिनने पर शनिवार आता है।

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन—

१८०० - ४२७ = १३७३ गताब्द। १३७३÷१९ = ७२ चक्र; चक्र शेष = ५

अहर्गण = $५\times३६५ + \frac{५}{४} - \frac{२\times७२}{१५} + \frac{७२}{२२५} + ७२ \times ६९४० + B$

= १८२५+१−९+०+४९९६८०+१४ [∵B=० मास+१४ तिथि=१४]

अहर्गण = ५०१५११ + २ = ५०११५१३

वार = ५०१५१३ ÷ ७ = शेष ५; मंगलवार से निगने पर शनिवार।

वार मिलाने के लिए २ जोड़ा है।

शुद्धता की परीक्षाः—

३६५.२५६३७५ × १३७३ = ५०१४९७

गत तिथि = +१४

शुद्ध अहर्गण = ५०१५११

अतः हमारे द्वारा साधित अहर्गण ही शुद्ध है।

दोनों अहर्गण में ५०१५११ − ४९०९४८ = १०५६३ दिन का अन्तर है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उदाहरण ७—

ग्रह लाघव के अनुसार अहर्गण साधन

श्री केदार दत्त जोशी ने अपनी ग्र.ला. की टीका में पृष्ठ १४ पर अहर्गण साधन किया है।

संवत् २०३६ शक वर्ष १९०१ फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा शनिवार तदनुसार १ मार्च १९७९ शनिवार को काशि में सूर्योदय काल में अहर्गण साधन—

१९०१ − १४४२ = ४५९ गताब्द

४५९ ÷ ११ − ४१ चक्र ; चक्रशेष = ८

८ × १२ + ११ (गतमास) = १०७ सौर मास

$\frac{१०७+\text{चक्र}४१\times२+१०}{३३} = \frac{१९९}{३३}$ = ६ अधिमास

$\frac{\text{चक्र }४१}{६}$ + ३४०४ = ३४१० ÷ ६४ = ५३ क्षय तिथि!

अहर्गण = ३४१० − ५३ = ३३५७ .

क्योंकि समीप में ज्यैष्ठ मास में अधिमास होने वाला है अतः भास्कराचार्य के अनुसार पूर्व प्राप्त अधिमास ६ न ग्रहण करके ५ ही ग्रहण करना चाहिए। अतः—

(१०७+५) × ३० + १४ = ३३७४

$\frac{४१}{६}$ + ३३७४ = ३३८०

$\frac{३३८०}{६४}$ = लब्धि ५२ क्षय तिथि

अतः शुद्ध अहर्गण = ३३८० − ५२ = ३३२८

वार ज्ञान = ४१×५ + ३३२८ = ३५३३ ÷ ७ = ५ शेष मंगलवार से गिनने पर शनिवार।

संपूर्ण दिवस = ४१ × ४०१६ + ३५५३ = १६८१८९ अहर्गण

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन

गताब्द ४५९ ÷ १९ = २४ चक्र ; चक्र शेष = ३

अहर्गण = ३ ÷ ३६५ + $\frac{३}{४}$ − $\frac{२\times२४}{१५}+\frac{२४}{२२५}$+२४×६९४०+B

= १०९५ − ३ + १६६५६० + B

= १६७६५२ + B

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(गतमास × ३० + तिथिगण = ११×३०+१४ = ३४४

३४४ ÷ ६४ = ५ क्षय तिथि अतः B = ३४४–५ = ३३९)

अहर्गण = १६७६५२ + ३३९ = १६७९९१

वार = १६७९९१ : ७ = ५ शेष ; शनिवार (मंगलवार से) शुद्ध है।

दोनों अहर्गण में अंतर १६८१८९ – १६७९९१ = १९८ दिन

अहर्गण की शुद्धता का परीक्षण

३६५.२५६३७५ × ४५९ = १६७६५३
.+ B = ३३९
शुद्ध अहर्गण = १६७९९२

शुद्ध अहर्गण = १६७९९२

३६५ × ४५९ =	१६७५३५
४५९÷४ =	११४
शेष =	२
११ मास + १४ दिन =	३३९
∴ अहर्गण =	१६७९९०

अतः हमारा अहर्गण शुद्ध एवं सही है। इसी संख्या के तुल्य है।

उदाहरण ८—

केतकी गणित द्वारा अहर्गण साधन

आचार्य ने शक १८१५ चैत्र शुक्ल पूर्णमासी शनिवार का अहर्गण इस प्रकार ज्ञात किया है।

१८१५ – १८०० = १५ वर्ष गण

$\frac{१५}{१९}$ = ० गत चक्र

१५ × १२ +० = १८० सौर मास

$\frac{१८०+१०+०}{३३} = \frac{१९०}{३३}$ = ५ अधिमास

१८०+५ = १८५ चांद्रमास

१८५×३०+१४ – १५÷६० = ५५५०+१४ = ५५६४ तिथि गण

५५६४ ÷ ६४ = ८६ क्षय तिथि

अहर्गण = ५५६४–८६ = ५४७८

वार ज्ञान = (चक्र ० × ३ + ५४७८) ÷ ७ = ४ शेष से रविवार आता है अतः वार मिलाने के लिए एक कम करने पर स्प. अहर्गण = ५४७७ प्राप्त हुआ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन

१८१५–१८०० = १५ वर्षगण ; १५÷१९ = चक्र ० ; चक्र शेष = १५

अहर्गण = $१५ \times ३६५ + \frac{१५}{४} - \frac{२\times०}{१५} + \frac{०}{२२५} + ० \times ६९४० + B$

= ५४७५ + ३ + B

= ५४७८ + १४ (∵ B = ० +१४)

अहर्गण = ५४९२ – १ = ५४९१

वार = ५४९१ ÷ ७ = शेष ३ ; शनिवार आता है।

दोनों अहर्गण में ५४९१–५४७८ = २१ दिवस का अंतर आता है।

शुद्धता की परीक्षा

३६५.२५६३७५ × १५ = ५४७८

+ B = + १४

अहर्गण = ५४९२

अतः हमारा अहर्गण मान शुद्ध है।

३६५ × १५ =	५४७५
$\frac{१५}{४}$ =	३
शेष =	१४
अहर्गण =	५४९२

इस आधार पर केतकीग्रह गणित ग्रंथ की शुद्धता पर शंका पैदा होती है।

उदाहरण ९—

शक १८६५ चैत्र शुक्ल १० सोमवार का अहर्गण साधन करना है। पहले केतकी विधि द्वारा—

१८६५ – १८०० = ६५ वर्ष गण

$\frac{६५}{१९}$ = ३ गत चक्र ; चक्र शेष = ८

८ × १२ +० = ९६ सौर मास

$\frac{९६+१०+(३÷५)}{३३}$ = ३ अधिमास

$(९६+३) \times ३० + ९ - \frac{६५}{६०}$ = २९७८ तिथिगण

$\frac{२९७८}{६४}$ = ४६ क्षय तिथि ; अहर्गण = २९३२–३ = २९२९

स्पष्ट अहर्गण = २९७८ – ४६ = २९३२+२०८२० = २३७५२–३ = २३७४९

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वार = $\frac{३\times३+२९२९}{७}$ = ५ शेष ; बुधवार से आगे गिनने पर सोमवार

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन

१८६५–१८०० = ६५ वर्षगण

६५÷१९ = ३ गत चक्र ; चक्र शेष = ८

अहर्गण = ८×३६५ + $\frac{८}{४}$ − $\frac{२\times३}{१५}$ + $\frac{३}{२२५}$+३ × ६९४० + B

= २९२० + २ + २०८२० + B (B = ९)

= २३७४२ + ९

अहर्गण = २३७५१ − २ = २३७४९

वार = २३७४९ ÷ ७ = शेष ५ ; सोमवार

उदाहरण १०—

शक १८७५ चैत्र शुक्ल १० शनिवार का केतकी द्वारा अहर्गण साधन।

१८७५ − १८०० = ७५ वर्ष गण

७५ ÷ १९ = ३ चक्र ; चक्र शेष = १८

१८ × १२ +० = २१६ सौर मास

$\frac{२१६+१०+३÷५}{३३}$ = ६ अधिमास

२१६+६ = २२२ चांद्रमास

२२२ × ३०+९ − ७५÷६० = ६६६८ तिथिगण

६६६८ ÷ ६४ = १०४ क्षय तिथि

अहर्गण = ६६६८ − १०४ = ६५६४

वार = ३×३ + ६५६४ = ६५७३ ÷ ७ = ०

वार शुद्ध करने के लिए ३ जोड़ा। जिससे शनिवार आता है।

अतः अहर्गण = ६५६४+३ = ६५६७

अतः स्पष्ट अहर्गण = ६५६७+३×६९४० = २७३८७

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन

अहर्गण १८ × ३६५ + $\frac{१८}{४}$ − $\frac{२\times३}{१५}$ + $\frac{३}{२२५}$+३ × ६९४० + B

= ६५७० + ४ + २०८२० + B

= २३७९४ + ९ (B = ९)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अहर्गण = २७४०३ − २ = २७४०१

वार = २७४०१ ÷ ७ = शेष ३ ; अतः शनिवार

दोनों अहर्गण में २७४०१ − २७३८७ = १४ दिन का अंतर है।

शुद्धता की परीक्षा

३६५.२५६३७५ × ७५ = २७३९४

+ B = ९

स्पष्ट अहर्गण = २७४०३

अतः हमारा अहर्गण शुद्ध है। वार मिलाने के लिए हमने २ घटाया है।

उदाहरण ११—

केतकी ग्रहलाधवा तथा मेरे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन—

केतकी ग्रहगणित की टीका में अंत में शक १८०० से पूर्व का अहर्गण साधन किया है। शक १४४२ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का अहर्गण शक १८०० से ज्ञात किया है जिसका मान ५८४२ + १८ × ६९४० = १३०७६२ ज्ञात किया है।

ग्रह लाघव से अहर्गण

१८०० − १४४२ = ३५८ गताब्द

३५८ ÷ ११ = ३२ चक्र ; तथा शेष का २२५० अहर्गण होता है।

अतः अहर्गण = ४०१६ × ३२ + २२५० = १३०७६२ दिवस अहर्गण

हमारे सूत्र से अहर्गण साधन

१८०० − १४४२ = ३५८ वर्षगण

३५८ ÷ १९ = १८ चक्र ; चक्र शेष = १६

$$\text{अहर्गण} = १६ \times ३६५ + \frac{१६}{४} - \frac{२\times १८}{१५} + १८ \times ६९४० + B$$

= ५८४० + ४ − २ + १२४९२०

अहर्गण = १३०७६२

अतः केतकी, ग्रहलाघव तथा हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण एक समान आता है।

उदाहरण १२—

आर्यभट के अनुसार कलि आरंभ से अहर्गण। श्री केदारदत्त जोशी ने ग्र.ला. टीका में पृ. ४८ पर अहर्गण साधन किया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शकादि से गत वर्ष	=	३१७९
शक	=	१४४२
कलिगत वर्ष	=	४६२१
सौर मास = ४६२१ × १२	=	५५४५२
अधिमास	=	१७०४
चान्द्रमास	=	५७१५६
चान्द्र हा. ५७१५६×३०	=	१७१४६८०
क्षयाहर	=	२६८३०
अहर्गण	=	१६८७८५०+१ = १६८७८५१

हमारे सूत्र द्वारा अहर्गण साधन—

३१७९+१४४२ = ४६२१ गताब्द÷१९ = २४३ चक्र ; चक्रशेष = ४

$$\text{अहर्गण} = ४\times३६५+\frac{४}{४} = \frac{२\times२४३}{१५} + \frac{२४३}{२२५} + २४३ \times ६९४०$$

= १४६०+१ − ३२ + १ + १६८६४२०

अहर्गण = १६८७८५० + १ = १६८७८५१

दोनों अहर्गण तुल्य हैं।

विभिन्न आचार्यों ने वर्ष मान भिन्न-भिन्न लेकर महायुग की सावन दिन संख्या (अहर्गण) बताई है।

(१) वराह वर्षमान	३६५.२५८७५	से एक महायुग में	१,५७७,९१७,८००	सावनदिन
(२) आर्यभट वर्षमान	३६५.२५८६८०६	,,	१,५७७,९१७,५००	,,
(३) ब्र.सिद्धा./सि.शिरो.वर्षमान	३६५.२५८४३७५	,,	१,५७७,९१६,४५०	,,
(४) आधुनिक सूर्य सिद्धा.वर्षमान	३६५.२५८७५६५	,,	१,५७७,९१७,८२८	,,
(५) महासिद्धान्त(आर्य.) वर्षमान	३६५.२५८६९०३	,,	१,५७७,९१७,५४२	,,
(६) आधुनिक वर्षमान	३६५.२५८६९०३	,,	१,५७७,९१७,५४२	,,

हम यहाँ देखते हैं कि विभिन्न आचार्यों द्वारा वर्षमान जो लिया गया है उसको महायुग के वर्ष ४३२०००० से गुणा कर देने से उनके द्वारा बताये गये एक महायुग के अहर्गण (सावन दिन) का मान प्राप्त हो जाता है।

अतः मैंने भी अहर्गण की शुद्धता को परखने के लिए आधुनिक वर्षमान (वेध शुद्ध) को अभीष्ट गताब्द (या अहर्गण) से गुणा करके प्राप्त सावन दिन संख्या को शुद्ध अहर्गण मान कहा है तथा इसी को शुद्धि परखने के लिए उपयोग में लिया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेरे द्वारा प्रतिपादित अहर्गण सूत्र की अन्य सूत्रों से विशेषतायें

(१) मेरे सूत्र से दिनों की (अहर्गण) संख्या शुद्ध आती हैं, क्योंकि इसका आधार वर्षमान × गताब्द है जो सभी आचार्यों ने अपने-अपने ग्रंथों में कल्प (कुदिन), महायुग अथवा इष्ट वर्ष से आरंभ के लिए कही हैं।

(२) अहर्गण का सही मान जाँच (Check) करने का सूत्र भी दिया गया है जिसका आधार वटेश्वर सिद्धान्त तथा सभी आचार्यों की गणनायें हैं। इस जाँच सूत्र के कारण अहर्गण की गणना में अनर्गल त्रुटि नहीं रह सकती।

(३) अधिमास की गणना का चक्रव्युह नहीं है। केवल क्षय दिवस की गणना यदि करनी पड़े तो उसमें त्रुटि अधिक नहीं होकर नगण्य होगी।

(४) अधिमास तथा क्षय दिवस, दोनों की गणना की उपेक्षा की जा सकती है। मात्र ईसवी सन्, अंग्रेजी मास तथा तारीख द्वारा अहर्गण की गणना कर सकते हैं जिससे कोई त्रुटि की संभावना नहीं होती।

(५) अहर्गण गणना के लिए तीन विकल्प हैं:—

(अ) शक संवत् तथा भारतीय मास तथा तिथि की गणना द्वारा।

(ब) शक संवत् तथा मेष संक्रान्ति से दिन गणना द्वारा।

(स) ईसवी सन् तथा अंग्रेजी मास व तारीख की गणना द्वारा।

(६) जिन ईसवी वर्षों को ४०० का पूरा-पूरा भाग न जाने के कारण लीप वर्ष नहीं माना जाता उनका संस्कार भी करने से अहर्गण गणना अधिक शुद्ध होती है।

(७) किसी भी वर्ष से किसी भी वर्ष तक की अहर्गण गणना कर सकते हैं। गताब्द संख्या अधिक बड़ी होने पर भी अशुद्धि नहीं हो सकती।

(८) वटेश्वराचार्य ने अपने सिद्धान्त में मध्यमाधिकार नवम प्रश्नविधि अध्याय में कहा है कि जो व्यक्ति विशेष अधिमास तथा तिथिक्षय के बिना रवि दिवसों से द्युराशि (अहर्गण) साधित करता है वह "तन्त्रज्ञ" है। यथा—

"आनयति यो द्युराशिं विनाधिमासैस्तथा तिथि प्रलयैः।
रवि दिवसेभ्योऽस्माद् द्युचराद्यं सो हि तन्त्रज्ञः ॥२॥"

अतः मैंने आचार्य के उक्त वचनों के अनुरूप अहर्गण साधन का सूत्र प्रतिपादित करके तन्त्रज्ञ कहलाने के योग्य तथा अधिकारी हूँ।

इसी प्रकार वटेश्वराचार्य ने कहा है—

"अधिमासैः शशिमासैरवमैः कुदिनैर्विनाऽत्र य आनयति।
द्युगणं रविदिवसेभ्यो वेत्ति प्रकटं स मध्यगणितम्॥३॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्य सूत्रों की त्रुटियाँ तथा कमियाँ

(१) अधिमास तथा क्षय दिवस (तथा मास) की गणनायें समानुपाति नहीं होती हैं। वास्तविक अधिमास, क्षय तिथि (तथा मास) गणना काल से आगे पीछे भी हो जाती है।

(२) गणेशदैवज्ञ तथा केतकरजी जैसे सूत्रों में अधिमास ज्ञात करने के लिए ३३ का भाग तथा क्षय दिवस ज्ञात करने के लिए ६४ का भाग देना स्वल्पांतर से होने से भागफल से प्राप्त गणनायें अशुद्ध हो जाती है।

(३) पूर्वाचार्यों का वर्षमान $८\frac{१}{२}$ पल (लगभग) अधिक होने से लगभग ४५० वर्ष में एक दिन की गणना अधिक होती है।

(४) अभीष्ट वर्ष से आगे के वर्षों के अहर्गण ज्ञात करने के सूत्रों द्वारा उससे पीछे के वर्षों के अहर्गण की गणना के लिए सूत्र को बदलना पड़ता है, जैसे केतकर महोदय ने किया है।

(५) गताब्द की संख्या अधिक होने से अहर्गण गणना के मान में त्रुटि आ जाती है।

—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुबन्ध II

अंत्या	*dhrti* ×*radius/day-radius.*
अंश	(1) Part, Fraction (2) Degree(^{0})
अंशक	Degree
अंशुमत्	Sun
अक्ष	Five
	Latitude. [The term Aksa is an abbreviation of the complete term Aksonnati, meaning "the inclination of the (earth's) axis (to the plane of the celestial horizon)", i.e., the latitude of the place, Aksa = axis, unnati = inclination.]
अक्षकर्ण	The hypotenuse of the equinoetial midday shadow (of the gonomon).
अक्षकोटि	Colatitude. Also, sometimes, the Rsine of colatitude
अक्षक्षेत्र	Latitude-triangle.
अक्षगुण	The Rsine of latitude.
अक्षचाप	The arc of latitude, or simply latitude.
अक्षचापगुण	The Rsine of latitude.
अक्षजीवा	The Rsine of latitude
अक्षज्या	The Rsine of local latitude
अक्षदृक्कर्म	Arc of the ecliptic lying between planet's hour circle and circle of position.
	Visibility correction due to local latitude.
अक्षभाग	The Degrees of latitude.
अक्षवलन	See Valana.
	Angle subtended at the eclipsed body by the arc joining the north celestial pole and the north cardinal point.
	Deflection of equator from prime vertical on horizon

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

of eclipsed body.

Angle subtended at a heavenly body on the ecliptic by the arc joining the north pole of the cel. equator and the north point of the cel. horizon.

अक्षश्रुति Hypotenuse of the equinoctial midday shadow. Same as *Palakarna.*

अक्षस्य वलनम् Aksavalana. See Valana.

अक्षाभा Equinoctial midday shadow (of the gnomon).

अक्षांश The latitude of a place, terrestrial latitude, or simply latitude.

Local latitude in degrees

अक्षांशक Same as Aksamsa.

अक्षोन्नति Inclination of the (Earth's) axis, i.e., the latitude of the place.

अगत Untraversed portion; portion to be traversed.

अग्नि Three.

अग्र (1) End, (2) Residue, remainder (3) Agra.

अग्रगुण The Rsine of Agra.

अग्रज्या Rsine of the amplitude.

अग्रा The arc of the celestial horizon lying between the east point and the point where the heavenly body concerned rises; or the Rsine thereof, which is equal to the distance between the east-west line and the risingsetting line of the heavenly body concerned.

Amplitude, or Rsine of amplitude, of a heavenly body at its rising. Also used for *agra* or upright.

अग्राफल Same as *Kotiphala.*

अंग Six

अंगारक Mars

अङ्गुल Finger-breadth. A unit of linear measurement defined by the breadth of eight barley corns.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अचल	(1) Seven (2) Fixed. To make acala in astronomy means to apply the method of successive approximations.
अज	The sign Aries.
अतिवक्र	A planet is said to be ativakra when it is in the middle of its retrograde motion.
अऋजुकर्ण	*Sighrakarna* for the beginning of retrograde motion.
अदयार्क्	The Sun's position at the time of star's heliacal rising.
अद्रि	Seven
अधिकमास	Intercalary month. The Intercalary moths denote the excess of the lunar (synodic) months over the solar months in a certain period. Thus intercalary months in a yuga=lunar months in a yuga solar months in a yuga. A true intercalary month is one in which the Sun does not pass from one sign into the next.
अधिकाब्द	Intercalary year, i.e., a collection of twelve intercalary months. See Adhikamasa.
अधिकाह	Intercalary day, i.e., intercalary tithi.
अधिदिन	Intercalary day.
अधिमास	Intercalary month. See Adhikamasa.
अधिमासक	Same as Adhimasa.
अधिमासशेष	The residue of the intercalary months.
अधिवर्ष	12 intercalary months.
अध्व	The distance of a place from the prime meridian.
अध्वा	Same as Adhva.
अध्वान	Same as Adhva.
अनऋजु	Retrograde
अनुवक्र केंद्र	*Sighrakendra* for the beginning of *anuvakra* motion.
अनुदिश्	Parallel.
अनुपात	Proporation.
अनुराधा	Delta Scorpionis.
अनुलोम	Direct. A planet is said to be anuloma when its motion is direct, i.e., from west to east.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुवक्र	Reretrograde.
अन्तराल	Interval.
अन्त्यगुण	See Antyajiva.
अन्त्यजीवा	The current Rsine-difference, i.e., the Rsine-difference corresponding to the elementary arc occoupied by a planet. In Hindu trigonometry a quadrant of a circle is divided into 24 equal parts, called elementary arcs.
अन्त्यज्या	Same as Antyajiva.
अन्त्यफल	Maximum correction due to mandocca or maximum correction due to sighrocca. The former is equal to the radius of the manda epicycle and the latter is equal to the radius of the sighra epicycle.
अन्त्यफलज्या	R sine of maximum correction.
अन्त्यमौर्वी	Same as Antya-jya.
अन्त्या	dhrtixradius / day-radius
अपक्रम	Declination.
अपक्रमगुण	The Rsine of declination.
अपक्रमज्या	The Rsine of declination
अपक्रमधनु	The arec of declination, or simply declination.
अपक्रममंडल	Eliptic.
अपक्रमवृत्त	The ecliptic.
अपक्रान्ति	Declination.
अपक्रान्तिचाप	The arc of declination.
अपक्रान्तिभाग	Declination.
अपगम	Declination.
अपचय	Decrease.
अपम	Declination.
अपमण्डल	Ecliptic.
अपमधनु	The arc of declination, i.e., declination.
अपमवलय	Same as *Apakramavrtta.*
अपमो गुणः	The Rsine of declination.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपर	(1) West. (2) Aparhna or afternoon.
अपरा	West.
अपराह्न	Afternoon.
अपवर्त	The greatest common divisor; abrader.
अब्दप	The lord of the year, i.e., the planet which is the regent of the first day of the year.
अभुक्तांश	Untraversed portion.
अमरपतिदिक्	East.
अमावस्या	Day of conjunction of Sun and Moon.
अमृततेजस्	The Moon.
अम्बरोरुपरिधि	The word ambara means, according to Hindu astronomers, "that part of the sky which is illuminated by the rays of the Sun." The word ambaroruparidhi like wise means "the periphery of the illuminated sphere of the sky".
अयन	The northward or southward course of a planet, particularly the Sun. The ayana of a planet is north or south according as the planet lies in the half-orbit beginning with the tropical sign Capricorn or in that beginning with the tropical sign Cancer. Period from one solstice to the next.
अयन चलन	Precession of the equinoxes.
अयन दृक्कर्म	Arc of the ecliptic lying between planet's hour circle and circle of celestial longitude. Visibility correction due to ecliptic deviation
अयन वलन	Deflection of ecliptic from the equator on horizon of eclipsed body. Angle subtended at the eclipsed body by the arc joining the north poles of the equator and the ecliptic.
अयनचलन	Precession of the equinoxes.
अयनसंधि	Points of the ecliptic lying ninety degrees distant from the *golasandhi* points.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अयनांत Solstice.

अयनांश Amount of precession of equinoxes (in degrees)

अयुक्पद Odd quadrant.

अयुत Ten thousand.

अर्क (1) The Sun. (2) Twelve.

अर्कज Saturn.

अर्कपुत्र Saturn.

अर्कवर्ष Solar year.

अर्कसम्भवमास Solar month.

अर्कसुत Saturn.

अर्काग्रा The Sun's Agra, See Agra.

अर्कोदय Sunrise.

अर्धकर्ण Semi-diameter (i.e. radius.)

अर्धचतुर्थ Three and a half (3½). Literally, four minus half.

अर्धज्या Half-chord or Rsine.

अर्धपञ्चक four and a half (4½). Literally, five minus half.

अर्धपञ्चम Four and a half (4½). Literally, five minus half.

अर्धभोगी A *naksatra* whose lengun is equal to one and half of the Moon's mean daily motion.

अर्धयाम्योत्तर वृत्त Celestial meridian.

अर्धरात्र Midnight.

अर्धरात्रिक Calculations from the midnight.

अर्धविस्तर Semidiameter, radius, or 3438'.

अर्धास्तमित Halfset.

अवनति (1) Meridian zenith distance. (2) Celestial latitude (3) Parallax in celestial latitude.
Moon's true latitude as corrected for parallax.

अवनतिलव The degrees of meridian zenith destance.

अवनतिलवजीवा The Rsine of avanatilava.

अवनतिलिप्तिका Avanati in minutes of arc.

अवनाम Zenith-distance.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवम Omitted lunar days or omitted tithis.

अवमदिन An omitted lunar day.

अवमरात्र Omitted lunar days, or omitted tithis.

अवमरात्रशेष The residue of the omitted lunar days.

अवमशेष The residue of the omitted lunar days.

अवलंबज्या Same as *Lambajya.*

अवलम्बक (1) Plumn (2) The Rsine of colatitude.

अवलम्बकगुण The Rsine of colatitude

अवशेष Remainder

अविशिष्ट Obtained by applying the method of successive approximations.

अविशेषकर्ण The distance (lit. hypotenuse) obtained by the method of successive approximations.

अविशेषकर्म The method of successive approximations.

अविशेषकलाकर्ण The distance (lit. hypotenuse) of a planet, in minutes, obtained by the method of successive approximations.

अविशेषण To perform Avisesakarma.

अविशेषतिथि The tithi (i.e., the time of apparent conjunction of the sun amd Moon) obtained by the method of successive approximations.

अविशेषनाडी The nadis obtained by the method of successive approximations.

अविशेषविधि See Avisesakarma.

अविश्लिष्ट Same as Avisista.

अविषम Even

अव्यार्धभोगि

अश्रज The red-coloured planet Mars.

अश्वि Two.

अश्विन् Two.

अष्टि Sixteen

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

असकृत् Repeatedly or by using the method of successive appmy other epoch).

अहर्मान The length of day.

अहोरात्र A day and night, a nychthemeron.

अहोरात्र वृत्त Diurnal circle.

अहोरात्रज्या Same as *Dyujya*.

अहोरात्रदल Same as Ahoratrardha-viskambha.

अहोरात्रवृत्त Diurnal circle.

अहोरात्रार्ध Same as Ahoratrardha-viskambha.

अहोरात्रार्धविष्कम्भ Semi-diameter of the diurnal circle (of a heavenly body, particularly the Sun), i.e., the day radius.

अहोरात्रासु The number of asus in a day and night, i.e., 21600

अह्नां गणः Same as Ahargana

अह्नां निचयः Same as Aharagana.

आकाश Zero

आदित्य The Sun.

आद्यार्ध One and a half.

आप्य Purvasadha, the twentieth naksatra.
The naksatra Purvasadha, which is presided over by Apa.

आभा Same as *Bha*.Shadow of the gnoman.

आभामंडल The shadow-circle. See *Bhavrtta*.

आयाम Length.

आर Mars

आर्कि Saturn.

आशा (1) Direction (2) Ten

आसन्न Approximate; *asphuta*

आस्तमिक Pertaining to sunset.

आस्फुजित् Venus

आह्निक (1) Pertaining to day (2) A special astronimical term used by Bhaskara I. See MBh, i. 16&18.

इन (1) Sun (2) Twelve

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन्दु	(1) The Moon. (2) One.
इन्दूच्च	The Moon's apogee, *i.e.*, the remotest point of the Moon's orbit.
इन्द्वग्र	Moon's *agra.* See *Agra.*
इन्द्वहः	Lunar day or tithi.
इलमोर्वि	Same as *Kujya.*
इषु	Rversine i.e., R-R cosine of an angle where R is the radius of the deferant circle (R = 3438' according to *Aryabhatiyam)* Celetial latitude.
इष्ट	(1) Given, desired, or chosed at pleasure. (2) *Ista-graha, i.e.,* desired or given planet.
इष्ट-काल	Desired time or given time.
इष्ट-ग्रह	Desired or given planet.
इष्टकला	Same as *Lagnakala.*
इष्टज्या	Antya at a given time.
इष्टासु	Given *asus.*
उच्च	*Ucca* (apex) is of two kinds : (1) *Mandocca* (apex of slowest motion), and (2) *Sighrocca* (Apex of fastest motion). The *mandocca* is that point of a planet's orbit which is at the remotest distance and where the motion of the planet is slowest. In the case of the Sun or Moon, it is the apogee; and in the case of the other planets it is the apogee or aphelion, the geocentric longitude of the apogee being equal to the heliocentric longitude of the aphelion. The *sighrocca* of a superior planet (Mars, Jupiter, or Saturn) is defined as the mean Sun; that of an inferior planet (Mercury or Venus) is an imaginary body which is supposed to more in such a way that its direction from the Earth is always approximately the same as that of the actual planet from the Sun.
उच्चभुक्ति	(Daily) motion of the ucca; apsidal motion.
उच्चवृत्त	The ecentric circle.
उज्ज्या	Same as *Unnatajya,* Rsine of altitude.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उडुवृत्त Same as *Bhavrtta.*

उत्क्रम (1) Reverse order. (2) *Utkramajva.* See *Utkramajya.*

उत्क्रमगुण Same as Utkramajya.

उत्क्रमजीवा Same as *Utkramajya.*

उत्क्रमज्या Rversedsine. Rversin $\theta \equiv$ Radius $\times (1-\cos\theta)$.

उत्क्रमभवा जीवा Same as *Utkramajya.*

उत्क्रमज्याफल Result (or correction) derived with the help of the utkramajya of a certain arc.

उत्तर North.

उत्तरगोल Northern hemisphere, i.e. the hemisphere lying to the north of the equator.

उत्तरायन Northern course of the sun along the ecliptic.

उदक् North.

उदग्गोल Northern hemisphere.

उदय (1) The rising of a planet on the estern horizon. (2) Heliacal rising of a planet. (3) *Udaya-lagna, i.e.,* the rising point of the ecliptic. (4) Addition, as in *Ksayodayau* (subtraction and addition).

उदयकेंद्र *Sighrakendra* for heliacal rising of a planet.

उदयज्या The agra of the rising point of a planet's orbit.

उदयज्या Rsine of amplitude for rthe rising point of the ecliptic, called the orient sine.

उदयप्राण Times of rising of the signs measured in asus.

उदयप्राण Duration of the rising of the signs (*rasis*) in *prana* (or asu) unit of time; *udayasu.*

उदयभोग Planet's motion from its one rising to the next.

उदयराशिप्राणपिंड The time in asus of rising of the rising sign.

उदयलग्न The rising point of the ecliptic, i.e., the horizon-ecliptic point in the east.

The rising point of the ecliptic; the *udayalagna* of a heavenly body is the point of the ecliptic which rises when the heavenly body rises.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उदयांतर संस्कार The correction to the cel. longitude on account of the equation of time due to obliquity of the ecliptic; complementary to the *bhujantara.*

उदयार्क The sun's position at the time of star's heliacal rising.

उदयासु Times of rising (of the signs) in asus.

उदयास्त सूत्र The rising-setting line.
Line of intersection of diural circle and horizon.

उदयास्तमय Rising and setting.

उदवृत्त Same as *Unmandala.*

उदवृत्त Equinoctial colure; east and west hour circle; 6'O clock circle.

उदिचि North.

उन्नत Used for *Unnatakala;* also for the arc of *unnatajya* (or altitude).

उन्नतकाल Distance from horizon in time.

उन्नतकाल Time elapsed since sunrise in the forenoon or to elapse before sunset in the afternoon.

उन्नतज्या Rsine of altitude. Also used for Rsin *(unnatakala ±cara),*

उन्नतांश Complement of zenith distance.

उन्नतांश ज्या R sine of bove.

उन्नति Elevation
Altitude.

उन्मंडल Six o'clock circle.

उन्मीलन Emersion; the end of total eclipse.

उपप्लुति Eclipse, *grahana, uparaga*

उपप्लुति Eclipse.

उपराग Eclipse

उर्विजिवा Same as *Kujya.*

उष्णतेजस् Sun

उष्णदीधिति The Sun.

एकदिक्क Same direction.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऐकायनगत	Bodies having the same declination.
ऐन्द्राग्न	The name of the sixteenth naksatra Visakha.
ऐन्द्री	The east, eastern direction (presided over by Indra).
ओज	Odd; usually w.r.t. 1st and 3rd quadrants.
कक्षा	Orbit (or path) of a heavenly body.
कक्षावृत्त	Mean orbit of planet.
कक्ष्या	Orbit of a planet.Orbit; the deferent; the concentric.
कक्ष्यामंडल	Same as *Kaksya.*
कदम्ब	Pole of ecliptic.
कदम्बप्रोत	Secondary to the ecliptic.
कन्यका	The sign Virgo.
कपाल	Hemisphere.
कर	Cubit.
करण	The name of one of the five principal elements of the Hindu Calendar. Time during which Moon gains 6° over the Sun. Half of a lunar day (*tithi)*
कर्कट	(1) A pair of compasses (2) The sign Cancer.
कर्ण	(1) The hypotenuse of a right-angled triangle. (2) The distance of a heavenly body from earth.
कर्णभुक्ति	True daily motion of a planet derived with the help of the planet's distance.
कर्णसूत्र	The hypotenuse-line.
कला	Minute of arc.
कला	A unit of measurement of angle; 1/60the of one degree i.e. 1 minute of arc; *lipta, liptika.*
कलाकर्ण	The true distance of a planet in minutes of arc.
कलानां शेषः	The residue of the minutes (kalasesa)
कलालिप्ता	Kalamsa reduced to liptas.
कलिका	Same as Kala.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कलियुग According to Bhaskara I. Kaliyuga is a period of 1080000 solar years. The current Kaliyuga began on Friday, February 18, B.C. 3102, at sunrise at Lanka.
Last of the *yugas* of a *mahayuga;* duration: 4,32,000 years.

कल्प Addition

कल्प A period of 14 manus. See Manu.

कार्मुक Arc.

काल Time

कालभाग Degrees of time. A degree of time is equivalent to 60 asus or 10 vinadis.

कालांश Degrees indicating time.
Time-degrees; degrees measured on the equator

कालात्मक वलक Oblique ascension of the lagna.

कालात्मक सहस्रांशु Oblique ascension of the Sun.

काश्यप Earth; one.

काष्ठ (1) Arc. (2) Direction.

काष्ठा Direction.
A unit of time; arc; direction.

कीलक Gnomon.

कीलकाग्रगुण Same as Sankvagra.

कु Earth

कुगुण Same as *Kujya.*

कुज The horizon; Mars.

कुजाशा South

कुज्या The earth-sine; the *jya* of the arc of the diurnal circle lying between the horizon and the six o'clock circle.

कुटिल Retrograde.
Planet's sighrakarma when it takes up retrograde or reretrograde motion.

कुटिलकर्ण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुट्ट	Pulveriser. See Kuttakara.
कुट्टन	The process of solving a pulveriser (Kuttakara)
कुट्टाकार	Pulveriser. Equlations of the type N=ax+r=by+s (1) or ax–c=by (2) are called in Hindu mathematics by the name kuttakara. A kuttakara (pulveriser) is caled sagra (residual) or niragra (nonresidual) according as it is of the type (1) or (2).
कुमध्य(रेखा)	The Prime meridian. Also called Lekha or Rekha.
कुदिन	Civil day
कुम्भ	The sign Aquarius.
कुलीर	The sign Cancer.
कुवासर	Terrestrial civil day, or simply civil day.
कृत	Four
कृतयुग	First of the four yugas constituting a *mahayuga;*
कृति	Square.
कृत्तिका	The name of the third naksatra.
कृष्णपक्ष	Dark half of a lunar month
केंद्र	(1) Anomaly. The kendra is of two kinds: manda-kendra and sighrakendra. The manda-kendra of a planet is equal to "the longitude of the planet minus the longitude of the planet's mandocca (apogee)," and the sighra-kendra of a planet is equal to the "longitude of the planet's sighrocca minus the longitude of the planet." (2) Centre.
केंद्रवृत्त	Ecentric circle of planet.
केतु	Descending node of the moon; 180° - *Rahu*
केन्द्र	A nomaly of a heavenly body, angular distance from its *mandocca* (apogee) or *sighrocca* (apex point of conjunction).
केन्द्रज्या	The Rsine of kendra.
केन्द्रभुक्ति	The daily motion (or change) of a planet's anomaly *(kendra);* or anomalistic motion.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कोटि See Bahu.

(1) the upright of a right-angled triangle. (2) the *Koti* corresponding to a planet's anomaly. If θ be the anomaly (or any arc or angle) then the corresponding *Koti* is equal to $90^o-\theta$, $\theta-90^o$, $270-\theta$, or $\theta-270^o$, according as $\theta < 90^o$, $90^o < \theta\ 180^o$, $180^o < \theta < 270^o$, or $270^o, < \theta < 360^o$.

Upright; complement of the *bhuja.*

कोटिका Same as Koti.

कोटिज्या R cosine.

कोटिफल The result obtained by multiplying the Rsine of koti due to a planet's kendra by the epicycle and dividing the resultting product by 360.

The result obtained by multiplying the Rsine of *Koti* due to a planet's *kendra* by the tabulated epicycle and dividing the product by 80.

कोटिसाधन Same as Kotiphala.

कोटिसूत्र The thread or line denoting the upright of a right-angled triangle; a perpendicular line.

कोण Angle.

कोण (दिक्) Corner direction; the north-east, north-west, south-east or south-west direction.

कोणभा Corner shadow; shadow for a corner direction.

कोण शंकु R sine altitude from intermediary vertical circle.

कोणमण्डल Intermediary vertical circle.

कोणवृत्त Same as Konamandala.

कोणशंकुतल Base of konasanku.

क्रम (1) Serial order. (2) Odd quadrant.

क्रमगुण Same as Kramajya.

क्रमज्या Rsine (=Radius×sine). Same a jya.

क्रमध्य (रेखा)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्रमभवा जीवा Same as *Kramajya.*

क्रांतिज्या R sine declination

क्रांतिपात Equinoxes, points of intersection of the ecliptic and the cel. equator; *visuva, visuvat*

क्रांतिमण्डल Ecliptic.

क्रान्ति Declination.

क्रिय The sign Aries.

क्षण A unit of time' 2 *ghatis* (according to *Surya siddhanta).*

क्षपाभर्तृ Moon.

क्षमादिन Civil day.

क्षय Subtraction.

क्षितिगुण Same as Ksitijya.

क्षितिज Mars.

क्षितिजगुण Same as Ksitiguna.

क्षितिजा A corrupt form of Ksitijya.

क्षितिजीवा Same as Ksitijya.

क्षितिज्या Earthsine. The distance between the rising-setting line and the line joining the points of intersection of the diurnal circle and the six o'clock circle.

क्षितिज्या Same as *Kujya.*

क्षितिज Horizon.

क्षितिधर Seven

क्षितिपुत्र Mars

क्षितिमौर्वी Same as Ksitijya.

क्षितिसुत Mars.

क्षिप्ति Celestial latitude.
Same as *Viksepa.*

क्षिप्तिलिप्तिकाः The minutes of celestial latitude.

क्षेत्र The ecliptic.

क्षेत्रनिर्माण Celestial longitude.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षेप	Quantity to be added. Used for *Viksepa* (celestial latitude). Additive or subtractive correction
क्षोणीधर	Seven
खकक्ष्या	Orbit of the sky.
खण्ड	Half.
खमध्य	Meridian.
खमध्य	Zenith
खश्रवण	Hypotenuse of the meridian shadow.
खस्वस्तिक	Zenith.
खाक्षा	Meridian zenith distance.
खेचर	Planet
गगन	(1) Meridian (2) Zero
गगनस्य वृत्तं	The circumference of the sky. See Ambaroruparidhi.
गण	Used in the sense of Bhagana.
गणित	Calculation, computation.
गणितप्रक्रिया	Calculation, computation.
गत	Traversed, elapsed, past, preceding.
गति	Motion. Generally used in the sense of "daily motion."
गत्यन्तर	Motion-difference.
गन्तव्य	To be traversed, to come, succeeding.
गुण	(1) Multiple or multiplication (2) Rsine (3) Three
गुण	Same as *Jya*.
गुणक	Multiplier
गुणकार	Multiplier, coefficient.
गुणफल	Bahuphala and kotiphala.
गुणप्रतान	R Sine
गुरु	Jupiter. Also called Devaguru or Devapujita.
गृह	Sign
गेह	Sign.
गो	The sign Taurus.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोल	Hemisphere; from first point of Aries to first point of Libra, or from first point of Libra to first point of Aries. Globe, sphere.
गोलखण्ड	The Semidiameter of the (celestial) sphere. (गोल = sphere, खण्ड = half)
गोलभेद	Same as Golakhanda. (भेद = खण्ड = half)
गोलसंधि	Tht points where the orbit of a planet crosses the equator.
ग्रह	(1) Planet. (2) Eclipse. (3) a moving heavenly body.
ग्रहगणित	Astronomy.
ग्रहचार	Motion of a planet.
ग्रहण	Eclipse.
ग्रहण	Eclipse; *uparaga, upapluti.*
ग्रहणमध्य	The middle of an eclipse.
ग्रहतनु	A special term used by Bhaskara I.
ग्रहदेह	Same as Grahatanu.
ग्रहमध्य	Middle of an eclipse.
ग्रहयुति	Conjunction of planets.
ग्रहयोग	Conjunction of planets.
ग्रहसद्वर्त्म	True motion of a planet.
ग्रहाणां तनुः	Grahatanu.
ग्रहोपराग	Eclipse.
ग्रास	(1) Eclipse. (2) Measure of an eclipse. (3) Begining of an eclipse.(4) The eclipsed portion.
ग्रासमध्य	The middle of an eclipse.
ग्रासमान	Magnitude of eclipse.
ग्रासशलाका	The needle (or line) of length equal to the portion of the diameter eclipsed.
ग्रासादि	The beginning of an eclipse.
ग्राहक	The eclipsing body, the eclipser.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्राहक	*chadaka*
ग्राहकार्ध	Half the diameter of the eclipsing body.
ग्राह्य	The eclipsed body. *chadya*
ग्राह्यबिम्ब	The disc of the eclipsed body.
ग्राह्यमण्डल	The circle of the eclipsed body.
घटिका	Same as *Ghati.* Unit of time, 24 minutes.
घटिका	A unit of time; 1/60th part of a day (24 minutes); *nadi, nadika; ghati.*
घटी	A unit of time equivalent to 24 minutes.
घन	Cube
घात	Product, multiplication.
चंद्रकर्ण	Distance of Moon from earth
चंद्रभगण	Revolutions of Moon
चंद्रमस्	The Moon.
चक्र	Circle, twelve signs, or 360°.
चक्रलिप्ता	The number of minutes of arc in a circle, i.e., 21600.
चक्रांशक	The number of degrees in a circle, *i.e.,* 360°.
चक्रार्ध	Half of a circle, *i.e.,* 21600, 180°
चतुरस्र	Quadrilateral.
चन्द्र	(1) Moon (2) One.
चन्द्रक	Same as Candra.
चन्द्रकर्ण	The distance of the Moon.
चर	Ascensional difference. It is defined by the arc of the celestial equator lying between the six o'clock circle and the hour circle of a heavenly body at rising.
चरजीवार्ध	The Rsine of the ascensional difference.
चरज्या	R sine asc. difference
चरदल	Ascensional difference. See Cara.
चरप्राण	Same as *Carasu.*
चरफल	Correction due to ascensional difference.
चरार्ध	Ascensional difference.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चरासु	The asus of ascental difference.
चल	Sighrocca. Same as *Carardha.*
चलकेन्द्र	*Sighra-kendra.*
चलकेन्द्रफल	*SighraPhala*
चलोच्च	Sighrocca
चांद्र मास	Lunar month
चांद्रदिन	Lunar day.
चांद्रवर्ष	12 lunar months.
चाप	(1) The sign Sagittarius (2) Arc.
चापभाग	An element of arc, or elementary arc (*i.e.*, one of the twenty-four equal divisions of a quadrant, the Rsine-differences for which have been tabulated by Aryabhata I).
चापित	Converted into (or reduced to) the corresponding arc.
चार	Motion or dialy motion.
चित्रा	The name of the foruteenth naksatra.
चैत्र	The name of the first month of the year.
छन्न	Part eclipsed; measure of eclipse.
छाद्य	Eclipsed body; *Grahya*
चन्द्रकला	1/16th of the moon's disc.
छाया	(1) Shadow (2) The Rsine of the zenith distance.
छायाकर्ण	Hypotenuse of right-angled triangle, two sides of which are the gnomon and its shadow.
छायादैर्घ्य	Same as Bhucchayadairghya.
छायाभ्रमण	The path of the end of the shadow (of the gnomon).
छिद्र	Nine
छेद	Divisor or denominator
छेदक	Eclipser; *Grahaka*
छेद्यक	Projection, or graphical representation.
जलपदिक्	West
जलेशदिक्	West
जितुम	The sign Gemini.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जीव	Jupiter
जीवदिन	Thursday.
जीवा	(1) Rsine (=Radius×sine) (2) The Rsine differences corresponding to the twenty-four divisions of the quadrant. Same as *Jya.*
जीवाभुक्ति	True daily motion derived with the help of the table of Rsine differences.
जूक	The sign Libra.
ज्ञ	The planet Mercury.
ज्या	Same as Jiva. (1) Rsine (= Radius × sine). (2) The Rsine-differences corresponding to the twenty four equal divisions of a quadrant. Half-chord; Rsine. Also used for Jupiter.
ज्यासंकलित	Used in the sense of "the given Jya."
ज्यौ	Jupiter
तत्परा	Third of arc, i.e., one-sixtieth of a second of arc.
तद्धृति	Dhrti for a heavenly body on the prime vertical. Same as *Samadhrti.*
तंत्र	Indian astronomical texts which adopt the beginning of *Kaliyuga* as the epoch. Principle, doctrine, theory, rule, method. Also, a class of astronomical works.
तपोमूर्ति	The Moon's ascending node.
तम	(1) The shadow of the Earth, particualarly, the section of the shadow cone where the Moon crosses it, by a plane perpendicular to the axis of the shadow cone. (2) The Moon's ascending node.
तमस	Shadow; cross-section of the Earth's shadowcone at the Moon's distance; the eclipser of the Moon. Ascending node of the moon; *Rahu*
तमोमय	The moon's ascending node.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तमोव्यास	The diameter of the shadow. See *Tama.*
तारका	Star.
तारा	Star.
ताराग्रह	The starplanets. The planets Mars, Mercury, Jupiter, Venus, ans Saturn are called starplanets (taragraha) in Hindu astronomy.
तारासमागम	Same as *Yogabhaga.*
तिग्मतेजस्	The Sun.
तिग्मांशु	(1) The Sun. (2) Twelve.
तिग्ररश्मि	The Sun.
तिथि	(1) Lunar day (called tithi) (2) Time of conjunction or opposition of the Sun and Moon. (3) Time of beginning, middle, or end of eclipse (4) Fifteen (5) Thirty.
तिथिनाश	Omitted day.
तिथिप्रणाश	Omitted tithis.
तिथिवर्ग	15^2, or 225.
तिथिविलय	Omitted day.
तिथ्यन्त	Time of conjunction or opposition of the Sun and Moon. parvanta.
तिथ्यर्धहार	A divisor which is equal to half of that used in calculating the tithi, i.e., 360.
तिमिर	Same as *Tamas.*
तिर्यक्	(1) Oblique (2) Transverse.
तिष्य	Delta Cancri; *Pusya*
तुंग	Same as Ucca.
तुरीय	One-fourth.
तुला	The sign Libra.
तुलाधर	The sign Libra.
तुल्यत्व	Equality.
तुल्यदिक्त्व	Likeness or sameness of direction.
तुल्यदिक्	Like direction, or same direction.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रिगृहगुण The Rsine of three signs, i.e., the radius or 3438'.

त्रिगृहोन लग्न Same as Vitribh Lagna.

त्रिज्या Radius or 3438. Literally, the Rsine of three signs. *Trijyaka* or *Tribhajya* Radius.

त्रिभवन Three signs.

त्रिभोन लग्न Nonagesimal point : point of the ecliptic at the shortest distance from the zenith; 90° less than *Lagna.* Same as Vitribhlagna.

त्रिमौर्वी Same as *Trijya.*

त्रिराशि Three signs.

त्रिशर्करा-विधान The method of constructing a circle through three given points has been called *trisarkara-vidhana* by Bhaskara I.

त्रिशिंजिनि Same as Trijya

त्रेतायुग Second of the four parts of a *mahayuga;* duration 12,96,000 years.

त्रैराशिक The rule of three.

त्वाष्ट्र The *naksatra* Citra which is presided over by त्वष्ट्रा

दक्षिण (1) South. (2) Southern hemisphere (*daksina-gola*). *Yamya*

दक्षिणायन Southern course of the sun.

दक्षिणाशा The southern direction.

दर्शन-संस्कार usually called *Drkkarma* दृककर्म Visibility corrections. There are two visibility corrections : (1) *Aksa-drkkarma,* which is the measure of the arc of the ecliptic lying between the hour circle and the circle of position of the planet concerned, and (2) **Ayana-drkkarma,** which is measured by the arc of the ecliptic lying between the circle of celestial longitude and the hour circle of the planet concerned. These corrections having been applied to the true longitude of a planet, we obtain the longitude of that point of the ecliptic which rises on the local horizon simultaneously with the actual planet.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दल Half.

दर्श Conjunction of the sun and the moon.

दशगुण The ten Rsines, viz, Sun's udayajya, Sun's madhyajya, Sun's drkksepajya, Sun's drgjya, Sun's draggatijya, Moons udayajya, Moon's drkksepajya, Moon's dragjya, and Moon's draggatijya.

दशजीवा Same as Dasaguna

दस्र Two. (Dasra is a synonym of *Asvi)*.

दिक्क Direction.

दिक् (1) Direction (2) Ten.

दिगंश Co-azimuth.

दिग्गुण Rsine of *dik (digvalana)*.

दिग्वलन Same as *Aksavalana.*

दितिसूनुपूजित Venus

दिन (1) Day. (2) Fifteen.

दिनक्षय Omitted day.

दिनगण Same as *Ahargana.*

दिनगत Time of day passed

दिनगुण Same as Dyujya.

दिनदलअन्त्या *Antya* at midday.

दिनपूर्वापरार्ध Forenoon and afternoon.

दिनमान Measure (or length) of the day.

दिनराशि Ahargana.

दिनशेष Time till sunset.

दिनानां गणः Same as Ahargana.

दिनान्तोदयलग्न The rising point of the ecliptic at sunset.

दिनार्ध Midday.

दिवस (1) Day. (2) Ahargana.

दिवसगुणार्ध The day radius.

दिवसजीवा The day radius.

दिवसयोजन The number of yojanas that a planet traverses in a day.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिवसविस्तरभेद The day radius

दिवागुण The day radius.

दिवागण Same as *Ahargana.*

दिविचर (1) Seven (2) Planet

दिशा Direction.

दिश् (1) Direction (2) Ten.

दृनर Altitude, or Rsine of altitude.

दृमण्डल Circle through planet and zenith

दृक्कर्म Visibility correction, Also used for the Rsine of zenith distance.

दृक्कर्मनर Altitude, or Rsine of altitude.

दृक्क्षेप The *drkksepa* is the zenith distance of that point of a planet's orbit which is at the shortest distance from the zenith. This term is sometimes also used for the Rsine of that zenith distance.

Zenith distance of the central ecliptic point, or its Rsine. Arc measured on vertical to ecliptic between zenith and nonagesimal point.

दृक्क्षेप मंडल Vertical Circle through the central ecliptic point.

दृक्क्षेपज्या The Rsine of the *drkksepa.* See *Drkksepa.*

दृक्क्षेपमंडल Secondary to ecliptic passing through zenith

दृक्क्षेपशंकु Altitude, or Rsine of altitude, of the central ecliptic point.

दृग्गति Arc corresponding to the Drggatijya.

The distance of a planet's circle of celestial longitude from the zenith, or its Rsine.

दृग्गतिज्या The draggatijya is the distance from the zenith of the plane of a planet's circle of celestial longitude, or the Rsine of the shortest distance from the zenith of a planet's circle of celestial longitude.

दृग्गुण The Rsine of zenith destance.

दृग्जीवा The Rsine of zenith distance.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दृग्ज्या The Rsine of zenith distance.
R sine of meridian zenith distance or simply zenith distance.

दृग्दृश्य कला Same as *Kalalipta.*

दृग्दृश्य कला लिप्ता Same as *Kalalipta.*

दृग्दृश्य केंद्र *Sighrakendra* for the time of heliacal rising or setting.

दृग्लंबन Parallax in zenith distance.

दृग्विधि Law of visibility correction.

दृग्वृत्त The vertical circle.

दृढ़ Prime

दृश्यकाल Duration of visibility.

दृश्यचन्द्र The longitude of the Moon corrected for the visibility corrections.

दृष्टिफल Same as *Drkkarma.*

देवपूज्य Jupiter.

देवमन्त्रि Jupiter.

देश Place

देशकाल Used in the sense of desantara-kala i.e. the Longitude-correction in terms of time.

देशजातकाल See Desakala.

देशांतर फल Correction due to difference in longitude.

देशान्तर The longitude of a place. It is either the distance of the place from the prime meridian, or the difference between the local and standard times.
Difference in longitudes of a given place and the prime meridian (usually Ujjayini).

देशान्तर-कर्म Correction for the longitude of the place, the longitude correction.

देशान्तघटी *Desantara*, in *ghatis*, *i.e.*, the *ghatis* of the difference between the local and standard times.

देह Used in the sense of grahadeha. See Granadeha.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोः	Same as Bhuja.
दोर्ज्या	R sine longitude.
	Rsine of the base of a right angled triangle; *bhujajya.*
द्युगण	Same as *Ahargana.*
द्युचारिन्	Planet.
द्युज्या	Radius of the diurnal circle; day-radius.
द्युज्यामंडल	Diurnal circle.
द्युतनुभवन	The signs Gemini, Virgo, Sagittarius and Pisces.
द्युति	Shadow (meaning "the shadow of the gnomon")
द्युतिकर्ण	The hypotenuse of the shadow (of the gnomon).
द्युदल	The day radius.
द्युदलशंकु	R sine altitude at midday.
द्युमंडल	The diurnal circle.
द्युमुध	Same as *Avamasesa.*
द्युराशि	Ahargana.
द्युव्यास	The day radius.
द्युव्यासखंड	The day radius.
द्युव्यासभेद	The day radius.
द्युव्यासार्ध	The day radius.
द्रष्टा	Observer.
द्वापरयुग	Third of the four yugas of a Mahayuga; duration: 8,64,000 years
द्विमण्डल	Same as Manaikyardhvrtta.
द्व्यग्र	A sagra kuttakara (residual pulveriser) with two residues.
धन	Addition.
धन	Positive; excess
धनदिक्	North.
धनिष्ठा	The name of the twenty-third naksatra.
धनुः	(1) Arc (2) The sign Sagittarius.
धनुःखण्ड	In Hindu astronomy, the quadrant of a circle is divided

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

into twenty-four equal parts and these parts are known as kastha, dhanu, dhanukkhanda. dhanurbhaga, etc.

धनुर्भाग — The element of arc, or elementary arc (i.e., one of the twentyfour equal divisions of a quadrant, the Rsine-differences of which have been tabulated by Aryabhata I)

धनुर्भाग — Arc of 225' (3¾)

धनुस् — (1) Arc. (2) 225.

धन्विन् — The sign Sagittarius.

धरणीदिन — Civil Day

धरा — The Earth.

धरादिवस — Civil Day

धरासुत — Mars.

धात्रीधर — Seven

धिष्ण्य — Star.

धुज्यावृत्त — Diurnal circle; day circle.

धृति — Distance of a heavenly body from its rising-setting line, usually called *istahrti.*

ध्रुव — Celestial pole.Pole star; fixed.

ध्रुव प्रोत — Secondary to celestial equator.

ध्रुवक — A Technical term.
Polar logitude along the ecliptic at the foot of the circle from the pole.

ध्वन्त — Same as Tamas.

नक्षत्र — (1) Star (2) Asterism (3) Twenty-seven

नक्षत्र दिन — Sidereal day.

नक्षत्रगण — Same as Bhagana.

नक्षत्रभेद — Occultation of stars.

नक्षत्र — Star; zodiacal star-group or asterism; twenty-seventh part of the ecliptic.

नत — Meridian zenith distance (natamsa); hour angle *(natakala).*

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नतकाल Hour-angle.

नतकाल कोटिज्या R cosine of Natakala. Rcosine of the hour angle.

नतकाल क्रमज्या R versed sine of Natakala.

नतकाल ज्या R sine of Natakala. Rsine of the hour angle.

नतभाग Meridian zenith distance.
The degrees (bhaga) of zenith distance (nata).

नतांश Zenith distance.
(1) The meridian zenith distance (2) Celestial latitude as corrected for parallax in latitude. (3) Parallax in latitude.
(1) Meridian zenith distance, or the Rsine of that. (2) Difference between the parallaxes in latitude of the Sun and Moon.

नति Parallax in latitude.

नतिज्या The Rsine of the meridian zenith distance.

नभसो मध्य The meridian of the place. Literally, the middle of the sky.

नर (1) The sign Gemini. (2) Gnomon (3) The Rsine of altitude.

नलक The observer's tube.

ना The Rsine of altitude. Same as *Sanku.*

नाडिका A unit of time equivalent to 24 minutes.Same as *Ghati.*

नाडी Same as *Ghati.* Unit of time, 24 minutes.

नाडीवलय Celestial equator.

नाडीवृत्त The equator.

निमिलन Immersion; beginning of total eclipse.
Total obscuration of eclipsed body.

निरक्ष Equator.

निरक्षक्षितिज Equatorial horizon.

निरक्षजाः असवः *Asus* of right ascension, or the time is asus of rising at the equator.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निरक्षराश्युदय Right ascension of the signs; time of rising of the signs at the equator.

निरक्षासु Asus of the right ascension, i.e., the time in asus of rising at the equator.

निरपवर्तित Unabraded, unabridged.

निरग्रता Absence of remiander.

निरांशदिन Synodic period in terms of day.

निशा Night.

निशाकर (1) Moon (2) One.

निशाकृत् The Moon.

निशानाथ The Moon.

निशेष A unit of time; according to the *Sidhanta siromani,* 1 day = 9,72,000 *nimesas*

निश्चलक्रिया Method of successive approximations.

निःश्वासलव Asus

नीच Perigee of epicycle or ecentric of planet.

नीचोच्च रेखा Line of apse.

नीचोच्च विधान The epicyclic theory.

नीचोच्च वृत्त Epicycle.

नृ Gnomon. Same as *Sanka.*

नृतल Same as *Sankutala.*

नेमि Circumference, periphery.

पंक्ति Ten

पंचांग Calendar

पक्ष Lunar fortnight, i.e., the period from new moon to full moon, or from full moon to new moon. The period from new moon to full moon is called the light fortnight (or the light half of a lunar month(and that from full moon to new moon is called the dark fortnight (or the dark half of a lunar month).

पत

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पतल

पद (1) Quadrant. (2) Square root.

पद्मिनीबन्धु The Sun.

परक्रान्ति (Sun's) greatest declination, or obliquity of the ecliptic.

परम लंबन Horizontal parallax; maximum parallax.

परमक्रान्ति Greatest declination of the Sun, i.e., the obliquity of the ecliptic.

परमक्षिप्ति Greatest celestial latitude (of the Moon), i.e., inclination of the Moon's orbit.

परमापक्रम Same as Paramakranti.

परमापक्रमो गुणः The Rsine of the Sun's greatest declination.

परमापम Same as Parakranti.

परिधि (1) Circumference, periphery. (2) Epicycle.

परिधि Epicycle.

परिलेख Projection, graphical representation.

परिलेखासूत्र Thread equal to the radius of a inner boundary of the Moon's illuminated part.

परिवर्त Revolution, Bhagan.

पर्यय Same as *Bhagana.*

पर्याय Revolutions of a heavenly body in a given period (like *mahayuga); bhagana*

पर्व (1) Time of conjunction or opposition of the Sun and The Moon. (2) Full moon or new moon *tithi.* (3) An eclipse of the Sun or Moon.

पर्वमध्य The middle of an eclipse.

पर्वनाडी The *nadis* of the full moon or new moon *tithi* (also called parva) which are to elapse at sunrise on that day. Or, in otherwords, the time in nadis which is to elapse at sunrise before the time of conjunction or opposition of the Sun and Moon.

पर्वांत End of a *parva*

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पल	Latitude. Unit of time, 24 seconds. A unit to time; *vinadi*
पलकर्ण	Hypotenuse of right-angled triangle, two sides of which are gnomon and equinoctial shadow.
पलज्या	The Rsine of the latitude.
पलभा	Equinocticl midday shadow of the gnomon.
पलभाग	The degrees of the latitude.
पलांश	The degrees of the latitude.
पलाङ्गुल	Used in the sense of 'palabhangula'. i.e., the angulas of the equinoctial midday shadow.
पश्चार्ध	The western half.
पश्चिम	West.
पात	The ascending node of a planet's orbit (on the ecliptic). Moon's ascending node. time when sum of Sun's and Moon's longitudes is 6 or 12 signs. Vyatipata and Vaidhrti. Node of the moon (or a planet); point of intersection of the ecliptic with the orbit (*kaksa*) of the moon (or a planet)
पाताल	Nadir.
पातभाग	The degrees of the longitude of the ascending node.
पारमार्धिक वलन	Algebraic sum of *aksavalana* and *ayana valana* (numerical addition when both are north or both south and difference when they are of opposite directions).
परपूर्वमण्डल	The Prime vertical.
पित्र्य	The *naksatra* Magha, which is presided over by *Pitr-s*.
पुष्कर	Three.
पुष्य	The *naksatra* Pusya.
पूर्णिमा	Full Moon.
पूर्व	East.
पूर्वलग्न	The horizon-ecliptic point in the east.
पूर्वापर सूत्र	East-west line

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पूर्वापरायत	Directed east to west.
पूर्वाह्ण	Forenoon.
पौष्ण	The *naksatra* Revati, which is presided over by Pusa.
प्रकृति	Eight.
प्रक्रिया	Process.
प्रक्षेप	Addition.
प्रागापर	East-West.
प्रग्रह	Beginning of eclipse.
प्रग्रास	The beginning of an eclipse, i.e., the first contact.
प्रतिपद्	The first tithi of eigher half of a lunar month is called Pratipad.
प्रतिमण्डल	Eccentric.
प्रतिमण्डलकर्म	Processes under the eccentric theory.
प्रतिमण्डलविधि	The ecentric theory.
प्रतिलोम	Retrograde. A planet is said to be pratiloma when its motion is retrograde. clockwise.
प्रतिवृत्त	Eccentric circle of a planet.
प्रभा	(1) The shadow of the gnomon. (2) The Rsine of the zenith distance.
प्रलयास्तिथीनां	Omitted lular days.
प्राग्लग्न	Same as Udayalagna.
प्रविस्त्र	Diameter
प्रस्तार	The statement of possible combinations in a serial order.
प्राक्कपाल	The eastern hemisphere.
प्राग्ग्रास	The first contact in an eclipse.
प्राग्विलग्न	The rising point of the ecliptic.
प्राची	East
प्राण	Same as Asu. Forenoon; *purvahna.*
प्रालेयरश्मि	One.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रोन्नति	Altitude.
फल	(1) Result (2) Correction
बव	The first of the seven movable karanas. The karana is one of the five important elements of the Hindu Calendar.
बहुल	The naksatra Krttika.
बाण	Celestial latitude.
बाहु	(1) The base (of a right-angled triangle). The ubright of a right-angled triangle is called koti. (2) The bahu corresponding to a planet's anomaly. This is the arcual distance of the planet from its apogee or perigee whichever is neareer. Suppose that θ is the anomaly of a planet (or any arc, whatever). If θ is less than $\pi/2$, θ itself is the bahu; if θ is greater than $\pi/2$ but less than π, $(\pi-\theta)$ is the bahu; if θ is greater then π but less than $3\pi/2$, $(\theta-\pi)$ is the bahu; and if θ is greater than $3\pi/2$, $(2\pi-\theta)$ is the bahu. The complement of the bahu is called koti.
बाहुक	Same as Bahu.
बाहुज्या	The Rsine of the bahu (of a planet's anomaly).
बाहुफल	Correction due to the *mandocca* or *sighrocca* of a planet. The formula for the *bahuphala* is: bahuphala = $\frac{bāhujya \times \text{tabulated epicycle.}}{80}$
बाहोःफलं	Same as Bahuphala.
बिन्दु	Point.
बिम्ब	Disc of a planet.
बिम्बार्ध	The semidiameter of the disc.
बुध	Mercury. Also called Sasisunu (son of Moon).
बुधाश	North.
ब्रह्ममंडल	Same as *Bhramavrtta.*
ब्रह्मवृत्त	Diurnal circle; day-circle.
भ	Sign. Star; asterism;

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भकक्ष्या	Orbit or circle of the asterisms.
भग	The naksatra Purva-phalguni, the regent of which is Bhaga.
भगण	(1) The revoloution-number of a planet, i.e., the number of revolutions that a planet performs in a certain period. The revolution given by Bhaskara I correspond to a yuga, i.e., to a period of 43,20,000 years (2) The naksatras. (3) Twelve signs (or 360°).
भगणकला	Sidereal period of a heavenly body.
भगोल	Sphere of the sky; the celestial sphere.
भगोल	Sphere of the asterisms.
भचक्र	Zodiac (consisting of 27 *naksatras or* 12 *rasis*)
भदिवस	Sidereal day.
भभ्रम	Revolutions of fixed stars.
भभ्रम	Locus of (the end of) shadow.
भवन	Sign
भवलय	Same as *Bhakaksya.*
भवृत्त	Revolution of the asterisms; sidereal day.
भावृत्त	The shadow-circle; the circle drawn by taking the length of shadow for the radius.
भा	Shadow (of the gnomon).
भांश	Degrees in a circle i.e. 360.
भाकर्ण	Hypotenuse of shadow.
भाकर्णवृत्त	Same as *Bhavrtta.*
भाग	(1) Part, fraction. (2) Division. (3) Degree (°).
भागलब्ध	Quotient.
भागशेष	The residue of the degrees.
भागहार	Divisor
भागहारक	Same as Bhagahara.
भाग्रा	*Agra* for the shadow-circle.
भाज्य	Dividend.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भानु The Sun.
भार्गव Venus.
भावृत्ताग्र Same as *Bhagra.*
भास्कर (1) The Sun. (2) Twelve.
भास्वत् The Sun.
भिदः Half.
भिन्नदिक्क Unlike direction.
भिन्नदिक् Unlike direction.
भुक्त Traversed, passed over.
भुक्तकाल Time passed.
भुक्ति Motion, or daily motion.
भुक्तियोग Sum of (daily) motions.
भुक्तिविशेष Motion-difference.
भुज Same as *bahu. bhuja* of an arc or angle. Base of a triangle ; longitude.
भुजज्या The Rsine of *Bhuja (Bhuja or Bahu).*
भुजा Same as Bhuja. or Bahu.
भुजान्तर Correction for the equation of time due to the eccentricity of the ecliptic. Correction for equation of time due to eccentricity of ecliptic.
भुजाफल The equation of the centre.
भुजाफल Same as Bahu-phala
भुजामौर्वी Same as *Bhujajya.*
भूकर्ण Diameter of the earth; *bhivyasa.*
भूगोल Terrestrial globe.
भूच्छाया The Earth's shadow.
भूच्छायादैर्घ्य The length of the Earth's shadow, i.e., the distance of the vertex of the shadow cone from the Earth's centre. Same as *Chaya-dairghya.*
भूज्या Same as *Ksitijya.*
भूताराग्रहविवर The distance between the Earth and a star-planet.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भूदिन	Civil days. Period from one sunrise to the next.
भूदिवस	Civil day.
भूमिदिन	Civil day.
भूमिव्यास	The diameter of the Earth.
भूमेःवृत्तं	The circumference of the Earth.
भृगु	Venus.
भृगुज	Venus.
भृगुपुत्र	(or *Bhargava)* Venus. Also called Sita (white-coloured planet).
भेद	One-half; eclipse of one planet by another, called *bhedayuti;* occultation of a star.
भोग	Motion. Daily motion.
भोदय	Time of rising of a sign.
भोग्यकाल	Time to pass.
भोग्यखंड	Tabular difference of Rsine etc. yet to be covered. Tabular difference of R sine, etc. to be passed in the meridian.
भोग्यमंदफल	Portion of equation of centre yet to be covered.
भौम	Mars, son of Earth. See also *Angaraka.*
मंद गतिफल	Correction to mean motion of planet.
मंद परिधि	Circumference of manda epicycle.
मंदकर्म	The process of finding out the equation of centre.
मंदकेन्द्रज्या	R sine of Mandakendra.
मंदनीचोच्चवृत्त	Manda epicycle; *mandanu vrtta*
मंदफलज्या	R sine of Mandaphala.
मंदनीच	Perigee; 180° from *mandocca*
मंदस्पष्ट गति	Mean motion of a planet corrected by mandagatiphala.
मंदस्फुटगति	Same as above.
मंदान्त्य फल	Maximum correction due to mandocca.
मंदान्त्यफलज्या	R sine of Mandatyaphala.
मकर	Capricorn.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मघवद्गुरु Jupiter

मघा Name of the tenth naksatra.

मघामध्यस्थतारकम् The central star of the *naksatra Magha.*

मण्डल Circle; a collection of 12 signs.
(1) Circle. (2) Revolution.

मण्डलमध्य The centre of a circle.

मण्डलार्ध Half of a revolution, i.e., six signs, or 180°.

मति An optional number.

मत्स्य Fish-figure.

मधु Caitra. the first month of the year.

मध्य Zenith distance of ecliptic point.

मध्य स्थित्यर्ध Intervals between the middle of an eclipse and the moments of contact and separation (end)

मध्यकर्ण Radius; *vyasardha, karnardha*

मध्यक्रान्ति The declination of the meridian ecliptic point.

मध्यगति Mean (daily) motion.

मध्यग्रह Mean longitude of a planet.

मध्यग्रहण Middle of an eclipse.

मध्यग्रास *Grasa* for the middle of the eclipse.

मध्यच्छाया The midday shadow (of the gnomon).

मध्यजातः लम्बकः The upright due to the meridian-ecliptic point, i.e., the Rsine of the altitude of the meridian ecliptic point.

मध्यजीवा The Rsine of the zenith distance of the meridian-ecliptic point.

मध्यज्या Same as *Madhya-jiva.*
Rsine of zenith distance of the meridian-ecliptic point, called the meridiansine.

मध्यदिन Mid-day.

मध्यनर Altitude, or Rsine of altitude, of the meridian ecliptic point.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मध्यपरिनिष्ठितलम्बक Same as Madhyajatah lambakah.

मध्यभुक्ति Mean (daily) motion.

मध्यम (1) Mean. (2) Mean planet (*madhyamagraha*).

मध्यमा Meridian ecliptic point.

मध्यमा भुक्तिः Mean (daily) motion.

मध्यमार्कक्रांति Declination of place of planet on ecliptic.

मध्यरात्र Midnight.

मध्यरेखा Central meridian of the earth passing through *Lanka, Ujjayini Kuruksetra* and Mount *Meru; madhyasutra*

मध्यलंबन Parallax in longitude at the middle of an eclipse

मध्यलग्न Meridianecliptic point.

मध्यलग्नशंकु R consine of Madhyalagna.

मध्यशंकु Gnomon formed with the sun crossing the meridian.

मध्यसूर्यावनाम् The zenith distance of the midday Sun, or the meridian zenith distance of the Sun.

मध्यावनति The zenith distance of the midday Sun.

मध्याह्छायाकर्ण Hypotenuse of right-angled triangle, two sides of which are gnomon and midday shadow.

मध्याह्न Midday.

मध्याह्न परिधि Circumference of th epicycle at mid-day.

मध्याह्न लग्न Same as *Madhya-lagna.*

मध्याह्नच्छाया The midday shadow (of the gnomon).

मनु Fourteen. A period of 72 *yugas* or 72×43,20,000 years.

मन्द (1) *Mandocca.* (2) *Manda-paridhi* (*Manda epicycle*).(3) Slow.

मन्दकेन्द्र Manda anomaly (=longitude of the planet minus longitude of the planet's apogee) Mean anomaly. Angular distance of a heavenly body from its *Mandocca;* anomaly from apogee or aphelion.

मन्दफल Correction due to the planet's mandocca. In the case of

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

the Sun and Moon, the equation of the centre.
Equation of centre (due to the eccentricity of an orbit).

मन्दमौर्वीफलचाप Same as Manaphala.

मन्दवृत्त Manda epicycle.

मन्दसिद्ध Corrected for the mandaphala.

मन्दसिद्धि Correction (of a planet) for the mandaphala.

मन्दांश The longitudes of the apogees of the planets in terms of degrees.

मन्दान्त्यजीवा The Present Rsine-difference corresponding to the mandakendra i.e., the Rsinedifference of the elementary arc in which the planet lies.

मन्दोच्च The apogee of a planet. See Ucca. The highest point of the manda eccenrtic; apogee; apex of slowest motion.

मन्दोच्चकर्ण See Mandakarna.

मन्दोच्चकेन्द्र See Manakendra.

मन्दोच्चफल Correction due to a planet's *mandocca.*

मन्दोच्चवृत्त Manda epicycle.

मन्वन्तर Age of Manu : 308448000 solar years;

महायुग *Caturyuga :* Great age consisting of 432×10^4 years; consists of four parts (*yugas)* viz; *Krta, Treta, Dvapara* and Kali of durations in the ratio 4:3:2:1. According to the *Aryabhatiyam,* the four *yugas* are of equal duration : 108×10^4 years each.

महाशंकु Rsine of altitude.

महिजा The Horizon.

महिजीवा The earth-sine, Same as *Kujya.*

मानैक्यार्ध Half the sum of the diameters of the eclipsed and eclipsing bodies.

मानैक्यार्धवृत्त Circle drawn with *manikyardha* as the radius.

मास A (lunar) month.

माहेय Mars.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मिथुन	The sign Gemini.
मिथुनचरदल	Ascensional difference at the end of the *Mithuna rasi.*
मीन	(1) Fish-figure, (2) the sign Pisces.
मुक्ति	Release of the eclipsed body; end of eclipse; last contact.
मुहूर्त	A unit of time; 30 *muhurtas = 1 day; 1 muhurta = 2 ghatikas = 48* minutes.
मूल	(1) Square root. (2) The *naksatra Mula.*
मृग	The sign Capricorn.
मृगमुख	The first point of Capricorn.
मृगव्याध	Sirius; *Lubdhaka;* brightest visible star in the sky.
मृदु	Same as *manda* (slow).
मृदुच्च	Same as Mandocca.
मृदुस्पष्ट	*Mandaspasta* or true- mean.
मेदिनी	Earth.
मेरु	Earth's Pole
मेलक	Conjunction of planets; *yuti, yoga.*
मेषचरदल	Ascensional difference at the end of *Mesa rasi* (the first sign of the zodiac).
मैत्र	The *naksatra* Anuradha, which is presided over by Mitra.
मोक्ष	The separation of the eclipsed body after an eclipse, the last contact, or the end of an eclipse.
मोक्षलंबन	Parallax in longitude at the end of an eclipse.
मौरिक	Minute of arc.
मौर्वि	(or *Maurvika)* Same as *Jya.*Rsine.
यम	(1) Saturn, (2) Name of the second naksatara Bharani, whose divinity is Yama. (3) Two.
यष्टि	*Yasti* instrument; gnomon; radius.
योम्योत्तर वृत्त	Same as yamottar.
यात	Elapsed.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

याम्य (1) The south direction which is presided over by yama. (2) The southern hemisphere (*yamyagola*). (3) The *naksatra* Bharani, which is presided over by Yama.

याम्यगोल The southern hemisphere, i.e., the hemisphere lying to the south of the equator.

याम्योत्तर South-north.
The local meridian.
The north-south vertical circle i.e. the vertical circle going through the north and south cardinal points. Also called *Yamyodagvrtta.*

याम्योत्तर मंडल Meridian

याम्योत्तरायत Directed south-to-north.

युक्पद Even quadrant.

युग Part of mahayuga of 4320000 solar years.

युगाधिक Intercalary months in a *yuga.*

युग्म Even.

युति Union, Junction.

योग (1) Addition (2) Conjunction of two heavenly bodies.
(1) Conjunction in longitude of two heavenly bodies.
An element of the *Pancanga;* also conjunction of two heavenly bodies.
Period during which Sun and Moon together describe 800°.

योगतारा Junction-stars. These are those prominent stars of the twenty-seven *naksatras* which were used by the Hindu astronomers for the study of the conjunction of the planets, especially the Moon, with them.
Principal star in an asterism.

योगभाग the degrees of longitudes of the junctionstars.

योजन The *yojana* is a unit of distarice. The length of a *yojana* has differed at different places and at different times.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

	The *yojana* of Aryabhata I and Bhaskara I is roughly equivalent to 7½ miles.
	A unit of distance equal to 32000 cubits.
योजनकर्ण	The distance of a planet in terms of *yojanas*.
योजनव्यास	The diameter in terms of *yojanas*.
रवि	(1) The Sun. (2) Twelve.
रविकर्ण	Distance of Sun from earth
रविज	(1) Saturn (2) A special term used by Bhaskara I. See MBh, i.27
रविभगण	Revolutions of Sun.
राजपुत्र	Mercury, Literally, the son of the king (Moon).
राशि	(1) Quantity. (2) Sign.
राशिकला	The number of minutes is a sign, *i.e.*, 1800.
राशिजीवा	The Rsine of one sign, i.e., Rsin (30°)
राशित्रय	Three signs.
राशिशेष	The residue of the sign.
राहु	The Moon's ascending node.
रुधिर	Mars.
रेखा	(1) Line. (2) Prime-meridian.
रोच्यमर घटिका	Lords of 30 degrees of a sign or of 30 Parsi days.
लंकोदय	Times of rising (of the signs) at Lanka, or right ascensions (of the signs).
लंबांश	Colatitude in degrees.
लंबज्या	Rsine of colatitude.
लग्न	The horizonecliptic point in the east.
लग्न	The rising point of the ecliptic.
लग्न	Ascendant; orient ecliptic point; point of intersection of the ecliptic with the eastern horizon
लग्नकला	Time correcponding to the given *lagna*. Also called *Istakala*.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लघुकाः Abridged or shorter quantities.

लघुज्या Calculations of R sines of arcs of 10^o.

लघुतन्त्र Short or simplified method.

लघ्व अहर्गण Civil days between end of one solar year and any date in current year.

लंङ्का A place in 0 latitude and 0 longitude. A hypothetical place on the equator where the meridian of Ujjain intersects it.

लंङ्काराश्युदय Times of rising of the signs at Lanka, or right ascensions of the signs.

लब्ध Quotient.

लम्ब The Rsine of the colatitude (of the place).

लम्बक The Rsine of the colatitude.

लम्बकगुण Same as *Lambaka.*

लम्बन Parallax in longitude; or, in particular, the difference between the parallaxes in longitude of the Sun and Moon.

लम्बनलिप्ता Lambana in longitude in terms of minutes of arc.

लम्बनान्तर The lambana-difference.

लम्बनान्तरनाडिका The nadis of the lambana-difference, or the lambana-difference in terms of nadis.

लव Part, portion, fraction. (2) Degree.
Viliptika; second of arc.

लिखनसूत्र Same as Parilekhasutra.

लिप्तिका विपूर्वा Viliptika ; second of arc.

लिप्ता Minute of arc.
Minute (unit of angular measurement)

लिप्ताव्यास Diameter (of a planet) in minutes.

लिप्ताशेष The residue of the minute.

लिप्तिका Same as *Lipta.*

लेखा the prime meridian. See *Kumadhyarekha.*

वक्र Retrograde

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वक्र	A planet in retrograde motion.
वक्रकर्ण	*Sighrakarna* for the beginning of retrograde motion.
वक्रकेंद्र	*Sighrakendra* for the beginning of retrograde motion.
वक्रगति	Retrograde motion. Retrogression.
वक्रगमन	Retrograde motion.
वक्रत्व	Curvature.
वक्रभोग	Retrograde motion.
वक्रारम्भ	Commencement of retrograde motion.
वक्रि	A planet in retrograde motion.
वक्रीग्रह	A planet in retrograde motion.
वचसां पतिः	Jupiter.
वत्सर	Year.
वपु	The body (globe or disc) of a planet.
वरुणादिक	West.
वर्ग	Square.
वर्गराशि	A square quantity.
वर्गविधि	Method of solving a quadratic equation.
वर्तमान	Present, current.
वर्तमानगुण	The present (or current) Rsinedifference of the elementary are occupied by a planet.
वर्त्म	Path, locus.
वर्त्मवृत्त	The circle denoting a path (or locus).
वर्ष	Year
वर्षप	The lord of the year, i.e., the planet after whose name the first day of the year bears its name.
वर्षपूग	A collection of years, or simply years.
वर्षाधिप	Lord of year.
वलन	Deflection. Valana relates to an eclipsed body. It is the angle subtended at the body by the arc joining the north point of the celestial horizon and the north pole of the ecliptic. Valana is generally divided into two compo-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

nents, (i) Aksavalana and (ii) Ayanavalana. The Aksavalana is the angle subtended at the body by the arc joining the north point of the celestial horizon and the north pole of the equator. The Ayanavalana is the angle subtended at the body by the arc joining the north poles of the equator and the ecliptic.

The valana is also defined as follows : The great circle of which the eclipsed body is the pole is called the horizon of the eclipsed body. Suppose that the prime vertical, equator, and the ecliptic intersect the horizon of the eclipsed body at the points A, B and C towards the east of the eclipsed body. Then arc AB is called the Aksavalana, arc BC is called the Ayanavalana and arc AC is called Valana.

Valana is also called spastavalana.

वलनकर्म Calculation of *valana.*

वल्लकीभृत् The sign Gemini (Literally, "the luteholder".

वसुन्धरा Earth.

वार Day.

वारुणी West. The western direction is called *Varuni* because it is presided over by *Varuna.*

वासव The *naksatra* Dhanistha, which is presided over by *Vasu.*

वि Celestial latitude. Evidently, Vi is an abbreviated form of viksepa.

विकता Residual arc.

विकलगति Stationary motion.

विकला Second of arc.

One second of arc; 1/3600th of a degree; *vilipta*

विकाष्ठ The arc of celestial latitude.

विक्रम संवत् Vikrama starting from 57-56 B.C.

विक्षिप्ति Celestial latitude.

विक्षेप Celestial latitude.

Polar latitude; *ksepa, sara*

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विक्षेपज्या	The Rsine of celestial latitude.
विक्षेपमंडल	Orbit of planet.
विक्षेपलिप्तिका	The minutes of celestial latitude.
विक्षेपांश	The degrees of celestial latitude.
विघटिका	A unit of time, equivalent to 24 seconds.
वित्रिभ	That point of the ecliptic which is three signs behind the Lagna; The central ecliptic point; the nonagesimal.
वित्	Mercury.
विदिक्क	Contrary direction.
विदिक्शंकु	Corner altitude, or its Rsine.
विदिगवृत्त	Corner vertical circle; the vertical circle going through a corner direction.
विदिश्	Contrary direction.
विधि	Method.
विनाडिका	Same as Vighatika.
विनाडी	Same as Vinadika.
विपरीतगुण	Rversed-sine.
विपरीताः	Rversed-sines.
विपल	Unit of time, 24 seconds.
विपुलच्छाया	Great shadow, meaning "the Rsine of the zenith distance".
विपुलनर	Great gnomon, meaning "the Rsine of altitude."
विप्रयग	Difference.
विभेद	Same as *Bheda-yuti. See Bheda.*
विमंडल	Orbit of the Moon or of a planet.
विमर्द	Duration of total eclipse.
विमर्दार्ध	Half the duration of totality of an eclipse.
विमौरिक	Second of arc.
विलंबन	Same as *Lambana.*
विलग्न	The horizonecliptic point in the east. Same as *Lagna.*

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विलग्नकाल Same as *Lagnakala.*

विलिप्ता Second of arc.

विलिप्तिका Same as *Vilipta.*

विलोमगति Retrograde motion; *Vakragati*

विलोमज्या Same as *Urkramajya.*

विवर Difference, intervening space.

विवस्वत् The Sun.

विशाखा The *naksatra Visakha.*

विशिखा Celestial latitude.

विश्लेष Difference.

विषम Odd.

विषुवच्छाया Same as *Palabha.*

विषुवज्या The Rsine of the latitude (of a place).

विषुवत् The equator.

विषुवत्कर्ण The hypotenuse of the equinoctial midday shadow.

विषुवत्प्रभा The equinoctial midday shadow.

विषुवद्वृत्त The equator.

विषुवदुदयराशिप्राणपिंड Time in asus of rising of the signs at the equator, i.e., right ascension of the signs in terms of asus.

विषुवद्दिन The day of the equinox.

विषुवद्दिनमध्याह्नच्छाया The equinoctial midday shadow.

विष्कम्भ Diameter.

विष्कम्भदल Semidiameter, radius.

विष्कम्भार्ध Semidiameter, radius.

विष्णुपद The Sun's entry into the signs Taurus, Leo, Scorpio and Aquarius is called *Visnupada-sankranti.*

विस्तर Same as Vistara.

विस्तार (1) Diameter. "Vyasa, Viskambha, and vistara are synonyms", says Bhaskara I. (2) Length, breadth, etc. "Ayama, vistara, and dairghya are synonyms," says Bhaskara I.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विस्तृति	Radius.
विहंगम	Planet.
विहग	Planet.
वृत्त	(1) A circle or its cirumference. (2) Epicycle. Circle ; orbit; epicycle.
वृत्तसंख्या	The length of the circumference of a circle.
वृन्द	Cube.
वृष	The sign Taurus.
वेलाकुट्ट	Time-pulveriser.
वैधृत	The "aspect" between the sun and the moon when the sum of their longitudes is 360° and their declinations (*kranti*) are equal in magnitude but opposite in directions. An astronomical phenomenon. Time when the sum of the longitudes of Sun and Moon is 12 signs.
वैश्व	The *naksatra* Uttarasadha, which is presided over by Visve Devah.
वैषुवती छाया	The equinoctial midday shadow.
वैष्णव	The *naksatra* Sravana, which is presided over by Visnu.
व्यतिपात	An astronomical phenomenon. Time when the sum of the longitudes fo Sun and Moon is 6 signs. The "aspect" of the sun and the moon when the sum of their longitudes is 180° and their declinations (*kranti*) are same both in magnitude and direction.
व्यवच्छेद	Divisor.
व्यस्तज्या	Rversed-sine.
व्यास	(1) Diameter. (2) Radius.
व्यासखण्डनिचय	same as Vyasakhanda.
व्यासदल	Semi-diameter, radius.
व्यासयोजन	Diameter in terms of *yojanas*.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यासार्ध	Radius or 3438. Radius of a circle.
व्योमवृत्त	Circle of the sky.
शंकु	Gnomon; twelve; altitude or Rsine of altitude.
शंकुतल	The distance of the projection of a heavenly body on the plane of the celestial horizon, from the rising-setting line of the heavenly body.
शंकुतल	Base of R sine altitude.
शकाब्द	The years of the Saka era.
शक्र	Fourteen.
शक्रगुरु	Jupiter.
शक्रतारक	The naksatra Jyestha, whose regent is Indra.
शङ्क्वग्र	The distance of the projection of a heavenly body on the plane of the celestial horizon from the planet's rising-setting line.
शङ्क्वग्रजीवा	Same as Sankvagra.
शतभिषक्	The naksatra Satabhikha.
शनि	Saturn. Also called *manda* (slow-moving planet) or *Raviputra* (Sun's son).
शफरिका	A fishfigure.
शर	(1) Rversed-sine. (2) Five. Celestial latitude.
शरासन	Same as *Dhanu.*
शशलक्ष्मा	The Moon.
शशांक	The Moon.
शशि	(1) The Moon. (2) One.
शशिग्रह	The sign Cancer.
शशिज	Lunar.
शशिभवन	Same as *Sasigrha.*
शश्युच्च	Moon's apogee.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिशिरदीधिति The Moon

शीघ्र Same as Sighrocca.
(1) *Sighrocca.*
(2) *Sighra epicycle.*
Fast motion (as opposed to *manda*)

शीघ्रकर्ण The distance of a planet obtained by the sighrocca process.

शीघ्रकर्म Finding out the equation of 'conjunction' (*sighraphala*)

शीघ्रकेंद्र The sighra anomaly. See Kendra. Angular distance of a mean planet from its *sighrocca* (apex of 'conjunction').

शीघ्रकेंद्रकोटिज्या R cosine of sighrakendra

शीघ्रकेंद्रज्या R sine of sighrakendra

शीघ्रकेन्द्रफल Sighraphala, i.e., correction due to the sighrocca.

शीघ्रगतिफल Second correction to mean motion of planet.

शीघ्रजःकर्णः Sighrakarna.

शीघ्रतुंग Same as Sighrocca.

शीघ्रनीचोच्चवृत्त Epicycle of *sighra*

शीघ्रन्यायागतं फलं *Sighraphala.* See *Sighraphala.*

शीघ्रन्यायाग्रचाप Sighraphala.

शीघ्रपरिधि Circumference of Sighra epicycle.

शीघ्रफल *Sighra* correction.
Second correction to mean longitude.
Equation of conjunction.

शीघ्रफलज्या R sine of above.

शीघ्रवृत्त Sighra epicycle.

शीघ्रसिद्ध Corrected for the sighraphala.

शीघ्रान्त्यजीवा The present Rsine-difference relating to the sighra (kendra)

शीघ्रान्त्यफल Maximum sighraphala

शीघ्रान्त्यफलज्या R sine of above.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शीघ्रोच्च See *Ucca*.

The highest point of the *sighra* eccentric; apex of fastest motion.

Apex of fast (*sighra*) motion. In the case of superior planets the mean sun is the *sighrocca* while for Mercury and Venus two special points are defined as their *sighrocca*. However, Nilkantha Somayaji maintains that the sun must be the *sighrocca* for all the planets.

शीघ्रोच्चकर्ण *Sighrakarna*. It is equal to $[(R + R \sin k)^2 + (R \sin b)^2]^{1/2}$ where R = 3438', k = *koti* due to *Sighra-kendra*, and b=*bhuja* due to *Sighra-kendra*.

शीतकिरण (1) Moon. (2) One.

शीतरश्मि (1) Moon. (2) One.

शीतांशु (1) Moon. (2) One.

शीघ्रोच्चवृत्त Sighraepicycle.

शुक्र Friday.

शुक्ल The illuminated part of the Moon's disc; the phase of the Moon. Same as Sita.

शुक्लपक्ष Bright half of a lunar month

शुद्धि Residue of the omitted days for the year-end.

Mean heliocentric position; for superior planets mean position of Sun.

शृङ्गोन्नति The elevation of the Moon's horns (or cusps).

शेष Remainder, residue.

शोधन Subtraction.

शोधनीय A subtractive quantity technically called sodhaniya or sodhya.

शोध्य See Sodhaniya.

शौक्ल्य The illuminated part of the Moon's disc.

श्रव Same as *Sravana*.

Hypotenuse; *karna*

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रवण	(1) Name of the 22nd naksatra, (2) The Hypotenuse (of a right-angled triangle). Hypotenuse.
श्रविष्ठा	Beta Delphini; *Dhanistha*
श्रुति	Hypotenuse.
षडवंद्य	Same as *Sadasitimukha.*
षडशितिमुख	The ends of the 26th degree of Sagittarius, the 22nd degree of Pisces, the 18th degree of Gemini, and the 14th degree of Virgo (which fall at intervals of 86 degrees beginning with the first point of Libra) are called *Sadasitimukha.* The Sun's entry into these signs is called *Sadasitimukha-sankranti.*
संकलित	Sum, total.
संक्रम	Same as *Sankranti.*
संक्रान्ति	Time of crossing a sign. Last day of solar month
संख्या	Number.
संख्यान	Mathematics; calculation
संयुक्त	In conjunction.
संस्कृत	Corrected.
सकलगुण	Radius or 3438'
सकृत	By the application of the rule only once (*i.e.,* without the application of the method of successive approximations).
सन्नति	Meridian zenith distance.
सम	Even. Used as an abbreviation for *Samamandala.*
समकर्ण	Hypotenuse of the prime vertical shadow.
समकल	Two planets are said to be *samakala* when they are either in conjunction or opposition in longitude.
समकल	Equal up to minutes of arc.
समदुग्ज्या	Rsine of the prime vertical zenith distance.
समद्देदक	The eclipser.
समधृति	*Dhrti* for the prime vertical.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समपूर्वापर Same as *Samamandala.*

समपूर्वापरः शंकुः The Rsine of the prime vertical altitude (of the Sun)

समप्रोत Secondary to prime vertical

समभोगी A natsatra whose length is equal to the Moon's mean daily motion.

सममंडल The prime vertical; the vertical circle going through the east and west cardinal points (called *Samasthana).*

सममण्डलजा छाया The prime vertical shadow.

सममण्डलशंकु The Rsine of the prime vertical altitude.

समयांश Same as *Kalamsa.*

समरेखा The meridian.

समलिप्त Two planets are said to be samalipta when their longitudes are equal up to minutes.

समलिप्तेन्दु The longitude of the Moon, for the time of opposition or conjuction of the Sun and Moon.

समवलम्बज्या The Rsine of the colatitude.

समवलय Same as *Samamandala.*

समवृत्त Same as *Samamandala.*

समशंकु Prime vertical altitude or Rsine of prime vertical altitude.

समागम Conjunction of two heavenly bodies. Same as *yoga* or *Yuti.*

समासदल Same as *Manaikyardha.*

समासदल वृत्त Same as *Manaikyardhavrtta.*

समुन्नत Same as *Unnata.*

सम्पर्क The sum of the diameters of two bodies in contact. Used in the sense of "th sum of the diameters of the eclipsed and eclipsing bodies."

सम्पर्कदल Same as *Samparkardha.*

सम्पर्कार्ध Half the sum of the diameters of the eclipsed and eclipsing bodies.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वापम	The greatest declination (of the Sun), i.e., the obliquity of the ecliptic.
सहस्रांशु	The Sun.
सायक	Celestial latitude.
सार्पमस्तक	Name of an astronomical phenomenon.
सावन	Civil.
सावनमास	30 civil days.
सावित्र	Pertaining to the Sun.
सित	(1) The measure of the illuminated part of the Moon's disc; the phase of the Moon. (2) The light half of a lunar mouth (*sita-paksa*). (3) Venus.
सितखग	Venus.
सितपक्ष	The light half of a lunar mouth.
सितपर्व	Full moon *tithi*.
सितबिंदु	That point of the Moon's diameter which lies at the end of the illuminated part of the Moon.
सितमान	The measure of the illuminated part of the Moon's disc.
सुरनाथगुरु	Jupiter.
सुरपदिक्	East.
सुरि	Jupiter.
सुरेड्य	Jupiter.
सूर्य	(1) The Sun. (2) Twelve.
सूर्यकक्ष्या	The orbit of the Sun, the ecliptic.
सूर्यज	Saturn.
सूर्यपरिवर्तसावन	Civil day.
सैंहिकेय	The ascending node of the Moon's orbit. (*saimhikeya* literally means Rahu, son of Simhika).
सोमज	Mercury.
सोमसूनु	Mercury.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सौम्य	(1) North. (2) The *naksatra* Mrgasira. (3) Mercury.
सौर दिन	Solar day.
सौरमास	Solar month
सौरवर्ष	Solar year.
सौरि	Saturn.
स्थगित	Covered, hidden, concealed, eclipsed.
स्थिति	Duration (of an eclipse).
स्थिति खंड	Same as *Sthityardha.*
स्थितिदल	Half the duration (of an eclipse).
स्थितिमंडल	Same as *Manaikyardhavrtta.*
स्थित्यर्ध	Half the duration (of an eclipse).
स्थित्यर्धनाडिका	Half the duration (of an eclipse) in terms of *nadis.*
स्थिरभवन	The signs Taurus, Leo, Scorpio and Aquarius.
स्थूल	Gross, approximate.
स्पर्श	Contact.
स्पर्शकाल	Time of the first contact of an eclipse.
स्पर्शलंबन	Parallax at the beginning of an eclipse.
स्पष्ट	True, corrected.
स्पष्टगति	True daily motion.
स्फुट	True, corrected. Same as *Spasta.*
स्फुट क्रांति	Declination of planet's centre.
स्फुट विक्षेप	Celestial latitude corrected by parallax.
स्फुट-भोग	True (daily) motion.
स्फुटगति	True motion of a planet; *Pastagati*
स्फुटग्रह	True planet.
स्फुटभुक्ति	True (daily) motion.
स्फुटमध्य	True-mean; the true-mean planet; the true-mean longitude of a planet.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्फुटमध्यम	Same as sphutamadhya.
स्फुटयोजन	Used in the sense of sphutayojanakarna.
स्फुटयोजनकर्ण	The true distance (of a planet) in terms of yojanas.
स्फुटवृत्त	True or corrected epicycle.
स्वदेशभूमिवृत्त	The local circumference of the Earth, *i.e.*, circumference of the local circle of latitude.
स्वदेशभोदय	Times of rising of the signs at the local place, or oblique ascensions of the signs.
स्वदेशाक्ष	The latitude of the local place.
स्वदेशोदय	Same as *Svadesa-bhodaya.*
	Oblique ascension; time of rising (of the signs) at the local place.
स्वभूवृत्त	Same as *Svadesa-bhumi-vrtta.*
हदिज	Parallax in longitude; *lambana*
हन्ति	Occults.
हरिज	Horizon.
हार	Divisor.
हारराशि	Divisor.
हिमांशु	(1) Moon.
	(2) One.
हीन	(1) Less.
	(2) Omitted lunar day (hinadivasa).
हीनदिवस	Ommitted lunar day.
हीनरात्र	Same as Hinadivasa.
हुताशन	Three.
हृति	Hypotenuse.
होरा	Hour.
	$\frac{1}{24}$ th of one day and night.

—

Satj

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनुबन्ध - III

संख्या शब्दों की सूची

संख्यानुसार

० अनन्त, अन्तरिक्ष, अभ्र, अम्बर, अम्बुद, असत्, आकाश, खं, ख, गगन, छिद्र, जलद, जलधर, जलधरपथ, दिव, नग्न, नभ, पयोद, पयोधर, पुष्कर, पूर्ण, पृथु, पृथुल, बिन्दु, मेघ, रन्ध्र, वरीय, विन्दु, वियत्, विष्णुपद, विहायस्, वृहत्, व्योम, शून्य

१ अंशुमान, अचला, अब्ज, अमृतांशु, अवनि, आदि, आस्य, इन्दु, इला, उडुपति, उर्वरा, उर्वी, ऋक्षेश, एक, एणधर, औषधीश, क, कलाधर, कलि, कु, कुमुदाकरप्रिय, क्षपाकर, क्षमा, क्षिति, क्षोणि, क्षोणी, क्ष्मा, गो, गोत्र, गोत्रा, ग्लौ, चन्द्र, चन्द्रमा, जगती, जैवातृक, ज्या, तुन, दाक्षायणीप्राणेश, धरणी, धरा, धरित्री, नायक, निशाकर, निशेश, पितामह, पृथिवी, प्रालेयांशु, ब्रह्मा, भुवन्यु, भू, भूमि, मही, मुख, मृगलाञ्छन, मृगाङ्क, मेदिनी, रजनीकर, रजनीश, रात्रिप, रात्रीश, रुग्ण, रूप, लपन, वक्त्र, वदन, वसुधा, वसुन्धरा, वाक्, विधु, विरञ्चि, विश्वम्भरा, शशधर, शशभृत्, शशलाञ्छन, शशाङ्क, शशि, शशी, शीतकर, शीतकिरण, शीतद्युति, शीतमयूख, शीतरश्मि, शीतांशु, शुभ्रभानु, श्वेत, श्वेतांशु, सितरश्मि, सुधांशु, सोम, स्थिरा, हरिणधृत् हरिणाङ्क, हिमकर, हिमगु, हिमरश्मि, हिमांशु।

२ अंस, अक्षि, अन्तक, अम्बक, अयन, अश्वि, अश्वनी, ईक्षण, ओष्ठ, कर, कर्ण, कुच, कुटुम्ब, गरुत्, गुल्फ, चक्षु, जङ्घा, जानु, दस्र, दृश्, दृष्टि, दोः, द्वन्द्व, द्वय, द्वि, ध्रुव, नय, नयन, नासत्य, नेत्र, पक्ष, पाणि, बाहु, भुज, भुजा, यम, यमल, युग, युगल, युग्म, रविचन्द्रौ, रविपुत्र, लोचन, श्रोत्र, स्तन, हस्त।

३ अग्नि, अनल, आज्यभुक्, आज्याश, उषर्बुध, काल, कृशानु, कृष्णवर्त्म, क्रम, गुण, गुप्ति, जगत्, ज्योति, ज्वलन, ज्वाल, तपन, तृतीय, त्रय, त्रिकटु, त्रिकाल, त्रिगत, त्रिगुण, त्रिजगत्, त्रिनेत्र, त्रिपदी, त्रैत, दह, दहन, दीप्ति, द्युति, धाम, नेत्र, पद, पावक, पुं, पुर, पुरुष, पुष्कर, ब्रह्मन्, भवुन,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रत्न, राम, रुद्राक्ष, रोहित, लोक, लोचन, वचन, वह्नि, विक्रम, विष्णु, विष्णुक्रम, वृत्त, वैश्वानर, शक्ति, शिखा, शिखिन्, शिवनेत्र, शूल, सत्पार्चि, सहोदर, हरनयन, हरनेत्र, हव्यभुक्, हव्यवाहन, हव्याश, हुतभुज्, हुतवह, हुताश, हुताशन, होतृ।

४ अपस्, अब्धि, अम्बु, अम्बुधि, अम्बुनिधि, अम्भोधि, अम्भोनिधि, अय, अर्णव, आप, आम्नाय, आय, आश्रम, उदधि, उदन्वान्, उपाय, कषाय, कृत, केन्द्र, कोष्ठ, गति, जल, जलधि, जलनिधि, तुरीय, तुर्य, तोय, दिक्, दिश्, दिशा, ध्यान, नदी, निगम, निम्नगेश, नीरधि, नीरनिधि, पयोधि, पयोनिधि, पाथ, पाथोधि, पितामहास्य, प्रणिम्नगेश, बन्ध, बन्धु, ब्रह्मोद्भव, महोर्मि, महोर्मिक, माल, युग, लवणोद, लोकपाल, वर्ण, वारिधि, वारिनिधि, वार्धि, विषधि, विषनिधि, वेद, श्रुति, सञ्ज्ञा, समुद्र, सलिलाकर, सागर, सुख।

५ अक्ष, अनिल, अनुत्तर, अर्थ, असु, आशुग, इन्द्रिय, इषु, कङ्कपत्री, करणीय, कलङ्क, कामगुण, कामदेव, खग, तत्त्व, तन्मात्र, धी, नाराच, नालीक, पक्षि, पश्च, पतङ्ग, पत्रिन्, पर्व, पवन, पाण्डव, पुत्र, पृषत्क, प्राणः, बाण, भाव, भूत, भेदक, मरुत्, महाभूत, महाव्रत, मार्गण, रत्न, लेय, लेयक, वध, वर्ष्मन्, वात, वायु, विशिख, विषय, व्रत, शर, शरीर, शस्त्र, शिलीमुख, शूक, श्वसन, समिति, सायक, स्मरबाण, स्मरेषु।

६ अङ्ग, अब्द, अराति, अरि, ऋतु, काय, कारक, कार्तिक, काल, कुमार, कुमारवदन, कृत्तिका, कोष, क्ष्माखण्ड, खर, गुहक, गुहवक्त्र, गुहास्य, चक्रार्ध, चमू, चरक, जीव, तर्क, दर्शन, द्रव्य, भार्ध, मासार्ध, रस, राग, रासभ, रिपु, लेख्य, लेश्या, वर्ण, शक्ति, शास्त्र, शिलीमुखपद, शिशु, षट्, षण्मुख, समास, सेना, स्कन्द, स्वाद।

७ अग, अचल, अद्रि, अनिल, अश्व, ऋषि, कलत्र, कुलाचल, क्षितिभृत्, क्ष्माधर, क्ष्माभृत्, गन्धन्वह, गन्धवह, गिरि, घोटा, छन्द (छन्दस्), तत्त्व, तापस, तुरग, तुरङ्ग, दिविचर, द्वीप, धरणिधर, धराधर, धरित्रीधर, धातु, धी, नग, पन्नग, पर्वत, पवन, भय, भूधर, भूध्र, भूभृत्, मरुत्, महीधर, महीध्र, मातृका, मारुत, मुनि, यति, लोक, वक्री, वाजि, वात, वायु, वार, वासर, व्यसन, शिला, शिलोच्चय, शैल, सप्त, समीर, समीरण, स्थिर, स्वर हय।

अनीक, अनुष्टुभ्, अहि, इभ, उरग, करटिन्, करी (करिन्), करेणु, कर्म

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(कर्मन्), कुञ्जर, गज, गहन, गह्वर, तक्ष, तनु, दन्ती (दन्तिन), दिक्, दिग्गज, दिङ्नाथ, दिश्, दुरित, द्विप, द्विरद, धी, धीगुण, नाग, नागेन्द्र, पद्मी, पन्नग, पवनभुक्, पीलुक, पुष्करिन्, प्रधान, प्रभावक, फणिन्, बुद्धिगुण, भद्र, भुजग, भुजङ्ग, भुजङ्गम, भूति, मङ्गल, मतङ्गज, मति, मद, मातङ्ग, यूथप, वन, वसु, वारण, विषभृद्वपु, व्याल, श्रिय, सर्प, सिद्धगुण, सिद्धि, सिन्धुर, सुण्डिप, स्तम्बेरम, स्तम्भेरम, हस्तिन्।

९ अङ्क, अन्तर, अम्बुजासन, उपेन्द्र, ऋद्धि, कपाट, कवाट, कवि, कूप, केशव, क्षत, खग, खचर, खेगामी, खेचर, गम्भीर, गाम्भीर, गो, ग्रह, छिद्र, तामिस्र, तार्क्ष्यध्वज, दिविसद्, दुर्गा, द्वार, नन्द, नभोग, नव, निधान, निधि, पट, पदार्थ,बल, बिल, मिति, यन्त्र, रत्न, रन्ध्र, लब्ध, लब्धि, वट, विल, विवर, शुषिर, सुषिर, हरि।

१० अङ्गुलि, अङ्गुली, अवतार, आशा, ककुभ्, कर्म, काष्ठ, काष्ठा, दिक्, दिक्पाल, दिश्, दिशा, पङ्क्ति, रावणशिर, हरित्।

११ अक्षौहिणी, अज, ईश, ईशान, ईश्वर, गिरिश, गीरीश, गुणी, गौरीश, त्र्यम्बक, धूर्जटि, पशुपति, पिनाकिन्, भर्ग, भव, महः, महादेव, महेश, महेश्वर, मृड, रुद्र, शङ्कर, शम्भु, शर्व, शशिभूषण, शितिकण्ठ, शिव, शूलिन्, श्रीकण्ठ, हर।

१२ अर्क, आदित्य, इन, उष्णांशु, गण, चक्र, तपन, तरणि, तिग्मांशु, तीक्ष्णांशु, दिनकर, दिननाथ, दिनप, दिनमणि, दिनेश, दिवाकर, द्युमणि, नर, ना, पतङ्ग, पूषा, प्रद्योतन, भगण, भानु, भानुमान्, भास्कर, मण्डल, मार्तण्ड, मास, मित्र, मिहिर, रवि, राशि, विवस्वान्, व्यय, शङ्कु, सविता, सूर्य, हंस।

१३ अघोष, अतिजगति, अनङ्ग, करण, काम, क्रियास्थान, जय, यक्ष, वन्द्य, विश्व, विश्वे, विश्वेदेवाः।

१४ इन्द्र, इन्द्रक, कौशिक, गुणस्थान, जिष्णु, पुरन्दर, पूर्वप, भुवन, भूतग्राम, मनु, रज्जु, लोक, वज्रिन्, वासव, विद्या, शक्र, शक्वरी, शचीपति, सुराधिप, सुरेश।

१५ अतिशक्वरी, अहन्, अह्निसंख्या, घस्र, तिथि, दिन, दिवस, द्युनिशा, पक्ष, परमाधार्मिक, वासर, सन्ध्या।

१६ अवनिप, अष्टि, इन्दुकला, कला, क्ष्माप, नृप, नृपति, पृथ्वीश, भूप, भूपति, भूमिप, रिथ, शशिकला।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

१७ अत्यष्टि, घटा, घन, जीमूत, तोयद, बलाह, बलाहक, मेघ, मैत्र, वलाह, वलाहक, विधृति।

१८ अब्रह्म, तीर्थ, धृति, पापस्थानक, पुराण, विद्या, स्मृति।

१९ अतिधृति, वध, साम।

२० अङ्गुल, करज, कृति, नख, नखर।

२१ क्रतु, प्रकृति, बृन्द, मख, मूर्च्छ, मूर्च्छना, यज्ञ, वृन्द, समिधः, स्वः, स्वर्ग।

२२ आकृति, आकृती, जाति, जाती, परीषह, मति।

२३ अज, जहु, माया, मेष, विकृति।

२४ अन्ध, अर्हत्, गायत्री, जिन, तीर्थक, तीर्थकृत्, धम्म (धर्म), बुद्ध, संकृति, सिद्ध।

२५ अतिकृति, अभिकृति, ज्ञान, तत्त्व, पुष्ट।

२६ अतितत्त्व, उत्कृति।

२७ उडु, ऋक्ष, खद्योत, तार, तारक, तारका, तारा, धिष्ण्य, नक्षत्र, भ, भानि।

२८ ऋक्ष, देह, पिण्ड, हुला।

२९ आम उष्टि, कुव।

३० जटा, तिथि, दिन, साध्वी।

३२ दन्त, दशन, रद, रदन।

३३ अमर, अस्वप्न, गीर्वाण, त्रिदश, देव, दैवत, नाकगृह, निर्जर, सुर।

३९ दूर्वा।

४० ताल, पङ्क्ति।

४५ त्रिपक्षी।

४८ जगती, संस्कार।

४९ अनिल, तान, पवन, मरुत्, वायु।

५५ सुष्टि।

५९ काच, मोक्ष।

६४ कला, योगिनी, स्त्रीकला।

६५ पुष्टि।

७२ पुरुषकला।

३६० चक्रांशय, भांश।

५४०० दरद।

२१६०० चक्रकला, चक्रलिप्ता ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शब्दानुसार

अंशुमान्	१	अन्तर	९
अंस	२	अन्तरिक्ष	०
अक्ष	५	अन्ध	२४
अक्षि	२	अपस्	४
अक्षौहिणी	११	अब्ज	१
अग	७	अब्द	६
अग्नि	३	अब्धि	४
अघोष	१३	अब्रह्म	१८
अङ्क	९	अभिकृति	२५
अङ्ग	६	अभ्र	०
अङ्गुल	२०	अमर	३३
अङ्गुलि या अङ्गुली	१०	अमृतांशु	१
अचल	७	अम्बक	२
अचला	१	अम्बर	०
अज	११,२३	अम्बु	४
अतिकृति	२५	अम्बुजासन	९
अतिजगती	१३	अम्बुद	०
अतितत्त्व	२६	अम्बुधि	४
अतिधृति	१९	अम्बनिधि	४
अतिशक्वरी	१५	अम्भोधि या अम्भोनिधि	४
अत्यष्टि	१७	अय	४
अद्रि	७	अयन	२
अनङ्ग	१३	अराति	६
अनन्त	०	अरि	६
अनल	३	अर्क	१२
अनिल	५,७,४९	अर्णव	४
अनीक	८	अर्थ	५
अनुत्तर	५	अर्हत्	२४
अनुष्टुभ्	८	अवतार	१०
अन्तक	२	अवनि	१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवनिप	१६	इन्द्रिय	५
अश्व	७	इभ	८
अश्वि	२	इला	१
अश्विनी	२	इषु	५
अष्टि	१६	ईक्षण	२
असत्	०	ईश	११
असु	५	ईशान	११
अस्वप्न	३३	ईश्वर	११
अहन्	१५	उडु	२७
अहि	८	उडुपति	१
अह्निसंख्या	१५	उत्कृति	२६
आकाश	०	उदधि	४
आकृति	२२	उदन्वान	४
आकृती	२२	उपाय	४
आज्यभुक्	३	उपेन्द्र	९
आज्याश	३	उरग	८
आदि	१	उर्वरा	१
आदित्य	१२	उर्वी	१
आप	४	उषर्बुध	३
आम	२९	उष्टि	२९
आम्नाय	४	उष्णांशु	१२
आय	४	ऋक्ष	२७,२८
आशा	१०	ऋक्षेश	१
आशुग	५	ऋतु	६
आश्रम	४	ऋद्धि	९
आस्य	१	ऋषि	७
इन	१२	एक	१
इन्दु	१	एणधर	१
इन्दुकला	१६	ओष्ठ	२
इन्द्र	१४	औषधीश	१
इन्द्रक	१४	क	१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ककुभ्	१०	कुच	२
कङ्कपत्री	५	कुञ्जर	८
कपाट	९	कुटुम्ब	२
कर	२	कुमार	६
करज	२०	कुमारवदन	६
करटिन्	८	कुमुदाकरप्रिय	१
करण	१३	कुलाचल	७
करणीय	५	कुव	२९
करी (करिन्)	८	कूप	९
करेणु	८	कृत	४
कर्ण	२	कृति	२०
कर्म (कर्मन्)	८,१०	कृत्तिका	६
कलङ्क	५	कृशानु	३
कलत्र	७	कृष्णवर्त्म	३
कला	१६,२४	केन्द्र	४
कलाधर	१	केशव	९
कलि	१	कोष	६
कवाट	९	कोष्ठ	४
कवि	९	कौशिक	१४
कषाय	४	क्रतु	२१
काच	५९	क्रम	३
काम	१३	क्रियास्थान	१३
कामगुण	५	क्षत	९
कामदेव	५	क्षपाकर	१
काय	६	क्षमा	१
कारक	६	क्षिति	१
कार्तिक	६	क्षितिभृत्	७
काल	३,६	क्षोणि	१
काष्ठ	१०	क्षोणी	१
काष्ठा	१०	क्ष्मा	१
कु	१	क्ष्माखण्ड	६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्षमाधर	७	गुल्फ	२
क्षमाप	१६	गुहक	६
क्षमाभृत्	७	गुहवक्त्र	६
खं	०	गुहास्य	६
ख	०	गो	१,६
खग	५,६	गोत्र	१
खचर	६	गोत्रा	१
खद्योत	२७	गौरीश	११
खर	६	ग्लौ	१
खेगामी	६	ग्रह	६
खेचर	६	घटा	१७
गगन	०	घन	१७
गज	८	घस्र	१५
गण (=भगण)	१२	घोटा	७
गति	४	चक्र	१२
गन्धन्वह	७	चक्रकला	२१६००
गन्धवह	७	चक्रलिप्ता	२१६००
गम्भीर	६	चक्रांश	३६०
गरुत्	२	चक्रार्ध	६
गहन	८	चक्षु	२
गह्वर	८	चन्द्र	१
गाम्भीर	६	चन्द्रमा	१
गायत्री	२४	चमू	६
गिरि	७	चरक	६
गिरिश	११	छन्द (छन्दस्)	७
गिरीश	११	छिद्र	०,६
गीर्वाण	३३	जगत्	३
गुण	३	जगती	१,४८
गुणस्थान	१४	जङ्घा	२
गुणी	११	जटा	३०
गुप्ति	३	जय	१३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जल	४	तारका	२७
जलद	०	तारा	२७
जलधर	०	तार्क्ष्यध्वज	९
जलधरपथ	०	ताल	४०
जलधि	४	तिग्मांशु	१२
जलनिधि	४	तिथि	१५,३०
जहु	२३	तीक्ष्णांशु	१२
जाति	२२	तीर्थ	१८
जाती	२२	तीर्थक	२४
जानु	२	तीर्थकृत्	२४
जिन	२४	तुरग	७
जिष्णु	१४	तुरङ्ग	७
जीमूत	१७	तुरीय	४
जीव	६	तुर्य	४
जैवातृक	१	तृतीय	३
ज्या	१	तोय	४
ज्योति	३	तोयद	१७
ज्ञान	२५	त्रय	३
ज्वलन	३	त्रिकटु	३
ज्वाल	३	त्रिकाल	३
तक्ष	८	त्रिगत	३
तत्त्व	५,७,२५	त्रिगुण	३
तनु	१,८	त्रिजगत्	३
तन्मात्र	५	त्रिदश	३३
तपन	३,१२	त्रिनेत्र	३
तरणि	१२	त्रिपक्षी	४५
तर्क	६	त्रिपदी	३
तान	४९	त्रैत	३
तापस	७	त्र्यम्बक	११
तामिस्र	९	दन्त	३२
तार या तारक	२७	दन्ती (दन्तिन्)	८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दरद	५४००	देह	२८
दर्शन	६	दैवत	३३
दशन	३२	दोः	२
दस्र	२	द्युति	३
दह	३	द्युनिशा	१५
दहन	३	द्युमणि	१२
दाक्षयणीप्राणेश	१	द्रव्य	६
दिक्	४,८,१०	द्वन्द्व	२
दिक्पाल	१०	द्वय	२
दिग्गज	८	द्वार	९
दिङ्नाथ	८	द्वि	२
दिन	१५,३०	द्विप	८
दिनकर	१२	द्विरद	८
दिननाथ	१२	द्वीप	७
दिनप	१२	धरणिधर	७
दिगमणि	१२	धरणी	१
दिनेश	१२	धरा	१
दिव	०	धराधर	७
दिवस	१५	धरित्री	१
दिवाकर	१२	धरित्रीधर	७
दिविचर	७	धम्म (धर्म)	२४
दिविसद्	९	धातु	७
दिश्	४,८,१०	धाम	३
दिशा	४,८,१०	धिष्ण्य	२७
दीप्ति	३	धी	५,७,८
दुरित	८	धीगुण	८
दुर्गा	९	धूर्जटि	११
दूर्वा	३९	धृति	१८
दृश्	२	ध्यान	४
दृष्टि	२	ध्रुव	२
देव	३३	नक्षत्र	२७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नख	२०	नेत्र	२,३
नखर	२०	पक्ष	२,१५
नग	७	पक्षि	५
नग्न	०	पङ्क्ति	१०,४०
नदी	४	पञ्च	५
नन्द	९	पट	९
नभ (नभस्)	०	पतङ्ग	५,१२
नभोग	९	पत्रिन्	५
नय	२	पद	३
नयन	२	पदार्थ	९
नर	१२	पद्मी	८
नव	९	पन्नग	७,८
ना	१२	पयोद	०
नाकगृह	३३	पयोधर	०
नाग	८	पयोधि	४
नागेन्द्र	८	पयोनिधि	४
नायक	१	परमाधार्मिक	१५
नाराच	५	परीषह	२२
नालीक	५	पर्व	५
नासत्य	२	पर्वत	७
निगम	४	पवन	५,७,४९
निधान	९	पवनभुक्	८
निधि	९	पशुपति	११
निम्नगेश	४	पाणि	२
निर्जर	३३	पाण्डव	५
निशाकर	१	पाथ	४
निशेश	१	पाथोधि	४
नीरधि	४	पापस्थानक	१८
नीरनिधि	४	पावक	३
नृप	१६	पिण्ड	२८
नृपति	१६	पितामह	१

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पितामहास्य	४	बन्ध	४
पिनाकिन्	११	बन्धु	४
पीलुक	८	बल	९
पुं	३	बलाह	१७
पुत्र	५	बलाहक	१७
पुर	३	बाण	५
पुरन्दर	१४	बाहु	२
पुराण	१८	बिन्दु	०
पुरुष	३	बिल	९
पुरुषकला	७२	बुद्ध	२४
पुष्कर	०,३	बुद्धिगुण	८
पुष्करिन् (=हस्तिन्)	८	बृन्द	२१
पुष्ट	२५	ब्रह्मन्	३
पुष्टि	६५	ब्रह्मा	१
पूर्ण	०	ब्रह्मोद्भव	४
पूर्वप्र	१४	भ	२७
पूषा (पूषन्)	१२	भगण	१२
पृथिवी	१	भद्र	८
पृथु	०	भय	७
पृथुल	०	भर्ग	११
पृथ्वी	१	भव	११
पृथ्वीश	१६	भांश	३६०
पृषत्क	५	भानि	२७
प्रकृति	२१	भानु	१२
प्रणिम्नगेश	४	भानुमान्	१२
प्रद्योतन	१२	भार्ध	६
प्रधान	८	भाव	५
प्रभावक	८	भास्कर	१२
प्राण	५	भुज	२
प्रालेयांशु	१	भुजग	८
फणिन	८	भुजङ्ग	८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भुजङ्गम्	८	महेश	११
भुजा	२	महेश्वर	११
भुवन	३,१४	महोर्मि	४
भुवन्यु	१	महोर्मिक	४
भू	१	मातङ्ग	८
भूत	५	मातृका	७
भूतग्राम	१४	माया	२३
भूति	८	मारुत	७
भूधर	७	मार्गण	५
भूध्र	७	मार्तण्ड	१२
भूप	१६	माल	४
भूपति	१६	मास	१२
भूभृक्त्	७	मासार्ध	६
भूमि	१	मिति	९
भूमिप	१६	मित्र	१२
भेदक	५	मिहिर	१२
मख	२१	मुख	१
मङ्गल	८	मुनि	७
मण्डल	१२	मूर्च्छ	२१
मतङ्गज	८	मूर्च्छना	२१
मति	८,२२	मृगलाञ्छन	१
मद	८	मृगाङ्क	१
मनु	१४	मृड	११
मरुत्	५,७,४९	मेघ	०,१७
महः	११	मेदिनी	१
महादेव	११	मेष	२३
महाभूत	५	मैत्र	१७
महाव्रत	५	मोक्ष	५९
मही	१	यक्ष	१३
महीधर	७	यज्ञ	२१
महीध्र	७	यति	७

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यन्त्र	९	रूप	१
यम	२	रोहित (=रोहिताश्व)	३
यमल	२	लपन	१
युग	२,४	लब्ध	९
युगल	२	लब्धि	९
युग्म	२	लवणोद	४
यूथप	८	लेख्य	६
योगिनी	६४	लेय	५
रजनीकर	१	लेयक	५
रजनीश	१	लेश्या	६
रज्जु	१४	लोक	३,७,१४
रत्न	३,५,९	लोकपाल	४
रद	३२	लोचन	२,३
रदन	३२	वक्त्र	१
रन्ध्र	०,९	वक्री	७
रवि	१२	वचन	३
रविचन्द्रौ	२	वज्रिन्	१४
रविपुत्र (=यम)	२	वट	९
रस	६	वदन	१
राग	६	वध	५
रात्रिप	१	वन	८
रात्रीश	१	वन्द्य	१३
राम	३	वरीय	०
रावणशिर	१०	वर्ण	४,६
राशि	१२	वर्ष्मन	५
रासभ	६	वलाह	१७
रिथ	१६	वलाहक	१७
रिपु	६	वसु	८
रुग्ण	१	वसुधा	१
रुद्र	११	वसुन्धरा	१
रुद्राक्ष	३	वह्नि	३

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाक्	१	विष्णु	३
वाजि	७	विष्णुक्रम	३
वात	५,७,४९	विष्णुपद या विष्णुपाद	०
वायु	५,७,४९	विहायस्	०
वार	७	वृत्त	३
वारण	८	वृन्द	२१
वारिधि	४	वृहत्	०
वारिनिधि	४	वेद	४
वार्धि	४	वैश्वानर	३
वासर	७,१५	व्यय	१२
वासव	१४	व्यसन	७
विकृति	२३	व्याल	८
विक्रम	३	व्योम	०
विद्या	१४,१८	व्रत	५
विधु	१	शक्ति	३,६
विधृति	१७	शक	१४
विन्दु	०	शक्वरी	१४
वियत्	०	शङ्कर	११
विरञ्चि	१	शङ्कु	१२
विल	९	शचीपति	१४
विवर	९	शम्भु	११
विवस्वान्	१२	शर	५
विशिख	५	शरीर	५
विश्व	१३	शर्व	११
विश्वम्भरा	१	शशधर	१
विश्वे	१३	शशभृत्	१
विश्वेदेवाः	१३	शशलाञ्छन	१
विषधि	४	शशाङ्क	१
विषनिधि	४	शशि	१
विषभृद्वपु	८	शशी	१
विषय	५	शशिकला	१६

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शशिभूषण	११	श्वेत	१
शस्त्र	५	श्वेतांशु	१
शास्त्र	६	षट्	६
शिखा	३	षण्मुख	६
शिखिन्	३	संस्कार	४८
शितिकण्ठ	११	सङ्कृति	२४
शिला	७	सञ्ज्ञा	४
शिलीमुख	५	सन्ध्या	१५
शिलीमुखपद	६	सप्त	७
शिलीच्चय	७	सप्तार्चि	३
शिव	११	समास	६
शिवनेत्र	३	समिति	५
शिशु	६	समिधः	२१
शीतकर	१	समीर	५,७,४९
शीतकिरण	१	समीरण	५,७,४९
शीतद्युति	१	समुद्र	४
शीतमयूख	१	सर्प	८
शीतरश्मि	१	सलिलाकर	४
शीतांशु	१	सविता	१२
शुभ्रभानु	१	सहोदर	३
शुषिर	९	सागर	४,७
शूक	५	साध्वी	३०
शून्य	०	साम	१९
शूल	३	सायक	५
शूलिन	११	सितरश्मि	१
शैल	७	सिद्ध	२४
श्री	८	सिद्धगुण	८
श्रीकण्ठ	११	सिद्धि	८
श्रुति	४	सिन्धुर	८
श्रोत्र	२	सुख	४
श्वसन	५	सुण्डिप	८

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुधांशु	१	हय	७
सुर	३३	हर	११
सुराधिप	१४	हरनयन	३
सुरेश	१४	हरनेत्र	३
सुषिर	९	हरि	९
सुष्टि	५५	हरिणधृत्	१
सूर्य	१२	हरिणाङ्क	१
सेना	६	हरित्	१०
सोम	१	हव्यभुक्	३
स्कन्द	६	हव्यवाहन	३
स्तन	२	हव्याश	३
स्तम्बेरम	८	हस्त	२
स्तम्भेरम	८	हस्तिन्	८
स्त्रीकला	६४	हिमकर	१
स्थिर	७	हिमगु	१
स्थिरा	१	हिमरश्मि	१
स्मरबाण	५	हिमांशु	१
स्मरेषु	५	हुतभुज्	३
स्मृति	१८	हुतवह	३
स्वः	२१	हुताश	३
स्वर	७	हुताशन	३
स्वर्ग	२१	हुला	२८
स्वाद	६	होतृ	३
हंस	१२		

—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्योतिष-वास्तुशास्त्रग्रन्थ

- **अद्भुतसागरः**—डॉ. शिवाकान्त झा।
- **आर्यभटीयम्**—पं. सत्यदेव शर्मा
- **केशवीयजातकपद्धति**—डॉ. सुरकान्त झा
- **चापीयत्रिकोणगणितम्**—पं. लखणलाल झा
- **जातकपारिजात**—डॉ. हरिशंकर पाठक
- **जातकतत्त्वम्**—डॉ. हरिशंकर पाठक
- **ज्योतिषशास्त्रस्येतिहासः**—आचार्य लोकमणि दाहाल
- **दशाफलदर्पणः**—डॉ. हरिशङ्कर पाठक।
- **नरपतिजयचर्यास्वरोदयः**—डॉ. सत्येन्द्र मिश्र
- **नक्षत्रचिकित्सा-ज्योतिषम्**—महर्षि अभय कात्यायन
- **पूर्वकालामृत**—डॉ. रामचन्द्र पाण्डेय
- **प्रश्नमार्गः**—आचार्य गुरुप्रसाद गौड़
- **बृहज्जातकम् (होराशास्त्रम्)**—डॉ. सत्येन्द्र मिश्र
- **बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्**—डॉ. पद्मनाथ मिश्र
- **बृहत्संहिता**—पं. श्रीअच्युतानन्द झा
- **भावकुतूहलम्**—डॉ. हरिशंकर पाठक
- **मुहूर्त्तचिन्तामणिः**—पं. विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी
- **लीलावती**—पं. सीताराम झा
- **वेदाङ्गज्योतिषम्**—शिवराज आचार्य कौण्डिन्यायन
- **विश्व के प्रमुख कालदर्शक** (विश्व के प्रमुख पञ्चाङ्गों का अध्ययन)
- **सर्वार्थ चिन्तामणि**—डॉ. गुरुप्रसाद गौड़
- **सूर्यसिद्धान्त**—प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय
- **सिद्धान्तशिरोमणिः**—पं. सत्यदेव शर्मा

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन | चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh